॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

आचार्यश्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

('सिद्धान्तज्ञानदीपिका' हिन्दी टीका समन्वित)



टीकाकर्त्री

आर्यिका १०५ श्री आदिमती माताजी



प्रकाशक

आचार्य १०८ श्री शिवसागर ग्रन्थमाला

श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान

श्री शान्तिवीरनगर, श्रीमहावीरजी - ३२२ २२१

फोन : ०७४६९-२४४८२

प्रथम संस्करण से :

❋ अन्तर्ध्वनि ❋

गिरिनगर (गिरनारक्षेत्र) की गुफामें रहनेवाले धरसेनाचार्यके मनमें कालदोषसे हीयमान श्रुत-परम्पराको देख यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि वर्तमान श्रुतको लिपिबद्ध नहीं किया तो इसकी परम्परा विच्छिन्न हो जावेगी। फलतः उन्होंने महिमानगरी के यतिसम्मेलनमें उपस्थित साधुओंके पास इस आशयका पत्र भेजा कि "मेरी आयु उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है अतः किन्हीं दो बुद्धिमान् साधुओं को मेरे पास भेजिये, जिन्हें मैं अपने अगणें स्थित सत्कर्मप्राभृतग्रन्थका उपदेश कर सकूँ; अन्यथा मेरे पश्चात् वह विद्या लुप्त हो जावेगी।" महिमानगरीके यतिसम्मेलनमें उपस्थित मुनियोंने धरसेनाचार्यके पत्रपर बड़ा गौरव किया और दो बुद्धिमान् साधुओंको गिरिनगरकी ओर भेजा। वे दो साधु पुष्पदन्त और भूतबली नामसे जाने जाते हैं।

गिरिनगर पहुँचनेपर धरसेन ने दोनों साधुओंकी बुद्धि-परीक्षाकर उन्हें सत्कर्मप्राभृतका अध्ययन कराया तथा अध्ययनके पश्चात् उन्होंने ग्रन्थरचना की। पुष्पदन्त और भूतबली आचार्यकी ये रचनाएं जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बंधसामित्तविचय, वेयणाखंड, वग्गणाखंड और महाबन्ध नामसे प्रसिद्ध हुईं। उपर्युक्त छहों खण्ड मिलकर षट्खण्डागम कहलाते हैं। वीरसेनस्वामी ने इनपर धवलानामकी टीका लिखी। नेमिचन्द्राचार्यने इन छह खण्डोंकी अच्छीतरह साधना की थी। कर्मकाण्डमें उन्होंने स्वयं लिखा है-

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

अर्थात् जिसप्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्नसे भरतक्षेत्रके छहखण्डोंको निर्विघ्नरूपसे साधता है-अपने आधीन करता है उसीप्रकार मैंने अपने बुद्धिरूपी चक्ररत्नसे छहखण्डोंसहित परमागमको साधा है-अपने आधीन किया है।

नेमिचन्द्राचार्य देशीयगणके प्रसिद्ध आचार्य थे। गुरुके रूपमें इन्होंने आचार्य वीरनन्दी, अभय-नन्दी, इन्द्रनन्दी तथा कनकनन्दी का बड़ी श्रद्धाके साथ उल्लेख किया है। कुछ उदाहरण देखिये-

जस्स य पायपसायेणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदनंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं॥क.का. ४३६॥

अर्थात् जिनके चरणप्रसादसे वीरनन्दी और इन्द्रनंदीका वत्स अनंतसंसाररूपी सागरसे उत्तीर्ण हो गया, उन अभयनन्दीगुरुको मैं नमस्कार करता हूँ।

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायर पारगिंदणंदिगुरुं।
वर वीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥ कर्मकाण्ड॥

अर्थात् अभयनन्दीको, श्रुतसागरके पारगामी इन्द्रनन्दी गुरुको और वीरनन्दीको नमस्कार कर प्रकृतियोंके प्रत्यय-कारणको कहूंगा।

वर इंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल सिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥३९६॥ कर्मकाण्ड॥

अर्थात् उत्कृष्ट इन्द्रनन्दी गुरुके पास समस्त सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दीगुरुने सत्त्वस्थान का कथन किया है।

इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रइयो तिलोयसारो खमंतु बहुगुणाइरिया॥१०१८॥ त्रिलोकसार॥

अर्थात् अभयनन्दीके वत्स नेमिचन्द्र मुनिने यह त्रिलोकसार ग्रन्थ रचा है, बहुतगुणोंके धारक आचार्य क्षमा करें।

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पयसुदेणभयणंदि सिस्सेण।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण॥६५२॥ क्षपणासार॥

अर्थात् वीरनंदी और इन्द्रनन्दी के वत्स एवं अभयनन्दीके शिष्य अल्पज्ञानीके नेमिचन्द्रने दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धिका कथन किया है।

श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवला, जयधवला तथा महाधवला टीकाएँ प्रमेयबहुल टीकाएँ हैं। प्रत्येक प्रमेयका वर्णन उनमें विस्तृत रीतिसे किया गया है। धीरे-धीरे इन टीकाओंमें प्रवेश पाना अल्पमेधावी मानवोंको जब कठिन दिखने लगा तब नेमिचन्द्राचार्यने गंगवंशीय राजा राचमल्लके प्रधानमंत्री एवं सेनापति चामुण्डरायके आग्रहसे गोम्मटसार की रचना की। अपनी वीरताके कारण चामुण्डराय 'वीरमार्तण्ड' उपाधिसे विभूषित थे। श्रवणबेल्गोलाके विन्ध्यगिरि पर्वतपर जगत्प्रसिद्ध बाहुबली स्वामीकी ५७ फुट ऊँची प्रतिमा की प्रतिष्ठा इन्हीं चामुण्डरायने शकसम्वत् ९०० और विक्रमसम्वत् १०३५ में करवायी थी। चामुण्डराय का घरू नाम गोम्मट था। इसलिये उनके द्वारा प्रतिष्ठापित प्रतिमा गोम्मटस्वामी नामसे प्रसिद्ध हो गई। नेमिचन्द्राचार्यके द्वारा विरचित गोम्मटसार भी उन्हीं चामुण्डरायके नामसे प्रचलित हुआ है जिसका अर्थ होता है गोम्मटके लिए (चामुण्डरायके लिए) लिखा हुआ धवलादिग्रन्थोंका सार। इस संदर्भकी एक कथा प्रसिद्धि में है कि-''एकबार नेमिचन्द्राचार्य षट्-खण्डागमग्रन्थोंका स्वाध्याय कर रहे थे। उसी समय चामुण्डराय उनके दर्शनके लिये आये। चामुण्डराय के आनेपर नेमिचन्द्राचार्यने

स्वाध्याय बन्द कर दिया। चामुण्डरायने पूछा कि स्वाध्याय क्यों बन्द कर दिया गया? नेमिचन्द्राचार्यने कहा कि आगमग्रन्थोंके स्वाध्यायका अधिकार गृहस्थोंको नहीं है। तब इनका ज्ञान हम गृहस्थोंको कैसे हो सकता है? चामुण्डरायके इस प्रश्नके उत्तर स्वरूप नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसारकी रचना की। उक्त कथाका सार मैं तो यह समझा हूँ कि षट्खण्डागमकी गूढ़ चर्चाएं सामान्य मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकता इसलिये उन गूढ़ चर्चाओंका सरलीकरण करनेके लिये नेमिचन्द्राचार्यने प्रयास किया और प्रयासका नाम 'गोम्मटसार' प्रचलित हुआ।

गोम्मटसार दो भागोंमें विभक्त है-जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड। जीवकाण्डमें महाकर्मप्राभृत के सिद्धान्तसम्बन्धी जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड और वर्गणाखण्डका वर्णन किया गया है और कर्मकाण्डमें महाबन्धका। कर्मकाण्डमें महाबन्धके अतिरिक्त षट्खण्डागमके प्रकृतिसमुत्कीर्तन तथा जीवट्ठाणचूलिका आदिसे भी कितना ही विषय लिया गया है। जीवकाण्डमें बीस-प्ररूपणाओंके माध्यमसे संसारी जीवोंका वर्णन किया गया है और कर्मकाण्डमें कर्मोंकी बन्ध, उदय व सत्त्व आदि अवस्थाओंका वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जीवकाण्डमें धवलाकी विभिन्न गाथाएँ संकलित हैं और उनका संकलन इस सुन्दरतासे किया गया है कि वे ग्रन्थका अङ्ग बन गई हैं।

ग्यारहवीं शताब्दीके विद्वान् आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीने उक्त जीवकाण्ड और कर्मकांड के अतिरिक्त लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार ये तीन ग्रन्थ भी बनाये हैं। प्रसन्नताकी बात है कि उक्त पाँचों ही ग्रन्थ हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित हो चुके हैं और तत्त्वजिज्ञासुजनोंके स्वाध्यायमें आ रहे हैं। त्रिलोकसारका नवीन संस्करण पूज्यश्री १०५ विशुद्धमती माताजी के द्वारा संपादित और अनूदित होकर अनेक संदृष्टियोंके साथ शांतिवीरनगरसे प्रकाशित हुआ है। जीवकाण्ड व कर्मकाण्डके नवीनसंस्करण सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्रजी द्वारा सम्पादित तथा अनूदित होकर केशववर्णी-कृत टीकाके साथ भारतीयज्ञानपीठसे प्रकाशित हुए हैं। लब्धिसार-क्षपणासार रायचन्द्रग्रन्थमालासे तथा जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे प्रकाशित हो चुका है।

कर्मकाण्ड का प्रस्तुत संस्करण करणानुयोग के विशिष्ट ज्ञाता **श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार सहारनपुर** के सम्पादकत्वमें अनेक संदृष्टियोंके साथ प्रकाशित हो रहा है। सम्पादकने इस टीका में धवला, जय-धवला तथा महाबन्ध आदिसे विषयोंका मिलानकर विषयको स्पष्ट किया है। ग्रन्थकी टीका आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराज संघस्थ १०५ **आर्यिका श्री आदिमती माताजी** ने लिखी है।

कर्मकाण्डमें प्रतिपादित विषयोंसे यह सुनिश्चित कहा जा सकता है कि कर्मसाहित्य का संक्षेपसे साङ्गोपाङ्ग वर्णन करनेवाला यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जबतक कर्मप्रकृतियोंके आस्रव-बन्ध तथा उनके कारणोंका परिज्ञान नहीं होता तब तक उनकी निवृत्ति का उपाय नहीं किया जा सकता है।

कर्मकाण्ड पाठ्यग्रन्थ है। पहले यह शास्त्री कक्षामें सम्पूर्ण था, किन्तु अब विषयोंकी बहुलता और पं. टोडरमलजी द्वारा विरचित टीकाकी अनुपलब्धिके कारण पठन-पाठनमें दुरूहताका अनुभव होने लगा इसलिए मात्र बन्धोदयसत्त्वाधिकार अर्थात् ३५७ गाथा तक रखा गया है। पठन-पाठन छूट जानेसे शेष भागसे प्रायः विद्वद्वर्ग और आधुनिक छात्र अपरिचित रह जाते हैं।

श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार पूर्वभवके संस्कारी जीव हैं। किसी पाठशाला या विद्यालयमें क्रमिक अध्ययन न होनेपर भी इन्होंने मात्र स्वाध्यायके द्वारा सिद्धान्तग्रन्थोंमें अच्छा प्रवेश प्राप्त किया है। धवल, जयधवल तथा महाबन्ध ग्रन्थोंके संपादन और प्रकाशनमें सम्पादक विद्वानोंने आपकी सम्मतियों एवं सुझावोंको आदरपूर्वक स्वीकार किया है। आपने कर्मकाण्डके इस संस्करणका धवलादिग्रन्थोंके आलोड़नके पश्चात् सम्पादन किया है। प्रस्तुत संस्करणमें प्रत्येक विषयको संदृष्टियोंके द्वारा स्पष्ट किया है अतः स्वाध्याय-प्रेमियों तथा छात्रोंके लिये यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराज आपकी अध्ययनशीलता, प्रतिभा और ग्रन्थसंपादन-शक्तिसे सुपरिचित हैं इसीलिए १०५ आर्यिका आदिमतीजी द्वारा लिखित टीका का सम्पादन आपसे करवाकर कर्मकाण्डके इस सुपरिष्कृत संस्करणके प्रकाशनकी योजना की है। आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराज भी यथानाम तथा गुण हैं। करणानुयोगमें आपका अच्छा प्रवेश है। प्रत्येक विषय को आपने भलीभाँति जमाकर रखा है। कर्मकाण्ड के प्रस्तुत संस्करण का प्रकाशन आपकी ही प्रेरणा का सुफल है। ज्ञात हुआ है कि मुख्तार साहब श्री रतनचन्द्रजी जीवकाण्ड का भी ऐसा संस्करण, टीका व सम्पादन सहित स्वयं तैयार कर रहे हैं। वृद्धावस्थामें उनकी इस श्रुताराधनाको देखकर हृदयमें बड़ी प्रसन्नता होती है। लब्धिसार-क्षपणासारका संशोधित-परिष्कृत नवीन टीका सहित सम्पादन स्वयं मुख्तार साहब करचुके हैं जो इसी आचार्य शिवसागर दि. जैन ग्रन्थमाला, शांतिवीरनगर से शीघ्र प्रकाश्य है। आशा है विद्वान् सम्पादककी इन रचनाओं को विद्वज्जगत्में पूर्ण सम्मान प्राप्त होगा।

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजका मुझपर अनुग्रह है कि वे शांतिवीरनगरसे प्रकाशित होनेवाले साहित्यपर कुछ पंक्तियाँ लिखनेका मुझे अवसर देते हैं, इस अनुग्रहके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

सागर
२-६-१९८०

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य

❑ ❑ ❑

❋ पुरोवाक् ❋

प्रथम संस्करण :

बारह-अंगगिज्झा वियलिय-मल-मूढ दंसणुत्तिलया।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं॥

अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान-महावीरकी दिव्यध्वनिसे निस्सृत, गौतमगणधर द्वारा द्वादशांग-रूपसे ग्रथित तथा परम्परागत, अर्वाचीन व आरातीय आचार्योंके द्वारा लिपिबद्ध जिनवाणीको प्रथम-करण-चरण व द्रव्यानुयोगरूप अनुयोगचतुष्टयमें विभाजित किया गया है। अनुयोगचतुष्टय में करणानुयोगसम्बन्धी कषायपाहुड़, षट्खंडागम, महाबंधादि विशिष्टग्रन्थोंका वीरप्रभुकी वाणीसे साक्षात् संबंध रहा है। भगवान् महावीरकी वाणीसे साक्षात् सम्बद्ध भगवद् गुणधराचार्य एवं पूज्यपाद भूतबली-पुष्पदंताचार्य प्रणीत इन ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन करते हुए सिद्धान्तचक्रवर्तित्वको प्राप्त श्री नेमिचन्द्राचार्यने सारूपमे गोम्मटसारादि ग्रन्थोंका प्राकृतभाषामें गाथा छंदोबद्ध सृजन किया है। आचार्यदेवकी कर्मसिद्धान्त व कर्मक्षपणसम्बन्धी अनुपम रचनाएँ संस्कृत टीकाओं एवं पं. प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषासहित लगभग ६० वर्ष पूर्व कलकत्तासे प्रकाशित हुई थीं। इसीके आधारसे प्रायः समाजके अध्येताजन स्वाध्याय-मनन व चिंतन करते रहे हैं, किन्तु इन ग्रन्थोंके शुद्ध आधुनिक हिन्दी टीकासमन्वित संस्करणोंके प्रकाशनकी आवश्यकता बराबर बनी हुई थी। इस दिशामें रायचन्द्रग्रन्थमालासे गोम्मटसारकर्मकाण्ड-जीवकाण्डादि ग्रंथोंका शुद्ध हिन्दी अनुवाद २-३ संस्करणोंमें प्रकाशित हुआ है, परन्तु वह उद्देश्यकी सम्पूर्ति आंशिकरूपमें ही करता है, क्योंकि उन संस्करणोंमें नेमिचन्द्राचार्य के उक्तग्रन्थोंकी संस्कृतटीका अक्षरशः अनूदित टीका न होकर साररूप कथन पाया जाता है। उसी संक्षिप्त हिन्दीटीकाके आधारपर विद्वद्जगत् में पठन-पाठन चलता रहा। विशेष जिज्ञासुओंको मात्र उक्तग्रन्थोंकी पं. टोडरमलजीकृत टीका ही उपलब्ध थी। पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजीका लक्ष्य इस ओर गया, उन्होंने समाजकी चिरअभिलषित आवश्यकताकी सम्पूर्ति हेतु अपनी मनोभावना निकटस्थ लोगोंमें व्यक्त की, किन्तु वह भावना मात्र व्यक्त होकर ही रह गई।

सन् १९७३ में परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजके शिष्य मुनियुगल (पूज्य १०८ श्री सम्भवसागरजी व वर्धमानसागरजी महाराज) ५ आर्यिकाओं (ज्ञानमतीजी, मैं, श्रेष्ठमतीजी, रत्नमतीजी व यशोमतीजी) का तथा क्षुल्लिका संयममतीजीका चातुर्मास नजफगढ़ (दिल्ली) में हुआ था। चातुर्मासप्रवासमें पुनः एकदिन माताजीने अपने उपर्युक्त विचारोंको इसप्रकार रखा कि "आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा विरचित गोम्मटसार-त्रिलोकसारादि ग्रन्थोंका आधुनिक हिन्दीमें अनुवाद होकर उनका प्रकाशन हो जावे तो नवीनपीढ़ीको इन ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें सहायता मिलेगी और उनकी करणानुयोगी ग्रन्थोंके प्रति रुचि भी जागृत होगी। गणितप्रधान इन ग्रन्थोंके स्वाध्यायका जो अभावसा होता जा रहा है उसमें प्रवृत्ति बढ़ेगी।" इन्हीं दिनों संघमें जैनभूगोलसम्बन्धी तिलोयपण्णत्ति-त्रिलोकसारादि ग्रन्थोंका स्वाध्याय भी चल रहा था अतः सर्वप्रथम त्रिलोकसारकी पं. प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषाका शुद्ध हिन्दी अनुवाद करनेका विचार हुआ, किन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवाचार्यकी संस्कृतटीकाके आधारसे आर्यिका विशुद्धमतीजीके

द्वारा हिन्दीटीका होकर परम पूज्य आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजके आशीर्वादसे उसका प्रकाशन आचार्य श्री शिवसागर दि. जैन ग्रन्थमाला, श्री शांतिवीरनगरसे हो चुका है तब त्रिलोकसारग्रन्थका कार्य करनेके विचारोंको स्थगित किया गया।

इस घटनाके कुछ दिन पश्चात् माताजीकी प्रेरणा मिली कि "आदिमतीजी ! त्रिलोकसारका कार्य तो हो चुका। अब तुम्हें गोम्मटसारकर्मकाण्डका कार्य प्रारम्भ करना है।" इस प्रेरणात्मक आदेशके साथ ही मार्गदर्शन भी मिला कि संस्कृतटीका एवं मूलमें दी गई संदृष्टियोंसहित आवश्यकता पड़नेपर पं. टोडरमलजी कृत टीका का आधार लेते हुए गोम्मटसारकर्मकाण्डकी ही मराठी टीकासे संदृष्टियोंको यथास्थान समायोजित करके शुद्ध हिन्दीमें नवीन अनुवाद करना है।

इस महत्कार्यको करनेमें माताजी स्वयं सक्षम थीं, क्योंकि वे न्याय, व्याकरण, साहित्य, अध्यात्म एवं सिद्धान्तविषयोंकी मर्मज्ञा हैं। उन्होंने कष्टसहस्री कहे जानेवाले अष्टसहस्री जैसे न्यायग्रन्थ, कातन्त्र व जैनेन्द्रप्रक्रिया सदृश व्याकरणग्रन्थ, अध्यात्मसम्बन्धी नियमसार तथा करणानुयोगी आस्रवत्रिभंगी व भावत्रिभंगी आदि ग्रन्थोंका अनुवाद किया है और न्यायकुमुदचन्द्रादि अनेकग्रन्थोंका अनुवाद कार्य प्रारम्भ है। स्वतंत्ररूपसे भी न्यायसार, त्रिलोकभास्करादि विविध विषयोंके प्रतिपादक विभिन्न ग्रन्थों का सृजन भी किया है। स्तुति रचना भी आपका प्रियविषय रहा है अत: समाधिशतक, इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रहादि ग्रन्थोंका पद्यानुवाद एवं स्वतन्त्ररूपेण आपके अनेक स्तवन भी प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी वक्तृत्वकला का भी समाजमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। चुम्बकीयआकर्षणयुक्त आपकी मृदुवाणी कल्याणेच्छु भव्यप्राणीको सहज ही प्रेरित करती है। फलस्वरूप अनेक भव्यप्राणियों ने आपसे प्रेरणा प्राप्तकर आचार्य श्री शिवसागरजी एवं आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजसे मुनि-आर्यिकादि दीक्षाएँ ग्रहणकर आत्मसाधनाका मार्ग प्रशस्त किया है। माताजीने अपने निकटस्थ लोगोंको जैनदर्शनका सर्वांगीण अध्ययन स्वयं कराया है। फलस्वरूप आर्यिका जिनमतीजी भी विदुषी आर्यिका हैं, उन्होंने भी आपकी ही प्रेरणा प्राप्तकर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' का अनुवाद किया है। इन्हीं आर्यिकाद्वय (ज्ञानमतीजी एवं जिनमतीजी) के सान्निध्य में मुझे जैनदर्शनके विभिन्न विषयोंका अध्ययन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है।

वास्तवमें परमविदुषी ज्ञानमती माताजीके मुझपर अनन्त उपकार हैं, क्योंकि अल्पावस्थामें ही वैधव्य जीवन प्राप्त हो जानेपर आत्मसाधनाके मार्गपर अग्रसर होनेके लिए हस्तावलंबन स्वरूप जिन मातृवत्सला, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, हितमित मृदु उपदेष्ट्री आर्यिकाकी खोज थी, उसकी सम्पूर्ति माताजी के मिलनेपर हो गई। माताजी के सर्वप्रथम दर्शन करके ऐसा लगा कि चिरकालसे वियुक्त जननी ही मिल गई हो। आप बालब्रह्मचारिणी हैं। आपकी ही असीम प्रेरणा से प्रेरित होकर सन् १९६१ में सीकर (राज.) में परम पूज्य प्रात:स्मरणीय चारित्रशिरोमणि वात्सल्यहृदय गुरुवर्य आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे स्त्रियोचित उत्कृष्टसंयमरूप आर्यिका दीक्षा ग्रहण करनेका मुझे सुमंगलावसर प्राप्त हुआ।

जैसा मैंने पहले लिखा है कि इस महत्कार्य को सम्पन्न करनेमें माताजी स्वयं सक्षम थीं तथापि उनके जीवनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने निकटस्थ रहनेवाले लोगोंकी भी सर्वांगीण उन्नति की कामना की है। यही कारण था कि ज्ञानाराधनामें कभी भी उन्होंने किसी को पीछे नहीं रखा। इसी उदारताके

परिणामस्वरूप माताजीने मुझे प्रेरणा दी। मुझे भी उनकी इस महदनुकम्पा एवं आदेशात्मक आशीर्वादको पाकर प्रसन्नता हुई तथा स्वयं माताजीसे इस महत्तमकार्यका मंगलाचरण-पूर्वक शुभारम्भ करवाकर अनुवाद लिखना प्रारंभ किया। उनके निर्देशनमें ही यह कार्य लगभग आधा हो चुका था, तत्पश्चात् कारण पाकर सन् १९७५ में माताजीका सान्निध्य छूट गया और अनेक कारणों से अनुवादकार्य भी बन्द हो गया। सन् १९७६ में जब परम पूज्य आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज एवं आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराजका ससंघ चातुर्मास बड़ौत (उ.प्र.) में था तब एक दिन आर्यिका श्रुतमतीजी (जो ज्ञानमती माताजीसे प्रेरणा पाकर सन् १९७४ में आचार्य श्री धर्मसागरजीसे आर्यिका दीक्षा ग्रहणकर चुकी थीं) ने विशेष आग्रह पूर्वक कहा कि "माताजी ! अम्मा (ज्ञानमतीजी) ने मजफगढ़में आपको जो जिनवाणी-सेवा का कार्य सौंपा था वह अधूरा ही रहेगा क्या ?" श्रुतमतीजी के इस वाक्यको सुनकर अन्तःकरणमें प्रेरणा मिली और कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ। सन् १९७७ के मदनगंज-किशनगढ़ चातुर्मासमें इस महत्कार्यकी सम्पूर्ति हुई, क्योंकि जिस कार्यकी प्रेरणा परमोपकारिणी माताजीसे मिली हो और फिर जिसका मंगलाचरण स्वयं उन्होंने किया हो, वह कार्य अधूरा कैसे रह सकता था!

मदनगंज-किशनगढ़के चातुर्मासके पश्चात् परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का ससंघ विहार अजमेरकी ओर हुआ, आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज भी साथ ही थे। अजमेर पहुँचनेपर मैंने व श्रुतमतीजीने अभीक्ष्णस्वाध्यायनिरत, वात्सल्यमूर्ति, करणानुयोगमर्मज्ञ, श्रुतनिधि परम पूज्य आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराज से गोम्मटसारकर्मकाण्ड की लिखी गई नवीन टीका का अवलोकन करने हेतु विनम्र प्रार्थना की। पूज्य महाराजश्री ने प्रार्थना को स्वीकार किया और महती कृपा करके टीकाको देखना प्रारम्भ किया। टीका की वाचना के लिए जब मैंने पूज्य मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराजसे निवेदन किया तो वे भी सहर्ष इस कार्य में संलग्न हो गये। इसप्रकार आचार्यकल्पश्री के समक्ष जब लगभग १५० गाथाओंका वाचन हो चुका तो पूज्य महाराजश्रीने हार्दिक भावना व्यक्त की कि इस टीकाको पं. रतनचन्दजी मुख्तार सा. देखेंगे तो और भी सुन्दर होगा, क्योंकि वर्तमानमें वे करणानुयोगके विशिष्ट विद्वान् हैं। इसी भावनाभिव्यक्ति के साथ महाराजश्री ने यथाशीघ्र पंडितजी के पास पत्र द्वारा समाचार दिलवाया, उनकी सहर्ष स्वीकृति आ जानेपर उनके पास वे १५० गाथाएँ भेज दी गईं तथा आगेका कार्य महाराजश्रीके सान्निध्यमें यथावत् चलता रहा। लगभग ३०० गाथा पर्यंत कार्य हुआ होगा कि आचार्यकल्पश्री का एवं अजितसागरादि ६ मुनिराज का ससंघ चातुर्मास आनन्दपुरकालू (राज.) में होना निश्चित हुआ। सन् १९७८ के इस चातुर्मासमें मुख्तार सा. स्वयं आचार्यकल्पश्री के सान्निध्यमें आये और यहाँ टीका का आद्यंत वाचन परम पूज्य महाराजश्री के सान्निध्यमें मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराजके सहयोगसे चला। पंडितजीने यथास्थान संशोधन-परिवर्धनके लिये अपने अनुपम सुझाव देकर धवल, जयधवलादि महान् ग्रन्थोंका आधार लेकर टीका को परिष्कृत किया है। साथ ही इस नवीन टीका का 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' यह नाम भी सुझाया अतः आपके सुझावानुसार टीकाका उक्त नाम ही रखा गया है।

टीका का आद्यंत वाचन हो जानेपर परिष्कृत एवं संशोधित टीका की प्रेसकॉपी बनानेका भार स्वरुच्या मुनिश्री वर्धमानसागरजी ने अपने ऊपर लिया तथा लगभग ७-८ माहके अहर्निश कठोर परिश्रमसे

प्रेसकॉपी तैयार की एवं मुद्रणकार्यमें भी यथासमय अपने विचार व्यक्त करते हुए ग्रन्थको साङ्गोपाङ्ग आद्यंत सुन्दर बनानेमें पूर्ण सहयोग किया। मैं पूज्य मुनिश्री की इस कार्य करनेकी लगनको देखते हुए मंगलकामना करती हूँ कि आप अहर्निश जिनवाणी माताकी सेवा में संलग्न रहें। दीक्षोपरांत आपने अनेक शारीरिक कष्ट सहे हैं तथा प्रस्तुत ग्रन्थप्रकाशनके समय भी शारीरिक कष्टोंकी चिंता न करते हुए आपने कठोर परिश्रम किया है। मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

इस महान् कार्य के पूर्ण होने में परम पूज्य आचार्यकल्पश्री श्रुतसागरजी महाराज तथा मूल-प्रेरणास्रोत पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमतीमाताजीकी महदनुकम्पा एवं मंगलआशीर्वाद ही मुख्यकारण रहे हैं, क्योंकि इस महान् कार्यको पूर्ण करनेमें मैं सक्षम नहीं थी। यदि उक्त उभय त्यागीजनका आशीर्वाद मेरा सम्बल नहीं होता तो मुझसे इस कार्यकी सम्पूर्ति होना अत्यन्त कठिन था। इस महायज्ञमें मुख्तार सा. श्री रतनचन्दजीके कठिन परिश्रमको भी नहीं भूला जा सकता है। ७६ वर्षीय इस वृद्धावस्थामें उनकी कार्य करनेकी अपूर्वनिष्ठा एवं लगन अनुकरणीय है। परम पूज्य उभय महाराजश्री एवं माताजीके प्रति अपनी कृतज्ञताभिव्यक्ति पुरस्सर उनके चरणोंमें अपनी विनय प्रकट करती हुई उनके चिरकाल तक इसी शुभाशीर्वादके बने रहने की सदैव कामना करती हूँ। साथ ही, मुख्तार सा. के प्रति भी वीरप्रभुसे मंगलकामना करती हूँ कि वे चिरायु हों तथा इसीप्रकार जिनवाणीकी सेवा करते रहें। ग्रन्थ-प्रकाशनसम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था आचार्यकल्पश्री के संघस्थ ब्र. लाड़मलजीने की है, जिनवाणीके प्रचार-प्रसारमें इस वृद्धावस्थामें आपमें जो लगन है, वह युवा जैसी लगती है। उनके प्रति भी मेरा शुभाशीर्वाद है कि वे दीर्घायु होकर सतत जिनवाणी सेवा एवं उसके प्रचार-प्रसारमें निरत रहें। विशेषु किमधिकम्।

प्रस्तुत नवीन संस्करण :

गोम्मटसार कर्मकाण्ड के इस नवीन संस्करण के संशोधन का कार्य **पण्डित जवाहरलाल जी सिद्धान्तशास्त्री** ने रुग्ण होनेपर भी करना प्रारंभ किया था किन्तु बहुत कुछ प्रयास करने पर भी वे इस ग्रन्थ के ८३ पृष्ठों का ही संशोधन कर सके। उन्होंने यथास्थान कुछ टिप्पण भी दिये। परन्तु अपने गिरते स्वास्थ्य के कारण वे पूरे ग्रन्थ का संशोधन नहीं कर सके। वे स्वस्थ रहें, उनके द्वारा जिनवाणी का उद्धार एवं प्रचार-प्रसार हो; पंडित जी दीर्घायु हों, यही मेरी भावना है।

इस संस्करण के सम्पादक **डॉ. चेतनप्रकाश जी पाटनी** हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थों का संशोधन एवं सम्पादन किया है। आपको जिनवाणी के प्रकाशन की विशेष अभिरुचि है। आपके माध्यम से अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं। मेरी यही भावना एवं आशीर्वाद है कि ये स्वस्थ रह कर सतत जिनवाणी माता की सेवा करके सम्यग्ज्ञान की गरिमा को बढ़ाते रहें।

इस विशालकाय ग्रन्थ के निर्दोष और सुन्दर प्रस्तुतीकरण के लिए **निधि कम्प्यूटर्स** के **श्री क्षेमंकर पाटनी** भी मेरे आशीर्वाद के पात्र हैं।

- आर्यिका आदिमती

❑ ❑ ❑

❋ सम्पादकीय ❋

प्रथम संस्करण :

घटना आजसे लगभग ४५ वर्ष पूर्वकी है जब सन् १९३५ तदनुसार विक्रमसम्वत् १९९१ में विद्वद्जगत्के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व. श्री माणिक्यचन्दजी कौन्देय 'न्यायाचार्य' दसलक्षणपर्वके पावन अवसरपर सहारनपुरमें शास्त्रप्रवचनके लिये आमंत्रित करनेपर पधारे थे। प्रवचन करते हुए उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रकी व्याख्या करते हुए उपशमसम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया, किन्तु ज्ञानका अल्पक्षयोपशम होनेके कारण उनके द्वारा आगमानुसार प्रतिपादित उपशमसम्यग्दर्शनका स्वरूप मैं नहीं समझ सका परन्तु इतना अवश्य समझ गया था कि सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिसे ही मेरा आत्महित हो सकता है। शास्त्र-प्रवचन समाप्त होनेके पश्चात् अपनी जिज्ञासाको शांत करनेके लिये मैंने पंडितजीसे पूछा कि प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकी प्राप्तिका उपाय और उसका स्वरूप किस ग्रन्थमें है। पंडितजीने मेरे प्रश्नका साहजिक उत्तर देते हुए कहा कि 'लब्धिसार-क्षपणासार' ग्रन्थमें इसकी विस्तृत प्ररूपणा आचार्य श्रीनेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती ने की है। बस ! क्या था "मानों अंधेको दो आँखें ही मिल गई हों" के अनुसार मैंने अनुभव किया कि जैसे किसी निधिकी ही उपलब्धि हो गई हो। मैंने निर्णय किया कि उक्त ग्रन्थराजका स्वाध्याय करूंगा।

उन दिनों सहारनपुर नगरके जैनमन्दिरोंमें मुद्रितशास्त्रोंके स्वाध्यायपर प्रतिबन्ध था मात्र हस्तलिखित शास्त्रोंको पढ़नेकी आज्ञा थी और वह शुद्धवस्त्र पहनकर ही पढ़े जा सकते थे। यही कारण था कि सहारनपुर जैसे धर्मप्राण नगरमें मुद्रितग्रन्थ उपलब्ध ही नहीं थे। अपने निर्णयके अनुसार मैंने स्व. लाला जम्बूप्रसादजी रईसके निजी शास्त्रभण्डारसे हस्तलिखित 'लब्धिसार-क्षपणासार' की प्रति प्राप्तकर स्व. लाला भगवानदासजी द्वारा निर्मापित जिनमन्दिरमें बैठकर प्रात:कालीन शुभ बेलामें स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी, संस्कृत व प्राकृतभाषासे अनभिज्ञ तथा कर्मप्रकृतियोंके नाम तक भी न जाननेवाले मात्र उर्दू व अंग्रेजी भाषासे भिज्ञ मेरे द्वारा 'लब्धिसार-क्षपणासार' जैसे महान् ग्रन्थका स्वाध्याय करनेका साहस करना ऐसे लगा जैसे कोई पांवसे लंगड़ा व्यक्ति किसी दुरूह एवं ऊँचे पहाड़पर चढ़ना चाह रहा हो। अपने आपको इसके लिये अयोग्य जानते हुए भी अन्त:करणकी प्रबलतम प्रेरणा मिलते रहनेसे निराशाने कभी भी मुझपर अपना साम्राज्य नहीं किया। आशाका दीप सतत मनको दृढ़से दृढ़तम होनेमें प्रकाश प्रदान करता रहा, फलस्वरूप स्वाध्याय प्रारम्भ रहा, क्योंकि आत्महितकी भावना प्रबल थी।

प्रथम दिन मैंने पं. प्रवर टोडरमलजी द्वारा लिखित उक्त ग्रन्थसम्बन्धी पीठिकाके प्रथम पृष्ठ को पढ़ा किन्तु एक घण्टेके परिश्रमके बाद भी कुछ समझमें नहीं आया अत: उस दिन स्वाध्याय बन्द कर दिया, क्योंकि वकालतसम्बन्धी कार्य करनेका समय हो गया था। प्रथम दिनके समान ही दूसरे दिन भी पीठिकाके उसी पृष्ठका स्वाध्याय किया किन्तु पूर्वकी अपेक्षा कोई प्रगति नहीं हुई अर्थात् दूसरे दिन भी कुछ समझमें नहीं आया, किन्तु निरन्तर प्रयास करते रहनेसे धीरे-धीरे पीठिकासम्बन्धी विषय स्पष्ट होने लगा और "करत-करत अभ्यासके जड़मतिहोत सुजान" उक्ति जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभवमें आने लगी।

लब्धिसार-क्षपणासार ग्रन्थमें गणितका भी बहुत कुछ विषय है और विद्यार्थी जीवनमें गणित मेरा मुख्य एवं प्रिय विषय रहा है अत: धीरे-धीरे जैन-दर्शनसम्बन्धी करणानुयोगके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया। फलस्वरूप जीवनमें करणानुयोगसम्बन्धी वर्तमानमें उपलब्ध प्राय: सभी प्रमुखग्रन्थोंके स्वाध्यायका अवसर प्राप्त हुआ है। इसीप्रकार एकबार श्रीमान् पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री धवल ग्रन्थराजका सहारनपुर शास्त्रभण्डारकी हस्तलिखित प्रतिसे मिलान करनेके लिये यहाँ पधारे थे और उसी बीच वे दिनमें एक घण्टेके लिये सिद्धांतग्रन्थ श्री धवलका अर्थ भी करते थे। चूंकि अब स्वाध्याय के प्रति विशेषरुचि हो ही गई थी अत: उनका प्रवचन सुननेके लिए दो मील दूर कचहरीसे एक घण्टेके लिये मन्दिरजीमें आ जाता था। पंडितजी उन दिनों धवलग्रन्थका सम्पादनकार्य भी कर रहे थे इसीलिये वे सहारनपुर आये थे। जब धवलग्रन्थकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो गईं तब उक्त सिद्धान्तशास्त्रीजीको दसलक्षणपर्वमें प्रवचनार्थ सहारनपुर समाजने आमन्त्रित किया, वे पधारे तथा उन्हींकी प्रेरणा पाकर उक्त दोनों पुस्तकें अपने निजी शास्त्रभण्डारके लिये मैंने मंगा लीं, किन्तु इसदृष्टिसे कि ये ग्रन्थराज अपनी समझमें नहीं आवेंगे वे शास्त्रभण्डारकी अलमारीमें ही विराजमान रहे।

एक दिन मैंने व मेरे लघुभ्राता नेमिचन्दजी वकीलने विचार किया कि इन ग्रन्थोंको पढ़कर देखना तो चाहिये कि इनमें क्या विषय प्रतिपादित किया गया है ? और इसी जिज्ञासु वृत्तिके परिणामस्वरूप भ्रातृद्वयने धवल प्रथम व द्वितीयपुस्तकका स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया, किन्तु क्षयोपशमकी मंदतासे बहुत कम समझमें आया। इसपर भी दोनों भाई हतोत्साह नहीं हुए तथा धवलग्रन्थके आगामी प्रकाशितभाग भी मंगाते रहे और स्वाध्याय किया परन्तु स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो स्थल समझमें नहीं आते थे उनमेंसे कुछ विषय शंकारूपसे श्री पं. फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री व श्री पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीके पास भेजते रहे। उक्त विद्वद्द्वय उनका समाधान भेजनेकी कृपा भी करते थे। जिससमय धवलग्रन्थकी पाँचवीं पुस्तक प्रकाशित हुई और मंगाकर स्वाध्याय किया तो मानों ऐसा लगा जैसे ज्ञानकपाट खुल ही गये हों। इस पुस्तकके स्वाध्यायसे मात्र इसके ही विषयका हार्द समझ में आया हो ऐसी बात नहीं है, अपितु उससे पूर्वपुस्तकोंका भी प्रतिपाद्यविषय स्पष्ट हो गया। इसप्रकार भ्रातृयुगलको निरन्तर परिश्रमपूर्ण वृत्तिके फलस्वरूप विषय तो स्पष्ट होने ही लगा किन्तु साथ ही लिपिकारोंके प्रमादवश होनेवाली तथा विषयकी दुरूहताके कारण विषयस्पष्ट न होनेसे मुद्रित अनुवादमें जो अशुद्धियाँ रहने लगीं वे भी समझमें आने लगीं।

उपर्युक्त तथ्य आत्मप्रशंसाके लिए नहीं लिखा गया है, इसके लिखनेमें यही अभिप्राय रहा है कि जिनवाणीका स्वाध्याय करते समय विषय स्पष्ट न होने पर निराश न होकर निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। कहा भी है - "TRY AND TRY AGAIN UNTIL YOU SUCCEED." जबतक तुम सफल नहीं होते तबतक बार-बार प्रयत्न करना चाहिए। इस सम्बन्धमें एक कथा भी प्रचलित है कि-

एकबार एकराजा युद्धमें पराजित होकर युद्धभूमिसे भागकर एक मकानमें छिपकर बैठ गया। जिस कमरेमें वह बैठा था वहाँ उसने देखा कि एक मकड़ी धागेके सहारे कमरेकी छत तक पहुँचना चाहती है, किन्तु कुछ दूर चढ़नेके बाद वह पुन: पृथ्वीपर गिर जाती है। एकबार-दोबार-तीनबार ही नहीं, किन्तु कुल ९९ बार वह अपने उद्देश्यमें असफल रही फिर भी प्रयत्न जारी रहा और अन्तिम प्रयासमें वह सफल होकर छततक

पहुँच गई। यह देख राजाने अपने मनमें सोचाकि ''एक छोटेसे जन्तुने ९९ बार असफल होनेपर भी प्रयत्न नहीं छोड़ा (While I am hiding here, like a frightend deer, doing nothing for my poor people) और मैं एक डरपोक हरिणके समान यहाँ छिपा बैठा हूँ, प्रजाके लिए कुछ नहीं कर रहा हूं''। वह उठा और उसने अपनी सेनाको पुन: संगठित करके युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। कहनेका तात्पर्य यह है कि ज्ञानके क्षयोपशमकी कमीके कारण मनुष्यको महान् ग्रंथोंके स्वाध्यायसे विमुख नहीं होना चाहिए, अपितु प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि **स्वाध्यायसे ज्ञानावरणकर्मकी अनुभागशक्ति क्षीण होती है, जिससे ज्ञानका क्षयोपशम वृद्धिंगत होता है।**

यही दृष्टि प. पू. आ. क. श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराजकी भी रही है। यद्यपि आपका जन्म श्वेताम्बरधर्मानुयायी ओसवाल कुलमें हुआ है तथापि आपकी प्रवृत्ति दिगम्बरधर्मकी ओर ही रही है। फलस्वरूप आपने गृहस्थाश्रममें ही रहकर ज्ञानाराधना की तथा साथ ही आत्मसाधनाका कठोर अभ्यास भी किया। ४९ वर्षकी यौवनावस्थामें प. पू. प्रात: स्मरणीय चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराजके सर्वप्रथम मुनिशिष्य एवं पट्टाचार्य प. पू. चारित्रचूड़ामणि १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे टोडारायसिंह (राजस्थान) में क्षुल्लक दीक्षा धारण की एवं ३ वर्ष पश्चात् उन्हीं आचार्य श्री से जयपुर खानियामें मुनिदीक्षा धारण की। आप अपने नामके अनुरूप ही सतत श्रुताराधनामें संलग्न हैं। यह जानकर मैं सन् १९५९ में भाद्रपद मासमें श्रीमान् सेठ बद्रीप्रसादजी सरावगी पटनावालोंके साथ प. पू. आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजके ससंघ दर्शनार्थ अजमेर गया। वहाँ पू. श्री श्रुतसागरजी महाराजके चरणसान्निध्यमें बैठकर आपकी ज्ञानाराधनाकी लगनको देखकर अतीव हर्ष हुआ। उन दिनों आप धवलग्रन्थ का स्वाध्याय कर रहे थे। यद्यपि आप स्कूलीयगणित विशेष नहीं जानते तथापि महाजनी गणितके आधारसे ही आपने त्रिलोकसार ग्रन्थान्तर्गत दुरूह गणितको भी सरलतासे हल कर दिया है।

सन् १९६३ से तो मैं सतत आपके सान्निध्यमें पहुँचता रहा हूँ। सन् १९६९ में जब मैं प्रतापगढ़ (राज.) के चातुर्मासमें आचार्यसंघके दर्शनार्थ गया तब मैंने आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजके संघस्थ आर्यिका १०५ ज्ञानमतीजी एवं इन्हींकी प्रेरणा से आचार्य श्री शिवसागरजी से दीक्षित १०५ आर्यिका जिनमतीजी एवं आदिमतीजीके भी दर्शन किये। आर्यिकात्रयके दर्शन करके भी अतीव हर्ष हुआ, क्योंकि इनकी करणानुयोग में भी अतीवरुचि थी तथा उन दिनों त्रिलोकसार व लोकविभागका स्वाध्याय कर रही थीं, मैं भी उसमें प्रतिदिन भाग लेने लगा। सम्प्रति आर्यिकात्रय पृथक्-पृथक् विहार कर रही हैं। श्रीज्ञानमतीमाताजी तो अन्य दो आर्यिकाओं के साथ प्राय: हस्तिनापुरक्षेत्रके आसपास विहार कर रही हैं। श्री जिनमतीमाताजी आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराजके संघमें हैं तथा श्री आदिमतीजी आ. क. श्री श्रुतसागरजी महाराजके संघमें हैं। सन् १९७३ में नजफगढ़ (दिल्ली) चातुर्मास में ज्ञानमतीमाताजीसे प्रेरणा पाकर आदिमतीमाताजीने गोम्मटसारकर्मकाण्डकी टीका पं. प्रवर टोडरमलजी कृत ढुंढारीभाषा टीका एवं मराठी टीका से संदृष्टियोंको यथास्थान लगाकर लिखी है। उसका वाचन स्वयं आ. क. श्रीके सान्निध्यमें मुनि श्री वर्धमानसागरजी के सहयोगसे प्रारम्भ हुआ और लगभग ३०० गाथाओंका वाचन होजानेपर महाराजश्रीने वह टीका मुझे देते हुए

कहा कि इस टीकाका सम्पादनभार आपको लेना है तथा धवलादि सिद्धान्तग्रन्थोंके अनुसार इसका संशोधन-संवर्धन करना है। यद्यपि वृद्धावस्थामें मुझसे यह कार्य सम्पन्न होना कठिन लगता था तथापि पू. आ. क. श्रीके आशीर्वाद एवं पू. वर्धमानसागरजीके परम सहयोगसे ही इस दुरूहतम कार्यको सम्पूर्ण कर सका हूँ। इस महायज्ञके प्रमुख होता आ. क. श्री ही हैं तथा उनका मंगलमय आशीर्वाद ही मेरा सम्बल रहा।

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजीके संघमें श्री १०८ वर्धमानसागरजी हैं। आपने आचार्यश्री धर्मसागरजीसे मुनिदीक्षा ली थी। आप युवामुनि हैं एवं लौकिक शिक्षा भी ग्रहण की है अत: अंग्रेजी व गणितका भी ज्ञान है। आपकी लेखनी अतीव सुन्दर है। प्रस्तुत टीकाकी वाचनामें आप प्रमुख रहे हैं। आप ज्ञानपिपासु हैं एवं निरन्तर स्वाध्यायरत रहते हैं। वात्सल्य एवं सेवा भावना आपमें कूट-कूट कर भरी है। प्रेसकॉपी आपने ही कठोर परिश्रमसे तैयार की है एवं ग्रन्थमुद्रण में आद्यंत अपना अवर्णनीय सहयोग प्रदान किया है। मैं उभय मुनिराजका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि जिनके आशीर्वाद एवं सहयोगसे यह महान् कार्य पूर्ण हो सका है।

यद्यपि इस ग्रन्थका सम्पादन मैंने किया अवश्य है, किन्तु मूलमें इस ग्रन्थकी टीकाकर्त्री आर्यिका आदिमतीजी ही हैं। उनके परिश्रमके फलस्वरूप ही गोम्मटसारकर्मकाण्डकी नवीन टीका प्रकाशित हो सकी है अत: इसका पूर्ण श्रेय तो माताजीको ही है।

ग्रन्थ प्रकाशनकी समस्त व्यवस्था आ. क. श्रीके संघस्थ ब्र. लाडमलजी ने की है। आप वयोवृद्ध हैं, स्वास्थ्य भी प्राय: प्रतिकूल रहता है तथापि युवकों जैसा उत्साह रखते हैं। आप स्वयं विशेष ज्ञानी तो नहीं हैं फिर भी जिनवाणीके प्रसारके प्रति आपके मनमें लगन है इसीलिए पूर्वाचार्योंके द्वारा रचित ग्रन्थोंका शुद्ध हिन्दीमें अनुवाद अथवा टीका ग्रंथोंका प्रकाशन करानेमें आप विशेष रुचि रखते हैं। साधुओंकी वैयावृत्तिमें आप अहर्निश तत्पर रहते हैं, आप स्वयं बालब्रह्मचारी हैं। आपके सद्प्रयत्नसे ही इस विशाल ग्रन्थका इतने अल्पकालमें ही प्रकाशन सम्भव हो सका है।

बाकलीवाल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ़के मालिक श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल एवं उनके सुपुत्र श्री गुलाबचन्द एवं भूपेन्द्रकुमारका भी मैं आभारी हूँ कि जिन्होंने यथाशीघ्र इसग्रन्थका मुद्रण बड़ी कुशलता एवं तत्परता से किया है। यद्यपि प्रस्तुतग्रन्थमें संदृष्टियाँ बहुत अधिक होनेसे इसग्रन्थका मुद्रणकार्य कठिनसा प्रतीत होता था तथापि बड़े धैर्यसे आपने परिश्रमपूर्वक मुद्रण सम्पन्न किया अत: धन्यवादार्ह हैं। विशेषु किमधिकम्।

अक्षयतृतीया
वि. सं. २०३७

रतनचन्द जैन मुख्तार
सहारनपुर (उ.प्र.)

❖ ❖ ❖

❋ प्रस्तुत नवीन संस्करण ❋

गोम्मटसार कर्मकाण्ड का यह नवीन संस्करण करणानुयोग के स्वाध्यायियों एवं अध्येताओं के लिए प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है। दो दशक से भी अधिक समय का अन्तराल हो गया है प्रथम और इस संस्करण में।

इस दुरूह ग्रन्थ का प्रथम सम्पादन इस काल के करणानुयोग के विशिष्ट ज्ञाता, सिद्धान्त-ग्रन्थों के मर्मज्ञ श्रीयुत पं. रतनचन्दजी मुख्तार ने धवला, जयधवला और महाबन्ध आदि से मिलान कर अनेक संदृष्टियों सहित विशेष परिश्रमपूर्वक किया है। इस नवीन संस्करण में मेरा पुरुषार्थ प्रथम संस्करण की मुद्रण सम्बन्धी भूलों के सुधार, भाषा के परिष्कार तथा जहाँ कहीं ऐसा लगा कि विषय थोड़ा और स्पष्ट किया जा सकता है वहाँ अपेक्षानुरूप उसे विशद करने तक ही सीमित रहा है। आशा है, इससे सुधी अध्येताओं को कुछ सुविधा ही रहेगी।

मुख्तार सा. सिद्धान्त-ग्रन्थों के तलस्पर्शी ज्ञाता थे। मात्र स्वाध्याय के बल पर ही उन्होंने यह विशिष्ट क्षमता अर्जित की थी। वे मेधावी और अध्यवसायी दोनों थे। आर्यिका विशुद्धमतीजी द्वारा भाषाटीकाकृत त्रिलोकसार के सम्पादन-काल में मेरा उनका निकट सम्पर्क रहा था। उनका व्यक्तित्व-वचन-लेखनी सब कुछ प्रामाणिक रहा है। मैं उस पुनीत आत्मा के प्रति नतमस्तक हूँ।

ग्रन्थ की **टीकाकर्त्री पूज्य आर्यिका १०५ आदिमती माताजी** ने और पू. **आर्यिका श्रुतमती** एवं **सुबोधमती माताजी** ने मुझे इस ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन कार्य में संलग्न किया, एतदर्थ मैं आपका अतिशय अनुगृहीत हूँ।

पूज्य आदिमती माताजी सतत ज्ञानाराधना में संलग्न रहती हैं। स्वास्थ्य की प्रतिकूलता होते हुए भी अध्ययन और लेखन से उदासीन नहीं होती। अभी आपने 'भगवती आराधना' की हिन्दी टीका लिखी है वह भी शीघ्र प्रकाश्य है। ठीक ही है, जिनवाणी की सेवा में कष्ट सहना तो कर्मनिर्जरा का ही साधन है। आर्यिकात्रय के चरणों में सविनय वन्दामि।

प्रथम संस्करण के प्रकाशन के समय पाण्डुलिपि की वाचना के प्रमुख थे - **आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज**। वे वास्तव में यथानाम तथा गुण थे। उन गुरुदेव के मुझ पर अनन्त उपकार हैं।

आपने ही सर्वप्रथम मुझे जिनवाणी के स्वाध्याय-मननचिन्तन, सम्पादन और प्रकाशन में संलग्न किया। मेरे पूज्य पिताश्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी आपके चरणों का अवलम्ब पाकर ही **मुनि समतासागर** जी हुए। मैं भी सदैव आपके वात्सल्यमय शुभाशीर्वाद का सुपात्र रहा। उस पावन आत्मा के प्रति अपनी विनयांजलि समर्पित करता हूँ।

वाचना में सहयोगी रहे **मुनि वर्धमानसागरजी (अब आचार्य)** का भी मैं अनुगृहीत हूँ। आप सदैव मुझे इस नवीन संस्करण के शीघ्र प्रकाशन हेतु प्रेरित करते रहे हैं। मैं आपके चरणों में सविनय नमोस्तु निवेदित करता हूँ।

पूज्य मुनि श्री गुणसागरजी महाराज के प्रति भी सविनय नमोस्तु निवेदित करता हूँ जिनका वात्सल्य मुझे सदैव यथाशीघ्र कार्य सम्पन्न करने हेतु सम्प्रेरित करता रहा।

मेरे शुभैषी और अनन्य सहयोगी **पं. जवाहरलालजी सिद्धान्तशास्त्री** का भी मैं अतिशय अनुगृहीत हूँ जिनसे मुझे सदैव सत् परामर्श और योग्य मार्गदर्शन मिला। आप सच्चे अर्थों में पं. रतनचंदजी मुख्तार के उत्तराधिकारी हैं और आज करणानुयोग-ज्ञाताओं में अन्यतम हैं। मैं आपके शीघ्र स्वास्थ्यलाभ और दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

संदृष्टियों, तालिकाओं और गणितीय वक्तव्यों से परिपूर्ण इस जटिल ग्रंथ के सुन्दर, निर्दोष एवं सुसंयोजित प्रकाशन हेतु निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर के श्री क्षेमंकर पाटनी को धन्यवाद देता हूँ। स्वच्छ एवं मोहक मुद्रण के लिए हिन्दुस्तान प्रिंटिंग हाउस के कर्मचारी धन्यवाद के पात्र हैं।

'अविरल'
५४-५५, इन्द्रा विहार
सेक्शन ७ विस्तार योजना
न्यू पावर हाउस रोड, जोधपुर

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक
अक्षय तृतीया, वि. सं. २०६०
४ मई २००३

❖ ❖ ❖

❋ प्रस्तावना ❋

यह संसार अनादिनिधनरूपसे चला आरहा है। प्रत्येक ६ माह ८ समयमें ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं और ६०८ जीव ही नित्यनिगोदसे निकलकर व्यवहारराशिमें प्रवेश करते हैं जिससे व्यवहार राशिमें जीवोंकी संख्या बराबर उतनी ही बनी रहती है[1]। इसप्रकार मोक्षमें सिद्ध जीव भी अनादिकालसे हैं और संसारी जीव भी अनादिसे हैं। कभी भी ऐसा नहीं था कि संसारी जीव तो हों और मुक्तजीव न हों, क्योंकि सभीपदार्थ प्रतिपक्षसहित उपलब्ध होते हैं, **"सव्वपयत्था सपडिवक्खा"** ऐसा सिद्धान्तवाक्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है। यदि कभी भी मुक्तजीवका अभाव माना जावेगा तो मुक्तजीवोंके प्रतिपक्षभूत संसारीजीवोंके भी अभावका प्रसंग आ जावेगा। यदि कहा जावे कि भव्य जीव निरन्तर मोक्षको प्राप्त होते जा रहे हैं इसलिए उनकी संख्या कम होती जा रही है, इसप्रकार मोक्ष जाते-जाते सब जीव मोक्ष चले जावेंगे। सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सिद्धराशि और सम्पूर्ण अतीतकालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोदशरीर में होते हैं। कहा भी है-

एय णिगोदसरीरे जीवादव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीद-कालेण ॥ गो.जी.का. १९६ ॥

दूसरी बात यह है कि सर्वभव्यजीवोंके मुक्त हो जानेपर भव्यसिद्धिक जीवोंका अभाव होनेसे उनके प्रतिपक्षी अभव्यजीवोंके अभावका भी प्रसंग प्राप्त होगा तथा भव्य-अभव्य दोनोंप्रकारके जीवोंका अभाव होनेसे संसारीजीवोंका अभाव हो जाता है। संसारीजीवोंका अभाव होनेपर मुक्तजीवोंके अभावका प्रसंग आ जावेगा, क्योंकि सभी पदार्थ प्रतिपक्षसहित होते हैं[2]। संसारी व मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंका अभाव होनेसे जीवद्रव्यका अभाव हो जावेगा तथा जीवद्रव्यका अभाव होनेपर उसके प्रतिपक्षी अजीवद्रव्यके अभावका प्रसंग आजावेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जीव व अजीव अनादिअनन्त हैं, उनका कभी भी अभाव हो नहीं सकता। जीव अजीवादि द्रव्योंकी जितनी संख्या है उसमें न तो एक कम हो सकती और न एक बढ़ सकती है, क्योंकि ये छहों द्रव्य नित्य व अवस्थित हैं[3]। विज्ञान (Science) का भी सिद्धान्त है कि "Nothing is created, nothing is destroyed".

इसप्रकार अनादिकालसे मुक्तजीवोंके सिद्ध हो जानेपर मोक्षमार्ग भी अनादिकालसे चला आ रहा है। विदेहक्षेत्रमें तो मोक्षमार्ग कभी बन्द होता ही नहीं। जितने भी जीव मुक्त अर्थात् सिद्ध हुए हैं, वे सब संसारी थे, मोक्षमार्गपर चलकर कर्मबन्धनको काटकर मुक्त हुए हैं। मुक्त शब्द ही पूर्वबंधका द्योतक है[4]।

इस प्रकार मोक्षमार्ग प्रवाहरूपसे अनादि सिद्ध हो जानेपर अपौरुषेय सिद्ध हो जाता है। तीर्थंकरादि

---

१. ज. ध. पु. ३, पृ. २००। २. ध. पु. १४ पृ. २३५। ३. नित्यावस्थितान्यरूपाणि (त. सू. ५/४)
४. "मुक्तश्चेत् प्राक् भवेद्बन्धो नो बन्धो मोचनं कथम्। अबंधे मोक्षनं नैव मुक्तेरर्थो निरर्थकः ॥ बृ. द्र. सं. गाथा ५७ की टीका

इसके व्याख्याता हैं कर्त्ता नहीं[1]। इसीप्रकार अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चले आए सिद्धान्त वाचकपदोंको अनादि सिद्धान्तपद कहते हैं, जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि। अपौरुषेय होनेसे सिद्धान्त अनादि है[2]। आगम, सिद्धान्त और प्रवचन ये शब्द एकार्थवाची हैं[3]। अतः द्वादशांग श्रुत भी अनादि सिद्ध है। सभी तीर्थंकरोंका केवलज्ञान एकरूप है अतः उसका कार्य दिव्यध्वनि भी एकरूप है, क्योंकि कारणकी विशेषतासे ही कार्यमें विशेषता आती है, ऐसा श्री अमृतचन्द्राचार्यने कहा है[4]। वह दिव्यध्वनि संक्षिप्त शब्दरचनाओंसे रहित व अनन्त अर्थोंके ज्ञानमें हेतुभूत अनेक चिह्नोंसे संयुक्त बीजपद कहलाती है। १८ भाषा व सात सौ कु (लघु) भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदोंका प्ररूपक अर्थकर्ता है तथा बीजपदोंमें लीन अर्थके प्ररूपक द्वादश अंगोंके कर्ता गणधर भट्टारक हैं। अर्थात् बीजपदोंका व्याख्याता ग्रन्थकर्ता कहलाता है। राग-द्वेष-मोहसे युक्त जीव यथोक्त अर्थका प्ररूपक नहीं हो सकता, क्योंकि उसके सत्यवचनके नियमका अभाव है।

यद्यपि द्वादशांगश्रुत प्रवाहरूपसे अनादि और अपौरुषेय है तथापि वर्तमान पंचमकालमें जम्बू-द्वीपस्थ भरतक्षेत्रमें अन्तिमतीर्थंकर भगवान् महावीरका युग प्रवर्तन हो रहा है। इस अपेक्षासे भगवान् महावीर अर्थकर्ता और गौतम गणधर ग्रन्थकर्ता हैं।

इस द्वादशांगमें अन्तिम दृष्टिवाद अंग है और इसके पाँच भेद हैं-१. परिकर्म २. सूत्र ३. प्रथमानुयोग ४. पूर्वगत ५. चूलिका। इनमें से पूर्वगत १४ प्रकारका है। उनमें से द्वितीय आग्रायणी-पूर्वके सूत्रोंसे ही प्रायः षट्खंडागमके सूत्रोंकी रचना हुई है किन्तु सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका दृष्टिवाद-नामक बारहवें अंगके दूसरे भेद 'सूत्र' से निकली है और गति-आगति चूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पांचवें अंगसे निकली है।

भगवान् महावीर के निर्वाणके पश्चात् ६२ वर्षमें तीन केवली, १०० वर्षमें पाँच श्रुतकेवली, १८३ वर्षमें ग्यारह दसपूर्वी, २२० वर्षमें पाँच ग्यारहअंगधारी और ११८ वर्षमें चार एकांगधारी आचार्य हुए हैं। उसके बाद सभी अंग और पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परासे श्री धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। धरसेनाचार्यसे पुष्पदन्त व भूतबली आचार्यने प्राप्तकर उन सूत्रोंको लिपिबद्ध करके छहखंडोंमें विभाजित किया। इसीलिए इस ग्रन्थका नाम षट्खण्डागम रखा गया।

दृष्टिवाद नामक बारहवेंअंगके चतुर्थभेद पूर्वगतमें उत्पादपूर्व, आग्रायणीपूर्व आदि १४ भेदोंमें से पाँचवें ज्ञानप्रवादपूर्वके १२ अर्थाधिकार हैं। प्रत्येक अधिकारके बीस-बीस प्राभृत हैं। इस ज्ञानप्रवादनामक ५वें पूर्वके दसवें वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तृतीय पेज्जदोषप्राभृतसे कषायपाहुड़की रचना की गई है।

---

१. ध. पु. १ पृ. ३४९।
२. ध. पु. १ पृ. ७६।
३. ध. पु. १ पृ. २१।
४. "कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यं भावित्वात्" (प्र. सा. गा. २५५ टीका)

पेज्जदोषप्राभृतके १६ हजार मध्यमपद हैं, जिनके अक्षरोंका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी-इकसठ-लाख-सत्तावनहजार-दो सौ बानवे करोड़, बासठलाख, आठहजार होता है। इतने विस्तृत ग्रन्थको श्री भगवद् गुणधराचार्यने केवल २३३ गाथाओंमें निबद्धकर कषायपाहुड़ग्रन्थ की रचना की जो आचार्य परम्परासे श्री आर्यमंक्षु और श्री नागहस्ति आचार्योंको प्राप्त हुआ। उनसे सीखकर श्री यतिवृषभाचार्यने वृत्ति (चूर्णि) सूत्र रचे।

यद्यपि षट्खंडागम और कषायपाहुड़ इन दोनों ग्रन्थोंपर अनेक टीकाएँ रची गईं, किन्तु आचार्य श्री वीरसेनस्वामी द्वारा तर्कपूर्ण विस्तृत धवल व जयधवल टीकाएँ क्रमशः षट्खंडागम व कषायपाहुड़ पर लिखे जानेके पश्चात् अन्यटीकाओंका पठन-पाठन लुप्त हो गया और धवल-जयधवल टीकाओंका पठन-पाठन प्रचलित हो गया। अतिसंक्षिप्त और अर्थपूर्ण छहहजारश्लोकप्रमाण चूर्णिसूत्रका रहस्य वीरसेनाचार्यने साठहजारश्लोकप्रमाण जयधवल टीकामें खोला है।

षट्खंडागम व कषायपाहुड़ तथा इन दोनोंकी धवल व जयधवल टीकाके साररूपमें श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य ने श्री चामुण्डराय अपरनाम गोम्मटके लिये गोम्मटसारग्रन्थकी रचना की। चामुण्डराय गंगनरेश राचमल्लके प्रधानमन्त्री और सेनापति थे। इन्होंने ही श्रवणबेलगोला के विन्ध्यगिरि पर्वत पर श्री बाहुबली की उत्तुंग मूर्ति का निर्माण कराकर प्रतिष्ठाविधि करवायी थी। साथ ही चन्द्रगिरिपर चामुण्डरायके द्वारा ही निर्मापित जिनालयमें एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिकी श्रीनेमिनाथ भगवान्‌की प्रतिमा स्थापित हुई थी। इन्हीं चामुण्डरायको **वीरमार्तण्ड** की उपाधि भी प्राप्त थी। नेमिचन्द्राचार्यने चामुण्डरायके द्वितीय गोम्मटरायनामके समर्थनमें निम्न दो गाथाएँ कही हैं-

अज्जज्जसेन गुणगणसमूह संधारि अजियसेन गुरु।
भुवणगुरु जस्स गुरु सो राओ गोम्मटो जयउ ॥७३३॥ गो. जी. का. ॥

जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो राओ गोम्मटो जयऊ ॥९६९॥गो.क.का. ॥

धवलादि का साररूप यह ग्रन्थ गोम्मटरायके लिए तैयार किया गया था इसलिये इस ग्रन्थ का नाम गोम्मटसार प्रचलित हुआ और उन्होंने ही बाहुबलीस्वामी की मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी अतः वह मूर्ति गोम्मटेश्वर कही जाती है।

नेमिचन्द्राचार्य पुष्पदन्त-भूतबली आचार्यद्वारा विरचित षट्खंडागम सूत्रोंके पारगामी थे ऐसा स्वयं उन्होंने प्रगट किया है-

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥ गो.क. ॥

अर्थात् जिसप्रकार चक्रवर्ती ने भरतक्षेत्र के छहखंड अपने चक्ररत्नसे निर्विघ्नपूर्वक साधे हैं, उसीप्रकार मैंने भी बुद्धिरूपी चक्रसे जीवस्थान[१], क्षुद्रबन्ध[२], बन्धस्वामि[३], वेदनाखंड[४], वर्गणाखंड[५] और महाबन्ध[६] के भेदरूप सिद्धान्तग्रन्थके इन छहखण्डोंको भलीभाँति साधा है।

नेमिचन्द्राचार्य द्वारा गुरु स्मरण

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं।
वर वीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥ गो. क. ॥

अर्थात् मैं नेमिचन्द्राचार्य अभयनन्दि नामक मुनीश्वरको, शास्त्रसमुद्रके पारगामी इन्द्रनन्दि नामक गुरुको तथा उत्कृष्ट वीरनन्दि नामक गुरुको नमस्कार करके कर्मप्रकृतियोंके प्रत्यय कहूंगा। उक्त गाथामें आचार्यने अपने तीन गुरुओंका नामस्मरण किया है।

गोम्मटसार का रचना-स्थान

चन्द्रगिरिपर गोम्मटराय (चामुण्डराय) द्वारा निर्मापित जिनालयमें स्थापित एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिकी श्री नेमिनाथ भगवान्‌की प्रतिमाके सम्मुख उसी जिनालयमें गोम्मटसार ग्रन्थकी रचना हुई थी इसीलिये गोम्मटसारके आद्यमंगलमें नेमिनाथ भगवान्‌का स्मरण निम्न गाथामें किया गया है-

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूषणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥ गो.जी.

रचनाकाल

श्री चामुण्डरायने स्वयं अपना चामुण्डपुराण लिखा है जिसमें अपने कार्योंका विवरण दिया है, किन्तु मूर्तिनिर्माण तथा गोम्मटसारके विषयमें कुछ उल्लेख नहीं किया। वह पुराण शकसम्वत् ९०० तदनुसार वि. सं. १०३१ में लिखा गया है। चामुण्डरायपुराणमें मूर्तिनिर्माण व गोम्मटसारके उल्लेख न होनेसे यह प्रतीत होता है कि ये कार्य वि. सं. १०३१ के पश्चात् हुए हैं। बाहुबलीचरितमें गोम्मटेशकी प्रतिष्ठाका समय वि. सं. १०३७-३८ बतलाया गया है। उस समय गंगदेशमें राचमल्लका राज्यकाल था। त्रिलोकसार की टीका लिखते हुए श्री माधवचन्द्राचार्य त्रैविद्यदेवने जो नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीके समकालीन थे, त्रिलोकसारके मंगलाचरणमें आये हुए 'बलगोविन्द' शब्दका अर्थ गंगराज राचमल्लके मंत्री चामुण्डराय किया है। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ राचमल्लके राज्यकालमें लिखा गया है। श्री राचमल्लका राज्यकाल वि. सं. १०४१ तक रहा है अतः गोम्मटसारका रचनाकाल वि. सं. १०३७-१०४१ के बीच रहा प्रतीत होता है।

---

१. ध. पु. १ से ६। २. ध. पु. ७। ३. ध. पु. ८।
४. ध. पु. ९ से १२। ५. ध. पु. १३-१४। ६. महाबन्ध भाग १ से ७।

नेमिचन्द्राचार्य की रचनाएँ

बाहुबलीचरित्रमें श्री नेमिचन्द्राचार्यद्वारा रचित तीन ग्रन्थोंका उल्लेख निम्न श्लोकमें किया गया है-

सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्षमामृदालोड्य मध्ये।
लभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः॥
श्रीमद् गोम्मट-लब्धिसारविलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माज श्रीसुरधेनुचिन्तितमणीन् श्री नेमिचन्द्रो मुनिः॥६३॥

श्लोककथित तीन ग्रन्थ १. गोम्मटसार २. लब्धिसार ३. त्रिलोकसार हैं। गोम्मटसारको जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड इन दो भागोंमें विभाजित कर देनेसे तथा लब्धिसारके साथ क्षपणासार भी होनेसे गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसारकर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार ये पाँच ग्रन्थ होते हैं। इनमेंसे लब्धिसार-क्षपणासारमें कषायपाहुड़के ११-१२-१३-१४ और १५वें अधिकार का सार है एवं त्रिलोकसारमें यतिवृषभाचार्यकृत तिलोयपण्णत्ति का सार है।

कर्मकाण्डकी प्रस्तुत टीकाकी विशेषता

गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्डपर ब्र. श्री केशववर्णीने कन्नडभाषामें जीवतत्त्वप्रदीपिकावृत्ति लिखी जिसके आधारसे ही वर्तमान में उपलब्ध संस्कृतटीका की रचना की गई है तथा इसी संस्कृतटीका के अनुसार पंडितप्रवर श्री टोडरमलजीने ढुंढारीभाषामें अनुवाद किया था जो लगभग ६०-६२ वर्ष पूर्व कलकत्तासे शास्त्राकारमें प्रकाशित हुआ था, किन्तु वर्तमानमें अनुपलब्ध है। पंडितजीके समय तक धवल, जयधवल व महाबन्ध ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। यह सौभाग्यकी बात है कि अब धवलादि महान् ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशन हो चुका है।

कर्मकाण्डकी संस्कृतटीका एवं ढुंढारीभाषाके अनुवादमें कुछस्थल ऐसे हैं जो धवल-जयधवलके अनुकूल नहीं हैं तथा ऐसी भी कुछ गाथाएं हैं जिनपर संस्कृत व हिन्दी टीकाकारोंने विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया है, किन्तु भारतीयज्ञानपीठ से प्रकाशित प्राकृत पंचसंग्रहकी प्राकृतवृत्तिमें विशेष स्पष्टीकरण पाया जाता है, अतः उन गाथाओंका विशेषार्थ पंचसंग्रहकी प्राकृतवृत्तिके अनुसार लिखा गया है। कई स्थलोंपर अभी तक मुद्रितप्रतियोंमें आगत गाथाक्रममें प्रकरणको ठीक प्रकारेण यथास्थान स्पष्ट करने के लिये परिवर्तन (आगे-पीछे) किया गया है।

मुद्रित कर्मकाण्डमें मूल गद्यभाग छोड़ दिया गया है। जैसे गाथा २२ में आठ मूलप्रकृतियोंकी उत्तरभेदरूप प्रकृतियोंकी संख्या बतलाई गई है और गाथा २३-२४-२५ में पाँचों निद्राओंका कार्य बतलाया है, किन्तु ये प्रकृतियाँ किस मूलकर्मकी हैं यह ज्ञात नहीं होता। अतः यह प्रतीत होता है कि गाथा २२-२३ के मध्यमें ऐसा मूल पाठ था जिसमें ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मकी उत्तरप्रकृतियों का नामोल्लेख हो। इसी प्रकार गाथा २५ के पश्चात् वेदनीयकर्मसम्बन्धी उत्तरप्रकृतियों तथा मोहनीय-कर्मके भेद व दर्शनमोहनीयकी

उत्तरप्रकृतियोंके नामोंका कथन नहीं है। तथैव गाथा २७, २८ व ३२ के पश्चात् नामकर्मकी कुछ उत्तरप्रकृतियोंके नाम नहीं हैं एवं गोत्रकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके नाम भी नहीं हैं जो गाथा ३३ के पश्चात् होने चाहिये थे। यह सर्वकथन मूलगद्यभागमें था जिसको मुद्रित प्रतियोंमें छोड़ दिया गया। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी गाथाएँ भी थीं जिनपर कर्नाटकवृत्ति या संस्कृतटीका नहीं लिखी गई। संभव है वे गाथाएँ कर्नाटकवृत्तिकारके सामने भी न हों। वे गाथाएँ भी मुद्रित-प्रतियोंमें नहीं हैं। 'अनेकान्त' वर्ष ८ किरण ८-९ सन् १९४७ में एक लेखके द्वारा गद्यभाग व गाथाओं की सूचना तथा उनका प्रकाशन भी हुआ था जिनको साभार ग्रहणकर प्रस्तुत टीकामें यथास्थान जोड़ दिया गया है। जो गाथाएँ जोड़ी गई हैं उनसे गाथाक्रममें कोई परिवर्तन न हो इस दृष्टिसे उन्हें क ख आदि नम्बरोंसे सम्मिलित किया गया है। जैसे-३६० क इत्यादि ९ गाथाएँ यथास्थान जोड़ी गई हैं जो ३६० से ३९० के बीच में ही हैं।

विषय-परिचय

गोम्मटसार कर्मकाण्डमें ९ अधिकार हैं- १. प्रकृतिसमुत्कीर्तन २. बंधोदयसत्त्वाधिकार ३. सत्त्वस्थानभंगाधिकार ४. त्रिचूलिकाधिकार ५. स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार ६. प्रत्ययाधिकार ७. भावचूलिकाधिकार ८. त्रिकरणचूलिकाधिकार ९. कर्मस्थितिरचनाधिकार।

प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमें ८६ गाथा हैं जिनमें मंगलाचरण पुरस्सर कर्मोंकी आठ मूल तथा उनकी उत्तरप्रकृतियोंके नाम व कुछ प्रकृतिविशेषके कार्य, घाति-अघातीकर्म संज्ञा, छहोंसंहननवाले जीवों के उत्पत्तिस्थान, महिला (द्रव्यस्त्री) के संहनन, कषायोंका कार्य व संस्कारकाल, पुद्गलविपाकी-भवविपाकी-क्षेत्रविपाकी-जीवविपाकी प्रकृतियाँ, चारनिक्षेपोंके द्वारा कर्मोंका कथन तथा सभी कर्मोंके नो कर्मोंका समुल्लेख किया गया है।

बन्धोदयसत्त्वाधिकार में ८७ से ३५७ तक २७० गाथाएँ हैं। इनमें बन्ध-उदय और सत्त्व, बन्ध-उदय व सत्त्वव्युच्छित्ति तथा अबन्ध-अनुदय व असत्त्व जिन्हें बन्ध त्रिभंगी, उदय त्रिभंगी व सत्त्व त्रिभंगी भी कहते हैं, का गुणस्थान व मार्गणाकी अपेक्षा विस्तृत वर्णन किया गया है। बंधप्रकरणमें प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्धका विशद कथन है। प्रकरणवश आबाधाकालका, कर्मनिषेकोंके क्रमका तथा उनके स्वरूपका, अनुभागके लता दारु आदि स्थानोंका, प्रदेशबन्धके कारणभूत योगस्थानों का व उनके स्वामी तथा उनमें अल्पबहुत्वका कथन, उदीरणा व उद्वेलनादिका भी विवेचन इसी अधिकारमें पाया जाता है। साथ ही सिद्धोंके अनन्तवेंभाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणित समयप्रबद्धका ज्ञानावरणादिकर्मोंकी मूल-उत्तरप्रकृतियोंमें किस विधि व किस अनुपातमें विभाजन होता इसकी विस्तृत चर्चा भी इसी अधिकारमें पायी जाती है।

सत्त्वस्थानभङ्गाधिकारमें ३५८ से ३९७ तक ४० गाथाएँ हैं। इस अधिकारमें सत्त्वकी अपेक्षा प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान व भेदोंके भंगोंका विस्तृत कथन करते हुए आचार्यदेवने किस गुणस्थानमें कितने सत्त्वस्थान कितने प्रकारोंसे हो सकते हैं इसका विशद वर्णन किया है। साथ ही कनकनन्दि आचार्यद्वारा कथित सत्त्वस्थानका कथन इस अधिकारमें पाया जाता है।

त्रिचूलिका नामक तृतीयाधिकारमें ३९८ से ४५० तक ४३ गाथाएँ हैं। ३९८ से ४०७ तक १० गाथाओंमें प्रथम नवप्रश्नचूलिकामें उदयव्युच्छित्तिके पहले बन्धव्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियाँ, उदयव्युच्छित्तिके पश्चात् बन्धव्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियाँ, उदयव्युच्छित्तिके साथ बन्ध-व्युच्छित्तिको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियाँ, स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ, परोदयबन्धी प्रकृतियाँ, स्व-परोदयबन्धी प्रकृतियाँ और सान्तर-निरन्तरबन्धी प्रकृतियाँ कौन-कौनसी हैं, इन नवप्रश्नोंके उत्तरका कथन पाया जाता है। पंचभागाहार नामक द्वितीय चूलिकामें गाथा ४०८ से ४३५ तक १५ गाथाओंमें उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम इन पाँच भागहारोंका निरूपण है तथा संक्रमणसंबंधी कथन भी पाया जाता है। दशकरणनामक तृतीय चूलिका में ४३६ से ४५० तक १५ गाथाएँ हैं। इनमें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशम, निधत्ति और निकाचना इन दश-करणोंका कथन करते हुए यह भी बताया है कि कौनसा करण किस गुणस्थानतक होता है?

स्थानसमुत्कीर्तनाधिकारमें ४५१ से ७८४ तक ३३४ गाथाएं हैं। इस अधिकारमें गुणस्थान-सम्बन्धी प्रकृतिसंख्या सहित बन्ध-उदय व सत्त्व का कथन है अर्थात् यह बताया गया है कि एक जीव के एक समय में कितनी प्रकृतियोंका बन्ध-उदय और सत्त्व सम्भव है। उपयोग, योग, संयम और लेश्या व सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंका कथन है। मोहनीयके सत्त्वस्थानोंका कथन भी इस अधिकारमें है। साथ ही नामकर्मके ४१ जीवपदोंका कथन करते हुए बंध-उदय-सत्त्वके त्रिसंयोगीभंग भी कहे गये हैं।

प्रत्ययाधिकार में ७८५ से ८१० तक २५ गाथाएँ हैं। इसमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मूल व उत्तर प्रत्ययोंका तथा कर्मबन्धके कारणभूत आत्मपरिणामों अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके विशेष प्रत्ययोंका कथन है।

भावचूलिका नामक सप्तमअधिकारमें ८११ से ८९५ तक ८५ गाथाओं द्वारा भावोंका, उनके उत्तरभेदोंका तथा गुणस्थानोंकी अपेक्षा स्थानभंग व पदभंगका, ३६३ मिथ्यामत एवं एकान्त नियतिवाद आदि मिथ्यामतोंका कथन है।

त्रिकरणचूलिका नामक आठवें अधिकार में ८९६ से ९१२ तक १७ गाथाओंमें अधःकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण का स्वरूप व कालादिका कथन है।

कर्मस्थितिरचनाधिकार में ९१३ से ९६४ तक ५२ गाथाओंमें कर्मस्थितिरचना अङ्कसन्दृष्टि, अर्थसन्दृष्टि, त्रिकोणयंत्ररचना तथा स्थितिबन्धके भेद व अध्यवसाय स्थानोंका कथन है। इसके पश्चात् आठ गाथाओंमें ग्रन्थकर्ताकी प्रशस्ति है।

भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित **पंचसंग्रह** में प्राकृत व संस्कृतके पंचसंग्रहोंका संकलन है। इनके रचयिताओंके नाम व समय अज्ञात होनेके कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि गोम्मटसार व पंचसंग्रहमें कौन प्राचीन है ? इस पंचसंग्रहके संपादक व अनुवादक श्री पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री साढूमल (झांसी) हैं। प्राकृत पंचसंग्रहकी और गोम्मटसारकी अनेक गाथाएँ परस्पर सदृश हैं।

जैन सिद्धान्तमें ही पौद्गलिककर्मबन्ध व आत्मपरिणामोंके परस्पर सम्बन्धका कथन है। इतनी बात अवश्य है कि जैसा कर्मोदय होगा वैसा ही आत्मपरिणाम होगा उसमें हीनाधिकता नहीं हो सकती, किन्तु आत्माके एक ही परिणाम (स्थितिबंध अध्यवसाय) से मतिज्ञानावरणके अन्तिम निषेककी स्थिति ३० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाणकी होती है तो प्रथम निषेककी स्थिति एकसमय अधिक तीनहजारवर्ष प्रमाण होती है। उसी आत्मपरिणामसे श्रुतज्ञानावरणादिके अन्तिमनिषेककी स्थिति पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे हीन ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण हो सकती है। (महाबन्ध पु. ३ पृ. १) इसीप्रकार आत्मा के एक ही परिणामसे मतिज्ञानावरण के अन्तिमस्पर्धकमें जो अनुभागबन्ध होता है उसका अनन्तवाँ-भागरूप अनुभाग प्रथमस्पर्धकमें होता है। जिस परिणामसे मतिज्ञानावरणका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है उसी आत्मपरिणामसे मतिज्ञानावरणके साथ बँधनेवाले श्रुतज्ञानावरणादिका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणाहीन तक हो सकता है। (महाबन्ध पु. ५ पृ. १) आत्मपरिणाम-कषायरूपपरिणामके अनुरूप ही स्थितिबन्ध व अनुभागबन्ध होता है, ऐसा नियम नहीं है, किन्तु कर्मअनुभागोदयके अनुरूप ही आत्माके परिणाम होते हैं; ऐसा नियम है, क्योंकि 'विपाकोऽनुभवः' इसप्रकार सूत्रवचन हैं। जो कर्मोदयके अनुरूप आत्मपरिणाम नहीं मानते उनको ईश्वरकर्तृत्व मानना पड़ा, क्योंकि कोई भी जीव स्वतंत्ररूप से नरक में नहीं जाता नरकायु आदि कर्मोदय ही उसको नरकमें ले जाते हैं। कहा भी है-"नरकायु के बन्धबिना मिथ्यादर्शन-अविरति-कषायभावों की नरक में उत्पन्न कराने की सामर्थ्य नहीं है। (ध. पु. १ सूत्र २५ की टीका, पृ. २०५)

प्रत्येक मनुष्य कर्म और कर्मफलका चिन्तन करता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यह देखना व जानना चाहता है कि वह जो कुछ करता या विचारता है उसका क्या फल होता है। इसीलिए वह यह भी निर्णय करता है कि किस फलकी प्राप्तिके लिए उसके कैसे विचार व कार्य होने चाहिए। अतः संस्कृति का समस्त ऐतिहासिक, सामाजिक व धार्मिक चिन्तन कर्म और कर्मफलको अपना विषय बनाता है। इसी बातका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थमें किया गया है।

अक्षयतृतीया
वि.सं. २०३७

रतनचन्द जैन मुख्तार
सहारनपुर (उ. प्र.)

❋ संकेतसूची ❋

अ.	अध्याय	ध.	धवल	म.बन्ध	महाबन्ध (भारतीय ज्ञानपीठ)
गो. क.	गोम्मटसारकर्मकाण्ड	पृ.	पृष्ठ	रा.वा.	तत्त्वार्थराजवार्तिक (भारतीय ज्ञानपीठ)
क.प्र.	कर्मप्रकृति (भारतीय ज्ञानपीठ)	पु.	पुस्तक	स.सि.	सर्वार्थसिद्धि (भारतीय ज्ञानपीठ)
ज.ध.	जयधवल (दि. जैन संघ चौरासी, मथुरा)	प्रा.पं.सं.	प्राकृतपंचसंग्रह (भारतीय ज्ञानपीठ)	त्रि.सा.	त्रिलोकसार

❋ विषयानुक्रम ❋

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
		卐 १. प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार 卐
१	१	मंगलाचरण
२	२	प्रकृतिका अर्थ, कर्म व आत्माका अनादिसम्बन्ध इतरेतराश्रयदोषका निराकरण व जीव कथंचित् मूर्तिक है
३	३	देह उदयसे सहित होनेके कारण जीव सर्वांगसे कर्मोंको ग्रहण करता है
४	४	सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्वरूप समयप्रबद्ध प्रतिसमय बँधता है
५	४	प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध उदय आकर निर्जीर्ण हो जाता है और डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य सत्तामें रहता है
६	५	द्रव्यकर्म व भावकर्म
७	५	द्रव्यकर्मके भेद-प्रभेद संख्या
८-१४	५-८	आठकर्मोंके नाम तथा उनमें घातिया व अघातिया भेद तथा आठों कर्मोंका कार्य
१५	८	जीवके प्रधानगुण दर्शन, ज्ञान व सम्यक्त्व हैं
१६-२०	९-१०	आठोंकर्मोंके पाठक्रमकी सिद्धि
२१	१०	दृष्टान्त द्वारा कर्मोंके स्वभावका कथन
२२	११	ज्ञानावरणादि आठकर्मोंके उत्तरभेदोंकी संख्या
सूत्र	१२	ज्ञानावरण व दर्शनावरणकर्मोंके उत्तरभेदोंके नाम
२३-२५	१२	स्त्यानगृद्धि आदि पाँच निद्राओं के कार्य
सूत्र	१३	वेदनीय व मोहनीयकर्मोंके उत्तरभेदोंके नाम
२६	१३	प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे मिथ्यात्वकर्मके तीन भेद हो जाते हैं, उसमें मिथ्यात्वके द्रव्यसे असंख्यातगुणाहीन सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य उससे असंख्यातगुणाहीन सम्यक्त्वका द्रव्य है।
सूत्र	१५	चारित्रमोहनीय, आयु और नामकर्मोंके उत्तर भेदोंके नाम तथा १६ कषायोंमें हीनाधिकद्रव्यका कथन
२७	१६	पाँच शरीर-बन्धन नामकर्मके १५ भंग
सूत्र	१७	शरीरसंघात, संस्थान व अंगोपांगनामकर्मके भेद

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
२८	१८	आठ अंगोंके नाम तथा उपांगोंका निर्देश.
सूत्र	१८	छहसंहननोंके नाम
२९-३१	१९	किस-किस संहननवाला जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न हो सकता है
३२	१९	कर्मभूमि महिलाओंके तीन हीनसंहनन
सूत्र	२०	वर्णचतुष्क, आनुपूर्वी, अगुरुलघुषट्कके भेदोंका तथा १० सप्रतिपक्षी-प्रकृतियोंके नाम।
३३	२०	आतप व उद्योत नामकर्मका लक्षण।
सूत्र	२१	गोत्र व अन्तरायकर्मसम्बन्धी उत्तरभेदोंके नाम
		उत्तरप्रकृतियोंका निरुक्ति लक्षण
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज		केवलज्ञानावरणकी सिद्धि
		स्थिरनामकर्म तथा सप्तधातुके नाम व उनके बनने का क्रम और काल एवं वात-पित्तादि सप्तधातुके नाम व परिणमन
३४	२८	पाँचबन्धन व पाँच संघातका शरीरनामकर्ममें व वर्णादिबीसका वर्णादिचारमें अन्तर्भाव
३५-३८	२९	बन्ध, उदय व सत्त्वरूप प्रकृतियोंकी संख्या
३९-४०	३०	सर्वघाति व देशघाति प्रकृतियोंके नाम
४१-४४	३१-३२	पुण्य व पाप प्रकृतियोंके नाम व संख्या
४५	३३	अनन्तानुबन्धीकषाय सम्यग्दर्शनको घातती है तथा अन्य तीनकषाय यथाक्रम चारित्र को घातती हैं।
४६	३३	कषायोंका वासनाकाल
४७-५१	३३-३५	पुद्गलविपाकी व भवविपाकी प्रकृतियोंके नाम
५२-६८	३५-४१	नामादि चारनिक्षेपोंका कथन
६९-८५	४१-४५	मूल व उत्तरप्रकृतिके उदयके नोकर्म
८६	४५	नोआगमभाव कर्म
		卐 २. बन्धोदयसत्त्वाधिकार 卐
८७	४७	मंगलाचरण
८८	४७	स्तव, स्तुति, धर्मकथा (वस्तु) का लक्षण

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
८९	४८	प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे बंध चारप्रकारका, इनमें से भी प्रत्येकके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यरूप चार-चार भेद
९०	४८	उत्कृष्ट आदिके भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवरूप चार भेद
९१	४८	जिन कर्मोंका मिथ्यात्वादिगुणस्थानवर्ती जीवोंके उत्कृष्टस्थिति, अनुभाग व प्रदेशबन्ध होता है उन कर्मोंका अनुत्कृष्ट व अजघन्यस्थिति आदि बन्ध सादि इत्यादि चारप्रकारका होता है।
		प्रकृतिबन्ध
९२-९३	४९-५०	तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका विशेष नियम
९४-१०२	५०-५४	गुणस्थानोंमें बन्धव्युच्छित्ति
१०३-१०४	५६	गुणस्थानोंमें बन्ध व अबन्धप्रकृतियोंकी संख्या।
१०५-१०७	५८	नरकगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ
१०८-१०९	६१-६२	तिर्यञ्चगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ
११०	६३	मनुष्यगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ
१११-११२	६६-६८	देवगतिमें बन्ध व बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ
११३	७२	इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति
११४-११५ का पूर्वार्ध	७४-७५	कायमार्गणासम्बन्धी बन्ध, अबन्ध व बन्धव्युच्छित्ति
११५ उत्तरार्ध से ११९ पूर्वार्ध	७-८०	योगमार्गणामें बन्ध-अबन्ध व बन्धव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
११९ उत्तरार्ध से १२१	८१-९१	शेष मार्गणाओंमें बन्ध-अबन्ध व बन्धव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
१२२-१२६	९९-१०२	सादि अनादि ध्रुव व अध्रुव बन्ध
१२५	१०९	सप्रतिपक्ष व अप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ

॥ इति प्रकृतिबन्धप्रकरण ॥

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
		स्थितिबन्ध
१२७	१०२	आठकर्मोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध
१२८-१३४	१०३-१०४	उत्तरप्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध
१३५-१३८	१०४-१०५	उत्कृष्टस्थितिबन्धके स्वामी
१३९	१०६	मूलप्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध
१४०-१४३	१०६-१०७	उत्तरप्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध
१४४-१४५	११३	एकेन्द्रिय व विकलत्रय जीवोंका स्थितिबन्ध
१४६-१४७	११४-११५	आबाधाकाल व आबाधाकाण्डक
१४८	११७	चौदह जीवसमासोंमें उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिके भेद
१४९	१२१	सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रियादि जीवोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिका शलाका द्वारा कथन
१५०	१२३	संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थिति
१५१	१२४	जघन्यस्थितिबन्धके स्वामी
१५२-१५३	१२४-१२५	जघन्यस्थितिमें सादि इत्यादि चारभेद
१५४	१२६	तीन (मनुष्य-तिर्यंच व देव) आयुके अतिरिक्त शेष शुभ व अशुभकर्मोंका स्थितिबन्ध अशुभ है।
१५५	१२६	आबाधाका लक्षण
१५६-१५७	१२७	मूल व उत्तर प्रकृतियोंकी आबाधा
९१४-९१६	७७१-७७२	
१५८, ९१७	१२८, ७७२	आयुकर्मकी आबाधा
१५९, ९१८	१२९	उदीरणाकी अपेक्षा आबाधाकाल। परभवसंबन्धी आयुकी उदीरणा नहीं होती
१६०-१६२	१३०-१३१	निषेकरचना व चय प्राप्त करनेकी विधि आदिका कथन
९१९-९४०	७७४-७८८	
		॥ इति स्थितिबन्धप्रकरण ॥

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
		अनुभागबन्धप्रकरण
१६३	१३३	शुभ-अशुभप्रकृतियोंके अनुभागबन्धके कारण विशुद्ध व संक्लेशपरिणाम
१६४-१६९	१३४-१३५	उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामी
१७०-१७७	१३७-१३९	जघन्यअनुभागबन्धके स्वामी
	१३९	परिवर्तमान व अपरिवर्तमान मध्यमपरिणाम
१७८-१७९	१४०	अनुभागबन्धसम्बन्धी ध्रुव, अध्रुव, सादि, अनादि
१८०	१४१	अनुभागका लक्षण तथा घातियाकर्मोंका अनुभाग लता आदिरूप
१८१	१४२	दर्शनमोहनीयसम्बन्धी देशघाति तथा लता आदि विभाजन
१८२	१४३	देशघाति व सर्वघाति प्रकृतियाँ
१८३-१८४	१४३	अघातियाकर्मोंका अनुभाग, पुण्य व पापरूप प्रकृतियाँ
		प्रदेशबन्ध
१८५	१४४	एकक्षेत्रावगाह स्थित कर्मवर्गणाओंको आत्मा अपने सर्वप्रदेशोंसे बाँधता है
१८६	१४५	एकक्षेत्र का लक्षण
१८७	१४५	पुद्गलद्रव्यका अनंतवाँभाग कर्मरूप होने योग्य है, शेष अनंतबहुभाग अयोग्य है
१८८	१४६	भूतकालमें सर्वजीवोंके द्वारा बाँधागया पुद्गलद्रव्य सादि है
१८९	१४७	एकक्षेत्रसंबंधी तथा अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादि योग्य व अयोग्यपुद्गल द्रव्यका प्रमाण
१९०	१४७	जीव सादि, अनादि व उभयरूप कर्मपुद्गलको ग्रहण करता है
१९१	१४८	समयप्रबद्धका स्वरूप
१९२-१९५	१४८-१५०	कर्मप्रदेशोंका आठकर्मोंमें बँटवारा
१९६	१५२	उत्तरप्रकृतियोंमें बँटवारेका क्रम
१९७-२०४	१५२-१६६	सर्वघाति तथा देशघातिमें बँटवारा
	१६५	मिथ्यात्व व बारहकषायका द्रव्य सर्वघातिरूप ही है
२०५	१६७	नोकषायोंका बन्ध कितने कालतक होता है, तत्सम्बन्धी अल्पबहुत्व
२०६	१६८	नामकर्मसम्बन्धी पिण्ड व अपिण्ड प्रकृतियों तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें विपरीतक्रमसे द्रव्य देनेका कथन

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
२०७-२०९	१७०-१७१	उत्कृष्टादि प्रदेशबन्धके सादि इत्यादि भेद
२१०-२१७	१७२-१७७	उत्कृष्ट व जघन्यप्रदेशबन्धके स्वामी - अन्यतर श्री गुणितकर्मांश का स्वरूप
२१८-२२२	१७९-१८१	योगका स्वरूप, उपपादयोग, परिणामयोग, एकान्तानुवृद्धियोग।
२२३-२२७	१८२-१८४	योगस्थानोंकी संख्या तथा अवयव, उनका स्वरूप व संख्या
२२८	१८५	प्रथमवर्गणा, चय, वर्गणा (निषेक) सम्बन्धी अङ्कसन्दृष्टि
२२९	१८५	प्रत्येक स्पर्धककी प्रथमवर्गणादिके एकवर्गमें अविभागप्रतिच्छेद तथा योग-स्थानोंमें वृद्धि आदि विशेषकथन है
२३०-२३१	१९०-१९१	अंगुलके असंख्यातवेंभागमात्र जघन्यस्पर्धकोंके बढ़नेपर द्वितीययोगस्थान होता है। इतनी वृद्धिसे चरमस्पर्धकके आगे अपूर्वस्पर्धक नहीं होता, किन्तु श्रेणि के असंख्यातवेंभागप्रमाणस्थान बढ़नेपर अपूर्वस्पर्धक होता है।
२३२-२४०	१९३-१९४	चौदह जीवसमासोंमें उपपाद एकांतानुवृद्धि परिणामयोगके जघन्य व उत्कृष्ट इसप्रकार ८४ स्थानोंमें अल्पबहुत्वका कथन
२४१	१९७	१४ जीवसमाससम्बन्धी ८४ स्थानोंमें पूर्व-पूर्वके स्थानसे उत्तरवर्तीस्थान पल्य के असंख्यातवेंभाग गुणा है।
२४२	१९७	उपपादयोगस्थान व एकान्तानुवृद्धियोगस्थान व परिणामयोगस्थानका काल
२४३	१९७	परिणामयोगस्थानोंका कालकी अपेक्षा अल्पबहुत्व व यवमध्य
२४४-२४६	१९९	त्रस परिणामयोगस्थानों में जीवों का परिणाम, जीव यवमध्य
२४७-२४९	२०३-२०४	द्रव्य (त्रस जीवों) का योग अध्वान, नानागुणहानि, गुणहानिका प्रमाण
२५०	२०६	योगवृद्धिसे समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण
२५१-२५६	२०७-२०९	जघन्ययोगस्थानसे उत्कृष्टयोगस्थानतक वृद्धिका क्रम, योगस्थानोंका प्रमाण
२५७	२०९	प्रकृति आदि बन्धके कारण
२५८-२५९	२०९-२१५	योगस्थान, प्रकृतिभेद, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान
२६०	२१८	अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान, कर्मप्रदेशोंका अल्पबहुत्व
		॥ इतिप्रदेशबन्ध प्रकरण ॥
		उदयप्रकरण
२६१-२६२	२२६	आहारक, तीर्थंकर, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृति व आनुपूर्वी उदयसम्बन्धी नियम

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
२६३-२७२	२२७-२३२	उदयव्युच्छित्ति
२७३-२७५	२३४	केवलीभगवानके साता व असाता उदय व इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं है
२७६-२७७	२३६	गुणस्थानोंमें उदय व अनुदयप्रकृतियाँ
२७८-२८०	२३६-२३७	उदय और उदीरणामें तीनगुणस्थानोंमें विशेषता
२८१-२८३	२३७	गुणस्थानोंमें उदीरणा-अनुदीरणारूप प्रकृति
२८४-२८९	२३८-२४०	मार्गणाओंमें उदयसम्बन्धी विशेषता
२९०-२९२	२४०	प्रथमनरकमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
२९३	२४१	दूसरेसे सातवें नरकतक कर्मोदय व उदयव्युच्छित्ति
२९४-२९७	२४२-२४५	तिर्यंचगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
२९८-३०१	२४६-२५०	मनुष्यगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०२-३०३	२५१	भोगभूमिजमनुष्य व तिर्यंचमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०४-३०५	२५३-२५४	देवगतिमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०६-३०८	२५६	इन्द्रियमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३०९-३१० पू.	२५९-२६०	कायमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
उ.३१०-३१९	२६२-२७१	योगमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२०-३२१	२७३-२७५	वेदमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२२	२७८	कषायमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२३-३२५ पू.	२८०-२८१	ज्ञानमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
	२८४	संयममार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
	२८७	दर्शनमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२५ उ.-३२६	२८९	लेश्यामार्गणामें कृष्ण-नील-कापोतलेश्यामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२७	२९१	शुभलेश्याओंमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३२८-३२९	२९४	भव्य-अभव्य व उपशम-क्षयोपशम तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३३०-३३१ पू.	२९९	संज्ञीमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति
३३१ उ. ३३२	३०२	आहारमार्गणामें उदय व उदयव्युच्छित्ति

॥ इति उदयप्रकरण ॥

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
		सत्त्वप्रकरण
३३३	३०५	मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकर व आहारकद्विकका सत्त्व युगपत् नहीं होता
३३४	३०६	किसी भी आयुका बंध होनेपर सम्यक्त्व हो सकता है, किन्तु देवायुके बिना अन्य तीन आयुका बन्ध होनेपर अणुव्रत या महाव्रत नहीं हो सकते
३३५-३३६	३०६	नरक-तिर्यंच व देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमशः अणुव्रत, महाव्रत, क्षपक-श्रेणी नहीं होती तथा क्षायिकसम्यक्त्वकी विधि
३३७	३०७	अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानोंमें क्षय होनेवाली प्रकृतियाँ
		उपशमश्रेणी विधान
		क्षपकश्रेणी विधान
३३८-३४१	३१२	क्षपकश्रेणीमें क्षययोग्य प्रकृतियाँ
३४२	३१३	गुणस्थानोंमें सत्त्व-असत्त्वरूप प्रकृतियाँ क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा
३४३	३१५	उपशमश्रेणीकी अपेक्षा कर्मप्रकृतियाँ उपशमानेका क्रम तथा सत्त्व-असत्त्व-प्रकृतियाँ
३४४-३४८	३१६-३२१	चारों गतियोंमें गुणस्थानकी अपेक्षा सत्त्व-असत्त्व प्रकृतियाँ
३४९	३२३	इन्द्रियमार्गणा व कायमार्गणामें गुणस्थान अपेक्षा सत्त्व-असत्त्वप्रकृतियाँ
		उद्वेलनका लक्षण
३५०-३५१	३२५	उद्वेलनप्रकृतियोंके नाम व स्वामी, उद्वेलनाकी अपेक्षा विकलत्रय व एकेन्द्रियों में सत्त्व व असत्त्व प्रकृतियाँ
३५२-३५३	३२८-३३०	योगमार्गणामें सत्त्व-असत्त्वका कथन
३५४	३३०	वेदमार्गणासे भव्यमार्गणातक सत्त्व-असत्त्वका कथन
३५५	३३३	अभव्यमार्गणासे आहारमार्गणातक सत्त्व-असत्त्वका कथन
३५६	३३५	अनाहारमार्गणामें सत्त्व-असत्त्वप्रकृतियाँ
३५७	३३६	अन्तिम मङ्गलाचरण
		॥ इति बंधोदयसत्त्वाधिकार ॥
		卐 ३. सत्त्वभंगाधिकार 卐
३५८	३३७	मंगलाचरण तथा गुणस्थानोंमें सत्त्वभङ्ग कहनेकी प्रतिज्ञा

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
३५९	३३७	आयुबन्ध व अबन्धकी अपेक्षा सत्त्वस्थान व भंगोंका कथन करनेकी प्रतिज्ञा
३६०	३३७	आयुबन्धकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें असत्त्व प्रकृतियोंकी संख्या
३६० क	३३८	सयोगकेवलीके ६३ असत्त्वरूप प्रकृतियोंके नाम तथा गुणस्थानोंमें सत्त्व-प्रकृतियोंकी संख्या
३६१	३३९	गुणस्थानोंमें असत्त्वप्रकृतियोंके नाम
३६२-३६३	३४१	गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान संख्या
३६३ क	३४१	मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकरके सत्त्वसहित आयुबन्ध व अबन्धका कथन
३६४	३४२	सत्त्वस्थानोंमें भङ्गोंकी संख्या
३६४ क-ख	३४२	आयुकर्मके आयुबन्धकी अपेक्षा भङ्ग
३६५-३७१	३४३-३५०	मिथ्यात्वगुणस्थानमें सत्त्वस्थानोंका व भङ्गोंका विवरण
३७२-३७५ ख	३५८-३६०	सासादन व मिश्रगुणस्थानमें सत्त्वस्थान व भंग
३७६-३८१	३६५-३६६	असंयतगुणस्थानमें सत्त्वस्थान व भंग
		तीन कल्याणकवाले तीर्थंकर
३८२	३८०	पाँचवें-छठे-सातवें गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान व भङ्ग
३८३-३८४	३८२-३९२	अपूर्वकरणगुणस्थान (उपशामक) में सत्त्वस्थान व भङ्ग
३९१	३९२	
३८५	३८७	अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय व उपशांतमोहमें अपूर्वकरणउपशामकके समान
३८५	३८७	क्षपकअपूर्वकरणमें सत्त्वस्थान व भङ्ग
३८६-३८८	३८८-३८९	
व ३९१-३९२	३९२	क्षपकअनिवृत्तिकरणमें सत्त्वस्थान व भङ्ग
३८९	३९०	क्षपकसूक्ष्मसांपराय और क्षीणमोहगुणस्थानमें सत्त्वस्थान व भङ्ग
३९०	३९१	सयोगी व अयोगीगुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान व भंग
३९१	३९२	उपशमश्रेणीमें ४ अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं है व क्षपकश्रेणी पहले ८ कषायका क्षय
३९२	३९२	दूसरेमत अनुसार अनिवृत्तिकरणक्षपकमें मायारहित चार स्थान
३९३-३९४	३९३	दूसरे मतोंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें स्थानों व भंगोंका कथन

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
		[illegible]
३९५	३९४	सत्त्वस्थानोंको पढ़ने-सुनने अथवा भावना करनेका फल निर्वाणसुख
३९६-३९७	३९४	श्री कनकनन्दी आचार्यद्वारा सत्त्वस्थानोंका कथन किया गया व सिद्धान्त-चक्रवर्तीका लक्षण
		॥ इति सत्त्वाधिकार ॥
		卐 ४. त्रिचूलिकाधिकार 卐
३९८	३९५	मंगलाचरण, नवप्रश्नचूलिका, पंचभागहारचूलिका, दशकरणचूलिका
३९९-४०७	३९६-४००	नवप्रश्नोंके नाम, तत्सम्बन्धी प्रकृतियोंके सान्तर व निरन्तरका लक्षण, व्युच्छित्तिका लक्षण
४००-४०१	३९७	बन्धव्युच्छित्ति व उदयव्युच्छित्ति इन दोनोंका पृथक्पृथक् व युगपत् विचार
४०२-४०३	३९८	स्वोदय व परोदय तथा स्वोदयपरोदयबन्ध
४०४-४०७	३९९-४००	सान्तर व निरन्तर तथा सान्तरनिरन्तरबन्ध
		॥ इति नवप्रश्नचूलिका ॥
		पंचभागहारचूलिका
४०८	४०५	मंगलाचरण
४०९-४१०	४०५-४०६	पंचभागहारोंके नाम-लक्षण व कार्य, बन्ध होनेपर संक्रमण होता है
४११-४१३	४०७-४०८	किन प्रकृतियोंका कहाँपर कौनसा संक्रमण होता है और कौनसा संक्रमण नहीं होता
४१५-४२८	४०८-४१७	
४१४	४०८	तिर्यंच एकादशप्रकृतियोंके नाम
४२९	४२१	स्थिति व अनुभागबंध सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यंत है, वहींतक संक्रमण है।
४३०-४३५	४२२	पंचभागहार व उत्कर्षण-अपकर्षणभागहारसम्बन्धी अल्पबहुत्व
		॥ इति पंचभागहारचूलिका ॥
		अथ दसकरणचूलिका
४३६	४२५	मंगलाचरण

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
४३७-४४०	४२५	दस करणों के नाम व लक्षण
४४१-४५०	४३२-४३५	कर्मप्रकृति व गुणस्थानोंमें दसकरणोंका कथन
४४४	४३३	बंधके समय ही उत्कर्षण व संक्रमण होता है
४५०	४३५	उपशामनाकरण, निधत्तिकरण, निकाचितकरण ये तीनों अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानके प्रथमसमयमें व्युच्छिन्न हो जाते हैं
		॥ इति दसकरणचूलिका ॥
		卐 ५. स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार 卐
४५१	४३६	मंगलाचरणपूर्वक प्रकृतियोंके बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंको कहनेकी प्रतिज्ञा
४५२	४३६	गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतिबन्धस्थान तथा उपशांतमोह आदि तीन गुणस्थानों में सातावेदनीयका बन्ध
४५३	४३७	मूलप्रकृतियोंमें भुजकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्यबन्ध
४५४-४५६	४३८-४३९	मूलप्रकृतियोंके उदय व उदीरणास्थान
४५७	४३९	मूलप्रकृतियोंके सत्त्वस्थान
४५८	४३९	ज्ञानावरणादिमें प्रत्येककर्ममें बन्धस्थानोंका कथन
४५९-४६०	४४०	दर्शनावरणके बन्धस्थान भुजकार, अल्पतर, अवस्थित व अवक्तव्य बन्ध
४६१	४४१	दर्शनावरणके उदयस्थान
४६२	४४१	दर्शनावरणके सत्त्वस्थान
४६३-४६५	४४१-४४२	मोहनीयकर्मके १० बन्धस्थानोंका गुणस्थानमें कथन, उनमें ध्रुवबंधीप्रकृति
४६६-६७	४४३	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें भंगोंका कथन
४६८	४४५	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें भुजकार, अल्पतर व अवस्थित बंधोंकी संख्या
४६९-४८०	४४५	भुजकार, अल्पतर, अवस्थित व अवक्तव्यबन्धोंका लक्षण और उनकी संख्याओं का विवरण
४७१-४७२	४४७	मोहनीयकर्मके भुजकारबन्धोंके भंगोंका कथन
४७३	४५०	मोहनीयकर्मके अल्पतरबन्धोंके भङ्ग
४७४	४५२	मोहनीयकर्मके अवक्तव्य व अवस्थितबन्धोंके भङ्ग

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
४७५-४८९	४५२	मोहनीयकर्मके उदयस्थान व उनके भंगों तथा प्रकृतियोंकी संख्या
४७८	४५६	अनन्तानुबंधीके विसंयोजकके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवलीतक अनुदय
४९०-५०७	४६४	मोहनीयकर्मके उदयस्थानों व उनकी प्रकृतियोंका गुणस्थानोंमें उपयोग, योग, संयम, देशसंयम, लेश्या और सम्यक्त्वकी अपेक्षा कथन
[illegible]	[illegible]	किस गुणस्थानमें कौन, कौनसी लेश्या होती है?
५०८-५१५	४७९	मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थान
५१६-५१८	४८४	मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थान
५१९-५२०	४८७	नामकर्मसम्बन्धी स्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदों का कथन
५२१	४८७	गुणस्थानोंमें नामकर्मके बंधस्थानोंका कथन
५२२-५२३	४८८	नामकर्मके बन्धस्थानमें कर्मपदका कथन
५२४	४८८	आतप और उद्योतप्रकृति किस जीवपदके साथ बँधती है ?
५२५	४८९	तीर्थंकर प्रकृतिका कौन जीव किसगति सहित बन्ध करते हैं?
५२६-५२९	४८९	नामकर्मकी ध्रुवप्रकृतियाँ
५३०-५३१	४९०	बंधस्थानोंके भेद
५३२-५३७	४९२	बन्धस्थानोंके भङ्ग
५३८-५४३	४९४	किसगतिका जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होता है और क्या-क्या प्राप्त कर सकता है?
५४४-५५१	४९६	चौदहमार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थानोंका कथन
५५२-५५३	५१४	नामकर्मके बन्धस्थानोंमें पुनरुक्तभङ्ग
५५४-५५ व ५६३-५८२	५१६ ५१९-५३३	बन्धस्थानोंमें भुजकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यस्थानोंकी संख्या आदि, भुजकारादिके लक्षण
५५६-५५९	५१६	किस गुणस्थानसे गिरकर या चढ़कर किस-किस गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है?
५६०-५६१	५१८	किस-किस गुणस्थानवाले मरणको प्राप्त नहीं होते ?
५६२	५१८	कृतकृत्यवेदककालके चारभागोंमें मरणकी व्यवस्था
५८३-५९८	५३४-५४३	नामकर्म के उदयस्थान
५८६-५८७	५३५	केवलीसमुद्घातमें छहों पर्याप्तियाँ

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
५९१	५३६	तीर्थंकरप्रकृतिका उदय केवलीके ही होता है।
५८८-६०८	५३६-५५३	नामकर्म के उदयस्थानों के भङ्ग
६०९-६२६	५५४-५६१	नामकर्म सत्त्वस्थान
६११	५५६	मनुष्यगत्यानुपूर्वीका क्षय अयोगिगुणस्थानके द्विचरमसमय या चरमसमयमें उद्वेलना, प्रकृति,
६१२-६१७	५५८-५६०	स्वामी व क्रम
६१५	५५९	वेदकयोग्यकाल, उपशमसम्यक्त्वयोग्यकाल
६१८-६१९	५६०-५६१	प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, देशसंयम, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना, सकलसंयम व उपशमश्रेणि कितनीबार
६२७-६२९	५६४-५६६	मूलप्रकृतिसम्बन्धी बन्धोदयसत्त्व भङ्ग
६३०-६३४	५६७-५६८	उत्तरप्रकृतियोंमें बन्धोदयसत्त्व भङ्ग
६३५-६३८	५६९-५७०	गोत्रकर्मके त्रिसंयोगी भंग
६३९-६४९	५७१-५७५	आयुकर्मके त्रिसंयोगीभङ्ग
६५०-६५२	५७७	वेदनीय-आयु-गोत्र इन तीनों गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या
६५३-६९१	५७८-६०२	मोहनीयकर्मके भंग गुणस्थानोंमें
६९२-७३९	६०३-६२४	नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वसम्बन्धी त्रिसंयोगी भंग गुणस्थान व मार्गणाओंमें
७४०-७८४	६२४-६६०	नामकर्मके बन्ध आदिमें एकको आधार और दो को आधेय मानकर कथन

卐 ६. बन्धप्रत्ययाधिकार 卐

७८५	६६१	मंगलाचरण
७८६-७९०	६६१-६६३	प्रत्ययके भेद, गुणस्थानोंमें प्रत्यय
क्षेपक ७ गाथा	६६४-६६५	प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति व अनुदयका कथन
प्रा.पं.सं.की क्षेपक १७ गाथा	६६८-६७१	मार्गणाओंमें प्रत्यय
७९१	६७२	प्रत्ययोंके स्थान, स्थानोंके प्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारण व भंग
७९२	६७२	गुणस्थानोंमें प्रत्ययस्थान

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय-विषयानुक्रमणिका :- विषयानुक्रमणिका की सूचीमें उल्लेख
७९३	६७३	प्रत्ययस्थानोंके प्रकार
७९४-७९८	६७५-६८५	बंधप्रत्ययोंमें कूटप्रकार, कूटोच्चारण व भंगसंख्या
७९९	६८५	एकसंयोगी, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगसंख्या निकालनेका करणसूत्र गणित
८००-८१०	६८६-६९३	ज्ञानावरणादि कर्मोंमें अनुभागबन्धके विशेष प्रत्यय
	६९४	महाबन्धग्रन्थानुसार प्रत्ययोंका कथन
	६९५	रत्नत्रय बंधका भी और मोक्षका भी कारण है
		॥ इति बंधप्रत्ययाधिकार ॥
		卐 ७. भावचूलिकाधिकार 卐
८११	६९६	मंगलाचरणसहित भावप्ररूपणा कहनेकी प्रतिज्ञा
८१२-८१९	६९६-७००	औपशमिकादि पाँचभावोंका कथन
८१९ टीका	७००	जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व औदयिक है
८१९ टीका		सिद्ध उपचारसे जीव हैं
८१९ टीका		आत्मा मूर्त या अमूर्त
८२०-८७५	७०२-७५०	गुणस्थान व मार्गणामें प्रत्येकभंग व संयोगीभंग
८७६	७५०	एकान्तमतोंका कथन, क्रियावादी आदिके भेद
८७७-७८	७५०	क्रियावादियोंके भेदोंकी उत्पत्ति
८७९	७५१	एकान्तकालवादका लक्षण
८८०	७५२	ईश्वरकृतवाद एकान्त
८८१	७५२	आत्मवाद एकान्त
८८२	७५२	नियतिवाद एकान्त
८८३	७५२	स्वभाववाद एकान्त
८८४-८५	७५२-७५३	अक्रियावादियोंके भंग
८८६-८७	७५३	अज्ञानवादके भंग
८८८-८९	७५४	वैनयिकवादियोंके भंग
८९०	७५५	पुरुषार्थवाद एकान्त
८९१	७५५	दैववाद एकान्त
८९२	७५५	संयोगवाद एकान्त

गाथा सं.	पृष्ठ सं.	विषय
८९३	७५५	लोकवाद
८९४	७५६	जितने वचनके मार्ग हैं उतने नय हैं
८९५	७५६	परसमयका वचन 'सर्वथा' है
		卐 ८. त्रिकरणचूलिकाधिकार 卐
८९६	७५७	मंगलाचरण
८९७	७५७	तीनकरणोंके नाम
८९८-९०८	७५८-७६७	अधःकरण व अनुकृष्टिरचना
९०९-९१०	७६७	अपूर्वकरण, स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक, गुणश्रेणी
९११-९१२	७७०	अनिवृत्तिकरण
		卐 ९. कर्मस्थितिरचनाधिकार 卐
९१३	७७१	मंगलाचरण
९१४-९१६	७७१-७७२	आबाधाकाल सातकर्मों का
१५६-१५७	१२७	
९१७, १५८	७७२, १२८	आयुकर्मकी आबाधा
९१८,१५९	७७३, १२९	उदीरणाका आबाधाकाल
९१९-९४०	७७४-७८८	निषेकरचना
१६०-१६२	१३०-१३१	
९४१	७८८	आबाधाकाल समाप्त होनेपर क्रमसे-निषेक निर्जीर्ण होते हैं
९४२	७८९	एकसमयप्रबद्धप्रमाण बँधता है और उतना निर्जीर्ण होता है
९४३	७८९	सत्तारूप द्रव्य कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध
९४४	७९०	त्रिकोणयन्त्र जोड़नेकी विधि
९४५-९४६	७९०-७९१	स्थितिके भेदोंका कथन निरन्तर बन्धस्थान व कषायपरिणामोंमें सान्तर बन्धस्थान
९४७-९६२	७९१-८०२	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान
९६३-९६४	८०३	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंमें अनुभागाध्यवसायस्थान
९६५-९७२	८०४-८०५	प्रशस्ति

॥इति गोम्मटसारकर्मकाण्ड: ॥



गोम्मटसार कर्मकाण्ड

सिद्धान्तज्ञानदीपिका हिन्दी टीका

अथ प्रकृति समुत्कीर्तनाधिकार

।। मंगलाचरणम् ।।

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं[1] वोच्छं ॥१॥

अर्थ – जो सम्यक्त्व आदि गुणरूपी रत्नों के स्थान हैं, गुणरत्नों से विभूषित हैं, मोक्षरूपी महालक्ष्मी को देने वाले हैं, ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर देव को मस्तक झुकाकर प्रणाम कर मैं प्रकृति समुत्कीर्तन नामक ग्रन्थ कहता हूँ।

विशेषार्थ – ज्ञानावरणादि मूल भेद तथा उनके उत्तर भेदों सहित समुत्कीर्तन अर्थात् स्वरूप वर्णन है जिसमें उसे प्रकृति समुत्कीर्तन ग्रन्थ कहते हैं। सो क्या करके मैं ऐसे ग्रन्थ को कहूँगा? श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को सिर नवाकर नमस्कार करके कहूँगा। कैसे हैं वे नेमिनाथ भगवान ? गुणरूपी रत्न के आभूषण से जो विभूषित हैं, पुनः कैसे हैं ? जो महान् वि-विशिष्ट ई-लक्ष्मी, उसको राति– देते हैं वे महावीर हैं, पुनः कैसे हैं? आत्मस्वरूप की उपलब्धि रूप जो सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व, वही हुआ रत्न, उसके जो स्थान स्वरूप हैं। इन गुणों से विशिष्ट इष्ट देवता-नमस्कार पूर्वक प्रकृति समुत्कीर्तन ग्रन्थ को कहने की आचार्य ने प्रतिज्ञा की है।

---

१. पयडि समुक्कित्तणं – पयडिसरूवणिरूवणं (ध. पु. ६ पृ. ५ सू. ३ की टीका)

भावार्थ – यहाँ पर ग्रन्थकर्त्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य ने नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके अपने उत्तर भेद सहित ज्ञानावरणादि मूल कर्मप्रकृति का वर्णन करने वाले 'प्रकृति समुत्कीर्तन' ग्रन्थ को कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्रकृति शब्द का क्या अर्थ है? इसके उत्तरस्वरूप आचार्य गाथासूत्र कहते हैं –

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

अर्थ – प्रकृति, शील और स्वभाव ये एकार्थवाची हैं। जिस प्रकार स्वर्ण-पाषाण में किट्टकालिमा का अनादि सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव-शरीर (कार्मण) का अनादि काल से सम्बन्ध है। इन दोनों का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है।

विशेषार्थ – प्रकृति का अर्थ शील या स्वभाव है[१], जैसे अग्नि का ऊर्ध्वगमन, वायु का तिर्यग्गमन और जल का अधःगमन स्वभाव है, उसी प्रकार अन्य कारण-निरपेक्ष जो होता है और जो अपने में होता है वह स्वभाव है। जीव का स्वभाव रागादिरूप परिणमने का और कर्म का स्वभाव तद्रूप परिणमाने का है।[२] इनमें जीव का अस्तित्व अहं प्रत्यय से होता है तथा कर्म का अस्तित्व जीव में ज्ञान की वृद्धि और हानि से सिद्ध होता है क्योंकि आवरण कर्म के बिना तरतमता नहीं हो सकती है[३]।

शंका – यदि कर्मोदय होने पर रागादि होते हैं और रागादि होने पर कर्मबन्ध होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि रागादि बिना कर्मबंध नहीं होता और कर्म का बंध व उदय, बिना रागादिक के नहीं होता।

समाधान – जीव और कर्मों का अनादिकाल से बन्ध चला आ रहा है; दूसरे, पूर्वबद्ध कर्मोदय से रागादि होते हैं और रागादि से अन्य नवीन कर्मबन्ध होता है। यदि वही कर्मबन्ध होता जो रागादि का कारण है तो इतरेतराश्रय दोष संभव होता, किन्तु ऐसा है नहीं।

शंका – जीव अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक हैं। मूर्तिक-अमूर्तिक का बन्ध असंभव है, यदि मूर्तिक-अमूर्तिक का बन्ध होने लगे तो आकाश आदि के भी कर्मबन्ध का प्रसंग प्राप्त होगा।

समाधान – 'जीव अमूर्तिक ही है' ऐसा एकान्त नहीं है, कर्मबन्धरूप पर्याय की अपेक्षा व उससे संयुक्त होने के कारण जीव कथंचित् मूर्तिक है और शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा कथंचित् अमूर्तिक है। कहा भी है –

---

१. सर्वार्थसिद्धि ८/३ । २. रागादिपरिणमनमात्मनः स्वभावः रागाद्युत्पादकत्वं तु कर्मणः । कर्मकाण्ड संस्कृतटीका गाथा २।
३. जयधवल पु. १ पृ. ५६ ।

बंधं पडि एयत्तं, लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं ।
तम्हा अमुत्ति भावो, णेयंतो होई जीवस्स ।। इति ।।

अर्थ – यद्यपि आत्मा बन्ध की अपेक्षा एक है, तथापि लक्षण की अपेक्षा वह भिन्न है अत: जीव का अमूर्तिक भाव अनेकान्तरूप है। वह एक अपेक्षा से तो है और एक अपेक्षा से नहीं है[१]।

अमृतचन्द्राचार्य ने भी कहा है –

"अमूर्त: स्वरूपेण जीव: पररूपावेशान्मूर्तोऽपि"[२] जीव स्वरूप से अमूर्त है तथापि पर आवेश से मूर्तिक है। पुनश्च कहा है –

"अनादिबन्धनबद्धत्वतो मूर्तानां जीवावयवानां मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धे:"[३] जीव के प्रदेश अनादिकालीन बन्धन से बद्ध होने के कारण मूर्त हैं। अत: मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होने में कोई विरोध कोई नहीं आता।

"अणादिबंधणबद्धस्स जीवस्स संसारावत्थाए अमुत्तत्ताभावादो"[४] अनादि- कालीन बन्धन से बद्ध रहने के कारण जीव का संसार अवस्था में अमूर्त होना संभव नहीं है।

अब संसारी जीव कर्म-नोकर्म के साथ किस प्रकार का संबंध करता है यह कहते हैं–

देहोदयेण सहिओ, जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं, तत्तायसपिंडओव्व जलं ।।३।।

अर्थ – यह जीव औदारिक आदि शरीर नामकर्म के उदय से योग सहित होकर प्रतिसमय कर्म-नोकर्म वर्गणा को सर्वांग से ग्रहण करता है, जैसे तपाया हुआ लोहे का गोला सर्वांग से जल को ग्रहण करता है।

विशेषार्थ – देह से मतलब है औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण नामकर्म। इनमें से कार्माण नामकर्म के उदय से उत्पन्न योग से सहित जीव ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म को ग्रहण करता है। शेष शरीर नामकर्म के उदय से सहित जीव उस नामवाले नोकर्म को ग्रहण करता है।

यह जीव प्रतिसमय कर्म-नोकर्मरूप होने वाले कितने पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है, यह कहते हैं –

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. २ सू. ७ की टीका तथा बृ.द्र.सं. गाथा ७ की टीका ।
२. पंचास्तिकाय गाथा ९७ की टीका तथा तत्त्वार्थसार ५/१६-१९
३. ध.पु. १ पृ. २९२ ४. ध.पु. १५ पृ. ३२

सिद्धाणंतिमभागं, अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि, जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥

अर्थ – यह जीव सिद्ध जीवों के अनंतवेंभाग तथा अभव्य जीवराशि जो जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है, उससे अनंतगुणी[१] वर्गणाओं वाले समयप्रबद्ध को प्रतिसमय बाँधता है, तथा योगों की विशेषता से हीनाधिक रूप कर्म परमाणुओं को बाँधता है।

विशेषार्थ – जैसे अधिक शक्ति वाला चुम्बक अधिक लोहकणों को ग्रहण करता है और हीन शक्तिवाला चुम्बक अल्प लोहकणों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी योगशक्ति की हीनाधिकता से अल्प या अधिक कर्म परमाणुओं को ग्रहण करता है।

कर्म परमाणुओं के बन्ध का प्रमाण कहकर अब उनके उदय व सत्त्व का प्रमाण कहते हैं –

जीरदि समयपबद्धं, पओगदो णेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥

अर्थ – प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध की निर्जरा होती है, किन्तु प्रयोग से अनेक समयप्रबद्धों की भी निर्जरा हो जाती है तथापि कुछ कम डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य सत्ता में रहता है।

विशेषार्थ – प्रतिसमय नाना निषेकों के समूहरूप परमाणुओं का एक समय-प्रबद्ध फल देकर निर्जीर्ण हो जाता है। अर्थात् उदयरूप होकर निर्जरा को प्राप्त होता है, किन्तु तपस्यारूप विशिष्ट अतिशय से तथा आत्मा की सम्यक्त्वादि प्रवृत्ति के प्रयोगरूप हेतुओं से निर्जरा के ११ स्थान गुणस्थानाधिकार में कहे हैं; उनकी विवक्षा से एक समय में अनेक समयप्रबद्धों की भी निर्जरा हो जाती है, फिर भी डेढ़ गुणहानि से गुणित समय-प्रबद्ध सत्ता में रहता है।

शंका – प्रति समय में एक समयप्रबद्ध का बन्ध कहा और एक समयप्रबद्ध की निर्जरा कही तो सत्त्व डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कैसे कहा ?

समाधान – इस शंका के समाधान के लिए इसी ग्रन्थ की गाथा ९४२-९४३-९४४ देखनी चाहिए।

---

१. यहाँ परमाणुओं के अनन्तपने का नियत स्थल निश्चय करने के लिए दो प्रकार से कथन किया है। यथा – वे परमाणु सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण होकर भी अभव्यों की संख्या से अनन्तगुणे हैं। यानी यहाँ सिद्धों का ऐसा अनन्तवाँ भाग गृहीत है जो अभव्यों से अनन्तगुणत्व रखता है।

सामान्य से कर्म के भेद-प्रभेदों को दो गाथाओं से कहते हैं –

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

अर्थ – सामान्य से कर्म एक प्रकार का है, द्रव्य-भाव की अपेक्षा दो प्रकार का है। पुद्गलपिंड को द्रव्यकर्म कहते हैं तथा उसमें जो फल देने की शक्ति है उसे भावकर्म कहते हैं।

विशेषार्थ – कार्य में कारण के उपचार से उस शक्ति से उत्पन्न हुए जो अज्ञानादि वा क्रोधादिरूप परिणाम हैं वे भी भावकर्म ही हैं।

तं पुण अट्ठविहं वा, अडदालसयं असंखलोगं वा ।
ताणं पुण घादित्ति, अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥

अर्थ – सामान्य से कर्म आठ प्रकार भी है अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख्यातलोक प्रमाण भी उसके भेद हैं तथा उन आठ कर्मों में घातिया और अघातियारूप दो भेद हैं।

आठ कर्मों के नाम बताते हुए उनमें घातिया व अघातियारूप कर्मों का विभाग करते हैं –

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठ पयडीओ[1] ॥८॥

अर्थ – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ (स्वभाव) हैं।

आवरणमोहविग्घं, घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आउगणामं गोदं, वेयणियं तह अघादित्ति ॥९॥

अर्थ – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार तो घातिया कर्म हैं क्योंकि ये जीव के (देवत्वरूप)[2] गुणों को घातते हैं तथा आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय ये चार अघातिया हैं। ये जीव के (देवत्व प्रगट होने रूप) गुणों को नहीं घातते अतः इनको अघातिया कहा है।

---

१. प्रा. पं. सं. प्रकृति समुत्कीर्तनाधिकार गाथा २ परं तत्र गाथोत्तरार्धे "आउगणामा गोदं तहंतरायं च मूलाओ" इतिपाठः।
२. ज.ध. पुस्तक १ पृष्ठ ६७।

अब जीव के उन गुणों को कहते हैं जिनको ये कर्म घातते हैं –

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदियादी, खओवसमिए य घादी दु ॥१०॥

अर्थ – केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व तथा 'च' कार से क्षायिक चारित्र, द्वितीय 'च' कार से क्षायिक दानादि ५ लब्धिरूप क्षायिक भाव एवं मति- श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञानादिक रूप क्षायोपशमिक भाव, इन गुणों को ज्ञानावरणादि कर्म घातते हैं इसलिए उन्हें घातिया कहते हैं।

अब अघातिया कर्मों में सर्व प्रथम आयुकर्म का कार्य कहते हैं –

कम्मकयमोहवड्ढियसंसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं, करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

अर्थ – कर्म के उदय से उत्पन्न हुए मोह से अनादि चतुर्गतिरूप संसार की वृद्धि होती है। ऐसे संसार की चार गतियों में जीव का अवस्थान कराने वाला आयु कर्म है, जैसे काष्ठ का खोड़ा मनुष्य को रोक कर रखता है।

विशेषार्थ – **'देहट्ठिदि अण्णहाणुववत्तीदो'** अर्थात् देह की स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती इस अन्यथानुपपत्ति से आयुकर्म का अस्तित्व जानना चाहिए।[१]

नाम कर्म का कार्य कहते हैं –

गदि आदि जीवभेदं, देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमनं, करेदि णामं अणेयविहं ॥१२॥

अर्थ – गति आदि के भेद से नामकर्म अनेक प्रकार का है। वह नारकी आदि जीव की पर्याय के भेदों को एवं औदारिक शरीरादि पुद्गल के भेदों को और एक गति से दूसरी गति में जानेरूप जीव के परिणमन को अनेक प्रकार का करता है, इस प्रकार नामकर्म अनेक कार्य करता है।

विशेषार्थ – नामकर्म जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकीरूप है। जीव में जिसका फल हो वह जीवविपाकी, पुद्गल में जिसका फल हो वह पुद्गल विपाकी एवं विग्रहगति में जिसका फल हो वह क्षेत्रविपाकी है। इस प्रकार नामकर्म चित्रकार के समान अनेक प्रकार से जीवविपाकी आदि

१. ध.पु. ६ सूत्र ९ की टीका।

प्रकृतियोंरूप परिणमन करता है। उक्तं च – **''नानामिनोति इति नाम''**[१] जो नाना प्रकार से बनाता है वह नामकर्म है।

अब गोत्र कर्म का कार्य कहते हैं –

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं, उच्चं णीचं हवे गोदं ॥१३॥

अर्थ – संतान क्रम से चले आये जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं। उच्च व नीच आचरण से उच्च व नीच गोत्र होता है।

विशेषार्थ – **''उच्चं-नीचं गमयतीति गोत्रम्''**[२] अर्थात् जो उच्च और नीच का आचरण कराता है उसे गोत्र कहते हैं। तथैव – **'गमयत्युच्च-नीचकुलमिति गोत्रम्'**[३] अर्थात् जो उच्च और नीच कुल का ज्ञान कराता है अथवा उच्च या नीच कुल को प्राप्त कराता है उसे गोत्र कहते हैं। **''न च निष्फलं गोत्रम्, दीक्षायोग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृतसंबंधानां आर्यप्रत्ययाभिधान-व्यवहारनिबन्धनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चैर्गोत्रं तत्रोत्पत्तिहेतुकर्माप्युच्चैर्गोत्रम्।..... तद्विपरीतम् नीचैर्गोत्रम्**[४]।'' अर्थात् गोत्र कर्म निष्फल है, यह बात नहीं है क्योंकि जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचारवालों के साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकार के ज्ञान और वचन व्यवहार के निमित्त हैं उन पुरुषों की परम्परा को उच्चगोत्र कहा जाता है तथा उनमें उत्पत्ति का कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है।..... उससे विपरीत कर्म नीच गोत्र है।

कुल परम्परा के आचरण के विषय में एक कहावत भी है –

सियार के एक बच्चे को बचपन से ही सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सभी बच्चे किसी जंगल में गये। वहाँ उन्होंने हाथियों का समूह देखा, देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे हाथी के सामने हुए, किन्तु वह सियार जिसमें अपने कुल का डरपोकपने का संस्कार था हाथी को देखकर भागने लगा। तब वे सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई जानकर उसका अनुकरण करते हुए अपनी माता के पास लौट आये और उस सियार की शिकायत की कि इसने हमको शिकार से रोका तब सिंहनी ने उस सियार के बच्चे से एक श्लोक कहा, जो इस प्रकार है –

---

१. ध.पु. १३ पृ. २६२ सूत्र १०० की टीका ।
२. ध.पु. १३ पृ. ३८७ सूत्र १३४ की टीका।
३. ध.पु. ६ पृ. १३ सूत्र ११ की टीका
४. ध.पु. १३ पृ. ३८९ सूत्र १३५ की टीका ।

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोऽसि पुत्रक! ।
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो, गजस्तत्र न हन्यते ॥

अर्थ - हे पुत्र ! तू शूरवीर है, विद्यावान है, देखने में सुन्दर है, किन्तु जिस कुल में तू उत्पन्न हुआ है उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते हैं। (अत: तू यहाँ से भाग जा नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी।)

भावार्थ - रजोवीर्य का संस्कार अवश्य आ जाता है, चाहे वह कैसे भी विद्यादिगुणों से सहित क्यों न हो, उस पर्याय में संस्कार नहीं मिटता, क्योंकि जैसे रजवीर्य से शरीर-मस्तिष्क व मन का निर्माण होता है वैसे ही जीव के विचार होते हैं। खानपान व बाह्य वातावरण का भी प्रभाव विचारों पर पड़ता है।

अब वेदनीयकर्म के कार्य कहते हैं -

अक्खाणं अणुभवणं, वेयणियं सुहसरूवयं सादं।
दुक्खसरूवमसादं, तं वेदयदीदि वेदणियं ॥१४॥

अर्थ - इन्द्रियों द्वारा अपने रूपादि विषयों का अनुभव करना वेदनीय है। उसमें सुखरूप से अनुभव कराना सातावेदनीय और दु:खरूप से अनुभव कराना असातावेदनीय का कार्य है। अत: सुख-दु:ख का जो अनुभव करावे वह वेदनीयकर्म है।

विशेषार्थ - **'वेद्यत इति वेदनीयम्'**[1] अर्थात् जो वेदन-अनुभवन किया जावे वह वेदनीय है। दु:खका प्रतिकार करने की कारणभूतसामग्री को मिलाने वाला और दु:ख के उत्पादक द्रव्यकर्म की शक्तिका विनाश करनेवाला सातावेदनीयकर्म है।[2] सुखस्वभाववाले जीव को दु:ख उत्पन्न करनेवाला और दु:ख के प्रशमन करने में कारणभूतसामग्री का अपसारक असातावेदनीयकर्म[3] है।

आवरण का क्रम बताने के लिए पहले जीव के प्रधानगुणों को कहते हैं -

अत्थं देक्खिय जाणदि, पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं।
इदि दंसणं च णाणं, सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥१५॥

अर्थ - संसारी जीव पदार्थ को देखकर जानता है। पश्चात् वह अस्ति-नास्ति-रूप सप्तभंगी से निश्चयकर श्रद्धान करता है। इस प्रकार दर्शन-ज्ञान एवं सम्यक्त्व, ये जीव के गुण हैं।

---

१. ध. पु. ६ पृ. १० सूत्र ७ की टीका।
२. सातावेदनीय यत: अतिशय सुख को उत्पन्न करता है अतएव वह शुभतम (सबसे शुभ) है। धवल १२/४६
३. ध. पु. १३ पृ. ३५७ सूत्र ८८ की टीका

अब ज्ञानावरणादि कर्मों के अनुक्रम का कारण कहते हैं -

अब्भरहिदादु पुव्वं, णाणं तत्तो हि दंसणं होदि।
सम्मत्तमदो विरियं, जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

अर्थ - आत्मा के सर्वगुणों में ज्ञान गुण पूज्य एवं प्रधान है। इसलिए सर्व प्रथम ज्ञान को रखा है। इसके पश्चात् दर्शन कहा और उसके बाद सम्यक्त्व। वीर्य-शक्तिरूप है, वह जीव-अजीव दोनों में पाया जाता है। अत: उसे सबसे अन्त में कहा है।

विशेषार्थ - व्याकरण का नियम है कि जिसमें अल्पाक्षर हों उसे पहले रखना। इसी कारण अल्पाक्षर वाला एवं पूज्य-प्रधान होने से ज्ञान को पहले कहा है। पश्चात् अनुक्रम से दर्शन व सम्यक्त्व को कहकर अन्त में वीर्य को रखा, क्योंकि जीव में ज्ञानादिक शक्ति तथा पुद्गल में शरीरादिरूप शक्ति है। इस प्रकार ज्ञानादि का आवरण अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं मोहनीय और अन्तराय का अनुक्रम जानना।

यद्यपि अन्तरायकर्म घातिया है तथापि उसे अघातिया के अन्त में क्यों कहा? इसका समाधान अगली गाथा द्वारा करते हैं -

घादीवि अघादिं वा, णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो, विग्घं पढिदं अघादिचरिमह्मि ॥१७॥

अर्थ - अन्तरायकर्म यद्यपि घातिया है, तथापि अघातियाकर्मों के समान जीव के गुणों को पूर्णरूप से घातने में समर्थ नहीं है। नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से ही अन्तरायकर्म अपना कार्य करता है; इसी कारण उसे अघातिया कर्मों के अन्त में कहा है।

अथानन्तर अन्य कर्मों का क्रम कहते हैं -

आउबलेण अवट्ठिदि, भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं, इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥१८॥

अर्थ - आयुकर्म के निमित्त से भव में स्थिति होती है। इसलिए नामकर्म से पूर्व आयुकर्म को कहा है और भव के आश्रय से ही नीचपना अथवा उच्चपना होता है इसलिए नामकर्म को गोत्रकर्म के पहले कहा है।

अघातिया होते हुए भी वेदनीयकर्म को घातिया के बीच में क्यों कहा? इस शंका के

समाधान स्वरूप गाथा कहते हैं -

घादिंव वेयणीयं, मोहस्स बलेण घाददे जीवं ॥
इदि घादीणं मज्झे, मोहस्सादिम्हि पढिदं तु॥१९॥

अर्थ - वेदनीयकर्म मोहनीयकर्म के बल से ही घातियाकर्मों के समान जीवों के (अव्याबाध) गुणों को घातता है, इसलिए घातिया के मध्य में मोहनीय के पहले इसको कहा है।

विशेषार्थ - घातियारूप मोहनीयकर्म के रति-अरतिरूप उत्तरभेदों के उदय से ही वेदनीयकर्म जीवगुणों (अव्याबाधगुण) को घातता है। सुख-दुःख-स्वरूप साता-असाता के कारणभूत इन्द्रियविषयों को एकत्र कर उनका अनुभव कराता है, इसलिए घातियाकर्मों के बीच में मोहनीय के पहले वेदनीय को रखा गया है।

वस्तु का स्वभाव अच्छा या बुरा नहीं है, जब तक राग-द्वेष रहते हैं तभी तक यह जीव किसी को इष्ट और किसी को अनिष्ट समझता है, क्योंकि एक वस्तु किसी को अच्छी नहीं लगती तो, वही वस्तु किसी को अच्छी लगती है। जैसे - कटु रसवाला नीम का पत्ता मनुष्य को अप्रिय लगता है, किन्तु वही ऊँट को प्रिय लगता है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तु अप्रिय या प्रिय नहीं है। यदि वस्तु ही वैसी हो तो दोनों को एकसमान लगनी चाहिए। इस कारण यह सिद्ध हुआ कि मोहनीयकर्मरूप राग-द्वेष के निमित्त से एवम् वेदनीय का उदय होने पर ही इन्द्रियों से उत्पन्न सुख तथा दुःख का अनुभव होता है। मोहनीय के बिना वेदनीय कर्म, राजा के बिना निर्बल सैन्य की तरह कुछ नहीं कर सकता। अर्थात् इन्द्रियजनित सुख-दुःख का वेदन नहीं करा सकता, किन्तु अव्याबाधगुण का तो घात करता ही है।

इस प्रकार कर्मों का जो पाठक्रम सिद्ध हुआ उसका उपसंहार करते हैं -

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं॥२०॥

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इस प्रकार जो पाठ का क्रम है वह पहले पाठक्रम के समान ही सिद्ध हुआ।

अब दृष्टान्त द्वारा कर्मों के स्वभाव को कहते हैं -

पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा, तहवि य कम्मा मुणेयव्वा[1] ॥२१॥

१. प्रा. पं. सं. प्रकृ. समु. गाथा ३।

अर्थ - देवता के मुख पर ढके वस्त्र के समान ज्ञानावरण, द्वारपाल के समान दर्शनावरण, शहद लपेटी तलवार के समान वेदनीय, मदिरा के समान मोहनीय, हलि (खोड़ा) के समान आयु, चित्रकार के समान नाम, कुम्भकार के समान गोत्र और भण्डारी के समान अन्तरायकर्म है। जिस प्रकार इनके भाव होते हैं उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मों के भी जानना।

विशेषार्थ - **'ज्ञानं आवृणोति'** अर्थात् ज्ञान को ढके उसे ज्ञानावरणीयकर्म कहते हैं। इसका स्वभाव यह है कि जैसे देवता के मुख पर ढका वस्त्र देवता के ज्ञान को नहीं होने देता, उसीप्रकार ज्ञानावरणकर्म ज्ञान को आच्छादित करता है अर्थात् वस्तु का ज्ञान नहीं होने देता। जो दर्शन का आवरण करे अर्थात् वस्तु को नहीं देखने दे वह दर्शनावरण, इसका स्वभाव द्वारपाल के समान है। जैसे - द्वारपाल राजा को देखने से रोक देता है, वैसे ही यह कर्म राजारूप वस्तु-निज आत्मा का दर्शन नहीं होने देता। (अन्तर्मुख चित्प्रकाश को दर्शन कहा है) जो इन्द्रियजनित सुख-दुःख का वेदन अर्थात् अनुभव करावे अथवा अव्याबाधगुण का घात करे वह वेदनीयकर्म है। इसका स्वभाव शहद लपेटी तलवार की धार के समान है, जिसको चखने से कुछ सुख का अनुभव तो होता है, किन्तु जीभ के कट जाने पर दुःख होता है उसी प्रकार साता और असाता सुख-दुःख उत्पन्न कराते हैं। जो मोहित करे-अचेत बनावे अर्थात् असावधान करे वह मोहनीयकर्म है। जैसे - शराब पीने पर मनुष्य पागल हो जाता है, उसी प्रकार 'मोह' आत्मा को मोहित कर देता है।

जो **'एति'** अर्थात् पर्याय धारण का निमित्त हो वह आयुकर्म है। इसका स्वभाव सांकल या काष्ठ यंत्र के समान है। जैसे - सांकल या काष्ठयंत्र पुरुष को अपने स्थान में ही स्थित रखता है दूसरे स्थानपर नहीं जाने देता उसी प्रकार आयुकर्म जीव को नर-नारकादि पर्यायों में रोके रखता है। जो **'नाना मिनोति'** अर्थात् अनेक प्रकार के कार्य बनावे वह नामकर्म है। यह चित्रकार के समान है, जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्राम बनाता है उसी प्रकार यह नामकर्म जीव को नारकादि अनेक रूप धारण कराता है। जो **'गमयति'** अर्थात् जीव के उच्च-नीचपने का ज्ञान करावे अथवा प्राप्त करावे वह गोत्रकर्म है। जैसे - कुम्भकार मिट्टी के छोटे-बड़े बर्तन बनाता है वैसे ही गोत्रकर्म भी जीव की उच्च-नीचअवस्था का ज्ञान कराता है। जो **'अन्तरं एति'** अर्थात् दाता और पात्र में अन्तर या व्यवधान करावे वह अन्तरायकर्म है, इसका स्वभाव भण्डारी के समान है। जैसे - भण्डारी दूसरे को दान देने में विघ्न डालता है - नहीं देने देता उसी प्रकार अन्तरायकर्म दान-लाभादि में विघ्न करता है। इस प्रकार इन आठ मूल कर्मों का शब्दार्थ से स्वरूप कहा है।

आठ मूल कर्मों की उत्तरप्रकृतियों को कहते हैं -

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
तेउत्तरं सयं वा, दुगपणगं उत्तरा होंति॥२२॥

अर्थ - ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के क्रमसे पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवै अथवा एक सौ तीन, दो और पाँच उत्तरभेद होते हैं।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र

णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं आउगं णामं गोदं अंतरायं चेइ। तत्थ णाणावरणीयं पंचविहं आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जव णाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेइ। दंसणावरणीयं णवविहं थीणगिद्धि णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेइ।

सूत्रार्थ - (कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ हैं) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। इनमें भी ज्ञानावरणीय पाँच प्रकार का है - अभिनिबोधक-श्रुत-अवधि व मन:पर्ययज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरण। दर्शनावरण नव प्रकार है - स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा व प्रचला तथा चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

अब दर्शनावरणीय के उत्तरभेदों में से निद्राओं का कार्य बताते हैं -

थीणुदयेणुट्ठावेदं, सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य।
णिद्दाणिद्दुदयेण य, ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को॥२३॥

अर्थ - स्त्यानगृद्धिनिद्रा के उदय से उठाया जाने पर भी सोता रहता है उस नींद में ही अनेक कार्य करता है तथा कुछ बोलता भी है, परन्तु सावधानी नहीं रहती। निद्रानिद्राकर्म के उदय से अनेक प्रकार से सावधान किया हुआ भी आँखें नहीं खोल सकता है।

पयलापयलुदयेण य, वहेदि लाला चलंति अंगाइं।
णिद्दुदये गच्छंतो, ठाइ पुणो वइसइ पडेई॥२४॥

अर्थ - प्रचलाप्रचलाकर्म के उदय से मुख से लार बहती है और हाथ आदि अङ्ग चलते हैं, किन्तु सावधान नहीं रहता तथा निद्राकर्म के उदय से गमन करता हुआ खड़ा हो जाता है, बैठ जाता है, गिर पड़ता है इत्यादि क्रियायें करता है।

पयलुदयेण य जीवो, ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि।
ईसं ईसं जाणदि, मुहं मुहं सोवदे मंदं॥२५॥

अर्थ - प्रचलाकर्म के उदय से यह जीव आँखों को कुछ-कुछ उघाड़कर सोता है और सोता हुआ भी थोड़ा-थोड़ा जानता है, बार-बार मन्दशयन करता है।

विशेषार्थ - यह निद्रा श्वाननिद्रा के समान है तथा अन्य सभी निद्राओं की अपेक्षा अल्पघातक है। इस प्रकार दर्शनावरणीयकर्म के कुछ भेदों का कार्य कहा।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र

वेदणीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ। मोहणीयं दुविहं दंसण-मोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेइ। दंसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं, उदयं संतं पडुच्चतिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तिं सम्मत्तं चेइ।

सूत्रार्थ - वेदनीयकर्म दो प्रकार का है - सातावेदनीय, असातावेदनीय। मोहनीयकर्म दोप्रकार का है - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय बंध की अपेक्षा एक प्रकार का है - मिथ्यात्वरूप; उदय व सत्त्व की अपेक्षा तीन प्रकार का है - मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति।

जंतेण कोद्दवं वा, पढमुवसमसम्मभाव जंतेण।
मिच्छं दव्वं तु तिधा, असंखगुणहीणदव्वकमा ॥२६॥

अर्थ - चक्की से दले हुए कोदों के समान प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यन्त्र से मिथ्यात्व रूपी कर्मद्रव्य, द्रव्यप्रमाण में क्रमसे असंख्यातगुणा - असंख्यातगुणा हीन होकर तीन प्रकार का हो जाता है।

विशेषार्थ - जैसे कोदों - धान्य विशेष को दलने पर तन्दुल, कण और भूसी, इस प्रकार तीन रूप हो जाते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूपीयंत्र के द्वारा मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप परिणमन करता है[१]। इनमें सबसे अधिक मिथ्यात्व का द्रव्य है। उससे असंख्यातगुणाहीन सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य है और उससे भी असंख्यातगुणाहीन सम्यक्त्व का द्रव्य है।

आयुकर्म बिना सातकर्मों के परमाणुओं का प्रमाण कुछकम डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है। इसमें सात का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने मोहनीय के परमाणु हैं, इनमें अनन्त का

१. "जंतएण दलिज्जमाणकोद्दवेसु कोद्दव-तंदुलद्धतंदुलाणं व दंसणमोहणीयस्स अपुव्वादिकरणेहिं दलियस्स तिविहत्तु वलंभा।" अर्थात् जांते से दले गए कोदों में कोदों, तंदुल और अर्ध तंदुल, इन तीन विभागों के समान अपूर्वकरणादि परिणामों के द्वारा दले गए दर्शनमोहनीय के त्रिविधता पाई जाती है (धवल पु. ६ पृ. २८ व ३९) इस सम्बन्ध में ध. पु. १३ पृ. ३५८ भी देखो।

भाग देने पर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाति तथा अवशेष देशघातिप्रकृति के परमाणु हैं। एक भाग प्रमाण सर्वघाती के परमाणुओं में सर्वघाती स्वरूप १७ प्रकृतियों का अर्थात् एक मिथ्यात्व और सोलह कषाय में बँटवारा करने के लिए १७ का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने मिथ्यात्व-प्रकृति के परमाणु हैं।[1] प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के प्रथम समय में ही मिथ्यात्व रूप एक कर्म के तीन कर्मांश होते हैं। प्रथम समयवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व से उदीरणा को प्राप्त कर्मप्रदेशों को लेकर उनका बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्व में देता है और उससे असंख्यातगुणा हीन कर्मप्रदेशाग्र सम्यक्त्व प्रकृति में देता है। प्रथम समय में सम्यग्मिथ्यात्व में दिये गये प्रदेशों से द्वितीय समय में सम्यक्त्व प्रकृति में असंख्यात गुणित प्रदेशों को देता है और उसी समय में अर्थात् दूसरे ही समय में सम्यक्त्व प्रकृति में दिये गये प्रदेशों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व में असंख्यातगुणित प्रदेशों को देता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणसंक्रमण के द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्म को पूरित करता है जब तक कि गुण संक्रमण काल का अन्तिम समय प्राप्त होता है। इस प्रकार मिथ्यात्व के जितने परमाणु हैं उनसे असंख्यातगुणेहीन सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणु हैं। इनसे असंख्यातगुणेहीन सम्यक्त्वप्रकृति के परमाणु हैं। इस प्रकार एक मिथ्यात्व के परमाणु तीन पुञ्जरूप हुए।

शंका - जो द्रव्य मिथ्यात्व रूप ही था उसका मिथ्यात्व करना कैसा?

समाधान - मिथ्यात्व की जो पूर्व स्थिति थी, उसमें से अतिस्थापनावली प्रमाण कम कर दिया। इस विधान से आचार्य ने असंख्यातगुणा हीन क्रम से मिथ्यात्व द्रव्य तीन रूप किया, ऐसा कहा है।

उदाहरण - जैसे-समयप्रबद्ध के परमाणुओं की संख्या ६३०० है। गुणहानि की संख्या ८ है। और डेढ़गुणहानि का प्रमाण १२ है। ६३००×१२ = ७५,६०० यह सातकर्मों का परमाणुरूप सत्त्वद्रव्य है।

सातकर्मों के परमाणु ७५,६०० हैं तो मोहनीयकर्म के १०,८०० परमाणु होंगे। अब मोहनीयकर्म के परमाणुओं का बँटवारा चारित्रमोहनीय की पच्चीस व दर्शन-मोहनीय की एक इस प्रकार इन २६ कर्मों में किस प्रकार होगा उसी को बताते हैं -

२६ प्रकृतियों में से सोलह कषाय व मिथ्यात्व ये १७ सर्वघातिप्रकृति और शेष ९ प्रकृतियाँ देशघाती हैं।

मोहनीय के परमाणुओं में अनन्त का भाग देकर जो लब्ध आवे वह द्रव्य सर्वघाती का और शेषद्रव्य देशघाती का समझना। अर्थात् मोहनीयकर्म के परमाणुओं की संख्या १०,८०० मानी है एवं

१. धवल पुस्तक ६ पृष्ठ २३५-२३६

अनंत की संख्या ८ कल्पित की है। इस अनन्त (८) की संख्या का १०,८०० में भाग देने पर १३५० प्राप्त हुआ। यह द्रव्य १७ सर्वघातिप्रकृतियों का है। अतः इस द्रव्य को १७ से भाग देने पर १३५० ÷ १७ = ७९ $\frac{७}{१७}$ अर्थात् ८० के लगभग लब्ध आया वह प्रत्येक सर्वघाती का द्रव्य समझना। इतना ही द्रव्य मिथ्यात्वकर्म का भी है। १०,८०० में से १३५० (सर्वघातिद्रव्य) घटाने पर ९४५० प्रमाण द्रव्य देशघाती का है।

७९ $\frac{७}{१७}$ (लगभग ८०) के असंख्यातवें भाग सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के परमाणु समझना तथा सम्यग्मिथ्यात्व के असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु सम्यक्त्वप्रकृति के समझना, शेष असंख्यातबहुभाग-रूप परमाणु मिथ्यात्वप्रकृति के हैं।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र

चारित्तमोहणीयं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेदणीयं चेइ। कसायवेदणीयं सोलसविहं खवणं पडुच्च अणंताणुबंधि-कोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाण-पच्चक्खाणावरण-कोह-माण-माया-लोहं, कोह-संजलण, माण-संजलण, माया-संजलण, लोह संजलण चेइ। पक्कमदव्वं पडुच्च अणंताणुबंधि लोह-माया-कोह-माणं, संजलण लोह-माया-कोह-माणं पच्चक्खाण-लोह-माया-कोह-माणं, अपच्चक्खाण लोह-माया-कोह-माणं चेइ। णोकसायवेदणीयं णवविहं पुरिसित्थि-णउंसयवेदं रदि-अरदि-हस्स-सोग-भय-दुगंछा चेदि। आउगं चउविहं णिरयायुगं, तिरिक्ख-माणुस्स-देवाउगं चेदि। णामं बादालीसं पिंडापिंड पयडिभेयेणा गदि-जादि-सरीर-बंधण-संघाद-संठाण-अंगोवंग-संघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-आणुपुव्वी-अगुरुलहुगुवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोद-विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुब्भग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्जाणादेज्ज जसाजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि। तत्थ गदिणामं चउविहं णिरयतिरिक्ख-मणुवदेवगदिणामं चेदि। जादिणामं पंचविहं एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय जादिणामं पंचिंदिय जादिणामं चेदि। सरीरणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीरणामं चेइ। सरीरबंधणणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीरबंधणणामं चेइ।

सूत्रार्थ - चारित्रमोहनीयकर्म दो प्रकार का है - कषायवेदनीय, नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीय १६ प्रकार का है। क्षपणा की अपेक्षा उनका क्रम इस प्रकार है - अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ

इन चार की विसंयोजना युगपत् चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान तक हो जाती है। नवम गुणस्थान के प्रथमभाग में अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया और लोभ तथा प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ इन आठों का युगपत् क्षय होता है। उसके पश्चात् अन्तमें क्रमशः सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान एवं सञ्ज्वलनमाया का क्षय होता है। दशवें गुणस्थान में सञ्ज्वलनलोभ का क्षय होता है। द्रव्य के बँटवारे की अपेक्षा सबसे अधिकद्रव्य अनन्तानुबन्धीलोभ को मिलता है, अनंतानुबन्धीलोभ से हीनद्रव्य अनन्तानुबन्धीमाया को। इसीप्रकार क्रमशः अनन्तानुबन्धीक्रोध, अनन्तानुबन्धीमान, सञ्ज्वलनलोभ, सञ्ज्वलनमाया, सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान, प्रत्याख्यानावरणलोभ, प्रत्याख्यानावरणमाया, प्रत्याख्यानावरणक्रोध, प्रत्याख्यानावरणमान, अप्रत्याख्यानावरणलोभ, अप्रत्याख्यानावरणमाया, अप्रत्याख्यानावरणक्रोध और अप्रत्याख्यानावरणमान को हीन-हीन द्रव्य मिलता है। नोकषायवेदनीय नवप्रकार का है - पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा। आयुकर्म चार प्रकार का है - नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु। नामकर्म पिण्ड और अपिण्डप्रकृतियों के भेद से ४२ प्रकार का है - गति, जाति, शरीर, बन्धन, सङ्घात, संस्थान, अङ्गोपाङ्ग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर-नामकर्म। उनमें से गतिनामकर्म चार प्रकार का है - नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्य-गति और देवगति। जातिनामकर्म पाँच प्रकार है - एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पञ्चेन्द्रियजाति। शरीरनामकर्म पाँच प्रकार का है - औदारिकशरीर, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर। शरीरबन्धननामकर्म पाँच प्रकार है - औदारिकशरीरबन्धन नामकर्म, वैक्रियकशरीरबन्धन नामकर्म, आहारकशरीरबन्धन नामकर्म, तैजसशरीरबन्धन नामकर्म और कार्मणशरीरबन्धन नामकर्म।

अब इन पाँच शरीरबन्धन नामकर्म के भङ्ग कहते हैं -

तेजाकम्मेहिं तिए, तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदुचदुचदुदुग एक्कं च पयडीओ॥२७॥

अर्थ - औदारिक, वैक्रियक और आहारक इन तीनों का तैजस तथा कार्मण के साथ संयोगबन्ध होने पर चार-चार भङ्ग होते हैं। तैजस का तैजस व कार्मण के साथ संयोगबन्ध होने पर दो भङ्ग और कार्मण के साथ संयोगबन्ध होने पर एक भङ्ग होता है।

विशेषार्थ - औदारिक-औदारिकशरीरबंधन, औदारिक-तैजसशरीरबन्धन, औदारिक-कार्मणशरीरबन्धन, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। औदारिक की अपेक्षा ये चार भङ्ग हैं।

वैक्रियक-वैक्रियकशरीरबन्धन, वैक्रियक-तैजसशरीरबन्धन, वैक्रियक-कार्मण-शरीरबन्धन, वैक्रियक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। वैक्रियक की अपेक्षा ये चार भङ्ग हैं। आहारक-आहारकशरीरबन्धन, आहारक-तैजसशरीरबन्धन, आहारक-कार्मण-शरीरबन्धन, आहारक-तैजस-कार्मणशरीरबन्धन। इस प्रकार आहारक की अपेक्षा भी चार भङ्ग हैं।

तैजस-तैजसशरीरबन्धन, तैजस-कार्मणशरीरबन्धन ये दो भङ्ग तैजस की अपेक्षा से हैं। तथा कार्मण-कार्मणके संयोगसे कार्मण कार्मण शरीरबन्धन का एक भङ्ग है। इस प्रकार सर्व १५ भङ्ग शरीरबन्धननामकर्म के होते हैं। ये भङ्ग शरीरबन्धननामकर्म के संयोगबन्ध की अपेक्षा कहे हैं।

औदारिक-औदारिक, वैक्रियक-वैक्रियक, आहारक-आहारक, तैजस-तैजस, कार्मण-कार्मणबन्ध में औदारिकआदि शरीरबन्ध के पाँचभेद गर्भित हो जाते हैं। जैसे औदारिक से औदारिक का संयोगबन्ध कहा, वे दोनों सदृश हैं अत: जो शरीरबन्धन प्रकृति के भेदों में औदारिकशरीरबन्धन कहा है उसमें गर्भित हुआ। इसी प्रकार अन्य चारों का भी समावेश जानना चाहिए। अतएव १५ में से पाँच कम करने से दस शेष रहे; नामकर्म की ९३ प्रकृतियों में ये दस प्रकृति मिलानेपर नामकर्म की १०३ प्रकृति होती हैं।[1]

ताड़पत्रीय मूल गो.क. से उद्धृत सूत्र

सरीरं संघादणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय सरीर-संघादणामं चेदि। सरीरसंठाणणामकम्मं छव्विहं समचउरसंठाणणामं णग्गोदपरिमंडल-

---

१. यहाँ आगम में मात्र ५ शरीरों के एकादि संयोग रूप बंध विकल्प उत्पन्न किए हैं जो १५ ही होते हैं, यह बताया है। जैसे कि औदारिक शरीर नोकर्म स्कन्धों का अन्य औदारिक शरीर नोकर्म स्कन्धों के साथ जो बन्ध होता है वह औदा. औदा. शरीर बंध है। इसी तरह औदारिक शरीर के पुद्गलों का और तैजस शरीर के पुद्गलों का एक जीव में जो परस्पर बंध होता है वह औदारिक तैजस बंध है। एक जीव में स्थित औदारिक स्कन्धों और कार्मण स्कन्धों का जो परस्पर बंध होता है वह औदा. कार्मण शरीर बंध है; इत्यादि। इस तरह ये बन्ध विकल्प बताना ही यहाँ प्रयोजन है। (धवल १४/४२ तथा धवल १३/३१-३३)

इस तरह उक्त १५ भेद शरीर बन्धन के हैं। अत: इन १५ प्रकार के शरीर बन्धनों के कारणभूत कर्म यानी शरीर बंधन नामकर्म भी १५ प्रकार का हो जाता है।

इनका कार्य – जिस नाम कर्म के उदय से औदारिक शरीर नोकर्म स्कन्धों का अन्य औदारिक शरीर नोकर्म स्कन्धों के साथ बन्ध रूप कार्य होता है। वह औदारिकऔदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म है। इसी तरह जिस नाम कर्म के उदय से औदा. शरीर पुद्गलों का तैजस शरीर पुद्गलों के साथ एक जीव में जो परस्पर बन्ध होता है वह औदा. तैजस शरीर बन्धन नाम कर्म है। इसी तरह शेष १३ में भी लगाना।

गो. क. २७ में १५ शरीर बन्धन नाम कर्मों का वर्णन है।

सादिय-कुज्ज-वामण-हुण्डसरीरसंठाणं चेदि। सरीर-अंगोवंग णामं तिविहं-ओरालिय, वेगुव्विय, आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि।

सूत्रार्थ - शरीरसंघातनामकर्म पाँच प्रकार का है - औदारिकशरीरसंघातनामकर्म, वैक्रियकशरीरसंघातनामकर्म, आहारकशरीरसंघातनामकर्म, तैजसशरीरसंघातनामकर्म और कार्मणशरीरसंघातनामकर्म। शरीरसंस्थाननामकर्म छह प्रकार का है - समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामकर्म, स्वातिसंस्थाननामकर्म, कुब्जकसंस्थाननामकर्म, वामनसंस्थाननामकर्म और हुण्डकसंस्थाननामकर्म। शरीरअङ्गोपाङ्गनामकर्म तीनप्रकार का है - औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म, वैक्रियकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म और आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्म।

अब शरीर के अङ्गोपाङ्गों का नामनिर्देश करते हैं -

णलया बाहू य तहा, णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य।
अट्ठेव दु अंगाइं, देहे सेसा उवंगाइं॥२८॥

अर्थ - दो पैर, दो हाथ, नितम्ब-कमर के पीछे का भाग, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ तो शरीर में अङ्ग हैं, अन्य नेत्र-कान आदि सर्व उपाङ्ग कहलाते हैं।[१]

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र

संहडण-णामं छव्विहं वज्जरिसहणारायसंहडणणामं वज्जणाराय-णाराय-अद्धणारायखीलिय-असंपत्त सेवट्टि-सरीरसंहडणणामं चेइ।

सूत्रार्थ - संहननामकर्म छह प्रकार का है - वज्रर्षभनाराचसंहननामकर्म, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलित-असंप्राप्तासृपाटिका शरीरसंहननामकर्म।

नोट - वज्रर्षभनाराचसंहनन को पृथक् कहने का प्रयोजन यह है कि इस संहननवाले जीव ही मोक्ष जा सकते हैं।

---

१. नलक, हाथ, पैर, पेट, नितम्ब, छाती, पीठ, सिर : ये ८ अंग हैं।
मस्तक की हड्डी, मस्तक, ललाट, भुजसन्धि, कान, नाक, नेत्र, अक्षिकूप, ठुड्डी, गाल, ओठ, ओठ के किनारे, तालू, जीभ, गर्दन, चुचुक स्तन, अंगुलि आदि उपांग हैं। (नलकबाहूरुदर-नितम्बोरः पृष्ठशिरसंस्यष्टावंगानि, उपांगानि च मूर्द्धकरोटि- मस्तक-ललाटसन्धि भ्रूकर्ण नासिकानयनाक्षिकूपहनुकपोलाधरोष्ठमुक् तालुजिह्वाग्रीवास्तन चूंचुकांगुल्यादीनि भवन्ति।)

(मूलाचार १२३६ पृ. ३६४ भाग २ ज्ञानपीठ प्रकाशन अनु. पू. ज्ञानमती जी)

अब छहसंहननवाले जीव किस-किस संहननसे कौन-कौनसी गति में उत्पन्न होते हैं यह ४ गाथाओं में कहते हैं -

सेवट्टेण य गम्मइ, आदीदो चदुसु कप्प जुगलोत्ति।
तत्तो दुजुगलजुगले, खीलियणारायणद्धोत्ति ॥२९॥

अर्थ - सृपाटिकासंहनन से सहित जीव स्वर्ग में उत्पन्न हो तो सौधर्मयुगल से चौथे लान्तव-कापिष्ठ स्वर्गयुगलपर्यन्त अर्थात् आठवें स्वर्गतक उत्पन्न होते हैं। कीलक संहननवाले इनसे ऊपर दो युगल तक अर्थात् बारहवें स्वर्ग तक तथा अर्धनाराचसंहननवाले जीव इनसे आगे दो युगल अर्थात् १६ वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं।

णवगेविज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा।
तिदुगेगे संघडणे, णारायणमादिगे कमसो ॥३०॥

अर्थ - नाराच, वज्रनाराच और वज्रर्षभनाराचसंहननवाले मनुष्य नवग्रैवेयकपर्यंत तथा वज्रनाराच, वज्रर्षभनाराचवाले मनुष्य नवअनुदिशविमानों तक एवं वज्रर्षभनाराचसंहननवाले मनुष्य पञ्चअनुत्तरविमानों तक उत्पन्न होते हैं।

सण्णी छस्संहडणो, वज्जदि मेघं तदो परं चापि।
सेवट्टादीरहिदो, पण पणचदुरेगसंहडणो ॥३१॥

अर्थ - छहसंहननवाले सैनीजीव यदि नरक में उत्पन्न हों तो मेघानामक तीसरेनरकपर्यंत जाते हैं। सृपाटिकाबिना शेष कीलित आदि पाँचसंहनन वाले अरिष्टानामक पञ्चम पृथ्वीपर्यंत जाते हैं। अर्धनाराचादिक चारसंहननवाले मघवीनामक छठी पृथ्वीपर्यंत और वज्रर्षभनाराचसंहननवाले माघवीनामक सप्तमपृथ्वीपर्यन्त जाते हैं।

अंतिमतियसंहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतिगसंहडणं, णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३२॥

अर्थ - कर्मभूमि में महिलाओं के अन्तिम तीन संहनन होते हैं। आदि के तीन उत्तमसंहनन नहीं होते, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

विशेषार्थ - कर्मभूमिज द्रव्यस्त्रियों के अर्धनाराच, कीलित और सृपाटिका इन तीन संहननों का ही उदय रहता है। वज्रर्षभनाराचसंहनन के अभाव में द्रव्य-स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता।[१]

ताड़पत्रीय मूल गो.क. से उद्धृत सूत्र

वण्णणामं पंचविहं किण्ण-णील-रुहिर-पीद-सुक्किलवण्णणामं चेइ। गंधणामं दुविहं सुगंध-दुग्गंधणामं चेदि। रसणामं पंचविहं तिट्ठ-कडु-कसायंविलमहुररसणामं चेइ। फासणामं अट्ठविहं कक्कड-मउगगुरुलहुग-रुक्ख-सणिद्ध-सीदुसुणफासणामं चेदि। आणु-पुव्विणामं चउविहं णिरय-तिरक्खगयि-पाओग्गाणुपुव्वीणामं, माणुस-देवगयि पाओग्गाणु-पुव्वीणामं चेइ। अगुरुलघुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदव-उज्जोदणामं चेदि। विहाय-गदिणामकम्मं दुविहं पसत्थविहायगदिणामं-अप्पसत्थविहायगदिणामं चेदि। तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरथिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि। थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीर-अथिर-असुह-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णामं चेदि।

सूत्रार्थ - वर्णनामकर्म के पाँच भेद हैं - कृष्ण, नील, रुधिर (लाल), पीला और शुक्ल (श्वेत)। गन्धनामकर्म दो प्रकार का है - सुगन्ध व दुर्गन्ध। रसनामकर्म के पाँचभेद हैं - तिक्त, कटुक, कषायला, अम्ल और मधुररस। स्पर्शनामकर्म के आठभेद हैं - कठोर, मृदु, गुरु, लघु, रुक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण। आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है - नरकगत्यानुपूर्वी-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-मनुष्यगत्यानुपूर्वी-देवगत्यानुपूर्वी। अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। विहायोगतिनामकर्म दो प्रकार का है - प्रशस्तविहायोगति व अप्रशस्तविहायोगति। त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर। तथा स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग-दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति।

अब आतप व उद्योतप्रकृति का लक्षण कहते हैं -

मूलुण्हपहा अग्गी, आदावो होदि उण्हसहियपहा।
आइच्चे तेरिच्छे, उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥[२]

---

१. तद्दंपदीणभादिमसंहदि संठाणमज्जणामजुदा। त्रि. सा. ७९०
अर्थ - वे दम्पती अर्थात् भोगभूमिज प्रत्येक युगल दम्पती अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों के प्रथम (वज्रवृषभ नाराच) संहनन और प्रथम (समचतुरस्र) संस्थान होता है। वे 'आर्य' इस नाम से युक्त होते हैं। पृ. ६२४ (श्री महावीरजी प्रकाशन)

२. धवला ८/२००

अर्थ - आग के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं अतः उसके उष्णस्पर्श-नामकर्म का उदय है। जिसकी केवल प्रभा अर्थात् किरणों में उष्णपना हो उसको आतप कहते हैं। (आतपनामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब में तथा सूर्यकान्तमणि में उत्पन्न हुए बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिक तिर्यञ्चजीवों में समझना चाहिए) तथा जिसकी प्रभा भी उष्णतारहित हो उसके उद्योतनामकर्म का उदय जानना।

ताड़पत्रीय मूल गो. क. से उद्धृत सूत्र

गोदकम्मं दुविहं उच्च-णीचगोदं चेइ। अंतरायं पंचविहं दाण-लाभ-भोगोपभोगवीरिय-अंतरायं चेइ।

सूत्रार्थ - गोत्रकर्म के दो भेद हैं - उच्चगोत्र-नीचगोत्र। अन्तरायकर्म के पाँचभेद हैं - दानान्तराय-लाभान्तराय-भोगान्तराय-उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

विशेषार्थ - आत्मप्रदेशों में एकक्षेत्रावगाहरूप से स्थित कर्म के योग्य कार्मण वर्गणाओं का दूध-पानी के समान संश्लेषसम्बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। जैसे - पात्र विशेष में रखा हुआ अनेक प्रकार का रस, बीज, पुष्प-फलादि मदिरापने को प्राप्त होते जाते हैं उसी प्रकार कार्मणवर्गणा भी योग-कषाय के निमित्त से कर्मभाव को प्राप्त हो जाती हैं।

एक ही आत्मा के परिणाम से ग्रहण की हुई नानापुद्गलकर्मवर्गणाएँ ज्ञानावरणादि अनेक कर्म के भेदरूपसे परिणत हो जाती है, जैसे एक बार में खाया हुआ अन्न रस, रुधिरादि अनेकरूप में परिणत होता है।

अब उत्तरप्रकृतियों की निरुक्ति कहते हैं -

जो मतिज्ञानपर आवरण करे वह **मतिज्ञानावरण** है। जो श्रुतज्ञान को आवरित करे वह **श्रुतज्ञानावरण** है। अवधिज्ञान को जो ढके उसे **अवधिज्ञानावरण** कहते हैं, जिसके द्वारा मनःपर्ययज्ञानका आवरण किया जावे उसे **मनःपर्ययज्ञानावरण** कहते हैं तथा केवलज्ञान को जो आवरित करे वह **केवलज्ञानावरण** है।

शंका - अभव्य के मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान की शक्ति है या नहीं, यदि है तो अभव्य नहीं रहा तथा यदि शक्ति नहीं है तो दोनों ज्ञानों का आवरण कहना निरर्थक है।

समाधान - द्रव्यार्थिकनय से उसके दोनों ज्ञानकी शक्ति पाई जाती है[१], किन्तु पर्यायार्थिकनय से शक्ति की व्यक्ति नहीं होती इसलिए आपके द्वारा दिये हुए दोष सम्भव नहीं हैं। जैसे - अंधपाषाण में स्वर्ण शक्तिरूप से है, परन्तु उसकी व्यक्ति नहीं है उसी प्रकार जानना।

१. धवल पु. ६ पृ. ७ व ८

जो आवरण करे अथवा जिसके द्वारा आवरण किया जाय वह आवरणकर्म है, सो चक्षुदर्शनावरण-अचक्षुदर्शनावरण-अवधिदर्शनावरण-केवलदर्शनावरण इन चारप्रकार के दर्शनों को आवरण करने वाले चार **दर्शनावरण** कर्म हैं तथा पाँच निद्रा, इन निद्रा का लक्षण पहले स्वयं नेमिचन्द्राचार्य कह आये हैं।

वेदनीय के साता-असातारूप दो भेद हैं - इनका लक्षण भी पूर्व में कह चुके हैं।

मोहनीयकर्म के दो भेद हैं - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। बन्ध की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप एक ही भेद है तथा उदय व सत्त्व की अपेक्षा तीनभेद हैं।

जिसके उदय से जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से पराङ्मुख, तत्त्वार्थश्रद्धान में निरुत्सुक, आत्महिताहित के विचार से रहित मिथ्यादृष्टि होता है उसे **मिथ्यात्व** कहते हैं। कोदों धान्य को प्रक्षालन करने से जिस प्रकार उसकी तीव्र मादकशक्ति कुछ कम होकर मन्द हो जाती है, उसी प्रकार जिसद्रव्य में मिथ्यात्व की तीव्र अनुभागशक्ति कुछ क्षीण हो जाय और कुछ मन्द रह जाय उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। प्रक्षालित मादककोदों के खाने से जिसप्रकार कुछ मदवान होता है और कुछ चतुर भी रहता है उसी प्रकार 'सम्यग्मिथ्यात्व' प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यक्-मिथ्यात्वरूप मिश्रपरिणाम होते हैं। अर्थात् सर्वज्ञकथित तत्त्वों और असर्वज्ञकथित अतत्त्वों का युगपत् श्रद्धान होता है। जो आत्मा के श्रद्धान को नहीं रोकती, किन्तु सम्यक्त्व की निर्मलता व स्थिरता का घात करती है, वह **सम्यक्त्व** प्रकृति है।[1]

आचरण करना अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जाय अथवा आचरण मात्र को चारित्र कहते हैं। इस चारित्र को जो मोहे या जिसके द्वारा यह चारित्र मोहा जावे वह **चारित्रमोहनीय** कर्म है। चारित्रमोहनीयकर्म कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय के भेद से दोप्रकार का है।

जो आत्मा के चारित्रगुण का घात करे उसे **कषाय** कहते हैं[2]। तथा ईषत् (किंचित्) कषाय को **नोकषाय** कहते हैं। कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं - अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ।

अनन्त संसार का कारण होने से मिथ्यात्व अनन्त है, उस मिथ्यात्व की जो चिरसङ्गिनी (अनुबन्धिनी) है वह **अनन्तानुबन्धी** है। जो 'अ'-ईषत् प्रत्याख्यान-संयम अर्थात् देशसंयम या

---

१. ज. ध. पु. ५ पृष्ठ १३०

२. "सुखदुःख बहुशस्य कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः। सुख दुःख रूपी नानाप्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले कर्मरूपी क्षेत्र का जो कर्षण करती है अर्थात् फल उत्पन्न करने योग्य करती है, वह कषाय है।" (धवल पु. १ पृ. १४१)

विरताविरती को अल्पमात्र भी न होने दे उसे **अप्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं। **प्रत्याख्यानकषाय** सकल-संयम को नहीं होने देती। जो संयम के साथ, 'सं' - एकीभूत होकर, 'ज्वलति' अर्थात् प्रकाशमान हो उसे **सञ्ज्वलन** कहते हैं। (यह कषाय यथाख्यातसंयम का घात करती है) इस प्रकार ये १६ प्रकार कषायवेदनीय के हैं।

नोकषाय - 'नो' अर्थात् ईषत् (किंचित्) कषाय का वेदन करावे उसे **नोकषाय** कहते हैं। इसके नव भेद हैं-

जिसके उदय से हँसी आवे, वह **हास्य** है। जिसके उदय से क्षेत्रादि में प्रीति हो उसे **रति**[1] कहते हैं। जिसके उदय होने पर देशादि में अप्रीति हो वह **अरति**[2] कहलाती है। जिसका उदय इष्टवियोगज क्लेश उत्पन्न करे वह **शोक**[3] है। जिसके उदय से भय उत्पन्न होता है उसे **भय** कहते हैं। जिसके उदय से अपने दोषों को तो ढँके तथा अन्य के दोषों को प्रकट करे उसे **जुगुप्सा**[4] कहते हैं। अथवा ग्लानि करना जुगुप्सा है।

जिसके उदय से स्त्रीसंबंधी भावों को प्राप्त हो उसे **स्त्रीवेद** कहते हैं। जिसके उदय से पुरुषसम्बंधी भावों को प्राप्त हो वह **पुरुषवेद** है। जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भावों को प्राप्त हो उसे **नपुसंकवेद** कहते हैं।

नर-नारकादिभव को जो प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे वह **आयुकर्म** है। इसके चार भेद हैं - जो नरक को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे वह **नरकायु** है। जो तिर्यंचयोनि को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे उसे **तिर्यंचायु** कहते हैं। जो मनुष्ययोनि को प्राप्त करावे तथा उसमें रोके रखे उसे **मनुष्यायु** कहते हैं। जो देवयोनि को प्राप्त करावे और उसमें रोके रखे वह **देवायु** है।

नामकर्म के पिण्ड-अपिण्डप्रकृतिरूप ४२ भेद हैं। जिसके उदय से आत्मा पर्याय से पर्यायान्तर को प्राप्त हो उसे **गति**[5] कहते हैं। जिसके उदय से उस-उस गतिरूप क्रिया हो वह **गतिनामकर्म** है। गति के चार भेद हैं - नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवगति। जिसके उदय से आत्मा नरकपर्याय को प्राप्त हो तथा नरकरूप उसके भाव व क्रिया हों उसे **नरकगति** कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा तिर्यञ्चपर्याय को प्राप्त हो एवं तिर्यञ्चरूप उसके भाव व क्रिया हों, वह **तिर्यञ्चगति** कहलाती है। जिसके उदय से

---

१. रमने को रति कहते हैं, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयों में आसक्त होकर रमता है वह 'रति' है।

२. जिन कर्मस्कन्धों से द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव में जीव को अरुचि उत्पन्न होती है वह 'अरति' है।

३. सोच करने को शोक कहते हैं। अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं।

४. ग्लानि होने को जुगुप्सा कहते हैं। जिन कर्मों के उदय से ग्लानि होती है उनकी 'जुगुप्सा' संज्ञा है।
(ध.पु. ६ पृ. ४७-४८)

५. "भवाद्भवसंक्रान्तिर्वागतिः।" एक भव से दूसरे भव में जाने को गति कहते हैं। (धवल पु. १ पृ. १३५)

आत्मा मनुष्यपर्याय को प्राप्त हो तथा मनुष्यरूप उसके भाव व क्रिया हों उसे **मनुष्यगति** कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा देवपर्याय को प्राप्त हो तथा देवगतिरूप उसके भाव व क्रिया हों वह **देवगति** है।

जिसके उदय से उपर्युक्त गतियों में अव्यभिचारीसादृश्यभावरूप से जीव इकट्ठे किये जावें उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

जातिनामकर्म के पाँच भेद हैं - एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति।

जिसके उदय से आत्मा एकेन्द्रियशरीर को धारण करे उसे **एकेन्द्रियजाति** कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा द्वीन्द्रियशरीर को धारण करे उसे **द्वीन्द्रिय**जाति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा तीनइन्द्रिय के शरीर को धारण करे उसे **त्रीन्द्रिय** जाति कहते हैं। जिसके उदय से आत्मा चारइन्द्रियरूप शरीर को प्राप्त करे वह **चतुरिन्द्रियजाति** है। जिसके उदय से आत्मा **पञ्चेन्द्रियशरीर** को प्राप्त करे वह **पञ्चेन्द्रिय**जाति है।

जिसके उदय से शरीर की रचना हो उसे **शरीरनामकर्म** कहते हैं। इसके पाँचभेद हैं - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर। जिसके उदय से औदारिकशरीर बने उसे **औदारिकशरीर** कहते हैं। जिसके उदय से वैक्रियिकशरीर बने वह **वैक्रियिकशरीर** है। जिसके उदय होने पर आहारकशरीर बनता है, वह **आहारकशरीर** है। जिसके उदय से तैजसशरीर बने उसे **तैजसशरीर** कहते हैं। जिसके उदय से कार्मणशरीर बनता है वह **कार्मणशरीर** है।

शरीरनामकर्म के उदय से जो आहारवर्गणारूपपुद्गलस्कन्ध ग्रहण किये हैं उनके प्रदेशों का परस्पर संश्लेषसम्बन्ध जिसके उदय में हो उसे **बन्धन**नामकर्म कहते हैं। इसके औदारिकादि के भेद से पाँच भेद हैं। तथा औदारिक-औदारिकादि संयोगी भंग १५ हैं।

जिसके उदय से औदारिकादिशरीरों के प्रदेशों का परस्पर छिद्ररहित एकक्षेत्रावगाहरूप एकत्व प्राप्त हो उसे **संघात**नामकर्म कहते हैं।[१]

जिसके उदय से औदारिकादिशरीरों का आकार बने उसे **संस्थान**नामकर्म कहते हैं। इसके छह भेद हैं - समचतुरस्र-न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक-वामन और हुण्डकसंस्थान।

---

१. बन्धन तथा संघात नामकर्म में अन्तर :

औदारिक आदि शरीर के पुद्गल स्कन्धों का परस्पर में संश्लेष संबंध, शरीरबन्धन नामकर्म का कार्य है। यदि शरीरबन्धन नाम कर्म न हो तो यह शरीर बालू निर्मित पुरुष-शरीर जैसा हो जाए। औदारिक आदि शरीर के परमाणुओं का परस्पर में छिद्र-रहित प्रवेशानुप्रवेश होकर एकरूपता लाना संघात नामकर्म का कार्य है। यदि संघात नामकर्म न हो तो शरीर तिल के लड्डू के समान ही रहे।

बंधन नामकर्म के उदय से एकरूप बंधन से बँधे हुए औदारिक आदि परमाणुओं का जिस कर्म के उदय से औदार्य चिकने

जिसके उदय से अङ्गोपाङ्ग का भेद हो वह **अङ्गोपाङ्गनामकर्म** है। इसके तीन भेद हैं - औदारिक-वैक्रियिक और आहारकअङ्गोपाङ्ग।

जिसके उदय से हड्डियों के बन्धन विशेष होते हैं उसे **संहनन**नामकर्म कहते हैं। इसके छह भेद हैं - वज्रर्षभनाराच-वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलित और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन।

संहनन नाम हड्डियों के समूह का है। जिससे बाँधा जावे उसे ऋषभ कहते हैं और जो वज्र के समान अभेद्य अर्थात् जिसका भेदन न किया जाय उसे वज्र कहते हैं। नाराच नाम कीले का है। जैसे - किवाड़ के कब्जों के बीच लोहे का कीला होता है। अत: जिस शरीर में वज्र की हड्डियाँ हों, वज्र का ऋषभ, वज्र का नाराच हो उसे **वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनन** कहते हैं। जिसमें वज्र के बन्ध न हों, सामान्य बन्धन से बाँधा जावे, किन्तु कीला व हड्डियाँ वज्र की हों; ऐसा शरीर जिसके उदय से हो उसे **वज्रनाराचशरीरसंहनन** कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र विशेष से रहित साधारण नाराच से कीलित हड्डियों की संधि हो उसे **नाराचशरीरसंहनन** कहते हैं। जिस कर्म के उदय से अस्थिसन्धि अर्धकीलित हो उसे **अर्धनाराचशरीरसंहनन** कहते हैं। जिसके उदय से वज्र की हड्डिया न हों, किन्तु वे परस्पर में नोक व गड्ढे के द्वारा फँसी हुई हों उसे **कीलितसंहनन** कहते हैं। जिसके उदय से सरीसृप की हड्डियों के समान नसों से बँधी हुई पृथक्-पृथक् हड्डियाँ हों उसे **असंप्राप्तासृपाटिकासंहननना**मकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से शरीर का वर्ण होता है उसे **वर्ण**नामकर्म कहते हैं। इसके पाँचभेद हैं - कृष्ण-नील-रक्त-हरित और शुक्ल।

जिसके उदय से शरीर में गन्ध होती है उसे **गन्ध**नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं - सुगन्ध और दुर्गन्ध।

जिसके उदय से शरीर में रस होता है उसे **रस**नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - तिक्त, कटु, कषायला, अम्ल और मधुर।

जिसके उदय से शरीर में स्पर्श हो उसे **स्पर्श**नामकर्म कहते हैं। इसके आठभेद हैं - कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध और रुक्ष। जिसके उदय से विग्रहगति में पूर्वशरीर का आकार रहे उसे

रूप से एकमेकपना प्राप्त हो जाता है वह शरीर संघात नामकर्म है। सारत: बंधन नाम कर्म के उदय से शरीर परमाणु मिल जाते हैं, परन्तु तिल के लड्डू के समान छिद्र सहित रहते हैं। संघात के उदय से वे ही परमाणु चिकने आटे के लड्डू के समान (अथवा काँच के अन्दर स्थित परमाणुओं के समान) सर्वत्र एकमेक (= छिद्ररहित) हो जाते हैं।

(मूलाचार, पृ. ३६२-६३, भाग २, ज्ञानपीठ, अनु. पू. ज्ञानमती जी)

वृक्ष की पींड से डालें, डालियाँ बँधे रहते हैं, धड़ से बाँहें, बाँहों में अंगुलियाँ बँधी रहती है। यह बंधन कर्म है। शरीर में आवश्यक छिद्रों के अतिरिक्त व्यर्थ के छेदों का नहीं दिखना संघात का कार्य है। (श्लो.वा. ७/६३ भाषा)

आनुपूर्वी कहते हैं। इसके चारभेद हैं - नरकगत्यानुपूर्वी-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। नरकगति को प्राप्त होने वाले पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीव के विग्रहगति में पूर्वशरीर का आकार जिसके उदय से हो वह **नरकगत्यानुपूर्वी** है इसी प्रकार अन्य तीनों में भी जानना।

जिसके उदय से शरीर लोहे के पिंडवत् नीचे न गिरे और आक की रुई के समान हलका होने से पर भी न जाय उसे **अगुरुलघु**नामकर्म कहते हैं।

'उपेत्य स्वान: उपघ्नत:' अपने घात का नाम उपघात है। जिसके उदय से अपने अङ्गों से अपना ही घात हो उसे उपघातनामकर्म कहते हैं। जैसे - बड़े सींग, लम्बे स्तन, मोटा पेट इत्यादि।

जिसके उदय से अन्य का घात करने योग्य अङ्ग हों उसे **परघातनामकर्म** कहते हैं। जैसे - तीक्ष्ण सींग, नख, सर्पादि की डाढ़ में विष इत्यादि।[१]

जिसके उदय से आतपरूप शरीर हो उसे **आतपनामकर्म** कहते हैं। इसप्रकृति का उदय सूर्य के बिम्ब में उत्पन्न होने वाले बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवों के होता है। अथवा सूर्यकान्तमणि में भी होता है।

जिसके उदय से उद्योतरूप (चमक रूप) शरीर हो उसे **उद्योतनामकर्म** कहते हैं। इसका उदय चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के बिम्ब में तथा जुगुनुआदि तिर्यंचों में पाया जाता है।[२]

जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे **विहायोगतिनामकर्म** कहते हैं। इसके दो भेद हैं - **प्रशस्त** और **अप्रशस्त**विहायोगति।

जिसके उदय से द्वीन्द्रियादि जीवों में जन्म हो उसे **त्रस**नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से अन्य को रोकें एवं अन्य से रुकें ऐसा शरीर प्राप्त हो वह **बादर**नामकर्म है। जिसके उदय से आहारादि पर्याप्ति

---

१. परघात की इसी तरह की परिभाषा कर्मप्रकृति पृ. ३१ (ज्ञानपीठ), धवल ६/५९, धवला १३/३६४, ह. पु. ५८/२६३ पृष्ठ ९०१ गो. क. गाथा ३३ की कन्नड़ व संस्कृत टीकाएँ, गो.क. २१ पं. मनोहरलालजी शि.शा. की टीका, प्रा. पं. सं. पृ. ५५८-५९, जै.सि.प्र. पृ. ६९, त.सा. ५/३७ (डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य) (श्वे. सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम भाष्य ८/१२/३७१) आदि में है।
इस परिभाषा के अनुसार परघात शुभ प्रकृति सिद्ध होती है। परन्तु सर्वार्थसिद्धि ८/११ पृ. २९७ (ज्ञानपीठ) में परघात की परिभाषा इस तरह दी है - जिसके उदय से परशस्त्रादि का निमित्त पाकर व्याघात होता है वह परघात नाम कर्म है। (यन्निमित्त: पर-शस्त्रादेर्व्याघात: तत्परघातनाम) तथा इसी तरह की परिभाषा रा.वा. ८/११/१४ पृ. ४८८, श्लो. वा. ८ /११ भाग ७ पृष्ठ ६४ (कुंथुसागर ग्रन्थमाला) में दी है। जिससे परघात प्रकृति को अशुभपना प्राप्त होता है।
मूलाचार १२३७ आचारवृत्ति में परघात की दोनों प्रकार की परिभाषाओं का संग्रह किया गया है।
श्लोकवार्तिक भाग ७ पृ. ६४-६५ में भाषा टीका में लिखा है कि चूंकि परघात को पुण्य प्रकृति में गिनाया है अत: परघात की यह परिभाषा अच्छी है कि "अन्य को घात करने वाले तीक्ष्ण सींग नख दाढ़ आदिक अवयव जिस कर्म के उदय से बने वह परघात नाम कर्म है।"

२. मूलाचार पृ. ३६६ भाग २ ज्ञानपीठ

पूर्ण हों वह **पर्याप्त**[1]नामकर्म है। पर्याप्तियों के छहभेद हैं - आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मनपर्याप्ति। शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न शरीर सो जिसके उदय से एकशरीर का स्वामी एक ही हो उसे **प्रत्येकशरीर**नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से रसादि धातु-उपधातु अपने-अपनेरूप से स्थिर हों उसे **स्थिर**नामकर्म कहते हैं। कहा भी है -

रसाद्रक्तं ततो मांसं, मांसान्मेद: प्रवर्तते।
मेदोऽस्थि ततो मज्जं, मज्जाच्छुक्रं तत: प्रजा[2] **॥१॥**

वात: पित्त तथा श्लेष्मा, सिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञै:, प्रोक्ता: सप्तोपधातव: ॥२॥

श्लोकार्थ - रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जासे शुक्र की उत्पत्ति होती है। तथा शुक्र से संतानोत्पत्ति होती है। ये सप्तधातु क्रमसे एक दूसरे रूप परिणमती हैं। इनके बनने में ३० दिन लगते हैं अत: प्रत्येकधातु को बनने में ४ और २ दिन के सातवेंभाग प्रमाण काल लगता है; तथापि इन सप्तधातुओं का अभाव नहीं होता अपने रूप में बनी रहती हैं अत: यह स्थिरनामकर्म है।

तथा वात-पित्त-श्लेष्म (कफ)-सिरा-स्नायु-चर्म और उदराग्नि ये सात उपधातु हैं। ये भी शरीर में परस्पर में परिणमन करती हुई स्थिर रहती हैं।

जिसके उदय से मस्तकादि अवयव प्रशस्त (सुन्दर) होते हैं उसे **शुभनामकर्म** कहते हैं। अथवा नाभि के ऊपर के अवयव शुभ होते हैं। जिसके उदय से अन्य को अपने से प्रीति हो वह **सुभगनामकर्म** है। अथवा जो सौभाग्य को उत्पन्न करे।[3] जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर हो उसे **सुस्वरनामकर्म** कहते हैं। जिसके उदय से प्रभा-कांति-सहित शरीर हो वह **आदेयनामकर्म** है। अथवा जिसके उदय से बहुजन मान्यता प्राप्त हो वह भी आदेयनामकर्म है। जिसके उदय से अपना पुण्यरूप पवित्रगुण जगत में प्रसिद्ध हो उसे **यश:कीर्तिनामकर्म** कहते हैं। जिसके उदय से शरीर में अङ्गोपाङ्गआदि की रचना हो वह **निर्माण**नामकर्म है। इसके दो भेद हैं - स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। जातिनामकर्म के उदय की अपेक्षा से नेत्रादिक जिसस्थान पर चाहिए उसी स्थान पर हों वह **स्थाननिर्माण** है। तथा काल-जातिका आश्रय करके यथाप्रमाण हों वह **प्रमाणनिर्माण** है। अर्हंतपद का कारण **तीर्थंकर**नामकर्म है।

जिसके उदय से एकेन्द्रिय में उत्पत्ति हो वह **स्थावर**नामकर्म है। सूक्ष्मशरीर बनानेवाला **सूक्ष्म**नामकर्म है। छहपर्याप्तियों की पूर्णता के अभाव का कारण **अपर्याप्त**नामकर्म है। एक शरीर के

---

१. स. सि. ८/११ टीका २. ध.पु. ६ पृ. ६३। ३. ध. पु. ६ पृ. ६५।

अनन्तजीव स्वामी हों अर्थात् एकशरीर को भोगने वाले अनन्तजीव जिसकर्म के निमित्त से हों वह **साधारणनामकर्म** है। इसका उदय निगोदजीवों में रहता है। जिसके उदय से धातु-उपधातु अपने रूप में स्थिर न रहें अर्थात् एकधातु दूसरी धातुरूप से परिणमन करती रहे उसे **अस्थिरनामकर्म** कहते हैं।[१] जिसके उदय से अमनोज्ञ-असुन्दरअवयव हों उसे **अशुभनामकर्म** कहते हैं। अथवा नाभि से निचलेअवयव अशुभ होते हैं यह अशुभनामकर्म का कार्य है।

जिसके उदय से रूपादिगुणों से सहित होते हुए भी अन्यजन प्रीति न करें उसे **दुर्भगनामकर्म** कहते हैं। अथवा जिसके उदय से दुर्भाग्य हो वह दुर्भगनामकर्म है। जिसके उदय से अमनोज्ञस्वर हो उसे **दुःस्वरनामकर्म** कहते हैं। प्रभारहित शरीर का कारण **अनादेय**नामकर्म है। अथवा जिसके उदय से बहुजन मान्यता प्राप्त न हो वह अनादेयनामकर्म है। अयश का कारण **अयशःकीर्तिनामकर्म** है।

जिसके उदय से साधु आचरण वाले कुल में जन्म हो उसे **उच्चगोत्र** कहते हैं। इससे विपरीत **नीचगोत्र** है।

जिसके उदय से दान देने की इच्छा होते हुए भी न दे सके उसे **दानान्तरायकर्म** कहते हैं। जिसके उदय से लाभ को चाहते हुए भी लाभ न हो वह **लाभान्तराय**कर्म है। भोगने की इच्छा होते हुए भी जिसके उदय से न भोग सके उसे **भोगान्तराय**कर्म कहते हैं। उपभोग की इच्छा होते हुए भी जिसके उदय से उपभोग न कर सके वह **उपभोगान्तराय**कर्म है। वीर्य में विघ्नकरनेवाला **वीर्यान्तराय**कर्म है।

आगे नामकर्म की उत्तर प्रकृतियों में अभेदविवक्षा से जो प्रकृति गर्भित की है उनको कहते हैं -

देहे अविणाभावी, बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे, गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

अर्थ - पाँचशरीरों के साथ अविनाभाव रखने वाले पाँचबन्धन और पाँच सङ्घात का शरीरों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण इन दसप्रकृतियों का बन्ध व उदय नहीं है तथा वर्णादि भेद रूप बीस प्रकृतियों का मूल वर्णचतुष्क में अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण चार प्रकृतियों का ही बंध और उदय होता है।

---

१. रा.वा. ८/११/३४-३५ में लिखा है कि यदुदयात् दुष्करोपवासादितपस्करणेऽपि अंगोपांगानां स्थिरत्वं जायते तत् स्थिरनाम। यदुदयादीषदुपवासादिकरणात् स्वल्पशीतोष्णादि संबंधाच्च अंगोपांगानि कृशी भवन्ति तदस्थिर नाम।
अर्थ - जिसकर्म के उदय से दुष्कर उपवासादि तप करने पर भी अंग उपांग की स्थिरता रहती है, अंगोपांग कृश नहीं होते वह स्थिर नाम है। जिसकर्म के उदय से एकादि उपवास आदि करने से या साधारण शीतोष्ण आदि से ही अंगोपांग कृश हो जाएँ - वह अस्थिर नाम है।

विशेषार्थ - नामकर्म के भेदों में जो औदारिकादि पाँचशरीर हैं, उनमें अपने-अपने बन्धन और सङ्घात अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्योंकि इनका शरीरों के साथ परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। अत: इन दसप्रकृतियों का शरीरों के साथ ही बन्ध-उदय होता है। इसीप्रकार वर्णादि की २० प्रकृतियाँ भी वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शरूप चतुष्क में गर्भित हो जाने से बीस प्रकृतियाँ बन्ध-उदय में भिन्न-भिन्न नहीं हैं, किन्तु सत्त्व में इनको पृथक्-पृथक् गिना जाता है। अत: बन्ध और उदय वर्णादि चार प्रकृतियों का ही कहा जाता है।

अब बन्ध-उदय और सत्त्वरूप प्रकृतियों को चार गाथाओं से कहते हैं -

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंध पयडीओ[1] ॥३५॥

अर्थ - पाँच-नव-दो-छब्बीस-चार-सड़सठ-दो और पाँच ये क्रम से बन्ध प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ - पाँच ज्ञानावरण-नव दर्शनावरण-दो वेदनीय-छब्बीस मोहनीय, क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति का बन्ध नहीं होता, उदय व सत्त्व ही होता है। तथा चार-आयु, सड़सठनामकर्म की, क्योंकि पाँचबन्धन और पाँचसंघात का पाँचों शरीरों में अन्तर्भाव होता है तथा वर्णादि की १६ प्रकृतियों का वर्णचतुष्क में अन्तर्भाव होने से इन छब्बीस प्रकृतियों को बन्ध में पृथक् नहीं गिना है। गोत्र की दो और अन्तराय की पाँच, इस प्रकार १२० प्रकृतियाँ बन्धयोग्य कही गई हैं।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ उदय पयडीओ ॥३६॥

अर्थ - पाँच ज्ञानावरण-नव दर्शनावरण-दो वेदनीय-अट्ठाईस मोहनीय-चार आयु सड़सठनामकर्म-दो गोत्र और पाँच अन्तराय की ये सर्व मिलकर १२२ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं।

अब बन्ध तथा उदययोग्य प्रकृतियों का भेद तथा अभेदविवक्षा से कथन करते हैं -

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति बीससयं।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्हि ॥३७॥

अर्थ - भेदों की विवक्षा से मिश्र तथा सम्यक्त्वप्रकृति के बिना बन्धयोग्य एक सौ छियालीसप्रकृतियाँ हैं। तथा अभेदविवक्षा से १२० प्रकृतियाँ बंध योग्य हैं। उदय में भेदविवक्षा से सर्व १४८ प्रकृतियाँ हैं, किन्तु अभेदविवक्षा से १२२ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

---

१. प्रा. पं. सं. प्रक. समु. अधि. गाथा ५

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
दोण्णिय पंच य भणिया, एदाओ सत्तपयडीओ॥३८॥

अर्थ - पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, अट्ठाईस मोहनीय, चार आयु, तिरानवे नामकर्म, दो गोत्र और पाँच अन्तराय ये १४८ प्रकृतियाँ सत्त्वयोग्य हैं।

आगे घातियाकर्म में सर्वघाति-देशघातिरूप जो दो भेद हैं, उनमें सर्वप्रथम सर्वघातिरूप कर्मप्रकृतियों को कहते हैं -

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्हि॥३९॥

अर्थ - केवलज्ञानावरण, दर्शनावरण की छह, बारहकषाय एवं मिथ्यात्व ये २० प्रकृतियाँ बन्ध की अपेक्षा सर्वघाती हैं, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति अबन्ध की अपेक्षा सर्वघाती है।

विशेषार्थ - केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि ५ निद्रा तथा अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ ये १२ कषाय और मिथ्यात्व ये २० बन्धयोग्य प्रकृति सर्वघाती हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति किंचित् सर्वघाती तो है, किन्तु बन्धयोग्य नहीं है, उदय और सत्त्व में जात्यंतररूप से सर्वघाती है अतः उदय और सत्त्व की अपेक्षा २१ प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं।

अथानन्तर देशघाति प्रकृतियों को कहते हैं -

णाणावरण चउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं।
णव णोकसाय विग्घं छव्वीसा देसघादीओ॥४०॥

अर्थ - ज्ञानावरण की चार, दर्शनावरणकी तीन, सम्यक्त्व प्रकृति, सञ्ज्वलनकी चार, नव नोकषाय एवं ५ अन्तराय की ये २६ प्रकृतियाँ देशघाती हैं।

विशेषार्थ - मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ये चार ज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि ये तीन दर्शनावरण, सम्यक्त्व तथा सञ्ज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद, पुंवेद-नपुंसकवेद ये १४ मोहनीय, दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य ये पाँच अन्तराय की, इस प्रकार सर्वमिलकर २६ प्रकृतियाँ देशघाती हैं।

शंका - इन २६ प्रकृतियों को देशघाती क्यों कहा?

समाधान - ये २६ प्रकृतियाँ जीवगुणों का पूर्णरूप से घात नहीं करतीं अतः ये देशघाती हैं।

जैसे १२ वें गुणस्थानतक मतिज्ञानावरणादिकर्म का उदय होते हुए भी मतिज्ञानादि अपने कार्य करते रहते हैं इसलिये इन प्रकृतियों को देशघाती कहा है। तथा क्षायोपशमिक भावों में भी इनके देशघाती स्पर्धकों का उदय रहता है।

घातियाकर्मों के सर्वघाती-देशघाती भेदों को कहकर आगे अघातियाकर्मों के प्रशस्त-अप्रशस्तरूप दोभेदों में से सर्वप्रथम प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियों को दो गाथाओं से कहते हैं-

सादं तिण्णेवाऊ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बंधणसंघादंगोवंगाइं वण्णचओ ॥४१॥

समचउरस्सं रिसहं, उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥४२॥ जुम्मं॥

अर्थ - सातावेदनीय, तीनआयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँचशरीर, पाँचबन्धन, पाँचसङ्घात, तीन अंगोपांग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, उपघातबिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसआदि बारह ये अड़सठ प्रकृतियाँ भेदविवक्षा से हैं तथा अभेदविवक्षा से पुण्यप्रकृतियाँ ४२ ही हैं।

विशेषार्थ - उपर्युक्त गाथा में कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीन आयु कही है वे तिर्यंच, मनुष्य और देवायु जानना। वर्णचतुष्क में - वर्ण-गंध-रस और स्पर्श हैं, किन्तु यहाँ शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना। इनके भेद करने पर वर्ण ५, गन्ध २, रस ५ और स्पर्श ८ इस प्रकार २० भेद होते हैं सो यह कथन भेदविवक्षा से है, किन्तु अभेदविवक्षा में शुभरूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं। उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात् अगुरुलघु-परघात-उच्छ्वास-आतप और उद्योत ये ५ प्रकृतियाँ जानना। त्रस आदि १२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं - त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर। भेद विवक्षासे तो ६८ प्रकृतियाँ कहीं और अभेदविवक्षा से ४२ प्रकृतियाँ कही सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बन्धन और ५ सङ्घात, पाँचशरीरों के अविनाभावी हैं अतः उनको पृथक् नहीं गिनने से १० प्रकृतियाँ तो ये एवं वर्णादि की २० में से सामान्य से वर्णचतुष्क कहने पर १६ प्रकृतियाँ वे कम हो गईं। इस प्रकार इन २६ प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेदविवक्षा में ४२ ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेदविवक्षासे इन २६ का भी कथन होने से ६८ प्रकृतियाँ हो जाती हैं। यहां पृथक्-पृथक्रूप से नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है। इसी बात को एक संक्षिप्तसूत्र द्वारा तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी आचार्य ने कहा है "सातावेदनीय, शुभआयु, नामकर्मकी शुभप्रकृतियाँ तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं[१]।

१. "सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं" तत्त्वार्थ सूत्र. ८/२५।

अब दो गाथाओं से अप्रशस्त प्रकृतियों को कहते हैं -

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी-
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥४३॥

उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥जुम्मं॥

अर्थ - घातियाकर्मकी ४७ प्रकृतियाँ तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, जाति ४, संस्थान ५, संहनन ५, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि १० ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेदविवक्षा से बन्धरूप ९८ प्रकृतियाँ एवं उदयरूप १०० प्रकृतियाँ हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि की १६ प्रकृति घटानेपर बन्धरूप ८२ और उदयरूप ८४ प्रकृतियाँ हैं ऐसा जानना।

विशेषार्थ - यहाँ अप्रशस्तप्रकृतियों में घातियाकर्मों की प्रकृतियाँ कही गईं सो घातियाकर्म तो अप्रशस्तरूप ही हैं। उनकी ४७ प्रकृतियाँ - ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, मोहनीय २८ और अन्तराय की ५ हैं। तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति[१], तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जाति, समचतुरस्रसंस्थानबिना न्यग्रोधमण्डलादि ५ संस्थान, वज्रर्षभनाराचबिना वज्रनाराचादिक ५ संहनन, अशुभवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति इस प्रकार वर्णादि की १६ कम करने से उदयापेक्षा ८४ प्रकृतियाँ तथा घातियाकर्म की ४७ में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति कम कर देने से बन्धापेक्षा ८२ प्रकृतियाँ अप्रशस्तरूप कही हैं। भेदविवक्षा से वर्णादि की १६ मिलने पर बन्धापेक्षा ९८ एवं उदयापेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से १०० प्रकृतियाँ पापरूप (अप्रशस्त) कही हैं।

---

१. **शंका** - गो.क.गा.सं. ४१ में तिर्यंच आयु को प्रशस्तप्रकृति कहा है और यहाँ गाथा ४३ में तिर्यंचगति को अप्रशस्त प्रकृति कहा है। इसका क्या कारण है?

समाधान - तिर्यंचगति में कोई जाना नहीं चाहता है, इसलिए तिर्यंचगति को अप्रशस्तप्रकृति कहा है। किन्तु तिर्यंचगति में पहुँचकर कोई मरना नहीं चाहता, अतः तिर्यंचायु को प्रशस्तप्रकृति कहा है। नरकगति में न तो कोई जाना चाहता है और न ही कोई वहाँ रहना चाहता है, अतः नरकायु तथा नरकगति दोनों को अप्रशस्तप्रकृति कहा गया है।

राजा शुभ को जब यह ज्ञात हुआ कि वह मरकर विष्ठा का कीड़ा होगा, तो उसने अपने पुत्र को कहा कि तुम उस (कीड़े को) मार देना, क्योंकि वह तिर्यंचगति में जाना नहीं चाहता था, किन्तु राजा के वहाँ उत्पन्न होने पर जब राजा का पुत्र राजा की कीड़ेरूप पर्याय को मारने गया तो उस कीड़े ने अपनी रक्षा के लिए विष्टा में प्रवेश कर लिया, कारण कि अब वह मरना नहीं चाहता था (आयुक्षय नहीं चाहता था)। इससे विदित होता है कि तिर्यंच आयु प्रशस्त प्रकृति है।

अब अनन्तानुबन्धीआदि कषायों का कार्य बताते हैं -

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसावि ।।४५।।

अर्थ - पहली अनन्तानुबन्धीकषाय सम्यक्त्व को घातती है, दूसरी अप्रत्याख्यान कषाय देशचारित्र को, तीसरी प्रत्याख्यानकषाय सकलचारित्र को और चौथी सञ्ज्वलनकषाय यथाख्यातचारित्र को घातती है। अत: इनके गुणों के अनुसार ही इनके नाम भी हैं।

विशेषार्थ - अनन्तसंसार का कारण होने से मिथ्यात्व अनन्त है, उसके साथ जो सम्बन्ध करे वह अनन्तानुबन्धी है। अप्रत्याख्यान ईषत् संयम-देशसंयम को घातती है। प्रत्याख्यान सकलसंयम नहीं होने देती तथा सञ्ज्वलन-'सम'-एकरूप होकर जो संयम के साथ प्रकट रहे वह सञ्ज्वलनकषाय है। इसी प्रकार शेष नव नोकषाय और ज्ञानावरणादि भी सार्थक नामवाले हैं।

अब कषायोंका वासनाकाल कहते हैं -

अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ।।४६।।

अर्थ - सञ्ज्वलन का वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रत्याख्यानकषाय का एकपक्ष, अप्रत्याख्यान का छहमहीना तथा अनन्तानुबन्धी का संख्यात-असंख्यात और अनन्तभव हैं।

विशेषार्थ - उदय का अभाव होते हुए भी कषाय का संस्कार जितने काल तक रहे उसका नाम वासनाकाल है। जैसे - किसी पुरुष को क्रोध का उदय हुआ उस समय वह किसी कार्य में लग गया तो उसका वह क्रोध मिट गया। अब उसके क्रोध का उदय तो नहीं है, किन्तु वासना (संस्कार) विद्यमान है, क्योंकि उसने जिसपर क्रोध किया उसके प्रति मन में उसके क्षमाभाव नहीं हैं। इसी प्रकार सभी कषायों का वासनाकाल जानना चाहिए।

पुद्गलविपाकी प्रकृतियों को कहते हैं -

देहादी फासंता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं, पोग्गल विवाई ।।४७।।

अर्थ - शरीरनामकर्मसे स्पर्शनामकर्मपर्यंत ५० प्रकृतियाँ और निर्माण, आतप, स्थिर, शुभ तथा प्रत्येक, इनके युगल, अगुरुलघुआदि तीन ये ६२ प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं।

विशेषार्थ – शरीर ५, बन्धन ५, संघात ५, संस्थान ६, अङ्गोपाङ्ग ३, संहनन ६, वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८ ये ५० तथा निर्माण-आतप-उद्योत-स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, अगुरुलघु, उपघात और परघात ये सर्व ६२ प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं, क्योंकि पुद्गल (शरीर) में ही इनका फल पड़ता है, जैसे शरीरनामकर्म के उदय से पुद्गल शरीररूप परिणमन करता है।

आगे भवविपाकी-क्षेत्रविपाकी एवं जीवविपाकी प्रकृतियों को कहते हैं -

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ।
अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥४८॥

अर्थ – चारों आयु भवविपाकी तथा चारों आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं। इनका उदय विग्रहगति में ही होता है। जीवविपाकी प्रकृतियाँ ७८ हैं, क्योंकि जो जीव की नरकादि पर्याय को उत्पन्न कराने में कारण हैं वे जीवविपाकी कहलाती हैं।

अब जीवविपाकीप्रकृतियों के नाम कहते हैं -

वेदणियगोदघादीणेकावण्णं तु णामपयडीणं।
सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाई ॥४९॥

अर्थ – वेदनीय की दो, गोत्र की दो, घातियाकर्म की ४७ (ये ५१ प्रकृतियाँ और), नामकर्म की २७ ये सर्व ७८ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।

विशेषार्थ – वेदनीयकर्म पुद्गलविपाकी भी है, क्योंकि वह बाह्यसामग्री मिलाता है। **''जीव-पोग्गल विवाइत्तं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चे ण, इट्ठत्तादो''** यदि कहा जावे कि सातावेदनीयकर्म को जीवविपाकी और पुद्गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह तो इष्ट है।[१]

जीवविपाकी प्रकृतियों में कही गई नामकर्म की २७ प्रकृतियों को कहते हैं -

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥५०॥

अर्थ – तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय,

१. ध. पु. ६ पृ. ३६।

यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, त्रस-स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, सुभग-दुर्भग, चारगति, पाँचजाति ये नामकर्म की २७ प्रकृतियाँ हैं।

उन २७ प्रकृतियों को दूसरी प्रकार से कहते हैं -

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च।
सुभगादिचउज्जुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

अर्थ - चारगति, पाँचजाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-सुस्वर-आदेय और यशस्कीर्ति के युगल तथा तीर्थंकर ये नामकर्म की २७ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।

आगे ३४ गाथाओं से चारनिक्षेपों का कथन मध्यमरुचि शिष्यों को लक्ष्य करके कहते हैं-

णामं ठवणा दवियं भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं।
पयडी पावं कम्मं मलंति सण्णा हु णाममलं ॥५२॥

अर्थ - सामान्यकर्म नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार का है। प्रकृति-पाप-कर्म और मल ये नाममल कहे गए हैं। इनको नामनिक्षेपरूप कर्म जानना चाहिए।

विशेषार्थ - जो किसी एक निश्चय या निर्णय में क्षेपण करे अर्थात् अनिर्णीत वस्तु का उसके नामादिक द्वारा निर्णय करावे उसे निक्षेप कहते हैं[1]। अन्य निमित्तों की अपेक्षा रहित किसी की 'कर्म'

---

१. ध. पु. १ पृष्ठ १० विशेष समझावट इस प्रकार है - नामनिक्षेप का सम्पूर्ण कारण वक्ता का अभिप्राय कहा गया है। पिता जैसे अपने पुत्र का नाम चाहे जो रख देता है उसी प्रकार वक्ता लोक-व्यवहार की प्रसिद्धि के लिए गुणों की अपेक्षा नहीं रखता हुआ अपनी इच्छा से पदार्थों में नाम निक्षेप कर लेता है। उस अभिप्राय से भिन्न जाति गुण क्रिया संयोगी द्रव्य समवायी द्रव्य ये सब तो निमित्तान्तर माने गये हैं। (श्लो. वा. भाग २ पृ. १७१ श्लोक २) निमित्तान्तर की अपेक्षा नहीं करके, वक्ता की इच्छा मात्र से नाम की प्रवृत्ति हो जाती है। (श्लो. वा. २/१७०) तिस कारण वक्ता की केवल इच्छा के अधीन जो संज्ञा करना है वह आचार्यों द्वारा नाम निक्षेप इष्ट किया गया है। नाम निक्षेप का शरीर, जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य, परिभाषा आदि निमित्तों से युक्त नहीं है। अर्थात् जाति आदि निमित्तों की अपेक्षा नहीं करके वक्ता की इच्छा मात्र से किसी भी वस्तु का चाहे जो कोई नाम धर दिया जाता है वह नाम निक्षेप है। जैसे कि जाति को निमित्त मानकर विशेष पशुओं में घोड़ा शब्द व्यवहृत होता है। किन्तु किसी मनुष्य में या बन्दूक के अवयव में या इञ्जन में घोड़ा शब्द का व्यवहार करना नाम निक्षेप है। इसी प्रकार काक शब्द भी जाति के सहारे पक्षी विशेष में चालू है, किन्तु गले के अवयव में या शीशी में डाट में (काकशब्द) नाम निक्षेप से काक कहा जाता है।

शब्द के विवक्षारूप निमित्त से न्यारे जाति गुण आदि निमित्तान्तर हैं। उन निमित्तान्तरों की अपेक्षा नहीं रखता हुआ किन्तु विवक्षा रूप निमित्त से व्यवहारियों द्वारा संज्ञा (नाम) धर लेना नाम निक्षेप है। अतः अनादिकालीन योग्यता की अपेक्षा रखता हुआ वह जाति, द्रव्य आदि को निमित्त लेकर संज्ञा कर लेना नाम निक्षेप नहीं है। अर्थात् नाम निक्षेप में अनादि योग्यता की आवश्यकता नहीं है। तथा जाति आदि निमित्तों की भी अपेक्षा नहीं है। (श्लो.वा. भाग २ पृ. २६२)

ऐसी संज्ञा करने को नामकर्म कहते हैं। नामनिक्षेप के जाति-द्रव्य-गुण और क्रिया, ये चार अन्य निमित्त कहे हैं। गौ, मनुष्य आदि जाति-निमित्तक नाम हैं। दण्डी, छत्री, मौली आदि संयोगद्रव्यनिमित्तक नाम हैं अथवा काना, कुबड़ा इत्यादि समवायद्रव्यनिमित्तक नाम हैं। कृष्ण, रुधिर आदि गुणनिमित्तक नाम तथा गायक, नर्तक आदि क्रियानिमित्तक नाम हैं। इस तरह जाति आदि इन ४ निमित्तों को छोड़ कर संज्ञा की प्रवृत्ति में अन्य दूसरा कोई निमित्त नहीं है। वाच्यार्थ की अपेक्षारहित "कर्म शब्द" नामकर्म है।[१]

स्थापना रूप कर्म को कहते हैं -

सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं।
तं एदंति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं॥५३॥

अर्थ - सदृश अथवा विसदृश वस्तु में अपनी बुद्धि से स्थापना द्वारा जीव के समस्त प्रदेशों में स्थित जो सामान्यकर्म है 'वह यह है' ऐसी प्रतिष्ठा करना स्थापनाकर्म है।

विशेषार्थ - स्थापनानिक्षेप दो प्रकार का है, सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना। इन दोनों में, जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करनेवाली वस्तु में सद्भावस्थापना समझना चाहिए तथा जिसवस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकारसे रहित वस्तुमें असद्भाव स्थापना जानना चाहिए।[२]

आगे द्रव्यनिक्षेपरूप कर्मका स्वरूप कहते हैं -

दव्वे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति तप्पढमं।
कम्मागमपरिजाणुगजीवो उवजोग परिहीणो॥५४॥

अर्थ - द्रव्यनिक्षेपकर्म के आगमद्रव्यकर्म और नोआगमद्रव्यकर्म की अपेक्षा दोभेद हैं। जो कर्मरूपशास्त्र को जाननेवाला तो है, किन्तु वर्तमान में उस शास्त्र में उपयोग नहीं रखता है वह जीव आगमद्रव्यकर्मनिक्षेप है।

अथानन्तर नोआगमद्रव्यनिक्षेप द्वारा कर्म को कहते हैं -

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं विदियं।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा॥५५॥

---

१. ध. पु. १ पृ. १७। २. ध. पु. १ पृ. २०।

अर्थ - नोआगमद्रव्यकर्म के तीन भेद हैं - ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त। इनमें भी ज्ञायकशरीर के तीन भेद हैं - भूत, भावी और वर्तमान। इनमें दो तो सुगम हैं।

विशेषार्थ - कर्मस्वरूप को जाननेवाले जीवका शरीर ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकर्म है। इसके तीन भेद हैं - भूत-वर्तमान और भावी। जिसशरीर सहित जीव कर्मस्वरूप का वर्तमान में ज्ञाता है, वह वर्तमानशरीर है। यह पहले जिस शरीर को छोड़कर आया है वह भूतशरीर और आगे जो शरीर धारण करेगा वह भावी शरीर है।

राजपर्याय का आधार होने से अनागत और अतीत जीव में भी जिसप्रकार राजारूप व्यवहार की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार कर्मपर्याय से परिणत जीव का आधार होने से अतीत और अनागतशरीर में भी कर्मरूप व्यवहार हो सकता है।[१]

अथानन्तर ज्ञायकभूतशरीर के भेद कहते हैं -

भूदं तु चुदं चइदं चदंति तेधा चुदं सपाकेण।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

अर्थ - ज्ञायकभूतशरीर के तीन भेद हैं - च्युत, च्यावित और त्यक्त। इनमें अन्य कारण के बिना स्वयं आयु पूर्ण होने से जो शरीर छूटता है उसे च्युत कहते हैं, यह कदलीघात तथा संन्यास से रहित है।

कदलीघात का लक्षण -

विसवेयणरत्तक्खय भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ[२] ॥५७॥

अर्थ - विष खाने से, वेदना से, रक्त के क्षय हो जाने से, भय से, शस्त्रघात से, संक्लेश से, श्वास के रुक जाने से, आहार के न मिलने आदि से आयु का क्षय हो जाता है, उसे कदलीघात (अकालमरण) कहते हैं।[३]

---

१. इसका विशेष कथन ध. पु. १ पृ. २२ से २६ तक देखें।

२. ध. पु. १ पृ. २३, भावपाहुड़ गाथा २५।

३. राजा श्रेणिक को क्षायिक-सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया था और सम्यग्दृष्टि के नरकायु का बंध नहीं हो सकता, क्योंकि नरकायु की बंध-व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में हो जाती है। अत: राजा श्रेणिक के नरकायु का बंध सम्यक्त्वोत्पत्ति से पूर्व हो चुका था। राजा श्रेणिक का अकालमरण नहीं हुआ है, क्योंकि परभव की आयु बंध होने के पश्चात् अकालमरण नहीं होता है। कहा भी है - पर-भवियआउए बद्धे पच्छा भुंजमाणाउअस्स कदलीघादो णत्थि जहासरूवेण चेव वेदेदित्ति। (ध. १०/२३७) परभव सम्बन्धी आयु के बँधने के पश्चात् भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता, किन्तु वह जितनी थी उतनी का ही वेदन करता है।

विशेषार्थ - गाथा में कथित कारणों के अतिरिक्त अन्य भी ऐसे अनेककारण हैं जिनके निमित्त से अकालमरण होता है। जैसे - "हिम, अग्नि, पानी, बहुत ऊँचे पर्वत अथवा वृक्षों पर चढ़ने और गिरने के समय होनेवाले अङ्गभङ्ग से तथा रसविद्या के लिए योगधारण और अनीति के नानाप्रसंगों से आयुक्षय होती है अर्थात् कदलीघातमरण होता है।[१]

अब च्यावित-त्यक्त तथा भूतज्ञायकशरीर का लक्षण कहते हैं -

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि।
घादेण व अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

अर्थ - जिस ज्ञायक का भूतशरीर अकालमरण से नष्ट हो गया है, किन्तु संन्यास से रहित हो उसे च्यावित कहते हैं। जो कदलीघात सहित या उसके बिना लेकिन संन्यासपूर्वक छूटा है उसे त्यक्त कहते हैं।

अब त्यक्तशरीर के भेद कहते हैं -

भत्तपइण्णाइंगिणिपाउग्गविधीहिं चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥५९॥

अर्थ - त्यक्तशरीर के तीन भेद हैं - भक्तप्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोग्य विधि। इनमें भक्तप्रतिज्ञा के भी तीन भेद हैं - उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

अथानन्तर जघन्यादि भेदों का काल कहते हैं -

भत्तपइण्णाइविहि जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
वारसवरिसा जेट्ठा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

अर्थ - भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनत्याग की प्रतिज्ञा करके जो संन्यासमरण होता है उसके काल का प्रमाण जघन्य से अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट १२ वर्ष प्रमाण है तथा अन्तर्मुहूर्त से एक-एक समय बढ़ते हुए बारहवर्षपर्यन्त जितने भेद हैं वे सब मध्यमकाल के भेद जानना।

---

१. हिम्मजलणसलिलगुरुयर पव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्ज जोय धारण अणयपसंगेहि विविहेहिं ॥२६॥ भावप्राभृत॥

इंगिनी और प्रायोपगमन (प्रायोग्यविधि) का लक्षण -

अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

अर्थ - संन्यासमरण के समय अपने शरीर का उपचार (सेवा) स्वयं करे, अन्य से नहीं करावे। इस प्रकार की विधिपूर्वक जो मरण करता है वह इंगिनीमरण है। तथा अपने शरीर की सेवा दूसरों से न करावे और स्वयं भी न करे, इस प्रकार की विधिपूर्वक शरीर को जो छोड़ना वह प्रायोपगमनमरण कहलाता है।

आगे नोआगमद्रव्य का दूसरा जो भावी भेद है, उसको कहते हैं -

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो।
जाणुगसरीर[1] भवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२॥

अर्थ - जो जीव कर्मस्वरूपआगम का ज्ञाता भविष्य में होगा, वह जीव ज्ञायकभावीशरीरी[2] है। इस प्रकार भावीज्ञायकशरीरी का लक्षण सर्वज्ञ ने कहा है।

आगे नोआगमद्रव्यकर्म के तीसरे 'तद्व्यतिरिक्त' भेद को कहते हैं -

तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा ॥६३॥

अर्थ - तद्व्यतिरिक्त के दो भेद हैं - कर्मतद्व्यतिरिक्त और नोकर्मतद्व्यतिरिक्त। ज्ञानावरणादि मूल तथा मतिज्ञानावरणादि उत्तरप्रकृतिरूप परिणत हुए पुद्गलद्रव्य को कर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यकर्म कहते हैं।

अथानन्तर नोकर्मतद्व्यतिरिक्त का लक्षण एवं भावनिक्षेपरूपकर्मके भेदोंका कथन करते हैं -

कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे ॥६४॥

---

१. 'जाणुगसरीरि' इति प्रातिभाति।

२. जीव तो शरीर नहीं हो सकता, शरीरी हो सकता है। अत: यहाँ शरीरी शब्द लिखा है। गाथा में 'जाणुग-सरीरि भवियं' के स्थान पर 'जाणुगसरीर भवियं' लिपिकार से लिखा गया है और वही परम्परा चली आई। एक मात्रा के छूट जाने से ही अर्थ विपर्यास की परम्परा चली आ रही है ऐसा प्रतिभासित होता है, क्योंकि भावीशरीर का वर्णन तो स्वयं आचार्य गाथा ५५ में कर चुके हैं यहाँ तो भाविजीव (शरीरी) का कथन प्रकरण प्राप्त है।

अर्थ - कर्मस्वरूपपरिणत द्रव्यसे भिन्न बाह्यकारणरूप जो द्रव्य है वह नोकर्म तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकर्म है। भावनिक्षेपकर्म के दो भेद हैं - आगमभावकर्म-नोआगम भावकर्म।

आगमभावनिक्षेपकर्म का स्वरूप -

कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्हि उवजुत्तो।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥६५॥

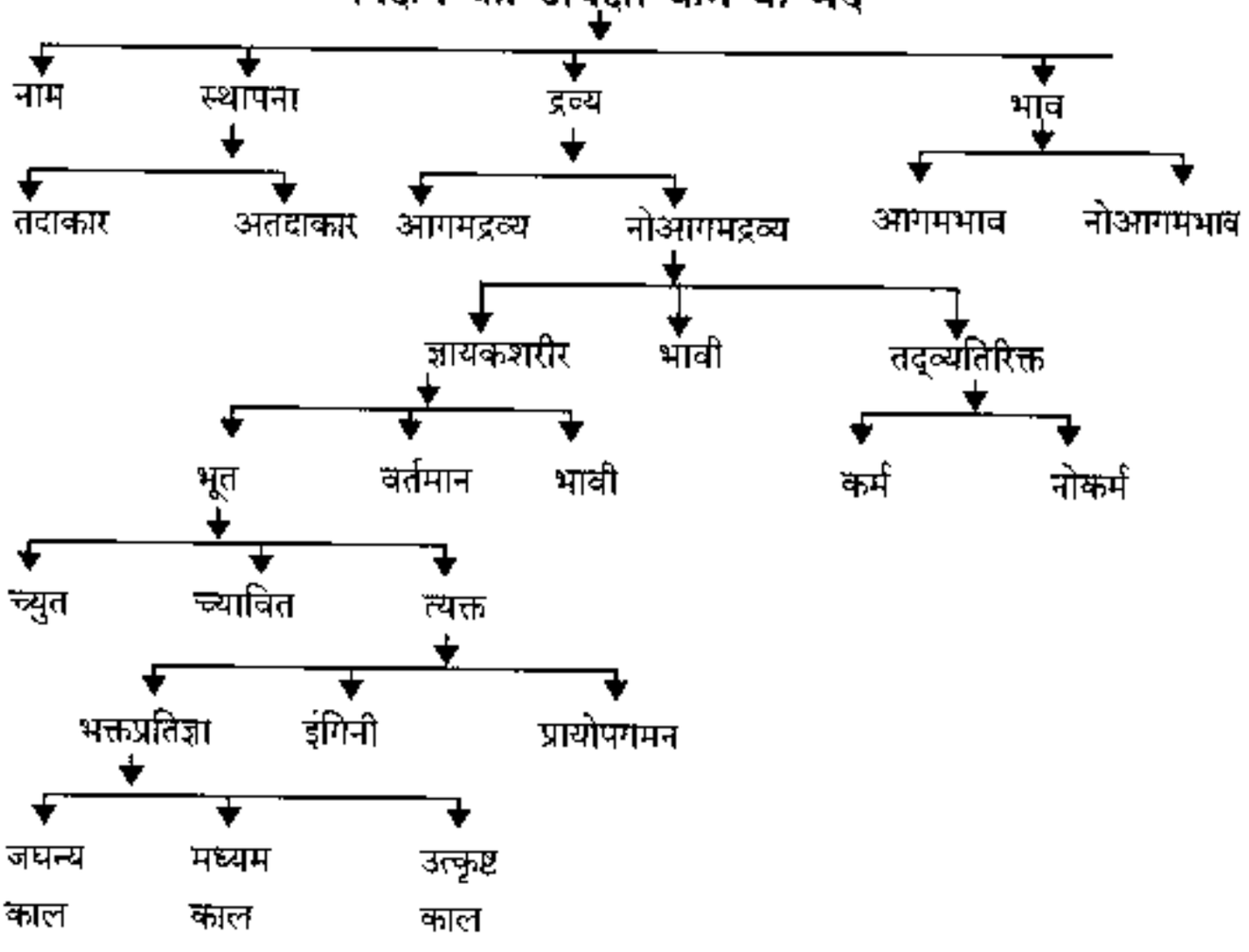
अर्थ - जो जीव कर्मस्वरूपके प्रतिपादक आगम (शास्त्र) का जाननेवाला है तथा वर्तमानकाल में उसी शास्त्रके चिन्तनरूप उपयोग से सहित है उस जीवको आगमभावकर्म जानना चाहिए।

आगे नोआगमभावनिक्षेप को कहते हैं -

णो आगमभावो पुण कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण ॥६६॥

अर्थ - कर्मफलको भोगनेवाला जीव नोआगमभावकर्म है। इस प्रकार निक्षेपों की अपेक्षा सामान्यकर्म चार प्रकार का नियम से जानना चाहिए।

निक्षेप की अपेक्षा कर्म के भेद



अब मूल प्रकृति और उत्तरप्रकृतियों में नामादि चारनिक्षेपके भेदों को कहते हैं -

मूलुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

अर्थ - कर्मकी मूलप्रकृति आठ और उत्तर प्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं। इन दोनों के नामादि चार निक्षेप हैं। उनका स्वरूप सामान्यकर्म की तरह है, किन्तु विशेषता यह है कि जिस प्रकृति का जो नाम है उसी के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेप होते हैं।

उपर्युक्त कथन में कुछ विशेषता है सो कहते हैं -

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च ॥६८॥

अर्थ - मूल तथा उत्तरप्रकृतियों के नामादि चारनिक्षेपों को जानना सुगम है, किन्तु नोकर्मतद्व्यतिरिक्त तथा नोआगमभावकर्म का स्वरूप समझना कठिन है।

विशेषार्थ - पहले द्रव्यनिक्षेप के दो भेद आगम-नोआगमरूप किये। नोआगम के भी ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तरूप तीन भेद हैं। तद्व्यतिरिक्त के दो भेद, कर्म और नोकर्मरूप जानना। 'नोकर्मद्रव्यकर्म' इस शब्द से नोकर्मतद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्य समझना चाहिए। जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव जिस प्रकृति के उदयस्वरूप फल में कारणभूत हों वह द्रव्य-क्षेत्र आदि उन-उन प्रकृति के नोकर्मद्रव्यकर्म समझना।

अब सर्वप्रथम मूलप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं -

पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं।
भंडारी मूलाणं णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥६९॥

अर्थ - ज्ञानावरणकर्मका नोकर्मद्रव्य वस्त्र है तथा शेष सातकर्मों के क्रम से प्रतिहार, तलवार, मद्य, आहार, शरीर, ऊँच-नीचशरीर और भण्डारी ये आठ प्रकार जानने।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य वस्तु के चारों ओर लगा हुआ वस्त्र है जो वस्तु के ज्ञान को नहीं होने देता। दर्शनावरणकर्म का नोकर्मद्रव्य द्वार पर नियुक्त द्वारपाल है, जो राजा के समान निजात्मरूप आत्मा का अवलोकन नहीं होने देता। अर्थात् अन्तर्मुखचित्प्रकाश को नहीं होने देता। वेदनीयकर्म का नोकर्म शहदलपेटी तलवार है जो वेदनीय कर्मोदय के लिए सुख-दुःख का कारण है।

मोहनीयका नोकर्म मद्य है जो मोहनीय के उदय के लिए जीव के सम्यग्दर्शनादि गुणों को घातता है। आ
का नोकर्म चार प्रकार का आहार है, जो शरीर के बल का कारण होने से शरीर में स्थिति का का
है। नामकर्म का नोकर्म औदारिकादि शरीर है। गोत्रकर्म का नोकर्मद्रव्य ऊँच-नीचशरीर है जो गोत्रक
के उदय के लिए ऊँच-नीचकुल को प्रकट करता है। अन्तरायकर्म का नोकर्मद्रव्य भण्डारी है जो अन्तर
कर्मोदय के लिए भोग-उपभोगरूप वस्तु में विघ्न करता है।

आगे उत्तर प्रकृतियों में सर्वप्रथम ज्ञानावरण के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं -

पडविसयपहुदि दव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं।
मदिसुदवोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥७०॥

अर्थ - वस्तुस्वरूप को ढँकनेवाले वस्त्रादि पदार्थ मतिज्ञानावरण के नोकर्म हैं। इन्द्रियविषयादि
श्रुतज्ञानावरण के नोकर्म हैं जो श्रुतज्ञान को नहीं होने देते।

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अर्थ - अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञानका घात करनेवाले संक्लेशपरिणामों को उत्पन्न करनेवाली
बाह्यवस्तु अवधि-मन:पर्ययज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य है। केवलज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य नहीं है।

विशेषार्थ - केवलज्ञान क्षायिक है उसको रोकनेवाली संक्लेशकारक कोई वस्तु नहीं है
अवधि और मन:पर्ययज्ञानावरण क्षायोपशमिकज्ञान हैं अत: इनके नोकर्म हैं।

दर्शनावरण की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म बताते हैं -

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूण णोकम्मं ॥७२॥

अर्थ - पाँच निद्रारूप दर्शनावरण के नोकर्मद्रव्य भैंसका दही आदि वस्तुएँ हैं। चक्षु-
अचक्षुदर्शनावरण के नोकर्मद्रव्य व्याघातकारक पट आदि वस्तुएँ हैं।

अवधि-केवलदर्शनावरण एवं वेदनीय के उत्तरभेदों का नोकर्मद्रव्य कहते हैं -

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाण भंगो य।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ॥७३॥

अर्थ - अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण का नोकर्मद्रव्य अवधिज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण के समान जानना तथा सातावेदनीय का नोकर्मद्रव्य इष्टअन्नपानादि तथा असातावेदनीय का नोकर्मद्रव्यकर्म अनिष्टअन्नपानादि हैं।

अब मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म कहते हैं -

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

अर्थ - सम्यक्त्वप्रकृति के नोकर्मद्रव्य जिनआयतन हैं। तथा मिथ्यात्व के नोकर्मद्रव्य छह अनायतन हैं। आयतन व अनायतन, ये दोनों मिश्रितरूप से सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के नोकर्मद्रव्य हैं। ये नियम से इनके नोकर्म हैं।

विशेषार्थ - जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जिनागम, शास्त्रज्ञ, सुतप और सुतपस्वी ये छह आयतन तथा कुदेव, कुदेवमंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्रज्ञ, कुतप और कुतपस्वी ये छह अनायतन हैं।

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी हु होदि सेसाणं।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुदी हवे णियमा ॥७५॥

अर्थ - अनन्तानुबन्धी के नोकर्म छह अनायतन आदि हैं। शेषकषायों के नियम से नोकर्मद्रव्य, देशचारित्र-सकलचारित्र तथा यथाख्यातचारित्र के घातक काव्य-नाटक-कोकशास्त्रादि अथवा पापी लोगों की सङ्गति है।

थीपुंसंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥७६॥

अर्थ - स्त्रीवेद का नोकर्म स्त्रीका शरीर, पुरुषवेद का नोकर्म पुरुष का शरीर और नपुंसकवेद का नोकर्म नपुंसकका शरीर है। हास्य का नोकर्म विदूषकादि (हँसी मजाक करनेवाले जोकर), रति का नोकर्म गुणवान पुत्र है, क्योंकि गुणीपुत्र पर अधिक प्रीति होती है।

इट्ठाणिट्ठविजोग-जोगं अरदिस्समुदसुपुत्तादी।
सोगस्स य सिंहादी णिंदिद दव्वं च भयजुगले ॥७७॥

अर्थ - अरति का नोकर्म इष्टवियोग-अनिष्टसंयोग है। शोक का नोकर्म सुपुत्रादि का मरण, भय का नोकर्म सिंहादि भयंकर वस्तुएँ तथा जुगुप्सा का नोकर्म निंदित वस्तु है।

अथानन्तर आयुकर्म एवं गतिनामकर्म के नोकर्म कहते हैं -

णिरयायुस्स अणिट्ठाहारो ससाणमिट्ठ मण्णादा।
गदिणोकम्मं दव्वं चउग्गदीणं हवे खेत्तं ॥७८॥

अर्थ - नरकायु का नोकर्म अनिष्टआहार है। शेष तीनआयु का नोकर्म इन्द्रियों को प्रिय लगनेवाले अन्नपानादि हैं और सामान्य से चारों गतियों का नोकर्म चारगतिरूप क्षेत्र अर्थात् 'योनिस्थान' है।

अब नामकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं -

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि ॥७९॥

अर्थ - नरकादि चारगतियों का नोकर्म नियम से नरकादि गतियों का अपना-अपना क्षेत्र (योनि स्थान) है। (यद्यपि गतियों का उदय नारक आदि पर्यायों में निमित्त है तथापि वे पर्यायें अन्यत्र नहीं होतीं इसलिए उनका नोकर्म उन-उनका क्षेत्र ही होना चाहिए। इसके लिए गाथा में नियम शब्द दिया है।) तथा जातिकर्म का नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल की रचना है।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजयदेहखंधाणि ॥८०॥

अर्थ - एकेन्द्रियादि पाँचजाति के नोकर्मद्रव्य अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं तथा शरीरनामकर्म के नोकर्म शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए अपने-अपने शरीर की स्कन्धरूपपुद्गलवर्गणाएँ जानना चाहिए।

ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजकम्मणोकम्मं।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा ॥८१॥

अर्थ - औदारिक-वैक्रियक-आहारक-तैजसशरीरनामकर्म के नोकर्म अपने-अपने उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणाएँ हैं। कार्मणशरीर का नोकर्मद्रव्य विस्रसोपचय (कर्मरूप होने योग्य वर्गणा) हैं।

बंधणपहुदि समण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥८२॥

अर्थ - शरीरबंधननामकर्म से लेकर जितनी पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं, उनका तथा शेष जीवविपाकी प्रकृतियों का नोकर्मद्रव्य कर्मशरीर ही है, (क्योंकि उनके द्वारा किया गया पुद्गलरूप भाव और जीवभाव तथा सुखादि रूप कार्य का उपादान कारण शरीर सम्बन्धी वर्गणा ही है।) क्षेत्रविपाकीरूप जो चारआनुपूर्वी हैं, उनका नोकर्म अपना-अपना विग्रहगतिरूप क्षेत्र ही है, इतना विशेष जानना चाहिए।

थिरजुग्गस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे॥८३॥

अर्थ - स्थिरप्रकृति का नोकर्मद्रव्य अपने-अपने स्थान पर स्थित रहने वाला रस-रुधिरादि है और अस्थिरप्रकृति का नोकर्म अपने-अपने स्थान से चलायमान अर्थात् परिणमनरूप रस-रुधिरादिक है। शुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के सुन्दर अर्थात् नाभि से ऊपर के अवयव हैं। तथा अशुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के अशुभ अर्थात् नाभि से नीचे के अवयव हैं। स्वरनामकर्म का नोकर्म सुस्वर-दुःस्वररूप से परिणमित भाषा-वर्गणारूप पुद्गलस्कन्ध है।

गोत्र तथा अन्तरायकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म कहते हैं -

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं।
दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु॥८४॥

अर्थ - उच्चगोत्र का नोकर्मद्रव्य परम्परागत (साधु आचरण) कुल में उत्पन्न हुआ शरीर है। तथा इससे विपरीत नीचगोत्र का नोकर्म है। दानादि चार अन्तरायों का नोकर्म दानादि में विघ्न करने वाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि जानना चाहिए।

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं।
इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु॥८५॥

अर्थ - वीर्यान्तराय का नोकर्म रुक्षआहार आदि बलनाशक पदार्थ है। इस प्रकार उत्तरप्रकृतियों के नोकर्मद्रव्य का कथन किया।

अब आगे नोआगमभावकर्म को कहते हैं -

णो आगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो।
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो॥८६॥

अर्थ - जिसकर्म का जो फल है उसको भोगते हुए जीव को ही उस-उसकर्म का नोआगमभावक जानना चाहिए। पुद्गलविपाकी प्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं है।

विशेषार्थ - पुद्गलविपाकीप्रकृतियों का उदय होने पर शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियों सहयोग बिना सुखादिक की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी कारण पुद्गलविपाकी प्रकृतियों नोआगमभावकर्म नहीं कहे। इस प्रकार सामान्यकर्म के भेदों (मूल और उत्तरप्रकृतिरूप) में नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप कहकर उनके यथार्थस्वरूप का वर्णन किया।

श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की ''सिद्धान्तज्ञान-दीपिका'' नामा हिन्दी टीका में 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' नामक प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ।

卐 卐 卐

अथ "बन्धोदयसत्त्व" अधिकार

आचार्यदेव संक्षेपस्वरूपपूर्वक बंध-उदय-सत्त्वअधिकारका कथन करने की प्रतिज्ञा करते हैं -

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं॥८७॥

अर्थ - जिनका पराक्रम दूसरों की सहायता से रहित है और जो महावीर हैं ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणा में बन्ध-उदय तथा सत्त्व का कथन करनेवाले स्तवरूप ग्रन्थ को कहूँगा।

स्तव का लक्षण कहते हैं -

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं।
वण्णणसत्थं थयथुइधम्मकहा होइ णियमेण॥८८॥

अर्थ - जिसमें सकलअङ्ग का वर्णन विस्तार से या संक्षेप से किया गया है उसशास्त्र को स्तव कहते हैं। तथा एकअङ्ग का वर्णन विस्तार अथवा संक्षेप से जिस शास्त्र में किया गया है उसशास्त्र को स्तुति कहते हैं। एकअङ्ग के अधिकार का वर्णन विस्तार या संक्षेप से जिसमें किया गया है उसे धर्मकथा (वस्तु) कहते हैं ऐसा नियम से जानना।

विशेषार्थ - जैसे चतुर्विंशतितीर्थंकर की वन्दना को स्तव कहते हैं उसीप्रकार संक्षेप या विस्तार से सकलअङ्ग के अर्थ का प्रतिपादकशास्त्र यहाँ 'स्तव' नाम से कहा गया है। तथैव जब एक तीर्थंकर की वन्दना की जाती है तो उसे स्तुति कहते हैं, वैसे ही यहाँ एकअङ्गके अर्थ का संक्षेप या विस्तार से कथन करनेवाला शास्त्र स्तुति कहलाता है एवं एक अङ्ग में २० वस्तु-अधिकार होते हैं इसलिए एकअङ्ग के अधिकार का संक्षेप या विस्तार से कथन करनेवाला शास्त्र धर्मकथा कहलाता है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में धर्म का ही कथन है अत: यहाँ वस्तु को धर्मकथा कहा गया है। वस्तु और धर्मकथा यहाँ पर्यायवाची ही प्रतीत होते हैं।

कर्म की बन्ध-उदय और सत्त्वरूप तीन अवस्थाओं में सर्वप्रथम बन्धअवस्था वर्णन करते हुए बन्ध के भेद कहते हैं -

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगंति पुधं॥८९॥

अर्थ - प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेश के भेद से बन्ध चार प्रकार का है। इनमें भी प्रत्ये के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्य और अजघन्यरूप चार भेद हैं।

विशेषार्थ - पौद्गलिक मूल व उत्तरकर्मप्रकृतियों का जीव के साथ संश्लेषसम्बन्ध हो **प्रकृतिबन्ध** कहलाता है। जिन कर्मप्रकृतियों का जीव के साथ संश्लेषसम्बन्ध हुआ है उनका जीव साथ जितने कालपर्यन्त सम्बन्ध रहता है, उस काल को **स्थितिबन्ध** कहते हैं। कर्मों की फलदेने शक्ति **अनुभागबन्ध** है। तथा कर्मरूप हुई पौद्गलिककार्मणवर्गणाओं के प्रमाण को **प्रदेशबन्ध कहते** सबसे अधिक बन्ध को **उत्कृष्टबन्ध** कहते हैं। उत्कृष्ट से हीनबन्ध अनुत्कृष्टबन्ध कहलाता है। जघन से अधिकबन्ध को अजघन्यबन्ध एवं सबसे अल्पबन्ध को जघन्यबन्ध कहते हैं।

अब उत्कृष्टादि के भेदों को कहते हैं -

सादि अणादी धुव अद्धुवो व बंधो दु जेट्ठमादीसु।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं॥९०॥

अर्थ - सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुव के भेद से उत्कृष्टादि भी चार प्रकार के हैं। सादि- अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध नानाजीवों की अथवा एकजीव की अपेक्षा ओघ और आदेश में यथासम्भ जानना चाहिए।

विशेषार्थ - जिसका बन्ध छूटकर पुनः बन्ध हो वह **सादिबन्ध** है। अनादिकाल से जिसके संततिरूप बन्धका अभाव नहीं हुआ हो उसे **अनादिबन्ध** कहते हैं। जिसबन्ध का अभाव नहीं होगा वह **ध्रुवबन्ध** है। तथा जिसबन्ध का अभाव हो जावेगा वह अध्रुवबन्ध है।

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव॥९१॥

अर्थ - मिथ्यात्व आदि गुणस्थानवर्ती जीवों के जिनकर्मों का उत्कृष्ट स्थितिअनुभाग एवं प्रदेशबन्ध होता है उन्हीं कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव के भेद से चार प्रकार का होता है तथा अजघन्य में भी इसी प्रकार ये चारभेद हैं।

विशेषार्थ - उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाला जीव दशवेंगुणस्थान में गया। वहाँ उच्चगोत्र का उत्कृष्टअनुभागबन्ध हुआ। पश्चात् उपशान्तकषायगुणस्थान में गया। बाद में वही जीव वापस दशवेंगुणस्थान में आया तब उसने उच्चगोत्रका अनुत्कृष्टबन्ध किया। वहाँ इस अनुत्कृष्टबन्ध को सादि बन्ध कहते हैं, क्योंकि पहले इस बन्ध का अभाव हुआ था, परन्तु पुनः होने लगा। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान से अधस्तनगुणस्थानवर्ती जीवों के इस प्रकृति का बन्ध अनादि है, अभव्य जीवों के ध्रुवबन्ध है तथा उपशमश्रेणीवालों के अनुत्कृष्टबन्ध का अभाव होकर जब उत्कृष्टबन्ध होता है वह अध्रुवबन्ध है।

अजघन्य में भी ये चार प्रकार के बन्ध निम्न प्रकार हैं -

सप्तमनरक में गया नारकीजीव मिथ्यात्व के चरमसमय से पूर्व नीचगोत्र का जो बन्ध करता है वह अनादिबन्ध है। तथा वही जीव जब प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुआ तब उसने मिथ्यात्व के चरमसमय में नीचगोत्र का अजघन्यअनुभागबन्ध किया, पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर पुनः मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हुआ तब नीचगोत्र का अजघन्य अनुभाग बन्ध किया। इस प्रकार उस जगह नीचगोत्र का सादिबन्ध है फिर उसी मिथ्यादृष्टि जीव के द्वितीयादिक समयों में नीचगोत्र का जो बन्ध है, वह अनादि है। तथा अभव्यजीव के नीचगोत्र का अजघन्यअनुभागबन्ध ही ध्रुवबन्ध है। अजघन्य को छोड़कर जघन्य को प्राप्त हुआ वहाँ वह बन्ध अध्रुव है। इस प्रकार अजघन्य नीचगोत्र के अनुभागबन्ध में सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुवरूप चारभेद हैं, अन्यत्र भी जहाँ जैसे संभव हो वहाँ वैसा अन्य बन्धों में भी सादि-अनादि-ध्रुव और अध्रुवरूप चार प्रकार जानना। प्रकृतिबन्ध में उत्कृष्टादि चारभेद नहीं हैं, शेष स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्ध में उत्कृष्टादि भेद हैं।

अथानन्तर गुणस्थानों में प्रकृतिबन्ध का नियम कहते हैं -

सम्मेव तित्थबन्धो आहारदुगं पमादरहिदेसु।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधोदु॥९२॥

अर्थ - तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वअवस्था में ही होता है। आहारकद्विक का बन्ध अप्रमत्त गुणस्थान में होता है। मिश्रगुणस्थानबिना मिथ्यात्वगुणस्थानसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यंत आयु का बन्ध होता है।

विशेषार्थ - तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध चतुर्थगुणस्थान से अपूर्वकरण के छठे भागपर्यन्त सम्यग्दृष्टि के ही होता है। आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्गका बन्ध अप्रमत्त गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण के छठेभाग तक होता है। तथा आयुकर्म का बन्ध मिश्रगुणस्थान और निर्वृत्तिअपर्याप्तअवस्था को प्राप्त मिश्रकाययोग के बिना मिथ्यात्वगुणस्थान से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त होता है। अवशेष प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति पर्यन्त जानना।

आगे तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का विशेष नियम कहते हैं-

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥९३॥

अर्थ - प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तथा शेषतीन द्वितीयोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व में असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य ही तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं।

विशेषार्थ - यहाँ पर प्रथमोपशमसम्यक्त्व को पृथक् करने का कारण यह है कि "इसका काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस सम्यक्त्व में सोलहकारणभावना नहीं भा सकते अत: इस सम्यक्त्व में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता ऐसा किसी का अभिप्राय हो, यही विचार करके पृथक् कहा" इस प्रकार किन्हीं आचार्यों ने कहा है।

"मनुष्य ही तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध करते हैं" ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि अन्यगतिवाले जीव तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध प्रारम्भ नहीं कर सकते, क्योंकि उनके विशिष्टसामग्री का अभाव है। तथा तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध तिर्यञ्चगति के बिना शेष तीनगतियों में होता है। इसके बन्ध का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तअधिक आठवर्ष तथा वर्षपृथक्त्व कम[1] दोकोटिपूर्व और तैंतीससागर प्रमाण है। इसके बन्ध का प्रारम्भ केवलीद्वय के पादमूल में ही होता है ऐसा नियम है, क्योंकि अन्यत्र उस प्रकार की परिणामविशुद्धि नहीं हो सकती, जिससे तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ हो सके।

यहाँ पर चतुर्थगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान पर्यंत ही तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध बताया है तथा ९२ वीं गाथा के विशेषार्थ में चतुर्थगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान के छठेभागपर्यन्त तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध कहा है। इसमें यह अभिप्राय है कि तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ तो चतुर्थगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान पर्यन्त ही होता है, किन्तु आगे आठवेंगुणस्थान के छठेभागपर्यंत बन्ध होता रहता है।

अब गुणस्थानों में बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं-

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को॥९४॥

---

१. कारण यह है कि जिस भव में जीव तीर्थंकर बनता है उस अंतिम भव में वह नियम से वर्ष पृथक्त्व तक तीर्थंकर अवस्था में रहता है तथा विहार आदि करता है। (धवल १२/४९४, धवल ७/५७ षट्खण्ड. परिशीलन...आदि) और तीर्थंकर प्रकृति उदय अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता नहीं। अत: वर्ष पृथक्त्व काल और कम किया है।

अर्थ - प्रथमगुणस्थान में सोलहप्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। तथा सासादन से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यंत क्रम से २५, शून्य, १०, ४-६-१ एवं अपूर्वकरण के प्रथमभाग में दो, छठेभाग में तीस और सप्तमभाग में चार, नवमगुणस्थान में पाँच, दशमगुणस्थान में १६ एवं सयोगकेवली के एकप्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद ये दो बंधव्युच्छित्ति के नय हैं। उत्पादानुच्छेद को द्रव्यार्थिकनय भी कहते हैं। इस नय की अपेक्षा से तो जहाँ अस्तित्व है वहीं विनाश है, तथा जहाँ अस्तित्व ही नहीं वहाँ बुद्धि में कैसे आसकता है और जब बुद्धि में नहीं आवेगा तो वचन अगोचर होने से अभाव हुआ, एवं अभाव होने से व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है तथा उसको जाननेवाला कोई सत्यप्रमाण भी नहीं है।

प्रमाण सत्‌रूप वस्तु को ही जानता है असत्‌रूप वस्तु में इसका व्यापार ही नहीं होता। यदि असत्‌रूप में प्रमाण का व्यापार माना जावेगा तो गधे के सींग में भी प्रमाण के विषय की प्रवृत्ति मानी जावेगी, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि गधे के सींग की अनुपलब्धि है। अत: जहाँ पर अस्तित्व है वहीं पर नास्तित्व है।

अनुत्पादानुच्छेद पर्यायार्थिक नय का विषय है। इस नय के अभिप्रायानुसार जहाँ सत्त्व नहीं वहाँ अभाव है। भाव की उपलब्धि होने पर अभाव का विरोध है, क्योंकि सद्‌भाव के निषेध बिना अभाव हो नहीं सकता तथा ऐसा भी नहीं है कि कर्मों का नाश नहीं है, क्योंकि घातिया व अघातियाकर्म सर्वत्र नहीं पाए जाते। अर्थात् जो सद्‌भावरूप है उसका अभाव नहीं है, इसीकारण सद्‌भाव और अभाव का परस्पर में विरोध है। अत: जहाँ नास्तित्व है वहीं नास्तित्व कहना योग्य है। स्याद्वाद में दोनों नय अविरोधी हैं अत: यहाँ व्युच्छित्ति के कथन में द्रव्यार्थिकनयरूप उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा ही कथन किया गया है।

उत्पाद अर्थात् विद्यमान का अनुच्छेद-अविनाशरूप जो है वह उत्पादानुच्छेद-नय है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थान के चरमसमय में बंधव्युच्छित्ति होती है। पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से तो उस अंतिमसमय के अनन्तर-समय में उन प्रकृतियों के बन्ध का नाश होता है।

व्युच्छित्ति नाम बिछुड़ने का है किन्तु जहाँ पर व्युच्छित्ति कही जाती है, वहीं पर उनका संयोग रहता है। जैसे दो पुरुष एक नगर में रहते थे उसमें से एकपुरुष दूसरे स्थान पर गया, वहाँ किसी ने पूछा कि तुम कहाँ बिछुड़े थे तब उसने कहा कि हम अमुक नगर में बिछुड़े थे। इस प्रकार जहाँ उनका संयोग था वहीं बिछुड़ना कहा, इसी तरह जहाँ-जहाँ पर कर्मों के बंध, उदय अथवा सत्त्व की व्युच्छित्ति बताई

है, वहाँ पर तो उन-उन कर्मों का बंध, उदय अथवा सत्त्व रहता है, उससे आगे नहीं रहता। ऐसा व्युच्छित्ति का स्वरूप जानना सो यह तो द्रव्यार्थिकनय का अभिप्राय है तथा उसी पुरुष को पूछने पर ऐसा भी कहा गया कि हम अमुकनगर को छोड़कर अमुकनगर आये और वहाँ से पृथक् हुए तो जैसे जहाँ संयोग का अभाव हुआ बिछुड़ना वहीं हुआ; उसी प्रकार अवस्था में बन्ध का अभाव जानना, यह पर्यायार्थिकनय का अभिप्राय है।

अब प्रथमगुणस्थानसम्बन्धी व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं।
सुहुमतियं वियलिंदिय णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥९५॥

अर्थ - मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन १६ प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्त में होती है।

द्वितीयगुणस्थान में बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियों को कहते हैं-

बिदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ ॥९६॥

अर्थ - द्वितीयगुणस्थान के अन्त में अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच और कीलितसंहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योत ये २५ प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं।

विशेषार्थ - ये २५ प्रकृतियाँ अनन्तानुबन्धी के उदयबिना मिथ्यादृष्टि के भी बँधती हैं तथा मिथ्यात्व के उदय से रहित सासादन में केवल अनन्तानुबन्धी से भी बँधती हैं। इस प्रकार इनका कारण मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी दोनों ही जानने।

आगे चतुर्थ-पंचमगुणस्थानमें बंधव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

अयदे बिदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।
देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥९७॥

अर्थ - चतुर्थगुणस्थान में द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण की चारकषाय, वज्रर्षभ-नाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु इन १० प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है। तथा देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण की चारकषाय बन्ध से व्युच्छिन्न होती हैं।

अथानन्तर प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।
अपमत्ते देवाऊणिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥९८॥

अर्थ - छठे गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है। तथा अप्रमत्तगुणस्थान में एक देवायु के बन्धनिष्ठापन की व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को कहते हैं -

मरणूणम्हि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य।
छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥९९॥

तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं।
चरमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य बंधवोच्छिण्णा ॥१००॥

अर्थ - निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरणगुणस्थान के मरणरहित प्रथमभाग में श्रेणी चढ़ते समय निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों की, छठे भाग में तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मण-आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय इन तीसप्रकृतियों की तथा सप्तमभाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन चार की बंधव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - आठवें गुणस्थान के सातभागों में से प्रथम-षष्ठ और सप्तम इन तीनों भागों में ही उपर्युक्त ३६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है, शेषभागों में व्युच्छित्ति नहीं है। एक ही समय में स्थित नाना जीवों के भिन्न-भिन्न परिणाम सम्भव हैं अतः इसको निवृत्तिगुणस्थान कहा है।

अब अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्नप्रकृतियाँ कहते हैं -

पुरिसं चदुसंजलणं कमेण अणियट्टिपंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउजसउच्चं स सुहुमंते॥१०१॥

अर्थ - पुरुषवेद, सञ्ज्वलन की चारकषाय इन पाँचप्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के पाँच भागों में क्रम से होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के अन्त में ज्ञानावरण की पाँच, अन्तराय की पाँच, दर्शनावरण की चार, यश:कीर्ति एवं उच्चगोत्र इन १६ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - यहाँ पर जो अंते शब्द है वह अन्तदीपक है अर्थात् सभी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति गुणस्थान के अन्त में समझना, किन्तु सातवें-आठवें और नवमें गुणस्थान में यथासम्भव जान लेना चाहिए।

अब उपशांतमोह-क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थान में बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं-

उवसंतखीणमोहे जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य॥१०२॥

अर्थ - उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थान में एकसमय की स्थितिवाला सातावेदनीय बँधता है तथा सयोगकेवली के अन्त में सातावेदनीय की ही बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। अयोगकेवली में बंध के कारण योग का अभाव होने से बंध भी नहीं तथा व्युच्छित्ति भी नहीं होती। इस प्रकार प्रकृतियों के बन्ध का अन्त (बन्ध व्युच्छित्ति), बन्ध का अनन्त (यानी बन्ध सद्भाव) तथा "च" शब्द से अबन्ध जानना चाहिए।

गुणस्थानों में बन्धव्युच्छित्ति की सन्दृष्टि

गुणस्थान	व्युच्छिन्न प्रकृतियों की संख्या	व्युच्छिन्न प्रकृतियों के नाम
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु।
सासादन	२५	अनन्तानुबन्धी कषाय ४, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलितसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योत।

मिश्र	शून्य	
असंयत	१०	अप्रत्याख्यान की चार कषाय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु।
देशसंयत	४	प्रत्याख्यानावरण की चार कषाय।
प्रमत्त	६	अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक।
अप्रमत्त	१	देवायु (यहाँ स्वस्थानअप्रमत्त में देवायु की बन्धनिष्ठापनाव्युच्छित्ति जानना। सातिशयअप्रमत्त में देवायु की व्युच्छित्ति नहीं होती, क्योंकि सातिशयअप्रमत्त में देवायु का बन्ध ही नहीं होता है।)
अपूर्वकरण (प्रथमभाग)	२	निद्रा और प्रचला। इस भाग में उपशमश्रेणि चढ़ते समय मरण नहीं होता।
षष्ठभाग	३०	तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मण, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग वर्णादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय।
सप्तमभाग	४	हास्य, रति, भय और जुगुप्सा।
अनिवृत्तिकरण :		
प्रथमभाग	१	पुरुषवेद
द्वितीयभाग	१	संज्वलनक्रोध
तृतीयभाग	१	संज्वलनमान
चतुर्थभाग	१	संज्वलनमाया
पंचमभाग	१	संज्वलनलोभ
सूक्ष्मसाम्पराय	१६	ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र।
उपशान्तमोह	शून्य	
क्षीणमोह	शून्य	
सयोगी	१	सातावेदनीय।

इस प्रकार सर्व १२० प्रकृतियाँ बन्धयोग्य कही गई हैं इनकी बन्धव्युच्छित्ति उपर्युक्त क्रम से जानना चाहिए।

नोट - इसमें उक्त समस्त बन्धन नाहारकद्विकों की अपेक्षा से है।

अब बन्ध-अबन्धरूप प्रकृतियों को दो गाथाओं से कहते हैं -

सत्तरसेकग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी।
बंधा णवट्ठवण्णादुवीस सत्तारसेकोधे ॥१०३॥

अर्थ - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रम से ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१ और १ प्रकृति के बन्ध का यह क्रम सयोगीगुणस्थानपर्यंत कहा है।

विशेषार्थ - अभेदविवक्षा से १२० प्रकृतियाँ बन्धयोग्य कही गई हैं। उनमें से मिथ्यात्वगुणस्थान में ११७ प्रकृति का बन्ध है, क्योंकि यहाँ तीर्थङ्कर एवं आहारकद्विक, इन तीनप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अत: तीन तो ये तथा मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली १६ इस प्रकार १६+३ = १९ प्रकृतियों का बन्ध न होने से सासादनगुणस्थान में बन्धयोग्य १०१ प्रकृति हैं। इस गुणस्थान में बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ तथा देवायु-मनुष्यायुका बन्ध मिश्रगुणस्थान में नहीं होता अत: दो, इस प्रकार २५+२ = २७ प्रकृतियों का बन्ध न होने से मिश्रगुणस्थान में ७४ प्रकृति का ही बन्ध है।

असंयतगुणस्थान में पूर्वोक्त ७४ में तीर्थङ्कर-देवायु और मनुष्यायु मिलाने से ७७ प्रकृति का बन्ध है। चतुर्थगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १० प्रकृतियों को कम करने से देशसंयतगुणस्थान में ६७ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य हैं। पञ्चमगुणस्थान में चार प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनको ६७ में से घटाने पर प्रमत्तसंयत में ६३ का बन्ध है। यहाँ पर व्युच्छिन्नरूप ६ प्रकृतियों को कम करके आहारकद्विक मिलाने पर अप्रमत्त-गुणस्थान में ५९ का बन्ध है। यहाँ एक देवायु की व्युच्छित्ति है अत: इसको घटाने से अपूर्वकरण में ५८ का बन्ध है। इस गुणस्थान के सात भागों में से प्रथम-षष्ठ और सप्तम भाग में ३६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है, इनको घटाने से अनिवृत्तिकरण में २२ प्रकृति का बन्ध है। इस गुणस्थान के पाँचभागों में पाँचप्रकृति की व्युच्छित्ति है इसलिए उनको कम करने पर सूक्ष्मसाम्पराय में १७ प्रकृति का बन्ध है। यहाँ पर व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की है, उनको घटाने पर एक सातावेदनीयप्रकृति रही इसका बन्ध उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थान में समझना चाहिए।

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठी विरहिय सय तियउणवीससहिय वीससयं ॥१०४॥

अर्थ - मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में क्रम से ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ और १२० ये क्रम से अबन्धरूप प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति एवं आहारकद्विक इन तीन प्रकृति का अबन्ध है। ये तीन तथा १६ व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ मिलाने से सासादन गुणस्थान में अबन्धरूप १९ प्रकृतियाँ हैं। इन १९ में व्युच्छिन्नरूप २५ प्रकृति तथा देवायु-मनुष्यायु के मिलाने पर मिश्रगुणस्थान में ४६ का अबन्ध है। इनमें से तीर्थङ्कर, देवायु और मनुष्यायु को कम करने पर असंयत में ४३ प्रकृतिका अबन्ध है। इनमें चतुर्थगुणस्थान की बन्ध से व्युच्छिन्न होनेवाली १० प्रकृतियाँ मिलाने से देशसंयत गुणस्थान में अबन्धरूप ५३ प्रकृतियाँ हैं, इनमें व्युच्छित्ति को प्राप्त चार प्रकृति मिलाने पर प्रमत्तसंयत में ५७ प्रकृति का अबन्ध है। इन ५७ प्रकृतियों में छठे गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ६ प्रकृतियों को मिलाने पर तथा आहारकद्विक को घटाने पर अप्रमत्त में ६१ का अबन्ध है। इनमें एक देवायु को मिलाने से ६२ प्रकृतियाँ अपूर्वकरणगुणस्थान में अबन्धरूप हैं। इसी गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त ३६ प्रकृतियों को ६२ में मिलाने से अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ९८ का अबन्ध है। यहाँ व्युच्छिन्न होनेवाली ५ प्रकृति तथा पूर्वोक्त ९८ प्रकृतियाँ मिलकर १०३ प्रकृति सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में अबन्धरूप हैं। बन्ध से व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियों को १०३ में मिलाने पर उपरितन उपशान्तमोह-क्षीणमोह और सयोगकेवलीगुणस्थानों में ११९-११९ प्रकृतियों का अबन्ध पाया जाता है। इनमें एक सातावेदनीय प्रकृति मिलाने से अयोगकेवली गुणस्थान में अबन्धरूप १२० प्रकृतियाँ जानना।

गुणस्थानों में अबन्ध-बन्ध और बन्ध से व्युच्छिन्नप्रकृतियों की सन्दृष्टि –

गुणस्थान	अबन्ध रूप प्रकृतियाँ	बन्ध रूप प्रकृतियाँ	बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ	विशेष
मिथ्यात्व	३	११७	१६	३ (आहारकद्विक, तीर्थङ्कर)
सासादन	१९	१०१	२५	
मिश्र	४६	७४	०	४६ (१९+२५ = ४४+२ (मनुष्यायु, देवायु))
असंयत	४३	७७	१०	४३ (४६-३ तीर्थङ्कर, देवायु, मनुष्यायु)
देशसंयत	५३	६७	४	
प्रमत्तविरत	५७	६३	६	
अप्रमत्तविरत	६१	५९	१	६१ (६३-२ (आहारकद्विक))
अपूर्वकरण	६२	५८	३६	
अनिवृत्तिकरण	९८	२२	५	
सूक्ष्मसाम्पराय	१०३	१७	१६	
उपशान्तमोह	११९	१	०	
क्षीणमोह	११९	१	०	
सयोगी	११९	१	१	
अयोगी	१२०	०	०	

मार्गणाओं के अन्तर्गत गतिमार्गणा में सर्वप्रथम नरकगति सम्बन्धी अबन्ध, बन्ध और बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को तीन गाथाओं से कहते हैं -

ओघे वा आदेसे णारयमिच्छम्हि चारि वोच्छिण्णा।
उवरिम वारस सुरचउ सुराउ आहारयमबन्धा॥१०५॥

घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ॥१०६॥

मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बन्धो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति॥१०७॥

अर्थ - मार्गणाओं में व्युच्छित्ति आदि गुणस्थान के समान ही हैं, किन्तु विशेषता यह है कि नरकगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में चार प्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है। शेष एकेन्द्रियादि १२, सुरचतुष्क, देवायु, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग इन १९ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है॥१०५॥

घर्मानामक प्रथमपृथ्वी में जीव पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था में तीर्थङ्कर-प्रकृति का बन्ध करता है। वंशा-मेघानामक द्वितीय-तृतीयनरक में पर्याप्त जीव ही तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करता है, अपर्याप्त नहीं। माघवीनामक षष्ठपृथ्वीपर्यंत ही मनुष्यायु का बन्ध होता है, अन्तिम माघवीपृथ्वीकी मिथ्यात्वअवस्था में ही तिर्यञ्चायु का बन्ध होता है॥१०६॥

सप्तमनरक के मिश्र और असंयतगुणस्थान में ही उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का बन्ध है, किन्तु मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती इनका बन्ध नहीं करते हैं। पर्याप्तमिथ्यादृष्टि के इन तीनों का अबन्ध है॥१०७॥

विशेषार्थ - मार्गणाओं में गुणस्थानवत् बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति का कथन जानना, किन्तु विशेषता यह है कि नरकगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थान-नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन, इन चार की व्युच्छित्ति होती है। शेष एकेन्द्रियादि १२, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, देवायु और आहारकद्विक का बन्ध नहीं है।

घर्मादि तीन नरकपृथ्वियों की पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य १०१ प्रकृति हैं। गुणस्थान आदि के चार। मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थान-नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन की बन्धव्युच्छित्ति, बन्धप्रकृति १०० तथा अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृति का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ और अबन्धप्रकृति ५। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्य आयु बिना ७०

और अबन्धप्रकृति ३१। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त १०, बन्ध मनुष्यायु-तीर्थङ्कर सहित ७२ एवं अबन्ध २९ प्रकृति का है।

प्रथम द्वितीय-तृतीयनरकमें बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों की संदृष्टि-

(पर्याप्तावस्था में बन्ध योग्य १०१ प्रकृति। गुणस्थान चार।)

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१००	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन)
सासादन	९६	५	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७०	३१	०	३१ (२५+५+१(मनुष्यायु) या इस गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता।)
असंयत	७२	२९	१०	२९ [३१-२ (तीर्थङ्कर-मनुष्यायु) इन दो प्रकृतियों का बन्ध इस गुणस्थान में होता है। १० (गुणस्थानोक्त)]

द्वितीय-तृतीयनरक में जातेसमय सम्यक्त्व छूट जाता है तथा एकअन्तर्मुहूर्त तक तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध रुक जाता है। अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध पुनः होने लगता है।

अञ्जनादि तीन नरकों में तीर्थङ्करप्रकृतिबिना बन्धयोग्य १०० प्रकृति हैं। शेष सर्वकथन घर्मादि के समान ही जानना। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०० तथा अबन्धशून्य। सासादन में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ एवं अबन्धप्रकृति चार। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायु के बिना ७०, अबन्धप्रकृति ३०। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्ध मनुष्यायु सहित ७१ का और अबन्ध २९ प्रकृतिका।

अञ्जनादि चतुर्थ-पंचम षष्ठ नरक में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप कर्म-प्रकृतियों की संदृष्टि -

यहाँ पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति १००। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१००	०	४	४ (पूर्वोक्त मिथ्यात्वादि)
सासादन	९६	४	२५	२५ (पूर्वोक्त)
मिश्र	७०	३०	०	३० [२५+४+१(मनुष्यायु)]
असंयत	७१	२९	१०	२९ [३०-१ (मनुष्यायु)]

माघवीनामक सप्तमनरक में मनुष्यायुबिना बन्धयोग्य ९९ प्रकृतियाँ हैं और गुणस्थान चार हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त चार प्रकृतियाँ और तिर्यञ्चायु इन पाँच की व्युच्छित्ति, उच्चगोत्र-मनुष्यद्विकबिना ९६ का बन्ध तथा उच्चगोत्रादि तीन का अबन्ध। सासादन में तिर्यञ्चायु बिना २४ की व्युच्छित्ति, बन्ध ९१ प्रकृतिका और अबन्धरूप ८ प्रकृतियाँ। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, उच्चगोत्र और मनुष्यद्विकसहित बन्ध ७० प्रकति का, अबन्धरूप २९ प्रकृति। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति मनुष्यायुबिना ९, बन्धरूप ७० प्रकृति, अबन्धरूप २९ प्रकृति।

सप्तम माघवीनामक पृथ्वीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों की संदृष्टि

पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति ९९। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९६	३	५	३ (उच्चगोत्र-मनुष्यद्विक) ५ (पूर्वोक्तमिथ्यात्वादि ४+१ तिर्यञ्चायु)
सासादन	९१	८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यंचायु)
मिश्र	७०	२९	०	२९ [२४+८-३(उच्चगोत्र-मनुष्यद्विक)]
असंयत	७०	२९	९	९ [गुणस्थानोक्त १०-१ (मनुष्यायु)]

प्रथम नरक सम्बन्धी अपर्याप्तकाल में मिश्रकाययोगी के समान मनुष्य एवं तिर्यञ्चायु के बिना बन्धयोग्य ९९ प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि वैक्रियिक मिश्रकाययोग में आयुबन्ध नहीं है। यहाँ गुणस्थान मिथ्यात्व और असंयत ये दो ही हैं; क्योंकि नारकी के अपर्याप्तावस्था में सासादनगुणस्थान नहीं होता है। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वादि चार तथा सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली २४ प्रकृतियाँ, ये मिलकर २८ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं, बन्ध तीर्थङ्कर बिना ९८ प्रकृति का, अबन्ध एक-प्रकृति का है। असंयतगुणस्थान में मनुष्यायु बिना गुणस्थानोक्त ९ प्रकृति की व्युच्छित्ति, बन्ध तीर्थङ्कर सहित ७१ एवं अबन्ध २८ प्रकृति का जानना।

प्रथमनरकसम्बन्धी अपर्याप्तावस्था में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति की संदृष्टि -

प्रथमनरक की अपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य ९९ प्रकृति। गुणस्थान दो।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९८	१	२८	१ (तीर्थङ्कर) २८ (४ मिथ्यात्व एवं २४ सासादन गुणस्थान की)
असंयत	७१	२८	९	२८ (२९-१ तीर्थङ्कर) ९ (पूर्वोक्त)

वंशा को आदि लेकर पाँचपृथ्वियों की अपर्याप्तावस्था में ९८ प्रकृति बन्धयोग्य हैं तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही पाया जाता है। (मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है) अन्तिम माघवीनामक पृथ्वी में भी अपर्याप्तावस्था में बंधयोग्य ९५ प्रकृति एवं एक मिथ्यात्वगुणस्थान ही है क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में उच्चगोत्र और मनुष्यद्विक का बन्ध नहीं होता। (गाथा १०७)

आगे तिर्यञ्चगति सम्बन्धी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध-अबन्ध का कथन करते हैं -

तिरिये ओघो तित्थाहारूणो अविरिदे छिदी चउरो।
उवरिम छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा॥१०८॥

अर्थ - तिर्यञ्चगति में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति गुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु विशेषता यह है कि यहाँ तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता है इसलिए बन्धयोग्य प्रकृति ११७ हैं तथा असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानरूप चार कषायकी ही व्युच्छित्ति है, शेष वज्रर्षभनाराचादि छहप्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही हो जाती है, क्योंकि तिर्यञ्चगति के मिश्र और असंयतगुणस्थान में तिर्यञ्च और मनुष्यगतिसम्बन्धी प्रकृतियों का बन्ध नहीं है।

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥१०९॥

अर्थ - सामान्य, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्त, योनिनी और लब्ध्यपर्याप्तके भेदसे तिर्यञ्च पाँच प्रका के हैं। प्रथम चारप्रकार के तिर्यञ्चों में तो पूर्वगाथा में कहे अनुसार बन्धव्युच्छित्त्यादि जानना, किन्त लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्च में देवायु-नरकायु और वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग) इन आठ का बन्ध नहीं होता है। क्योंकि इन जो प्रकृतियाँ आगामी भव में उदय के योग्य नहीं हैं, उनका यहाँ बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ - सामान्यादि चार प्रकार के तिर्यञ्चों के मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में बन्धयोग्य ११७ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान आदि के पाँच हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की, बन्धप्रकृति ११७, अबन्ध नहीं है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २५ तथा असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन ३१ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है। यहाँ बन्धप्रकृति १०१ और अबन्धरूप प्रकृति १६ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति का अभाव है, बन्ध देवायु बिना पूर्वोक्त ६९ प्रकृति तथा अबन्ध ४८ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, बन्ध देवायु सहित ७० और अबन्ध ४७ का। देशसंयत में व्युच्छित्ति प्रत्याख्यानकषाय चार, बन्ध ६६ और अबन्ध ५१ प्रकृति का जानना।

लब्ध्यपर्याप्त बिना शेष चार प्रकार के तिर्यञ्चसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति की संदृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति ११७। गुणस्थान आदि के ५

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	११७	०	१६	१६(गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१६	३१	३१ [२५+६ (वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, मनुष्यायु)]
मिश्र	६९	४८	०	४७ (३१+१६+१ देवायु)
असंयत	७०	४७	४	४७ (४८-१ देवायु) ४ (अप्रत्याख्यानकषाय)
देशविरत	६६	५१	४	४ (प्रत्याख्यानकषाय)

सामान्यादि चारों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में बन्ध-योग्य प्रकृति १११ हैं, क्योंकि इनके निर्वृत्तिअपर्याप्तावस्था में चारआयु और नरकद्विक का बन्ध नहीं होता अतः पूर्वोक्त ११७ में से ये छह कम करने पर १११ प्रकृति बन्धयोग्य रहीं। गुणस्थान तीन हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में गुणस्थानोक्त व्युच्छिन्न १६ प्रकृति में से नरकायु और नरकद्विक बिना १३ प्रकृति व्युच्छित्तिरूप हैं। बन्धयोग्य प्रकृति १०७ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थानवर्ती अपर्याप्त के देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग का बन्ध नहीं होता, अबन्धरूप प्रकृति ४ हैं। सासादनगुणस्थान में पूर्वोक्त ३१ में से तिर्यञ्च-मनुष्यायु बिना २९ की व्युच्छित्ति, मिथ्यात्वगुणस्थान की व्युच्छिन्न १३ प्रकृतियाँ कम करने पर बन्धयोग्य प्रकृति ९४ और अबन्ध १७ प्रकृति का है। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान की ४ कषाय, पूर्वोक्त व्युच्छिन्न प्रकृति कम करके और सुरचतुष्क के मिलाने से ६९ प्रकृति का बन्ध, अबन्धप्रकृति ४२।

लब्ध्यपर्याप्त बिना शेष चार प्रकार के तिर्यञ्च सम्बन्धी निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था की संदृष्टि-

बन्धयोग्य प्रकृति १११। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध प्रकृति	अबन्ध प्रकृति	बन्ध व्युच्छित्ति प्रकृति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	४	१३	४ (सुरचतुष्क) १३ (१६-३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१७	२९	२९ (३१-२ तिर्यंच, मनुष्यायु)
असंयत	६९	४२	४	४२ (४६-४ सुरचतुष्क का बंध होने से। किन्तु योनिनी तिर्यंच के यह गुणस्थान नहीं होता) ४ (अप्रत्याख्यान कषाय)

लब्ध्यपर्याप्त तिर्यञ्चों के नरकायु-नरकद्विक-देवायु-देवद्विक और वैक्रियिकद्विक इन ८ प्रकृति बिना (११७-८) १०९ प्रकृति का बन्ध होता है। यहाँ एक मिथ्यात्वगुणस्थान ही है।

अथानन्तर मनुष्यगतिसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों को कहते हैं-

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव।
सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे अपुण्णे अपुण्णेव ॥११०॥

अर्थ - मनुष्यगतिसम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चगतिवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि
तीर्थङ्कर और आहारकद्विक का बन्ध होने लगता है, अतः यहाँ पर बन्धयोग्य १२० प्रकृति
सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यिनी में बन्ध-अबन्धादि की रचना तिर्यञ्चगति के समान है
लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य की रचना लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चवत् ही है।

विशेषार्थ - मनुष्यगतिसम्बन्धी असंयतगुणस्थान में यद्यपि व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान कषाय
चारप्रकृति की है और शेष वज्रर्षभनाराचादि छह प्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही
जाती है, तथापि इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर और आहारकद्विक का बन्ध मनुष्यों में पाया जाता
सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनी की भी रचना इसी प्रकार जानना।

बन्धयोग्य प्रकृति १२० एवं गुणस्थान १४ हैं। पूर्व-पूर्व गुणस्थानों की व्युच्छिन्नप्रकृतियों
बन्ध में से घटाने पर विशेषकथन पूर्वक अबन्धयोग्य प्रकृतियों में मिलाने पर गुणस्थानों में बन्ध
अबन्ध होता है।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की, बन्ध तीर्थङ्कर और आहारकद्विकबिन
११७ प्रकृति का, अबन्धप्रकृति ३। सासादनगुणस्थान में तिर्यञ्चवत् व्युच्छित्ति ३१ की, बन्धप्रकृति
१०१ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्ध देवायुबिना ६९, अबन्धरूप
प्रकृति ५१। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानरूप चारकषाय की व्युच्छित्ति, बन्ध देवायु और तीर्थङ्कर
के मिलने से ७१ प्रकृति का, अबन्धप्रकृति ४९। देशविरतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति प्रत्याख्यान
की चारकषाय, बन्धप्रकृति ६७ और अबन्धप्रकृति ५३। इसके आगे प्रमत्त गुणस्थान से अयोगीपर्यन्त
व्युच्छित्ति-बन्ध और अबन्धरूप कथन गुणस्थानरचनावत् जानना।

सामान्यमनुष्य-पर्याप्तमनुष्य-मनुष्यनीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी संदृष्टि-

बन्धयोग्य प्रकृति १२०। गुणस्थान १४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	३	१६	३ (तीर्थङ्कर-आहारकद्विक) १६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१९	३१	३१ (२५+६ वज्रर्षभनाराचादि पूर्वोक्त)
मिश्र	६९	५१	०	५१ (३१+१९+१ देवायु)
असंयत	७१	४९	४	४९ (५१-२ तीर्थङ्कर, देवायु) ४ (अप्रत्याख्यानकषाय)
देशसंयत	६७	५३	४	४ (प्रत्याख्यानकषाय)

प्रमत्तसंयत	६३	५७	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६१	१	६१ (६३-२ आहारकद्विक) १ (देवायु)
अपूर्वकरण	५८	६२	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	९८	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	१०३	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	११९	०	१ (सातावेदनीय)
क्षीणमोह	१	११९	०	१ (सातावेदनीय)
सयोगी	१	११९	१	१ (व्युच्छित्तिरूप सातावेदनीय)
अयोगी	०	१२०	०	

सामान्य-पर्याप्तमनुष्य तथा मनुष्यनी के निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य ११२ प्रकृति हैं। ये तीनों मिश्रकाययोगी निर्वृत्त्यपर्याप्तक हैं, अतः यहाँ चारआयु, नरकद्विक, आहारकद्विक इन आठप्रकृति का बन्ध नहीं है। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगी ये पाँच हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में, गुणस्थानोक्त १६ में से नरकद्विक व नरकायुबिना १३ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग व तीर्थङ्कर बिना बन्धयोग्य प्रकृति १०७, अबन्धप्रकृति ५। सासादनगुणस्थान में पूर्वोक्त ३१ में से मनुष्य-तिर्यंचायु बिना २९ प्रकृति व्युच्छिन्न होती हैं, बन्धप्रकृति ९४, अबन्ध १८ प्रकृतियों का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानरूप चार-चारकषाय (८ प्रकृति) की होती है, सुरचतुष्क और तीर्थङ्करसहित बन्ध ७० का, अबन्धप्रकृति ४२। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति प्रमत्तसम्बन्धी ६, (अप्रमत्तसम्बन्धी देवायु भी यहाँ बन्ध में नहीं है) अपूर्वकरण की आहारकद्विक बिना ३४, अनिवृत्तिकरण की ५ और सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी १६, इन सर्व (६+३४+५+१६) ६१ प्रकृतियों की होती है, बन्धप्रकृति ६२ तथा अबन्धप्रकृति ५० हैं। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति एकसातावेदनीय, बन्धप्रकृति एकसातावेदनीय, अबन्धप्रकृति १११। यहाँ इतनी विशेषता है कि मनुष्यनी के चतुर्थ व षष्ठगुणस्थान नहीं होता क्योंकि सम्यक्त्व सहित मनुष्यनी में उत्पत्ति नहीं होती है और भावस्त्रीवेद वाले जीव के प्रमत्तसंयतगणुस्थान में आहारकद्विक का उदय नहीं होता है अर्थात् उन जीवों के आहारक ऋद्धि की उत्पत्ति नहीं होती है।

सामान्य-पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनी इन तीनों की निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति की संदृष्टि

४ आयु-नरकद्विक-आहारकद्विक इन आठ बिना (१२०-८) ११२ प्रकृति बन्धयोग्य गुणस्थान पाँच हैं।

गुणस्थान	बन्ध प्रकृति	अबन्ध प्रकृति	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (सुरचतुष्क, तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२९	२९ (पर्याप्तवत् ३१-२, मनुष्य, तिर्यञ्चायु), किन्तु मनुष्यनी के व्युच्छित्ति ९८ प्रकृति की।
असंयत	७०	४२	८	४२ (२९+१८+५, तीर्थङ्कर-सुरचतुष्क) ८ (प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान की चार-चार कषाय) नोट - यह गुणस्थान मनुष्यनी के नहीं होता है।
प्रमत्त	६२	५०	६१	६१ (प्रमत्त की ६+अपूर्वकरण की आहारकद्विकबिना ३४+ अनिवृत्तिकरण की ५+सूक्ष्म सां. की १६) यह गुणस्थान भी मनुष्यनी के नहीं होता।
सयोगी	१	१११	१	१ (सातावेदनीय)

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य का सर्वकथन लब्ध्यपर्याप्तितिर्यञ्च के समान ही है। यहाँ तीर्थंकर, आहारकद्विक देवायु-नरकायु और वैक्रियिकषट्क के बिना बन्धयोग्य प्रकृति १०९ हैं और गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

आगे देवगति में कथन करते हैं -

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबन्धा भवणतिए णत्थि तित्थयरं॥१११॥

अर्थ - देवगति का सर्वकथन नरकगतिवत् जानना, किन्तु यहाँ विशेषता यह है कि मिथ्यात्वगुणस्थान में ईशानस्वर्गपर्यन्त सात प्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है, शेष ९ प्रकृतियों का यहाँ बन्ध नहीं है, अतः ९ तो ये एवं सुरचतुष्क, देवायु, आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपाङ्ग ये सात

ऐसे सर्व १६ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य न होने से १०४ प्रकृति का ही यहाँ बन्ध है। भवनत्रिकदेवों के तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता है।

विशेषार्थ – देवगतिसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकद्विक और नरकायु ये ९ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य नहीं हैं, अतः ९ तो ये तथा देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देवायु, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग ये सात मिलकर १६ प्रकृति देवगति में बन्धयोग्य नहीं है अतः सामान्य से १०४ का ही बन्ध है।

सर्वभवनत्रिक में तथा **"कप्पित्थीसु ण तित्थं"** गाथा ११२ के इन वचनों के अनुसार कल्पवासीदेवाङ्गनाओं में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता। अतः यहाँ बन्धयोग्य १०३ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान चार होते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप की; बन्धप्रकृति १०३, अबन्ध शून्य। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त २५, बंध ९६ और अबन्ध ७ प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायुबिना ७०, अबन्धप्रकृति ३३। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १० की, बन्ध प्रकृति मनुष्यायुसहित ७१, अबन्धप्रकृति ३२ हैं।

सर्वभवनत्रिक की तथा कल्पवासिनीदेवाङ्गनाओं की पर्याप्तावस्था की संदृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति १०३। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	०	७	७ (मिथ्यात्व हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप)
सासादन	९६	७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७०	३३	०	३३ (२५+७+१ मनुष्यायु)
असंयत	७१	३२	१०	३२ (३३-१ मनुष्यायु)

सौधर्म-ईशानस्वर्ग में बन्धयोग्य प्रकृति १०४ हैं। गुणस्थान चार। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति ७, बन्ध तीर्थङ्करबिना १०३, अबन्धप्रकृति १। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तप्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६ तथा अबन्धप्रकृति ८। मिश्र-गुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध मनुष्यायुबिना ७०, अबन्ध ३४। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १०, बन्ध मनुष्यायु-तीर्थङ्करसहित ७२, अबन्धप्रकति ३२।

सौधर्म-ईशानस्वर्ग में बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति की संदृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति १०४। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९६	८	२५	
मिश्र	७०	३४	०	३४ (२५+८+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	३२	१०	३२ (३४-२ तीर्थङ्कर व मनुष्यायु)

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचउ॥११२॥

अर्थ - कल्पवासिनी देवाङ्गनाओं में तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता है। तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-तिर्यञ्चायु और उद्योत, इन चार प्रकृतियों का बन्ध ग्यारहवें-बारहवें (सतार-सहसार) स्वर्गपर्यन्त होता है। इन चारप्रकृतियों को 'शतार चतुष्क' भी कहते हैं, क्योंकि शतारयुगल तक ही इनका बन्ध होता है। उससे आगे आनतादि स्वर्गों में इनका बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ - कल्पवासिनी देवाङ्गनाओं में बन्ध-अबन्धादि का कथन भवनत्रिकवत् जानना इसका समस्त वर्णन भवनत्रिक के साथ पूर्वगाथा में कर आये हैं।

सनत्कुमारादि दस स्वर्गों में नरकगति के समान ही रचना है। यहाँ बन्ध योग्य प्रकृति १०१ तथा गुणस्थान चार हैं क्योंकि इन स्वर्गों में एकेन्द्रिय, स्थावर और आतपप्रकृति का बंध नहीं होता है। (१०४-३= १०१)। ईशानस्वर्गपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थान में जिन सात प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनमें से यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद तथा सृपाटिकासंहनन की ही व्युच्छित्ति होती है, बन्धयोग्य प्रकृति तीर्थङ्कर बिना १००, अबन्ध तीर्थङ्करप्रकृतिका। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति २५, बन्धप्रकृति ९६, अबन्धप्रकृति ५। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्धप्रकृति ७० मनुष्यायु के बिना; अबन्ध ३१। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १०, बन्धप्रकृति मनुष्यायु-तीर्थङ्कर सहित ७२, अबन्ध २९ प्रकृति का है।

सनत्कुमार से सहस्रारस्वर्गपर्यन्त बन्धादि की सन्दृष्टि

यहाँ पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति १०१। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१००	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद और सृपाटिकासंहनन)
सासादन	९६	५	२५	
मिश्र	७०	३१	०	३१ (२५+५+१ मनष्यायु)
असंयत	७२	२९	१०	२९ (३१-२ तीर्थङ्कर-मनुष्यायु)

शतारचतुष्क का बन्ध शतार-सहस्रारस्वर्गयुगल तक ही होता है, अत: आनतादि चारस्वर्गों में तथा नवग्रैवेयक में बन्धयोग्य प्रकृति (१०१-४) ९७ हैं। गुणस्थान चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्करबिना बन्धप्रकृति ९६, अबन्धप्रकृति १ और बन्धव्युच्छित्ति ४। सासादनगुणस्थान में शतारचतुष्क के बिना व्युच्छित्ति २१, बन्ध ९२ का तथा अबन्धप्रकृति ५ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुबिना बन्धप्रकृति ७०, अबन्धप्रकृति २७। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्ध तीर्थङ्कर-मनुष्यायुसहित ७२ का और अबन्ध प्रकृति २५ हैं।

आनतादि चार स्वर्गों तथा नवग्रैवेयक सम्बन्धी सन्दृष्टि

यहाँ पर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति ९७। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९६	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९२	५	२१	२१ (२५-४ शतारचतुष्क)
मिश्र	७०	२७	०	२७ (२१+५+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	२५	१०	२५ (२७-२ तीर्थङ्कर-मनुष्यायु)

अनुत्तरविमानवासी अहमिन्द्रदेव सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। इनमें बन्धयोग्य प्रकृति ७२ तथा गुणस्थान एक असंयत ही होता है।

सर्वभवनत्रिक में और कल्पवासीदेवाङ्गनाओं के बन्धयोग्य १०३ प्रकृति हैं, किन्तु इनकी निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में तिर्यञ्च-मनुष्यायु का बन्ध न होने से बन्धयोग्य प्रकृति १०१ है। गुणस्थान दो हैं, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरणकर यहाँ उत्पन्न नहीं होता।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति ७ की, बन्धप्रकृति १०१, अबन्ध का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २४, बन्ध ९४ प्रकृति का और अबन्धरूप प्रकृति ७ हैं।

सर्व भवनत्रिक और कल्पवासीदेवाङ्गनाओं की निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति १०१। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	०	७	७ (मिथ्यात्व-हुण्डकसंस्थानादि पूर्वोक्त)
सासादन	९४	७	२४	२४ (२५-१ तिर्यञ्चायु)

सौधर्म-ईशानस्वर्गसम्बन्धी निर्वृत्यपर्याप्तकअवस्था में तीर्थङ्करसहित बन्धयोग्य प्रकृति १०२ हैं। गुणस्थानमिथ्यात्व-सासादन-असंयत ये तीन हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ७, बन्धरूप प्रकृति तीर्थङ्करबिना १०१ और अबन्ध १ का, सासादनगुणस्थान में तिर्यञ्चायु बिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृति की, बंधप्रकृति ९४ और अबन्धरूप प्रकृति ८ हैं। असंयतगुणस्थान में मनुष्यायुबिना ९ प्रकृति व्युच्छित्तिरूप हैं, बन्धप्रकृति ७१, अबन्धप्रकृति ३१।

सौधर्म-ईशानस्वर्गसम्बन्धी निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्यप्रकृति १०२ तथा गुणस्थान तीन हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९४	८	२४	२४ (पूर्वोक्त)
असंयत	७१	३१	९	३१ (२४+८-१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

सनत्कुमार से सहस्रारपर्यंत १० स्वर्गों की निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य प्रकृति ९९। गुणस्थान तीन। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्वादि चार प्रकृतियों की है, बन्ध तीर्थङ्करबिना ९८ प्रकृति का और अबन्धरूप प्रकृति १। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २४, बन्धप्रकृति ९४ एवं अबन्धप्रकृति ५। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ९ प्रकृति की, बन्धप्रकृति तीर्थङ्करसहित ७१ और अबन्धप्रकृति २८ हैं।

सनत्कुमारादि १० स्वर्गोंमें बन्ध आदिकी सन्दृष्टि –

यहाँ निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य ९९। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९८	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसक-वेद, सृपाटिकासंहनन)
सासादन	९४	५	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	२८	९	२८ (२४+५-१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

आनतादि चारस्वर्गोंमें तथा नवग्रैवेयकमें तिर्यञ्चद्विक-उद्योतरहित बन्धयोग्य ९६ प्रकृति। गुणस्थान तीन हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ९५, अबन्धप्रकृति १। सासादनगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शतारचतुष्कबिना २१ प्रकृतिकी, बन्ध ९१ प्रकृतिका, अबन्ध ५ प्रकृति का है असंयतगुणस्थानमें व्युच्छिन्न-प्रकृति ९, बन्धरूपप्रकृति ७१ तथा अबन्ध २५ प्रकृति का जानना।

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतस्वर्ग तथा नवग्रैवेयकसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों की सन्दृष्टि –

यहाँ निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें बन्धयोग्य प्रकृति ९६। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	९५	१	४	१ (तीर्थङ्कर) ४ (मिथ्यात्वादि पूर्वोक्त)
सासादन	९१	५	२१	२१ (गुणस्थानोक्त २५-४ तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतरूप शतारचतुष्क)
असंयत	७१	२५	९	२५ (२१+५-१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

अनुदिश और अनुत्तरवासी सभी देव असंयत होते हैं। इनके निर्वृत्त्यपर्याप्त-अवस्था में ७१ प्रकृति बन्धयोग्य जानना तथा गुणस्थान एक असंयत है।

॥ इति गति मार्गणा ॥

अथ इन्द्रियमार्गणा

आगे इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति का कथन करते हैं -

पुण्णिदरं विगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जत्तिं णवि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११३॥

अर्थ - एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय में लब्ध्यपर्याप्तकवत् बन्धयोग्यप्रकृति १०९ हैं। यहाँ गुणस्थान मिथ्यात्व-सासादन ये दो ही हैं। एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय में उत्पन्न हुआ जीव सासादनगुणस्थान में पर्याप्तियोंको पूर्ण नहीं कर सकता अतः यहाँ तिर्यञ्च व मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं करता, इसलिए इन दोनों की बन्धव्युच्छित्ति प्रथमगुणस्थान में होती है।

विशेषार्थ - इन्द्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय में लब्ध्यपर्याप्तकके समान तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु-नरकायु और वैक्रियिकषटक् इन ११ प्रकृतियों का बन्धनहीं है अतः बन्धयोग्य प्रकृति १०९ हैं। गुणस्थान दो हैं। प्रथमगुणस्थान में सामान्य से जिन १६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनमें से नरकद्विक और नरकायु ये तीन कम करके मनुष्य-तिर्यञ्चायु मिलाने से यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में १५ प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं क्योंकि सासादनगुणस्थानका काल अल्प और निर्वृत्यपर्याप्तका काल अधिक होने से सासादनगुणस्थान में शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती अतः मनुष्य व तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है। मिथ्यात्वगुणस्थान में बन्ध १०९ प्रकृतिका एवं अबन्धप्रकृति शून्य है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति पूर्वोक्त २९ प्रकृतिकी, बन्धरूपप्रकृति ९४ और अबन्धप्रकृति १५ हैं।

एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवों में बन्ध-अबन्ध-बन्धव्युच्छित्ति की सन्दृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति १०९। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	०	१५	१५ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु+२ मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	१५	२९	२९ (तिर्यञ्चगति में कथित ३१-२ तिर्यञ्च, मनुष्यायु)

"पंचिंदिएसु ओघं" गाथा ११४ के इन वचनों के अनुसार पञ्चेन्द्रियजीव-सम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिका कथन गुणस्थान के समान जानना चाहिए, इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। यहाँ बन्धयोग्य १२० प्रकृति तथा गुणस्थान १४ जानना। संक्षेप से कथन इस प्रकार है -

मिथ्यात्वादिगुणस्थानों में व्युच्छित्ति क्रमसे १६-२५-०-१०-४-६-१-३६ तथा ५-१६-०-०-१- शून्यरूप प्रकृतियों की है। मिथ्यात्वादिगुणस्थानों में ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१-१ और शून्यरूप प्रकृतियों का बन्ध यथाक्रमसे जानना चाहिए तथा मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें अबन्धरूप प्रकृति यथाक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३ और ५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ एवं १२० जानना। इसकी सन्दृष्टि गुणस्थानोक्त सन्दृष्टिके समान ही जानना।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक में बन्धयोग्य प्रकृति ११२ (१२०-४ आयु+ नरकद्विक+ आहारकद्विक) हैं। गुणस्थानपाँच। तीर्थङ्कर और सुरचतुष्कका बन्ध असंयतगुणस्थान में ही है, अतः निर्वृत्त्यपर्याप्तक मनुष्य के समान समस्त कथन है, किन्तु विशेषता यह है कि औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक, वज्रर्षभनाराचसंहनन इन पाँच प्रकृतियों की व्युच्छित्ति मनुष्यगतिमें तो द्वितीयगुणस्थान में कही थी, किन्तु यहाँ चतुर्थगुणस्थान में ही इनकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक में चारों गति के निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव सम्भव हैं। देव और नारकी के चतुर्थ गुणस्थान में औदारिकद्विक, मनुष्यद्विक और वज्रर्षभनाराचसंहनन की बंधव्युच्छित्ति होती है। सामान्यसे बन्धयोग्य १२० प्रकृतियों में से ४ आयु, आहारकद्विक और नरकद्विक इन आठ प्रकृतियों को कम करने से बन्धयोग्य ११२ प्रकृतियां कही गई हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगी ये पांच हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १३ की, बन्धप्रकृति १०७ तथा अबन्धरूप प्रकृति ५ हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २४ की, बन्ध ९४ प्रकृतिका, अबन्ध १८ प्रकृतिका है। असयंतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १३, बन्धप्रकृति ७५ तथा अबन्ध ३७ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६१ की, बन्ध ६२ का तथा अबन्धरूप प्रकृति ५०। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, बन्धप्रकृति १ तथा अबन्धप्रकृति १११ है। निर्वृत्त्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी यह कथन चारोंगति की अपेक्षा से जानना।

पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव में बन्ध-अबन्ध-बन्ध व्युच्छित्ति की संदृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति ११२। गुणस्थान ५।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (देवचतुष्क, तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)

असंयत	७५	३७	१३	३७ (२४+१८-५ देवचतुष्क व तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु+ ४ प्रत्याख्यानकषाय)
प्रमत्त	६२	५०	६१	६१ (प्रमत्त की ६+अप्रमत्त की शून्य + अपूर्वकरण की ३४ + अनिवृत्तिकरण की ५ + सूक्ष्मसाम्पराय की १६= ६१, क्योंकि देवायु व आहारकद्विक का बन्ध नहीं है)
सयोगी	१	१११	१	१= सातावेदनीय

पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक में बन्धयोग्य प्रकृति १०९ है, क्योंकि तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व है।

॥ इति इन्द्रियमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ कायमार्गणा

अब इन्द्रियमार्गणा की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय में तथा कायमार्गणा की अपेक्षा एकेन्द्रियसम्बन्धी पृथ्वीकायादि पञ्चस्थावरकाय में बन्ध आदि का कथन करते हैं -

पंचिंदिएसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउ वाउम्हि ॥११४॥

अर्थ - पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी व्युच्छित्तिआदिका कथन गुणस्थानवत् जानना उसमें कुछ भी विशेषता नहीं है। (इसका कथन इन्द्रियमार्गणा में कर आए हैं वहाँ से जानना) कायमार्गणामें पृथ्वीकायसे वनस्पतिकायपर्यन्त एकेन्द्रियके समान व्युच्छित्ति-आदि जानना। विशेष यह है कि तेजकाय-वायुकाय में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु और उच्चगोत्र इन चारका बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ - कायमार्गणामें पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतिबिना बन्धयोग्य १०९ प्रकृतियाँ हैं। इनमें से पृथ्वीकाय-जलकाय और वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुए जीवों के सासादनगुणस्थान के रहते हुए शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती अतः तिर्यञ्च आयु और मनुष्यायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थान में ही होता है। इस कारण मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १५ प्रकृतियों की, बन्धरूप प्रकृतियाँ १०९ और अबन्ध शून्य है।

सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २९ प्रकृतियोंकी, बन्ध ९४ प्रकृतिका तथा अबन्धप्रकृति १५ हैं।

पृथ्वीकाय-जलकाय और वनस्पतिकाय में बन्ध, अबन्धादिक कथन की सन्दृष्टि-

बन्धयोग्य प्रकृति १०९। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	०	१५	१५ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु+२ मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	१५	२९	२९ (तिर्यञ्चगति कथित ३१-२ तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु)

तेजकाय और वायुकाय में मनुष्यद्विक, मनुष्यायु व उच्चगोत्रबिना बन्धयोग्य प्रकृति १०५ हैं। गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

तेजकाय-वायुकायमें एक ही गुणस्थान होने का कारण कहते हैं, तथा त्रसकाय में बन्धादिका कथन करते हैं -

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।

अर्थ - लब्ध्यपर्याप्तक, साधारणशरीरसहित, सर्वसूक्ष्म तथा तेजकाय-वायुकाय-जीवों में सासादनगुणस्थान नहीं होता। तथा इसीगाथा के उत्तरार्ध में कहे हुए "**ओघं तस**" इन वचनों के अनुसार त्रसकाय की रचना गुणस्थानके समान समझना चाहिए।

विशेषार्थ - लब्ध्यपर्याप्तक, साधारणशरीरवाले, सर्वसूक्ष्म तथा तेजकाय-वायु-काय के जीवों में सासादनगुणस्थान नहीं होता तथा सासादनवाले नरकमें उत्पन्न नहीं होते। अतः नारकियों की अपर्याप्तदशा में नरकगति में सासादनगुणस्थान नहीं है।

त्रसकायिकों में बन्धयोग्य प्रकृति १२०, गुणस्थान १४ हैं। इनका संक्षिप्तकथन इस प्रकार है - मिथ्यात्वादिगुणस्थानों में क्रमसे व्युच्छिन्नप्रकृतियाँ १६-२५-शून्य-१०-४-६-१-३६-५-१६-शून्य-शून्य-१ और शून्यरूप हैं। बन्धप्रकृति ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१-१ और शून्य यथाक्रम मिथ्यात्वादिगुणस्थानों में जानना। अबन्धप्रकृति भी गुणस्थानक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९-११९ और १२० जानना। विशेष कथन के लिए गुणस्थानोक्तसन्दृष्टि देखनी चाहिए।

त्रसनिर्वृत्तिअपर्याप्तकसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिका कथन पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकके समान समझना। बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ११२ तथा गुणस्थान १-२-४-६ और १३ वाँ है।

॥ इति कायमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ योगमार्गणा

ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो ॥११५॥

अर्थ - त्रसकाय में गुणस्थानवत् कथन जानना। (इसका सर्वकथन पूर्व में कायमार्गणा में कर दिया है।)

योगमार्गणाके मनोयोग और वचनयोग में सर्वरचना गुणस्थानवत् तथा औदारिककाययोग में बन्ध-अबन्धादिका कथन मनुष्यगति के समान जानना।

विशेषार्थ - मनोयोग-वचनयोग में बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० हैं तथा गुणस्थान मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त १३ हैं। इनकी संक्षिप्तरचना इस प्रकार है - मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां क्रमसे १६-२५-शून्य-१०-४-६-एक-३६-५-१६-शून्य-शून्य और एक हैं। बन्धप्रकृति ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१ और १ यथाक्रमसे मिथ्यात्वसे सयोगीपर्यन्त जानना। यहाँ गुणस्थानों में क्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९ और ११९ प्रकृतियाँ हैं। इनकी विशेषसन्दृष्टि समझने के लिए गुणस्थानोक्त सन्दृष्टि देखना चाहिए। यहाँ इतनी ही विशेषता है कि मनोयोग- वचयोग में गुणस्थान १३ ही हैं तथा इनमें पर्याप्तअवस्था ही होती है।

औदारिककाययोगी के बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन मनुष्यगति के समान है। बन्धयोग्य प्रकृति १२० तथा गुणस्थान १३ हैं। संक्षिप्त कथन इसप्रकार है - यहाँ मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त गुणस्थानों में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६-३१-शून्य-४-४-६-एक-३६-५-१६-शून्य-शून्य और एक है। बन्ध ११७-१०१-६९-७१-६७-६३-५९-५८-२२-१७-१-१ और १ प्रकृतिरूप यथाक्रम गुणस्थानों में जानना। अबन्ध क्रम से ३-१९-५१-४९-५३-५७-६१-६२-९८-१०३-११९-११९ और ११९ प्रकृतिका है। विशेषकथन के लिए मनुष्यगतिसम्बन्धी सन्दृष्टि देखनी चाहिए।

अब औदारिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी कथन करते हैं -

ओराले वा मिस्से ण सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।
मिच्छदुगे देवचओ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥११६॥

पण्णारसमुनतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्हि ॥११७॥

अर्थ - औदारिककाययोगी के समान ही औदारिकमिश्रकाययोगीकी भी बन्ध-अबन्ध आदि की रचना जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि देवायु, नरकायु, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी इन छह प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। यहाँ भी मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थान में देवचतुष्क और तीर्थङ्कर इन पाँचप्रकृतियों का बन्ध नहीं होता, किन्तु असंयतगुणस्थान में इनका बन्ध होता है।

विशेषार्थ - औदारिकमिश्रकाययोग में गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में नरकायु, नरकगति औरनरकगत्यानुपूर्वी को कमकरके तिर्यञ्च व मनुष्यायु मिलाने से १५ की व्युच्छित्ति होती है, बन्धप्रकृति १०९ व अबन्धप्रकृति ५ हैं। सासादन में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति २९, बन्धप्रकृति ९४ एवं अबन्धप्रकृति २०। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति वज्रर्षभनाराचादिक ६ प्रकृतियोंबिना अप्रत्याख्यानकषाय चार, क्योंकि वज्रर्षभनाराचादि छहप्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। तथा देशसंयतसम्बन्धी प्रत्याख्यानकी चारकषाय, प्रमत्त की ६, अप्रमत्तसम्बन्धी देवायु यहाँ बन्धयोग्य ही नहीं है अतः उसे भी यहाँ नहीं गिनी है। अपूर्वकरण की आहारकद्विकबिना ३४, अनिवृत्तिकरणकी ५, सूक्ष्मसाम्पराय की १६, ये सर्व मिलकर ६५ और अप्रत्याख्यानकषायकी चार ये ६९ प्रकृतियाँ असंयत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होती हैं। बन्ध देवचतुष्क व तीर्थङ्करसहित ७० प्रकृतियोंका एवं अबन्ध ४४ प्रकृतिका है। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छित्ति एक सातावेदनीयकी, बन्ध भी एक सातावेदनीयका तथा अबन्धरूप प्रकृतियाँ ११३ हैं।

असंयतगुणस्थान से सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त व्युच्छिन्न होने वाली ६९ प्रकृतियाँ और असंयतगुणस्थान में अबन्धरूप ४४ प्रकृतियाँ, इन दोनों को मिलाकर सयोगकेवली में ११३ प्रकृतियों का अबन्ध है।

नोट - सातावेदनीय की व्युच्छित्ति औदारिकमिश्रकाययोगी के नहीं होती, किन्तु औदारिककाययोगीके होती है।

औदारिकमिश्रकाययोग में बन्ध-अबन्ध आदि की सन्दृष्टि निम्नप्रकार है -

बन्धयोग्य प्रकृति ११४। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०९	५	१५	५ (तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) १५ (गुणस्थानोक्त १६-नरकद्विक व नरकायु +२ मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९४	२०	२९	२९ (तिर्यञ्चगति में कथित ३१-२ तिर्यञ्चायु-मनुष्यायु)
असंयत	७०	४४	६९	४४ (२९+२०-५ तीर्थङ्कर व देव-चतुष्क) ६९ (७०-१ सातावेदनीय)
सयोगी	१	११३	१	१ (सातावेदनीय) इसकी व्युच्छित्ति औदारिक काययोग में होती है औदारिकमिश्र में नहीं।

देवे या वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि।
छट्ठगुणंवाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ॥११८॥

अर्थ - वैक्रियिककाययोग में बन्धप्रकृति देवगति के समान ही है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग में मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है। आहारककाययोग में छठेगुणस्थानके समान रचना है, किन्तु आहारक-मिश्रकाययोग में देवायुका बन्ध नहीं होता है।

विशेषार्थ - वैक्रियिककाययोग में बन्ध प्रकृतियाँ देवगतिके समान १०४ ही हैं। सूक्ष्मत्रय (सूक्ष्म-साधारण-अपर्याप्त), विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु, सुरचतुष्क, देवायु और आहारकद्विक का बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान आदि के चार हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में सूक्ष्मत्रय आदि नौप्रकृतिबिना व्युच्छित्ति ७ की होती है। बन्धप्रकृति १०३ हैं तथा अबन्धरूप प्रकृति एक तीर्थङ्कर है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २५ की, बन्धप्रकृति ९६ तथा अबन्धप्रकृतियाँ ८ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुबिना बन्ध ७० और अबन्ध ३४ प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १० की, बन्धतीर्थङ्कर व मनुष्यायु सहित ७२ प्रकृतियोंका और अबन्ध ३२ प्रकृतियोंका (तीर्थङ्कर एवं मनुष्यायुबिना) है।

वैक्रियिककाययोग में बन्धयोग्यप्रकृतियाँ १०४। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०३	१	७	१ (तीर्थङ्कर) ७ (गुणस्थानोक्त १६-९ सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९६	८	२५	८ (७+१) २५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७०	३४	०	३४ (२५+८+१ मनुष्यायु)
असंयत	७२	३२	१०	१० (गुणस्थानोक्त) ३२ (३४-२ तीर्थङ्कर, मनुष्यायु)

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के बन्धयोग्यप्रकृति पूर्वोक्त १०४ में से मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुबिना १०२ हैं। गुणस्थान १-२ और ४ ये तीन हैं। इसका सर्वकथन सौधर्म-ईशानस्वर्ग के अपर्याप्तदेवों के समान है।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ७, बन्धरूपप्रकृति १०१ तथा अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृतिका है। सासादनगुणस्थान में तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृति की, बन्ध ९४ प्रकृति का तथा अबन्ध ८ प्रकृतिका जानना। असंयतगुणस्थान में मनुष्यायुबिना व्युच्छित्ति ९ की, बन्धरूप प्रकृति तीर्थङ्करसहित ७१ और अबन्ध तीर्थङ्कररहित ३१ प्रकृतियों का है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोग सम्बन्धी सन्दृष्टि इस प्रकार है-

बन्धयोग्यप्रकृति १०२। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	१	७	७ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, सृपाटिका-संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप) १ (तीर्थङ्कर)
सासादन	९४	८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	३१	९	३१ (तिर्यञ्चगति में कथित ३२-१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

आहारककाययोगसम्बन्धी सर्वकथन प्रमत्तगुणस्थानवत् जानना चाहिए। बन्ध व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धयोग्यप्रकृति ६३ तथा अबन्ध ५७ प्रकृतियों का है।

आहारकमिश्रकाययोगी के व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धयोग्य ६२ प्रकृति, क्योंकि यहाँ देवायुका बन्ध नहीं है तथा अबन्धरूप प्रकृतियाँ ५८ हैं।

आगे कार्मणकाययोग में बन्ध-अबन्धादिका कथन करते हैं -

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव्व छिदी अयदे।

अर्थ - कार्मणकाययोग की सर्वरचना औदारिक मिश्रकाययोग के समान है, किन्तु विग्रहगति में आयुका बन्ध न होने से मनुष्यायु व तिर्यञ्चायु के बन्ध का अभाव है। असंयत गुणस्थान में असंयत गुणस्थान संबंधी ९ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - कार्मणकाययोग में विग्रहगति में आयुका बन्ध नहीं है अतः तिर्यञ्चायु व मनुष्यायुबिना बन्धयोग्य ११२ प्रकृतियाँ हैं। गुणस्थान चार हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ १३, बन्धप्रकृतियाँ १०७ और अबन्ध तीर्थङ्कर व देवचतुष्कका। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति तिर्यञ्चायुबिना २४ की। बन्धप्रकृति ९४ तथा अबन्ध प्रकृतियाँ १८ हैं। असंयतगुणस्थानमें असयंतगुणस्थान की मनुष्यायुबिना व्युच्छिन्नप्रकृति ९, देशसयंतकी ४, प्रमत्तकी ६, अप्रमत्तसम्बन्धी देवायुको यहाँ नहीं गिना, आहारकद्विकबिना अपूर्वकरण की ३४ तथा अनिवृत्तिकरण की ५ एवं सूक्ष्मसाम्पराय की १६ इस प्रकार ७४ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है। बन्धयोग्यप्रकृति सुरचतुष्क व तीर्थङ्करसहित ७५ हैं एवं अबन्ध ३७ प्रकृति का है। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, बन्धप्रकृति १ तथा अबन्ध १११ प्रकृतिका है।

नोट - सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्ति कार्मणकाययोग में नहीं होती है किन्तु औदारिककाययोग में होती है।

कार्मणकाययोगसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादि के कथन की सन्दृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति ११२। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) १३ (गुणस्थानोक्त १६-नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	७४	३७ (२४+१८-५ तीर्थङ्कर व देवचतुष्क) ७४(असंयतसम्बन्धी गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु = ९, देशसंयतकी ४, प्रमत्तकी ६, अपूर्वकरण की ३४ (आहारकद्विकबिना) अनिवृत्तिकरण की ५ और सूक्ष्मसाम्पराय की १६)
सयोगी	१	१११	१	१ (सातावेदनीय)। इसकी बन्धव्युच्छित्ति कार्मणकाययोग में नहीं होती है, किन्तु औदारिककाययोग में होती है।

''इति योगमार्गणा''

अब वेदमार्गणा से आहारमार्गणापर्यन्त १० मार्गणाओं में बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्ति का कथन करते हैं -

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥११९॥

अर्थ - वेदमार्गणासे आहारमार्गणापर्यन्त सामान्यकथन गुणस्थानवत् ही जानना। अर्थात् स्वकीय-स्वकीय गुणस्थान के समान इन १० मार्गणाओं का कथन है।

विशेषार्थ - सर्वप्रथम वेदमार्गणा के स्त्रीवेदमें बन्धयोग्यप्रकृतियाँ १२० हैं। गुणस्थान ९ हैं। इनमें मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप १६ प्रकृति, बन्धप्रकृति ११७ और ३ प्रकृतिका अबन्ध है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप २५ प्रकृति, बन्ध १०१ प्रकृतिका एवं अबन्धप्रकृति १९ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य, बन्धरूप प्रकृति ७४, अबन्ध ४६ प्रकृतिका है। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति १०, बन्ध ७७ प्रकृतिका एवं अबन्ध ४३ प्रकृतिका है। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति

४ प्रकृतिकी, बन्ध ६७ प्रकृतिका एवं अबन्ध ५३ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३ एवं अबन्धप्रकृति ५७ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, बन्ध ५९ प्रकृति का, अबन्ध ६१ प्रकृतिका जानना। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ३६, बन्धप्रकृति ५८ तथा अबन्धप्रकृति ६२ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग में व्युच्छित्ति एक पुरुषवेदकी, बन्ध सवेदभाग के द्विचरमसमय तक २२ प्रकृतिका तथा अबन्धरूप प्रकृति ९८ हैं। अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी सवेदभाग में चरमसमय में बन्ध २१ प्रकृतिका एवं अबन्ध ९९ प्रकृतिका है।

निर्वृत्त्यपर्याप्तस्त्रीवेदीके बन्धयोग्यप्रकृति चारआयु, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और वैक्रियिकषट्कबिना १०७ हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति नरकद्विक एवं नरकायुबिना १३ प्रकृतिकी, बन्धप्रकृति १०७, अबन्ध रूप प्रकृति शून्य। सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति २४ प्रकृतिकी, बन्ध ९४ प्रकृतिका एवं अबन्ध १३ प्रकृतिका है। सन्दृष्टि इस प्रकार है -

बन्धयोग्यप्रकृति १०७। गुणस्थान २ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	०	१३	१३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक, नरकायु)
सासादन	९४	१३	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)

नपुंसकवेदी के बन्धयोग्यप्रकृति १२०, गुणस्थान ९ हैं। सर्व रचना स्त्रीवेदके समान ही जानना।

नपुंसकवेदी की निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में बन्धयोग्य १०८ प्रकृति हैं। गुणस्थान १-२-४ होते हैं। पूर्वोक्त स्त्रीवेदीकी निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में जो १०७ प्रकृतिका बन्ध है उसमें नारकअसंयतकी अपेक्षा एक तीर्थङ्करप्रकृति मिलाने से १०८ प्रकृतिका बन्ध है तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का बन्ध लब्ध्यपर्याप्तके ही होता है, किन्तु यहाँ निर्वृत्त्यपर्याप्त का कथन है। इनके मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १३, तीर्थङ्करबिना बन्धप्रकृति १०७, अबन्ध एक तीर्थङ्करप्रकृतिका। सासादन में तिर्यञ्चायुबिना व्युच्छित्ति रूपप्रकृति २४, बन्धप्रकृति ९४ तथा अबन्धरूपप्रकृति १४। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति मनुष्यायुबिना ९, बन्ध तीर्थङ्करसहित ७१ प्रकृतिका और अबन्ध ३७ प्रकृतिका।

नपुंसकवेदी निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थासम्बन्धी सन्दृष्टि इस प्रकार है -

बन्धयोग्यप्रकृति १०८। गुणस्थान तीन।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	१	१३	१ (तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक नरकायु)
सासादन	९४	१४	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७१	३७	९	३७ (२४+१४-१ तीर्थङ्कर) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

पुरुषवेदी के बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान आदि के ९। यहाँ अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त सर्वकथन गुणस्थानवत् ही है। तद्यथा - मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त बन्ध से व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियाँ यथाक्रम से १६-२५-शून्य-१०-४-६-१-३६ तथा क्षपकअनिवृत्तिकरणसम्बन्धी प्रथमभाग के चरमसमय में १ पुरुषवेदकी व्युच्छित्ति हुई। बन्ध यथाक्रमसे ११७-१०१-७४-७७-६७-६३-५९-५८ तथा अनिवृत्तिकरणके प्रथम भाग के चरमसमयपर्यन्त २२ प्रकृतिका। अबन्ध गुणस्थानक्रमसे ३-१९-४६-४३-५३-५७-६१-६२ तथा अनिवृत्तिकरणके प्रथमभाग के चरमसमयपर्यन्त ९८ प्रकृतिका है। इसकी सन्दृष्टि १०३-१०४ गाथा सम्बन्धी सन्दृष्टि के अनुसार जानना।

पुरुषवेदीनिर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था में नरकगतिबिना शेष तीनगतिवाले जीवों के बन्धयोग्य ११२ प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि चारआयु, नरकद्विक और आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। गुणस्थान तीन। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति प्रकृति १३, बन्धयोग्यप्रकृति सुरचतुष्क व तीर्थङ्करके बिना १०७ प्रकृतिका, अबन्धप्रकृति ५ हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २४, बन्ध ९४ प्रकृतिका तथा अबन्ध १८ प्रकृतिका। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ९, सुरचतुष्क व तीर्थङ्करसहित बन्ध ७५ प्रकृतिका तथा अबन्ध ३७ प्रकृतिका। यहाँ तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका उदय स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी के नहीं होता, केवल पुरुषवेदीके ही होता है, किन्तु इनका बन्ध तीनों ही वेदवालोंके होता है।

निर्वृत्त्यपर्याप्तकपुरुषवेदी की बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्ति की सन्दृष्टि इस प्रकार है-

बन्धयोग्यप्रकृति ११२। गुणस्थान ३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (तीर्थङ्कर, सुरचतुष्क) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक व नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	९	३७ (२४+१८-५ तीर्थङ्कर, देवचतुष्क) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)

॥ इति वेद मार्गणा॥

❋❋❋

अथ कषायमार्गणा

कषायमार्गणा में क्रोधादि चार कषायवालों के बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थानक्रोध में क्षपकअनिवृत्तिकरण के दूसरे भागपर्यन्त, मानमें तीसरे भागपर्यन्त, माया में चतुर्थभागपर्यन्त, बादरलोभ में पञ्चमभागपर्यन्त पाए जाते हैं। ८ गुणस्थान तक तो गुणस्थान के समान कथन जानना। क्षपक अनिवृत्तिकरण के प्रथमभाग में पुरुषवेद की बन्ध व्युच्छित्ति अर्थात् बन्ध २२, अबन्ध ९८, बन्ध व्युच्छित्ति १। दूसरे भाग में संज्वलन क्रोध की बन्ध व्युच्छित्ति अर्थात् बन्ध २१, अबन्ध ९९, बंधव्युच्छित्ति १। तीसरे भाग में संज्वलन मान की बन्धव्युच्छित्ति अर्थात बन्ध २०, अबन्ध १००, बंधव्युच्छित्ति १। चौथे भाग में संज्वलन माया की बन्धव्युच्छित्ति अर्थात् बन्ध १९, अबन्ध १०१, बन्धव्युच्छित्ति १। पाँचवें भाग में संज्वलन लोभ की बन्धव्युच्छित्ति अर्थात् बन्ध १८, अबन्ध १०२, बन्ध व्युच्छित्ति १ तथा सूक्ष्मलोभ में एक सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान ही है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में बन्ध १७, अबन्ध १०३, बंध व्युच्छित्ति १६।

॥ इति कषाय मार्गणा॥

❋❋❋

अथ ज्ञानमार्गणा

ज्ञानमार्गणासम्बन्धी कुमति-कुश्रुत और कुअवधि इन तीनों ज्ञानों में बन्धयोग्यप्रकृति ११७, क्योंकि तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। गुणस्थान दो। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप १६ प्रकृति, बन्धरूप प्रकृति ११७ तथा अबन्धप्रकृति शून्य। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २५ प्रकृतिकी, बन्ध १०१ प्रकृतिका तथा अबन्धरूप प्रकृति १६ है।

शंका - मिथ्यादृष्टिजीवों के भले ही कुमति-कुश्रुत दोनों ही अज्ञान होवें क्योंकि वहाँ मिथ्यात्वकर्मका उदय पाया जाता है, किन्तु सासादनगुणस्थान में मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता इसलिए सासादनगुणस्थान में कुमति, कुश्रुतरूप अज्ञान कैसे संभव हो सकते हैं?

समाधान - विपरीताभिनिवेशको मिथ्यात्व कहते हैं और वह विपरीताभिनिवेश मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के निमित्त से उत्पन्न होता है। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी का उदय होने से वहाँ कुमति-कुश्रुत ये दो अज्ञान पाए जाते हैं।[1]

असञ्ज्ञीजीवों में भी कुश्रुतज्ञान होता है, क्योंकि मनके बिना वनस्पतिकायिक-जीवों के हित में प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति देखी जाती है।[2]

कुमति-कुश्रुत-कुअवधिज्ञानसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्य ११७ प्रकृति। गुणस्थान २।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	०	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१६	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में बन्धयोग्यप्रकृति ७९ है, क्योंकि मिथ्यात्वसम्बन्धी १६ तथा सासादनकी २५ इस प्रकार ४१ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति हो जाने से इनका यहाँ अभाव है। गुणस्थान असंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त ९ हैं। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ और अबन्धप्रकृति २ हैं। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धरूप प्रकृति ६७, अबन्धरूप प्रकृति १२। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ६ प्रकृति की, बन्ध ६३ प्रकृतिका तथा अबन्ध १६ प्रकृतिका

१. ध. पु. १, सूत्र ११६ की टीका।
२. ध. पु. १, सूत्र ११६ की टीका।

है। अप्रमत्त गुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९, अबन्धप्रकृति २०। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप ३६ प्रकृति, बन्धरूप ५८ प्रकृति और अबन्धरूप २१ प्रकृति हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें व्युच्छित्ति ५ प्रकृति की, बन्ध २२ प्रकृतिका तथा अबन्ध ५७ प्रकृतिका है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, बन्ध प्रकृति १७ और अबन्धप्रकृति ६२ हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य की, बन्ध १ प्रकृतिका और अबन्ध ७८ प्रकृतिका है। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धरूपप्रकृति एक तथा अबन्धरूप प्रकृति ७८ हैं।

मति-श्रुत-अवधिज्ञान सम्बन्धी बन्ध-अबन्धादि की संदृष्टि

बन्धयोग्य ७९ प्रकृति। गुणस्थान ९।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७७	२	१०	२ (आहारकद्विक)
देशसंयत	६७	१२	४	
प्रमत्त	६३	१६	६	
अप्रमत्त	५९	२०	१	५९ (६३-६ = ५७+२आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	२१	३६	
अनिवृत्तिकरण	२२	५७	५	
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	६२	१६	
उपशान्तमोह	१	७८	०	
क्षीणमोह	१	७८	०	

मन:पर्ययज्ञान में बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान प्रमत्तसे क्षीणमोहपर्यन्त ७ हैं। यहाँ व्युच्छित्ति और बन्धका कथन तो गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अबन्ध क्रमसे २-६-७-४३-४८-६४ और ६४ प्रकृति का है।

मन:पर्ययज्ञानसम्बन्धी सन्दृष्टि इस प्रकार है –

बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान ७ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	२ (आहारकद्विक) ६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६	१	६ (६+२-२ आहारकद्विक) १ (देवायु)
अपूर्वकरण	५८	७	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	४३	५	४३ (३६+७) ५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	४८	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	६४	०	
क्षीणमोह	१	६४	०	

केवलज्ञान में बन्धयोग्य १ सातावेदनीय प्रकृति है। गुणस्थान दो हैं। सयोगी के व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धरूप प्रकृति १, अबन्ध का अभाव है। अयोगी के व्युच्छित्ति व बन्ध का अभाव है, किन्तु अबन्ध प्रकृति एक है।

॥ इति ज्ञानमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ संयममार्गणा

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयमके भेद से संयममार्गणा ७ प्रकार की है।

यहाँ सामायिक व छेदोपस्थापनासंयम में बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान प्रमत्तआदि चार हैं। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्ध आहारकद्विकबिना ६३ तथा अबन्ध २ प्रकृतिका है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ बन्धप्रकृति ५९ और अबन्धप्रकृति ६ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३६, बन्धरूप प्रकृति ५८ तथा अबन्धप्रकृति ७ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२ अबन्धप्रकृति ४३ हैं।

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयम में बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	२ (आहारकद्विक) ६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	६	१	१ (देवायु) ६ (६+२-२ आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	७	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	४३	५	५ (गुणस्थानोक्त)

परिहारविशुद्धिसंयम में बन्धयोग्यप्रकृति ६५। गुणस्थान दो हैं। यहाँ (परिहारविशुद्धि संयम में)आहारकद्विकका बन्ध विरुद्ध नहीं, किन्तु उदय अवश्य विरुद्ध है। अर्थात् परिहारविशुद्धिके साथ आहारकद्विकका उदय नहीं है। प्रमत्तगुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति २ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ और अबन्धप्रकृति ६ हैं।

परिहारविशुद्धिसंयममें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
प्रमत्त	६३	२	६	६ (गुणस्थानोक्त) २ (आहारकद्विक)
अप्रमत्त	५९	६	१	१ (देवायु) ६ (६+२-२ आहारकद्विक)

सूक्ष्मसाम्परायसंयमसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिका कथन सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके समान जानना। बन्ध १७, अबन्ध १०३ और बन्ध व्युच्छित्ति १६।

यथाख्यातसंयम में बन्धयोग्यप्रकृति १ सातावेदनीय ही है। यहाँ उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी ये चार गुणस्थान पाए जाते हैं। व्युच्छित्ति और बन्धरूपप्रकृति गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अयोगीगुणस्थान में तो अबन्धप्रकृति १ है शेष तीनगुणस्थानों में अबन्ध नहीं है।

यथाख्यातसंयम में बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति १। गुणस्थान चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
उपशान्तमोह	१	०	०	
क्षीणमोह	१	०	०	१ प्रकृति यहाँ सर्वत्र —
सयोगी	१	०	१	'सातावेदनीय' ही जानना।
अयोगी	०	१	०	

संयमासंयम में बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन देशसंयतगुणस्थानके समान जानना चाहिए। बन्ध ६७, अबन्ध ५३ और बन्ध व्यु. ४।

असंयममें आहारकद्विकबिना बन्धयोग्यप्रकृति ११८ हैं। गुणस्थान आदि के चार हैं। यहाँ चारों ही गुणस्थानों में व्युच्छित्ति एवं बन्धरूप प्रकृतियाँ गुणस्थान के कथनवत् जानना, किन्तु अबन्धरूप प्रकृति क्रमसे १-१७-४४ और ४१ जानना। मिश्रगुणस्थान में तीर्थङ्कर, देवायु और मनुष्यायुका अबन्ध है।

असंयममें बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ११८। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	१	१६	१ (तीर्थङ्कर) १६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७४	४४	०	४४ (२५+१७+२ मनुष्यायु व देवायु)
असंयत	७७	४१	१०	४१ (४४-३ तीर्थङ्कर, मनुष्यायु, देवायु)

॥ इति संयममार्गणा ॥

अथ दर्शनमार्गणा

दर्शनमार्गणाा में चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शन में बन्धयोग्य प्रकृति १२०। गुणस्थान मिथ्यात्वसे क्षीणमोहपर्यन्त १२ हैं। इनमें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्ति का कथन गुणस्थानवत् जानना।

अवधिदर्शनसम्बन्धी व्युच्छित्ति आदिका कथन अवधिज्ञानवत् है। बन्धयोग्यप्रकृति ७९ तथा असंयत से क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थान ९ हैं। केवलदर्शनसम्बन्धी सर्वकथन केवलज्ञानवत् जानना। बन्धयोग्यप्रकृति १ सातावेदनीय तथा गुणस्थान दो हैं।

॥ इति दर्शनमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ लेश्यामार्गणा

लेश्यामार्गणामें कृष्ण-नील और कापोत, इन तीनलेश्याओं में बन्धयोग्य ११८ प्रकृति हैं, क्योंकि यहाँ आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। गुणस्थानआदि के चार। यहाँ मिथ्यात्वादि चारों गुणस्थानों में व्युच्छित्ति और बन्ध गुणस्थानवत् जानना। तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध इन लेश्याओं में चतुर्थगुणस्थान में हो सकता है।

कृष्ण-नील-कापोतलेश्या में बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति ११८। गुणस्थान चार हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	१	१६	१ (तीर्थङ्कर) १६ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१०१	१७	२५	२५ (गुणस्थानोक्त)
मिश्र	७४	४४	०	४४ (२५+१७+२ मनुष्यायु, देवायु)
असंयत	७७	४१	१०	१० (गुणस्थानोक्त)

अथानन्तर सम्यक्त्वमार्गणा में तथा तीन शुभलेश्याओं में और आहारमार्गणामें कुछ विशेषता है सो दो गाथाओं द्वारा कहते हैं -

णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिम णवयं बारं णहि तेउपम्मेसु ॥१२०॥

सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण व अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य॥१२१॥ जुम्मं॥

अर्थ - सम्यक्त्वमार्गणा में दोनों ही उपशमसम्यक्त्वी (प्रथमोपशम-द्वितीयोपशम) जीवों के मनुष्यायु और देवायु का बन्ध नहीं है। लेश्यामार्गणामें तेजोलेश्यावाले के मिथ्यात्वगुणस्थान की बन्ध से व्युच्छिन्न अन्तिम ९ प्रकृति तथा पद्मलेश्यावालेके मिथ्यात्वगुणस्थान की अन्तिम १२ प्रकृतियों का बन्ध नियमसे नहीं होता है।

शुक्ललेश्यावालोंके शतारचतुष्क और मिथ्यात्वगुणस्थान की अन्तिम १२ इन १६ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। आहारमार्गणासम्बन्धी अनाहारकअवस्था में कार्मणकाययोगी के समान व्युच्छित्ति-बन्ध-अबन्ध का कथन जानना।

विशेषार्थ - तेजोलेश्यामें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १११ हैं। गुणस्थान आदि के सात हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में जिन १६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है उनमें से अंतिम ९ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है, अतः यहाँ आदिकी सात प्रकृतियों का बन्ध होने से उनकी ही व्युच्छित्ति होती है, बन्धप्रकृति १०८ तथा अबन्ध तीनप्रकृतिका है। सासादनसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त व्युच्छित्ति और बन्ध तो गुणस्थानवत् जानना, किन्तु अबन्धप्रकृति यथाक्रमसे सासादनादि गुणस्थानों में १०-३७-३४-४४-४८ और ५२ जानना। विस्तृत कथन इस प्रकार है – मिथ्यात्वगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ७, बन्धप्रकृति १०८ और अबन्धप्रकृति ३ हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २५, बन्धप्रकृति १०१, अबन्धप्रकृति १० हैं। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्धप्रकृति ७४, अबन्धप्रकृति ३७। असंयतगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ तथा अबन्धप्रकृति ३४। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६७ तथा अबन्धप्रकृति ४४ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, तथा अबन्धप्रकृति ४८ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ तथा अबन्धप्रकृति ५२ हैं।

तेज (पीत) लेश्यासम्बन्धी बन्ध-अबन्ध व व्युच्छित्तिआदि की सन्दृष्टि

बन्धयोग्य प्रकृति १११। गुणस्थान ७ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०८	३	७	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक) ७ (गुणस्थानोक्त १६ में से मिथ्यात्व से आतप पर्यन्त)
सासादन	१०१	१०	२५	

मिश्र	७४	३७	०	३७ (२५+१०+२ मनुष्यायु, देवायु)
असंयत	७७	३४	१०	३४ (३७-३ तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और देवायु)
देशसंयत	६७	४४	४	४ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्त	६३	४८	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	५२	१	५२ (४८+६-२ आहारकद्विक)

पद्मलेश्या में बन्धयोग्यप्रकृति १०८ हैं। गुणस्थान आदि के सात हैं। मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियों में से अंतिम १२ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०५, अबन्धप्रकृति ३। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति २५ प्रकृतिकी, बन्ध १०१ प्रकृतिका तथा अबन्ध ७ प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्तिरूपप्रकृति शून्य, बन्धरूपप्रकृति ७४ और अबन्धप्रकृति ३४ हैं। असंयत-गुणस्थान में व्युच्छित्ति १० प्रकृतिकी, बन्ध ७७ प्रकृतिका, अबन्ध ३१ प्रकृतिका। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६७ और अबन्धप्रकृति ४१ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३ तथा अबन्धप्रकृति ४५ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९ तथा अबन्धप्रकृति ४९ है।

पद्मलेश्यामें बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि इस प्रकार है -

बन्धयोग्यप्रकृति १०८। गुणस्थान ७।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०५	३	४	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन)
सासादन	१०१	७	२५	
मिश्र	७४	३४	०	३४ (२५+७+२ मनुष्यायु व देवायु)
असंयत	७७	३१	१०	३१ (३४-३ तीर्थङ्कर, देवायु व मनुष्यायु)
देशसंयत	६८	४१	४	४ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्त	६३	४५	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	४९	१	४९ (४५+६-२ आहारकद्विक)

शुक्ललेश्या में बन्धयोग्यप्रकृति १०४। गुणस्थान मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त १३। शुक्ललेश्या

में शतारचतुष्कका बन्ध नहीं होता है। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, बन्धप्रकृति १०१, अबन्ध प्रकृति ३। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २१ (तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतरूप शतारचतुष्कबिना), बन्धप्रकृति ९७, अबन्धप्रकृति ७। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति शून्य की, बन्ध ७४ प्रकृतिका, अबन्ध ३० प्रकृतिका। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १०, बन्धरूप प्रकृति ७७, अबन्धरूप प्रकृति २७। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४ प्रकृति की, बन्ध ६७ प्रकृतिका और अबन्ध ३७ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति रूप प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति ४१ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति १, बन्धप्रकृति ५९, अबन्धप्रकृति ४५। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ३६ प्रकृतिकी, बन्ध ५८ प्रकृतिका, अबन्ध ४६ प्रकृतिका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२ तथा अबन्धप्रकृति ८२ हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७ और अबन्धप्रकृति ८७ हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति १०३। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति १०३। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, बन्धरूप प्रकृति १ तथा अबन्धरूप प्रकृति १०३ हैं।

शुक्ललेश्या में बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति के कथन की सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति १०४। गुणस्थान आदि के १३।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०१	३	४	३ (तीर्थङ्कर, आहारकद्विक) ४ (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन)
सासादन	९७	७	२१	२१ (गुणस्थानोक्त २५-४ शतारचतुष्क)
मिश्र	७४	३०	०	३० (२१+७+२, मनुष्यायु व देवायु)
असंयत	७७	२७	१०	२७ (३०-३ मनुष्यायु, देवायु, तीर्थङ्कर)
देशसंयत	६७	३७	४	४ (गुणस्थानोक्त प्रत्याख्यानावरण की चारकषाय)
प्रमत्त	६३	४१	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५९	४५	१	१ (देवायु) ४५ (४१+६-२, आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	४६	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	८२	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	८७	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)

उपशान्तमोह	१	१०३	०	१ (सातावेदनीय)
क्षीणमोह	१	१०३	०	१ (सातवेदनीय)
सयोगी	१	१०३	१	१ (सातावेदनीय)

भव्यमार्गणा में बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान १४। यहाँ बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्ति का सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

अभव्यके बन्धयोग्यप्रकृति ११७ हैं, क्योंकि इसके आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

।। इति लेश्या व भव्यमार्गणा।।

❋❋❋

अथ सम्यक्त्वमार्गणा

इस मार्गणा के ६ भेद हैं - उपशम (प्रथमोपशम-द्वितीयोपशम) सम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व में बन्धयोग्यप्रकृति ७७ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली (१६+२५) ४१ प्रकृति तथा देव व मनुष्यायुका यहाँ बन्ध नहीं होता है। **''णवरिये सव्वुव सम्मे णरसुर आऊण णत्थि णियमेण''** (गाथा १२० के) इस वचनके अनुसार (मनुष्यायु, देवायु) की व्युच्छित्ति पहले हुई थी। सम्यग्दृष्टि के तिर्यञ्च और मनुष्यगति में देवायुका तथा नरक व देवगति में मनुष्यायुका बन्ध होता था, किन्तु प्रथमोपशम और द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि के इन दोनों आयुका भी बन्ध नहीं होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व में असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्तचारगुणस्थान जानना।

यहाँ असंयतगुणस्थान में मनुष्यायुबिना व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ९, आहारकद्विकबिना बन्धरूप प्रकृति ७५ तथा अबन्धरूप प्रकृति २ हैं। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६६ प्रकृतिका एवं अबन्ध ११ प्रकृतिका है। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६२, अबन्धप्रकृति १५। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न-प्रकृति शून्य, आहारकद्विकसहित बन्ध प्रकृति ५८ एवं अबन्धप्रकृति १९ हैं।

'उपशमसम्यग्दृष्टिके तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं होता' ऐसा कोई आचार्य मानते हैं, किन्तु यहाँपर यह विवक्षा नहीं है। उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारकद्विकका उदय विरुद्ध है, बन्ध विरुद्ध नहीं है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध और व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ७७। गुणस्थान असंयतादि चार।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७५	२	९	२ (आहारकद्विक) ९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)
देशसंयत	६६	११	४	
प्रमत्त	६२	१५	६	
अप्रमत्त	५८	१९	०	१९ (१५+६-२ आहारकद्विक)

द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में भी बन्धयोग्यप्रकृति ७७ हैं। गुणस्थानअसंयतादि आठ हैं।[१] असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ९, बन्ध प्रकृति ७५, अबन्धप्रकृति २। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति प्रकृति ४, बन्धप्रकृति ६६ और अबन्धप्रकृति ११। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ६, बन्धप्रकृति ६२ और अबन्धप्रकृति १५। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति शून्य, आहारकद्विकसहित बन्धप्रकृति ५८, अबन्धप्रकृति १९। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ३६, बन्धप्रकृति ५८ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति ५२, अबन्धप्रकृति ५५। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७ तथा अबन्धरूप प्रकृति ६० हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति १ एवं अबन्धप्रकृति ७६ हैं। प्रथम व द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में आयुका बन्ध नहीं होता है।

शंका - प्रथमोपशम और द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में आयुका बन्ध नहीं कहा है तो फिर "श्रेणीपर आरोहण करते हुए अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में मरण नहीं होता" यह कथन व्यर्थ है।

समाधान - जिसने पूर्व में देवायु का बन्ध कर लिया है ऐसे सातिशयअप्रमत्तजीव के श्रेणीआरोहण सम्भव है। यहाँ प्रथमोपशमसम्यक्त्व में तथा जिसका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ऐसे अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में मरण नहीं होता, अन्यत्र उपशमश्रेणी में मरण है। देवायु के बन्धका अभाव उपशमश्रेणी में सर्वत्र ही है।

---

१. उपशमश्रेणी में चढ़ते हुए भी असंयतगुणस्थान में द्वितीयोपशमसम्यक्त्व कहा है, मात्र श्रेणी से उतरने की अपेक्षा ही होता हो ऐसी बात नहीं है देखो - ध. पु. १ सूत्र की टीका। मूलाचार अ. १२ गाथा २०५ की टीका। कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ४८४ की टीका।

द्वितीयोपशम के कथन सम्बन्धी सन्दृष्टि इस प्रकार है -

बन्धयोग्यप्रकृति ७७। गुणस्थान ८।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७५	२	९	९ (गुणस्थानोक्त १०-१ मनुष्यायु)
देशसंयत	६६	११	४	४ (प्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ)
प्रमत्त	६२	१५	६	६ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	५८	१९	०	१९ (१५+६-२, आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	१९	३६	३६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	२२	५५	५	५ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	६०	१६	१६ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	१	७६	०	

क्षयोपशमसम्यक्त्वमें बन्धयोग्य प्रकृति ७९ हैं, क्योंकि मिथ्यात्व व सासादन गुणस्थान में (१६+२५) ४१ प्रकृति की व्युच्छित्ति हो जाती है। गुणस्थान असंयतादि चार ही हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी में उपशम और क्षायिकसम्यक्त्व एवं क्षपकश्रेणी में क्षायिकसम्यक्त्व होता है। असंयतादि चारों गुणस्थानों में व्युच्छित्ति और बन्ध का कथन तो गुणस्थानवत् है, किन्तु अबन्ध २-१२-१६ और २० प्रकृतिका यथाक्रम चारों गुणस्थानों में जानना।

क्षयोपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्धादिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ७९। गुणस्थान ४।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७७	२	१०	२ (आहारकद्विक)
देशसंयत	६७	१२	४	
प्रमत्त	६३	१६	६	
अप्रमत्त	५९	२०	१	२० (१६+६-२ आहारकद्विक)

क्षायिकसम्यक्त्व में बन्धयोग्य प्रकृति ७९ हैं। गुणस्थान असंयतसे अयोगीपर्यन्त हैं तथा सिद्ध भी जानना। असंयत में व्युच्छिन्नप्रकृति १०, बन्धप्रकृति ७७ और अबन्धप्रकृति २ (आहारकद्विक)।

देशसंयत में व्युच्छित्ति ४ प्रकृतिकी, बन्ध ६७ प्रकृतिका, अबन्ध १२ प्रकृतिका। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, बन्धरूप प्रकृति ६३, अबन्धप्रकृति १६ हैं। अप्रमत्त में व्युच्छित्ति १ प्रकृतिकी, बन्ध आहारकद्विकसहित ५९ प्रकृतिका, अबन्ध २० प्रकृतिका। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ३६ प्रकृतिकी, बन्ध ५८ प्रकृति का, अबन्ध २१ प्रकृतिका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, बन्धप्रकृति २२, अबन्धप्रकृति ५७, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति १६, बन्धप्रकृति १७, अबन्ध ६२ प्रकृतिका है। उपशान्तकषाय में व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध १ प्रकृतिका और अबन्ध ७८ प्रकृतिका। क्षीणकषायगुणस्थान में व्युच्छित्तिशून्य, बन्धप्रकृति १, अबन्धप्रकृति ७८ हैं। अयोगीगुणस्थान में बन्ध व व्युच्छित्तिका अभाव है, किन्तु अबन्ध ७९ प्रकृतिका जानना।

क्षायिकसम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ७९। गुणस्थान ११।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	७७	२	१०	२ (आहारकद्विक)
देशसंयत	६७	१२	४	
प्रमत्त	६३	१६	६	
अप्रमत्त	५९	२०	१	२० (१६+६-२ आहारकद्विक)
अपूर्वकरण	५८	२१	३६	
अनिवृत्तिकरण	२२	५७	५	
सूक्ष्मसाम्पराय	१७	६२	१६	
उपशान्तमोह	१	७८	०	
क्षीणमोह	१	७८	०	
सयोगी	१	७८	१	
अयोगी	०	७९	०	

मिथ्यात्व में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, बन्धप्रकृति ११७ तथा अबन्धप्रकृति ३ हैं। सासादन में व्युच्छिन्न प्रकृति २५, बन्धप्रकृति १०१ और अबन्धप्रकृति १९ हैं। सम्यग्मिथ्यात्वमें व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य, बन्धप्रकृति ७४ एवं अबन्ध प्रकृति ४६ जानना।

॥ इति सम्यक्त्वमार्गणा ॥

अथ सञ्ज्ञीमार्गणा

सञ्ज्ञीमार्गणा में बन्धयोग्यप्रकृति १२०। गुणस्थान मिथ्यात्व से क्षीणकषायपर्यन्त १२। यहाँ बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

असञ्ज्ञीके बन्धयोग्यप्रकृति ११७ (तीर्थंकर और आहारकद्विक बिना) और गुणस्थान २ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १९ प्रकृतिकी, बन्ध ११७ एवं अबन्ध शून्य है। सासादन गुणस्थान में असञ्ज्ञीजीव मिश्रकाययोगी ही होते हैं अत: यहां चारों आयुका बन्ध नहीं होता है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति विकलेन्द्रियवत् २९ प्रकृतिकी, बन्ध ९८ प्रकृतिका एवं अबन्ध १९ प्रकृतिका जानना।

असञ्ज्ञीसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिकी सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ११७ और गुणस्थान २ हैं।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	११७	०	१९	१९ (गुणस्थानोक्त १६+३, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यञ्चायु)
सासादन	९८	१९	२९	२९ (गुणस्थानोक्त २५+६ वज्रर्षभनाराचादि - २ मनुष्यायु व तिर्यञ्चायु)

॥ इति सञ्ज्ञीमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ आहारमार्गणा

आहारमार्गणा में आहारकजीव के बन्धयोग्यप्रकृति १२० हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त १३ हैं। यहां बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्तिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानोक्त ही जानना।

अनाहारकके चार आयु, आहारकद्विक और नरकद्विकके बिना बन्धयोग्यप्रकृति कार्मणकाययोग के समान ११२ हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सयोगी और अयोगी ये पाँच हैं। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगीगुणस्थान में व्युच्छित्ति, बन्ध और अबन्धका कथन कार्मणकाययोग के समान ही है, किन्तु अयोगी के बन्ध और व्युच्छित्ति का तो अभाव है, अबन्ध ११२ प्रकृतिका जानना। इस प्रकार वेदमार्गणा से आहारमार्गणा पर्यन्त व्युच्छित्ति, बन्ध व अबन्ध का कथन किया।

अनाहारकसम्बन्धी बन्ध-अबन्ध-व्युच्छित्ति की सन्दृष्टि

बन्धयोग्यप्रकृति ११२ गुणस्थान ५।

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१०७	५	१३	५ (देवचतुष्क, तीर्थङ्कर) १३ (गुणस्थानोक्त १६-३ नरकद्विक व नरकायु)
सासादन	९४	१८	२४	२४ (गुणस्थानोक्त २५-१ तिर्यञ्चायु)
असंयत	७५	३७	७४	३७ (२४+१८-५ देवचतुष्क, तीर्थङ्कर) ७४ (मनुष्यायुबिना असंतकी ९+देशसंयतकी ४+ प्रमत्त की ६+ अपूर्वकरणकी आहारकद्विकबिना ३४+अनिवृत्तिकरणकी ५+सूक्ष्मसाम्परायकी १६) ये सर्व ७४ प्रकृतियाँ असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न होती हैं।
सयोगी	१	१११	१	१(सातावेदनीय) नोट - अनाहारक अवस्था में सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती।
अयोगी	०	११२	०	

इस प्रकार चतुर्दशमार्गणाओं में बन्ध-अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति कथन पूर्ण हुआ।

आगे मूलप्रकृतियों के सादि-अनादि इत्यादिरूप बन्ध के भेदों को विशेषरूप से कहते हैं -

सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदियो सादियसेसो अणादिधुवसेसगो आऊ॥१२२॥

अर्थ - छहकर्मों का प्रकृतिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव एवं अध्रुवरूप से चारों प्रकार का होता है, किन्तु वेदनीयकर्म का बन्ध सादिबिना तीनप्रकार का होता है। आयुकर्म का अनादि तथा ध्रुवबन्धके बिना दो प्रकार का अर्थात् सादि और अध्रुवबन्ध ही होता है।

विशेषार्थ – वेदनीयका सादिबन्ध नहीं होने से तीनप्रकारका बन्ध होता है, क्योंकि उपशमश्रेणी में आरोहण व अवरोहण करते हुए सातावेदनीयकी अपेक्षा निरन्तर वेदनीयकर्मका बन्ध है अत: सादिपना नहीं है, मात्र अनादि, ध्रुव और अध्रुवबन्ध ही है। एकपर्याय में आयुकी त्रिभागी आठ ही होती है।

इसलिए अपनी आयुकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अष्टमत्रिभागी में आयुकर्म का बन्ध होता है। यदि अष्टमत्रिभागी में भी आयुका बन्ध नहीं हो तो भुज्यमानआयुके अन्त में आयुकर्मका बन्ध होता है, अतः वह सादिबन्ध है तथा अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ही बँधता है इसका कारण अध्रुव है।

नोट - सामान्य से आयुबन्धके एक अन्तर्मुहूर्त पश्चात् मरण होता है, क्योंकि जघन्य आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ - गाथा १५८, ९१७ के अनुसार आयुकर्म की जघन्य आबाधा असंक्षेपाद्धा काल प्रमाण है। यह काल आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण है इसलिए आयुबन्ध के इतने काल पश्चात् मरण हो सकता है।

अब इन बन्धों का लक्षण कहते हैं -

सादी अबंधबंधे सेढिअणारूढगे अणादी हु।
अभव्वसिद्धम्हि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो॥१२३॥

अर्थ - जिसकर्म के बन्धका अभाव होकर वही कर्म पुनः बंधे उसे सादिबन्ध कहते हैं। जो श्रेणीपर नहीं चढ़ा अर्थात् जिसके बन्धका अभाव नहीं हुआ उसके अनादिबन्ध है। जिस बन्ध का कभी अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबन्ध है, वह ध्रुवबन्ध अभव्योंके होता है। जिस बन्ध का अन्त आ जावे वह अध्रुव बन्ध है, यह बन्ध भव्योंके होता है।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण की ५ प्रकृतियों का बन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त के जीवको था पीछे वही जीव जब उपशान्तकषायगुणस्थानको प्राप्त हुआ उससमय उसके ज्ञानावरण के बन्ध का अभाव हुआ। वही जीव पुनः उतरते हुए नीचे सूक्ष्मसाम्पराय में आया उस समय उसके जो ज्ञानावरणका बन्ध हुआ वही सादिबन्ध है। जीव जबतक श्रेणी को प्राप्त नहीं होता तबतक उसके अनादिबन्ध जानना। जैसे - ज्ञानावरणकी बन्धव्युच्छित्ति सूक्ष्मसाम्परायके अन्तसमयमें होती है उसके अनन्तर जीव उपशान्तकषाय गुणस्थान में पहुंचा, इसके पहले सूक्ष्मसाम्परायके अन्ततक ज्ञानावरणका अनादिबन्ध है।

अभव्यजीवों के ध्रुवबन्ध होता है, क्योंकि निष्प्रतिपक्ष-निरन्तरबन्धी कर्म प्रकृतियोंकाबन्ध अभव्यजीवों के अनादि-अनन्त पाया जाता है। भव्यजीवों के अध्रुव-बन्ध है, क्योंकि भव्यजीवों के बन्धका अन्त पाया जाता है। जैसे ज्ञानावरणपञ्चक (मति-श्रुतादि) की बन्धव्युच्छित्ति दशवेंगुणस्थान में होती है। इस प्रकार सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवका लक्षण कहा।

अब उत्तरप्रकृतियों में इन चार बन्धों की विशेषता कहते हैं -

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ।
सत्तेत्तालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा॥१२४॥

अर्थ - मोहनीयके बिना तीनघातियाकर्मोंकी १९ प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व, सोलह-कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण और अगुरुलघुयुगल तथा निर्माण, वर्णादिचार ये ४७ प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धी कहलाती हैं।[१] इनका सादि इत्यादि चारों प्रकारका बन्ध होता है तथा शेषका दोप्रकार का बन्ध होता है।

विशेषार्थ - जबतक बन्धकी व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक इन ध्रुवप्रकृतियोंका प्रतिसमय बन्ध होता है इसलिए इनको ध्रुवबन्धी कहते हैं तथा इनसे शेष वेदनीयकी दो, मोहनीयकी सात, आयुकी चार, गतिचार, जातिपांच, औदारिकशरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, छहसंस्थान, छहसंहनन, चारआनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति-युगल, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, सुभग, दुर्भग, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर तथा गोत्रकर्म की दो ये ७३ प्रकृति अध्रुवबन्धी हैं। इन प्रकृतियों के सादि और अध्रुवबन्ध ही होते हैं।

अथानन्तर इन प्रकृतियों के अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्षभेद कहते हैं।

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्वआऊणि।
अपडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी॥१२५॥

अर्थ - ७३ अध्रुवबन्धीप्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, परघातादि चार और चारआयु ये ग्यारह प्रकृतियां अप्रतिपक्षी कहलाती हैं तथा शेष ६२ प्रकृति सप्रतिपक्षी हैं।

---

१. **शंका** - मिथ्यात्व को ध्रुवोदयी क्यों नहीं माना, ध्रुवबंधी तो माना है,क्योंकि यह प्रकृति बंधव्युच्छित्ति तक बराबर निरन्तर बंध होने से ध्रुवबंधी कहलाती है वैसे ही उदय-व्युच्छेद तक निरन्तर उदय आते रहने से इसे ध्रुवोदयी भी कहना चाहिए, पर मिथ्यात्व को ध्रुवोदयी नहीं कहा। तो फिर इसे ४७ ध्रुवबंधी प्रकृतियों में भी नहीं कहना चाहिए या फिर ध्रुवोदयी भी कहा जाए?

समाधान - जब तक बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती तब तक निरन्तर बंधनेवाली प्रकृति ध्रुवबंधी है, किन्तु उदय में यह विवक्षा नहीं है। संसार (छद्मस्थ) अवस्था में जिसका निरन्तर उदय रहे वह ध्रुवउदयी प्रकृति है। आपके मतानुसार तो नित्यनिगोदियाजीव (गो.जी. गाथा १९७) के तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, स्थावरकाय, नीचगोत्र का निरन्तर उदय होने से वे भी ध्रुव उदयी हो जावेंगी। यदि ये ध्रुव उदयी नहीं है तो मिथ्यात्व भी ध्रुवउदयी नहीं है।

विशेषार्थ - ४७ ध्रुवबन्धीप्रकृतियोंके बिना शेष ७३ प्रकृतियोंमें से तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और चारआयु ये ग्यारहप्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी हैं, क्योंकि इनका कोई प्रतिपक्षी नहीं है। इन प्रकृतियोंका जिसकाल में बन्ध होता है उस काल में बंधती है और जिसकाल में बन्ध नहीं होता है उस काल में नहीं बंधती है। जैसे - तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध जिसकाल में होता है उसी काल में बंधती है। अवशेष ६२ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी हैं, क्योंकि इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं। एकसमय में एकका ही बन्ध होगा जैसे - सातावेदनीय, असातावेदनीय ये दोनों परस्पर में प्रतिपक्षी हैं। मोहनीय में रति-अरति प्रतिपक्षी हैं, हास्य-शोक प्रतिपक्षी हैं, तीनों वेद परस्पर प्रतिपक्षी हैं। इनमें से एक-एक का ही बन्ध होता है। नामकर्म में चार गति प्रतिपक्षी हैं, पाँच जाति परस्पर प्रतिपक्षी है। इनमेंसे एकसमय में एकका ही बन्ध होगा, दोनों का एक साथ बन्ध नहीं होगा।

आत्मा के संक्लेश व विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं, उन संक्लेश व विशुद्ध परिणामों के द्वारा साता-असातावेदनीयकर्म तथा पुरुष स्त्री-नपुंसकवेद आदिके बन्ध में परिवर्तन होता रहता है। इस कारण कभी किसी प्रकृतिका तो कभी किसी प्रकृतिका बन्ध होता रहता है।

आगे इन अध्रुवप्रकृतियों के सादि और अध्रुवबन्ध ही क्यों कहा? इसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं -

अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा॥१२६॥

अर्थ - तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और चारआयु इन सातप्रकृतियों का निरन्तर बँधने का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, शेष ६६ प्रकृतियों का निरन्तर बँधने का काल जघन्य से एकसमय है। इसके पश्चात् इनका बन्ध रुक जाता है। अतः इन ७३ प्रकृतियों में सादि और अध्रुवबन्ध सिद्ध हुआ। इस प्रकार से प्रकृतिबन्धका स्वरूप समझना।

॥ इति प्रकृतिबन्ध॥

❋❋❋

अथ स्थितिबन्ध

अब मूल प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं -

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं॥१२७॥

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीयकर्म का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध तीसकोड़ाकोड़ीसागर, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध बीसकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण है। मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, तथा आयुकर्म का केवल ३३ सागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है।

अथानन्तर छह गाथाओं से उत्तरप्रकृतियों का स्थितिबन्ध कहते हैं -

दुक्खतिघादीणोघं सादिच्छीमणुदुगे तदद्धं तु।
सत्तरि दंसणमोहे चारित्तमोहे य चत्तालं॥१२८॥

संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च॥१२९॥

अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुति चउक्के॥१३०॥

इगिपंचेंदियथावरणिमिणासग्गमणअथिरछक्काणं।
वीसं कोडाकोडीसागर णामाणमुक्कस्सं॥१३१॥

हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे॥१३२॥

सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोगे॥१३३॥ कुलयं॥

अर्थ - असातावेदनीय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनकी १९ इस प्रकार सर्वबीसप्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध मूलप्रकृतियों के समान ३० कोड़ाकोड़ी सागर है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उत्कृष्टस्थितिबन्ध १५ कोड़ाकोड़ीसागर है। मिथ्यात्वका सत्तरकोड़ाकोड़ी एवं चारित्र मोहनीयरूप सोलहकषाय का उत्कृष्टस्थितिबन्ध ४० कोड़ाकोड़ीसागर है। अन्तिम हुण्डकसंस्थान तथा सृपाटिकासंहननका मूलप्रकृतिके समान २० कोड़ाकोड़ीसागर, वामनसंस्थान और कीलकसंहननका १८ कोड़ाकोड़ीसागर, कुब्जकसंस्थान और अर्धनारचसंहननका सोलह, स्वातिसंस्थान व नाराचसंहननका १४, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका १२, तथा समचतुरस्रसंस्थान व वज्रर्षभनाराचसंहननका १० कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। द्वीन्द्रिय,

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त का उत्कृष्टस्थितिबन्ध १८ कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजस, कार्मण और औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त व प्रत्येक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्तविहायोगति तथा अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति इस प्रकार इन सर्व ४१ प्रकृतियोंका २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद तथा स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति, प्रशस्तविहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध १० कोड़ाकोड़ीसागर है। आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृतिका अन्तः कोड़ाकोड़ीसागर (एक करोड़ अधिक एवं कोड़ाकोड़ीसे कम) प्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। देवायु और नरकायुका मूलप्रकृति के समान ३३ सागरप्रमाण तथा मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुका तीनपल्यप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध है। यह उत्कृष्टस्थितिबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तके ही हो सकता है॥१३३॥

विशेषार्थ - शुभाशुभकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध यथायोग्य उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामवाले चारोंगतिके जीवोंको ही होता है। उत्कृष्ट संक्लेशवाले जीवको अप्रशस्त प्रकृतियों का बन्ध होगा, साताआदिका बन्ध नहीं होगा। इन प्रकृतियों में तीर्थङ्कर और आहारकद्विक ये तीन संसार का कारण नहीं है।

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु॥१३४॥

अर्थ - तिर्यञ्च, मनुष्य व देवायुबिना अन्य ११७ प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामों से होता है।[१] और जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है। तीनआयुरूप प्रकृतियों का भी यथायोग्य विशुद्धपरिणामों से उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है तथा जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य संक्लेशपरिणामों से होता है।

विशेषार्थ - उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामों के अतिरिक्त बन्धककी गति आदि भी स्थितिबंधमें कारण है। जैसे देव उत्कृष्ट संक्लेशद्वारा एकेन्द्रियजाति का बन्ध करता है, किन्तु तिर्यञ्चआयुका जघन्यस्थितिबन्ध नहीं करता है।

अब उत्कृष्टस्थितिबन्ध के स्वामी बताते हैं -

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिदो।
आहारं तित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूण॥१३५॥

१. महाबंध पु. २ पृ. २५६-२५७ "तप्पाओग्गउक्कसए संकिलिट्ठे वट्टमाणस्स"

अर्थ - आहारकद्विक-तीर्थङ्कर और देवायुबिना शेष ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव ही करता है। यहाँ 'अर्थापत्ति-न्याय' से यह अर्थ निकलता है कि आहारकादि चारप्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध सम्यग्दृष्टिजीव ही करता है।

आहारकद्विकादि चारप्रकृतियोंके बन्धस्वामियों में विशेषता कहते हैं -

देवाउगं पमत्तो आहारयमप्पमत्तविरदो दु।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेदि ॥१३६॥

अर्थ - देवायुकी उत्कृष्टस्थितिको प्रमत्तगुणस्थानवालाजीव, आहारकद्विककी उत्कृष्टस्थितिको अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिको चतुर्थगुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टिमनुष्य ही बाँधता है।

विशेषार्थ - देवायु की उत्कृष्टस्थितिको अप्रमत्तगुणस्थान में जाने के सम्मुख हुआ प्रमत्तगुणस्थानवाला जीव बाँधता है। यद्यपि अप्रमत्तगुणस्थान में भी देवायुका बन्ध होता है, तथापि सातिशय अप्रमत्त में तीव्रविशुद्धपरिणाम पाए जाते हैं अत: यहाँ देवायुका बन्ध न होकर निरतिशयअप्रमत्त में ही होता है, किन्तु उत्कृष्टस्थितिबन्ध नहीं होता है। आहारकद्विककी उत्कृष्टस्थिति को अप्रमत्तगुणस्थानके सन्मुख हुआ अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती संक्लेशपरिणामीजीव बांधता है। तीर्थङ्करप्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति को दूसरे या तीसरे नरकमें जाने के सम्मुख हुआ क्षयोपशमसम्यग्दृष्टि असंयतमनुष्य ही बाँधता है। अत: तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करने वाले नरकगति के अभिमुख असंयत-सम्यग्दृष्टिजीवके तीव्रसंक्लेश पाया जाता है। मिथ्यात्वमें जाने वाले सम्यग्दृष्टिमनुष्य के अन्तिमसमय में उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है।

अथानन्तर ११६ प्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव ही करता है इसका कथन दो गाथाओं से करते हैं -

णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियल सुहुमतियं।
सुरणिरिया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥

देवा पुण एइंदियआदावं थावरं च सेसाणं।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥ जुम्मं॥

अर्थ - देवायुबिना शेष तीनआयु, वैक्रियकषट्क, विकलत्रय और सूक्ष्मादि तीन इन सभी का उत्कृष्टस्थितिबन्ध मनुष्य और तिर्यञ्चजीव ही करते हैं। औदारिकद्विक, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत व असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननकी उत्कृष्टस्थिति मिथ्यादृष्टिदेव और नारकीजीव ही बाँधते हैं।

एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर इन तीनप्रकृतियों का उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिदेव करते हैं, शेष ९२ प्रकृतियोंको उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामवाले तथा ईषत् मध्यमसंक्लेशपरिणामवाले चारों गतियों के जीव बाँधते हैं।

विशेषार्थ - यहाँ उत्कृष्ट और ईषत्मध्यमसंक्लेशपरिणाम का स्वरूप इसप्रकार जानना -

स्थितिबन्धके कारण तीव्रमंदादिकरूप स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानों में उत्कृष्टस्थितिबन्ध के लिए कारण ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम हैं। इनके पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण खण्ड करके अंतिमखण्ड में तीव्रकषायरूप जो परिणाम हैं उनको उत्कृष्टसंक्लेश कहते हैं तथा प्रथमखण्ड में जितने परिणाम हैं वे अल्पकषायरूप हैं इनको ईषत्संक्लेश कहते हैं एवं दोनों खण्डों के बीच में जो खण्ड हैं उनमें जो परिणाम यथासम्भव पाए जाते हैं उनको मध्यमसंक्लेशपरिणाम कहते हैं। इसीप्रकार उत्कृष्ट से एक-एकसमय घटते हुए जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके जितने भेद हैं उन सभी में जानना।

इन सर्वप्रकृतियों में अपनी-अपनी स्थिति के भेदों का जो प्रमाण है उसे ऊर्ध्वगच्छ कहते हैं। तिर्यक्गच्छ पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण और गुणहानिआयाम भी पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण होता है। यहाँ अनुकृष्टिरचना का विधान अधःकरणवत् जानना चाहिए।

अनुकृष्टिरचना - अङ्कसन्दृष्टि में २२२ परिणाम उत्कृष्टस्थितिबन्ध के कारण हैं। इनकी अनुकृष्टिरचना ५४-५५-५६-५७= २२२। इनमें से ५७ परिणाम तो उत्कृष्ट स्थितिबन्धके ही कारण हैं, किन्तु ५४ परिणाम (स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान) ऐसे हैं जो उत्कृष्टस्थितिबन्धको भी कारण हैं और उससे पल्यके असंख्यातवें भाग हीनतककी स्थितियों के बन्ध के भी कारण हैं तथा ५५ व ५६ परिणाम उत्कृष्टस्थितिबन्ध को भी कारण हैं और उससे हीन स्थितिबन्धको भी कारण हैं।

आगे मूलप्रकृतिके जघन्यस्थितिबन्ध को कहते हैं -

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं॥१३९॥

अर्थ - वेदनीयकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध बारहमुहूर्तका है, नाम व गोत्रकर्मका आठमुहूर्त है अवशेष पांचकर्मों का जघन्यस्थितिबन्ध एक-एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

अथानन्तर उत्तरप्रकृतियों का जघन्यस्थितिबन्ध कहते हैं -

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेकदलमासं।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदि॥१४०॥

अर्थ - लोभ तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में बन्धनेवाली १७ प्रकृतियोंका जघन्यस्थिति बन्ध मूलप्रकृतियोंके समान है। इनमें यशस्कीर्ति और उच्चगोत्रका तो आठ-आठ मुहुर्त है। सातावेदनीयका १२ मुहुर्त तथा शेष ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय और सञ्ज्वलनलोभका एक-एक अन्तर्मुहूर्त है। संज्वलन क्रोध का दोमास, संज्वलन मानका एकमाह, संज्वलन माया का १५ दिन और पुरुषवेदका आठवर्षप्रमाण जघन्यस्थितिबन्ध होता है।

तित्थाहाराणंतो कोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो।
खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा ॥१४१॥

अर्थ - तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका जघन्यस्थितिबन्ध अन्त:कोडाकोडीसागर प्रमाण है। अन्त:कोडाकोडीसागर के अनेकभेद होते हैं इसलिए जघन्यका भी इतना ही प्रमाण है। यह जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकश्रेणीवालों के अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके समय आठवें-गुणस्थानके छठेभाग में नियमसे होता है।

भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वास दससहस्साणि।
सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥१४२॥

अर्थ - मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्यस्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त अर्थात् क्षुद्रभव या उच्छ्वासके १८ वें भाग प्रमाण है तथा देवायु और नरकायु का दशहजारवर्षप्रमाण है।

सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसगउक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

अर्थ - उपर्युक्त गाथाओं में कथित २९ प्रकृतियों (५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय, संज्वलन चतुष्क, पुरुषवेद, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और चार आयु) के बिना शेष ९१ प्रकृतियों में से वैक्रियकषट्क और मिथ्यात्व इन सातके बिना ८४ प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध यथायोग्य विशुद्धता का धारक बादरएकेन्द्रियपर्याप्तजीव करता है। अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिका प्रतिभाग करके त्रैराशिकविधान से जो-जो प्रमाण हो वह-वह जघन्य-स्थितिका प्रमाण जानना।

मूल-उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिसम्बन्धी सन्दृष्टि

प्रकृतियाँ		स्थितिबन्ध	
मूलप्रकृति	उत्तरप्रकृति	उत्कृष्ट	जघन्य
ज्ञानावरणीय	मतिज्ञानावरणादि पाँच (५)	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय	निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला व स्त्यानगृद्धि	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३/७ सागर*
	निद्रा व प्रचला	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३/७ सागर*
	चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवलदर्शन	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय	साता	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१२ मुहूर्त
	असाता	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३/७ सागर*
मोहनीय			
(अ) दर्शनमोहनीय	मिथ्यात्व	७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	७/७ सागर*
(आ) चारित्रमोहनीय	अनन्तानुबन्धीक्रोधादि चार	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४/७ सागर*
(१) कषायवेदनीय	अप्रत्याख्यानक्रोधादि चार	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४/७ सागर*
	प्रत्याख्यानक्रोधादि चार	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४/७ सागर*
	सञ्ज्वलन क्रोध	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२ मास
	सञ्ज्वलन मान	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१ मास
	सञ्ज्वलन माया	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१ पक्ष
	सञ्ज्वलन लोभ	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
(२) नोकषायवेदनीय	स्त्रीवेद	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	पुरुषवेद	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	८ वर्ष
	नपुंसकवेद	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*

	हास्य	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	रति	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	अरति	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	शोक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	भय	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	जुगुप्सा	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
आयु	नरकायु	३३ सागरोपम	१० सहस्रवर्ष
	तिर्यञ्चायु	३ पल्योपम	क्षुद्रभव
	मनुष्यायु	३ पल्योपम	क्षुद्रभव
	देवायु	३३ सागरोपम	१० सहस्रवर्ष
नाम (पिण्डप्रकृतियाँ)			
(१) गति	नरक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*
	तिर्यञ्च	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	मनुष्य	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	देव	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*
(२) जाति	एकेन्द्रिय	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	द्वीन्द्रिय	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	त्रीन्द्रिय	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	चतुरिन्द्रिय	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	पञ्चेन्द्रिय	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(३) शरीर ५	औदारिक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(४) शरीरबन्धन ५	वैक्रियक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*
(५) शरीरसंघात ५	आहारक	अन्तः कोड़ाकोड़ी	अन्तः कोड़ाकोड़ी
	तैजस	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*

	कार्मण	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(६) शरीरसंस्थान	समचतुरस्र	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	न्यग्रोधपरिमण्डल	१२ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	स्वाति	१४ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	कुब्जक	१६ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	वामन	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	हुण्डक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(७) शरीर-अङ्गोपाङ्ग	औदारिक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	वैक्रियक	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*
	आहारक	अन्तः कोड़ाकोड़ी	अन्तकोड़ाकोड़ी
(८)शरीरसंहनन	वज्रर्षभनाराच	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	वज्रनाराच	१२ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	नाराच	१४ कोड़ाकोड़ीसागरोपम	२/७ सागर*
	अर्धनाराच	१६ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	कीलक	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	सृपाटिका	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(९) वर्ण	कृष्णादि ५	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(१०) गन्ध	सुरभि और दुरभि	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(११) रस	तिक्तादि ५	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(१२) स्पर्श	कर्कशादि ८	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(१३) आनुपूर्वी	नरकगति आनुपूर्वी	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*
	तिर्यंचगति आनुपूर्वी	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	मनुष्यगति आनुपूर्वी	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	देवगति आनुपूर्वी	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२०००/७ सागर*

(१४) विहायोगति	प्रशस्त	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	अप्रशस्त	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
(अपिण्डप्रकृतियां)	अगुरुलघु	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	उपघात	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	परघात	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	उच्छ्वास	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	आतप	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	उद्योत	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	त्रस	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	स्थावर	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	बादर	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	सूक्ष्म	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	पर्याप्त	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	अपर्याप्त	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	प्रत्येकशरीर	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	साधारण शरीर	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	स्थिर	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	अस्थिर	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	शुभ	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	अशुभ	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	सुभग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	दुर्भग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	सुस्वर	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	दुःस्वर	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	आदेय	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*

	अनादेय	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	यश:कीर्ति	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	८ मुहूर्त
	अयशस्कीर्ति	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	निर्माण	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२/७ सागर*
	तीर्थङ्कर	अन्त:कोड़ाकोड़ी	अन्त: कोड़ाकोड़ी
गोत्र	उच्च	१० कोड़ाकोड़ीसागर	८ मुहूर्त
	नीच	२० कोड़ाकोड़ीसागर	२/७ सागर*
अन्तराय	दान-लाभादि ५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त

नोट - १. यह सन्दृष्टि ध. पु. ६ व महाबन्ध पु. २ के अनुसार है।

२. उपर्युक्त सन्दृष्टि (*) इस चिह्न $\frac{३}{७}\frac{७}{७}\frac{४}{७}\frac{२}{७}\frac{१}{७}$ सागररूप संख्या पल्योपमके असंख्यातवें भाग से हीन ग्रहणकरना चाहिए, किन्तु २०००/७ सागर रूप संख्या पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिए।

३. सन्दृष्टि में २०००/७ सागर * दिया है, वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय की अपेक्षा दिया है क्योंकि वैक्रियिक षट्क का बंध एकेन्द्रिय एवं विकलत्रय जीव नहीं करते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध १००० सागर है, इससे नाम और गोत्र का जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम २०००/७ सागर होता है।

शंका - स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वरादि प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवेंभाग से कम सागरोपमके दो बटे सात ($\frac{२}{७}$) भागमात्र घटित नहीं होता है, क्योंकि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंका २० कोड़ाकोड़ीसागरोपमप्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध नहीं होता।

समाधान - यद्यपि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंकी उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ीसागरोपमप्रमाण नहीं है, तथापि मूलप्रकृतिकी उत्कृष्टस्थितिके अनुसार ह्रासको प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियों का पल्योपमके असंख्यातवें भाग से कम सागरोपमके दो बटे सात ($\frac{२}{७}$) भागमात्र जघन्यस्थितिबन्ध में कोई विरोध नहीं है।[१]

शंका - यदि मूल प्रकृति के सामान्य की अपेक्षा नामकर्म की उक्त उत्तरप्रकृतियों की जघन्य स्थिति एक सी ग्रहण की गई सो ठीक है पर स्त्रीवेद, हास्य और रति तो चारित्र मोहनीय के भेदरूप

१. ध. पु. ६ पृ. १९०-१९१।

नोकषाय है इसलिए उन्हें कषायों का अनुसरण करना चाहिए। कषायों की उत्कृष्ट स्थिति ४० कोड़ाकोड़ी सागर है इसलिए इन नोकषायों की जघन्य स्थिति ऊपर बताये अनुसार सिद्ध नहीं होती।

समाधान - स्त्रीवेद, हास्य और रति ये प्रकृतियाँ कषायों के बन्ध का अनुसरण करने वाली नहीं हैं क्योंकि नोकषाय के कषायबन्ध के अनुसरण का विरोध है।

अब जघन्यस्थितिकी विधि और प्रमाण दिखाते हैं -

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥१४४॥[1]

अर्थ - मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति को एकेन्द्रियजीव एकसागर, द्वीन्द्रियजीव २५ सागर, त्रीन्द्रिय ५० सागर, चतुरिन्द्रिय १०० सागर, असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियजीव एकहजारसागर तथा सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्तजीव ७० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण बाँधता है। मिथ्यात्वकी जघन्यस्थिति एकेन्द्रियजीव अपनी उत्कृष्टस्थिति से पल्य के असंख्यातवेंभाग प्रमाण कम बांधता है तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थिति से पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधता है।

अथान्तर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थितिकी अपेक्षा त्रैराशिक विधिसे एकेन्द्रियजीव के उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण कहते हैं-

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं।
इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदि ॥१४५॥

अर्थ - मिथ्यात्वकर्म की उत्कृष्टस्थिति सञ्ज्ञीपर्याप्तजीव ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण बाँधता है, किन्तु एकेन्द्रियजीव मिथ्यात्व की एकसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थिति बाँधता है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागरादि उत्कृष्टस्थितिवाले कर्मोंका एकेन्द्रियजीव के कितनी स्थितिप्रमाण बन्ध होगा? इस प्रकार त्रैराशिकविधि करने से एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियजीवों की उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिका प्रमाण निकल आता है।

विशेषार्थ - ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिवाला मिथ्यात्वकर्म एकेन्द्रियजीवके एकसागरप्रमाण बँधता है तो ४० व ३० और २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थिति में कितनी बाँधेगा? यहाँ प्रमाणराशि ७० कोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि एककोड़ाकोड़ीसागर और इच्छाराशि विवक्षितकर्मकी ३०-४० अथवा २० कोड़ाकोड़ी-सागरादि प्रमाण जितनी उत्कृष्टस्थिति है सो जानना। फलराशिको इच्छाराशि से गुणा करने पर जो प्रमाण आया उसका विवक्षितकर्म की उत्कृष्टस्थिति में

---

१. ध. पु. ६ पृ. १९४-१९५

भागदेने पर जो लब्ध आवे उतने-उतने प्रमाण उत्कृष्टस्थिति एकेन्द्रियजीव के बँधती है। इस प्रकार त्रैराशिकविधि से ४० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण बँधनेवाली १६ कषायों की जो स्थिति है उसमें एकेन्द्रिय के उत्कृष्टस्थिति एकसागर के ४/७ भागप्रमाण बँधती है। इसी त्रैराशिक क्रमसे ३० कोड़ाकोड़ीसागर की उत्कृष्टस्थितिवाले असातावेदनीयकी तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातियाकर्मों की १९ प्रकृतियों की एकेन्द्रियजीव के उत्कृष्टस्थिति एकसागर के ३/७ भाग प्रमाण बँधती है तथा २० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाणवाले कर्मकी २/७ सागरप्रमाण बँधती है।

द्वीन्द्रिय जीव के ७० कोड़ाकोड़ीसागर की उत्कृष्टस्थिति में से मिथ्यात्वकर्मका २५ सागरप्रमाण बन्ध होता है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिवाला जो कर्म है उसका दोइन्द्रिय जीव के कितने सागर का स्थितिबन्ध होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर ७५ सागरका सातवाँ भाग (७५/७) लब्ध आया। ४० कोड़ाकोड़ीसागर की स्थितिवाले कर्मका १०० सागरके सातवाँभाग (१००/७) प्रमाण उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है। इसीप्रकार सभी कर्मों की स्थिति एकेन्द्रियसे २५ गुणी द्वीन्द्रियजीवके बँधती है।

त्रीन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से ५० गुनी, चतुरिन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से १०० गुनी एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से हजार गुनी बँधती है।

इस प्रकार त्रैराशिकविधि से उत्कृष्टस्थिति निकालकर इसमें से एकेन्द्रियके पल्यका असंख्यातवां और विकलेन्द्रियके संख्यातवांभाग कम करदेने पर जघन्यस्थिति ज्ञात कर लेना चाहिए।

पुनः आबाधा की कुछ विशेषता दिखाते हैं -

सण्णि असण्णिचउक्के एके अंतोमुहुत्तमाबाहा।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ॥१४६॥

अर्थ - सञ्ज्ञीजीव, असञ्ज्ञीचतुष्क और एकेन्द्रियजीवके प्रकृतियों की जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है एवं उत्कृष्टआबाधा सञ्ज्ञीजीवों में अपनी जघन्यआबाधा से संख्यातगुणी, असञ्ज्ञीचतुष्क में अपनी जघन्यआबाधा से आवलीके संख्यातवेंभाग अधिक, तथा एकेन्द्रियमें अपनी जघन्य आबाधा से आवली के असंख्यातवें भाग अधिक समझना।

विशेषार्थ - सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीवों की जघन्य अबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और जघन्यस्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण है। कर्मबन्ध होनेके पश्चात् कर्म जबतक उदय अथवा उदीरणारूप नहीं होता तबतकके कालको उदय आबाधा व उदीरणाआबाधाकाल कहते हैं। बन्धके समय उदयआबाधाकाल

पड़ता है, किन्तु उदीरणाआबाधाकाल एकआवलीप्रमाण है। इसको बन्धावली या अचलावली भी कहते हैं। एकेन्द्रिय की स्थिति से द्वीन्द्रियादिकी स्थिति संख्यातगुणी है। सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवकी आबाधासे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियजीवों की आबाधा क्रमसे संख्यातगुणी कम-कम है, किन्तु सर्वअसञ्ज्ञीजीवों की आबाधा का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तके भेद बहुत हैं। एकेन्द्रियकी जघन्यआबाधा से द्वीन्द्रियादिकी जघन्यआबाधा क्रमसे २५-५०-१०० और १००० गुणी है तथा उत्कृष्टआबाधाके प्रमाण से सञ्ज्ञीजीवों की तो संख्यातगुणी है। असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय व विकलत्रयजीवों की अपनी-अपनी जघन्यआबाधा से यद्यपि आवली के संख्यातवांभागप्रमाण अधिक उत्कृष्टआबाधा है तथापि यह उत्कृष्टआबाधा असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय से एकेन्द्रियपर्यन्त क्रमसे संख्यातगुणी-संख्यातगुणीहीन जानना तथा एकेन्द्रियजीव में अपनी जघन्यआबाधा से आवलीका असंख्यातवांभागप्रमाण अधिक उत्कृष्टआबाधा समझना चाहिए।

यहाँ एकेन्द्रियजीवके उत्कृष्टआबाधा के प्रमाणमें से जघन्यआबाधाका प्रमाण घटानेसे जो प्रमाण बचे उसमें एक और मिलाने से जो प्रमाण होता है उतने आबाधा के भेद एकेन्द्रियजीव के हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय, असञ्ज्ञी और सञ्ज्ञीके अपनी-अपनी उत्कृष्टआबाधा के प्रमाण में से अपनी-अपनी जघन्यआबाधा का प्रमाण घटाकर उसमें एक मिलाने से आबाधा के भेदों का प्रमाण निकलता है।

'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' आदि को अन्त में से घटाकर उसमें वृद्धि का भाग देकर एक और मिलाने पर स्थानों का प्रमाण होता है। यहाँ आदि तो जघन्यआबाधा है और अन्त उत्कृष्टआबाधा है। अत: उत्कृष्टआबाधामें से जघन्य आबाधाको घटाकर वृद्धिके प्रमाण एकका भाग देने पर जो संख्या प्राप्त हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके भेदरूप स्थानों का प्रमाण होता है। यहाँ जघन्यसे एक-एक समय बढ़ाते-बढ़ाते उत्कृष्ट भेद होता है, अत: वृद्धि का प्रमाण एक हुआ।

जघन्यस्थितिबन्धको सिद्ध करने के लिए गणितसूत्र कहते हैं -

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूणजेट्ठमवरठिदी ॥१४७॥

अर्थ - एकेन्द्रियादिजीवों की उत्कृष्टस्थितिको उत्कृष्टआबाधासे भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसे आबाधाकाण्डक कहते हैं। अपने-अपने आबाधाकाण्डकके प्रमाणसे अपने-अपने आबाधाके भेदों को गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उसमें से एक घटाकर जितना प्रमाण आवे उतना अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थिति में से घटानेपर जो लब्ध आया वह अपनी-अपनी जघन्यस्थिति समझना।

विशेषार्थ - जैसे एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधा का प्रमाण आवली के असंख्यातवेंभाग से अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इसका भाग मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति १ सागरमें देने पर जितना प्रमाण प्राप्त हो वह आबाधाकाण्डक का प्रमाण समझना चाहिए। इस आबाधाकाण्डकको एकेन्द्रियकी आबाधाके भेदों के प्रमाण अर्थात् आवलीके असंख्यातवेंभागसे गुणा करने पर जो लब्ध आवे उसमें से एक घटाकर जो प्रमाण आया उसको मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एकसागर में से घटाने पर जो लब्ध शेष रहा वह एकेन्द्रियजीवकी मिथ्यात्वसम्बन्धी जघन्यस्थिति है। एकसागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति में से इस जघन्यस्थिति को घटाने पर जो शेष रहा उसमें एकका भाग देने पर उतना ही रहता है। इसमें एक अधिक करने पर एकेन्द्रिय जीव के मिथ्यात्वसम्बन्धी स्थितिभेदों का प्रमाण निकलता है। जघन्यसे एक-एक समय बढ़ते हुए उत्कृष्टपर्यन्त एकेन्द्रियके मिथ्यात्वसम्बन्धी स्थितिभेद जानना।

तथैव द्वीन्द्रियजीव के मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधाकाप्रमाण यद्यपि एकआवलि को चार बार संख्यातका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने अधिक पचीसअन्तर्मुहूर्त ही हैं, तथापि एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी अबाधा के अन्तर्मुहूर्त समान ही २५ अन्तर्मुहूर्त जानना। अर्थात् एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी आबाधा से २५ गुणी द्वीन्द्रिय की आबाधा है तथा २५ गुणा ही कर्मों का स्थितिबन्ध है। इसप्रकार एकेन्द्रियकी अपेक्षा २५ अन्तमुहूर्त है ऐसा ही आगे भी समझना चाहिए। इस आबाधाकालका भाग द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति २५ सागर में देने से आबाधाकाण्डका प्रमाण होता है। इस अबाधाकाण्डकसे द्वीन्द्रियसम्बन्धी जो आबाधाकाण्डकके भेद हैं उनके साथ गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त हो उसमें से एककम करने पर जो शेष रहे उसको उत्कृष्ट २५ सागरप्रमाणस्थिति में से घटाने पर जो अवशिष्ट रहे उतने प्रमाण द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वसम्बन्धी जघन्यस्थितिका बन्ध समझना। इस जघन्य को उत्कृष्ट में से घटा देने से शेष में एक अधिक करने पर द्वीन्द्रियसम्बन्धी मिथ्यात्व की स्थितियों के भेदों का प्रमाण होता है। इसीप्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असज्ञीपञ्चेन्द्रियका भी जानना तथा एकेन्द्रियसे असज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्यन्त जीवों के ज्ञानावरणादि अन्यकर्मों की आबाधाके भेदादि जानना चाहिए।

अङ्कसन्दृष्टिद्वारा कथन करते हैं -

उत्कृष्टस्थिति ६४ समय है और ६३ से लेकर ४६ समयतक मध्यमस्थितिका प्रमाण है। जघन्यस्थितिका प्रमाण ४५ समय है, उत्कृष्टआबाधा काप्रमाण १६ समय है। इस आबाधाका भाग उत्कृष्टस्थिति में देने से ४ आये यह आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। ६४÷१६ =४ आबाधाकाण्डक।

६४-६३-६२-६१	इन चार स्थितिभेदों की	१६	समय की आबाधा
६०-५९-५८-५७	इन चार स्थितिभेदों की	१५	समय की आबाधा
५६-५५-५४-५३	इन चार स्थितिभेदों की	१४	समय की आबाधा
५२-५१-५०-४९	इन चार स्थितिभेदों की	१३	समय की आबाधा
४८-४७-४६-४५	इन चार स्थितिभेदों की	१२	समय की आबाधा

१६-१५-१४-१३-१२ ये ५ आबाधा के भेद हुए।

आबाधाकाण्डक ४ का आबाधाके भेद ५ से गुणा करने पर (५×४) = २० ये स्थिति के भेद ६४ से ४५ पर्यन्त हुए। यहाँ उत्कृष्टस्थिति का प्रमाण ६४ है और ४५ जघन्यस्थितिका प्रमाण है। स्थितिका प्रमाण अथवा आबाधाकाण्डकका प्रमाण यहाँ कहा। इसप्रकार एकेन्द्रियादि जीवों के सर्वप्रकृतियोंका स्थितिबन्ध, आबाधा, आबाधाकाण्डक, आबाधाके भेद व स्थितिभेद जानने।

एकेन्द्रियादिजीवों की स्थितिका इसप्रकार वर्णन किया, इनमें जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त जितने भेद हों उनका स्थापनकर उनमें बादर व सूक्ष्म तो एकेन्द्रियके और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा असञ्ज्ञी व सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदसे १४ जीवसमास होते हैं।

जीवोंके उपर्युक्त १४ भेदों की जघन्य-उत्कृष्टस्थितिको पृथक्-पृथक् कहते हैं -

बासूप-बासूआ-वरट्ठिदीओ सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो।
बीबीवरो बीविजहण्णकालो सेसाणभेदं वणणीयमेदं ॥१३८॥

अर्थ - बादरपर्याप्त व अपर्याप्त, सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्त इन चार प्रकार के जीवों के कर्मों की उत्कृष्टस्थिति तथा सूक्ष्म व बादरअपर्याप्त और सूक्ष्म व बादरपर्याप्त जीवोंकी जघन्यस्थिति, इसप्रकार एकेन्द्रियजीवकी कर्मस्थितिके आठभेद हुए। द्वीन्द्रियके पर्याप्त-अपर्याप्त तथा इन दोनोंके जघन्य-उत्कृष्ट, इस प्रकार स्थिति के चारभेद द्वीन्द्रियसम्बन्धी जानना। तथैव त्रीन्द्रियसे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्यन्त स्थिति के चार-चार भेद हैं। ये सर्व ८+४+४+४+४+४=२८, स्थितिके भेद १४ प्रकारके जीवों की अपेक्षा से होते है।

विशेषार्थ - एकेन्द्रियादिके १४ भेदोंकी उत्कृष्ट व जघन्यस्थितिभेदों की अपेक्षा २८ प्रकार निम्नलिखित जानना।

१. बादरपर्याप्त एकेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२. सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
३. बादरअपर्याप्त एकेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
४. सूक्ष्मअपर्याप्त एकेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
५. सूक्ष्मअपर्याप्त एकेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
६. बादरअपर्याप्त एकेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
७. सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
८. बादरपर्याप्त एकेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
९. पर्याप्त द्वीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१०. अपर्याप्त द्वीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
११. अपर्याप्त द्वीन्द्रियकी जघन्यस्थिति
१२. पर्याप्त द्वीन्द्रियकी जघन्यस्थिति
१३. पर्याप्तत्रीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१४. अपर्याप्तित्रीन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति

१५.अपर्याप्त त्रीन्द्रियकी जघन्यस्थिति
१६.पर्याप्त त्रीन्द्रियकी जघन्यस्थिति
१७.पर्याप्तचतुरिन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१८.अपर्याप्तचतुरिन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
१९.अपर्याप्तचतुरिन्द्रियकी जघन्यस्थिति
२०.पर्याप्तचतुरिन्द्रियकी जघन्यस्थिति
२१.पर्याप्त असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२२. अपर्याप्त असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२३. अपर्याप्त असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
२४. पर्याप्त असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी जघन्यस्थिति
२५. पर्याप्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२६. अपर्याप्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी उत्कृष्टस्थिति
२७. अपर्याप्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय की जघन्यस्थिति
२८. पर्याप्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियकी जघन्यस्थिति

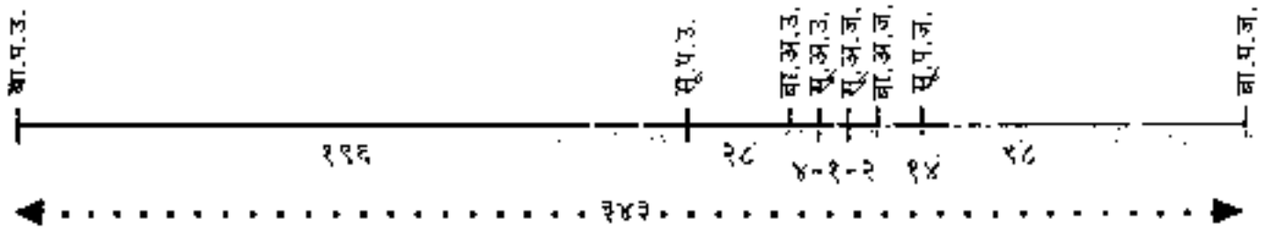
उपर्युक्त २८ भेदोंमेंसे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी चारभेदों का कथन आगे पृथक्रूप से करेंगे। अवशिष्ट २४ भेदोंकी स्थिति का आयाम जानने के लिए अन्तराल-सम्बन्धी भेदों को त्रैराशिकद्वारा कहते हैं। तद्यथा -

स्थितिबन्धमें जो कालका प्रमाण है उसे आयाम कहते हैं, आयामका अर्थ लम्बाई है। यहाँ एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरप्रमाण है और जघन्यस्थिति पल्यके असंख्यातवेंभाग को एकसागर में से घटाने पर जो काल शेष रहा उतने प्रमाण है।

'आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' इस करणसूत्र के अनुसार आदि (जघन्यस्थिति) को अन्त अर्थात् उत्कृष्टस्थिति में से घटाने पर जो प्रमाण शेष रहे उसमें (एक-एकस्थितिके भेदों में एक-एक समय बढ़ता है इसलिए) वृद्धि के प्रमाण एकका भाग देने पर उतना ही प्राप्त हुआ उसमें एक अधिक करने से एकेन्द्रियजीव के मिथ्यात्वकी स्थितिके भेद पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण होते हैं। इस गाथा के अनन्तरवर्ती गाथार्थ में एकेन्द्रियजीव की स्थिति के अन्तराल में अङ्कोंकी सन्दृष्टिकी अपेक्षा १-२-४-१४-२८-९८-१९६ इस प्रकार शलाका कहेंगे उन सर्वशलाकाओं को जोड़ने पर ३४३ शलाका होती है। जैसे साझेके व्यापार में हिस्से होते हैं उसी प्रकार शलाका भी जाननी। एकेन्द्रियजीव के पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति के विकल्प कहे उनमें ३४३ का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने एकशलाका में स्थितिके विकल्प जानना। इनको अपनी-अपनी शलाकाके प्रमाण से गुणा करने पर अपनी-अपनी स्थिति के भेदों का प्रमाण निकलता है। इसी को त्रैराशिकद्वारा कहते हैं -

३४३ शलाका में एकेन्द्रियजीव सम्बन्धी मिथ्यात्वके सर्वभेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाए जाते हैं तो १९६ शलाकाओं में कितने भेद होंगे? यहाँ प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रियजीव के मिथ्यात्वकी स्थिति के भेदों का प्रमाण (पल्यके असंख्यातवें भागमात्र), इच्छा राशि

एकेन्द्रियजीवसम्बन्धी स्थिति के भेद



१९६ है। फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करने पर तथा प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतने बादरपर्याप्त की उत्कृष्टस्थिति से सूक्ष्मपर्याप्त की उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेद जानने। यह स्थितिभेदों का प्रमाण बादरपर्याप्त की उत्कृष्टस्थितिबन्ध और सूक्ष्मपर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध के अन्तराल में जितने स्थिति के भेद हैं, उनके समान हैं। इस अन्तराल की १९६ शलाका जानना चाहिए। तथा इस अन्तराल में स्थितिभेदों का जितना प्रमाण कहा उसमें से एक घटाने पर जो कालप्रमाण प्राप्त हो उसे एकसागर (बादरपर्याप्त की उत्कृष्टस्थिति) में से घटाने पर सूक्ष्मपर्याप्त की उत्कृष्टस्थिति का प्रमाण होता है।

तत्पश्चात् प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रिय के मिथ्यात्वकी स्थितिभेदों का प्रमाण (पल्यका असंख्यातवाँ भाग), इच्छाराशि २८ शलाका है। फलराशिको इच्छाराशि से गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देने पर जो लब्ध आया यह सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति के अनन्तरवर्ती स्थितिबंध से बादरअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेदों का प्रमाण होता है। इस अन्तराल में २८ शलाकाएँ जाननी चाहिए। ये जितने भेद हैं उतने समय सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थिति में से घटानेपर बादरअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाणराशि ३४३ शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थिति के सर्वभेद (पल्य का असंख्यातवांभाग) और इच्छाराशिरूप शलाका चार, इनमें फलराशिको इच्छाराशि गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देने पर जो लब्ध आया उतने बादरअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थिति से सूक्ष्मअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेद जानने। इस अन्तराल की चार शलाकाएँ हैं ये जितने भेद हुए उतने समय बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थिति बन्धमें से घटाने पर सूक्ष्मअपर्याप्त का उत्कृष्टस्थितिबन्ध होता है।

प्रमाणराशि ३४३, फलराशि एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व की स्थिति के सर्वभेदों का प्रमाण (पल्यका असंख्यातवाँभाग), इच्छाराशि शलाका एक। फलराशि को इच्छाराशि से गुणाकरके प्रमाणराशि का भाग देने पर जो लब्ध आवे वह सूक्ष्मअपर्याप्त की उत्कृष्ट स्थिति से अनन्तर स्थिति बंध से लेकर सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेद हैं। इस अन्तरालकी एक शलाका है। ये जितने भेद

हुए उतने समय सूक्ष्मअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति में से घटाने पर सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति का प्रमाण होता है।

प्रमाणराशि शलाका ३४३, फलराशि एकेन्द्रिय के मिथ्यात्वकी स्थिति के भेदों का प्रमाण (पल्यका असंख्यातवाँभाग), इच्छाराशिशलाका २, यहाँ फलराशिको इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देने पर जो लब्ध आया उतने सूक्ष्मअपर्याप्तके जघन्यस्थिति के अनन्तर स्थिति बंध से बादरअपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेद जानने। इस अन्तरालकी दो शलाका होती हैं। ये जितने भेद हुए उतने समय सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमें से घटाने पर बादरअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति होती है।

प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त और इच्छाराशि १४। यहाँ फलराशिको इच्छाराशि से गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देने पर जो लब्ध आया उतने बादर अपर्याप्तकी जघन्यस्थिति बंध के अनंतर स्थितिबंध के भेद से लेकर सूक्ष्मपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेद हैं। इस अन्तराल की १४ शलाका जाननी। ये जितने भेद हुए उतने समय बादर अपर्याप्तकी जघन्यस्थितिमें से घटाने पर सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है।

प्रमाण और फलराशि पूर्वोक्त तथा इच्छाराशि ९८। यहाँ फलराशि को इच्छाराशि से गुणाकरके प्रमाणराशि का भाग देने पर जो लब्ध आया उतने सूक्ष्मपर्याप्तके जघन्यस्थिति के अनंतर स्थिति बन्ध से बादरपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेद जानने तथा इसके मध्यकी ९८ शलाका जाननी। ये जितने भेद हुए उतने समय सूक्ष्मपर्याप्तककी जघन्य स्थिति में से घटाने पर बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थिति होती है। यह जघन्यस्थितिबन्ध जो एकेन्द्रियजीवके कहा था वही जानना। इस प्रकार १४ जीवसमासों में एकेन्द्रियमें सूक्ष्म-बादर के पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा चारजीवसमास हैं तथा इनके जघन्यस्थितिबन्ध और उत्कृष्टस्थितिबन्ध के भेद से आठस्थान हुए। इस प्रकार आठस्थानों में स्थितिबन्ध का प्रमाण कहा। इन आठों के मध्यवर्ती ७ अन्तरालों में स्थितिभेदों के प्रमाणको जानने के लिए सात त्रैराशिकका कथन किया।

आबाधाकालका प्रमाण भी इसी प्रकार त्रैराशिकद्वारा निकाल लेना चाहिए। इसीको दिखलाते हैं –

एकेन्द्रियजीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टआबाधा आवली के असंख्यातवेंभाग अधिक संख्यातआवली मात्र अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और जघन्यआबाधा केवल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। यहाँ उत्कृष्टमें से जघन्य को घटाने पर एक-एक आबाधा में एक-एक समय बढ़ता है अत: एकका भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसमें एक मिलानेपर एकेन्द्रिय जीव के मिथ्यात्वकी आबाधा के सर्वभेदों का प्रमाण होता है। जिसप्रकार स्थितिबन्ध

के कथन में आठस्थान कहे और सातअन्तरालों में भेदों का प्रमाण जानने के लिए सातत्रैराशिक किये हैं उसी प्रकार आबाधा के कथन में आठस्थान और सातअन्तराल में भेदों का प्रमाण जानने के लिए सातत्रैराशिक करना चाहिए।

यहाँ प्रमाणराशि तो पूर्वोक्तप्रकार सातों त्रैराशिक में ३४३ शलाकाप्रमाण जानना और फलराशि एकेन्द्रियके सर्वस्थितिभेदों का प्रमाण कहा था, किन्तु यहाँ जघन्यसे लेकर उत्कृष्टपर्यन्त एकेन्द्रियजीव के मिथ्यात्व की आबाधाके भेदों का प्रमाण हो उतना अर्थात् आवली का असंख्यातवांभाग फलराशि का प्रमाण जानना और इच्छाराशि १९६-२८-४-१-२-१४-९८ शलाका प्रमाण अनुक्रमसे जानना। यहाँ सर्वत्र फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाण का भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह अन्तराल में आबाधा के भेदोंका प्रमाण जानना।

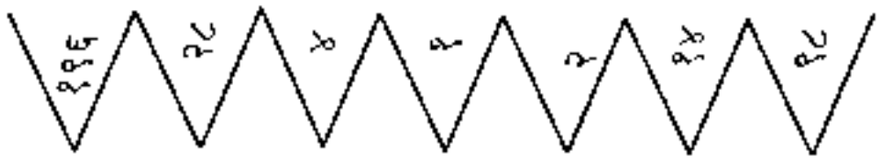
प्रथम त्रैराशिक में भेदों का जितना प्रमाण आया उसमें से एक घटाने से जो शेष रहा उतनासमय बादरपर्याप्तकसम्बन्धी उत्कृष्टस्थितिकी उत्कृष्टआबाधा में से घटाने पर सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिबन्धसम्बन्धी आबाधाकाल का प्रमाण होता है।

पुनः उसमें से द्वितीय त्रैराशिकमें भेदों का जितना प्रमाण आवे उतने समय घटाने पर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति की आबाधाका प्रमाण होता है। इसी प्रकार तृतीयादिक त्रैराशिक में जितने भेद आवें उतने-उतने समय घटाने पर उस उस स्थान में जो स्थितिबंन्ध का प्रमाण कहा उस-उस बन्ध की आबाधा का प्रमाण जानना। इस प्रकार एकेन्द्रियजीव के स्थितिबन्धका और आबाधाके भेदों का व कालका प्रमाण कहा। इसीप्रकार द्वीन्द्रियसे असञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियपर्यन्त आबाधाकालको जान लेना चाहिए।

अब स्थितिशलाकाओं को जानने के लिए गाथासूत्र कहते हैं -

मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति॥१४९॥

अर्थ - सञ्ज्ञीजीवसम्बन्धी स्थितिके ४ भेदों को छोड़कर शेष जीवों की स्थितिके २४ भेदों की जो संख्यास्वरूप शलाकाएँ हैं वे मध्यभागमें सबसे स्तोक हैं। मध्यभाग से नीचे की शलाका संख्यातगुणी तथा इससे भी संख्यातगुणी शलाका मध्यभागसे ऊपर के भाग में है, जिनकी अंकसन्दृष्टि ४-१-२ रूप है। इन तीनों को जोड़ देने पर जो लब्ध आवे उससे संख्यातगुणी अधस्तनवर्ती दूसरे भाग में और उससे संख्यातगुणी उपरितन-द्वितीयभाग में है। जैसे -



विशेषार्थ – अनेक में विभाजन करने के लिए परस्पर में जो अनुपात की कल्पना की गई है उसी का नाम यहाँ शलाका है। 'मध्य' अर्थात् बादर पर्याप्तक की उत्कृष्टस्थिति से बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त एकेन्द्रियसम्बन्धी सर्वस्थितिके जो भेद हैं उनमें सूक्ष्मअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिसे लेकर एक-एक समय घटता सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त जितने स्थिति के भेद पाए जाते हैं वे, आगे जिनका वर्णन किया जावेगा उनसे स्तोक है अत: उनकी एकशलाका जाननी △१△। त्रिकूटरचनाका अभिप्राय यह है कि जहाँ △ ऐसी सन्दृष्टि हो वहाँ स्थितिका कथन जानना। तथा 'हेट्ठा' अर्थात् इसके नीचे सूक्ष्मअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति से एक-एकसमय घटता बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिपर्यन्त जितने स्थिति के भेद हैं उनकी अधस्तनशलाकाएँ जाननी, वे शलाकाएँ संख्यातगुणी हैं, जिसकी अंकसन्दृष्टि २ है और ऊपर सूक्ष्मअपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थिति के अनन्तर उत्कृष्टस्थितिबन्ध से लेकर एक-एक बढ़ती हुई बादरअपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्त स्थिति के जितने भेद हैं वे उनकी उपरितनशलाका जाननी ये संख्यात गुणी हैं तथा उनकी अङ्कसन्दृष्टि ४ है। इस प्रकार संख्यातगुणा अनुक्रम कहा। संख्यात का प्रमाण तो यथायोग्य है, किन्तु यहाँ समझने के लिए संख्यातकी सन्दृष्टि २ का अङ्क जानना। एक के दुगने दो अत: नीचे दो शलाका और २ के दूने चार इसलिए ऊपर की चारशलाका जाननी △४ △१ △२। 'सर्वयुति:' अर्थात् पहले जो शलाका कही थीं उनको जोड़ने पर जो प्रमाण हो उससे 'हेट्ठा' अर्थात् नीचे बादरअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति से लेकर एक-एक समय घटता सूक्ष्मपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेदों की अधस्तनशलाका संख्यातगुणी जाननी, इसकी अङ्कसन्दृष्टि १४ जानना और ऊपर बादरअपर्याप्तक की उत्कृष्टस्थिति से लेकर एक-एक समय बढ़ते हुए सूक्ष्मपर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थितिके भेदोंकी उपरितनशलाका संख्यातगुणी जाननी, इसकी अङ्कसन्दृष्टि २८ है। पहलीशलाका ४+१+२ को जोड़ देने पर ७ हुआ, इसको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करने पर नीचे तो १४ शलाका हुईं और इसको संख्यातकी सहनानी २ से पुन: गुणा करें तो उपरितनशलाका २८ होती हैं। △२८ △४ △१ △२ △१४।

'चकार' से फिर भी 'सर्वयुति:' अर्थात् पहलीशलाकाओं को जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे 'हेट्ठा' अर्थात् सूक्ष्मपर्याप्त की जघन्यस्थिति से लेकर एक-एक समय कम बादरपर्याप्तकी जघन्यस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेदों की अधस्तनशलाका संख्यातगुणी हैं, इनकी सहनानी ९८ है और ऊपर सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति से लेकर एक-एक समय बढ़ते हुए बादरपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त स्थिति के भेदों की उपरितनशलाका संख्यातगुणी है इसकी सहनानी १९६ है। पहले की शलाका २८+४+१+२+१४

इनको जोड़ने पर ४९ होते हैं इनको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करने पर ४९×२ = ९८ ये अधस्तनशलाका हैं। इनको संख्यातकी सहनानी २ से गुणा करनेपर १९६ उपरितनशलाकाका प्रमाण है। △१९६△२८△४△१△२△ १४△९८△१९६। इसीप्रकार मध्यवर्ती तीनभेदों के समान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियों के भी जानना। उनकी सहनानी ४-१-२ रूप है।

आगे सञ्ज्ञी जीवों की स्थितिके चारभेदों में कुछ विशेषता दिखाते हैं -

सण्णिस्स हु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं।
ठिदिआयामोवि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा॥१५०॥

अर्थ - सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय के चारभेदों में नीचे से लेकर अर्थात् सञ्ज्ञीपर्याप्तके जघन्यस्थितिबन्ध से ऊपर-ऊपर चतुर्थभेदपर्यन्त स्थितिके स्थान (भेदों का प्रमाण) संख्यातगुणा क्रम से जानना-और स्थितिआयाम (समयों का प्रमाण) भी संख्यातगुणा है तथा आबाधाकालका प्रमाण स्थितिस्थानों के समान ही समझना चाहिए।

विशेषार्थ - जिस प्रकार स्थितिस्थान और स्थितिआयाम का प्रमाण बहुभाग और एकभाग के हिसाब से निकाला जाता है उसीप्रकार से आबाधाका प्रमाण भी निकालना चाहिए।

सञ्ज्ञीजीव के मिथ्यात्व की उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण है अर्थात् दोबार संख्यातसे पल्यको गुणा करने पर जो प्रमाण आवे, उतने प्रमाण है तथा जघन्यस्थिति मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अन्तःकोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है अर्थात् एक बार संख्यातसे पल्य को गुणा करने पर जो प्रमाण आवे, उतने प्रमाण है। उत्कृष्ट में से जघन्य को घटाकर एक-एक भेदों में से एक-एक समय की वृद्धि होती है। अतः एकका भाग देने पर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलाने पर सञ्ज्ञी के मिथ्यात्वकी स्थिति के सर्वभेदों का प्रमाण होता है। इसमें संख्यातका भाग देकर लब्ध में से एक भाग पृथक्करके शेष बहुभागमात्र सञ्ज्ञीपर्याप्तक के उत्कृष्टस्थितिबन्ध से सञ्ज्ञीअपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्त स्थितिभेदों का प्रमाण है। इनमें से एककम करने पर जो प्रमाण रहा उतने समय सञ्ज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागर में से घटाने पर जो प्रमाण शेष रहे वह सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति जाननी तथा जो एकभाग रहा था उसमें संख्यातका भाग देकर एकभाग को पृथक् रख शेष बहुभाग सञ्ज्ञीअपर्याप्तक की उत्कृष्ट से सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी ही जघन्य स्थितिपर्यन्त स्थितिभेदों का प्रमाण है। इस प्रमाण को सञ्ज्ञीअपर्याप्तक की उत्कृष्टस्थिति में से घटाने पर सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति काप्रमाण होता है तथा जो एक भाग शेष था उतने प्रमाण सञ्ज्ञीअपर्याप्तकका जघन्य से एक समय कम अनन्तर स्थिति बन्ध से लेकर सञ्ज्ञीपर्याप्तककी जघन्यस्थिति पर्यन्त स्थितिभेदों का प्रमाण है। इस प्रमाण को सञ्ज्ञीअपर्याप्तककी जघन्यस्थिति में से घटाने पर सञ्ज्ञीपर्याप्तक का जघन्यस्थिति बन्ध होता है, वह प्रमाण अन्तः

कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण जानना इस प्रकार स्थिति का कथन किया।

अब आबाधा का कथन करते हैं -

आबाधा का कथन अपने-अपने स्थितिस्थान के समान जानना। सञ्ज्ञीजीव सम्बन्धी मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा ७ हजारवर्ष प्रमाण अर्थात् आवली को तीनबार संख्यात से गुणा करें इतनी आवलीप्रमाण है और जघन्यआबाधा एकसमय कम एकमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) प्रमाण अर्थात् दोबार संख्यातसे गुणित आवलीप्रमाण है। उत्कृष्ट में से जघन्य को घटाने पर आबाधा के विकल्प प्राप्त होते हैं। एक-एक भेद में एक-एक समय बढ़ता है। अत: एकका भाग देने पर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलाने पर आबाधा के सर्व-भेदों का प्रमाण होता है। जिस प्रकार स्थिति के भेदों में संख्यातका भागदेकर बहुभाग-बहुभाग; और बहुभाग से एक भागपर्यन्त भेद कहे उसी प्रकार आबाधाके भेदों में संख्यातका भाग देकर बहुभाग, बहुभाग तथा एक भाग प्रमाण आबाधा के भेद तीनों अन्तरालों में जानना तथा जिस प्रकार स्थितिके भेदों में से घटा-घटाकर स्थितिका प्रमाण कहा उसी प्रकार यहाँ आबाधा के भेदों में से घटा-घटाकर स्थितिसम्बन्धी आबाधाओं का प्रमाण जानना। इस प्रकार सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय के विषय में विशेषकथन किया गया।

अथानन्तर जघन्यस्थितिबन्ध के स्वामी बताते हैं -

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊग सण्णी वा ॥१५१॥

अर्थ - पाँचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, पाँचअन्तराय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय का जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकश्रेणी में सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। पुरुषवेद एवं सञ्ज्वलनकषायचतुष्कका जघन्यस्थितिबन्ध क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्तीजीव के होता है। तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका जघन्यस्थितिबन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग का जघन्यस्थितिबन्ध असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियजीव के होता है। आयुकर्म की प्रकृतियों का जघन्यस्थितिबन्ध सञ्ज्ञी अथवा असञ्ज्ञीजीव के होता है।

आगे जघन्यादिरूप स्थितिके भेदों में जो सादि इत्यादिक भेद हैं उनको मूल प्रकृतियों में कहते हैं -

अजहण्णट्ठिदिबंधो चउव्विहो सत्तमूलपयडीणं।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अर्थ - आयुकर्म के बिना सात मूलकर्मों का अजघन्यस्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेद से चार प्रकार का है तथा आयुकर्मके बिना शेष सात मूलकर्मों का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्यस्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेद से दो प्रकार का ही है। आयुकर्म के चारों ही प्रकार का स्थितिबन्ध सादि एवं अध्रुवके भेद से दो प्रकार का ही है।

विशेषार्थ - आयुकर्म के अतिरिक्त शेष सात कर्मोंका जघन्यस्थितिबन्ध क्षपक- श्रेणि में होता है और उपशमश्रेणि में अजघन्यस्थितिबन्ध होता है, किन्तु उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में कषायोदय का अभाव होने से स्थितिबन्ध नहीं होता। वहाँ से गिरने पर पुनः अजघन्यस्थितिबन्ध होने लगता है। इस प्रकार अजघन्यस्थितिबन्ध सादि है तथैव वेदनीयकर्मका अजघन्यस्थितिबन्ध सादि है।

व्यवहारराशिस्थ जीवों में बन्धरूप मूलप्रकृतियों के स्थितिबन्ध की अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेदों की सन्दृष्टि -

ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २	उत्कृष्ट २
अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २	अनुत्कृष्ट २
जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २	जघन्य २
अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य २	अजघन्य ४	अजघन्य ४	अजघन्य ४

नोट - संदृष्टि में २ का अङ्क सादि-अध्रुव तथा ४ का अङ्क सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव को सूचित करता है।

अब उत्तरप्रकृतियों में विशेषता कहते हैं -

संजलणसुहुमचोदस-घादीणं चदुविधो दु अजहण्णो।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधावि दुधा ॥१५३॥

अर्थ - सञ्ज्वलनचतुष्क तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ज्ञानावरणादि

घातियाकर्मों की १४, इन १८ प्रकृतियों का अघन्यस्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेद से चार प्रकार का है और जघन्यादि तीन भेदों के सादि व अध्रुवरूप दो ही भेद हैं शेष १०२ प्रकृतियों के जघन्यादि चार भेदों के भी सादि और अध्रुवरूप दो भेद हैं।

बन्धरूप उत्तरप्रकृतियों के स्थितिबन्ध की अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेदों की सन्दृष्टि

प्रकृति	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
उत्तरप्रकृति १८	२	२	२	४
उत्तर प्रकृति १०२	२	२	२	२

नोट - सन्दृष्टि में २ का अङ्क सादि-अध्रुव और ४ का अङ्क सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेदों को सूचित करता है।

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

अर्थ - मनुष्यायु-तिर्यञ्चायु और देवायु के बिना शेष सर्व शुभ व अशुभप्रकृतियों की स्थिति अशुभरूप ही है। अतः इनप्रकृतियों को बहुकषायीजीव ही उत्कृष्टस्थिति के साथ बाँधता है एवं अल्पकषायीविशुद्धजीव के अल्पस्थितिके साथ इनप्रकृतियों का बन्ध होता है।

विशेषार्थ - तीन आयुके बिना शेष १४५ प्रकृतियों के स्थितिबन्ध में वृद्धि हानि संक्लेशपरिणामों की वृद्धि-हानि पर निर्भर है। संक्लेश, पाप अथवा अशुभरूप है अतः स्थितिबन्ध भी अशुभरूप है।

आगे आबाधा का लक्षण कहते हैं -

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदिउदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

अर्थ - कार्मणशरीर नामकर्म के उदय से योगद्वारा आत्मा में कर्मस्वरूप से परिणमता हुआ पुद्गलद्रव्य जबतक उदयरूप अथवा उदीरणारूप नहीं तो तावत्पर्यन्त कालको आबाधा (उदयआबाधा या उदीरणाआबाधा) कहते हैं।

विशेषार्थ - उदीरणा आबाधा बन्धावली या अचलावली अर्थात् एकावलीप्रमाण होती है। उदयआबाधा एक कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिबन्ध की १०० वर्ष प्रमाण होती है। बन्ध के समय इस उदयआबाधाकाल में निषेकरचना नहीं होती, किन्तु अचलावलीकाल के पश्चात् स्थितिअपकर्षण द्वारा इस उदयआबाधाकाल में भी निषेकरचना हो जाती है। इसलिए उदीरणा की आबाधा एकआवली मात्र है।

अब इस आबाधा को मूल प्रकृतियों में कहते हैं -

उदयं पडिसत्तण्हं आबाहा कोडाकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥१५६॥

अर्थ - एककोड़ाकोड़ीसागरप्रमाणस्थितिकी आबाधा सौवर्षप्रमाण जानना और शेष स्थितियों की आबाधा इसीके अनुसार प्रतिभाग अर्थात् त्रैराशिकविधि से जो-जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी जानना। यह क्रम आयुकर्म के बिना सातकर्मों की आबाधा के लिए उदय की अपेक्षा से है।

विशेषार्थ - एककोड़ाकोड़ीसागर स्थिति की १०० वर्ष उदयआबाधा है तो ७० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी कितनी आबाधा होगी? इस प्रकार त्रैराशिकविधि करने पर यहाँ प्रमाणराशि एककोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि १०० वर्ष, इच्छाराशि ७० कोड़ाकोड़ीसागर है। फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देने पर लब्धराशि का प्रमाण ७००० वर्ष आया, यह मिथ्यात्वप्रकृति की उत्कृष्ट उदयआबाधा जानना।

इसीप्रकार अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण इच्छाराशि करने पर अपनी-अपनी उदयआबाधाकाल का प्रमाण निकल जाता है। जिन कर्मों की ४० कोड़ाकोड़ीसागर की स्थिति है उनका ४००० वर्ष प्रमाण आबाधाकाल है तथा जिनकी ३० कोड़ाकोड़ीसागरस्थिति है उनकी ३००० वर्ष की आबाधा है इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों का भी आबाधाकाल जानना। तथा **"सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमबाहा"** इस सूत्र से पहले जो द्वीन्द्रियादि की स्थितिबन्धी आबाधा कही है, वही जाननी।

आगे अन्तः कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थिति की उदयआबाधा कहते हैं -

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥१५७॥

अर्थ - अन्तः कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिकी उदयआबाधा अन्तर्मुहूर्त है तथा सर्वजघन्यस्थितियों की उदयआबाधा से संख्यातगुणी हीन है।

विशेषार्थ - एककोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है, उसके १०,८०,००० मुहूर्त होते हैं। इतने मुहूर्तप्रमाण आबाधा एककोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी है तो एक मुहूर्त आबाधा कितनी स्थिति की होगी?

यहाँ प्रमाणराशि १०,८०,००० मुहूर्त, फलराशि १ कोड़ाकोड़ीसागर और इच्छाराशि १ मुहूर्त है। फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देने पर ९,२५,९२,५९२ $\frac{६४}{१०८}$ सागरप्रमाण स्थिति में १ मुहूर्त की आबाधा होती है। इसी प्रकार एकसागर की स्थिति आबाधा संख्यातउच्छ्वास मात्र होती है।

अथान्तर आयुकर्म की आबाधा कहते हैं -

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेयअद्धवोत्ति हवे।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

अर्थ - आयुकर्म की आबाधा कोटिपूर्वके तीसरे भागसे असंक्षेपाद्धाप्रमाणपर्यन्त है। आयुकर्म की आबाधा में प्रतिभाग (त्रैराशिक) का नियम नहीं है।

विशेषार्थ - आयुकर्म की उत्कृष्टआबाधा कोटिपूर्ववर्ष के तीसरेभाग प्रमाण तथा जघन्य आबाधा 'असंक्षेपाद्धा' प्रमाण है। यह काल भी आवली के संख्यातवें[1] भाग प्रमाण है अतः आयुकर्म की आबाधा इसी प्रकार है, अन्यकर्मों की स्थिति के समान नहीं है।

शंका - असंख्यातवर्ष की जिनकी आयु है उसके त्रिभागप्रमाण आबाधा क्यों नहीं कही?

समाधान - असंख्यातवर्ष की आयुवाले ऐसे देव-नारकी और भोगभूमिजकी तो ६ माह आयु शेष रहने पर आयु का बन्ध होता है तथा कर्मभूमिजमनुष्य-तिर्यञ्चके अपनी सम्पूर्ण आयु के अन्तिम त्रिभाग में आयु बँधती है। कर्मभूमिजकी उत्कृष्टआयु कोटिपूर्ववर्ष अर्थात् संख्यातवर्षप्रमाण है, अतः उसी का त्रिभाग उत्कृष्टआबाधाकाल कहा। त्रिभाग के आठ अपकर्षकालों में आयुका बन्ध हो सकता है, कदाचित् आठों अपकर्षों में आयुका बन्ध नहीं हुआ तो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके अवशेष रहने पर उत्तरभवकी आयुको अन्तर्मुहूर्तकाल के समयप्रबद्ध में बाँधकर निष्ठापन करते हैं तथा असंक्षेपाद्धाकालपर्यन्त विश्राम करते हैं उसके पश्चात् मरण होता है। अर्थात् आयुबंधके बाद विश्राम लिये बिना मरण नहीं होता। यह विश्राम काल जघन्य से भी एक अन्तर्मुहूर्त (अर्थात् असंक्षेपाद्धाकाल) प्रमाण है। फिर मरण हो सकता है। (धवल १०/२७८, ६/१६७, मुख्तार ग्रन्थपृष्ठ ५६९ चरम पेरा)

---

१. आयुकर्म की जघन्यआबाधा से संख्यातगुणा क्षुद्रभव कहा है। इससे स्पष्ट है कि असंक्षेपाद्धा आवलीका असंख्यातवाँभाग न होकर संख्यातवाँभाग है। (धवल पु. ११ पृ. २६९, २७३)

आगे उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कहते हैं -

आवलियं आबाहा उदिरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥१५९॥[1]

अर्थ - उदीरणाकी अपेक्षा साताकर्मों की आबाधा एकआवलीमात्र है और परभवसम्बन्धी बध्यमानआयुकी उदीरणा नियमसे नहीं होती।

विशेषार्थ - जो कर्म बँधता है वह एक आवली (अचलावली) प्रमाण कालतक उदय अथवा उदीरणारूप नहीं होता, आबाधाकाल के व्यतीत होने पर ही उदयरूप होता है। जो कर्म उदीरणारूप होता है वह बन्ध के पश्चात् एकआवलीप्रमाण कालके व्यतीत होने पर उदीरणारूप होता है अतः उदीरणा की अपेक्षा आबाधा एकआवलीप्रमाण है। आयु में भुज्यमानआयु की उदीरणा होती है। बध्यमान अर्थात् आगामीभव सम्बन्धी आयुकी उदीरणा नियमसे नहीं होती, उसका तो अवलम्बनकरण[2] होता है।

कर्म आवलीप्रमाण कालपर्यन्त तो जैसे बँधे हैं, वैसे ही रहते हैं। उदय, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदीरणारूप नहीं होते इसलिए इस आवलीको अचलावली कहते हैं, उस आवलि को छोड़कर पश्चात् उदयरूप प्रकृतियों के उदयावली से उपरितन स्थितियों के कर्मपरमाणुओं के समुदाय में से कितने ही कर्मपरमाणुओं का अपकर्षण करके उदयावली में लाता है जो आवलिकाल में उदय होकर खिर जाते हैं यही उदीरणा है और जो उपरितनस्थिति में दिये हैं वे ऊपर की स्थिति के अनुसार खिरते हैं तथा अन्तिम आवलीप्रमाण अतिस्थापनावली को छोड़कर जो कर्मपरमाणु हैं वे नानागुणहानिरूप सभी निषेकों में खिरते हैं।

उदयावली को प्राप्त उदीरणाद्रव्य किस प्रकार खिरता है उसे कहते हैं -

अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेय भागहारेण मज्झिमधणमवहरदे पचयं तं दो गुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेसहीणकमं....।

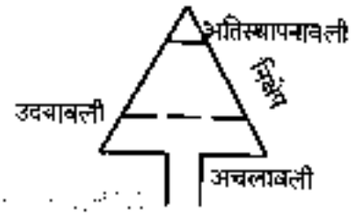
चयको दो गुणहानि प्रमाणसे गुणा करने पर आदिनिषेकमें दिये जाने वाले द्रव्य का प्रमाण प्राप्त होता है। द्वितीयादिक समयसम्बन्धी निक्षिप्तद्रव्य एक-एक चयप्रमाण कम है, इनसभी का विशेषस्वरूप गाथा १६२ के विशेषार्थ से जानना चाहिए।

---

१. यही गाथा आगे गाथा ९१८ के रूप में आई है।

२. परभव सम्बन्धी आयु की उपरिमस्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण द्वारा (आबाधा से बाहर) नीचे पतन करना अवलम्बनकरण है। (ध.पु. १० पृ. ३३०-३१)

उदयरूप प्रकृति के अपकर्षण का चित्र



अथानन्तर निषेक का लक्षण कहते हैं -

आबाहूणियकम्मट्ठिदि णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥१६०॥

अर्थ - अपनी-अपनी कर्मस्थिति में से आबाधाकाल को घटाने से जो काल शेष रहे उस काल के समयों का प्रमाण आयुबिना सातकर्मों के निषेक हैं। आयुकर्म के निषेक अपनी स्थितिप्रमाण होते हैं ऐसा नियमसे जानना।

विशेषार्थ - आयुबिना सातकर्मों की निषेकरचना आबाधाके बिना कर्मस्थिति प्रमाण जानना। प्रतिसमय जो कर्मपरमाणुओं का समूह है वह एक निषेक है। इस प्रकार विवक्षित कर्म की जितनी स्थिति बंधी है उसमें से आबाधाकालको घटाने पर जो काल शेष रहे उसके समयों का जो प्रमाण हो वही निषेकों का प्रमाण जानना। इस प्रकार सातकर्मों की निषेकरचना जाननी तथा आयुकर्मकी जितनी स्थिति हो वही निषेकों का प्रमाण जानना। यहाँ आबाधा नहीं घटाना, क्योंकि आयुकर्म की आबाधा तो पूर्वभव में ही पूर्ण हो गई, पीछे जो पर्याय धारण की वहाँ आयुकर्म की स्थिति जितने समय है उन सर्वसमयों में पहले समय से अन्तसमय पर्यन्त प्रतिसमय एक-एक निषेक क्रम से खिरते हैं अतः आयुकर्म की जितनी स्थिति हो उतने समयों का जो प्रमाण है वही आयुकर्म के निषेकों का प्रमाण जानना।

अब निषेकों का क्रम कहते हैं -

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं विदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥१६१॥

अर्थ - आबाधाकाल को छोड़कर जो अनन्तर समय है वह प्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक है उसमें बहुत द्रव्य दिया जाता है और दूसरे निषेक से दूसरी गुणहानि के प्रथमनिषेकपर्यन्त चयरूप हीनक्रम से द्रव्य दिया जाता है।

विदिये विदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणि अद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि हाणि अद्धद्धयं होदि॥१६२॥

अर्थ - द्वितीयगुणहानि के दूसरे निषेक में प्रथमगुणहानि के चयसे आधा चयरूप हानि होती है। इसी प्रकार प्रत्येकगुणहानि में आधा-आधा चय प्रमाण घटता द्रव्य जानना।

विशेषार्थ - गाथोक्त बात को अङ्कसन्दृष्टिद्वारा स्पष्ट करते हैं कि विवक्षित कर्म के परमाणु ६३००, आबाधाको छोड़कर स्थिति का प्रमाण ४८ समय, एक गुणहानिआयाम ८ समय, सर्वस्थिति में नानागुणहानि ६, दोगुणहानि १६ और अन्योन्याभ्यस्त राशि ६४ है। इनमें से प्रथमगुणहानि में ३२०० परमाणु तथा द्वितीयादिक गुणहानियों में आधे-आधे परमाणु हैं। जैसे - ३२००, १६००, ८००, ४००, २०० और १००। एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि (६४-१ = ६३) का सर्वद्रव्य (६३००) में भाग देने पर अन्तिमगुणहानि के (६३००÷६३ = १००) परमाणु प्राप्त होते हैं, इससे दूने-दूने परमाणु (द्रव्य) आदिकी गुणहानिपर्यन्त जानना तथा प्रथमगुणहानि के सर्वद्रव्य ३२०० में प्रथमगुणहानिके गच्छ ८ का भाग देनेपर ३२००÷८ = ४०० आए यह मध्यधन है इसमें एककम गच्छ के आधे प्रमाण $३\frac{१}{२}$ को निषेकभागहार १६ में से घटाने पर (१६-$३\frac{१}{२}$) $१२\frac{१}{२}$ शेष रहे, इसका भाग मध्य धन में देने पर (४००÷$१२\frac{१}{२}$) = ३२ आए, यह चय का प्रमाण है। इसको दोगुणहानि (१६) से गुणाकरने से ३२×१६ = ५१२ हुए सो यह प्रथमनिषेकका द्रव्य जानना। इससे एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादि निषेकसम्बन्धी द्रव्य होता है। ५१२-४८०-४४८-४१६-३८४-३५२-३२०-२८८। २८८ में से एकचय (३२) कम करनेपर (२८८-३२) २५६ होते हैं सो यह प्रथमगुणहानि के प्रथमनिषेक से आधा प्रमाण हुआ, इसको द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक जानना। यहाँ हानिरूप चयका प्रमाण पहले से आधे (१६) को तृतीयगुणहानि के प्रथमनिषेकपर्यन्त घटाना। २५६-२४०-२२४-२०८-१९२-१७६-१६० और १४४। १४४ में से एकचय (१६) घटाने पर १२८ आया सो यह द्वितीयगुणहानि के प्रथमनिषकसे आधा हुआ और यह तृतीयगुणहानिका प्रथमनिषेक है। यहाँ चयका प्रमाण आधा (८) जानना। इस प्रकार अन्तिमगुणहानिपर्यन्त सर्वधनका, निषेकों में द्रव्यका तथा चयका आधा-आधा प्रमाण जानना। इस अनुक्रम से सर्वद्रव्य ६३०० परमाणुओंकी निषेक रचना होती है। इसप्रकार इस दृष्टान्तसे यथायोग्य सर्वकर्मनिषेकों में कथन जानना।

बन्ध के समय यह समयप्रबद्ध की निषेकरचना का दृष्टान्त है। पश्चात् उत्कर्षण, अपकर्षण और संक्रमण के द्वारा उन निषेकपरमाणुओं की संख्या में हीनाधिकता हो जाती है। बन्ध के समय जितने परमाणुओं का एक निषेक बना था उतने ही परमाणु खिरें ऐसा कोई नियम नहीं है।

चय निकालने की विधि

निषेकहार में एकअधिक गुणहानिआयाम का प्रमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे उसको गुणहानिआयाम से गुणा करे। इसप्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होता है उसका भाग विवक्षितगुणहानि के द्रव्य में देने से विवक्षितगुणहानिके चयका प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे -

निषेकहार (१६) में एक अधिक गुणहानिआयाम (९) जोड़ने से २५ हुए, २५ के आधे, $१२\frac{१}{२}$ को गुणहानिआयाम ८ से गुणा करने से १०० होते हैं, इस १०० का भाग विवक्षित प्रथमगुणहानिके द्रव्य ३२०० में देने से प्रथमगुणहानिसम्बन्धी चयका प्रमाण प्राप्त होता है। इसीप्रकार द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी चयका प्रमाण १६, तृतीयका ८, चतुर्थका ४, पञ्चमका २ और अन्तिम गुणहानिका १ चय जानना।

चय का निषेकहार में गुणा करने से प्रथमनिषेकके परमाणुकी संख्या प्राप्त होती है। अर्थात् चय ३२×१६ निषेकहार = ५१२, यह संख्या प्रथमनिषेकद्रव्य की है। दूसरे समयमें ४८०, तीसरेसमय में ४४८, चतुर्थसमय में ४१६, पाँचवेंसमय में ३८४, छठे समयमें ३५२, सातवें समय में ३२०, आठवें समय में २८८ ये सर्व मिलकर ३२०० हुए। एक समय के परमाणुसमूहको निषेक कहते हैं।

निषेकरचनासम्बन्धी सन्दृष्टि

समय	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठ	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पञ्चम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
सर्व ८ समय	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

॥इति स्थितिबन्धप्रकरण सम्पूर्ण॥

अथ अनुभागबन्धप्रकरण

अब अनुभागबन्ध को २२ गाथाओं से कहते हैं–

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥१६३॥

अर्थ - सातावेदनीय शुभप्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामों से होता है और असातावेदनीयादि अशुभ (पाप) प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संक्लेशपरिणामों से होता है तथा इनसे विपरीत परिणामों से जघन्यअनुभागबन्ध होता है अर्थात् शुभप्रकृतियों का संक्लेशपरिणामों से और अशुभप्रकृतियों का विशुद्धपरिणामों से जघन्यअनुभागबन्ध होता है। इस प्रकार सभी प्रकृतियों का अनुभाग बन्ध जानना। मन्दकषायरूप तो विशुद्धपरिणाम तथा तीव्रकषायरूप संक्लेशपरिणाम होते हैं।[1]

---

[1] **शंका** - "शुभप्रकृति का संक्लेश परिणामों से जघन्य अनुभागबन्ध होता है और विशुद्धपरिणामों से पाप-प्रकृतिका जघन्य-अनुभागबन्ध होता है" ऐसा गोम्मटसार कर्मकांड गाथा १६३ की बड़ी टीका के पृ. १९९ पर लिखा है। इसमें शंका यह है कि प्रथम तो संक्लेश-परिणामों से शुभप्रकृति का बन्ध ही नहीं होता, क्योंकि संक्लेशपरिणामों को पाप परिणाम कहते हैं और पापपरिणामों से शुभका बन्ध नहीं होता, पापपरिणामों से पाप ही का बन्ध होता है उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

समाधान - शुभ परिणामों से शुभप्रकृतियों का ही आस्रव व बन्ध होता है और अशुभ परिणामों से पापप्रकृतियों का ही आस्रव और बंध होता है, ऐसा एकान्त नियम नहीं है। क्योंकि ४७ ध्रुवबन्धीप्रकृतियों में पुण्य और पाप दोनों प्रकार की प्रकृतियाँ हैं जिनका शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणामों में निरन्तर आस्रव व बंध होता रहता है। वे ध्रुवबन्धी ४७ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं -

णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया।
भय कम्म दुगुंच्छा वि य तेजा कम्मं च वण्णचदू॥
अगुरुअलहु-उवघादं णिमिणं णामं च होंति सगदालं।
बंधो चउव्विियप्पो ध्रुवबंधीणं पयडिबंधो॥ (धवल पु. ८ पृ. १७)

अर्थ - ज्ञानावरण और अंतराय की दश, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलहकषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-शरीर, कार्माणशरीर, वर्णादिक-चार, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण नामकर्म, ये सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं।

इन ४७ ध्रुवबन्धी प्रकृतियों में से तैजसशरीर, कार्माणशरीर, अगुरुलघु और निर्माण ये चार पुण्य (शुभ) प्रकृतियाँ हैं और शेष ४३ अशुभ (पाप) प्रकृतियाँ हैं। (सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८ सूत्र २५ व २६)।

इस प्रकार अशुभ परिणामों में उपर्युक्त चार शुभप्रकृतियों का तो अवश्य ही बंध होता है। इनके अतिरिक्त औदारिक या वैक्रियिकशरीर, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, बादरपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, तिर्यंचायु का भी यथायोग्य बन्ध सम्भव है। जिनमें जघन्य-अनुभागबन्ध होता है। शुभ परिणामों में उपुर्यक्त ४३ ध्रुवबन्धी अशुभ-प्रकृतियों का बन्ध होता है, जिनमें जघन्यअनुभागबन्ध होता है।

आगे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध के स्वामी कहते हैं -

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।
वासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कड संकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

अर्थ - पूर्वकथित (गाथा ४१-४२ में) ४२ पुण्यप्रकृतियों का तीव्रअनुभागबन्ध विशुद्धतारूप उत्कृष्टपरिणामवाले जीवके होता है और (गाथा ४३-४४ में कथित) असातादि ८२ अशुभप्रकृतियोंका उत्कृष्टअनुभागबन्ध तीव्रसंक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिजीव के होता है।

यहाँ वर्णादिचार प्रकृतियों को प्रशस्तप्रकृतियों में भी लिया गया है और अप्रशस्त में भी गिना गया है। इसकारण बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० की बजाय १२०+४ = १२४ हो जाती है।

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्मादिट्ठिस्स सेसाओ ॥१६५॥

अर्थ - उक्त ४२ प्रकृतियों में से आतप, उद्योत, मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुका तीव्रअनुभागबन्ध विशुद्धमिथ्यादृष्टिके होता है तथा अवशेष ३८ प्रकृतियों का तीव्र अनुभाग बन्ध विशुद्धसम्यग्दृष्टि के होता है।

मणुओरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा ॥१६६॥

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जिन ३८ प्रकृतियों का तीव्र (उत्कृष्ट) अनुभागबन्ध कहा था उन में से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहननका तीव्र अनुभागसहित बन्ध अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करने के लिए विशुद्धपरिणामी असंयतसम्यग्दृष्टिदेव-नारकीजीव जब तीनकरण करता है तब उनमें से अनिवृत्तिकरण के अन्तसमय में करता है तथा देवायुको तीव्रअनुभागसहित अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव बाँधता है। अवशेष ३२ प्रकृतियों को तीव्रअनुभागसहित क्षपकश्रेणीवालाजीव बाँधता है।

"शुभ-परिणाम-निर्वृत्तो योगः शुभः। अशुभ-परिणाम-निर्वृत्तश्चाशुभः। न पुनः शुभाशुभ-कर्म-कारणत्वेन। यद्येवमुच्यते शुभयोग एव न स्यात्, शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिबन्ध-हेतुत्वाभ्युपगमात्।" (सर्वार्थसिद्धि ६/३)

अर्थ - जो योग शुभपरिणामों के निमित्त से होता है वह शुभ योग है और जो योग अशुभ परिणामों के निमित्त से होता है वह अशुभ योग है। शायद कोई यह माने कि शुभ और अशुभकर्मका कारण होने से शुभ और अशुभयोग होता है सो बात नहीं है, यदि इस प्रकार इनका लक्षण कहा जाता है तो शुभयोग ही नहीं हो सकता क्योंकि शुभयोग को भी ज्ञानावरणादि कर्मों के बन्ध का कारण माना है।

अब उन ३२ प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

उवघादट्ठवीसतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे।
संमेलिदे हवंति हु खवगस्सऽवसेसबत्तीसा॥१६७॥

अर्थ - अपूर्वकरण के ६ठे भाग में ३० प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है उसमें से एक उपघातप्रकृतिबिना शेष २९ और उच्चगोत्र, यशकीर्ति तथा सातावेदनीय ये सर्व (२९+३) ३२ प्रकृतियां क्षपकश्रेणीवाले के पूर्व में कहीं सो जानना।

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिये।
एइंदियआदावं थावरणामं च सुरमिच्छे॥१६८॥

अर्थ - ८२ अप्रशस्त और आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु इन ८६ प्रकृतियों का तीव्रअनुभागसहित बन्ध मिथ्यादृष्टिजीवके होता है, उनमें मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियों में से सूक्ष्मादि अन्तिम ९ प्रकृतियों का तीव्रअनुभाग बन्ध संक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिमनुष्य व तिर्यञ्च करते हैं और मन्दकषायवाले मनुष्य व तिर्यञ्च मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुके तीव्रअनुभाग को बाँधते हैं। आयु के अन्तिम छह महीने में मिथ्यादृष्टिदेव संक्लेशपरिणामों से एकेन्द्रिय और स्थावर प्रकृतिका तीव्रअनुभाग को बाँधते हैं। आयु के अन्तिम छह महीने में मिथ्यादृष्टिदेव संक्लेशपरिणामों से एकेन्द्रिय और स्थावर प्रकृतिका तीव्रअनुभाग बन्ध करता है एवं विशुद्धपरिणामों से आतपप्रकृतिका तीव्रअनुभागबन्ध करता है।

नोट - महाबन्ध पु. ४ पृ. १८९ पर आतपके उत्कृष्टअनुभागबन्ध के स्वामी मनुष्य, तिर्यञ्च और देव इन तीनों को कहा है।

उज्जोवो तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदि मिच्छे किलिट्ठेय॥१६९॥

अर्थ - तमस्तमनामक सप्तमनरक में उपशमसम्यक्त्व के सम्मुख हुआ विशुद्ध मिथ्यादृष्टिजीव उद्योतप्रकृति को तीव्रअनुभागसहित बाँधता है, क्योंकि अतिविशुद्धता में उद्योतप्रकृति का बन्ध नहीं होता है। असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी को तीव्रअनुभागसहित तीव्रसंक्लेशपरिणामवाले मिथ्यादृष्टिदेव, नारकी बाँधते हैं तथा अवशिष्ट ६८ प्रकृतियों को तीव्र अनुभाग सहित चारोंगति के संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिजीव बाँधते हैं।

विशेषार्थ - गाथा १६४ से १६९ तक उत्कृष्टअनुभागबन्ध के स्वामी बताए हैं उसका विशेष कथन इस प्रकार है -

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पांच नोकषाय, हुण्डकसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियों के उत्कृष्टअनुभागबन्ध का स्वामी पञ्चेन्द्रिय, सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त साकार-जागृत, नियम से उत्कृष्टसंक्लेशयुक्त और उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करने वाला अन्यतर चार गतिका जीव है। सातावेदनीय,यशःकीर्ति और उच्चगोत्र के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी क्षपकसूक्ष्मसाम्परायसंयत और अन्तिम समय में उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर जीव है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान और चार संहनन का भङ्ग मतिज्ञानावरण के समान है, किन्तु विशेषता इतनी है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाले जीवके कहना चाहिए। नरकायु, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य या सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीव है। तिर्यञ्च व मनुष्यायु के सम्बन्ध में भी यही कथन है, किन्तु विशेषता इतनी है कि यहाँ तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला जीव कहना चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर अप्रमत्त संयतजीव है। नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीव है। मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियम से उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर देव और नारकी तिर्यञ्चगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी है। सम्यग्दृष्टि साकार, जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर देव और नारकी जीव मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, आहारकअङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुस्वर, सुभग और आदेय, निर्माण व तीर्थङ्कर के उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी अन्यतर क्षपकअपूर्वकरण जो परभवसम्बन्धी नामकर्म की प्रकृतियों का अन्तिम समय में उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला है वह जीव है। एकेन्द्रियजाति और स्थावर के उत्कृष्ट अनुभागबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियम से उत्कृष्टसंक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर सौधर्म और ऐशानकल्प का देव है। आतपप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी सञ्ज्ञी, साकार, जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्धपरिणामवाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करने वाला अन्यतर तीन गतिका जीव

है। उद्योतप्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का स्वामी मिथ्यादृष्टि, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध, तदनन्तर समय में सम्यक्त्वको प्राप्त होने वाला और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाला अन्यतर सप्तमपृथ्वीका नारकी जीव है।[1]

अब जघन्यअनुभागबन्ध के स्वामी कहते हैं -

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेद ठाणम्हि ॥१७०॥

अर्थ - अशुभवर्णादि चार, उपघात और क्षय होने वाली घातिया कर्मों की पच्चीस अर्थात् ज्ञानावरणादि ५, अन्तराय ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद तथा सञ्ज्वलन की ४ कषाय इन ३० प्रकृतियों की जहाँ-जहाँ बन्धव्युच्छित्ति होती है, वहां क्षपकश्रेणीवाले के जघन्यअनुभागबन्ध होता है।

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोधादि।
देसे तदिय कसाया संजमगुणपच्छिदे सोलं ॥१७१॥

अर्थ - अनन्तानुबन्धी की चार कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन और मिथ्यात्व ये आठ प्रकृति मिथ्यात्वगुणस्थान में, अप्रत्याख्यानकी चार कषाय असंयत में, प्रत्याख्यानकी चार कषाय देशसंयत में। इस प्रकार इन गुणस्थानों में ये १६ प्रकृतियाँ संयमगुण को धारण करने के सम्मुख हुआ है। अर्थात् तदन्तर समय में संयम को प्राप्त करेगा ऐसा विशुद्ध परिणामी जघन्यअनुभागसहित बाँधता है।

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं।
णरतिरिये सुहुमतियं वियल वेगुव्वछक्काओ ॥१७२॥

अर्थ - आहारकशरीर व आहारकअङ्गोपाङ्ग इन दो शुभप्रकृतियों को प्रमत्तगुणस्थान के सम्मुख हुआ संक्लेशपरिणामवाला अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव जघन्यअनुभागसहित बाँधता है। अरति और शोकको तत्प्रायोग्यविशुद्ध प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव जघन्यअनुभागसहित बांधता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियकद्विक का जघन्यअनुभागसहित बन्ध मनुष्य व तिर्यञ्च करता है।

नोट - देवायु व नरकायु का बन्ध मनुष्य व तिर्यञ्च करता है तथा तिर्यञ्च व मनुष्यायुका बन्ध लब्ध्यपर्याप्तक करता है।

---

१. महाबन्ध पु. ४ पृ. १८८-१८९ पेरा नं. ४०९।

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं॥१७३॥

अर्थ - उद्योत और औदारिकद्विक जघन्यअनुभागसहित संक्लिष्टदेव और नारकीके बँधती है। इनमें से उद्योत प्रकृतिका बन्ध अतिविशुद्धपरिणामीदेवों के नहीं होता अतः संक्लेशपरिणामी के ही जघन्यअनुभागसहित बँधती है इसी कारण उद्योतप्रकृति प्रशस्त है। सप्तमनरक में सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्धनारकीके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रप्रकृति जघन्यअनुभागसहित बँधती है। स्थावर व एकेन्द्रिय का जघन्यअनुभागबन्ध नरकबिना शेष तीनगतिवाले तीव्रविशुद्ध व संक्लेशरहित मध्यमपरिणामी जीव करते हैं।

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्हि।
चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णस्स दुवे विसोहीये॥१७४॥

अर्थ- आतपप्रकृति जघन्यअनुभागसहित भवनत्रिक और सौधर्मयुगल वाले संक्लेशपरिणामीदेवों के बँधती है। तीर्थङ्करप्रकृति द्वितीय या तृतीयनरक जाने के सम्मुख तथा मिथ्यात्वके सम्मुख असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्य के जघन्यअनुभागसहित बँधती है तथा १५ प्रकृतियाँ चारों गति के संक्लेशीजीवों के एवं दो प्रकृतियाँ चारों गति के विशुद्धपरिणामीजीवों के जघन्यअनुभागसहित बँधती हैं।

अब उन १५ और २ प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये॥१७५॥

अर्थ - परघात, उच्छ्वास, तैजस, कार्मण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभरूप वर्णचतुष्क, निर्माण, पञ्चेन्द्रिय, अगुरुलघु ये १५ प्रशस्त प्रकृतियाँ चारों गति सम्बन्धी संक्लिष्ट जीवों के तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदरूप दो अप्रशस्तप्रकृतियाँ चारोंगति के विशुद्धपरिणामी जीव जघन्यअनुभागसहित बाँधते हैं।

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियत्तमज्झिमो य जदि।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छादिट्ठी दु तेवीसं॥१७६॥

अर्थ - आगे गाथासूत्र में वक्ष्यमाण जो ३१ प्रकृतियाँ हैं उनमें से प्रथम आठ प्रकृतियों को

अपरिवर्तमान मध्यमपरिणामी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टिजीव जघन्य अनुभागसहित बाँधता है और शेष २३ प्रकृतियों को परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीव ही जघन्यअनुभागसहित बाँधता है।

अथानन्तर उन ३१ प्रकृतियों के नाम कहते हैं -

थिरसुहजसससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥१७७॥

अर्थ - स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, सातावेदनीय व असातावेदनीय ये आठ प्रकृति परिवर्तमान[1] मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके तथा उच्चगोत्र ६ संस्थान, ६ सहनन, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति व देवगत्यानुपूर्वी, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय ये २३ प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीव के जघन्यअनुभागसहित बँधती हैं। इस प्रकार जघन्यअनुभागसहित बँधनेवाली ये ३१ प्रकृतियाँ हैं।[2]

विशेषार्थ - परिवर्तमानमध्यमपरिणाम और अपरिवर्तमानमध्यमपरिणाम का लक्षण कहते हैं-

अणुसमयं केवलं वट्टमाणा हीयमाणा च जे संकिलेस्सविसोहिपरिणामा ते अपरियत्तमाणा णाम। जेत्थ पुण ठाविदूण परिणामंतरं गंतूणं एगहोदि आगमणं संभवदि ते परियत्तमाणा णाम। तत्थ उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णा तिविहा परिणामा ण तत्थ सव्व विसुद्धपरिणामेहिं य जहण्णो अणुभागो होदि। अप्पसत्थपयडीण अणुभागदो अणंतगुणपसत्थपयडी अणुभागस्स अणंतगुणवड्ढिप्पसंगादो ण सव्वसंकिलेट्ठपरिणामेहिं य तिव्वसंकिलेस्सेण असुहाणं पयडीणं अणुभागवड्ढिप्पसंगादो तम्हा जहण्णुक्कस्सपरिणाम-णिराकडं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं।

अर्थात् जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धि से प्रतिसमय बढ़ते ही जावें या घटते ही जावें पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त न हो उन्हें अपरिवर्तमानपरिणाम कहते हैं तथा जो परिणाम एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होकर पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमानपरिणाम हैं।

उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से परिणाम तीन प्रकार के हैं। यहाँ सर्वोत्कृष्ट विशुद्धपरिणामों से जघन्यअनुभागबन्ध नहीं होता, क्योंकि अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग से अनन्तगुणा अनुभाग प्रशस्तप्रकृतियों का है। यह अनन्तगुणीवृद्धिका प्रसङ्ग है। (सर्वोत्कृष्टविशुद्धपरिणामों से शुभप्रकृतियोंका उत्कृष्टअनुभागबन्ध होता है, किन्तु यहाँ जघन्यअनुभागबन्ध का कथन है, अतः सर्वोत्कृष्टविशुद्धपरिणामों

१. महाबन्ध पु. ४ पृ. ११२ पर भी परिवर्तमान है, जो उचित है।

२. गाथा १७० से १७७ सम्बन्धी विशेष कथन महाबन्ध पु. ४ पृ. २१२-२१५ पर देखना चाहिए।

का ग्रहण नहीं करना तथा सर्वोत्कृष्टपरिणामों से भी जघन्यअनुभागबन्ध नहीं होता, क्योंकि तीव्रसंक्ले से अशुभप्रकृतियोंका अनुभाग वृद्धिरूप होता है। यहाँ जघन्यअनुभाग का कथन होने सर्वोत्कृष्टसंक्लेशपरिणामों का भी ग्रहण नहीं करना।) इस प्रकार जघन्य अथवा उत्कृष्ट परिणामों निराकरण करने के लिए परिवर्तमान मध्यमपरिणामों से पूर्वोक्त प्रकृतियों का जघन्यअनुभागबन्ध होत है।

आगे मूलप्रकृतियों के उत्कृष्टादि अनुभागके सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव भेदों को कहते हैं -

घादीणं अजहण्णोऽणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो, गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

अर्थ - घातियाकर्मों का अजघन्यअनुभागबन्ध वेदनीय व नामकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध और गोत्रकर्म का अजघन्य व अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सादि, अनादि, ध्रुव एवं अध्रुवरूप है तथा घातियाकर्मों का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट व जघन्यअनुभाग, वेदनीय व नामकर्मका उत्कृष्ट, अजघन्य व जघन्यअनुभाग, गोत्रकर्मका उत्कृष्ट, जघन्यअनुभाग एवं आयुकर्म का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य व जघन्यअनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदों से दो प्रकार है।

मूलप्रकृतियों में अनुभागसम्बन्धी सन्दृष्टि

अनुभाग बन्ध के भेद	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	२	२	४	२	२	४	४	२
अजघन्य	४	४	२	४	२	२	४	४
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२

ध्रुवप्रकृतियों में प्रशस्त, अप्रशस्त एवं अध्रुवप्रकृतियों के जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट व उत्कृष्ट अनुभागसम्बन्धी सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवभेदों का कथन करते हैं -

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुवियाणं।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७९॥

अर्थ - प्रशस्तध्रुव प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट तथा अप्रशस्तध्रुव प्रकृतियों का अजघन्यअनुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव के भेद से चार प्रकार का है। प्रशस्तध्रुवप्रकृतियों का उत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य एवं अप्रशस्तध्रुवप्रकृतियों का जघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट तथा अध्रुवप्रकृतियों का जघन्यादि चारों प्रकार का अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव के भेद से दो प्रकार का है।

विशेषार्थ - तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण ये चार प्रकृतियाँ प्रशस्तध्रुवबन्धी हैं। ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा और उपघात ये ३९ अप्रशस्तध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं तथा शेष ७३ प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धी हैं। सामान्यरूप वर्णादि ४ तो ध्रुवबन्धी हैं, किन्तु प्रशस्त व अप्रशस्तरूप वर्णादि ४ ध्रुवबन्धी नहीं हैं।

यहाँ वर्णचतुष्ककी शुभ-अशुभरूप दोनों ही स्थानों पर गणना होने से १२०+४ = १२४-५१ (ध्रुवबन्धी) = ७३ प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धी जानना। वैसे तो बन्धयोग्य प्रकृति १२० ही हैं।

उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी अनुभागबन्ध की सन्दृष्टि

अनुभागबन्ध के भेद	प्रशस्तध्रुव प्रकृति ४	अप्रशस्तध्रुव प्रकृति ३९	अध्रुवप्रकृति ७३
उत्कृष्ट	२	२	२
अनुत्कृष्ट	४	२	२
अजघन्य	२	४	२
जघन्य	२	२	२

नोट - यहाँ २ का अङ्क सादि व अध्रुव एवं ४ का अङ्क सादि, अनादि, ध्रुव, और अध्रुव को सूचित करता है।

अथानन्तर अनुभागबन्ध का लक्षण घातियाकर्मों में कहते हैं -

सत्ती य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

अर्थ - घातियाकर्मोंकी शक्ति (स्पर्धक) लता, काष्ठ, हड्डी और पाषाण के समान है तथा दारुभाग के अनन्तवेंभागपर्यन्त शक्तिरूपस्पर्धक देशघाति हैं। शेष बहुभाग से शैलभागपर्यन्त स्पर्धक सर्वघाति हैं।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातियाकर्मों की शक्ति (स्पर्धक) लता, दारु, अस्थि, शैलकी उपमा के समान चार प्रकार की है। जिस प्रकार लता आदि में क्रम से अधिक-अधिक कठोरता पाई जाती है, उसी प्रकार इन कर्म स्पर्धक अर्थात् कर्मवर्गणाके समूहों में अपने फल देने की शक्तिरूप अनुभाग क्रम से अधिक-अधिक पाया जाता है।

लताभाग से दारुभाग के अनन्तवंभागपर्यन्त स्पर्धकदेशघाति हैं, इनके उदय होने पर भी आत्मा के गुण एकदेशरूप से प्रगट रहते हैं तथा दारुभाग के अनन्तभागों में से एक भाग बिना शेष बहुभाग से शैलभागपर्यन्त जो स्पर्धक हैं वे सर्वघाति हैं, क्योंकि इनके उदय रहने पर आत्मगुणों का एक अंश भी प्रगट नहीं होता अथवा पूर्णगुण प्रकट नहीं होते। जैसे- जहाँ अवधिज्ञान का अंश भी प्रकट न हो वहाँ अवधिज्ञानावरण के सर्वघातिस्पर्धकों का उदय जानना चाहिए तथा जहाँ पर अवधिज्ञान और अवधिज्ञानावरण भी पाया जाता है वहाँ अवधिज्ञानावरण के देशघातिस्पर्धकों का उदय जानना। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों में भी कथन समझना चाहिए।

अब मिथ्यात्वप्रकृति में विशेषता बताते हैं -

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारु अणंतिमे मिस्सं।
सेसा अणंतभागा अट्ठिसिलाफड्डया मिच्छे॥१८१॥

अर्थ - दर्शनमोहनीयकर्मके लताभाग से दारुभाग के अनन्तभागों में से एक भाग पर्यन्त देशघातिके सभी स्पर्धक सम्यक्त्वप्रकृतिरूप हैं तथा दारुभाग के एक भाग बिना शेष बहुभाग के अनन्तखण्ड करके उनमें से अधस्तन एक खण्ड प्रमाण भिन्नजाति के सर्वघाति स्पर्धक मिश्रप्रकृतिरूप जानना तथा शेष दारुभाग के बहुभाग में एक भागबिना बहुभाग से अस्थिभाग-शैलभाग पर्यन्त जो स्पर्धक हैं वे सर्वघातिमिथ्यात्वरूप जानने।

विशेषार्थ - माना कि दर्शनमोहनीयकर्मकी अनुभागशक्ति के स्पर्धक १२० हैं और अनन्त की संख्या ४ मानी, लताभाग की शक्ति के स्पर्धक ८, दारुभाग के स्पर्धक १६, अस्थिभाग के स्पर्धक ३२ तथा शैलभाग के स्पर्धक ६४ हैं। अर्थात् ८+१६+३२+६४ = १२० ये दर्शनमोहनीयकर्म की अनुभागशक्ति के स्पर्धक हैं। इनमें से मिथ्यात्वप्रकृति को कितना भाग मिलेगा? मिश्र को कितना मिलेगा? सम्यक्त्वप्रकृति को कितना भाग मिलेगा? लता भाग के ८+ दारुभाग का अनन्तवांभाग अर्थात् १६÷४ = ४ इस प्रकार ८+४ = १२ भाग सम्यक्त्व प्रकृति को मिलेंगे। मिश्रप्रकृतिको दारुभाग के १६-४ = १२ भाग जो शेष था उसका अनन्तवांभाग अर्थात् १२÷४ =३ भाग। मिथ्यात्वप्रकृतिको दारुभाग में से ९ भाग बचे तथा अस्थिभाग की अनुभाग शक्ति के स्पर्धक ३२ व शैलभागके के स्पर्धक ६४ मिलाकर (९+३२+६४ = १०५) स्पर्धक मिलेंगे।

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं।
चदुविहभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८२॥

अर्थ - आवरणों में देशघातिकी ७ प्रकृतियाँ, अन्तराय की पाँच, सञ्ज्वलनकी चार और एक पुरुषवेद ये १७ प्रकृतियाँ शैलादि चारों प्रकार के भावरूप परिणमन करती हैं और शेष सर्वप्रकृतियाँ लताबिना शेष तीनप्रकार से परिणत होती हैं।

विशेषार्थ - १७ प्रकृतियाँ शैल, अस्थि, दारु और लता इन चार भावरूप परिणत होती हैं, जहाँ शैलभाग नहीं होता वहाँ अस्थि, दारु, लतारूप परिणत होती हैं तथा जहाँ अस्थिभाग भी नहीं है वहाँ दारु और लतारूप ही प्रवर्तित होती हैं एवं जहाँ दारुभाग भी नहीं है वहाँ केवल लतारूप ही परिणत होती है तथा इन १७ प्रकृतियों के बिना अवशेष प्रकृतियों में से सम्यक्त्व और मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृतिबिना घातियाकर्म की समस्तप्रकृतियों के तीन प्रकार के भाव जानना। केवलज्ञानावरण व केवलदर्शनावरण, ५ निद्रा और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभरूप १२ कषाय के सर्वघातिस्पर्धक ही हैं, देशघाति नहीं है, अतः इनके स्पर्धक शैल, अस्थि और दारुके अनन्तबहुभागरूप हैं तथा शैलके बिना २ प्रकार एवं अस्थिके बिना १ प्रकार भी पाए जाते हैं इसलिए तीनों प्रकार के भावरूप हैं। पुरुषवेदके बिना ८ नोकषाय शैल, अस्थि, दारु और लतारूप चारों प्रकार के अनुभाग से सहित हैं। इनमें से शैल, अस्थि, दारु व लता तथा अस्थि, दारु व लतारूप अथवा दारु व लतारूप से तीन प्रकार परिणत होती हैं केवल लतारूप से कदाचित् भी परिणत नहीं होती हैं।

अथानन्तर अघातियाप्रकृतियों में अनुभाग का कथन करते हैं -

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेदव्वा ॥१८३॥

अर्थ - शेष अघातियाकर्म की प्रकृतियाँ घातियाकर्मों के समान प्रतिभागयुक्त हैं इनके स्पर्धक भी चार भावरूप ही परिणत होते हैं। इन अघातियाकर्मों की प्रकृतियाँ पुण्य व पापरूप होती हैं। शेष घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं।

आगे प्रशस्त व अप्रशस्त अघातियाकर्मों के स्पर्धक (शक्ति) को अन्य नामों से कहते हैं -

गुडखण्डसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥१८४॥[1]

१. परन्तु इस विषय में अन्यत्र इस प्रकार लिखा है कि गुड़ आदि भेद ४२ प्रशस्त प्रकृतियों के होते हैं। तथा शेष ३७ अप्रशस्त प्रकृति एवं ४७ घातिकर्म की प्रकृति इनके अनुभाग नीमकांजीर आदि रूप कहे हैं। प्रा.पं. सं. पृ. २७७ ज्ञानपीठ कृपया देखें स्वा. का. अनु. गाथा ३०९, पृष्ठ २१९

अर्थ - अघातियाकर्मों की प्रशस्तप्रकृतियों में शक्ति (स्पर्धक) के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत के समान हैं। इनमें क्रम से अधिक-अधिक मिठास है तथा अप्रशस्तप्रकृतियों के निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहल के समान अनुभाग है।

विशेषार्थ - अघातियाकर्मों की प्रशस्तप्रकृतियों के प्रतिभाग अर्थात् शक्ति के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत के समान है। जैसे गुड़, खाण्ड, शर्करा (मिश्री) और अमृत एक दूसरे से अधिक-अधिक सुख के कारण यानि मिष्ट हैं उसी प्रकार गुड़भाग, खाण्डभाग, शर्कराभाग और अमृतभागरूप प्रशस्तप्रकृतिके स्पर्धक अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं तथा अप्रशस्तप्रकृतियों के प्रतिभाग निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहल के समान है। जिस प्रकार निम्ब, काञ्जीर, विष और हलाहल एक दूसरे की अपेक्षा अधिक-अधिक कटु हैं उसी प्रकार निम्बभाग, काञ्जीरभाग, विषभाग व हलाहल भागरूप अप्रशस्तप्रकृतियों के स्पर्धक दुःख के कारण हैं।

यहाँ प्रशस्तप्रकृतियाँ ४२ और अप्रशस्तप्रकृतियाँ ३७ हैं। वर्णादिचार प्रकृतियाँ प्रशस्त और अप्रशस्त दोनोंरूप से गिनी गई हैं। प्रशस्तप्रकृति गुड़, खाण्ड, शर्करा व अमृत या गुड़, खाण्ड, शर्करा अथवा गुड़ व खाण्ड, इन तीनभावरूप तथा अप्रशस्तप्रकृतियाँ निम्ब, काञ्जीर, विष, हलाहल या निम्ब, काञ्जीर, विष अथवा निम्ब, काञ्जीर, इन तीनभावरूप परिणत होती हैं।

॥ इति अनुभाग प्रकरण ॥

❋❋❋

अथ प्रदेशबन्धप्रकरण

अथान्तर प्रदेशबन्धको ३३ गाथाओं द्वारा कहते हैं -

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं॥१८५॥

अर्थ - एकक्षेत्र अवगाढ़रूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य अनादि अथवा सादि या उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य है उसे यह जीव सर्वप्रदेशों से अपने-अपने निमित्त से बाँधता है।

विशेषार्थ - कर्मरूपपुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ संश्लेषसम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध कहलाता है। यहाँ सूक्ष्मनिगोदियाजीव की घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभाग जघन्यरूप अवगाहना को एक जघन्यक्षेत्र जानना चाहिए।

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवी ॥१८६॥

अर्थ - एकशरीर से रुके हुए स्थान (आकाश) को एकक्षेत्र कहते हैं और शेष सर्वलोकके क्षेत्र को अनेकक्षेत्र कहते हैं। अपने-अपने क्षेत्रानुसार ठहरे हुए पुद्गल द्रव्य का प्रमाण त्रैराशिक से समझ लेना। यहाँ एक शरीर शब्द से प्राय: जघन्यशरीर लेना, क्योंकि निगोद शरीरवाले जीव अनन्त हैं। इसी कारण मुख्यता से घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्र समझना।

विशेषार्थ - यद्यपि शरीर की अवगाहना जघन्यअवगाहना से उत्कृष्टपर्यन्त अथवा समुद्घात की अपेक्षा लोकपर्यन्त है। यहाँ जघन्य अवगाहना का आदि भेद तो घनाङ्गुलको पल्यके असंख्यातवें भाग का भागदेने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण है और अन्तिम भेद लोकप्रमाण है। अन्तिम में से आदि को घटाने पर और उसमें एक मिलने से समस्तअवगाहना के भेद हो जाते हैं तथा बहुत जीव घनाङ्गुल के असंख्यातवें भागप्रमाण शरीर की अवगाहना को धारण करने वाले हैं, अत: मुख्यतासे एक क्षेत्र का प्रमाण घनाङ्गुलके असंख्यातवें भाग मात्र कहा है इतने प्रमाण क्षेत्र के बहुत प्रदेश हैं, अत: प्रदेशों की अपेक्षा ये भी अनेकक्षेत्र हैं, तथापि विवक्षासे यहाँ इस क्षेत्र को एक क्षेत्र कहा है। इस क्षेत्र को छोड़कर अवशेष लोकाकाश का सर्वक्षेत्र अनेकक्षेत्र है। इन-इन क्षेत्र में रहने वाले रूपी पुद्गलद्रव्य का प्रमाण इस प्रकार जानना -

यदि समस्तलोक में सर्वपुद्गलद्रव्य पाया जाता है, तो एकक्षेत्र में कितना पुद्गलद्रव्य पाया जावेगा इस प्रकार त्रैराशिक करना। यहाँ प्रमाणराशि समस्तलोक, फलराशि पुद्गलद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एकक्षेत्र का प्रमाण है। यहाँ फलराशि से इच्छाराशि के गुणाकर प्रमाणराशि का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना एकक्षेत्र सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य समझना तथा इच्छाराशि का प्रमाण अनेकक्षेत्र मानकर पूर्ववत् त्रैराशिकविधि से जो लब्ध आवे उतना अनेकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना।

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

अर्थ - एक तथा अनेकक्षेत्रों में ठहरे हुए पुद्गलद्रव्य के अनन्तवेंभाग पुद्गलपरमाणुओं का समूह कर्मरूप होने योग्य हैं और शेष अनन्तबहुभागप्रमाण कर्मरूप होने के अयोग्य है। एकक्षेत्रयोग्य, एकक्षेत्रअयोग्य, अनेकक्षेत्रयोग्य और अनेकक्षेत्रअयोग्य इस प्रकार ४ भेद हुए। इन सभी के सादि-अनादि भेद होने से ८ भेद हुए।

विशेषार्थ - एकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलद्रव्य के प्रमाण में अनन्त का भाग देनेपर एकभाग प्रमाण

तो कर्मरूप परिणमने योग्य पुद्गलद्रव्य का प्रमाण है और शेष बहुभाग प्रमाण कर्मरूप होने के अयोग्य पुद्गलद्रव्य है। अनेकक्षेत्रसम्बन्धी पुद्गलप्रमाण को अनन्तका भाग देने पर जो लब्ध आया उसमें से एकभाग प्रमाण कर्मरूप होने योग्य पुद्गलों का प्रमाण है अवशेष बहुभाग कर्मरूप होने के अयोग्य पुद्गलों का प्रमाण है। इनमें अतीत काल में जीवके द्वारा ग्रहण किया हो वह सादिद्रव्य तथा अनादिकाल से जीवने जिसको कभी भी ग्रहण नहीं किया ऐसे पुद्गलद्रव्यको अनादिद्रव्य कहते हैं।

अब सादि-अनादिका प्रमाण कहते हैं -

जेट्ठं समयपबद्धं अतीदकाले हदेण सव्वेण।
जीवेण हदे सव्वं सादि होदित्ति णिद्दिट्ठं॥१८८॥

अर्थ - उत्कृष्टसमयप्रबद्ध के प्रमाण को अतीतकालीन समयों से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसे सर्वजीवराशिके प्रमाण से गुणा करे जो प्रमाण प्राप्त होवे वह सब जीवों के सादिद्रव्य का अर्थात् सर्वसादि द्रव्य का प्रमाण है।

विशेषार्थ - एक समय में उत्कृष्टसमयप्रबद्धप्रमाण पुद्गलद्रव्य को ग्रहण करे तो (संख्यातावली ×सिद्धराशि = अतीत काल के समयों का प्रमाण) अतीतकाल[1] के समयों में कितने पुद्गलद्रव्य को ग्रहण करेगा? इस प्रकार त्रैराशिक करना।

प्रमाणराशि एक समय, फलराशि उत्कृष्टसमयप्रबद्ध, इच्छाराशि अतीतकाल के समयों का प्रमाण जो कि सिद्धराशि से असंख्यातगुणा (एक आवली असंख्यात समयों की होने से) है। फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देने पर जो प्रमाण हो उतना एक जीव का सादिपुद्गलद्रव्य है। इसको सर्वजीवराशि के प्रमाण से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना सर्वजीवों का सादिपुद्गलद्रव्य जानना। इस प्रमाण को सर्वपुद्गलद्रव्यराशि के प्रमाण में से घटाने पर जो शेष रहे वह अनादिपुद्गलद्रव्य का प्रमाण है।

इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वजीवों के द्वारा भी अतीतकाल में सर्वपुद्गलद्रव्य नहीं भोगा गया।

शंका - द्वादशानुप्रेक्षादि ग्रन्थों में जो कहा गया है कि एकजीवने सर्वपुद्गलद्रव्य को अनन्तबार भोगकर छोड़ दिया वह कैसे संभव है?

समाधान - उन गाथाओं में 'असर्व' अर्थात् यहाँ 'कुछ' के लिए 'सर्व' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे अङ्गारे पर पाँव रखा जाने से पाँव का एक भाग जलता है, तथापि यही कहा जाता है कि पाँव जल गया। इस प्रकार एकभाग में भी सर्वका प्रयोग होता है[2]।

---

१. "तीदो संखेज्जावलि हद सिद्धाणं पमाणं तु"॥५७७॥ गो.जी. अर्थात् सिद्धराशिको संख्यात आवलियों से गुणा करने पर अतीतकाल का प्रमाण प्राप्त होता है।

२. ध. पु. ४ पृ. ३२६

आगे पूर्वोक्तभेदों में सादिद्रव्य का प्रमाण कहते हैं -

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८९॥

अर्थ - अपने-अपने एक तथा अनेक क्षेत्र में रहने वाले पुद्गलद्रव्य के अनन्तवें भाग योग्य सादिद्रव्य है और शेष अनन्तबहुभाग अयोग्य सादिद्रव्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा।

विशेषार्थ - सर्वलोक के प्रदेशों में सर्वजीवसम्बन्धी सादिद्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाया जाता है तो एकजीव की अवगाहनारूप घनाङ्गुलके असंख्यातवेंभाग प्रमाण एक क्षेत्र में कितनाद्रव्य पाया जावेगा अथवा एकक्षेत्र के प्रमाण से हीन लोकप्रमाण अनेकक्षेत्र में कितना द्रव्य होगा? इस प्रकार दो त्रैराशिक करना। यहाँ प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्य का प्रमाण, इच्छाराशि एकक्षेत्र। फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देने पर जो लब्ध आया उतने प्रमाण एकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्य का प्रमाण है।

प्रमाण राशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्य का प्रमाण, इच्छाराशि अनेकक्षेत्र। फलराशि से इच्छाराशि को गुणाकरके प्रमाणराशि का भाग देने पर जो लब्धराशि आयी उतने प्रमाण अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्य का प्रमाण जानना। एकक्षेत्रसम्बन्धी सादि द्रव्य में अनन्तका भाग देने पर एक भाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी कर्मरूप होने योग्य सादिद्रव्य है तथा अवशेष भाग प्रमाण एकक्षेत्रसम्बन्धी अयोग्यसादिद्रव्य जानना। इसीप्रकार अनेकक्षेत्रसम्बन्धी सादिद्रव्य को अनन्तका भाग देना उनमें एकभागप्रमाण अनेक क्षेत्रस्थित योग्यसादिद्रव्य तथा शेषभागप्रमाण अनेकक्षेत्र अयोग्यसादिद्रव्य जानना।

अथानन्तर अनादिद्रव्य का प्रमाण कहते हैं -

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे होदि णियमेण।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥१९०॥

अर्थ - एकक्षेत्र में स्थित योग्य व अयोग्यद्रव्य तथा अनेकक्षेत्र में स्थित योग्य व अयोग्यद्रव्यका जो परिमाण है उसमें से अपने-अपने सादिद्रव्य का प्रमाण घटाने से जो शेष रहे वह क्रम से एकक्षेत्रस्थित योग्य अनादिद्रव्य, अनेकक्षेत्र स्थित अयोग्य अनादिद्रव्य, अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादिद्रव्य और एक क्षेत्र स्थित योग्य अनादिद्रव्यका परिणाम जानना।

विशेषार्थ - गाथाकथित चार भेदों में से योग्य सादिद्रव्य, योग्य अनादि व योग्य उभयद्रव्य से एक समय में समयप्रबद्ध प्रमाण मूलप्रकृति व उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप प्रदेशबन्ध प्रतिसमय होता है।

यह जीव योग व मिथ्यात्वके निमित्त से प्रतिसमय कर्मरूप परिणमनेयोग्य समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं को ग्रहण करके कर्मरूप परिणमाता है। उनमें किसी समय तो पहले ग्रहण किए सादिद्रव्यपरमाणुओं को ही ग्रहण करता है तथा किसी समय अभी तक नहीं ग्रहण किये गये अनादिद्रव्यरूप परमाणुओं को ग्रहण करता है एवं कभी-कभी दोनोंरूप परमाणुओं को ग्रहण करता है।

अब समयप्रबद्ध का प्रमाण कहते हैं -

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं ॥१९१॥

अर्थ - वह समयप्रबद्ध पाँच प्रकार रस, पाँच प्रकार वर्ण, दो प्रकार गन्ध तथा स्पर्श के ८ भेदों में से अन्तिम चार[१], शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष रूप गुणों से सहित (उसमें गुरु, लघु, मृदु, कठिन ये चार स्पर्श नहीं होते) परिणमता हुआ सिद्धराशि के अनन्तवेंभाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणा कर्मरूप पुद्गलद्रव्य जानना अर्थात् इतने परमाणुओं के समूहरूप वर्गणा को ग्रहणकर प्रतिसमय कर्मरूप करता है।

अब एक समय में ग्रहण किया हुआ समयप्रबद्ध आठ मूल प्रकृतिरूप परिणमता है उसमें एक-एकप्रकृति का बटवारा जिस क्रम से होता है उस क्रम को बताते हैं -

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।
घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये ॥१९२॥

अर्थ - सभी मूलप्रकृतियों में आयुकर्म का भाग स्तोक है, नाम व गोत्रकर्मका भाग आपस में समान है तो भी आयुकर्म के भाग से अधिक है। अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन तीन घातिया कर्मों का भाग आपस में समान है तो भी नाम व गोत्र कर्म से अधिक है इससे अधिक मोहनीयकर्मका है तथा मोहनीयकर्म से भी अधिक वेदनीय कर्मका है।

विशेषार्थ - मिथ्यात्वगुणस्थान में चारों आयुका बन्ध होता है। सासादन गुणस्थान में नरकायु के बिना तीन आयु का बन्ध है। असंयतगुणस्थान में नरक व तिर्यञ्चबिना दो आयुका बन्ध है। देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में एक देवायुका ही बन्ध होता है इसके आगे आयुबन्ध नहीं है। आगे अनिवृत्तिकरणपर्यन्त आयु के बिना सातकर्मका ही बन्ध है। इसके ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय में आयु और मोहनीयकर्म बिना छहकर्म का बन्ध है। आगे तीन गुणस्थानों में एक वेदनीयकर्म का ही बन्ध है

---

१. स्निग्ध और रुक्ष में से कोई एक, शीत और उष्ण में से कोई एक, कर्कश और मृदु में से कोई एक, तथा गुरु-लघु में से कोई एक, इस प्रकार चारस्पर्श होते हैं। (धवल पु. १४ पृ. ५५८ व ५५९ सूत्र ७७८ व ७८३ की टीका)

वह भी उदयरूप ही है। जहाँ जितने कर्मों का बन्ध हो वहाँ समयप्रबद्ध में उतने ही कर्मका बँटवारा जानना[१]।

आगे वेदनीयकर्म का अधिक भाग होने में कारण बताते हैं -

सुहदुक्ख णिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं॥१९३॥

अर्थ - वेदनीयकर्म संसारी जीवों को सुख-दुःख का कारण है, अतः इसकी निर्जरा अधिक होती है। इसीकारण अन्य मूलकर्मों से अधिकभागरूपतक वेदनीयकर्म को मिलता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

आगे अन्यकर्मों में द्रव्य हीनाधिक विभागका कारण कहते हैं -

सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण॥१९४॥

अर्थ - वेदनीयकर्म के बिना सर्वमूलप्रकृतियों के द्रव्य का स्थितिके अनुसार विभाग होता है, जिनकी स्थिति अधिक है उनको अधिक तथा जिनकी स्थिति कम है उनको कम हिस्सा मिलता है। समानस्थितिवाले कर्म में समानरूपसे द्रव्य का बँटवारा होता है तथा इसके विभाग करने में प्रतिभागहार नियम से आवली के असंख्यातवेंभाग प्रमाण समझना चाहिए।

विशेषार्थ - यहाँ अधिक कितना है? ऐसा प्रमाण लाने के लिए प्रतिभागहार आवलीका असंख्यातवाँभाग नियम से जानना। इसकी सन्दृष्टि ९ का अङ्क है, इस प्रकार प्रतिभागहार का भाग देने पर जो एकभाग का प्रमाण हो उसे एक भाग जानना। इस एकभाग के प्रमाणबिना शेष सर्वभागों का प्रमाण बहुभाग जानना तथा जिस कर्म का जितनाद्रव्य कहा उतनेप्रमाण उस कर्म के परमाणुओं का प्रमाण है।

---

१. ज्ञानावरणीयके योग्य जो द्रव्य हैं वे ही मिथ्यात्वादि प्रत्ययों के कारण पाँचज्ञानावरणीयरूप से परिणमन करते हैं, अन्यरूप से वे परिणमन नहीं करते, क्योंकि वे अन्य के अयोग्य होते हैं। इसी प्रकार सर्वकर्मों के विषय में कहना चाहिए।
शंका - यदि ऐसा है तो कार्मणवर्गणाएँ आठ हैं ऐसा कथन क्यों नहीं किया है? **समाधान** - अन्तरका अभाव होने से उस प्रकार का उपदेश नहीं पाया जाता। आठ ही वर्गणाएँ पृथक्-पृथक् नहीं हैं, किन्तु मिश्रित होकर रहती हैं। "**आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहिओ**" इसीसे जाना जाता है कि आठों ही वर्गणाएँ मिश्रित होकर रहती हैं। (धवल पु. १४/ पृ. ५५३-५५४)

अब विभाग का क्रम कहते हैं -

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु॥१९५॥

अर्थ - बहुभाग के समानभाग करके आठ प्रकृतियों को देना और शेष एकभाग में पहले कहे हुए क्रमसे आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देते जाना। उसमें भी जो बहुत द्रव्यवाला हो उसको बहु भाग देना इस प्रकार अन्तपर्यन्त प्रतिभाग (भाग में से भाग) करते जाना।

विशेषार्थ - एकसमय में कार्मणसम्बन्धी समयप्रबद्धप्रमाण परमाणु ग्रहण किए, उन परमाणुओं का जो प्रमाण हो वह कार्मण समयप्रबद्धद्रव्य है। इसमें आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो प्रमाण आया उसमें से एक भाग को पृथक् रखना तथा बहुभाग के आठ भाग करना। उनमें से एक-एक समान भाग आठ स्थानों में पृथक्-पृथक् स्थापित करना अर्थात् एक-एक समान भाग आठ मूल प्रकृतियों को देना तथा जो एक भाग पृथक् रखा था उसमें आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देना और एकभाग पृथक् रखकर शेष बहुभाग को जिसका बहुतद्रव्य कहा है ऐसे वेदनीयकर्म को देना तथा पूर्वोक्त आठ भागों में से एक समान भाग के प्रमाण में इस प्रमाण को मिलाने पर जो प्रमाण हुआ उतने परमाणु समयप्रबद्ध में वेदनीयकर्मरूप परिणत होते हैं तथा जो एक भाग रहा था उसमें आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देने पर एक भाग पृथक् रखकर बहुभाग मोहनीयकर्म को देना और उन आठ समानभागों में से एक समान भाग के प्रमाण में इस प्रमाण को मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु मोहनीयकर्मरूप परिणत होते हैं तथा जो एक भाग शेष रहा उसमें आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देकर लब्धराशि में से एकभाग पृथक् रखना और शेष बहुभाग के तीन समानभाग करके एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्म को देना तथा जो आठ समान भाग किए थे उनके एक-एक भाग में इस एक-एक भाग को मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रम से ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तरायरूप होकर परिणमते हैं। इन तीनों कर्मों का द्रव्य परस्पर समान जानना तथा जो एकभाग पृथक् रखा था उसमें आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देने से जो लब्ध आया उसमें से एकभाग पृथक् रखकर शेष बहुभाग के दो समानभाग करके एक भाग नामकर्म को और एक गोत्रकर्म को देना तथा पूर्वोक्त आठभागों में से एक-एक भाग में इस एक भाग को मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु अनुक्रम से नाम और गोत्रकर्मरूप परिणत होते है, उन दोनों कर्मों का द्रव्य परस्पर समान जानना तथा जो एकभाग शेष रहा था उसे आयुकर्म को देना और उन आठ भागों में से जो एकभाग प्रमाण द्रव्य था उसमें इस एकभागको मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु आयुकर्म रूप परिणत होते हैं। इस प्रकार "**आउग भागो थोवो**" इत्यादि जो वचन गाथा में कहा था वह सिद्ध हो गया। इस प्रकार एक समय में समयप्रबद्धप्रमाण पुद्गलद्रव्य आठकर्मरूप परिणमन करता है।

माना कि एक समयप्रबद्ध की संख्या ८१०० है और आवलीके असंख्यातवेंभाग की संख्या ९ कल्पना की अर्थात् ८१००÷९ = ९०० इस संख्या को पृथक् रखकर शेष जो ७२०० बचे। इनके आठोंकर्मों में समानभाग करके प्रत्येकको ९०० प्राप्त होंगे। जो ९०० पृथक् रखे थे उनमें ९ का भाग देने पर १०० प्राप्त हुए, इसको पृथक् रखकर बहुभाग ८०० रहा इसको वेदनीयकर्म को देना अर्थात् वेदनीयकर्मको ९००+८०० = १७०० परमाणु मिलेंगे। जो १०० पृथक् रखे थे उसमें पुनः ९ का भाग देने से $\frac{१००}{९}$ भागाकार आया इसको पृथक् रखकर १०० में घटाने पर $\frac{१००}{१} - \frac{१००}{९} = \frac{८००}{९}$ यह बहुभाग रहा सो इसको मोहनीयकर्म के द्रव्य में मिलाया $\frac{८००}{९} + \frac{९००}{१} = ९८८\frac{८}{९}$ प्राप्त हुआ इतना द्रव्य मोहनीयकर्म को मिला।

पृथक् रखी हुई भागाकार की संख्या $\frac{१००}{९}$ को ९ से भाग देने पर भागाकार $\frac{१००}{८१}$ आवेगा। इसको पृथक् रख $\frac{१००}{९}$ में से घटाने पर $\frac{१००}{९} - \frac{१००}{८१} = \frac{८००}{८१}$ प्राप्त हुआ। इसके तीन समान भाग करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्म को एक-एक भाग बाँटना इस प्रकार प्रत्येक को $\frac{८००}{२४३}$ प्रमाणद्रव्य मिलेगा तथा सर्वप्रथम प्रत्येक कर्मको जो समानद्रव्य ९०० मिला था उसमें $\frac{८००}{२४३}$ मिलाने पर प्रत्येक को ९००$\frac{८००}{२४३}$ = ९०३$\frac{७१}{२४३}$ द्रव्य मिला। पृथक् रखे हुए $\frac{१००}{८१}$ को ९ से भाग देने पर भागाकार $\frac{१००}{८१}$ में से घटाने पर बहुभागरूपद्रव्य ($\frac{१००}{८१} - \frac{१००}{७२९}$) $\frac{८००}{७२९}$ प्राप्त हुआ सो इतना द्रव्य नाम व गोत्रकर्म के हिस्से में आया इसमें २ का भाग देने से $\frac{८००}{७२९} \div २ = \frac{८००}{१४५८}$ प्रमाण द्रव्य नामकर्मको और इतना ही द्रव्य गोत्रकर्मको भी मिला तथा पूर्वमें जो नाम और गोत्र के हिस्से में आया द्रव्य ९०० है उसमें इसको मिलाने पर ९०० $\frac{८००}{१४५८}$ प्रमाण द्रव्य नामकर्मको तथा इतना ही द्रव्य गोत्रकर्म को भी मिलेगा। पृथक् रखे एक भागरूप $\frac{१००}{७२९}$ प्रमाण द्रव्य को पूर्व में प्रत्येक कर्म के हिस्से में आए द्रव्य में आयुकर्म का जो ९०० प्रमाण द्रव्य है उसमें मिलाने से ९००$\frac{१००}{७२९}$ प्रमाणद्रव्य आयुकर्म का जानना।

कर्मपरमाणुओं के बँटवारे की सन्दृष्टि

वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अन्तराय	नाम	गोत्र	आयु	कुल जोड़
९००	९००	९००	९००	९००	९००	९००	९००	७२००
८००	$\frac{८००}{९}$	$\frac{८००}{२४३}$	$\frac{८००}{२४३}$	$\frac{८००}{२४३}$	$\frac{८००}{१४५८}$	$\frac{८००}{१४५८}$	$\frac{१००}{७२९}$	९००
१७००	९८८$\frac{८}{९}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९०३$\frac{७१}{२४३}$	९००$\frac{८००}{१४५८}$	९००$\frac{८००}{१४५८}$	९००$\frac{१००}{७२९}$	८१००

विशेष - ज्ञानावरणीय के योग्य जो द्रव्य है, वही ५ ज्ञानावरणीयरूप से परिणमन करता है, क्योंकि वह अन्यके अयोग्य है। इसी प्रकार सर्वकर्मों के विषय में जानना चाहिए, अन्यथा ज्ञानावरणीयका जो द्रव्य है उसे ग्रहणकर मिथ्यात्वादि कारणसे ज्ञानावरणीयरूप से परिणमाकर जीव परिणमन करते हैं यह सूत्र नहीं बन सकता।[१]

आठों प्रकार की कार्मणवर्गणाओं में अन्तरका अभाव है अत: यह नहीं कहा गया कि कार्मणवर्गणाएँ आठ हैं। ये आठों ही वर्गणाएँ पृथक्-पृथक् नहीं रहतीं, अपितु मिश्रित होकर रहती हैं, अन्यथा "आयुकर्म का भाग स्तोक है, नामकर्म और गोत्रकर्मका भाग उससे अधिक है" इत्यादि प्रकार से उपदेश सम्भव नहीं हो सकता था[२]।

अब उत्तरप्रकृतियों में बँटवारे का क्रम कहते हैं -

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा।
अहियकमा पुण णामाविग्घा य ण भंजणं सेसे ॥१९६॥

अर्थ - उत्तरप्रकृतियों में मोहनीय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण के भेदों में क्रम सें हीन-हीनद्रव्य है तथा नाम व अन्तरायकर्म के भेदों में क्रम से अधिक-अधिक द्रव्य है। वेदनीय, गोत्र और आयुकर्म के भेदों में बँटवारा नहीं होता, क्योंकि इनकी एककाल में एकही प्रकृति बँधती है, अत: इनको मूलप्रकृति के समान ही द्रव्य मिलता है।

विशेषार्थ - ज्ञानावरण में मतिज्ञानावरण के द्रव्य से श्रुतज्ञानावरण का द्रव्य स्तोक है, इससे अवधिज्ञानावरण का द्रव्यहीन है यही क्रम शेष कर्मों के भेदों में भी जानना, किन्तु नाम और अन्तराय कर्म के भेदों में क्रम से अधिक-अधिक द्रव्य है, जैसे - अन्तरायकर्म में दानान्तरायके द्रव्य से लाभान्तरायका द्रव्य अधिक है, इससे भोगान्तरायका द्रव्य अधिक है। इस प्रकार अधिकक्रम जानना। वेदनीय, गोत्र और आयुकर्म में बँटवारा नहीं है। जैसे - वेदनीयकर्म में साताका बन्ध होगा या असाताका, दोनों का एकसमय में युगपत् बन्ध नहीं होगा। इसी प्रकार गोत्र व आयुकर्म में भी जानना। इन तीनों कर्मों की जिस उत्तरप्रकृतिका जिस समय बन्ध होगा उस समय जो मूलप्रकृतिका द्रव्य प्रमाण है, वही उत्तरप्रकृतिका भी जानना।

अथानन्तर घातियाकर्मों में सर्वघाति तथा देशघाति का बँटवारा कहते हैं -

सव्वावरणं दव्वं अणंत भागो दु मूलपयडीणं।
सेसा अणंतभागा देसावरणं हवे दव्वं ॥१९७॥

१. वर्गणाखण्ड, बन्धानुयोगद्वार चूलिका, सूत्र ७५८ २. ध. पु. १४ पृ. ५५३-५४

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय, इन तीन मूलप्रकृतियों का जो अपना द्रव्य है उसमें अनन्त का भाग देने से एकभाग तो सर्वघाति का द्रव्य होता है तथा शेषअनन्त बहुभागप्रमाणद्रव्य देशघाति का है।

विशेषार्थ - सर्वघातियाद्रव्य का सर्वघाति और देशघातिरूप बँटवारा आगे कहेंगे। देशघातिरूप मतिज्ञानावरणादिके द्रव्य का जो प्रमाण है उसमें सर्वघातिसम्बन्धी परमाणुओं के प्रमाण के लिए प्रतिभागहार का प्रमाण कहते हैं।

शंका - देशघातिप्रकृतियों में सर्वघातिस्पर्धक कैसे हो सकते हैं?

समाधान - पहले अनुभागबन्ध में मतिज्ञानावरणादिका भाग अनुभाग शैल, अस्थि, दारु और लतारूप से चार प्रकार का कहा था। इनमें दारुभाग का तो अनन्तवाँभाग और सम्पूर्ण लताभाग तो देशघाति है। इस प्रकार देशघातिरूप अनुभाग को धारण करने वाले परमाणु देशघातिद्रव्य हैं। शैलभाग, अस्थिभाग तथा दारु का बहुभाग सर्वघातिरूप है इस अनुभाग को धारण करने वाले परमाणु सर्वघातिद्रव्य हैं ऐसा जानना।

अब सर्वघाति द्रव्य का प्रमाण निकालने के लिए प्रतिभागहार का प्रमाण कहते हैं -

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणड्ढं पडिभागो होदि घादीणं ॥१९८॥

अर्थ - देशघातिरूप ज्ञानावरणादि प्रकृतियों की अन्योन्याभ्यस्तराशि अनन्त संख्याप्रमाण है। यही राशि सर्वघातिप्रकृतियों का द्रव्यप्रमाण निकालने के लिए घातिया कर्मों की प्रतिभागरूप जानना।

विशेषार्थ - चारज्ञानावरण, तीनदर्शनावरण, पाँचअन्तराय, चारसञ्ज्वलनकषाय और नोकषाय के परमाणुओं की नानगुणहानिशलाका अनन्त है तथा जितनी नानागुणहानि है उतने प्रमाण २ के अङ्क लिखकर परस्पर में गुणा करने से अन्योन्याभयस्तराशिका प्रमाण होता है यह भी अनन्तसंख्यामात्र है। अङ्क सन्दृष्टि -

द्रव्य की संख्या ३१००, स्थितिस्थान ४०, एक-एक गुणहानि का प्रमाण ८, इससे दूना (१६) दो गुणहानिका प्रमाण, नानागुणहानि ५ है। अतः नानागुणहानिप्रमाण २ के अङ्क लिखकर २×२×२×२×२ परस्पर गुणा करने पर लब्ध ३२ आया सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना। इसकी रचना जैसे ६३०० द्रव्य और स्थान ४८ का दृष्टान्त पूर्व गाथा १६२ में कहा था और आगे भी गाथा ९२३ में कहेंगे वैसे ही जानना। अर्थसन्दृष्टि में अनुभाग की अपेक्षा द्रव्यप्रमाण का कथन है।

उन पूर्वोक्त प्रकृतियों के परमाणुओं का प्रमाण वही द्रव्य जानना। तीनबार अनन्तको परस्परगुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना अनुभागसम्बन्धी द्रव्य का परिमाण जानना। दोबार अनन्तको परस्परगुणा करने पर जो प्रमाण आवे उतनी गुणहानि जाननी, इससे दोगुणी दोगुणहानि जानना, नानागुणहानि अनन्त है। नानागुणहानि प्रमाण २ के अंक लिखकर परस्पर में गुणा करने पर जो लब्ध आवे उतनी अन्योन्याभ्यस्तराशि है। यहाँ जो अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण है वही सर्वघातिद्रव्य का प्रमाण निकालने के लिए प्रतिभाग है। इसी को स्पष्ट करते हैं -

मतिज्ञानावरणादि चारका द्रव्य केवलज्ञान के हिस्से बिना अपने सर्वघातिद्रव्य सहित देशघाति के द्रव्य प्रमाण है। (अर्थात् इनदेशघाती प्रकृतियों का देशघातीद्रव्य तो अपना ही है, सर्वघातीद्रव्य भी है। वह सर्वघाती द्रव्य केवलज्ञानावरण का जितना भाग है उससे हीन है, सब नहीं है। इस तरह देशघाती और सर्वघाती द्रव्य मिलकर मतिज्ञानावरणादिक का द्रव्य होता है, जो) कुछ अधिक समय प्रबद्धके आठवेंभाग प्रमाण है। इसमें (द्रव्य में) एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग देने से शैलभाग की अन्तिम गुणहानि में द्रव्य का प्रमाण होता है। पश्चात् नीचे एक-एक गुणहानि प्रति दूना-दूनाद्रव्य होकर दारुभाग की प्रथमगुणहानि पर्यन्त जाता है। दारुभाग के अनन्तभागों में एक भाग (देशघाति) बिना शेष बहुभागसम्बन्धी द्रव्य उनकी प्रथमगुणहानि में शैलभाग की चरमगुणहानिके द्रव्य को यथायोग्य आधे अनन्त (अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधाभाग) से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना द्रव्य है। इस प्रकार शैलभाग की चरमगुणहानि से दारु बहुभाग की प्रथमगुणहानि पर्यन्त जितनी गुणहानि हुई उसे गच्छ जानना। सो एक कम गच्छ मात्र दो के अंकों को गुणा करने पर सर्वघातिसम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि अनन्त प्रमाण होती है। उसका आधा यहाँ गुणकाररूप जानना। इन सर्वगुणहानियों के द्रव्यों को जोड़ने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु सर्वघाति सम्बन्धी जानना इसलिए सर्वघातिद्रव्य प्राप्त करने के लिए अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रतिभाग कहा।

सन्दृष्टि इस प्रकार है

शैलभाग की चरमगुणहानि का द्रव्य	शैलभाग की अन्य गुणहानि का द्रव्य	अस्थिभागकी चरमगुणहानि का द्रव्य	अस्थिभागकी अन्य गुणहानि काद्रव्य	दारुभागकी चरम गुणहानि का द्रव्य	दारुके सर्वघाति भाग की प्रथम गुणहानिका द्रव्य
९	१८	३६	७२	१४४	२८८
१०	२०	४०	८०	१६०	३२०
११	२२	४४	८८	१७६	३५२
१२	२४	४८	९६	१९२	३८४

१३	२६	५२	१०४	२०८	४१६
१४	२८	५६	११२	२२४	४४८
१५	३०	६०	१२०	२४०	४८०
१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२

इस प्रकार गुणहानि गुणहानिप्रति दुगुना द्रव्य होता गया है। नानागुणहानि ६ अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२×२ = ६४ का आधा ३२, शैलभाग की चरम गुणहानि द्रव्य १०० को ३२ से गुणा करने पर ३२०० दारुरूप सर्वघातिभाग की प्रथम गुणहानि का द्रव्य।

अब देशघातिद्रव्य को कहते हैं -

दारुभाग के बहुभाग की प्रथमगुणहानि के द्रव्यसे नीचे दारुभाग के अनन्तभागों में एक भाग की अन्तिमगुणहानि का द्रव्य दूना है तथा नीचे गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना द्रव्य होकर लताभागकी प्रथमगुणहानिपर्यन्त जाता है। एक कम सर्व (नाना) गुणहानि का जो प्रमाण है उतनी बार दो के अङ्क लिखकर परस्पर में गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है। उसके आधेप्रमाण से शैलभाग की अन्तिमगुणहानि के द्रव्य को गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना लताभाग की प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इन गुणहानियों को जोड़ने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु देशघाती सम्बन्धी जानने।

यहाँ अङ्कसन्दृष्टि में सर्वद्रव्य ३१०० में अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ में से एक कम करके (३२-१ = ३१) लब्धराशि का भाग देने पर (३१००÷३१) १०० आए, यह शैलभाग की अन्तिमगुणहानिका द्रव्य जानना, पश्चात् गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना होकर २००-४००-८००, एककम नानागुणहानि ४, इतनी बार दोके अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्पर गुणा करने पर १६ हुए। यह अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ का आधाप्रमाण है। इससे शैलभाग की अन्तिमगुणहानि के द्रव्य १०० को गुणा करने पर (१००×१६) १६०० हुए, यह लताभाग की प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इसी प्रकार दर्शनावरणादि के द्रव्यों में भी सर्वघाति-देशघातिरूप द्रव्य का प्रमाण जानना।

इस गाथा सूत्र में कर्म प्रकृतियों के प्रदेशों का प्रमाण ज्ञात करने का विधान बताया गया है जिससे यह ज्ञात हो सके कि किस कर्मप्रकृतिके प्रदेश अल्प हैं और किस कर्मप्रकृतिके अधिक हैं, इसी ग्रन्थ की संस्कृतटीका में इसका कथन किया गया है, किन्तु प्रदेशबन्ध की अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन महाबन्ध पु. ७ पृष्ठ ६५ में भी किया है उसी के अनुसार यहाँ लिखते हैं। तद्यथा -

अल्पबहुत्व दो प्रकार का है - १. स्वस्थान अल्पबहुत्व २. परस्थान अल्पबहुत्व। स्वस्थानअल्पबहुत्व दो प्रकार का है - जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट का प्रकरण है - निर्देश दो प्रकार का है - ओघ और आदेश। ओघ से केवलज्ञानावरणीय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे मनः

पर्ययज्ञानावरणीय का उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे अवधिज्ञानावरणीय का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे श्रुतज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

प्रचला का उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे निद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रचलाप्रचलाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे निद्रा-निद्रा का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक हे, उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, इससे अवधिदर्शनावरण का उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे अचक्षुदर्शनावरण का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है और उससे चक्षुदर्शनावरण का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

असातावेदनीय का उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे सातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

अप्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अप्रत्याख्यानावरणक्रोध का प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरणमाया का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरणलोभका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रत्याख्यानावरणक्रोधका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रत्याख्यानावरणमाया का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रत्याख्यानावरणलोभ का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीमानका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है उससे अनन्तानुबन्धीक्रोधका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है उससे अनन्तानुबन्धीमाया का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अनन्तानुबन्धीलोभ का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मिथ्यात्व का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे जुगुप्सा का उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे भयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे हास्य-शोकका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे रति-अरतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे क्रोधसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है, उससे मानसञ्ज्वलनका उत्कृष्टपदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे पुरुषवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मायासञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे लोभसञ्ज्वलन का उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यातगुणा है।

चार आयुओं का उत्कृष्टप्रदेशाग्र परस्पर में समान है।

नरकगति-देवगति का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे मनुष्यगति का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगति का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। चार जातियों का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे एकेन्द्रिय जातिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आहारक शरीर

का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिक शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजस शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आहारक-तैजस शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आहारक-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आहारक-तैजस-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिक-तैजस शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिक-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिक-तैजस-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिक-तैजस शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिक-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजस-कार्मण शरीर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। चार संस्थान का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे समचतुरस्र संस्थान का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हुण्ड-संस्थान का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आहारकशरीर अङ्गोपाङ्ग का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे वैक्रियिक शरीर अङ्गोपाङ्ग का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। पाँच संहनन का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। नील नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कृष्ण नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे रुधिरवर्ण नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हारिद्रवर्ण नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे शुक्लवर्ण नामकर्म का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। दुर्गन्ध नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे सुगन्ध नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। कटुकरस नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे तिक्तरस नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कषायरस नामकर्म का उत्कृष्ट विशेष अधिक है। उससे आम्लरस नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मधुररस नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। मृदु-लघु स्पर्श नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे कर्कश-गुरु स्पर्श नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे शीत-उष्ण स्पर्श नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे स्निग्ध-रूक्ष नामकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। जिस प्रकार गतियों का अल्पबहुत्व है, उसी प्रकार आनुपूर्वियों का अल्पबहुत्व है। परघात और उच्छ्वास का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। अगुरुलघु और उपघात का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आतप और उद्योत का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर समान है। दो विहायोगतियों का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर समान है। त्रस और पर्याप्त का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। स्थावर और अपर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र समान है। स्थिर, शुभ, सुभग और आदेय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। अस्थिर, अशुभ, दुर्भग और अनादेय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। सुस्वर और दुःस्वर का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर में समान

है। अयश:कीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे यश:कीर्ति का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है।

नीच गोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे उच्चगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

दानान्तराय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे लाभान्तराय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे भोगान्तराय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे परिभोगान्तराय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वीर्यान्तराय का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

परस्थान अल्पबहुत्व दो प्रकार का है - जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट का प्रकरण है। निर्देश दो प्रकार का है - ओघ और आदेश। ओघ से अप्रत्याख्यानावरण मान का उत्कृष्टप्रदेशाग्र सबसे स्तोक है, उससे अप्रत्याख्यानावरणक्रोध का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अप्रत्याख्यानावरणमाया का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अप्रत्याख्यानावरणलोभ का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उत्कृष्टप्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आगे मिथ्यात्वका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे केवलज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रचलाका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे निद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे प्रचला-प्रचला का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेषाधिक है। उससे निद्रानिद्राका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे आहारकशरीर का उत्कृष्टप्रदेशाग्र अनन्तगुणा है, उससे वैक्रियकशरीर का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है,उससे तैजसशरीर का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे कार्मणशरीर का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे नरकगतिका उत्कृष्टप्रदेशागे संख्यातगुणा है, उससे देवगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अयशस्कीर्तिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है उससे जुगुप्सा का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है, उससे भयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे हास्य-शोकका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे रति-अरतिका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे दानान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र संख्यात-गुणा है, उससे लाभान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे भोगान्तरायका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे परिभोगान्तराय (उपभोगान्तराय) का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे वीर्यान्तराय का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे क्रोधसञ्ज्वलन का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मन:पर्ययज्ञानावरण का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे

श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरण का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मानसञ्ज्वलन का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अचक्षुदर्शनावरण का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे पुरुषवेदका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे मायासञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे नीचगोत्र का उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे लोभसञ्ज्वलनका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे असातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है, उससे यशस्कीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है और उससे सातावेदनीयका उत्कृष्टप्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

अब सर्वघाति-देशघातिद्रव्य का विशेष विभाग दिखाते हैं -

सव्वावरणं दव्वं विभंजणिज्जं तु उभयपयडीसु।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे॥१९९॥

अर्थ - घातियाकर्मों के अपने-अपने द्रव्यको अनन्तका भाग देने पर एकभागप्रमाण सर्वघातिद्रव्य है और बहुभागप्रमाण देशघातिद्रव्य है इनमें सर्वघातिद्रव्य तो सर्वघाति और देशघातिप्रकृतियों को देना तथा देशघातिद्रव्य देशघातिप्रकृति में ही देना, केवलज्ञानावरणादि सर्वघाति प्रकृतियों में नहीं देना।

अब उत्तरप्रकृतियों में विभाग कहते हैं -

बहुभागे समभागोबंधाणं होदि एक्कभागम्हि।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु॥२००॥

अर्थ- जिनका एकसमय में बन्ध हो ऐसी उत्तर प्रकृतियों के अपने-अपने पिण्डरूप द्रव्य में आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देकर बहुभाग के समानभाग करके अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतियों में समानद्रव्य देना और एकभाग में से मोहनीय-ज्ञानावरण व दर्शनावरण की प्रकृतियों को क्रमसे घटता-घटता और नामकर्म तथा अन्तरायकर्म की प्रकृतियों को क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य देना इस प्रकार क्रम कहा। इनमें भी जिसका बहुत द्रव्य कहा उसको पृथक् रखे हुए एक भागका बहुभाग देना।

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु।
उत्तकमेण य देयं विवरीदं णामविग्घाणं॥२०१॥

अर्थ - ज्ञानावरण-दर्शनावरण और मोहनीयरूप घातियाकर्मों का क्रमशः आदि से

अन्तप्रकृतिपर्यन्त अपना-अपना सर्वघातिद्रव्य घटता-घटता देना एवं नाम और अन्तरायकर्म की प्रकृतियों में द्रव्य बढ़ता-बढ़ता अथवा अन्तिम से आदि प्रकृति पर्यन्त घटता-घटता देना।

विशेषार्थ - ज्ञानावरणीयकर्म का सर्वद्रव्य जो पहले कहा था उसमें यथायोग्य अनन्तका भाग देना, इसमें एकभाग प्रमाण सर्वघातिद्रव्य है। इस सर्वघातिद्रव्य का विभाग इस प्रकार करना है -

आवलि के असँख्यातवेंभाग का भाग देकर एक भाग के बिना शेष बहुभाग के समानरूप से पाँचभाग करना और प्रत्येक प्रकृतिको देना। जो एक भाग शेष रहा उसमें प्रतिभाग (आवलि के असंख्यातवें भाग) का भाग देकर जो लब्ध आवे उसमें से बहुभाग मतिज्ञानावरण को देना तथा जो एक भाग शेष रहा उसमें उसी प्रतिभाग का भागदेकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको एवं जो एकभाग शेष रहा उसमें उसी प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरणको देना तथा जो अवशेष एक भाग बचा उसमें उसी प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग मन:पर्ययज्ञानावरण को देना एवं जो एक भाग शेष रहा वह केवलज्ञानावरण का द्रव्य जानना। इस प्रकार पहले जो समानभाग कहे थे उनमें बाद में जो-जो प्रमाण बतलाए हैं उन्हें क्रम से मिलाने पर मतिज्ञानावरणादिका सर्वघातिद्रव्य होता है एवं ज्ञानावरणसम्बन्धी द्रव्य के अनन्तभागों में से एकभाग बिना शेष बहुभाग देशघाति द्रव्य है, इसमें पूर्वोक्त क्रम से उसी (आवलिके असंख्यातवेंभाग मात्र) प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना बहुभाग के चार समान भाग करके एक-एक भाग मतिज्ञानावरणादि चार प्रकृतियों को देना तथा शेष रहे एक भाग में प्रतिभागका भाग देने पर जो लब्ध आवें उसमें से बहुभाग मतिज्ञानावरण को देना तथा जो शेष एक भाग रहा उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरण को देना एवं शेष बचे एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरण को देना और जो एक भाग शेष रहा वह मन:पर्ययज्ञानावरण को देना। इस प्रकार इन प्रत्येकभागों को, पूर्व में जो समानरूप से चार भाग किए थे, उनमें क्रम से मिलाने पर मतिज्ञानावरणादिके देशघातिद्रव्य का प्रमाण होता है तथा अपना-अपना देशघाति और सर्वघातिद्रव्य मिलाने पर ज्ञानावरण की उत्तर प्रकृतियों के सर्वद्रव्य का प्रमाण होता है।

यहाँ इतना अवश्य जानना कि प्रकृतियों के द्रव्यसम्बन्धी विभाग में सभी स्थानों पर जहाँ प्रतिभाग का भाग देना कहा है वहाँ आवलिके असंख्यातवेंभाग का भाग जानना।

तथैव दर्शनावरणीयकर्म के पूर्वोक्त सर्वद्रव्यके प्रमाण में अनन्तका भाग देना, उसमें जो एकभागप्रमाण सर्वघातिद्रव्य है उसमें प्रतिभाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमें से एकभाग के बिना बहुभाग के ९ विभाग करके एक-एक समानभाग दर्शनावरण की ९ उत्तरप्रकृतियों को देकर जो एकभाग शेष रहा था उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग स्त्यानगृद्धिप्रकृति को देना तथा शेष रहे एक भाग में प्रतिभागका भाग देकर एक भाग बिना बहुभाग निद्रानिद्रा को देना। इसी क्रमानुसार ज्ञानावरण के उत्तरभेदों के समान प्रतिभागका भाग दे-देकर बहुभाग-बहुभाग प्रमाणद्रव्य क्रमसे प्रचला-प्रचला, निद्रा

और प्रचलाके तथा चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरण को हीनक्रमसे देना। अन्त में जो शेष एक भाग बचे वह केवलदर्शनावरण का द्रव्य जानना। इस प्राप्त द्रव्य को पूर्व में जो समानरूप से भाग किए थे। उस द्रव्य में यथाक्रम मिलाने से स्त्यानगृद्धि आदि कर्मों के सर्वघातिद्रव्यका प्रमाण होता है तथा दर्शनावरणसम्बन्धीद्रव्य के अनन्त भागों में से एकभाग बिना शेष बहुभाग प्रमाण देशघातिद्रव्य है उसमें प्रतिभाग का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसमें से एकभागबिना बहुभाग के समानरूप तीनभाग करके एक-एकभाग चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरण को देना तथा जो एकभाग शेष रहा था उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग चक्षुदर्शनावरणको एवं शेष रहे एकभागमें पुनश्च प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग अचक्षुदर्शनावरणको देना तथा जो एक भाग शेष रहा वह अवधिदर्शनावरणका द्रव्य जानना। पहले जो समानरूपसे तीनभाग किए थे उनमें प्रतिभागविधि से प्राप्त द्रव्यको मिलाने से क्रमशःचक्षुदर्शनावरणादिका देशघातिरूपद्रव्य होता है एवं चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शनावरणसम्बन्धी सर्वघाति और देशघातिद्रव्य को परस्पर में जोड़ देने से चक्षुदर्शनावरणादि तीन प्रकृतियों का सर्वद्रव्य का प्रमाण होता है। शेष ५ निद्रा और केवलदर्शनावरण प्रकृतियों का सर्वद्रव्य सर्वघातिरूप ही है।

अन्तरायकर्मसम्बन्धी सर्वद्रव्य के प्रमाण में प्रतिभाग का भाग देने पर प्राप्त हुई राशि में से एक भाग बिना बहुभाग के पाँचसमानभाग करके एक-एक भाग अन्तरायकर्म की पाँचों प्रकृतियों को देना। शेष एक भाग में प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग वीर्यान्तरायको और शेष एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना बहुभाग उपभोगान्तराय को देना। इसी प्रकार जो एक-एक भाग शेष रहे उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग भोगान्तराय और लाभान्तराय को देना एवं अन्त में जो एकभाग शेष रहा वह दानान्तराय का द्रव्य जानना। पूर्वमें जो पाँचों प्रकृतिसम्बन्धी समान भाग किए उनमें प्रतिभाग विधि से प्राप्त प्रत्येक प्रकृति के द्रव्य को मिलाने पर तद्-तद् प्रकृतिसम्बन्धी द्रव्य का प्रमाण होता है। इस प्रकार अन्तरायकर्म की उत्तरप्रकृतियों का क्रम जानना।

अब उपर्युक्त कथन को अङ्कसन्दृष्टि द्वारा स्पष्ट करते हैं -

मानाकि ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वद्रव्य ४५००० है और अनन्तकी संख्या ५ है। यहाँ सर्वद्रव्य ४५००० में अनन्त की संख्या ५ का भाग देने से (४५०००÷५) ९००० प्रमाणद्रव्य सर्वघातिका जानना। अब सर्वद्रव्य ४५००० में से सर्वघातिसम्बन्धी द्रव्य ९००० को घटा देने पर (४५०००-९०००) ३६००० प्रमाण जो द्रव्य आया सो देशघातिका द्रव्य है। ज्ञानावरण के सर्वघातिद्रव्य ९००० को प्रतिभाग (आवलीके असंख्यातवेंभाग के प्रमाण ३) से भाग देने पर ९०००÷३ = ३००० प्राप्त हुआ इसको ९००० में से कम करने पर ९०००-३००० = ६००० प्रमाण बहुभागरूप द्रव्य को ज्ञानावरणकी पाँचोंप्रकृतियों को समानरूप से बाँट देने पर ६०००÷५ = १२०० प्रमाण द्रव्य प्रत्येक प्रकृतिको मिलेगा तथा शेषभाग प्रमाण द्रव्य (३०००) को प्रतिभाग (३) से भाग देने से $\frac{३०००}{३}$ लब्ध आया इसमें से एक

भाग कमकरके $\frac{३०००}{१} - \frac{३०००}{३} = २०००$ प्रमाण बहुभागद्रव्य मतिज्ञानावरण सम्बन्धी जानना। इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रतिभागविधि से अन्य चार प्रकृतियों के द्रव्य का प्रमाण भी प्राप्त करना चाहिए। वह मात्र अङ्कों में इस प्रकार है -

$\frac{३०००}{३} \div ३ = \frac{३०००}{९}$, $\frac{३०००}{३} - \frac{३०००}{९} = \frac{२०००}{३}$ यह द्रव्य श्रुतज्ञानावरण को देना। $\frac{३०००}{९} \div ३ = \frac{३०००}{२७}$, $\frac{३०००}{९} - \frac{३०००}{२७} = \frac{२०००}{९}$ प्रमाणद्रव्य अवधिज्ञानावरण का तथा $\frac{३०००}{२७} \div ३ = \frac{३०००}{८१}$, $\frac{३०००}{२७} - \frac{३०००}{८१} = \frac{२०००}{२७}$ प्रमाण द्रव्य मन: पर्ययज्ञानावरण का जानना एवं शेष एकभाग $\frac{३०००}{८१}$ अर्थात् $\frac{१०००}{२७}$ प्रमाणद्रव्य केवलज्ञानावरण का जानना। इस प्रकार ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वघातिद्रव्य ९००० का उसकी उत्तरप्रकृतियों में विभाग किया।

ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी सर्वघातिद्रव्यके उत्तरप्रकृतियों में विभाग की सन्दृष्टि

मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मन:पर्यय-ज्ञानावरण	केवलज्ञानावरण	कुल योग
१२००+	१२००+	१२००+	१२००+	१२००+	= ६०००
२०००	$\frac{२०००}{३}$	$\frac{२०००}{९}$	$\frac{२०००}{२७}$	$\frac{१०००}{२७}$	= ३०००
३२००	$१८६६\frac{२}{३}$	$१४२२\frac{२}{९}$	$१२७४\frac{२}{२७}$	$१२३७\frac{१}{२७}$	= ९०००

अब देशघातिद्रव्य ३६००० का विभाग मति-श्रुत-अवधि और मन:पर्यय-ज्ञानावरणरूप प्रकृतियों में करते हैं -

देशघातिद्रव्य ३६००० में प्रतिभागके प्रमाण ३ (आवलीका असंख्यातवांभाग) का भाग देनेपर ३६०००÷३ =१२००० आया। इसको ३६००० में से घटाने पर (३६०००-१२०००) २४००० प्रमाण बहुभागद्रव्य है। इसके समानभाग करके मतिज्ञानावरणादिको देना अर्थात् २४०००÷ ४ = ६००० प्रमाणद्रव्य चारों प्रकृतियों को समानरूप से दिया जावेगा। शेष एकभाग रूप जो १२००० प्रमाणद्रव्य है उसमें प्रतिभाग का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग मतिज्ञानावरण को देना अर्थात् १२०००÷ ३ = ४०००, १२०००-४००० = ८००० प्रमाणद्रव्य मतिज्ञानावरण को मिला। पुनश्च शेष जो ४००० प्रमाण एक भाग है उसमें प्रतिभाग (३) का भाग देकर एकभागबिना शेष बहुभाग श्रुतज्ञानावरण को देना तद्यथा - ४०००÷३ = ४०००/३, ४०००/१- ४०००/३ = ८०००/३ यह द्रव्य श्रुतज्ञानावरणका जानना। इसीप्रकार आगे भी शेष बचे एक भाग में प्रतिभागका भाग देकर एक भाग बिना बहुभागद्रव्य

अवधिज्ञानावरणको और अन्त में जो मन:पर्यय-ज्ञानावरण है उसे शेष बचा एक भाग प्रमाण द्रव्य मिलेगा। प्रतिभागविधि इस प्रकार है -

$\frac{४०००}{३} \div ३ = \frac{४०००}{९}$, $\frac{४०००}{३} \cdots \frac{४०००}{९} = \frac{८०००}{९}$ सर्वद्रव्य अवधिज्ञानावरणको मिलेगा शेष $\frac{४०००}{९}$ प्रमाण जो एक भाग है वह मन:पर्ययज्ञानावरणका द्रव्य जानना।

देशघातिद्रव्य के विभाग की सन्दृष्टि इस प्रकार है -

मतिज्ञानावरण	श्रुतज्ञानावरण	अवधिज्ञानावरण	मन:पर्ययज्ञानावरण	कुल योग
६०००+	६०००+	६०००+	६०००+	=२४०००+
८०००	$\frac{८०००}{३}$	$\frac{८०००}{९}$	$\frac{४०००}{९}$	= १२०००
१४०००	$८६६६\frac{२}{३}$	$६८८८\frac{८}{९}$	$६४४४\frac{४}{९}$	= ३६०००

इस प्रकार ज्ञानावरणकर्मसम्बन्धी कल्पित ४५००० प्रमाण द्रव्यका सर्वघाति और देशघातिरूप से विभाजन मतिज्ञानावरणादि ५ प्रकृतियों में हुआ। सर्वघाति व देशघातिरूप विभाजित द्रव्य की मतिज्ञानावरणादि सम्बन्धी युगपत् सन्दृष्टि निम्न प्रकार है सो जानना।

सर्वघाति-देशघातिरूप विभाजनकी सन्दृष्टि

प्रकृति	मति ज्ञानावरण	श्रुत ज्ञानावरण	अवधि ज्ञानावरण	मन:पर्यय ज्ञानावरण	केवल ज्ञानावरण	कुल योग
सर्वघातिद्रव्य	३२००+	$१८६६\frac{२}{३}$+	$१४२२\frac{२}{९}$+	$१२७४\frac{२}{२७}$+	$१२३७\frac{१}{२७}$+	= ९०००+
देशघातिद्रव्य	१४०००	$८६६६\frac{२}{३}$	$६८८८\frac{८}{९}$	$६४४४\frac{४}{९}$	×	= ३६०००
कुल जोड़	१७२००	$१०५३३\frac{१}{३}$	$८३११\frac{१}{९}$	$७७१८\frac{१४}{२७}$	$१२३७\frac{१}{२७}$	= ४५०००

इसी प्रकार दर्शनावरण की ९ प्रकृतियों में भी सर्वघाति और देशघातिरूप विभाजन होगा उसका क्रम इस प्रकार है -

स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। इनमें से ५ निद्रा और केवलदर्शनावरण सर्वघाति व शेषप्रकृति देशघाति हैं।

अन्तरायकर्म की ५ प्रकृति देशघाति हैं। इनमें अधिकक्रम से कर्मपरमाणुका विभाजन होगा। अधिकपरमाणु अन्तिम वीर्यान्तरायप्रकृतिको, उससे कम उपभोगान्तराय को, उससे कम भोगान्तरायको, इससे कम लाभान्तराय को एवं सबसे कमद्रव्य दानान्तरायप्रकृतिको मिलेगा।

अथानन्तर मोहनीयकर्म में विशेषता दिखाते हैं -

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं॥२०२॥

अर्थ - मोहनीयकर्म के मिथ्यात्वादि १७ प्रकृतियों में हीनक्रम से द्रव्य दिया जाता है। सञ्ज्वलनकषाय के समान ५ नोकषाय का बँटवारा जानना।

विशेषार्थ - मोहनीयकर्म में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीलोभ-माया-क्रोध और मान तथा सञ्ज्वलनलोभ-माया-क्रोध व मान, प्रत्याख्यानलोभ-माया-क्रोध व मान, अप्रत्याख्यानावरणलोभ माया-क्रोध व मान इन १७ प्रकृतियों में हीन क्रमसे द्रव्य देना एवं पाँच नोकषाय का द्रव्य सञ्ज्वलन के समान है। ९ नोकषाय में से एक समय में युगपत् पाँचप्रकृतिबन्ध होता है, अतः यहाँ पाँच ही नोकषाय कही। तीनवेदों में से एकही वेदका, रति-अरति में से एकका, हास्य-शोक में से एकका तथा भय-जुगुप्सा का इस प्रकार युगपत् पाँच नोकषाय बँधती हैं।

अथान्तर इनके विभाग का क्रम दिखाते हैं -

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं।
इगि भागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं॥२०३॥

अर्थ - नोकषाय और सञ्ज्वलन को बहुभाग द्रव्य मिला था इस द्रव्य में से आधा नोकषाय का और उसमें एकभाग सहित बहुभाग का आधा सञ्ज्वलन का द्रव्य है।

विशेषार्थ - मोहनीयकर्म के सम्पूर्णद्रव्य का प्रमाण पहले बताया जा चुका है, उसमें अनन्तका भाग देने पर एक भाग तो सर्वघाति है और बहुभागदेशघाति है। देशघातिद्रव्य में आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देना तथा जो लब्ध आया उसमें से एक भाग पृथक् रखकर बहुभाग का आधाभाग नोकषायका है और शेष एक भाग सहित बहुभाग का आधा सञ्ज्वलनकषायका देशघातिद्रव्य होता है। इस प्रकार यह तीन प्रकार का द्रव्य हुआ, इनमें सर्वघातिद्रव्य का विभाग करते हैं -

सर्वघातिद्रव्य में आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देना उसमें से एकभागको पृथक् रखकर शेष बहुभाग के १७ भाग करके एक-एक भाग एक-एक प्रकृति को देना तथा जो एकभाग रहा उसमें

आवली के असंख्यातवेंभाग का भाग देकर बहुभाग मिथ्यात्व को देना, शेष एक भाग में उसी प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धीलोभको देना तथा शेष एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी मायाको देना। इसी क्रम से जो एक-एक भाग शेष रहता जाय उसमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग-बहुभाग अनन्तानुबन्धी क्रोधको, अनन्तानुबन्धीमानको, सञ्ज्वलनलोभको, सञ्ज्वलनमायाको, सञ्ज्वलनक्रोधको, सञ्ज्वलनमानको, प्रत्याख्यानलोभको, प्रत्याख्यानमायाको प्रत्याख्यानक्रोधको, प्रत्याख्यानमानको तथा अप्रत्याख्यानलोभ-माया और क्रोध को देना शेष एक भाग रहा उसे अप्रत्याख्यानमानको देना। पहले जो १७ भाग किए थे उनमें इन दिये हुए भागों को मिलाने पर अपनी-अपनी प्रकृति के सर्वघातिद्रव्यका प्रमाण होता है।

सञ्ज्वलनके देशघातिद्रव्यका जो प्रमाण कहा उसमें प्रतिभागका भाग देकर एकभाग को पृथक् रख शेष बहुभाग के चार समानभाग करके एक-एक भाग चारों सञ्ज्वलनकषायों को तथा जो शेष एक भाग रहा उसमें प्रतिभाग का भाग देकर लब्धराशि में से बहुभाग सञ्ज्वलनलोभको देना और शेष एकभाग में प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग सञ्ज्वलनमाया को देना शेष एक भाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग सञ्ज्वलनक्रोध को देना एवं जो एकभाग शेष रहा वह सञ्ज्वलनमानको देना। इस प्रकार प्रत्येक प्रकृतिको जो भाग दिये गये हैं उनको पूर्व में समानरूप से विभाजित भागों में क्रम से मिलाने पर तद्-तद् प्रकृतिसम्बन्धी देशघातिद्रव्य होता है। इसप्रकार सञ्ज्वलनकी चारकषाय का देशघाति और सर्वघातिद्रव्य मिलाने पर सर्वद्रव्य होता है।

मिथ्यात्व और बारहकषायका द्रव्य सर्वघातिरूप ही है और नोकषाय का द्रव्य देशघातिरूप ही है, अत: अब इन ९ नोकषायों के द्रव्य का विभाग कहते हैं -

सर्वप्रथम जो नोकषायसम्बन्धीद्रव्य कहा था उसमें प्रतिभाग का भाग देकर एकभाग बिना बहुभाग के पांचभाग करके एक-एक भाग पाँचों प्रकृतियों को देना तथा जो एक भाग शेष बचा था उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग तीनों वेदों में से जिसका बन्ध हो उसको देना, शेष एक भाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग रति-अरति में से जिसका बन्ध हो उसको देना तथा शेष एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग हास्य-शोक में से जिसका बन्ध हो उसको देना, शेष एक भाग में प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग भयको देना एवं शेष एकभाग जुगुप्सा को देना। पूर्व में जो समानरूप से पाँचभाग किये थे उनमें उपर्युक्त प्रतिभागविधि से प्राप्त द्रव्य तत्-तत् प्रकृति के द्रव्य में मिलाने पर अपना-अपना द्रव्य होता है।

शंका - अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलन इस प्रकार से क्रम है, किन्तु द्रव्य के विभाजन में इस क्रमको न रखकर अनन्तानुबन्धी-सञ्ज्वलन-प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान ऐसा क्रम क्यों रखा गया है?

समाधान - धर्म की जड़ जो सम्यग्दर्शन, उसको अनन्तानुबन्धी घातती है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ काटने में अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है उसी प्रकार धर्मकी जड़का घात करनेवाली अनन्तानुबन्धी को अधिकद्रव्य दिया गया। चारित्र में सर्वोत्कृष्ट चारित्र 'यथाख्यात' चारित्र है अत: उस उत्कृष्टचारित्र की घातक सञ्ज्वलनकषाय में अन्यकषायों की अपेक्षा अधिकशक्ति होनी चाहिए। जिसप्रकार सामान्यमनुष्य की अपेक्षा प्रधान (President) को मारने के लिए अधिक योजना बनानी पड़ती है उसी प्रकार यहां 'यथाख्यात' संयम की घातक सञ्ज्वलनकषाय के हिस्से में प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यानकषाय की अपेक्षा अधिकद्रव्य दिया गया। प्रत्याख्यानकषाय महाव्रतों को घातती है और अप्रत्याख्यानकषाय अणुव्रतों का घात करती है। हीनपुरुष की अपेक्षा महान् पुरुष का घात करने वाले में तीव्रकषाय होती है इसी कारण प्रत्याख्यानकषाय को अप्रत्याख्यान की अपेक्षा अधिकद्रव्य दिया गया है। यही कारण है कि विभाजनमें अनन्तानुबन्धी-सञ्ज्वलन-प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान, इस प्रकार कषायों का क्रम रखा गया है।[१]

अब नोकषायरूप प्रकृतियों में विशेषता कहते हैं -

तण्णोकसायभागो, सबंधपणणोकसाय पयडीसु।
हीणकमो होदि तहा, देसे देसावरणदव्वं ॥२०४॥

अर्थ - नोकषायके हिस्से में आया हुआ द्रव्य युगपत् बँधनेवाली ५ नोकषायरूप प्रकृतिको क्रम से हीन-हीन देना और इसीप्रकार ज्ञानावरणादिकी देशघातिप्रकृतियों में देशघातिद्रव्य देना।

विशेषार्थ - जो नोकषाय सम्बन्धीद्रव्य है वह युगपत् बँधने वाली ५ नोकषाय को हीनक्रम से देना चाहिए। पुरुषवेद,रति, हास्य, भय और जुगुप्साका बन्ध मिथ्यात्वसे प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होता है। स्त्रीवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्सा का अथवा स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा का बन्ध मिथ्यात्व और सासादन में होता है। नपुंसकवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्सा का अथवा नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पाँच का बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थान में युगपत् होता है। नोकषाय सम्बन्धीद्रव्य का जिसप्रकार पहले विभाग कहा था उसी प्रकार बँधनेवाली इन पाँच प्रकृतियों में क्रम से हीन-हीन द्रव्य देना।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें एक पुरुषवेदका ही बन्ध है, अत: सवेदभागपर्यन्त नोकषायसम्बन्धी

१. कषायपाहुड़ पु. ९ पृ. ९१, ३२० व ३२२।

सभीद्रव्य पुरुषवेदको ही देना। देशघातिरूप सञ्ज्वलनकषाय के देशघातिद्रव्य को जितनी प्रकृतियाँ बँधे उनमें हीनक्रमसे देना। इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान से अनिवृत्तिकरणके दूसरे (क्रोध) भागपर्यन्त चारों कषायों में विभाग करना, तीसरे भाग में जहाँ क्रोधका बन्ध नहीं है वहाँ तीन प्रकृतियों में तथा चतुर्थभागमें जहाँ मानका भी बन्ध नहीं है वहाँ दो प्रकृतियों में और पञ्चमभाग में जहाँ मायाका भी बन्ध नहीं है वहाँ सञ्ज्वलनका देशघातिरूप सर्वद्रव्य एक लोभप्रकृतिको ही देना। इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से हीन-हीन द्रव्य जानना।

अब नोकषायका बन्ध निरन्तर कितने कालपर्यन्त होता है यह कहते हैं -

पुंबंधऽद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्हि हस्स जुगले य।
अरदिदुगे संखगुणा णपुसकऽद्धा विसेसहिया॥२०५॥

अर्थ - (मिथ्यात्वगुणस्थान में) पुरुषवेदके निरन्तर बँधने का काल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदका उससे संख्यातगुणा, हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा, अरति व शोकका उससे संख्यातगुणा और नपुंसकवेदका काल उससे भी कुछ अधिक जानना। (यह सर्वकाल पृथक्-पृथक् रूप से भी अन्तर्मुहूर्त ही है।)

विशेषार्थ - मिथ्यादृष्टिजीव के पुरुषवेदका निरन्तर बँधने का काल (बीच में किसी अन्यवेदका बन्ध न हो) अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् वह संख्यातगुणा संख्यातआवली प्रमाण है और इसकी सहनानी दोगुणा अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदके निरन्तर बँधने का काल उससे भी संख्यातगुणा है उसकी सहनानी ४ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा है और उसकी सहनानी १६ गुणा अन्तर्मुहूर्त है, अरति व शोकके बँधने का काल उससे भी संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ३२ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद के निरन्तर बँधने का काल उससे भी कुछ अधिक है इसकी सहनानी ४२ गुणा अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार तीनों वेदों का काल मिलाने पर उसकी सहनानी की अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्त तथा हास्य-शोक और रति-अरतिका काल मिलाने पर भी ४८ अन्तर्मुहूर्त होते हैं। यहाँ मिले हुए कालको प्रमाणराशि मानकर और पिण्डरूपद्रव्य को फलराशि तथा अपने-अपने कालको इच्छाराशि मानकर त्रैराशिकद्वारा लब्धराशि में अपने-अपने द्रव्य का प्रमाण प्राप्त होता है।

यहाँ सत्ता में स्थित तीनोंवेदसम्बन्धीद्रव्य में मिले हुए कालकी सहनानीरूप ४८ अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो प्रमाण हो उसको पुरुषवेदके काल को सहनानी दो अन्तर्मुहूर्त से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना पुरुषवेदसम्बन्धी द्रव्य जानना, यह द्रव्य सबसे स्तोक है तथा स्त्रीवेद के काल की सहनानी ४ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना स्त्रीवेदका द्रव्य है, यह द्रव्य पुरुषवेदके द्रव्य से संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदसम्बन्धी कालकी सहनानी ४२ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त

हो उतना नपुंसकवेदसम्बन्धी द्रव्य है, यह द्रव्य स्त्रीवेद के द्रव्य से संख्यातगुणा है। रति व अरतिसम्बन्धी द्रव्य को सन्दृष्टि की अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर जो प्रमाण हो उसको सन्दृष्टि की अपेक्षा रति के काल १६ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह रतिनोकषायसम्बन्धीद्रव्य जानना, यह स्तोक है तथा अरतिके काल ३२ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह अरतिनोकषायसम्बन्धीद्रव्य जानना, यह रतिके द्रव्य से संख्यातगुणा है तथा हास्य और शोक सम्बन्धी जो द्रव्य है उसको सहनानी की अपेक्षा ४८ अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उसको हास्य के कालकी सन्दृष्टि १६ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह हास्य सम्बन्धीद्रव्य है यह शोकके द्रव्य से संख्यातगुणा कम है। शोकके काल ३२ अन्तर्मुहूर्त से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह शोकका द्रव्य है वह द्रव्य हास्यके द्रव्य से संख्यातगुणा है।

इस प्रकार युगपत् बन्धको प्राप्त होनेवाली पाँच नोकषायों में पूर्वोक्त क्रम से घटता-घटताद्रव्य कहा, तथापि पिण्डरूप में परस्पर नानाकाल में एकत्रित होने की अपेक्षा द्रव्य का विभाजन अपने-अपने बन्ध काल में इस प्रकार से होता है, यहाँ तीनों वेदों का एक पिण्ड, रति-अरतिका एकपिण्ड तथा हास्य-शोकका एकपिण्ड जानना। इस प्रकार पूर्वोक्तपिण्डका द्रव्य बँधता है।

अन्तरायकर्म की पाँच प्रकृतियों में तथा नामकर्म के बन्धस्थानों में जो क्रम है उसे कहते हैं -

पणविग्घे विवरीदं सबंधपिंडदरणामठाणेवि।
पिंडं दव्वं च पुणो, सबंधसगपिंडपयडीसु॥२०६॥

अर्थ - अन्तरायकर्म की पाँचों प्रकृतियों में विपरीत क्रम है तथा नामकर्म के स्थानों में जो एक ही काल में बन्धको प्राप्त होनेवाली गति आदि पिण्डप्रकृति और अगुरुलघुआदि अपिण्डरूप प्रकृतियाँ हैं इनमें भी विपरीत ही क्रम है। इस प्रकार प्रदेश या परमाणुके बन्ध का विधान विपरीतक्रम से कहा।

विशेषार्थ - युगपत् जिसका बन्ध हो ऐसे नामकर्म की २३ प्रकृतियों के बन्धका स्थान है उसमें पायी जाने वाली प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं -

तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, हुण्डकसंस्थान, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त व साधारण,अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण इन २३ प्रकृतियों का युगपत् बन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यंच करता है। सो यह स्थान साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक भव को प्राप्त करने के योग्य है। अर्थात् इसका बन्ध करने वाला मर कर साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक भव में उत्पन्न होता है। अब इनका विभाग दिखाते हैं -

पहले मूल प्रकृतियों के विभाजन में नामकर्मसम्बन्धी जो द्रव्य कहा था उसमें आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर उसमें से एकभाग को पृथक् रखकर बहुभाग के २१ भाग करना तथा एक-एक भाग एक-एक प्रकृति को देना। २३ प्रकृतियों का जो बन्ध था उनमें औदारिक-तैजस-कार्मण इन प्रकृतियों का शरीरनामक पिण्डप्रकृति में अन्तर्भाव होने से पिण्डप्रकृतिरूप एक ही प्रकार का बन्ध है, अतः यहाँ २१ ही भाग किये हैं तथा जो एक भाग रहा उसमें आवली के असंख्यातवेंभाग (प्रतिभाग) का भाग देकर बहुभाग अन्त में कही हुई निर्माणप्रकृतिको देना तथा अवशेष एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग अयशस्कीर्ति को देना, शेष एकभागमें प्रतिभागका भाग देकर प्राप्त द्रव्यका बहुभाग अनादेयको देना। इसी प्रकार जो एक-एक भाग शेष रहता जावे उसमें प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग-बहुभाग क्रम से दुर्भग, अशुभ, अस्थिर, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, स्थावर, उपघात, अगुरुलघु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण, हुण्डक-संस्थान, शरीरपिण्डप्रकृति और एकेन्द्रियजातिको देना एवं अन्त में जो एकभाग शेष रहा वह तिर्यञ्चगति को देना तथा पहले जो समानरूप २१ भाग किये थे उस एक-एकभागमें प्रतिभागविधिसे प्राप्त तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य मिलाने पर तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य होता है। जिस प्रकार २३ प्रकृतिक बन्धस्थान का कथन किया उसी प्रकार जहाँ २५ प्रकृतिका युगपत् बन्ध हो वहाँ इसी प्रकार २५ प्रकृति में विभाजन करना चाहिए तथैव २६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिके बन्ध में भी विभाजन जानना। जहाँ एक यशस्कीर्ति का ही बन्ध है वहाँ नामकर्मसम्बन्धी सम्पूर्णद्रव्य उस एकप्रकृतिको ही देना। इन स्थानों में जिनका युगपत् बन्ध हो उन पिण्डप्रकृतियों के भेदों का विभाजन एक पिण्डप्रकृति के द्रव्य में विपरीत क्रम से अधिक-अधिक जानना। जिस प्रकार २३ प्रकृतिस्थान में एक शरीरनामा पिण्डप्रकृति के तीनभेद पाये जाते हैं तो वहाँ शरीर-प्रकृतिके हिस्सेमें जो द्रव्य आया उसमें प्रतिभागका भागदेकर बहुभागके तीनभाग करके एक-एक समानभाग तीनों को देना शेष एक भाग में प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग कार्मण को देना तथा अवशिष्ट एकभाग में प्रतिभाग का भाग देकर लब्धद्रव्य का बहुभाग तैजसको देना एवं शेष एक भाग औदारिकशरीर का द्रव्य जानना। इस प्रकार प्रतिभाग विधि से प्राप्त अपने-अपने द्रव्यको पूर्व में जो समानरूप से तीनभाग किये थे उनमें मिलाने से तत्-तत् प्रकृतिका द्रव्य होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना तथा जहाँ पिण्डप्रकृति में एकही प्रकृति का बन्ध हो वहाँ पिण्डप्रकृति का सर्वद्रव्य एक प्रकृतिको देना और ४१ जीवपदों में नामकर्म के स्थानों का जैसे बन्ध होता है उस कथन को आगे स्थान समुत्कीर्तन अधिकार में कहेंगे वहाँ से जानना। इस प्रकार प्रदेशबन्धके कथन में द्रव्य का विभाजन कहा वह एक-एक समय में जो एकसमयप्रबद्ध बँधता है वहाँ समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं में जिस-जिस प्रकृति का जितना-जितना द्रव्य कहा उतने-उतने परमाणु उस-उस प्रकृतिरूप होकर परिणत होते हैं, ऐसा भावार्थ जानना। कोई बहुभाग और समभागादि के विषय को न समझे उसके लिए अङ्क सन्दृष्टि में दृष्टान्त कहते हैं -

सर्वद्रव्यका प्रमाण ४०९६ है, इसका विभाजन चार स्थानों पर करना। प्रतिभाग का प्रमाण ८

है अत: ४०९६÷८ = ५१२ प्रमाण लब्ध हुआ। इस एकभागबिना शेष बहुभाग ४०९६-५१२ = ३५८४ को चार का भाग देने पर ३५८४÷ ४ = ८९६ लब्ध आया सो, यह चार भागों में प्रत्येक का प्रमाण जानना। शेष एक भाग (५१२) में प्रतिभाग ८ का भाग देने पर ५१२÷८ = ६४ लब्ध आया इसको पृथक् रखकर शेष बहुभाग ५१२-६४=४४८ प्रमाणद्रव्य अधिकद्रव्यवाले को देना। शेष एकभागको प्रतिभागसे भाग देनेपर (६४÷८)=८ लब्ध आया सो इसको पृथक् रखकर अवशिष्ट बहुभाग ६४-८ = ५६ को उससे (पूर्वोक्त अधिक द्रव्यवाले से) हीनद्रव्यवाले को देना। शेष एक भाग (८) को प्रतिभाग (८) से भाग देनेपर ८÷८=१ लब्ध आया सो इसके बिना बहुभागप्रमाण द्रव्य ८-१ = ७ उससे भी हीनद्रव्यवाले को देना तथा जो शेष एक भाग है वह उससे भी हीनद्रव्यवालेको देना। इनको पूर्व में किये ८९६ प्रमाण समानभागरूप स्वकीय-स्वकीयद्रव्य में मिलानेपर क्रमश: १३४४, ९५२, ९०३, ८९७ हुआ। इस प्रकार सर्व ४०९६ प्रमाणसमयप्रबद्धद्रव्य का चार भागों में विभाजन जानना। इसी प्रकार पूर्वोक्त सभी प्रकृतियों का विभाजन होगा।

अब उत्कृष्टादि प्रदेशबन्ध के सादि इत्यादि भेद मूलप्रकृतियों में कहते हैं -

छण्हंपि अणुक्कस्सो, पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु।
सेसतिये दुवियप्पो, मोहाऊणं च दुवियप्पो॥ २०७॥

अर्थ - ज्ञानावरणादि ६ कर्मों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेद से चार प्रकार का है तथा शेष उत्कृष्टादि तीन प्रकार के प्रदेशबन्ध में सादि और अध्रुवरूप दो भेद हैं। मोहनीय व आयुकर्म का उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-अजघन्य-जघन्य प्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवके भेद से दो प्रकार का है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में मोहनीय और आयुकेबिना ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म का बन्ध होता है। समयप्रबद्धका कुलद्रव्य इन छहों कर्मों को मिलने से ज्ञानावरणादि छहों कर्मों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में होता है। जिन्होंने सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान को प्राप्त नहीं किया उनके इन ज्ञानावरणादि छहकर्मों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध अनादि है। जो उपशमश्रेणी से गिर गये हैं उनके इन ६ कर्मों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि है तथा भव्य के अध्रुव एवं अभव्य के ध्रुवबन्ध होता है।

मोहनीयकर्म का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टिजीव के होता है जो पुन: पुन: प्राप्त हो सकता है, अत: मोहनीयकर्म का उत्कृष्ट व अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। इनसातों कर्मों का जघन्यप्रदेशबन्ध सूक्ष्मएकेन्द्रियअपर्याप्तके प्रथमसमय में होता है। सो वह पुन: पुन: प्राप्त होता रहता है इसलिए इन सातों कर्मों का जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। आयुकर्म का प्रदेशबन्ध निरन्तर नहीं होता अत: आयुका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यप्रदेशबन्ध सादि एवं अध्रुवरूप होता है[१]।

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. १३।

मूलप्रकृतिसम्बन्धी चतुर्विधप्रदेशबन्धमें सादि इत्यादि चार प्रकार के बन्ध सम्बन्धी सन्दृष्टि —

प्रदेश बन्ध के प्रकार	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अन्तराय
उत्कृष्ट	२	२	२	२	२	२	२	२
अनुत्कृष्ट	४	४	४	२	२	४	४	४
अजघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२
जघन्य	२	२	२	२	२	२	२	२

नोट – उपर्युक्त सन्दृष्टि में जहाँ २ का अङ्क लिखा है उसका अभिप्राय सादि और अध्रुव एवं जहाँ ४ का अङ्क लिखा है वह सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है ऐसा जानना।

अब उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी कथन करते हैं -

तीसण्हमणुक्कस्सो, उत्तरपयडीसु चदुविहो बंधो।
सेसतिये दुवियप्पो, सेसेचउक्केवि दुवियप्पो॥२०८॥

अर्थ – उत्तरप्रकृतियों में ३० प्रकृतियों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव के भेद से चारों प्रकार का है, अवशेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्यप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुव के भेद से दो प्रकार का है तथा शेष ९० प्रकृतियों का उत्कृष्टादि चारों प्रकार का प्रदेशबन्ध सादि-अध्रुव के भेद से दो प्रकार का ही है।

अथानन्तर ३० प्रकृतियों के नाम गिनाते हैं -

णाणंतरायदसयं, दंसणछक्कं च मोहचोद्दसयं।
तीसण्हमणुक्कस्सो, पदेसबंधो चदुवियप्पो॥२०९॥

अर्थ – पाँचज्ञानावरण, ५ अन्तराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवलदर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण-सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया और लोभ, भय, जुगुप्सा इन सर्व ३० प्रकृतियों के अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि इत्यादिरूप से चारप्रकार के हैं। सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव का स्वरूप पहले कहा था वही जानना।

विशेषार्थ - इन ३० प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध श्रेणी में होता है, किन्तु अप्रत्याख्यानावरणकषाय का चतुर्थगुणस्थान में और प्रत्याख्यानावरण का पञ्चमगुणस्थानमें होता है, अतः जो श्रेणीपर आरूढ़ नहीं हुए अथवा चतुर्थ व पञ्चमगुणस्थान को प्राप्त नहीं हुए उनके इन ३० प्रकृतियों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध अनादि है, जो चढ़कर पुनः गिर गये हैं उनके सादि है भव्य की अपेक्षा अध्रुव और अभव्य की अपेक्षा ध्रुव है। शेष कर्मों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवों के सम्भव होने से पुनः पुनः हो सकता है, अतः शेष प्रकृतियों का अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध सादि व अध्रुवरूप होता है। आयु के अतिरिक्त सर्वप्रकृतियों का जघन्यप्रदेशबन्ध सूक्ष्मएकेन्द्रियअपर्याप्तक जीव के भव के प्रथम समय में होता है जो पुनः-पुनः हो सकता है। आयुकर्म का बन्ध तो आठअपकर्षकाल में ही होता है, अतः ३० प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध तथा शेष प्रकृतियों का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्यप्रदेशबन्ध कादाचित्क होने से सादि और अध्रुव है।

उत्तरप्रकृतिसम्बन्धी चतुर्विधप्रदेशबन्ध में सादि इत्यादि ४ भेदों की सन्दृष्टि

प्रदेशबन्ध के प्रकार	तीसप्रकृति	नब्बेप्रकृति
उत्कृष्ट	२	२
अनुत्कृष्ट	४	२
अजघन्य	२	२
जघन्य	२	२

अथानन्तर उत्कृष्टप्रदेशबन्ध होने की सामग्री बताते हैं -

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीदं॥२१०॥

अर्थ - जो जीव उत्कृष्टयोगों से सहित हो, सञ्ज्ञीपर्याप्त और अल्पप्रकृतियों का बन्धक होता है, वही जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्ध को करता है तथा जघन्यप्रदेशबन्ध में इससे विपरीत जानना अर्थात् जघन्ययोग से सहित असञ्ज्ञीअपर्याप्त बहुतप्रकृतियों का बन्धक जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

आगे मूल प्रकृतिसम्बन्धी उत्कृष्टबन्धका स्वामित्व गुणस्थानों की अपेक्षा कहते हैं -

आउक्कस्स पदेसं, छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणं तणुकसाओ, बंधदि उक्कस्सजोगेण॥२११॥

अर्थ - आयुकर्म का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध तृतीयगुणस्थान को छोड़कर प्रथमगुणस्थान से सप्तमगुणस्थान तक छहगुणस्थानवर्ती जीव करते हैं। मोहनीयकर्म का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध नवम गुणस्थानवर्तीजीव करता है। शेष ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्र और अन्तरायका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध उत्कृष्टयोगों का धारी सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्तीजीव करता है। इन तीनों स्थानों में उत्कृष्टयोगद्वारा अल्पप्रकृतिबन्धकजीव उपर्युक्त मूल प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ - उत्कृष्टयोग के साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, नाम, गोत्र और वेदनीय इन छह कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशामक या क्षपक ज्ञानावरणादि छहोंकर्मों का उत्कृष्टप्रदेशबन्धक है। उत्कृष्टयोग के साथ सात प्रकार के कर्मों का बन्ध करनेवाला सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त चारोंगति का पञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञी, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिजीव मोहनीयकर्म का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है तथा उत्कृष्टयोग के साथ आठ कर्मोंका बन्ध करनेवाला सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त चारों गति का पञ्चेन्द्रियसञ्ज्ञी, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टिजीव आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है।[१] सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान में आयुकर्म का बन्ध नहीं होता और अप्रमत्तगुणस्थान में आयुकर्म की बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, अतः आयुकर्मका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त व अप्रमत्त इन ६ गुणस्थानों में ही सम्भव है।

आगे उत्तरप्रकृतियों में उत्कृष्टप्रदेश का स्वामित्व तीनगाथाओं में कहते हैं -

सत्तर सुहुमसरागे, पंचऽणियट्टिम्हि देसगे तिदियं।
अयदे विदियकसायं, होदि हु उक्कस्सदव्वं तु॥२१२॥

छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी।
सम्मो वामो तेरं, णरसुरआऊ असादं तु॥२१३॥

देवचउक्कं वज्जं, समचउरं सत्थगमणसुभगतियं।
आहारमप्पमत्तो, सेसपदेसुक्कडो मिच्छो॥२१४॥ विसेसयं।

अर्थ - ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय इन १७ प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में होता है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में पुरुषवेद और चारसञ्ज्वलनकषाय, इन ५ प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध है, देशविरतगुणस्थान में प्रत्याख्यानकी चारकषाय, असंयतगुणस्थानवर्ती जीव अप्रत्याख्यानकी चार कषाय और हास्यादि ६

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. १४-२४।

नोकषाय, निद्रा-प्रचला और तीर्थङ्करका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करता है। मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय-देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर व आदेय इन १३ प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव करता है और आहारकद्विकका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध अप्रमत्तगुणस्थान में होता है। इन ५४ प्रकृतिबिना शेष ६६ प्रकृतियों का उत्कृष्टप्रदेशबन्ध मिथ्यादृष्टिजीव करता है॥२१२-२१३-२१४॥

विशेषार्थ - छह[१] मूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्टयोग से युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध में अवस्थित अन्यतर उपशामक और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत पांच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवल इन चारदर्शनावरण, सातावेदनीय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र और पाँचअन्तराय इन प्रकृतियों के उत्कृष्टप्रदेश बन्ध का स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त सातमूल प्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्टयोग से युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध में वर्तमान अन्यतर चारगतिका सञ्जीपञ्चेन्द्रिय-मिथ्यादृष्टिजीव स्त्यानगृद्धि आदि तीनदर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क,स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रके उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ सातप्रकार के कर्मों का बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगयुक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्धमें अवस्थित अन्यतर चारगतिका सम्यग्दृष्टिजीव है। सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोगसे युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध में वर्तमान अन्यतर चारगतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि असातावेदनीय के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त सातमूल प्रकृतियों का बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोग से युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध में वर्तमान अन्यतर चारगतिका असंयतजीव है। प्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्कके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी सातमूल प्रकृतियों का बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोग से युक्त और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध में वर्तमान अन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य संयतासंयतजीव है। चार सञ्ज्वलनकषायों का बंध करनेवाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर अनिवृत्तिकरणउपशामक या क्षपक क्रोधसञ्ज्वलन के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। तीन सञ्ज्वलनकषायों का, दो सञ्ज्वलन कषायों का और एक सञ्ज्वलन कषाय का बन्ध करने वाला उक्त अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशमक या क्षपक क्रमश: मान, माया व लोभ के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। इसी प्रकार पुरुषवेद की अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्व जानना। इतनी विशेषता है कि जो मोहनीयकर्म की पाँच प्रकृतियों का बन्ध कर रहा है और उत्कृष्ट योग से युक्त है, वह पुरुषवेद के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त आठों कर्मों का बन्ध करनेवाला उत्कृष्टयोग से युक्त मिथ्यादृष्टि सञ्ज्ञीतिर्यञ्च या मनुष्य नरकायु के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त आठों कर्मों का बन्ध करने वाला और

१. महाबन्ध पुस्तक ६ पृष्ठ ९२ के पेरा नं. १७२ से प्रारम्भ

उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर चारोंगति का सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टिजीव तिर्यञ्चायु के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त आठों कर्मों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्टयोगसे युक्त अन्यतर चारोंगतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टिजीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त आठों कर्मों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर चारगतिका सञ्ज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देव व नारकी मनुष्यायु के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त उत्कृष्टयोग से युक्त आठ प्रकार के कर्मों का बंध करने वाला और उत्कृष्ट योग से युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीतिर्यञ्च व मनुष्य मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवायुके उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्म की नरकसम्बन्धी २८ प्रकृतियों के साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्टयोग से युक्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यमिथ्यादृष्टि नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वर के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्म की २३ प्रकृतियों के साथ सात मूल प्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर संज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डकसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण इन नामकर्म की २५ प्रकृतियों के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है। सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्म की २५ प्रकृतियों के साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य नामकर्म की मनुष्यगति, ४ जाति, औदारिकशरीरअङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और त्रस इन नौ प्रकृतियों के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त देवगतिसम्बन्धी नामकर्म की २८ प्रकृतियों के साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि या सम्यदृष्टि देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरअङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय इन नामकर्म की ९ प्रकृतियों के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। नामकर्म की ३० प्रकृतियोंके साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयत आहारकशरीर व आहरकशरीरअङ्गोपाङ्गके उत्कृष्टप्रदेशवन्ध का स्वामी है। सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्म की २९ प्रकृतियों के साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करनेवाला और उत्कृष्टयोग सहित चारों गति का सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिजीव चारसंस्थान और चारसंहनन के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है यही जीव वज्रर्षभनाराचसंहनन के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है, किन्तु मिथ्यादृष्टिके स्थान पर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि कहना चाहिए। सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्मकी २५ प्रकृतियों के साथ सात मूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्ट योग से युक्त सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य अथवा देवनामकर्म की परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभ इन पाँच प्रकृतियों के उत्कृष्टप्रदेशबन्धका स्वामी है। आतप और उद्योतप्रकृतिके उत्कृष्टप्रदेशबन्ध

का स्वामी भी उक्त जीव ही है, किन्तु २५ प्रकृतियों के स्थान पर २६ प्रकृतियाँ कहनी चाहिए। सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त नामकर्म की २९ प्रकृतियों के साथ सातमूलप्रकृतियों का बन्ध करने वाला और उत्कृष्टयोग से युक्त अन्यतर सम्यग्दृष्टिमनुष्य तीर्थङ्करप्रकृति के उत्कृष्टप्रदेशबन्ध का स्वामी है।[१]

अब मूलप्रकृतिमें जघन्यप्रदेशबन्धसम्बन्धी स्वामित्व कहते हैं -

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे।
सत्तण्हं तु जहण्णं, आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

अर्थ - सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजीव अपनी पर्याय के प्रथमसमय में जघन्य उपपादयोग से आयुबिना सातमूल प्रकृतियों का जघन्यप्रदेशबन्ध करता है। पश्चात् आयुका बन्ध होने पर उसीजीव के आयुकर्म का भी जघन्यप्रदेशबन्ध होता है।

अथानन्तर उत्तरप्रकृतियों में प्रदेशबन्धसम्बन्धी स्वामित्व कहते हैं -

घोडणजोगोऽसण्णी, णिरयदुसुरणिरयआउगजहण्णं।
अपमत्तो आहारं, अयदं तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

अर्थ - घोटमानयोगों का धारक असञ्ज्ञीजीव नरकद्विक, नरकायु और देवायुका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है तथा आहारकद्विकका अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव जघन्यप्रदेशबन्ध करता है क्योंकि अपूर्वकरण से वह अधिक प्रकृतियों को बाँधता है। असंयतगुणस्थानवर्तीजीव तीर्थङ्करप्रकृति और देवचतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग) इन ५ प्रकृतियों का जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ - घोटमान योग - जिन योगस्थानों की वृद्धि भी हो, हानि भी हो अथवा जैसे के तैसे भी रहें, उन योगस्थानों को घोटमान योग कहते हैं । नामकर्म की ३१ प्रकृतियों के साथ आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध करने वाला और घोटमान जघन्ययोग से युक्त अन्यतर अप्रमत्तसंयतजीव आहारकद्विक (आहारकशरीर व आहारकशरीरअङ्गोपाङ्ग) का जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।[२] नामकर्म की २९ प्रकृतियों के साथ सातमूलकर्मोंका बन्ध करने वाला और जघन्ययोग से युक्त प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टिमनुष्य देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।[३] नामकर्म की ही ३० प्रकृतियों के साथ सातप्रकार के कर्मों का बन्ध करनेवाला और जघन्यउपपादयोग से युक्त प्रथमसमयवर्ती तद्भवस्थ अन्यतर देव या नारकी तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।[४]

---

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. ९५ पर समाप्त। २. महाबन्ध पु. ६ पृ. ११५।
३. महाबन्ध पु. ६ पृ. ११४। ४. महाबन्ध पु. ६ पृ. ११५।

उपर्युक्त गाथा कथित ११ प्रकृतिबिना शेष उत्तरप्रकृतियों में विशेषता दिखाते हैं -

चरिमअपुण्णभवत्थो, तिविग्गहे पढमविग्गहम्हि ठिओ।
सुहुमणिगोदो बंधदि, सेसाणं अवरबंधं तु॥२१७॥

अर्थ - ६०१२ क्षुद्रभवों में से अन्तिम क्षुद्रभव में स्थित और विग्रहगति के तीनमोड़ा में से प्रथममोड़े में स्थित सूक्ष्मनिगोदियाजीव उपर्युक्त गाथा कथित ११ प्रकृति बिना शेष १०९ प्रकृतियों का जघन्यप्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ - उपर्युक्त सूक्ष्मनिगोदियाजीव के सबसे जघन्य उपपादयोग होता है जो अनन्तरवर्तीसमय में एकान्तानुवृद्धियोगरूप हो जाने से वृद्धिको प्राप्त हो जाता है इसीलिए उपर्युक्त जीवके प्रथमसमय में जघन्यप्रदेशबन्ध होता है।

इस प्रकार जघन्य और उत्कृष्टप्रदेशबन्ध के स्वामी कहे। जहाँ पर उत्कृष्ट अर्थात् सबसे अधिक परमाणु बंधते हैं वह उत्कृष्टप्रदेशबन्ध है तथा जहाँपर अल्पतम कार्माणपरमाणुओं का बन्ध होता है वह जघन्यप्रदेशबन्ध है। चार प्रकार के बन्ध में पहले जो प्रकृतिबन्ध कहा वह मूल व उत्तरप्रकृतिरूप है। उनमें से एकजीव के एकसमय में युगपत् बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियों के जघन्यादि भेदरूप स्थिति-अनुभाग और प्रदेशरूपबन्ध होता है।

एक जीव के एककालसम्बन्धी बन्धयोग्यप्रकृतियों की गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि

गुणस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अन्तराय	एकजीव के एक काल में बन्धयोग्य कुल प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	५	९	१	२२	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०	१	५	६७-६९-७०-७२-७३-७४
सासादन	५	९	१	२१	१	२८-२९-३०	१	५	७१-७२-७३
मिश्र	५	९	१	१७	०	२८-२९	१	५	६३-६४
असंयत	५	६	१	१७	१	२८-२९-३०	१	५	६४-६५-६६
देशसंयत	५	६	१	१३	१	२८-२९	१	५	६०-६१
प्रमत्त	५	६	१	९	१	२८-२९	१	५	५६-५७
अप्रमत्त	५	६	१	९	१	२८-२९-३०-३१	१	५	५६-५७-५८-५९
अपूर्वकरण	५	६-४	१	९	०	२८-२९-३०-३१-१	१	५	५५-५६-५७-५८-२६
अनिवृत्ति - करण	५	४	१	५-४-३-२-१	०	१	१	५	२२-२१-२०-१९-१८
सूक्ष्म - साम्पराय	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
उपशान्तमोह	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षीणमोह	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सयोगी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
अयोगी	०	०	०	०	०	०	०	०	०
कुल योग	५	९-६-४	१	२२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२-१	१	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१	१	५	७४-७३-७२-७१-७०-६९-६६-६५-६४-६३-६१-६०-५९-५८-५७-५६-५५-२६-२२-२१-२०-१९-१८-१७ और १

आगे प्रकृति और प्रदेशबन्ध के कारणरूप योगस्थान का स्वरूप-संख्या और स्वामी ४२ गाथाओं से कहते हैं –

जोगट्ठाणा तिविहा, उववादेयंतवड्ढिपरिणामा।
भेदाएक्केक्कंपि य, चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

अर्थ – योगस्थान तीनप्रकार के हैं - उपपादयोगस्थान, एकान्तवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान तथा इनमें भी १४ जीवसमासकी अपेक्षा प्रत्येक के १४-१४ भेद हैं उनमें भी प्रत्येकके जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्यअनुत्कृष्ट के भेद से तीन भेद हैं।

विशेषार्थ – उत्पन्न होने के प्रथमसमय में उपपादयोग होता है, द्वितीय समय से लेकर शरीरपर्याप्ति से अपर्याप्त रहने के अन्तिमसमय तक एकान्तानुवृद्धियोग होता है। विशेष इतना है कि लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबन्धके योग्य काल से नीचे अर्थात् अपने जीवितके दो त्रिभाग में एकान्तानुवृद्धियोग होता है। एकान्तानुवृद्धियोग के पश्चात् परिणामयोग होता है।[1] सात लब्ध्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान, एकान्तानुवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान अर्थात् तीनों ही योगस्थान होते हैं। सात निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान व एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। सात निवृत्तिपर्याप्तकों के परिणामयोगस्थान ही होता है।[2]

आगे उपपादयोगस्थान का स्वरूप कहते हैं -

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा।
विग्गहइजुगदिगमणे जीवसमासे मुणेदव्वा ॥२१९॥

अर्थ - उपपादयोगस्थान की एकसमय की स्थिति होती है, मोड़ेवाली विग्रहगति के प्रथमसमय में जघन्यउपपादयोगस्थान होता है, तथा जो जीव बिना मोड़ा के ऋजुगति से सीधा जाकर नवीनपर्याय को धारणकरे उसके प्रथमसमय में उत्कृष्ट उपपादयोगस्थान होता है वे उपपादयोगस्थान १४ जीवसमासों में जानना चाहिए।

विशेषार्थ – **शंका** – पर्याय धारण करनेके प्रथमसमयमें तो अपर्याप्तावस्था ही है वहाँ पर्याप्तजीवसमास में उपपादयोगस्थान कैसे कहा?

समाधान – निर्वृत्त्यपर्याप्तजीव के पर्याय धारण करने के प्रथमसमय में जो योगस्थान होता है वह पर्याप्तजीवसमास में उपपादयोगस्थान जानना, क्योंकि उसके पर्याप्तनामकर्मका उदय है और

१. धवल पु. १० पृ. ४२० २. धवल पु. १० पृ. ४०३

लब्ध्यपर्याप्तकजीव के पर्याय के प्रथम समय में जो योगस्थान होता है वह अपर्याप्तजीवसमास में उपपादयोगस्थान जानना, क्योंकि उसे अपर्याप्तनामकर्मका उदय है। 'उपपद्यते' अर्थात् जीवके द्वारा पर्यायके प्रथमसमय में प्राप्त किया जाए वह उपपाद है, इस उपपादयोगस्थान के सर्वमान्य को आदि से लेकर जो भेद हैं वे जीवकी नवीनपर्याय धारण करने के प्रथमसमय में ही होते हैं। उसका जघन्य व उत्कृष्टकाल एक समय है।[१] विग्रहगति में वर्तमान जीव के तद्भवस्थ होने के प्रथमसमय में जघन्यउपपादयोग होता है।[२] ऋजुगति से तद्भवस्थ होने के प्रथमसमय में उत्कृष्टउपपादयोग होता है।

अब परिणामयोगस्थान का स्वरूप कहते हैं -

परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति।
लद्धिअपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोधव्वा ॥२२०॥

अर्थ - शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने के समय से आयु के अन्तपर्यन्त परिणामयोगस्थान होता है और जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है ऐसे लब्ध्यपर्याप्तकजीव के अपनी आयु (श्वासके अठारहवेंभागप्रमाण अर्थात् १ सेकिण्ड के २४ वें भाग प्रमाण) के दो त्रिभाग व्यतीत हो जाने पर शेष अन्तिमत्रिभागके प्रथमसमय से अन्तसमयपर्यन्त स्थिति के सर्वभेदों में उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकार के परिणामयोगस्थान जानना।

विशेषार्थ - पर्याप्त होने के प्रथमसमय से लेकर ऊपर सर्वकाल परिणामयोग होता है। यद्यपि गाथा में व धवल पु. १० पृ. ४२०, ४२२, ४२७ व ४३१ पर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर 'परिणामयोग' होता है ऐसा कहा गया है तथापि ध. पु. १० पृ. ५५ पर कहा है कि 'एक भी पर्याप्तिके अपूर्ण रहने पर पर्याप्तकों में परिणामयोग नहीं होता इस बात के ज्ञापनार्थ "सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ" ऐसा सूत्र में कहा गया है[३]।

लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुबन्धके योग्यकाल में अपने जीवित के त्रिभाग में परिणाम योग होता है। लब्ध्यपर्याप्तकों के आयुअबन्धकाल में ही परिणामयोग होता है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि इसप्रकार से जो जीव परिणामयोग में स्थित है एवं उपपादयोग को नहीं प्राप्त हुआ है उसके एकान्तानुवृद्धियोग के साथ परिणामके (परिणमन) होने से विरोध आता है।[४]

१. "जहण्णुक्कसेण एक्क समओ" धवल पु. १० पृ. ४२०

२. 'पढसमय तब्भवत्थस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स' धवल पु. १० पृ. ४२१

३. एक्काए वि पज्जत्तीए असमत्ताए पज्जत्तएसु परिणामजोगो ण होदि त्ति जाणावणट्ठं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो त्ति उत्तं। (धवल पु. १० पृ. ५५)

४. लद्धिअपज्जत्ताणमाउअबंधकाले चेव परिणामजोगो होदि त्ति के वि भणंति। तण्ण घडदे, परिणामजोगो ट्ठिदस्स अपत्तुववादजोगस्स एयंताणुवड्ढिजोगेण परिणामविरोहादो। (धवल पु. १० पृ. ४२०-२१)

सगपज्जत्तीपुण्णे, उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं।
सव्वत्थ होदि अवरं, लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं वि॥२२१॥

अर्थ- अपनी-अपनी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने पर उसके प्रथम समय से लेकर ऊपर आयु के सब समयों में परिणाम योगस्थान होता है तथा सब समयों में उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य भी होता है। लब्ध्यपर्याप्तकों के अपनी स्थिति के (श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण) अन्तिम त्रिभाग के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय पर्यन्त सब स्थिति के समयों में उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान भी होता है और जघन्य परिणाम योगस्थान भी होता है। पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही प्रकार के जीवों के वे सब परिणाम योगस्थान घोटमान योग ही होते हैं क्योंकि वे घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं और जैसे के तैसे भी रहते हैं॥२२१॥

विशेषार्थ - सूक्ष्म व बादर निर्वृत्तिपर्याप्तकों के शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होने के प्रथमसमय में ही जघन्य परिणामयोग होता है। परम्परापर्याप्तिसे अर्थात् सर्वपर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुए उनके ही उत्कृष्टपरिणामयोग होता है उसके आगे सूक्ष्म व बादर लब्ध्यपर्याप्तकों के उत्कृष्टपरिणामयोग होते हैं।[1] परिणामयोग के संबंध में दो मत हैं। एक मतानुसार सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्तक होने पर परिणामयोग होता है।[2] दूसरे मतानुसार शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के प्रथम समय में परिणामयोग होता है।[3]

अथानन्तर एकान्तानुवृद्धियोगस्थान का स्वरूप कहते हैं -

एयंतवड्ढिठाणा, उभयट्ठाणाणमंतरे होंति।
अवरवरट्ठाणाओ, सगकालादिम्हि अंतम्हि॥२२२॥

अर्थ - उपपादयोग और परिणामयोगरूप दोनों स्थानों के बीच में अर्थात् पर्याय धारण करने के द्वितीयसमय से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्वसमयतक एकअन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्त अपर्याप्तावस्था में एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। उस एकान्तानुवृद्धिका जघन्य स्थान तो अपने काल के प्रथमसमय में और उत्कृष्टस्थान अन्तिमसमय में होता है। अतएव एकान्त अर्थात् नियमसे अपनेसमयों में समय-समय प्रति असंख्यात-असंख्यातगुणी अविभागप्रतिच्छेदों की वृद्धि जिसमें हो वह एकान्तानुवृद्धिस्थान है। इस प्रकार योगों के विशेष १४ जीवसमासों में जानना। लब्ध्यपर्याप्तकों के जीवित के अन्तिम त्रिभाग के नीचे एकान्तानुवृद्धियोग होता है।

---

१. सुहुम-बादराणं णिव्वत्तिपज्जत्तयाणमेदे जहण्णया परिणामजोगा। सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढम समए चेव होदि। तस्सुवरि तेसिं चेव उक्कस्सिया परिणामजोगा। परंपरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स। तदुवरि सुहुम-बादराणं लद्धिअपज्जत्तयाणमुक्कस्सया परिणामजोगा। (धवल पु. १० पृ. ४२२)

२. धवल पु. १० पृ. ५५, सूत्र २४ की टीका। ३. धवल पु. १० पृ. ४२२।

विशेष - योगस्थान अल्पबहुत्व - सात लब्धपर्याप्तकों के उपपाद योगस्थान सबसे स्तोक हैं, उनसे उनके एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणे हैं, उनसे उनके ही परिणाम योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। सात निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपाद योगस्थान सबसे स्तोक हैं, उनसे उनके ही एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। सात निर्वृत्ति पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि परिणाम योगस्थानों को छोड़कर उनमें अन्य योगस्थानों का अभाव है। गुणकार सब जगह पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।[१]

अब योगस्थान के अवयव कहते हैं -

अविभागपडिच्छेदो, वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं।
गुणहाणीवि य जाणे, ठाणं पडि होदि णियमेण॥२२३॥

अर्थ - सर्वजघन्य स्थान अर्थात् सर्वउपपादयोगस्थान, सर्वएकान्तानुवृद्धियोगस्थान व सर्वपरिणामयोगस्थान इन तीनों में से प्रत्येक जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण हैं[२] उनमें एक-एक स्थान के प्रति अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और गुणहानि ये पांच भेद हैं। जगत्श्रेणी अर्थात् सात राजूके जितने प्रदेश होते हैं उनके असंख्यातवेंभाग सर्वयोगस्थानों की संख्या है।

विशेषार्थ - अविभागप्रतिच्छेदों के समूहको वर्ग कहते हैं, वर्ग के समूह को वर्गणा, वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक अथवा जिसमें क्रमवृद्धि और क्रमहानि होती है वह स्पर्धक है[३] तथा स्पर्धकके समूह को गुणहानि कहते हैं एवं गुणहानि के समूहको नानागुणहानि और नानागुणहानिका का समूह योगस्थान है।

आगे इनका स्वरूप कहते हैं -

पल्लासंखेज्जदिमा, गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे।
गुणहाणिफड्डयाओ, असंखभागं तु सेढीये॥२२४॥

अर्थ - एक योगस्थान में गुणहानि की शलाकाएं (संख्या) पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। यह नानागुणहानिका प्रमाण है और एकगुणहानि में स्पर्धक जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण है।

विशेषार्थ - अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा जघन्य योगस्थान में स्पर्द्धक सबसे थोड़े होते हैं। इनसे दूसरे योगस्थान में स्पर्धक विशेष अधिक होते हैं। इनसे तीसरे योगस्थान में स्पर्धक विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थान के प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर विशेष अधिक विशेष अधिक होते हैं। यहाँ विशेष का प्रमाण अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धक हैं।

---

१. धवल पु. १० पृ. ४०४ २. धवल पु. १० पृ. ४०४ ३. धवल पु. १० पृ. ४५२

परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जघन्ययोगस्थान में जो स्पर्धक हैं उनसे जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण स्थान जाकर स्पर्धकों की दूनी वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्कृष्टयोगस्थान के प्राप्त होने तक दूनी-दूनी वृद्धि जानना चाहिए। एकयोग द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण है और नानायोगद्विगुणवृद्धि स्थानान्तर पल्योपमके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है। तदनुसार नानायोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर स्तोक हैं और इनसे एकयोगद्विगुणवृद्धिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं[1]।

फड्डयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥२२५॥

अर्थ - एक-एक स्पर्धक में वर्गणाओं की संख्या उतनी ही अर्थात् जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और एक-एकवर्गणा में असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाणवर्ग हैं।

विशेषार्थ - योग अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान सब जीवप्रदेशों को ग्रहण कर एक वर्गणा होती है। ऐसी जगत्श्रेणिके असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणाएँ मिलकर एकस्पर्धक होता है[2]। जगत्श्रेणी को जगत्श्रेणी से गुणा करना अर्थात् ७ राजू × ७ राजू = ४९ वर्गराजू, इसको जगत्प्रतर कहते हैं। एक वर्गणा में असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण वर्ग हैं तो जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणा में कितने वर्ग होंगे? (वर्गणा में वर्ग) असंख्यातजगत्प्रतर × श्रेणी/असंख्यात (वर्गणाओं की संख्या) = लोकपूर्ण अर्थात् समस्तजीवप्रदेश। अथवा श्रेणीके असंख्यातवेंभाग वर्गणाशलाकाओं में यदि लोकप्रमाण जीवप्रदेश पाये जाते हैं तो एक वर्गणा में कितने प्रदेश पाये जावेंगे, इस प्रकार प्रमाण से फल गुणित इच्छाको अपवर्तित करने पर असंख्यात प्रतर प्रमाण जीव प्रदेश एक-एक वर्गणा में होते हैं[3]।

एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥२२६॥

अर्थ - एक-एक वर्गमें असंख्यातलोकप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद होते हैं और अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण प्रदेशोंमें शक्तिकी जघन्यवृद्धिरूप जानना।

भावार्थ - एक-एक जीवप्रदेश में असंख्यातलोकप्रमाण योगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं[4]। जिसका दूसराभाग न हो सके ऐसे शक्ति के अंशको अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं[5]। यहाँ पर्यन्त विपरीतक्रम से

---

१. महाबन्ध पु. ६ पृ. ७,८ २. ध. पु. १० पृ. ४४३ ३. महाबन्ध पु. ६ पृ. ६।

४. ध. पु. १० पृ. ४४० सूत्र १७८।

५. ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा स्वीकार किया जावे तो जिस प्रकार कर्म के अविभागप्रतिच्छेद अनन्त होते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि योग के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण असंख्यातलोकप्रमाण है ऐसा यहाँ ऊपर गाथा सूत्र में भी कहा गया है। (ध. पु. १० पृ. ४४१)

कथन किया, अत: सीधाक्रम इस प्रकार है कि अविभागप्रतिच्छेदों का समूह वर्ग, वर्ग का समूह वर्गणा, वर्गणाका समूह स्पर्धक, स्पर्धकका समूह गुणहानि, गुणहानिका समूह नानागुणहानि और नानागुणहानि का समूह स्थान है ऐसा समझना चाहिए।

अथानन्तर योगस्थानों में सर्वस्पर्धकादिकों का प्रमाण कहते हैं -

इगिठाणफड्डयाओ, वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी।
सेढि असंखेज्जदिमा, असंखलोगा हु अविभागा ॥२२७॥

अर्थ - एकयोगस्थान में सर्वस्पर्धक, सर्व वर्गणाओं की संख्या और प्रदेशगुणहानिआयाम का प्रमाण सामान्य से जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है। अत: इन सभी का प्रमाण भी सामान्य से श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र ही कहा है। किन्तु वास्तव में वे परस्पर हीनाधिक हैं। एकयोगस्थान में अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ - एकगुणहानि में जो स्पर्धक का प्रमाण है, उसको एकस्थानगत नानागुणहानिके प्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध आया उतने प्रमाण एकयोगस्थान में स्पर्धक हैं। एकस्पर्धकगत वर्गणाओं को एकयोगस्थान में पाये जानेवाले स्पर्धकके प्रमाण से गुणा करने से जो लब्ध आया उतने प्रमाण एकयोगस्थान में वर्गणाएँ होती हैं।

एक स्पर्धक में वर्गणा का प्रमाण जगच्छ्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है उसको एकगुणहानिगत स्पर्धकके प्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण एकगुणहानिसम्बन्धी वर्गणाएँ हैं। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण जगत्श्रेणीके भागहारप्रमाण से असंख्यातगुणाहीन है, अन्यथा श्रेणीके असंख्यातवें भाग की सिद्धि नहीं हो सकती सो उक्त प्रमाण ही गुणहानिआयाम कहलाता है तथा इन सभी को सामान्य से जगच्छ्रेणीका असंख्यातवाँभाग कहते हैं, क्योंकि असंख्यातके बहुत भेद हैं। एक योगस्थानमें समस्तअविभागप्रतिच्छेद असंख्यातलोकप्रमाण ही हैं, कर्मपरमाणुके समान अथवा जघन्यज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदों के समान अनन्त नहीं है, क्योंकि जीवके प्रदेश लोकप्रमाण हैं। तथैव एकस्थानमें नानागुणहानि, पल्यको दोबार असंख्यात का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने प्रमाण है। नानागुणहानि के बराबर दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणाकरने पर जो लब्ध आया वह अन्योन्याभ्यस्तराशि है,इसका प्रमाण एकबार असंख्यातसे भाजित पल्यके बराबर है। एक गुणहानिसम्बन्धी स्पर्धकका प्रमाण दोबार असंख्यातसे भाजित जगच्छ्रेणीप्रमाण है तथा एक बार असंख्यातका भाग जगत्श्रेणी में देने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण एक स्पर्धक में वर्गणाएँ हैं। एकगुणहानिसम्बन्धीस्पर्धकों में एकस्पर्धक की वर्गणा के प्रमाण से गुणित प्रमाणराशि एकगुणहानि की सर्ववर्गणाएँ हैं। इन वर्गणाओं को एकयोगस्थानगत नानागुणहानि से गुणा करनेपर एकयोगस्थानसम्बन्धी समस्तवर्गणाओं का प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार इन नानागुणहानियों को आदि लेकर क्रम से असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा जानना।

सव्वे जीवपदेसे, दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा।
उवरिं उत्तरहीणं, गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥२२८॥

अर्थ - जीवके सर्वप्रदेश लोकप्रमाण हैं उनमें डेढगुणहानिआयामका भाग देने पर जो संख्या आवे वह प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणा होती है।[१] आगे-आगे एक-एक विशेष (चय) घटाने से एक-एक वर्गणा होती है तथा प्रत्येकगुणहानि में प्रथमनिषेकका प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना एवं प्रथमवर्गणाको दो गुणहानिका भाग देने पर जो प्रमाण होता है उतना विशेष (चय) का प्रमाण समझना[२]।

विशेषार्थ - निषेकसम्बन्धी सन्दृष्टि इस प्रकार है - (धवल पु. १० पृ. ७६)

१६	३२	६४	१२८	६४	३२	१६	८	
२०	४०	८०	११२	५६	२८	१४	७	
२४	४८	९६	९६	४८	२४	१२	६	
२८	५६	११२	८०	४०	२०	१०	५	
८८	+१७६	+३५२	+४१६	+२०८	+१०४	+५२	+२६	= १४२२

सन्दृष्टि में गुणहानि का अध्वान ४, योगस्थान का अध्वान ३२, नानागुणहानिशलाकायें ८ (यवमध्य से नीचे की ३ और ऊपर की ५) नीचे व ऊपर की अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण ८, ३२ (ध. पु. १० पृ. ७६) गाथार्थ का स्पष्टीकरण गाथा २२९ के विशेषार्थ में सर्वजीवप्रदेश ३१०० के दृष्टान्त से बताया है।

फड्डयसंखाहि गुणं, जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी।
बिदियादिवग्गणाणं, वग्गा अविभाग अहियकमा ॥२२९॥

अर्थ- जघन्यवर्ग को स्पर्धककी संख्यासे गुणा करने पर उस स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके एक वर्ग का प्रमाण प्राप्त होता है। द्वितीयादिवर्गणा के वर्ग में क्रमशः एक-एक-अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता जाता है।

१. "पढमाए वग्गणाए जीवपदेसपमाणेण सव्वजीवपदेसा केवचिरेण कालेण अवहिरिज्जंति? दिवड्ढ गुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति।" धवल पु. १० पृ. ४४५-४४६।

२. "को विसेसो? दोगुणहाणीहि सेडीहि असंखेज्जदिभागमेत्ताहि पढमवग्गणाजीवपदेसेसु खंडिदेसु तत्थ एगखंडमेत्तो।" धवल पु. १० पृ. ४४४।

विशेषार्थ - "**अविभागपडिच्छेदो**" इत्यादि गाथाओं का अर्थस्पष्ट करते हैं - अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानि और स्थान इतने भेद कहे। यहाँ एकजीव के एकसमय में होने वाले गुणहानियों के समूह को नानागुणहानि और नानागुणहानि के समूह को स्थान कहते हैं तथा स्पर्धकों के समूह को गुणहानि, क्रमसे वृद्धिहानिरूप वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक, वर्ग के समूह को वर्गणा, अविभागप्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं। जीव प्रदेशों में कर्मप्रदेशसमूह को ग्रहण करने की शक्ति में जघन्यवृद्धि अविभागप्रतिच्छेद कहलाता है। यहाँ योग का अधिकार है, अत: योगरूप शक्ति की जघन्यवृद्धि को ग्रहण किया।

जीव के प्रदेश लोकप्रमाण हैं। उनको स्थापन करके इन सब प्रदेशों में से जिस प्रदेशों में योगों की जघन्य शक्ति पायी जाये, उस प्रदेश को अलग रखकर उस प्रदेश में जितनी योगशक्ति हो उसको अपनी बुद्धि से फैलाइये। उस जघन्य शक्ति से अधिक और अन्य शक्ति से हीन शक्ति जिसमें पायी जाये ऐसे किसी अन्य प्रदेश को ग्रहण करके उसमें जितनी योगशक्ति पायी जाये उसे पहले फैलायी गयी जघन्य शक्ति के ऊपर बुद्धि से ही फैलाइये। सो उस जघन्य शक्ति के ऊपर स्थापन की गयी शक्ति जितनी वृद्धि को लिये हुए हो उतनी वृद्धि का नाम योगों का अविभाग प्रतिच्छेद है। इसका आशय यह है कि जघन्य शक्तिवाले प्रदेश से एक अविभाग अंश अधिक शक्ति के धारी दूसरे प्रदेश में उस जघन्य शक्ति से जितनी शक्ति बढ़ती हुई हो उस बढ़ती हुई शक्ति के प्रमाण को योगका अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। पहले फैलायी गई प्रदेश की जघन्य शक्ति के उस अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण, खण्ड करने पर असंख्यात लोकप्रमाण खण्ड होते हैं, अत: असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं।

वर्ग की सन्दृष्टि 'व' अक्षर जानना, उसके आगे जघन्यशक्ति प्रमाणवाले जितने प्रदेश पाये जावें उतने लिखने सो इस प्रकार जघन्यशक्तिप्रमाण शक्तिधारक जीवके प्रदेशअसंख्यातजगत्प्रतर प्रमाण हैं। तद्यथा - लोकप्रमाण जीवप्रदेशों को डेढगुणहानि से भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने जघन्यशक्तिप्रमाण शक्ति के धारक प्रदेश हैं। इस प्रकार एक गुणहानि में जितना वर्गणा का प्रमाण कहा उस प्रमाण को डेढ़गुणा किया सो डेढ़गुणहानि का प्रमाण हुआ, यह जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र ही है। इसका भाग जीवप्रदेशों में देने पर (लोक = जगत्श्रेणी×जगत्श्रेणी×जगत्श्रेणी ÷ $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ = असंख्यात श्रेणी×श्रेणी) असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण जीवप्रदेशों का प्रमाण होता है सो इतने प्रदेशोंके समूह को प्रथम वर्गणा कहते हैं[१]। एकप्रदेशसम्बन्धीशक्तिको वर्ग कहा था, यहाँ असंख्यातजगत्प्रतरप्रमाण आत्मप्रदेशों का समूह वर्गणा है, अत: एकवर्गणा में असंख्यातजगत्प्रमाण वर्ग कहे हैं।

जिस जघन्यशक्तिरूपवर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण कहा उससे एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद जिनमें पाये जावें ऐसी शक्तिके धारक जितने जीवप्रदेश हों उतने प्रदेश उसके ऊपर

१. धवल पु. १० पृ. ४४३।

लिखना। वे प्रदेश प्रथमवर्गणा में जितने प्रदेश कहे थे उनमें एकविशेष (चय) प्रमाण कम जानने। प्रथमवर्गणा में जितने प्रदेश हैं उसमें दो गुणहानिका भाग देने पर जो प्रमाण हो वह विशेष (चय) का प्रमाण जानना।[१] विशेषकी सन्दृष्टि 'वि' जानना, जो एकगुणहानि में वर्गणाओं का प्रमाण है उसको दूना करने पर दोगुणहानि का प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रथमवर्गणा के प्रदेशों में से विशेष (चय) का प्रमाण घटाने पर जो प्रमाण शेष रहे उतने प्रदेशों के समूह की द्वितीयवर्गणा होती है। यहाँ पूर्वोक्त जघन्यशक्ति से एकअविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्ति के धारक प्रदेशों को वर्ग कहते हैं और इनके समूहको द्वितीयवर्गणा जानना तथा द्वितीयवर्गणासम्बन्धी वर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उससे एकअविभागप्रतिच्छेद जिसमें बढ़ता हो ऐसी शक्तिके धारक जितने जीवप्रदेश हों उतने उसके ऊपर लिखना सो द्वितीयवर्गणा में कहे उनमें से विशष (चय) का प्रमाण घटाने पर जितना प्रमाण रहे उतने जानने। यहाँ द्वितीयवर्गणासम्बन्धी वर्गके अविभागप्रतिच्छेद से एकअविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्ति के धारक प्रदेश को वर्ग कहते हैं उनका समूह तृतीयवर्गणा जाननी। इसी क्रमसे एक-एक अविभागप्रतिच्छेदसे अधिकशक्ति लिये हुए एक-एक विशेष (चय) रूप से घटते-घटते प्रमाण सहित वर्गों के समूहरूप एक-एक वर्गणा होती है। इसी प्रकार जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण वर्गणा होती है उसी समय प्रथमस्पर्धक होता है[२]। इसीलिए एकस्पर्धक में जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणा कही है इसकी सहनानी ४ का अङ्क है। इस प्रथमस्पर्धकको ही जघन्यस्पर्धक कहते हैं तथा इस प्रथमस्पर्धककी अन्तिमवर्गणा के वर्ग में अविभागप्रतिच्छेदों का जो प्रमाण हुआ उसके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर देकर[३] प्रथमस्पर्धकके प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्ग में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनसे दूने अविभागप्रतिच्छेद के धारक वर्ग पाये जाते हैं, उससे कम शक्तिके धारक कोई प्रदेश नहीं पाए जाते। जघन्यवर्ग से दूने अविभागप्रतिच्छेदरूपशक्ति को धारण करनेवाले जो जीवप्रदेश हैं उन्हें वर्ग जानना और इनका समूह द्वितीयस्पर्धककी प्रथमवर्गणा जाननी। प्रथमस्पर्धककी अन्तिमवर्गणा में जो वर्गों की संख्या है उसमें से एक चय घटाने पर द्वितीयस्पर्धक की प्रथमवर्गणा में वर्गों की संख्या प्राप्त होती है। इस प्रथमवर्गणा के वर्ग से एक अविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्ति के धारक जीवप्रदेश अर्थात् वर्ग हैं और ऐसे वर्गों का समूह द्वितीयवर्गणा है। उस द्वितीयस्पर्धक की प्रथमवर्गणासम्बन्धी प्रदेशों के प्रमाण में एक-विशेष (चय) के प्रमाण से कम और एकअविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले प्रदेशरूपवर्गों का समूह द्वितीयस्पर्धक की द्वितीयवर्गणा है। इसी क्रम से आगे प्रत्येकवर्गणा में एक-एक अविभागप्रतिच्छेदरूप से अधिक शक्ति को लिये एक-एक विशेष (चय) से घटते प्रमाण को लिये हुए वर्ग होते हैं। जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभागप्रमाण वर्गणाओं के समूहों को द्वितीयस्पर्धक जानना।

---

१. ध.पु. १० पृ. ४४४ विशेष का प्रमाण "श्रेणी के असंख्यातवेंभाग से खंडित प्रथमवर्गणा।"

२. ध. पु. १० पृ. ४५२ 'जिसमें क्रमसे (एक-एकअविभागप्रतिच्छेदकी) वृद्धि हो वह स्पर्धक है।

३. ध.पु. १० पृ. ४५५ सूत्र १८४।

द्वितीयस्पर्धक की अन्तिमवर्गणा के ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर देकर[1] प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों से तिगुने अविभागप्रतिच्छेद के धारक प्रदेश पाये जाते हैं, कमशक्तिके धारक प्रदेश नहीं पाये जाते हैं, अतः जघन्यवर्ग से तिगुने अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्ति धारण करनेवाले तथा द्वितीयस्पर्धककी अन्तिमवर्गणाके प्रदेशोंसे एकविशेष (चय) हीन वर्गोंका समूह तृतीयस्पर्धककी प्रथम वर्गणा है। इससे ऊपर पूर्ववत् जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण वर्गणा होती हैं। क्रमशः प्रत्येकवर्गणा एक-एक अविभागप्रतिच्छेदअधिक शक्ति के धारक तथा एक-एक विशेष से हीन प्रमाण को लिये हुए वर्गों के समूहरूप है और उन वर्गणाओं का समूह तृतीयस्पर्धक है। इसी क्रम से "**फड्ढयसंखाहिगुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादि**" इत्यादि गाथा सूत्र २२९ में कथित क्रम से जघन्यवर्गों को अपने-अपने स्पर्धकों की संख्या से गुणाकरने पर उस-उस स्पर्धककी प्रथमवर्गणा होती है। प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासम्बन्धी जघन्यवर्ग का अर्थात् वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद के प्रमाण को चौगुना करने पर चतुर्थस्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गका अर्थात् वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। पाँचगुणा करनेपर पञ्चमस्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गोंके अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इस प्रकार जिस स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विवक्षित हो उतना गुणा जघन्यवर्गको करनेपर विवक्षित स्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणा का वर्ग अर्थात् वर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है[2] तथा प्रथमवर्गणाके वर्ग में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ाने पर द्वितीयादिवर्गणा के वर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्गणा में एक-एक विशेष (चय) हीन वर्गों का प्रमाण क्रम से जानना। जगत्श्रेणी के असंख्यातभागप्रमाण वर्गणाओं के समूहको एकस्पर्धक जानना चाहिए।[3] जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धक होने पर एक गुणहानि होती है, अतएव एकगुणहानि में जगत्श्रेणी के

---

१. ध. पु १० पृ. ४५५ सूत्र १८४।

२. पढमिच्छसलागगुणा तत्थादीवग्गणा चरिमसुद्धा।
सेसेण चरिमहोणा सेसेगूणं तभागासं॥ (षट् खं. सूत्र पु. १० पृ. ४५७)
यहाँ 'पढम' से अभिप्राय प्रथमस्पर्धक की प्रथमवर्गणा से है। इच्छित शलाकाओं से अभिप्राय अभीष्ट स्पर्धक संख्यासे है। उस संख्या से आदिम वर्गणा को गुणित करने पर वहाँकी आदिम वर्गणा का प्रमाण होता है।

३. **फड्डय परूवणाए असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तीयो तमेगं फड्डयं होदि॥१८२॥**
प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदों से द्वितीयवर्गणाके एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद एकअविभागप्रतिच्छेद से अधिक हैं। द्वितीयवर्गणा के एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंसे तृतीयवर्गणा के एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद एक अविभागप्रतिच्छेद से अधिक हैं। तृतीयवर्गणा के एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदों से चतुर्थवर्गणा के एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद एक अविभाग प्रतिच्छेदसे अधिक है। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा के एकवर्गसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदों तक ले जाना चाहिए। इसके आगे नियम से क्रमवृद्धिका व्युच्छेद हो जाता है। इसी प्रकार सब स्पर्धकों के कहना चाहिए। ध. पु. १० पृ. ४५२-५३)

असंख्यातवेंभाग प्रमाण स्पर्धक कहे हैं[1] इसकी सन्दृष्टि '९' का अङ्क जानना। इसके ऊपर द्वितीयगुणहानि के प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणा में वर्गों की संख्या प्रथमगुणहानि के प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणासे आधी समझनी। इस वर्गणा के वर्गों में अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण एक अधिक गुणहानि के स्पर्धकों की संख्याप्रमाण से जघन्यवर्ग के अविभागप्रतिच्छेदों को गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उतना जानना तथा अविभागप्रतिच्छेदों का क्रम पूर्वोक्त ही जानना एवं प्रदेशरूप वर्गों की संख्याप्रमाण प्रथमगुणहानिके प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणा के प्रमाण से द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी प्रथमस्पर्धककी प्रथमवर्गणाका प्रमाण आधा है और इसमें एक विशेष (चय) घटाने पर द्वितीयवर्गणा का प्रमाण होता है। द्वितीयगुणहानि में विशेष (चय) का प्रमाण प्रथमगुणहानि के विशेष (चय) प्रमाण से आधा जानना। इसी प्रकार एक-एक विशेष घटाने पर तृतीयादि वर्गणा का प्रमाण जानना, तथैव द्वितीयगुणहानि की प्रथमवर्गणा से तृतीयगुणहानिकी प्रथमवर्गणा में वर्गों की संख्याका प्रमाण और विशेष (चय) का प्रमाण आधा-आधा जानना। ऐसे ही गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा प्रमाण जानना। इस प्रकार पल्य के असंख्यातवेंभाग प्रमाण नानागुणहानि होती है[2] तब एकयोगस्थान होता है, इसीलिए एकस्थान में पल्य के असंख्यातवेंभाग प्रमाण नानागुणहानि कही है। यही सर्वकथन जघन्ययोगस्थान का जानना। इस प्रकार यह कथन शक्ति की प्रधानता से किया है, अब प्रदेशों की प्रधानता से अर्थसन्दृष्टि द्वारा कथन करते हैं।

माना कि सर्वजीवप्रदेश ३१००, नानागुणहानि ५, एकगुणहानि में वर्गणा का प्रमाणरूप गुणहानिआयाम ८, नानागुणहानिप्रमाण दो के अङ्क लिखकर परस्परगुणा करने पर (२×२×२×२×२) अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण = ३२। एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० में देनेपर ३१००÷ ३१ = १०० सो यह अन्तिमगुणहानिका प्रमाण है इससे आदिगुणहानि पर्यन्त दूने-दूने प्रमाण जीवप्रदेश हैं। अर्थात् १००, २००, ४००, ८००, १६०० इसलिए आदिगुणहानि से आगे प्रत्येक गुणहानि प्रति आधा-आधा द्रव्य कहा है। यहाँ सर्वद्रव्य ३१०० में कुछ अधिक डेढ़गुणहानिका भाग देने पर गुणहानिआयाम ८ का डेढ़गुणा (१२) और कुछ अधिक कहने से एकके ६४ भागों में से ७ भाग अधिक $१२\frac{७}{६४}$ इसका भाग देने पर ३१००÷ $१२\frac{७}{६४}$ = २५६ प्राप्त हुए[3]। यह प्रथमगुणहानि के प्रथमस्पर्धकसम्बन्धी प्रथमवर्गणा में जीवप्रदेशों की संख्या जाननी। दो गुणहानि (१६) का भाग प्रथमवर्गणा २५६ में देने पर (२५६÷१६) १६ आए यह विशेष (चय) का प्रमाण जानना। विशेषके दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथमवर्गणा का प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रथमवर्गणा में से एक-एक विशेष घटाने पर द्वितीयादिवर्गणा होती है। ऐसे एककम गुणहानिआयाम (७), इस विशेष को घटानेपर

१. एकगुणहानि जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र है,क्योंकि नानागुणहानि शलाकाओं से योगस्थान को भाजित करने पर अध्वान का प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्राप्त होता है।(ध. पु. १० पृ. ७४)

२. णाणागुणहाणिसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागमेत्ताओ'' धवल पु. १० पृ. ७४

३. धवल पु. १० पृ. ४४६-४४७

गुणहानि के अन्तिमस्पर्धक की अन्तिमवर्गणा होती है तथा गुणहानि-गुणहानि प्रति आदिवर्गणा से आदिवर्गणा का संख्याप्रमाण आधा-आधा जानना और विशेष (चय) का भी प्रमाण आधा-आधा जानना। इससे प्रथमवर्गणा में दोगुणहानिका भाग देने पर विशेष (चय) का भी प्रमाण होता है, इसी कारण दोगुणहानि को निषेकहार कहते हैं ऐसा अङ्कसन्दृष्टि से कथन किया तथैव अर्थसन्दृष्टि से भी कथन जानना। सर्वजीवों के प्रदेश लोकप्रमाण, नानागुणहानि पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण और एकगुणहानिका आयाम जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण है। इस प्रकार इनमें यथायोग्य कथन जान लेना। ऊपर यह सर्वकथन किया जा चुका है, अतः यहाँ विशेष नहीं कहा है तथा वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि तथा नानागुणहानि और जघन्यस्थान में अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त करने का विधान "धवल पु. १० योगचूलिका में पृ. ३९५ से ४१२ तक कहा है।"

अनुभागबन्ध में भी वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नानागुणहानिका कथन है तथा योग के प्रकरण में भी इसी प्रकार कथन है। दोनों में अन्तर इतना है कि अनुभागबन्ध में जो एक वर्ग की शक्ति है, वही उस वर्गणा की शक्ति है। प्रदेश की हीनाधिकता से उस शक्ति में हानि-वृद्धि नहीं होती,[1] किन्तु योगप्रकरण में वर्ग के शक्तिअंश में (वर्गणा में) वर्गों की संख्या से गुणा करनेपर वर्गणा की शक्ति प्राप्त होती है[2]। जैसे प्रथमवर्गणा में १२८ जीवप्रदेश हैं और एक प्रदेश (वर्ग) के शक्तिअंश - अविभागप्रतिच्छेद १०० हैं तो प्रथमवर्गणाके कुल अविभागप्रतिच्छेद १००×१२८ = १२,८०० होते हैं। दूसरीवर्गणा में वर्गों की संख्या १२६ (चय हीन) है। वर्गके अविभागप्रतिच्छेद १०१ हैं। दूसरी वर्गणा के कुल अविभाग प्रतिच्छेद १०१ × १२६ = १२,७२६। इस प्रकार दूसरी वर्गणा में शक्ति अंश की हानि हुई।

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्ढयावड्ढी।
अंतरछक्कं मुच्चा, अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥२३०॥

अर्थ - जघन्ययोगस्थानमें अंगुलके असंख्यातवेंभाग प्रमाण स्पर्धक बढ़ने पर दूसरा योगस्थान होता है। छह अन्तरस्थानों को छोड़कर जघन्ययोगस्थानसे उत्कृष्टयोगस्थान तक प्रतिस्थान अंगुल के असंख्यातवेंभागप्रमाण स्पर्धकों की वृद्धि होती है।

विशेषार्थ - सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तकजीव के पूर्वोक्त सबसे जघन्यउपपादयोग स्थान पाया जाता है इसके अनन्तर पश्चात्वर्तीस्थान को आदि लेकर सर्वोत्कृष्टयोगस्थान पर्यन्त सान्तर व निरन्तर और सान्तर-निरन्तर (उभय) सभी योगस्थानों में एक-एक योगस्थानके प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवेंभाग

---

१. बंधाणुभागखंडयघादेहि विणा उक्कड्डणा-ओकड्डणाहि वड्ढि-हाणियो ण होंति त्ति जाणावणट्ठं। एक्क परमाणुहि ट्ठिदाणुभागस्स ट्ठाणत्तपदुप्पायणट्ठं। ण भिण्ण परमाणुट्ठिद अणुभागो ट्ठाण। (ध. पु. १० पृ. ९६)

२. "पढमफद्दयस्स आदिवग्गणायामे आदिवग्गेण गुणिदे पढमफद्दय आदिवग्गणा होदि।" (ध.पु १० पृ. ४६४)

प्रमाण जघन्यस्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं तब उत्तरोत्तरस्थान होता है। प्रथमजघन्यस्थान से सूच्यङ्गुल के असंख्यातवेंभाग प्रमाण जघन्यस्पर्धक दूसरेस्थान में अधिक हैं। द्वितीययोगस्थानमें स्पर्धकविन्यास की वृद्धि नहीं है, किन्तु दोनों ही स्थानों में स्पर्धक समान हैं इसलिए जघन्ययोगस्थान सम्बन्धी स्पर्धक स्तोक हैं ऐसा कहने पर जघन्ययोगस्थान को जघन्यस्पर्धकके प्रमाण से (गुणा?) करनेपर उपरिमयोगस्थानके जघन्यस्पर्धकों की अपेक्षा वे स्तोक हैं यह अभिप्राय हैं।[1]

श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाण जघन्ययोगस्थानके प्रक्षेपभागहारका विरलन कर जघन्ययोगस्थान को समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक विरलनरूप के प्रति एकयोगप्रक्षेपका प्रमाण प्राप्त होता है। अब उनमें से एक प्रक्षेप को ग्रहणकर जघन्ययोगस्थान को प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर द्वितीयस्थान होता है। द्वितीयप्रक्षेपको ग्रहणकर द्वितीयस्थानको प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर तृतीययोगस्थान होता है। पश्चात् तृतीयप्रक्षेपको ग्रहणकर तृतीययोगस्थान को प्रतिराशि करके उससे मिला देने पर चतुर्थयोगस्थान होता है। इसप्रकार विरलन मात्र सर्वप्रक्षेपों के प्रविष्ट होने तक ले जाना चाहिए तब दुगुणी वृद्धिका स्थान उत्पन्न होता है।[2]

जघन्ययोगस्थानसम्बन्धी प्रक्षेपभागहारका जो कि श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण व कृतयुग्म है, जघन्यस्थान के स्पर्धकों में भाग देने पर अंगुल के असंख्यातवेंभाग मात्र जघन्यस्पर्धकप्रमाण एक योगप्रक्षेप आता है। यह योगप्रक्षेप वृद्धि व हानि का अभाव होने से अवस्थित है। इस प्रक्षेप में जघन्यस्थान को प्रतिराशि करके मिलाने पर द्वितीययोगस्थान के स्पर्धकसम्बन्धी अविभागीप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं, ऐसा कहा गया है। इन अंगुल के असंख्यातवेंभाग मात्र जघन्यस्पर्धकों से चरमस्पर्धकसे आगे अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि चरमस्पर्धकके अविभागप्रतिच्छेदों से प्रक्षेप के अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हीन पाये जाते हैं। इसलिए ये प्रक्षेपअविभागप्रतिच्छेद यथास्वरूप से लोकमात्र जीवप्रदेशों में विभक्त होकर गिरते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।[3]

अब छह अन्तरों को छोड़कर जघन्यस्थान से उत्कृष्टस्थानपर्यन्त जीवों के योगस्थान होते हैं, सो कहते हैं -

सरिसायामेणुवरिं, सेढिअसंखेज्जभाग ठाणाणि।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं, फड्डयमिह जायदे चयदो॥२३१॥

अर्थ - समानआयामवाले स्थानों के ऊपर चय से श्रेणी के असंख्यातवेंभागप्रमाण स्थान चढ़नेपर एक अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न होता है।

---

१. धवल पु. १० पृ. ४८२ २. धवल पु. १० पृ. ४८९। ३. धवल पु. २ पृ. ४८४-८५

चय का प्रमाण ऊपर बता चुके हैं। इसी तरह समान आयाम के धारक दूसरे योगस्थान के ऊपर भी श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान तक उत्तरोत्तर क्रम से चयवृद्धि होने पर दूसरा अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है। इसी क्रम से एक गुणहानि के स्पर्धकों को जितना प्रमाण कहा है उतने अपूर्व स्पर्धकों के उत्पन्न हो जाने पर जघन्य योगस्थान का प्रमाण दूना हो जाता है। इस क्रम से योगस्थानों का प्रमाण भी दूना-दूना होता जाता है और अन्त में चल कर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव का सर्वोत्कृष्ट योगस्थान उत्पन्न होता है।

विशेषार्थ -[१] **शंका** - इस प्रकार अवस्थितक्रम से प्रक्षेपों की वृद्धि होने पर कितने योगस्थान जाकर एक अपूर्वस्पर्धक होता है?

समाधान - ऐसी शङ्का होने पर उत्तर देते हैं कि वह श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योगस्थान जाकर उत्पन्न होता है, क्योंकि साधिक चरम योगस्पर्धकमात्र वृद्धिके बिना अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न नहीं होता। चरमस्पर्धक में योगप्रक्षेप श्रेणी के असंख्यातवें-भागमात्र हैं, क्योंकि एक योगप्रक्षेपका चरमस्पर्धक में भाग देने पर श्रेणी का असंख्यातवाँभाग पाया जाता है। इस कारण तत्प्रायोग्य श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण प्रक्षेपों की वृद्धि हो जाने पर वहाँ पूर्व के स्पर्धकों की अपेक्षा एक अधिक (नवीन) स्पर्धकों के अन्तिम स्पर्धक में जितने जीवप्रदेश हैं उतने जीवप्रदेश मात्र अनन्तर (अन्तिम) अधस्तनस्पर्धक के वर्गों को वृद्धिप्राप्त प्रक्षेपों में से ग्रहण करके ऊपर यथाक्रम से स्थापितकर फिर उनमें से चरमस्पर्धकके जीवप्रदेशों के बराबर ही जघन्यस्थानसम्बन्धी जघन्य (प्रथमवर्गणाके) वर्गों को ग्रहण करके उनमें ही यथाक्रम से मिलाकर शेष को पहिले के समान ही असंख्यातलोक से खण्डित करने पर जो लब्ध हो उसकी विवक्षित स्थानसम्बन्धी स्पर्धककी वर्गणाओं के जीवप्रदेशों से पृथक्-पृथक् गुणित करके इच्छित वर्गणा के जीवप्रदेशों को समखण्ड करके देने पर विवक्षित स्थान उत्पन्न होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यहाँ से आगे एक-एक प्रक्षेपके बढ़ने पर स्पर्धक अवस्थित ही होकर श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र स्थान उत्पन्न होते हैं फिर इस प्रकार अपूर्वस्पर्धक उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्तिम योगस्थान तक ले जाना चाहिए।

शंका- अब १+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+११+१२+१३+१४+१५ इस प्रकार एकको आदि लेकर एक अधिक क्रम से जघन्यस्पर्धकशलाकाओं को स्थापितकर संकलनसूत्र के अनुसार मिलाकर ($\frac{१५+१}{२}$ ×१५= १२०) जघन्यस्थानसम्बन्धी जघन्यस्पर्धककी शलाकाओं का प्रमाण क्यों नहीं बतलाया?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन स्पर्धकशलाकाओं के असंख्यातवें भागमात्र

१. धवल पु. १० पृ. ४८७

ही जघन्यस्पर्धकशलाकाएँ जघन्यस्थानमें पाई जाती हैं[1]। इसलिए जघन्य स्थान में तत्प्रायोग्य श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य स्पर्धक हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

आगे इसीविषय में और भी विशेष कथन की प्रतिज्ञा आचार्य करते हैं -

एदेसिं ठाणाणं, जीवसमासाण अवरवरविसयं।
चउरासीदिपदेहिं, अप्पाबहुगं परूवेमी॥२३२॥

अर्थ - ये जो योगस्थान कहे हैं उसनमें १४ जीवसमासों के जघन्योत्कृष्ट की अपेक्षा तथा "चकार" से उपपादिक तीन प्रकार के योगों की अपेक्षा ८४ स्थानों में अब अल्पबहुत्वका कथन करेंगे।

विशेषार्थ - सबसे प्रथम अल्पस्थानको बताकर फिर क्रमशः वृद्धिगतस्थानों का कथन करना अल्पबहुत्वकथन है। चौदह जीवसमासों का योगाविभागप्रतिच्छेदअल्पबहुत्व तीन प्रकार है - १. स्वस्थान २. परस्थान ३. सर्वपरस्थान[2]। इनमें सर्वपरस्थानअल्पबहुत्व जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्टके भेद से तीनप्रकार का है[3]। आगे ८ गाथाओं से १४ जीवसमासों के योगाविभागप्रतिच्छेदसम्बन्धी सर्वपरस्थानके जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्व को कहेंगे।

उसे ही कहते हैं -

सुहुमगलद्धिजहण्णं, तण्णिवत्तीजहण्णयं तत्तो।
लद्धिअपुण्णुक्कस्सं, बादरलद्धिस्स अवरमदो॥२३३॥

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं, बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु।
बादरलद्धिस्स वरं, बीइंदियलद्धिगजहण्णं॥२३४॥

बादरणिव्वत्ति वरं, णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो।
एवं बितिबितितिचतिचचउविमणो होदि चउविमणो॥२३५॥

तह य असण्णीसण्णी, असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं।
सुहुमेइंदियलद्धिगअवरं एयंतवड्ढिस्स॥२३६॥

---

१. धवल पु. १० पृ. ४८७-८८ २. धवल पु. २ पृ. ४०४ ३. धवल पु. १० पृ. ४०८

सण्णिस्सुववादवरं, णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स।
एयंतवड्ढिअवरं, लद्धिदरे थूलथूले य॥२३७॥

तह सुहुमसुहुमजेट्ठं, तो बादरबादरे वरं होदि।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे॥२३८॥

अंतरमुवरीवि पुणो, तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं।
एयंतवड्ढिठाणा,, तसपणलद्धिस्स अवरवरा॥२३९॥

लद्धीणिव्वत्तीणं, परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ।
परिणामट्ठाणाओ, अंतरअंतरिय उवरूवरिं॥२४०॥

अर्थ - सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग सबसे स्तोक है। उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्य पर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है[1] ॥२३३॥

सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग बादरएकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य उपपादयोग की अपेक्षा असंख्यातगुणा है। उससे बादरएकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा है। उससे बादएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है और उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपादयोग असंख्यातगुणा है[2]॥२३४॥

द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यउपपादयोग से बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्तिअपर्याप्तक का उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा और उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है[3]॥२३५॥

---

१. धवल पु. १० पृ. ४१४ २. धवल पु. १० पृ. ४१४ ३. धवल पु. १० पृ. ४१५-४१६

चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्टउपपादयोगकी अपेक्षा असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्टउपपाद योग असंख्यातगुणा है, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यउपपादयोग असंख्यातगुणा, उससे असंज्ञीपंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपादयोग अंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा और उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[1]।२३६।

सूक्ष्मएकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग से सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टउपपादयोग असंख्यातगुणा,उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा और उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[2]।

बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकके जघन्यएकान्तानुवृद्धियोगकी अपेक्षा सूक्ष्मएकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। उससे आगे श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थानोंका अन्तर करके सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा और उससे बादरएकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है ॥२३८॥

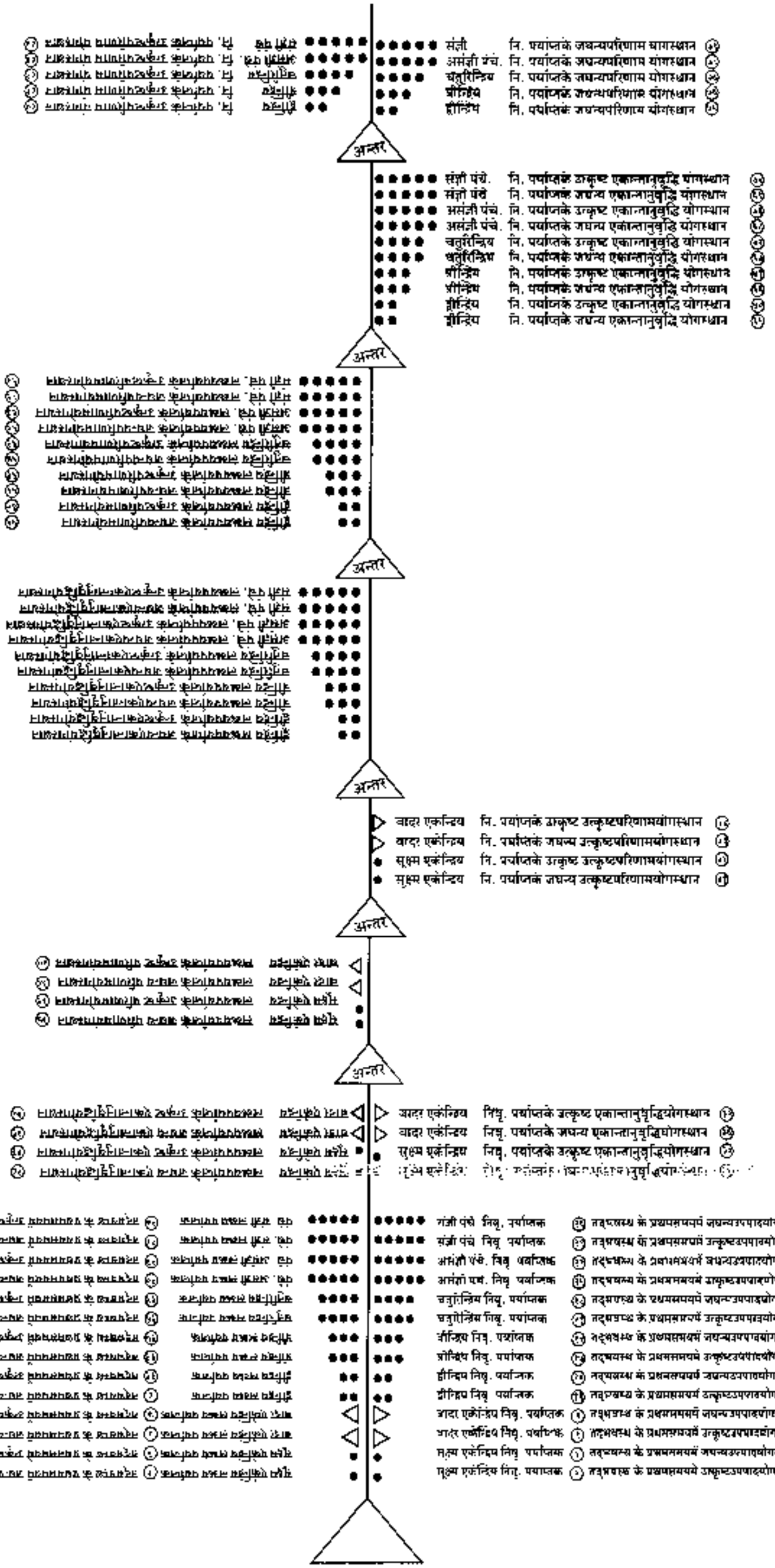
उससे आगे श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र अन्तर होकर सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सूक्ष्मएकेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे बादरएकेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है। इसके आगे श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र अन्तर होकर द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। उससे

१. धवल पु. १० पृ. ४१५-४१६ २. धवल पु. १० पृ. ४१६

असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे संज्ञीपंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा,उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है[१] ॥२३९॥

इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानोंका अन्तर करके द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियलब्ध्य पर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट परिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे संज्ञी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट परिणाम योग असंख्यातगुणा है। इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानों का अन्तर करके द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य एकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्यएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोग असंख्यातगुणा है। इससे आगे श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र योगस्थानों का अन्तर होकर द्वीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा,उससे असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे द्वीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे त्रीन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा, उससे चतुरिन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका

१. धवल पुस्तक १० पृ. ४१७


संज्ञी नि. पर्याप्तके जघन्यपरिणाम योगस्थान
असंज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तके जघन्यपरिणाम योगस्थान
चतुरिन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्यपरिणाम योगस्थान
त्रीन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्यपरिणाम योगस्थान
द्वीन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्यपरिणाम योगस्थान
अन्तर
संज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
संज्ञी पंचे नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
असंज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
असंज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
चतुरिन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
चतुरिन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
त्रीन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
त्रीन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
द्वीन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
द्वीन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
अन्तर
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान
अन्तर
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोगस्थान
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धियोगस्थान
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोगस्थान
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तके जघन्य एकान्तानुवृद्धियोगस्थान
संज्ञी पंचे नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
संज्ञी पंचे नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
असंज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
असंज्ञी पंचे. नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
चतुरिन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
चतुरिन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
त्रीन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
त्रीन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
द्वीन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
द्वीन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
बादर एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें जघन्यउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है
सूक्ष्म एकेन्द्रिय नि. पर्याप्तक तद्भवस्थ के प्रथमसमयमें उत्कृष्टउपपादयोगस्थान। जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय है

उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे असञ्जीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है, उससे सञ्जीपञ्चेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्तकका उत्कृष्टपरिणामयोग असंख्यातगुणा है[1] ॥२४०॥

एदेसिं ठाणाओ, पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा।
हेट्ठिमगुणहाणिसला, अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु॥२४१॥

अर्थ : उपर्युक्त गाथाओं में कथित ८४ स्थानों में क्रम से पूर्वस्थानसे अनन्तरवर्तीस्थान पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे होकर भी अपनी अधस्तनगुणहानिशलाका (नानागुणहानि) से उत्पन्न जो अन्योन्याभ्यस्तराशि है उस प्रमाण हैं तथा वही गुणकारशलाका है।

विशेषार्थ : यहाँ सर्वत्र गुणकार पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग होकर भी वह अपने इच्छित योग से नीचे की नानागुणहानिशलाकाओं का विरलनकर दुगुणा करके उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाण होता है[2]।

पूर्वमें कथित जघन्य और उत्कृष्टरूप उपपादादि तीनों स्थानों के निरन्तर एकयोगस्थान के बीच में अन्य योगस्थान न हो इस प्रकार प्रवर्तनेका काल कितना है ? सो कहते हैं –

अवरुक्कस्सेण हवे,उववादेयंतवड्ढिठाणाणं।
एक्कसमयं हवे पुण, इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति॥२४२॥

अर्थ : उपपादयोगस्थान और एकान्तानुवृद्धियोगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल जघन्य और उत्कृष्टसे एक समय है, क्योंकि उपपादयोगस्थान जन्मके प्रथमसमय में होता है। एकान्तानुवृद्धियोगस्थान समय-समयवृद्धिरूप भिन्न-भिन्न होते हैं[3] तथा परिणामयोगस्थानका काल एक समयसे आठसमय पर्यन्त है।

अट्ठसमयस्स थोवा, उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा।
चउसमयोत्ति तहेव य, उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥२४३॥

अर्थ : आठसमय निरन्तर प्रवर्तनेवाले योगस्थान सबसे स्तोक हैं और सात से चारसमय तक प्रवर्तनेवाले उपरितन और अधस्तन ये दोनों ही प्रकार के स्थान असंख्यातगुणे हैं, किन्तु तीन और दो समयतक प्रवर्तनेवाले उपरितन स्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ : द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव के जघन्य परिणाम योगस्थान से लगा कर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त अन्तररूप योगस्थानों को छोड़ कर जो निरन्तर योगस्थान हैं उनकी 'जौ' नामक अन्न की आकार रचना काल की अपेक्षा करते हैं। जो योगस्थान निरन्तर

---

१. ध.पु. १० पृ. ४१८-४१९-४२० २. ध.पु. १० पृ. ४२० ३. ध.पु. १० पृ. ४२० व ४२३ या ४९८

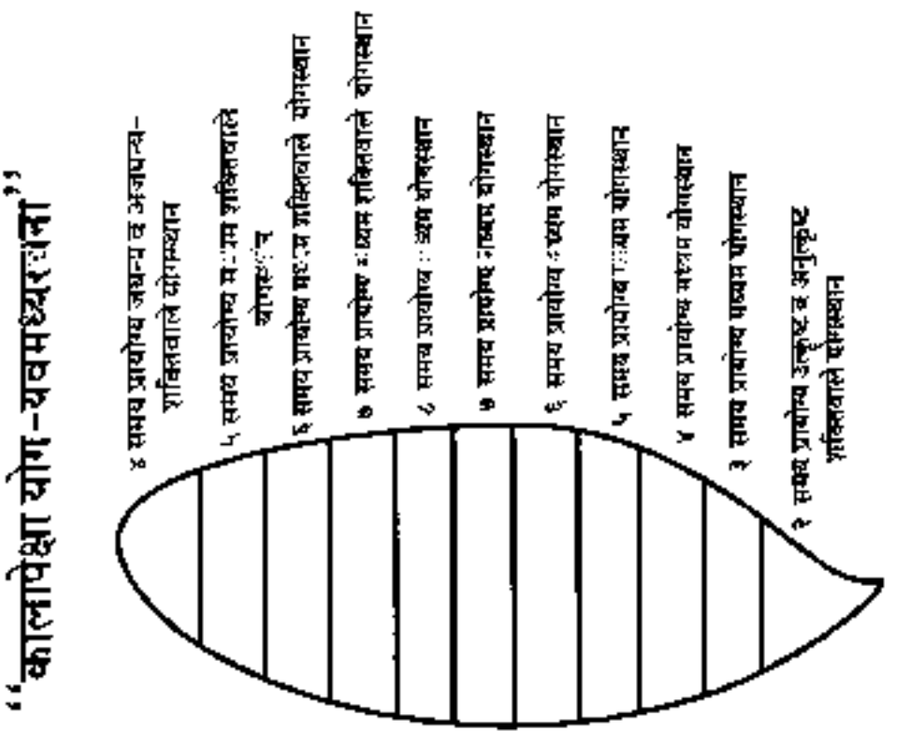
आठ समय तक होते हैं उन्हें मध्य में लिखें। जो योगस्थान निरन्तर सात समय तक होते हैं उनको आठ समय वालों के ऊपर और नीचे लिखें। जो योगस्थान निरन्तर छह समय तक होते हैं उनको सात समय वालों के नीचे और ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर पाँच समय तक होते हैं, उनको छह समयवालों के नीचे और ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर चार समय तक होते हैं उनको पाँच समयवालों के ऊपर और नीचे लिखें। जो योगस्थान निरन्तर तीन और दो समय तक होते हैं वे सब क्रमशः चार और तीन समय वालों के ऊपर लिखें। जैसे यव (जौ) मध्य में मोटा और ऊपर नीचे की ओर पतला होता है, उसी प्रकार मध्य में आठ समयवाले लिखें और ऊपर नीचे एक-एक कम समय वाले लिखें। ऐसी यवाकार रचना होती है।

जिन योगस्थानोंमें जीव एकसमयको आदि लेकर उत्कर्षसे चारसमय परिणमते हैं वे चतुःसामयिक अर्थात् चारसमय रहनेवाले योगस्थान कहे जाते हैं। उनका प्रमाण श्रेणीके असंख्यातवेंभागमात्र है। इसीप्रकार पञ्चसामयिक, षट्सामयिक, सप्तसामयिक, अष्टसामयिक जानना तथापि यवमध्यसे ऊपर के सप्तसामयिक, षट्सामयिक, पञ्चसामयिक, चतुःसामयिक तथा उपरिमत्रिसामयिक व द्विसामयिक योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवेंभागमात्र हैं।[१]

अल्पबहुत्वके अनुसार आठसमय योग्य योगस्थान सबसे स्तोक हैं अर्थात् आगे कहे जाने वाले योगस्थानोंसे स्तोक हैं। दोनों ही पार्श्वभागोंमें सातसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं, दोनों ही पार्श्वभागों में छह समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यात-असंख्यातगुणे हैं, दोनों ही पार्श्वभागों में पाँचसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं,दोनों ही पार्श्वभागों में चारसमय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं,उनसे तीनसमय योग्य उपरिमयोगस्थान असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे भी दो समय योग्य योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार पल्योपमके असंख्यातवेंभाग है[२]। इसका विशेष स्पष्टीकरण यवाकार रचना से होता है जो निम्नलिखित है–

आठसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान स्तोक हैं।
दोनों पार्श्वभागों में स्थित सातसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
दोनों पार्श्वभागों में स्थित छहसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
दोनों पार्श्वभागों में स्थित पाँचसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
दोनों पार्श्वभागों में स्थित चारसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
उपरितन तीनसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।
उपरितन दोसमय प्रायोग्यशक्तिवाले योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।

१. धवल पु. १० पृ. ४९४-४९५ २. धवल पु. १० पृ. ५०३-५०४



आगे पर्याप्तत्रसजीवों के परिणामयोगस्थानों में जीवों का प्रमाण कहते हैं –

मज्झे जीवा बहुगा, उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता।
हेट्ठिमगुणहाणिसलादुवरि सलागा विसेसऽहिया ॥२४४॥

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलधारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ॥२४५॥

चत्तारि तिण्णि कमसो, पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ॥२४६॥

अर्थ : जीवों के प्रमाणरूप यवरचनाके बीच में जीव बहुत हैं। ऊपर तथा नीचे क्रम से विशेष हीनरूप कम-कम हैं। अधस्तनगुणहानिशलाकासे उपरितनगुणहानिशलाका विशेष अधिक है ॥२४४॥

द्रव्य के तीन अनुयोगद्वार हैं–जीवों का प्रमाण, योगस्थान-अध्वान और गुणहानिआयाम। इनमें से उपरितन और अधस्तन गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य दुगुने-दुगुने होते चले गए हैं, किन्तु दोनों ओर के द्रव्यका प्रमाण भिन्न-भिन्न है। अङ्कसन्दृष्टि में यवमध्यके सर्वजीवों का प्रमाण १४२२ है तथा योगस्थान-अध्वान ३२ हैं और एकगुणहानिआयाम ४ है। अधस्तननानागुणहानि ३, उपरितननानागुणहानि ५ इस प्रकार सर्वनानागुणहानि ८, अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२=८ और उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि

२×२×२×२×२=३२ है। कुछकम तीनगुणहानि ११ $\frac{७}{६४}$ से कुल जीवद्रव्यको भाग देने पर यवमध्य के जीवों का प्रमाण १२८ प्राप्त होता है ॥२४५-२४६॥

विशेषार्थ : यव नामक अन्न बीच में मोटा होता है और ऊपर तथा नीचे क्रम से घटता-घटता होता है उसी प्रकार त्रसपर्यायसम्बन्धी योगस्थानों में यवाकार में जो मध्यका स्थान है वहाँ जीवों का प्रमाण बहुत है अर्थात् मध्यवर्ती स्थान के धारक जीव बहुत हैं तथा उस मध्य के स्थान से ऊपर के स्थानों में और नीचे के स्थानों में क्रम से जीवों का प्रमाण घटता-घटता है, उन स्थानों के धारकजीव क्रमसे घटते-घटते हैं। इस प्रकार यह यवाकार रचना है वहाँ नीचे की गुणहानिशलाका से ऊपर की गुणहानिशलाका का प्रमाण कुछ अधिक है।

यवाकार जीवों की संख्यासम्बन्धी रचना में पहले अङ्कसन्दृष्टि से कथन करते हैं –

यहाँ द्रव्य तो त्रसपर्याप्तजीवों का प्रमाण १४२२ और त्रसपर्याप्तजीवसम्बन्धी परिणामयोगस्थानका अध्वान ३२,गुणहानिआयामका प्रमाण ४, ऐसी सर्वगुणहानि ८, इनको नानागुणहानि कहते हैं।अधस्तनगुणहानिका प्रमाण ३और उपरितनगुणाहानिका प्रमाण ५ इस प्रकार नानागुणहानि ८ होती हैं। नानागुणहानिकी संख्या के बराबर (उतनीबार) दो का अङ्क लिखकर परस्परगुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण आता है सो अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि (२×२×२) ८ है एवं उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण (२×२×२×२×२) ३२ है तथा दोनों अन्योन्याभ्यस्तराशियाँ मिलकर (३२+८) ४० प्रमाण होती हैं। यहाँ कुछ कम तीनगुणी गुणहानिका भाग द्रव्य में देनेपर जीवों की संख्या यवाकारके मध्यकी होती है, सो गुणहानिके आयाम का प्रमाण ४ को तिगुना करने से (४×३) १२ हुए। किंचित् ऊन कहनेका यहाँ अभिप्राय यह है कि एक के ६४ भागों में ५७ भाग ($\frac{५७}{६४}$) घटाने से समच्छेदविधान द्वारा ७११ का ६४ वाँ भाग ($\frac{७११}{६४}$)हुआ सो इसका भाग सर्वद्रव्य १४२२ में देनेपर (१४२२÷ $\frac{७११}{६४}$ = $\frac{१४२२}{१}$ × $\frac{६४}{७११}$ =) १२८ आया सो यह यवाकार में मध्य का प्रमाण जानना, क्योंकि मध्य में जीव अधिक हैं, ऐसा कहा गया है[१]।

मध्यसे उपरितन और अधस्तनगुणहानिके निषेकोंमें से अपनी-अपनी गुणहानिसम्बन्धी विशेष (चय) का प्रमाण क्रमसे हीन जानना। अपनी-अपनी गुणहानिके प्रथमनिषेक (१२८) को दोगुणी गुणहानिके आयामप्रमाणरूप दोगुणहानि (२×४=८) का भाग देने पर जो (१२८÷८=१६) प्रमाण हो अथवा अन्तिमनिषेक (८०) में एकअधिक गुणहानि (१+४=५) का भाग देनेपर जो लब्ध आवे (८०÷५=१६) वह विशेष (चय) का प्रमाण जानना। अत: अधस्तन और उपरितन गुणहानिका द्रव्य और विशेष (चय) आधा-आधा (१६, ८, ४, २ व १) जानना। इसीको कहते हैं –

---

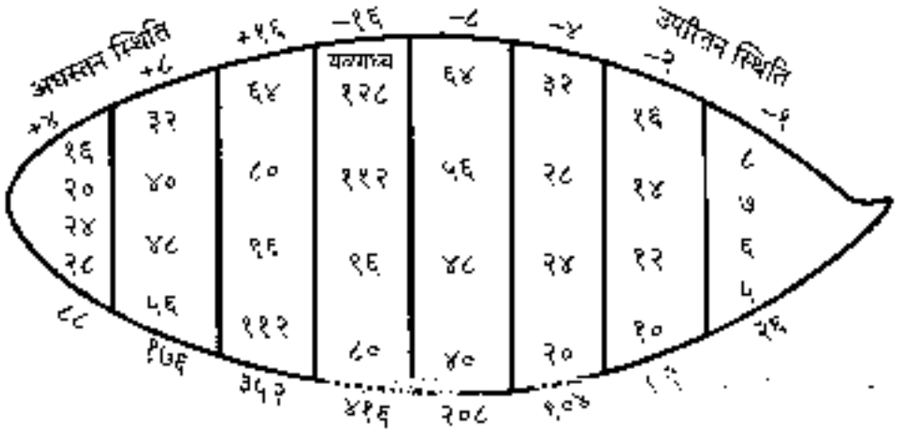
१. धवल पु. १० पृ. ८०

उपरितन ५ गुणहानियोंमें से प्रथमगुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेकके प्रमाण(१२८) में दोगुणहानि (८) का भाग देने पर १२८÷८=१६ आए सो यह विशेष (चय) जानना। इस प्रकार प्रत्येक निषेकमें से १६,१६ घटाना तथा आदि (प्रथम) निषेक में से एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष (चय) घटाने पर अन्तिम निषेक ८० हुआ। आदिनिषेक १२८, मध्यनिषेक ११२ व ९६ और अन्तिमनिषेक ८० हुआ। १२८+११२+९६+८० इन सभीको जोड़ देनेपर ४१६ हुए सो यह उपरितन प्रथमगुणहानि का सर्वधन जानना सो यवमध्यके प्रमाणको एकअधिक तिगुणे गुणहानिआयामसे गुणा करनेपर एवं गुणहानिआयामका भाग देने पर प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य जानना। यवमध्यके प्रमाण १२८ को तिगुनीगुणहानि (१२) में एकअधिक (१२+१=१३) से गुणा करने तथा गुणहानिआयाम का भाग देनेपर ४१६ आए, यह प्रथमगुणहानिका द्रव्य है। ऊपर एक-एक गुणहानिमें द्रव्य और विशेषका प्रमाण आधा-आधा जानना। एककम नानागुणहानिका जो प्रमाण है उतनी बार २ के अङ्क लिखकर परस्परगुणा करने पर जो प्रमाण हो उसका भाग प्रथमगुणहानिके द्रव्यमें देने पर अन्तिमगुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण होता है। उपरितनगुणहानि ५ में से एक कम किया तो ५-१=४ लब्ध आया। अतः ४ बार दो के अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्परगुणा करनेपर १६ प्राप्त हुआ इसका भाग प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य ४१६ में देने पर ४१६÷१६=२६, सो यह अन्तिमगुणहानिका द्रव्य जानना।

अधस्तनगुणहानि ३ हैं। प्रथमगुणहानिसम्बन्धी यवमध्यके प्रमाणमें से एक विशेष (चय) घटानेपर अधस्तनप्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक प्राप्त होता है। यवमध्य १२८ में से विशेषका प्रमाण १६ घटाने पर १२८-१६=११२ रहा,यह आदिनिषेक जानना तथा इसके एक-एक निषेक में से एक-एक विशेष (चय) घटाते-घटाते आदि निषेक में से एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष (चय) घटाने पर अन्तिम निषेक ६४ हुआ। मुख ६४,भूमि ११२,इनको जोड़ देनेपर ६४+११२=१७६ हुआ। इसका आधा ८८, इसको पद (४) से गुणा करनेपर ८८×४=३५२ यह अधस्तनप्रथमगुणहानिका सर्वद्रव्य है। अर्थात् यवमध्य १२८ को ११ से गुणा करनेपर (१२८×११=१४०८) लब्धराशिमें ४ का भाग देनेपर १४०८÷४=३५२ आया। यवमध्यको दूना करके ४ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धीद्रव्य में से यहाँ ऋणका प्रमाण जानना। यवमध्य १२८ के दूने २५६ को ४ से भाग दिया तो २५६÷४=६४ आया, यह ऋणरूपद्रव्य जानना। इस ऋणरूप द्रव्यको उपरितनप्रथमगुणहानिके द्रव्यमें से घटाने पर अधस्तनप्रथमगुणहानिका द्रव्य होता है तथा उपरितनगुणहानिसम्बन्धी निषेक से अधस्तनगुणहानिके निषेकमें उपरितनगुणहानिके चयका प्रमाण ऋणरूप जानना। जैसे- उपरितनगुणहानिका प्रथमनिषेक १२८ है यहाँ चयका प्रमाण १६ घटाने पर अधस्तनगुणहानिके प्रथमनिषेकका प्रमाण (१२८-१६=११२) होता है, इसीप्रकार सर्वत्र जानना। गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य आधा-आधा जानना। वहाँ एककम अधस्तनगुणहानिप्रमाण दो के अङ्क का भाग आदि गुणहानिके द्रव्य में देने पर अन्तिमगुणहानि का द्रव्य होता है तथा ऋण भी जो प्रथम

गुणहानिमें कहा वह गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा होता है। जैसे -(६४।३२।१६)। **''अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं''** इस सूत्र से (अन्तधन को गुणकार २ से गुणा कर आदिधन को घटाना।) अन्तधन ६४ (अधस्तन प्रथम गुणहानि के निषेकों में ऋण का प्रमाण) को गुणकार दो से गुणा करनेपर ६४×२=१२८ और आदि (१६ अधस्तन अन्तिम गुणहानि के निषेकों में ऋण का प्रमाण) घटाने पर १२८-१६=११२, सो यह अधस्तनगुणहानियों में ऋण का प्रमाण होता है अथवा गुणहानिआयाम के प्रमाण से अधस्तन अन्तिमगुणहानि में विशेष (चय) के प्रमाण ४ का गुणा करने पर जो लब्ध आवे उतना यवमध्य के प्रमाण में से घटाने पर जो शेष रहे उतना ऋणरूप द्रव्य जानना। तद्यथा-गुणहानिआयाम ४ में अधस्तन अन्तिमगुणहानि के विशेष (चय) का गुणा किया तो (४×४) =१६ लब्ध आया, इसको यवमध्य (१२८) में से घटाने से १२८-१६=११२ शेष रहे सो यह सर्वऋण का प्रमाण है तथा ६४+३२+१६=११२ यह अधस्तनगुणहानि के प्रथमनिषेक का द्रव्य जानना एवं अधस्तन व उपरितनसर्वगुणहानियों के सर्वद्रव्य को **''अंतधणं गुणगुणियं''** इत्यादि सूत्र से [अधस्तन गुणहानि सम्बन्धी सर्वद्रव्य-- अन्तधन अर्थात् अधस्तन प्रथम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्य {यवमध्य के प्रमाण (१२८) को एक अधिक तिगुणे गुणहानि आयाम (१३) से गुणा करने पर एवं गुणहानि आयाम का भाग देने पर $\frac{१२८\times१३}{४}$= ३२×१३} ४१६ में गुणकार २ का गुणा करने पर ६४×१३=८३२ हुआ। इसमें से आदि धन अर्थात् अधस्तन अंतिम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्य {एक कम नाना गुणहानि प्रमाण २ का भाग प्रथम गुणहानि के द्रव्य में देने पर ४१६÷(२×२)=१०४ घटाने पर ८३२-१०४=७२८} उपरितन गुणहानिसम्बन्धी द्रव्य में अन्तधन ऊपर बताये अनुसार $\frac{१२८\times१३}{४}$ =४१६, गुणकार २ से गुणा करने पर ८३२ हुआ। इसमें से आदिधन ४१६÷(२×२×२×२- एक कम नाना गुणहानिप्रमाण)=२६ को घटाने पर ८३२-२६=८०६] ७२८+८०६ को जोड़ने पर १५३४ द्रव्य हुआ। इस लब्धराशि में से ऋणरूपद्रव्य (११२) घटाने पर १५३४-११२=१४२२ शुद्ध द्रव्य होता है। यहाँ गुणहानि के प्रत्येक निषेक में से घटाए हुए विशेष (चय) का प्रमाण, योगों के स्थान रूप निषेकों में जीवों का प्रमाण एवं गुणहानि में सर्वद्रव्य का प्रमाण और अधस्तनगुणहानि में उपरितनगुणहानि से जितना द्रव्य कम है, वह ऋण का प्रमाण है।

उपरितनप्रथमगुणहानि ४१६ और अधस्तनप्रथमगुणहानि ३५२ है अत: अधस्तनप्रथमगुणहानि में ६४ ऋणरूप जोड़ने से उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य के बराबर हो जाता है। अधस्तनद्वितीयगुणहानि के द्रव्य (१७६) में ३२ ऋणरूप द्रव्य जोड़ने से (१७६+३२)२०८ उपरितनद्वितीयगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य के बराबर हो जाता है। अधस्तनतृतीयगुणहानि के द्रव्य (८८) में ऋणरूपद्रव्य १६ जोड़ने से (८८+१६) १०४ उपरितनतृतीयगुणहानिसम्बन्धी द्रव्य के बराबर हो जाता है। इस प्रकार ६४+३२+१६=११२ अधस्तनगुणहानि में कुल ऋण का प्रमाण होता है।



त्रस जीवों के योगस्थानों में जीव यवमध्य

नोट - अङ्कसन्दृष्टिकी अपेक्षा योगस्थानों में कुल जीवों की संख्या १४२२ है। इसमें से ६१६ जीव तो यवमध्यगुणहानि के नीचे हैं और ३९० जीव यवमध्यगुणहानि के ऊपर हैं और ४१६ यवमध्यगुणहानि में हैं[1]।

पुण्णतसजोगठाणं, छेदाऽसंखस्सऽसंखबहुभागे।
दलमिगिभागं च दलं, दव्वदुगं उभयदलवारा॥२४७॥

अर्थ : द्रव्य और स्थिति का प्रमाण क्रम से पर्याप्तत्रसजीवराशि के प्रमाण तथा पर्याप्तत्रसम्बन्धी परिणामयोगस्थानों के प्रमाण जानना और पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानियों में असंख्यात का भाग देने से असंख्यातबहुभाग का जो प्रमाण हो उसका आधा तो नीचे की गुणहानिका और शेष का आधा तथा शेष बचा हुआ असंख्यातवां एकभाग मिलकर ऊपर की नानागुणहानि का प्रमाण होता है इस प्रकार दोनों नानागुणहानियों का प्रमाण समझना।

विशेषार्थ : जैसे द्रव्य का प्रमाण १४२२ कहा वैसे संख्यात का भाग प्रतराङ्गुल में देने पर जो लब्ध आवे उसका जगत्प्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने प्रमाण पर्याप्तत्रसजीव हैं[2] तथा जिसप्रकार योगस्थानअध्वान ३२ कहा वैसे ही द्वीन्द्रियपर्याप्तक के जघन्यपरिणामयोग से सञ्ज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्टपरिणामयोगपर्यन्त जितने योगस्थान हों उतना योगस्थान का अध्वान जानना, वे स्थान ८४ कहे वहाँ द्वीन्द्रियपर्याप्त के जघन्यपरिणामयोगस्थान का प्रमाण जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग को ७५ बार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर जो प्रमाण होता है उसको अपवर्तन करने पर जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र ही हुआ तथा इसमें सूच्यङ्गुलके असंख्यातवें भाग मात्र मिलने पर अनन्तरस्थान हुआ उसको आदि लेकर सञ्ज्ञीपर्याप्त का उत्कृष्टयोगस्थान अङ्कसन्दृष्टि की अपेक्षा जघन्य से ३२ गुणा तथा यथार्थ की अपेक्षा पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणे हैं सो यहाँ पर्यन्त स्थानों का प्रमाण कहते हैं –

---

१. धवल पु. १० पृ. ७६। २. "पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेणजगपदरे भागे हिदे सव्व जोगट्ठाणाणं तसपज्जत्तजीवपमाणं होदि॥" (धवल पु. १० पृ. ६१)

द्वीन्द्रियपर्याप्तकके जघन्यपरिणामयोगस्थान से अनन्तरवर्तीस्थान तो आदि जानना और सञ्ज्ञीपर्याप्त के उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान को अन्त जानना। सो "आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदेरूवसंजुदे ठाणे" इस सूत्र से अन्त में से आदि का प्रमाण घटाना तथा एक-एक स्थान में सूच्यङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद अधिक हैं इसलिए इनका भाग देने पर, जो प्रमाण आवे वही योगस्थान अध्वान जानना। यहाँ भाज्य और भागहार में जघन्यस्पर्धकको अपवर्तन करके देना। अब इन स्थानों के धारक कितने-कितने जीव पाए जाते हैं ऐसा भेद करने के लिए विधान कहते हैं जैसे- आठनानागुणहानि में ३ नीचे की और ५ ऊपर की कही थी वैसे पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण सर्वनानागुणहानि में असंख्यातका भाग देना उसमें से एक भाग पृथक् रखकर शेष बहुभाग का आधा तो नीचे की नानागुणहानि का प्रमाण जानना और बहुभाग का आधा और जो एक भाग पृथक् रखा था वह मिलाने पर जो प्रमाण हो उतना ऊपर की नानागुणहानि का प्रमाण जानना।

णाणागुणहाणिसला, छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ।
गुणहाणीणद्धाणं, सव्वत्थवि होदि सरिसं तु॥२४८॥

अर्थ : उपरितन और अधस्तनसर्वगुणहानियों को मिलाने से नानागुणहानियों की संख्या पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र है, इस नानागुणहानिका भाग पूर्वोक्त योगस्थानअध्वान में देने पर जो प्रमाण आवे उतना एकगुणहानि के आयाम का प्रमाण है[1]। जैसे- योगस्थानअध्वान ३२ में सर्वनानागुणहानि ८ का भाग देने पर ३२÷८=४ आए, यह एक गुणहानि के आयाम का प्रमाण है वैसे ही यहाँ भी जानना। गुणहानिआयाम उपरितन और अधस्तनगुणहानि में समान है तथा एक-एक गुणहानि में इतने स्थान हैं। गुणहानिआयाम की दूनी दोगुणहानि जानना।

अण्णोण्णगुणिदरासी, पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु।
हेट्ठिमरासीदो पुण, उवरिल्लमसंखसंगुणिदं॥२४९॥

अर्थ : अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, किन्तु उसमें अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि से उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है।

विशेषार्थ : नानागुणहानिप्रमाण दो के अङ्क लिखकर परस्परगुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण होता है। जैसे अधस्तनअन्योन्याभ्यस्तराशि (८) और उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि (३२) कही उसीप्रकार सामान्य से पल्य के असंख्यातवेंभाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है तथापि नीचे की अन्योन्याभ्यस्तराशि से उपरितनअन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणी है। वहाँ जघन्यपरिणामयोग से

१. "णाणागुणहाणिसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। णाणागुणहाणिसलगाहि जोगड्ढाणद्धाणे ओवट्टिदे तदुवलंभादो।" (धवल पु. १०, पृ. ७४)

उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान पर्यन्त योगस्थानों में जीवों का विभाग अङ्कसन्दृष्टिवत् इस प्रकार जानना।

किंचित्ऊन तिगुने गुणहानिआयाम का भाग सर्वद्रव्य में देने पर यवमध्यका प्रमाण होता है[१]। इसमें दो गुणहानि का भाग देने पर चय का प्रमाण होता है। इस चय को दो गुणहानि से गुणा करे तो यवमध्य होता है तथा उसके ऊपर की गुणहानि में प्रथमनिषेक यवमध्य के प्रमाण उपरितन द्वितीयादिक निषेक एक-एक चयरूपहीन जानना, सो एककम गुणहानि के आयाम प्रमाण चय यवमध्य में से घटाने पर प्रथमगुणहानि के अन्तिमनिषेक का प्रमाण होता है। इसमें एक विशेष (चय) घटाने पर यवमध्य से आधा प्रमाण होता है वही द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक जानना। इसके ऊपर एक विशेष घटाने पर द्वितीयादिक निषेक होते हैं, सो एककम गुणहानिआयामप्रमाण विशेष घटाने पर अन्तिम निषेक होता है। यहाँ प्रथमगुणहानि में जो चयका प्रमाण था उसका आधा द्वितीयगुणहानि में चयका प्रमाण जानना तथा द्वितीयगुणहानि के अन्तिमनिषेक में से एक चय घटाने पर द्वितीयगुणहानि के प्रथमनिषेक से आधा प्रमाण होता है वही तृतीय गुण हानि का प्रथमनिषेक जानना। इससे द्वितीयगुणहानि के चय से आधा प्रमाण जो चय सो एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादिनिषेक होते हैं। इस प्रकार अन्तिमगुणहानिपर्यन्त जानना।

गुणहानि-गुणहानिप्रति जीवद्रव्य आधा-आधा जानना तथा अधस्तनगुणहानि में यवमध्य के नीचे प्रथमगुणहानि के प्रथमनिषेक से अन्तिमगुणहानि के अन्तिमनिषेकपर्यन्त गुणहानि-गुणहानिप्रति समस्त निषेकों में जो-जो उपरितनगुणहानि के निषेकों में प्रमाण कहा उसमें से अपनी-अपनी गुणहानि जितना-जितना विशेष (चय) का प्रमाण कहा, उतना-उतना निषेक में से घटाने पर निषेक का प्रमाण होता है। इसी को कहते हैं –

उपरितनप्रथमगुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेक यवमध्य के बराबर है। उसमें से प्रथमगुणहानि में जितना विशेष(चय) का प्रमाण कहा उतना घटाने पर अधस्तनप्रथम गुणहानिसम्बन्धी प्रथमनिषेक का प्रमाण होता है तथा उपरितनप्रथमगुणहानि के द्वितीय निषेक के प्रमाण में से प्रथमगुणहानि के विशेष (चय) का प्रमाण घटाने पर अधस्तन प्रथमगुणहानिसम्बन्धी द्वितीयनिषेकका प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रथमगुणहानि के अन्तिमनिषेकपर्यन्त जानना। उपरितनद्वितीयगुणहानि के प्रथमनिषेकसम्बन्धी प्रमाण में से द्वितीयगुणहानि के विशेष (चय) का प्रमाण घटाने पर अधस्तनद्वितीयगुण हानि सम्बन्धी प्रथम निषेकका प्रमाण जानना। उपरितनद्वितीयगुणहानि के द्वितीयनिषेक में से उतना ही चय घटाने पर अधस्तनद्वितीयगुणहानि के द्वितीयनिषेकका प्रमाण होता है। इस प्रकार अन्तिमनिषेकपर्यन्त जानना। ऐसे ही तृतीयादिक गुणहानि में भी ऋण का प्रमाण अपने-अपने विशेष (चय) के समान जानकर निषेकों

१. "सुहुमबुद्धीए णिहालिज्जमाणे किंचूणतिण्णिगुणहाणिमेत्तजवमज्झाणि होंति॥" (धवल पु. १० पृ. ७८) "एदं किंचूणतीहि गुणहाणीहि ओवट्टिदे जेण जवमज्झमागच्छदि तेण जवमज्झपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे किंचूणतिण्णिगुणहाणिकालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं।" (धवल पु. १० पृ. ८०)

का प्रमाण जानना। अधस्तनगुणहानि की रचना में ऋण को मिलाने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह उपरितनगुणहानि रचना के समान है। इस प्रकार जिस-जिस निषेक में जितना-जितना प्रमाण हो उस-उस योगस्थान में उतना-उतना जीवों का प्रमाण जानना। **''मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि''** इस सूत्र के अनुसार मुख अन्तिमनिषेक और भूमि आदिनिषेकको मिलाकर आधा करके पश्चात् गुणहानि आयाम के प्रमाण से गुणा करने से जो प्रमाण आवे वह उस गुणहानि के सर्वद्रव्य का प्रमाण जानना,ऐसा प्रत्येक गुणहानिका सर्वद्रव्य प्राप्त करने के लिए जानना। प्रथमगुणहानि के सर्वद्रव्य से द्वितीयगुणहानिका द्रव्य आधा है, ऐसे गुणहानि-गुणहानिप्रति द्रव्य आधा-आधा जानना। सर्वगुणहानियों के द्रव्य को प्राप्त करने के लिए **''अंतधणं गुणगुणियं''** इत्यादि सूत्र से प्रथमगुणहानि के अन्तधनरूप द्रव्य को गुणाकर दो से गुणाकर के उसमें से अन्तिमगुणहानि के आदिधनरूप द्रव्य को कम करना तथा एककम गुणाकार २-१=१ का भाग देने पर उपरितन व अधस्तनरूप सर्वगुणहानि का प्रमाण होता है।

अधस्तनगुणहानियों में, अपने-अपने विशेष (चय) को गुणहानिआयाम से गुणा करने से उस-उस गुणहानिसम्बन्धी ऋण का प्रमाण प्राप्त होता है। सर्वगुणहानियों का ऋण रूप द्रव्य प्राप्त करने के लिए **''अंतधणं गुणगुणियं''** इत्यादि सूत्र से प्रथमगुणहानि के ऋणरूप द्रव्य को गुणाकार दो से गुणाकर- के उसमें से अंतिमगुणहानिके ऋणरूप द्रव्य को घटाने से तथा एककम गुणकार २-१=१ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसको उपरितन गुणहानि के द्रव्य में से घटाने पर अथवा अधस्तनगुणहानि के द्रव्य में मिलाने पर अधस्तन तथा उपरितनगुणहानि में द्रव्य समान होता है।

उपरितन और अधस्तनसर्वगुणहानिसम्बन्धी सर्वद्रव्य को जोड़ने पर पर्याप्त त्रसजीवों का प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार पर्याप्तत्रससम्बन्धी परिणामयोगस्थानों में पर्याप्तत्रसजीवों का प्रमाण जानना। इस कथनसम्बन्धी अङ्कसन्दृष्टि पूर्व में कह चुके हैं सो तदनुसार ठीक प्रकार समझना। उपरितनगुणहानि के प्रथमनिषेकरूप जो योगस्थान हैं उनके धारकजीव बहुत हैं उसके नीचे और ऊपर जो योगस्थान हैं उनके धारक पूर्वोक्त क्रमसे थोड़े हैं, इसीलिए यवाकार रचना कही है।

आगे उन परिणामयोगस्थान के धारकजीव कितना-कितना प्रदेशबन्ध करते हैं? इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप आचार्य समयप्रबद्ध की वृद्धि का प्रमाण त्रैराशिक विधि से कहते हैं-

इगिठाणफड्ढयाओ, समयपबद्धं च जोगवड्ढी य।
समयपबद्धचयट्ठं, एदे हु पमाणफलइच्छा ।।२५०।।

अर्थ : द्वीन्द्रियपर्याप्तकके प्रथमजघन्यपरिणामयोगस्थान का स्पर्धक, समयप्रबद्ध और योगों की वृद्धि, ये तीनों समयप्रबद्धके बढ़ने का प्रमाण प्राप्त करने के लिए क्रम से त्रैराशिकसम्बन्धी प्रमाणराशि,फलराशि और इच्छाराशि हैं।

विशेषार्थ : जघन्ययोगस्थान में श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण जघन्यस्पर्धक प्रमाणराशि हैं, जघन्ययोगस्थान से जघन्यसमयप्रबद्धप्रमाण प्रदेशों का बन्ध होता है यह फलराशि है, एक-एक योगस्थान में सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धक बढ़ते हैं सो यह इच्छाराशि है। फलराशि से इच्छाराशि को गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देने पर जो लब्ध आया उतने-उतने प्रदेशों की अधिकता लिये एक-एक उपरितन योगस्थानों में समयप्रबद्ध बढ़ता है अर्थात् जघन्ययोगस्थान से जघन्यसमयप्रबद्ध बंधता है तथा इसके अनन्तरवर्तीयोगस्थान से इतने प्रमाण वृद्धिङ्गत होता हुआ समयप्रबद्ध बँधता है। इस प्रकार निरन्तर बढ़ता हुआ जघन्ययोगस्थान जहाँ दुगुना होता है वहाँ जघन्यसमयप्रबद्ध भी दूना है और जहाँ जघन्ययोगस्थान चारगुणा है वहाँ जघन्यसमयप्रबद्ध भी चारगुणा बँधता है। इस प्रकार सञ्जीपर्याप्तके उत्कृष्टयोगस्थानमें जघन्ययोगस्थान पल्यके अर्धच्छेदों के असंख्यातवेंभागगुणे होते हैं। यहाँ जघन्यसमयप्रबद्धको पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग से गुणाकरे ऐसा समयप्रबद्ध बँधता है।

अथानन्तर इसी बात को पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं –

बीइन्दियपज्जत्तजहण्णट्ठाणादु सण्णिपुण्णस्स।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य, जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ॥२५१॥

अर्थ : द्वीन्द्रियपर्याप्त जीव के जघन्यपरिणामयोगस्थान से सञ्जीपर्याप्तजीव के उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्यन्त परिणामयोगस्थान क्रम से एक-एक स्थान में समानवृद्धि[1]- रूप प्रमाण से बढ़ते हुए जानने।

सेढियसंखेज्जदिमा, तस्स जहण्णस्स फड्ढया होंति।
अंगुलअसंखभागा,ठाणं पडि फड्ढया उड्ढा ॥२५२॥

अर्थ : द्वीन्द्रियपर्याप्तकका जघन्यपरिणामयोगस्थान जगत्श्रेणी के असंख्यातवेंभाग मात्र स्पर्धकोंके समूहरूप है और इसके बाद प्रत्येक स्थान के प्रति सूच्यङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्यस्पर्धक बढ़ते हुए जानने तथा जघन्ययोगस्थान के जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनको जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभाग मात्र जघन्यस्पर्धकप्रमाण एकयोग प्रक्षेप प्राप्त होता है। अतः एक योग प्रक्षेपप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद एक-एक योगस्थान में बढ़ते हैं[2]।

---

१. "जोगपक्खेवो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजहण्णफद्दयपमाणो वड्ढिहाणिमभावेण अवट्ठिदो आगच्छदि।" (धवल पु. १०, पृ. ४८४)

२. देखो धवल पु. १० पृ. ४८४ सूत्र १८९ की टीका।

अब जघन्ययोगस्थान में वृद्धि का क्रम कहते हैं –

धुववड्ढीवड्ढंतो, दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ॥२५३॥

अर्थ : इस प्रकार स्थान-स्थान प्रति ध्रुववृद्धिरूप से बढ़ता हुआ जघन्ययोगस्थान (श्रेणी के असंख्यातवेंभाग जाकर)[१] क्रम से दूना-दूना हो जाता है और अन्त में सञ्जीपर्याप्तकजीव के उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान में गुणाकार का प्रमाण पल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भाग प्रमाण है अर्थात् जघन्ययोगस्थान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्टयोगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं।

अब योगस्थानों का प्रमाण कहते हैं –

आदी अंते सुद्धे, बड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा।
सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥२५४॥

अर्थ : अन्तिम उत्कृष्टस्थान के जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उनमें से जघन्यस्थान के अविभागप्रतिच्छेदों को घटाने पर जो प्रमाण आवे उसमें वृद्धि का भाग देवें सो एक-एक स्थान में सूच्यङ्गुलके असंख्यातवेंभागप्रमाण जघन्यस्पर्धकके जितने अविभागप्रतिच्छेद हों, उतने बढ़ते हैं। अत: इनका भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने स्थान जानने । इनमें एकजघन्ययोगस्थान मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने सर्वनिरन्तरयोगस्थान जानने, ये योगस्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण हैं।

आगे सर्वयोगस्थानों का प्रमाण कहते हैं –

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढीअसंखभागा हु।
सांतरणिरंतराणिवि, सव्वाणिवि जोगठाणाणि ॥२५५॥

अर्थ : अन्तर्गत (६अन्तरों में होने वाले) योगस्थान उन निरन्तर योगस्थानों के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं, ये भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग ही हैं तथा जो निरन्तर, सान्तर और मिश्ररूपयोगस्थान हैं वे अन्तर्गतयोगस्थान के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, ये भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग हैं। इस प्रकार तीनों योगस्थानों को मिलाने पर जो सर्वयोगस्थान हैं वे भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही हैं, क्योंकि असंख्यातके बहुतभेद हैं सो यथायोग्य असंख्यात का भाग जानना।

१. धवल पु. १० पृ. ४८८ सूत्र १९३।

अब इन योगस्थानों के आदि और अन्तस्थान को बताते हैं -

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥२५६॥

अर्थ - इन सर्वयोगस्थानों में सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके तीनों मोड़ाओं से उत्पन्न होने वाले अन्तिम (६०१२ वें) क्षुद्रभव के प्रथमसमय में जघन्यउपपादयोगस्थान होता है वह तो आदिस्थान जानना तथा संज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकजीवका जो उत्कृष्टपरिणामयोगस्थान है, वह अन्तिमस्थान है।

अथानन्तर प्रकृति आदि चार प्रकार के बन्धों के कारण कहते हैं -

जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य, बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥२५७॥

अर्थ : प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगों के निमित्त से होते हैं जैसा शुभ व अशुभ योग होगा वैसा ही प्रकृतिबन्ध तथा जैसा तीव्र-मन्दयोग होगा वैसा ही समयप्रबद्ध बँधता है इसलिए इनका कारण योग है तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय के निमित्त से होता है अतःजैसी कषाय होगी वैसा ही यथायोग्य स्थितिबन्ध होगा तथा वैसा ही यथायोग्य अनुभागबन्ध भी होगा, क्योंकि इनका मुख्य निमित्त कषाय है। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जिनके कषायस्थान उदयरूप नहीं होते ऐसे उपशान्तकषाय एवं जिसके कषायस्थानक्षीण हो गए हैं ऐसे क्षीणकाय और सयोगकेवली के तत्काल स्थितिबन्ध का कारण कषाय नहीं है। 'च' शब्द से अयोगकेवली के बन्ध के कारण योग और कषाय दोनों ही नहीं हैं।

विशेषार्थ : इस सम्बन्ध में धवलाकार वीरसेनाचार्य का मत है कि ११-१२-१३ वें गुणस्थान में सातावेदनीय का १ समय प्रमाण स्थिति व अनुभागबन्ध होता है।[1]।

अब योगस्थान, प्रकृतिसंग्रह, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और कर्मप्रदेशों का अल्पबहुत्व तीनगाथाओं से कहते हैं –

सेढि असंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि।
तेहिं असंखेज्जगुणो, पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

अर्थ : निरन्तर या सान्तर अथवा सान्तर-निरन्तर ये सर्वयोगस्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवेंभाग

१. "तेणेव कारणेण ट्ठिदि-अणुभागेहिं ईरियावह कम्ममप्पसिदि भणिदं।" (धवल पु. १३ पृ. ४९)

प्रमाण हैं और उनसे असंख्यातलोकगुणा मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियों का समुदाय है। सर्वयोगस्थान के प्रमाण को असंख्यातलोक से गुणा करने पर सर्वउत्तरोत्तर कर्मप्रकृतियों का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ : ज्ञानावरण की उत्तरप्रकृति ५ हैं। इनमें क्षायोपशमिक श्रुतज्ञान का भेद लब्ध्यक्षररूप ज्ञान तो निरावरण है। सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक के जो जघन्यज्ञान होता है उसका नाम लब्ध्यक्षर है। नाश के बिना एक स्वरूप से अवस्थित रहने से केवलज्ञान अक्षर है, क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि नहीं होती। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा चूंकि सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक का ज्ञान भी ज्ञानसामान्य की अपेक्षा वही है अत: इस ज्ञान को भी अक्षर कहते हैं। इसका प्रमाण केवलज्ञान का अनन्तवाँभाग है, यह ज्ञान निरावरण है, क्योंकि अक्षर का अनन्तवाँभाग नित्य उद्घाटित रहता है, ऐसा आगम का वचन है अथवा इसके आवृत होने पर जीव के अभाव का प्रसङ्ग आता है। इस लब्ध्यक्षर ज्ञान में सर्वजीवराशि का भाग देने पर सर्वजीवराशि से अनन्तगुणे ज्ञानाविभागप्रतिच्छेद आते हैं[१] इस लब्ध्यक्षरज्ञान में सर्वजीवराशि का भाग देने पर ज्ञानाविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा लब्धीवराशि से अनन्तगुणा लब्ध होता है। इस प्रक्षेपको प्रतिराशिभूत लब्ध्यक्षरज्ञान में मिलाने पर पर्यायज्ञान का प्रमाण उत्पन्न होता है[२]। इसके आगे असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि से बढ़ते हुए पर्यायसमास ज्ञान के भेद हैं। उनके आवरणकी अपेक्षा असंख्यातलोक मात्र छहस्थान प्रमाण पर्यायसमास श्रुतज्ञानावरण के भेद हैं[३] तथा श्रुतज्ञान-मतिज्ञानपूर्वक होता है, अत: इतने ही मतिज्ञानावरण के भी भेद हैं, अवधिज्ञानावरण में घनाङ्गुल के असंख्यातवें भागहीन लोकको सूच्यङ्गुल के असंख्यातवेंभाग से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसमें एक और मिलाने पर जो प्रमाण आवे उतने देशावधि के भेद हैं। अत: देशावधिआवरण के भी इतने ही भेद हैं तथा अग्निकायजीव के प्रमाण को अग्निकाय के शरीर की अवगाहना के भेदों के प्रमाण से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने परमावधि के भेद हैं। अत: परमावधिआवरण के भी इतने ही भेद हैं तथा सर्वावधि एक ही प्रकार है इसलिए सर्वावधिआवरण का भी एक ही भेद है। बीसकोड़ाकोड़ीसागर समयप्रमाणवाले कल्पकाल को असंख्यात से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने मन:पर्ययज्ञान के भेद हैं इसलिए मन: पर्ययज्ञान के आवरण के भी इतने ही भेद हैं और केवलज्ञान भेद से रहित है इसलिए इसके आवरण का भी एक ही भेद है। इस प्रकार सर्व मिलकर अवधि,मन:पर्यय और केवलज्ञानावरण से अधिक श्रुतज्ञानावरण से युक्त मतिज्ञानावरण प्रमाण ज्ञानावरण की प्रकृतियों के उत्तरोत्तर भेद हैं।

सब प्रकृतियाँ नामकर्म के निमित्त से होती हैं। अत: नामकर्म की प्रकृतियों में आनुपूर्वी प्रकृति के उत्तरोत्तर भेद कहते हैं। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है अत: क्षेत्र की अपेक्षा उसके भेद होते हैं। नरकानुपूर्वी नरकक्षेत्र विपाकी है। नरकक्षेत्र एक राजुप्रतर प्रमाण है। वहाँ उष्ट्रादि मुखाकारों के सिवाय अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती । अत: प्रमाणरूप सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयाम से उसे गुणा करें। तथा पर्याप्त

---

१. ध. पु. १३ पृ. २६२ २. ध.पु. १३ पृ. २६३-२६४ ३. ध.पु. १३ पृ. २७७

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जब नरक को जाते हैं तब नरकानुपूर्वी का उदय होता है। उससे पहले तिर्यंच या मनुष्य पर्याय में जो आकार होता है उसका नाश नहीं होता। इससे वहाँ पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य की जघन्य अवगाहना तो घनांगुल के संख्यातवें भाग है। उससे पूर्वोक्त क्षेत्र को गुणा करने पर जो क्षेत्र का प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वी का पहला भेद है। उन्हीं की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है। उसको पूर्वोक्त क्षेत्र से गुणा करने पर जो प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वी का अन्तिम भेद है। **''आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा''** इस सूत्र के अनुसार अन्तिम भेद में जितना क्षेत्र के प्रदेशों का प्रमाण हो उसमें से पहले भेद के क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण को घटाने पर जो शेष रहे उसमें एक से भाग देकर एक जोड़ने पर जो प्रमाण हो उतने नरकानुपूर्वी के उत्तरोत्तर भेद होते हैं।

[1]उत्सेध घनाङ्गुलके संख्यातवेंभाग मात्र सबसे जघन्यअवगाहना के साथ नरकगति को जानेवाले और विशिष्ट मुखाकार रूप से स्थित सिक्थमत्स्य के नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का एक विकल्प पाया जाता है। पुनः उसी जघन्यअवगाहना के साथ नरकगति को जाने वाले दूसरे सिक्थमत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का दूसरा विकल्प पाया जाता है, क्योंकि पहले के जीवप्रदेशों का अनुपरिपाटी से जो अवस्थान पाया जाता उससे यहाँ पर पहले के आकाशप्रदेशों से पृथग्भूत आकाशप्रदेशों के सम्बन्ध से भिन्न अनुपरिपाटी का अवस्थान देखा जाता है। अब उसी सबसे जघन्यअवगाहना के साथ नरकगति को जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्य के नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मका तृतीयविकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहले की अनुपरिपाटी रूप से जो अवस्थान है इससे यहाँ पर भी पहले के आकाशप्रदेशों से पृथग्भूत आकाशप्रदेशों के सम्बन्ध से अन्यअनुपरिपाटी का अवस्थान उपलब्ध होता है, यह कारण सर्वत्र कहना चाहिए। पुनः सबसे जघन्यअवगाहना के साथ अलब्धपूर्व मुखाकार रूप से नरकगति को जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्य के नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का चतुर्थविकल्प होता है,क्योंकि पहले नहीं उपलब्ध हुए ऐसे मुखाकार रूप से वह परिणत हुआ है। पुनः उसी सर्वजघन्यअवगाहना के साथ नरकगति को जानेवाले अन्य सिक्थमत्स्य के नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी का पाँचवाँ विकल्प उपलब्ध होता है, क्योंकि यह अलब्धपूर्व मुखाकार रूप से परिणमित हुए द्रव्य का कारण है। इस प्रकार छह, सात, आठ, नौ, दस, आवलि, उच्छ्वास, स्तोक, लव, घटिका, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर और राजूरूप तिर्यक्प्रतर तक नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प कहने चाहिए। पुनः इसी क्रम से दो-तीन आदि तिर्यक्प्रतर विकल्पों को सूच्यङ्गुल के असंख्यातवेंभाग मात्र तिर्यक्प्रतरों के जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने मात्र नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प प्राप्त होने तक बढ़ाते जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नूतन-नूतन मुखविकल्पों के साथ नरकों में उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्यों की वह सबसे जघन्य अवगाहना ध्रुव करनी चाहिए। राजुप्रतर,राजुवर्ग और तिर्यक्प्रतर ये एकार्थवाची शब्द हैं। सूच्यङ्गुल

१. धवल पु. १३ पृ. ३७२ से ३७५ तक।

के असंख्यातवें भाग से तिर्यक्प्रतर को गुणित करने पर जितने आकाशप्रदेश उपलब्ध होते हैं उतने ही सिक्थमत्स्य की सबसे जघन्यअवगाहनाकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प प्राप्त होते हैं यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इनसे अधिक विकल्प नहीं प्राप्त होते हैं क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

अब एकप्रदेश अधिक सबसे जघन्यअवगाहना के साथ नरकों में मारणान्तिक समुद्घात करके या उसके बिना विग्रहगति द्वारा उत्पन्न होने वाले सिक्थमत्स्यों के नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उतने ही विकल्प प्राप्त होते हैं। अधिक अवगाहना के अधिक प्रकार प्राप्त नहीं होते, क्योंकि कारणरूप शक्ति में भेद होने से ही कार्य में भेद उत्पन्न होता है। समानशक्तिसंख्या से युक्त एक कारण के होने पर कार्य के संख्याविषयक भेद नहीं होता है, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।

इस प्रकार पृथक्-पृथक् सर्वअवगाहनाविकल्पों में नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के सूच्यङ्गुल के असंख्यातवेंभाग से गुणित राजुप्रतरप्रमाण विकल्प कहने चाहिए। वे इस प्रकार प्राप्त होते हैं, ऐसा समझकर सिक्थमत्स्यकी अवगाहना को महामत्स्यकी अवगाहना में से घटाकर जो शेष रहे उसमें जघन्यअवगाहना के विकल्प की अपेक्षा एक मिलाने पर श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्प होते हैं; क्योंकि संख्यातघनाङ्गुलों में भी श्रेणी के असंख्यातवें भाग रूप संख्या का व्यवहार होता हुआ देखा जाता है। पुनः यदि एक अवगाहना के विकल्प की अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प अंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणित तिर्यक्प्रतरप्रमाण प्राप्त होते हैं तो संख्यातघनाङ्गुल मात्र अवगाहनाविकल्पों के कितने नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार संख्यातघनाङ्गुलों से सूच्यङ्गुलके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यक्प्रतरों को गुणित करने पर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ होती हैं।

इसी प्रकार तिर्यंचानुपूर्वी तिर्यंच-क्षेत्रविपाकी है। सो तिर्यंच का क्षेत्र सर्वलोक है। नारकी, त्रस-स्थावर तिर्यंच, कर्मभूमिया मनुष्य तथा सहस्रार स्वर्ग तक के देव तिर्यंचगति में उत्पन्न होते हैं। सो वे आनुपूर्वी के उदय से पूर्व शरीर के आकार को नहीं छोड़ते। अतः सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण से पूर्वोक्त क्षेत्र को गुणा करने पर तिर्यंचानुपूर्वी का प्रथम भेद होता है तथा उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे गुणा करने पर अन्त का भेद होता है। सो **''आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा''** सूत्र के अनुसार अन्त में से आदि को घटा कर उसे एक से भाग देकर और उसमें एक मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने भेद तिर्यंचानुपूर्वी के होते हैं।

[१] सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्सेधघनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण सबसे जघन्यअवगाहना के द्वारा तिर्यञ्चों में मारणान्तिकसमुद्घात करने पर एक तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वीका

१. धवल पुस्तक १३ पृ. ३७६-३७७

विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि वह एक आकाशप्रदेश के सम्बन्ध से अपूर्वमुखाकार रूप से परिणमनका हेतु है। पुनः दूसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्त जीव के उसी जघन्यअवगाहना के साथ तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने पर अपूर्वमुखाकार प्राप्त होता है उस समय दूसरा तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प होता है। इस प्रकार जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर घनलोकप्रमाण तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्पों के प्राप्त होने तक अपूर्व-अपूर्व मुखाकारों के साथ तिर्यञ्चों में उत्पन्न कराना चाहिए। जघन्यअवगाहना का आलम्बन लेकर तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि इनसे अधिक मुखाकारों का प्राप्त होना यहाँ सम्भव नहीं है। सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकों के सबसे जघन्यअवगाहना के साथ तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने पर नूतन-नूतन मुखाकार उत्कृष्ट रूप से यदि बहुत होते हैं तो वे घनलोकप्रमाण होते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। पुनः एक प्रदेश अधिक सर्वजघन्यअवगाहना के आश्रय से भी घनलोकप्रमाण ही तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म के विकल्प होते हैं। इसी प्रकार दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना से महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहनापर्यन्त इन सर्व अवगाहनाओं सम्बन्धी पृथक्-पृथक् घनलोकप्रमाण तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए।

अब सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक की सबसे जघन्यअवगाहना को महामत्स्य की अवगाहना में से घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अङ्क मिलाकर श्रेणी के असंख्यातवेंभाग प्रमाण से घनलोकको गुणित करने पर जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतनी ही तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीनामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ होती हैं।

मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्य क्षेत्रविपाकी है। मनुष्यक्षेत्र मनुष्यों के पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रियपना होने से उनकी उत्पत्ति के योग्य ४५ लाख योजन प्रमाण गोल विष्कम्भ से गुणित त्रसनाली एक राजु प्रतर प्रमाण है। मानुषोत्तर से बाहर चारों कोनों में मनुष्यों की उत्पत्ति न होने से चौकोर क्षेत्र नहीं कहा है। आदि की छह पृथ्वियों के नारकी, त्रस, स्थावर, कर्मभूमिया तिर्यंच और मनुष्य तथा देव मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। वे मनुष्यानुपूर्वी के उदय से अपना पूर्व आकार नहीं छोड़ते। अतः जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग से पूर्वोक्त क्षेत्र को गुणा करने पर पहला भेद और उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल से गुणा करने पर अन्तिम भेद होता है। अतः "आदि अंते सुद्धे" सूत्र के अनुसार अन्त में से आदि को घटा कर एक का भाग देकर और एक जोड़ने पर जो प्रमाण हो उतने भेद मनुष्यानुपूर्वी के हैं।

[१] उत्सेधघनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण सबसे जघन्यअवगाहना के द्वारा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजीव विग्रहगति से मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। यहाँ मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प प्राप्त होता है।

१. धवल पुस्तक १३ पृ. ३७८

पुनः दूसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्त जीवके जघन्यअवगाहना के साथ विग्रहगति से मनुष्यों में उत्पन्न होने पर दूसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का विकल्प होता है। पुनः तीसरे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीव के जघन्यअवगाहनासहित अलब्धपूर्वमुखाकार के द्वारा मनुष्यों में उत्पन्न होने पर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का तीसरा विकल्प होता है, क्योंकि अन्यथा अपूर्वमुखाकार की उत्पत्ति होने में विरोध आता है। यदि कहो कि कार्यभेद से कारण में भेद मानना असिद्ध है तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। सबसे जघन्य इस अवगाहना का आलम्बन लेकर अलब्धपूर्व नानाविधमुखाकारों के साथ मनुष्यों में मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीवों के ४५ लाखयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरों के जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने विकल्प प्राप्त होने तक मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृति के विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए। यहाँ जघन्यअवगाहनाका आलम्बन लेकर मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी के इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं।

इस अवगाहना से प्राप्त आनुपूर्वीप्रकृतियों को स्थापित करके सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक की जघन्यअवगाहना को महामत्स्यकी उत्कृष्टअवगाहना में से घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अङ्क मिलाने पर जगच्छ्रेणी के असंख्यातवेंभागप्रमाण अवगाहनाविकल्प होते हैं। इन अवगाहनाविकल्पों से एकअवगाहनासम्बन्धी आनुपूर्वीविकल्पों को गुणित करने पर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के सर्वप्रकृति विकल्पों का जोड़ होता है।

देवानुपूर्वी देवक्षेत्रविपाकी है। देव सब त्रस होते हैं अतः उनका क्षेत्र विवक्षित ज्योतिर्लोक के अन्तपर्यन्त नौ सौ योजन से त्रसनाली के प्रतरक्षेत्र का गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना जानना। शेष देवों का उत्पत्ति क्षेत्र थोड़ा है। इससे उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की है। ज्योतिषी देवों की ही मुख्यता से कथन किया है। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य ही देवों में जन्म लेते हैं। देवगति में गमन करते समय देवायु और देवगति के उदय के साथ देवानुपूर्वी के उदय से पूर्व आकार का नाश न होने से उनकी जघन्य अवगाहना संख्यात घनांगुल से उक्त क्षेत्र को गुणा करने पर प्रथम भेद होता है। उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात घनांगुल प्रमाण है। उससे गुणा करने पर अन्तिम भेद होता है। सो "आदि अंते सुद्धे" सूत्र के अनुसार अन्त में से आदि को घटा कर एक का भाग देकर एक मिलाने पर जो प्रमाण हो उतने भेद देवगत्यानुपूर्वी के जानना।

[१]उत्सेधघनाङ्गुल के संख्यातवें भाग मात्र सर्वजघन्यअवगाहना के द्वारा देवगतिको जानेवाले सिक्थमत्स्य के एक देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का विकल्प प्राप्त होता है। पुनः उसी सर्व जघन्य अवगाहना के द्वारा अलब्धपूर्व मुखाकार के साथ देवगति को जाने वाले सिक्थमत्स्य के देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी का

१. धवल पुस्तक १३ पृ. ३८३-३८४

दूसरा विकल्प प्राप्त होता है। मुख का अर्थ शरीर है, उसका आकार संस्थान है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में एक श्लोक भी कहा है –

मुखमर्द्धं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा, नासिकायाश्च चक्षुषी॥

अर्थ : शरीर के आधेभाग को मुख कहते हैं, अथवा पूरा शरीर ही मुख कहलाता है। उसमें भी नासिका श्रेष्ठ है और नासिका से भी दोनों आँखें श्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार पुन:-पुन: अलब्धपूर्वमुखाकार के साथ देवों में उत्पन्न होनेवाले सिक्थमत्स्यों के नौसौयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरों के जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने ही सबसे जघन्यअवगाहना का आलम्बन लेकर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं। अब एकप्रदेश अधिक सबसे जघन्यअवगाहना में भी इतने ही प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार दो प्रदेशअधिक सर्वजघन्यअवगाहना से सबसे उत्कृष्टमहामत्स्य की अवगाहना तक ले जाना चाहिए। अब यदि एक अवगाहना विकल्प के नौसौयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरप्रमाण देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होते हैं तो संख्यातघनाङ्गुल मात्र अवगाहनाविकल्पों के कितने देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार समस्त अवगाहनाविकल्पों से नौसौयोजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करने पर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृति के सर्वउत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं।

आनुपूर्वी के इन उत्तरोत्तर भेदों को पूर्वोक्त ज्ञानावरण के उत्तरोत्तर भेदों में मिलाने से प्रकृति संग्रह होता है। शेष प्रकृतियों के उत्तरोत्तर भेदों का उपदेश प्राप्त नहीं है। यह प्रकृतिसंग्रह रचना के अनुसार किया है। बहुश्रुतों को इसको शुद्ध कर लेना चाहिए।

तेहिं असंखेज्जगुणा, ठिदि अवसेसा हवंति पयडीणं।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा॥२५९॥

अर्थ : उन प्रकृतिविकल्पों से स्थितिबन्धके भेद असंख्यातगुणे हैं तथा स्थितिभेदों से असंख्यातगुणे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान जानना। (जिन परिणामों से स्थितिबन्ध हो उन परिणामों को स्थितिबन्धाध्यवसाय कहते हैं।)

विशेषार्थ : एक-एक प्रकृति के स्थिति भेद जघन्यस्थिति को उत्कृष्ट स्थिति में से घटाकर उसमें एक समय का भाग देकर और एक मिलाने पर जघन्यस्थिति से एक-एक समय बढ़ते हुए

उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त संख्यातपल्यप्रमाण पाए जाते हैं सो एक प्रकृति के स्थितिभेद संख्यातपल्यप्रमाण होते हैं तो पूर्वोक्त सर्व उत्तरोत्तर प्रकृतिभेदों के स्थिति सम्बन्धी भेद कितने होते हैं? इस प्रकार त्रैराशिक द्वारा प्रकृतिविकल्प के प्रमाण से संख्यातपल्यगुणे स्थिति के भेद होते हैं तथा इन स्थिति के भेदों से स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे हैं। प्रकृतियों के अपने-अपने उदय से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उनकी ही अपनी-अपनी स्थिति बन्ध में कारण होने से स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सञ्ज्ञा है। स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान कषायस्थान नहीं है[1]।

अङ्कसन्दृष्टि - एक प्रकृति की स्थितिबन्ध के कारण रूप परिणाम ३१०० हैं और उस एक प्रकृति के स्थिति भेद ४० स्थिति स्थान जानने । नानागुणहानि ५ तथा नानागुणहानि प्रमाण दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२, एक गुणहानि में स्थिति का प्रमाण गुणहानि आयाम प्रमाण [illegible] सर्वस्थिति में देने पर जो प्रमाण हो वह गुणहानि आयाम का प्रमाण जानना। नानागुणहानि ५ का भाग स्थिति ४० में देने पर ४०÷५=८ प्राप्त हुए सो ८ एकगुणहानि आयाम जानना। इसको दूना करने पर दोगुणहानि का प्रमाण होता है। उन स्थिति के भेदों में सबसे जघन्यस्थिति बन्ध के कारण ऐसे स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक हैं उनका प्रमाण ९ है। **''पदहतमुखमादिधनं''** इस सूत्र से एक गुणहानि का जो आयाम वही पद है गच्छ ८ से हत अर्थात् गुणा हुआ मुख अर्थात् ९×८=७२ आदिधन हुआ। एक अधिक गुणहानि का भाग आदिस्थान में देने पर जो प्रमाण हो वह चय जानना। यहाँ गुणहानि के प्रमाण ८ को एकअधिक करने पर ९ का भाग आदिस्थान ९ में देने पर ९÷९=१ आया, यह चय जानना। एक-एक स्थान में एक-एक चय बढ़ता हुआ स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान प्रथमगुणहानिपर्यन्त जानना, सो **''व्येकपदार्धधनचयगुणोगच्छ-उत्तरधनं''** अर्थात् एककम गच्छ के आधे को चय से गुणा करके पुनःगच्छ से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह सर्व चयधन जानना। यहाँ गच्छ ८ में से एककम करने पर ८-१=७, इसका आधा ३$\frac{१}{२}$, चयके प्रमाण १ से गुणा करने से ३$\frac{१}{२}$ ही रहे तथा इसको गच्छ के प्रमाण ८ से गुणा करने पर २८ हुए सो चयधन जानना तथा आदिधन और उत्तरधन (चयधन), इन दोनों को मिलाने पर प्रथमगुणहानि का सर्वद्रव्य होता है। आदिधन ७२ और उत्तरधन २८,दोनों को जोड़ने पर ७२+२८=१०० हुए। यह प्रथमगुणहानि का सर्वद्रव्य जानना तथा गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना द्रव्य है अतः १००-२००-४००-८०० और १६०० यह दूना-दूना क्रम एककम नानागुणहानि प्रमाण बार होता है। अन्तरस्थानों में अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे प्रमाण से आदि को गुणा करे जो प्रमाण होवे वह अन्तिम गुणहानि का प्रमाण जानना।

यहाँ नानागुणहानि ५ में से एक घटाने पर ५-१=४ रहे सो इतनी बार दो के अङ्क लिखकर (२×२×२×२) परस्पर गुणा करने पर १६ हुए सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ का आधा है। इस १६

१. धवल पु. ११ पृ. ३१०

से प्रथमस्थान १०० को गुणा करे तो १००×१६=१६०० हुए, यह अन्तिमगुणहानि का द्रव्यप्रमाण जानना।

"**अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं**" यह करणसूत्र स्थान-स्थानप्रति जो समान गुणकार होता है उनको जोड़ने के लिए है। अतः गुणकार करते-करते अन्त में जो प्रमाण आवे उसको गुणकार के प्रमाण से गुणा करके लब्धराशि में से आदि के प्रमाण को घटाने से जो प्रमाण आवे उसमें एककम उत्तर (चय) का भाग देने से सर्वधन प्राप्त होता है। सो यहाँ अन्तस्थान का प्रमाण १६०० और दूना-दूना किया था, इससे गुणकार के प्रमाण दो से गुणा करने पर ३२०० हुए इसमें से आदि का प्रमाण १०० घटाने पर ३२००-१००=३१०० रहे। इस प्रकार पाँचों गुणहानिका जोड़ देने पर एक प्रकृति के स्थितिबन्ध के कारण ३१०० अध्यवसायस्थान जानने। यह अङ्कसन्दृष्टि अपेक्षा कथन हुआ। अब यथार्थ कथन करते हैं-एक प्रकृति के स्थिति बन्ध के कारण असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं सो यह द्रव्य का प्रमाण है, एक प्रकृति के, जघन्यस्थिति से उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त संख्यातपल्यप्रमाण स्थितिभेद स्थितिस्थान हैं, पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र नानागुणहानिका प्रमाण है तथा पल्य के असंख्यातवेंभाग मात्र अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण है।

नानागुणहानिशलाकाका स्थिति में भाग देने पर जो प्रमाण हो सो गुणहानिआयाम जानना। इसको दूना करने पर दो गुणहानि होती है। यहाँ सर्वस्थिति के भेदों में जधन्यस्थितिबन्ध के कारण ऐसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक हैं, तथापि ये असंख्यातलोक मात्र हैं। '**पदहतमुखमादिधनं**' गच्छ से गुणित आदिस्थान ही आदिधन कहलाता है। एक अधिक गुणहानिआयाम का भाग आदि स्थान में देने पर चय का प्रमाण होता है, "**व्येकपदार्धधनचयगुणोगच्छ उत्तरधनं**" एककम गच्छ के आधे को चय से गुणा करके जो प्रमाण आवे उसको पुनः गच्छ से गुणा करने पर चयधन होता है तथा आदिधन और चयधन इन दोनों को मिलाने पर प्रथमगुणहानि का सर्वद्रव्य होता है। इस प्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना होते-होते अन्त में एककम नानागुणहानिप्रमाण दूना होने से अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे प्रमाण से 'आदि' को गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह अन्तिम गुणहानि का द्रव्य जानना, सो "**अंतधणं गुणगुणिय आदिविहीणं रुऊणुत्तरं भजियं**" इस सूत्र से अन्त में जो प्रमाण आया उसको गुणकार दो से गुणा करने पर तथा उसमें से आदि के प्रमाण को घटाकर उसमें एककम गुणकार के (२-१=१) प्रमाण से भाग देकर जो लब्ध आया वह सर्वगुणहानिका धन जानना। इस प्रकार एकप्रकृति के संख्यातपल्यप्रमाण स्थिति भेदों के असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हुए तो सर्व उत्तरोत्तर प्रकृतिभेदों के कितने स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करके स्थिति के भेदों से असंख्यातलोकगुणे होते हैं। इन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानों में अधःप्रवृत्तकरणवत् अनुकृष्टिविधान है सो निम्न प्रकार जानना -

अनुकृष्टिविधान की रचना

स्थितिभेद	स्थितिबन्धाध्य-वसायस्थान	समस्त स्थितिबंधाध्यवसायस्थानों का स्पष्टीकर			
१६	२२२	५४	५५	५६	५७
१५	२१८	५३	५४	५५	५६
१४	२१४	५२	५३	५४	५५
१३	२१०	५१	५२	५३	५४
१२	२०६	५०	५१	५२	५३
११	२०२	४९	५०	५१	५२
१०	१९८	४८	४९	५०	५१
९	१९४	४७	४८	४९	५०
८	१९०	४६	४७	४८	४९
७	१८६	४५	४६	४७	४८
६	१८२	४४	४५	४६	४७
५	१७८	४३	४४	४५	४६
४	१७४	४२	४३	४४	४५
३	१७०	४१	४२	४३	४४
२	१६६	४०	४१	४२	४३
१	१६२	३९	४०	४१	४२

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा॥२६०॥

अर्थ : इन स्थिति बन्धाध्यवसायस्थानों से असंख्यातलोकगुणे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हैं। इससे अनन्तगुणे कर्मों के परमाणु हैं।

विशेषार्थ : जघन्यस्थितिबन्ध के कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान उन सम्बन्धी अनुभागबंधाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक को असंख्यातलोक से गुणा करे सो असंख्यातलोक×असंख्यातलोकप्रमाण है सो यहाँ पर द्रव्य जानना तथा जघन्यस्थितिबन्ध के कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं वे यद्यपि असंख्यातलोकबार अविभागप्रतिच्छेदों की षट्स्थानवृद्धि को लिये हुए हैं तथापि असंख्यातलोकमात्र ही है। उन्हें यहाँ स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानिशलाका

दो बार असंख्यात से भाजित आवलिप्रमाण है। अर्थात् आवलिको दोबार असंख्यातसे भाग देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाण है। स्थितिस्थानों में नानागुणहानि का भाग देने पर जो प्रमाण हो उतना एक गुणहानि का आयाम जानना। इसका दूना करने पर दो गुणहानि होती है।आवलिका असंख्यातवाँभागप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है।

यहाँ जघन्यस्थिति बन्धाध्यवसायस्थान में अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं और सबसे स्तोक हैं, इसको मुख कहते हैं। 'पदहतमुखमादिधनं' गुण हानि आयाम रूप जो पद, उससे मुखको गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह आदिधन है। एककम पद जो गुणहानिआयाम, उसको आधा कर इसको चय से गुणाकरके पुन: पदसे गुणा करने पर जो प्रमाण आवे वह चयधन है। आदिधन और चयधन को मिलाने पर प्रथमगुणहानि का सर्वद्रव्य होता है। इस प्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति दूना-दूना क्रम से करके अन्तिमगुणहानि में एककम नानागुणहानिप्रमाण दो के अंक रख कर उन्हें परस्पर में गुणा करने पर गुणकार का प्रमाण होता है और यह अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधाप्रमाण है। इससे आदिगुणहानि के द्रव्य को गुणा करने पर अन्तिमगुणहानि का सर्वद्रव्य होता है। तथा **"अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं"** इस सूत्र से अन्तिम गुणहानि के द्रव्य को गुणकार दो से गुणा करके उसमें से आदि गुणहानि का द्रव्य घटाने पर गुणाकाररूप उत्तर जो दो उसमें से एक घटाने पर एक रहा,उसका भाग देने पर उतना ही रहा, सो यह सर्वगुणहानिका द्रव्य है। यह जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सम्बन्धी अनुभागबंधाध्यवसायस्थानों का प्रमाण हुआ। एक स्थितिभेद के अनुभागबंधाध्यवसायस्थान भेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सर्वस्थितिभेदों के अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान कितने होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर लब्धराशि का जो प्रमाण हो वह स्थिति बन्धाध्यवसायस्थानों से असंख्यातगुणा जानना तथा इन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानों से कर्म के प्रदेशरूप परमाणु अनन्तगुणे हैं।

अब इसी को अङ्क सन्दृष्टि से कहते हैं-

एक समय में जितने परमाणु बँधते हैं उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। इसका प्रमाण ६३००,कर्मकी स्थिति का प्रमाण ४८ समय, नानागुणहानि ६,एक-एक गुणहानि में जितनी स्थिति हो वह एक गुणहानि का आयाम है उसका प्रमाण ८, नानागुणहानि प्रमाण दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४, गुणहानि के आयाम को दूना करने पर दो गुणहानि १६। इस प्रकार एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि (६३) का भाग सर्वद्रव्य ६३०० में देने पर ६३००÷६३=१०० आए, यह अन्तिम गुणहानि का प्रमाण जानना। इससे दूना-दूना द्रव्य आदि की गुणहानिपर्यन्त जानना, सो आधेप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि ३२ से अन्तिमगुणहानि के द्रव्य १०० को गुणा करने पर आदिगुणहानि का द्रव्य होता है। (१००×३२=३२००) यह प्रथम (आदि) गुणहानि का द्रव्य है। इससे द्वितीयादि गुणहानि का

द्रव्य आधा-आधा जानना, ३२००-१६००-८००-४००-२००-१०० तथा उस प्रथम गुण हानि सम्बन्धी द्रव्य को गुणहानि आयाम का भाग देने पर मध्यधन होता है, सो ३२०० में ८ का भाग देने पर ३२००÷८=४०० सो यह मध्यधन है इसमें एककम गुणहानिआयाम के आधेप्रमाण को निषेक भागहार रूप दो गुणहानि में से घटाने पर जो प्रमाण रहे उसका भाग मध्यधन में देने पर जो प्रमाण आवे वह चय का प्रमाण है। एकगुणहानि ७, इसके आधे $३\frac{१}{२}$ को दो गुणहानि १६ में से घटाने पर $१६-३\frac{१}{२}=१२\frac{१}{२}$ इसका भाग मध्यधन में देने पर $(४००\div\frac{२५}{२})३२$, यह प्रथम गुणहानि में चय जानना। इस चय को दो गुणहानि से गुणाकर, जो प्रमाण हो वह आदि निषेक है अर्थात् ३२×१६=५१२ आदि निषेक हुआ। इसमें से एक चय (३२) घटाने पर (५१२-३२) ४८०, यह दूसरा निषेक है। इस प्रकार क्रम से प्रथमगुणहानि के अन्तिमनिषेक में प्रथमगुणहानिसम्बन्धी एकचय घटाने पर प्रथम गुणहानि के प्रथमनिषेक से आधाप्रमाण होता है। इसे द्वितीयगुणहानि का प्रथम निषेक जानना। इस प्रकार द्वितीयगुणहानिसम्बन्धी एक-एकचय घटाने पर द्वितीयादिक निषेक होते हैं। यहाँ पूर्वोक्त विधान से प्रथम गुणहानि से द्वितीयगुणहानि में चय का प्रमाण और निषेकों का प्रमाण सर्व आधे-आधे होते हैं। इसके अन्तिमनिषेक में से द्वितीयगुणहानि सम्बन्धी एकचय घटाने पर तृतीयगुणहानिका प्रथमनिषेक होता है। इससे एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादिकनिषेक होते हैं। यहाँ चय का और निषेकों का प्रमाण द्वितीयगुणहानि से आधा-आधा जानना। इसी प्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा प्रमाण है।

अब सर्वगुणहानि का यंत्र लिखते हैं-

गुणहानि	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पञ्चम गुणहानि	षष्ठ गुणहानि
सर्वगुणहानियों का कुल द्रव्य ५७००	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
चयद्रव्य	३२	१६	८	४	२	१
प्रत्येक गुणहानि का सर्व द्रव्य	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

उपर्युक्त सन्दृष्टि का स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

समयप्रबद्ध की ६३०० वर्गणा कर्मरूप से बँधी और उसकी आबाधाकाल अधिक ४८ समय की स्थिति सम्बन्धी निषेक रचना आबाधाकाल में तो नहीं होती। आबाधाकाल व्यतीत होने के पश्चात् पहले समय में ५१२ परमाणुरूप प्रथमनिषेक है। अर्थात् पहले समय में ५१२ परमाणु खिरे। पीछे ३२-३२ कम प्रतिनिषेक द्रव्य दिया जाता है अर्थात् द्वितीयादि समयों में ३२-३२ घटते हुए परमाणु खिरे। प्रथम गुणहानि के काल में सर्वपरमाणु ३२०० हैं अर्थात् ३२०० परमाणु खिरे। द्वितीयगुणहानि का प्रथमनिषेक २५६ परमाणुओं का है। इसके पश्चात् प्रत्येक निषेक १६-१६ हीन रूप से हैं। द्वितीयगुणहानि में सर्वपरमाणु १६०० हैं अर्थात् इसमें सर्व परमाणु १६०० खिरे। इस प्रकार गुणहानि-गुणहानिप्रति आधा-आधा द्रव्य है अर्थात् प्रत्येक गुण-हानि में आधे-आधे परमाणु खिरे। यहाँ सर्वगुणहानि में ६३०० परमाणु की इसी प्रकार रचना होती है, अर्थात् इस तरह सब गुणहानियों में ६३०० परमाणु खिरते हैं। सो जैसे अङ्कसन्दृष्टि के द्वारा कथन किया उसी प्रकार अर्थरूप भी जानना। विशेष इतना है कि जो द्रव्यादिक का प्रमाण जैसा हो वैसा ही जानना।

इसी कथन को मोहनीय कर्म की अपेक्षा से कहते हैं-

मोहनीयकर्म की स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण में से ७००० वर्ष आबाधाकाल को घटाने पर जो शेष रहे उसके जितने समय हों उसे स्थितिनिषेकरचना का प्रमाण जानना। पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों में से घटाने पर जो प्रमाण रहे उसे नानागुणहानिशलाका का प्रमाण जानना। इसका भाग उस स्थिति में देने पर जो प्रमाण आवे उतना एकगुणहानि के आयाम का प्रमाण है, इसको दूना करने पर दो गुणहानिका प्रमाण होता है। नानागुणहानि प्रमाण दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करने से जो प्रमाण आवे वह अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना। अङ्कसन्दृष्टि में जैसा विधान कहा वैसा विधान करते हुए गुणहानि में और निषेकों में जितना द्रव्य का प्रमाण आवे उतना ही जानना। आबाधाकाल के पीछे प्रथमसमय में तो प्रथम गुणहानि के प्रथमनिषेक में जितना द्रव्य का प्रमाण हो उतने परमाणु खिरते हैं।

दूसरे समय के दूसरे निषेक में जितना द्रव्य का प्रमाण हो उतने परमाणु खिरते हैं। इस प्रकार एक गुणहानिके कालसम्बन्धी जितने समय हों उतने समयों में प्रथमगुणहानि का जितना द्रव्य हो उतने परमाणु खिरते हैं। पश्चात् (आगे) इसी क्रम से प्रत्येक गुणहानि में आधा-आधा द्रव्य खिरता है। अतः सर्वगुणहानियों में इसी क्रम से सम्पूर्ण समयप्रबद्ध का विभाजन होकर परमाणु खिरते हैं। सो इस प्रकार जो समयप्रबद्ध बँधता है उसके विभाजन का विधान है और एक-एक समयप्रबद्ध प्रत्येक समय में नवीन बँधते हैं उनका सन्ततिरूप अनादि सम्बन्ध है। प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धप्रमाण, बंध और निर्जरा होने

पर भी जीव के किंचित् ऊन डेढ़गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण कर्मों की सत्ता सदाकाल रहती है अर्थात् गुणहानि आयाम के प्रमाण को डेढ़गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसमें से कुछ प्रमाण को घटाने पर जो लब्ध आवे उससे समयप्रबद्ध को गुणा करने पर जो लब्ध हो उतने कर्मपरमाणुओं की सत्ता जीव के सदैव पाई जाती है तथा वर्तमान काल में एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक उदय होते हुए प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध का उदय होता है, यह किस प्रकार होता है? द्व्यर्धगुणहानि से अर्थात् डेढ़गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धमात्र सत्ता है तथा एक-एक समयप्रबद्ध किसप्रकार उदय में आता है? इस कथन को अङ्कसन्दृष्टि की त्रिकोण रचना से कहेंगे।

त्रिकोणयन्त्र का अर्थ अङ्कसन्दृष्टि के अनुसार इस प्रकार है-

६३०० परमाणु प्रमाण समयप्रबद्ध का बन्ध प्रतिसमय होता है जो आबाधाकाल को छोड़कर ४८ समयरूप स्थिति में क्रम से ४८ समयों में इस प्रकार खिरते हैं- प्रथम गुणहानि- ५१२-४८०-४४८-४१६-३८४-३५२-३२०-२८८। द्वितीयगुणहानि- २५६-२४०-२२४-२०८-१९२-१७६-१६०-१४४। तृतीय गुणहानि - १२८-१२०-११२-१०४-९६-८८-८० और ७२। चतुर्थ गुणहानि-६४-६०-५६-५२-४८-४४-४०-३६। पञ्चमगुणहानि-३२-३०-२८-२६-२४-२२-२०-१८। षष्ठगुणहानि-१६-१५-१४-१३-१२-११-१०-९। इन छहों गुणहानियों में ६३०० परमाणुओं का इस प्रकार विभाजन हो कर परमाणु खिरते हैं। यहाँ जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर आबाधाअधिक ४८ समय हो गए उसका और उससे पहले बँधे समयप्रबद्ध का तो कोई भी निषेक सत्ता में नहीं रहा इसलिए उनका तो कुछ प्रयोजन रहा नहीं तथा जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर आबाधाअधिक ४७ समय हो चुके उसके ४७ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए अन्तिम एकनिषेक शेष रहा वह त्रिकोणयन्त्रमें ९ परमाणुरूप ऊपर लिखा तथा इसके नीचे जिस समयप्रबद्धको बँधे आबाधाकालअधिक ४६ समय हो चुके उसके ४६ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए शेष दो निषेक सत्ता में रहे सो त्रिकोणयन्त्र में ९ परमाणु और १० परमाणु के दो निषेक लिखे तथा इसके नीचे जिस समयप्रबद्ध को बँधे आबाधा अधिक ४५ समय व्यतीत हो चुके उसके ४५ निषेक तो निर्जीर्ण हो गए, शेष ३ निषेक सत्ता में रहे सो त्रिकोणयन्त्र में ९-१० और ११ के तीननिषेक लिखे हैं। इसी प्रकार जिस-जिस समयप्रबद्ध का बन्ध हुए एक-एक समय कम हुआ है उसके एक-एक घटते हुए निषेक तो निर्जीर्ण हुए तथा शेष एक-एक अधिक निषेक सत्ता में रहे उनको नीचे-नीचे लिखा। जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर आबाधा अधिक एक समय हुआ हो उसका एक निषेक तो निर्जीर्ण हो गया, शेष ४७ निषेक रहे, वे ९ से ४८० परमाणु के निषेकपर्यन्त लिखे तथा इसके नीचे अन्त में जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर मात्र आबाधाकाल ही व्यतीत हुआ और जिसका एक भी निषेक नहीं खिरा उसके ९ से ५१२ पर्यन्त ४८ निषेक ही सत्ता में पाए जावेंगे, सो लिखे हैं। इस प्रकार त्रिकोणयन्त्र के अनुसार निर्जीर्ण होने के पश्चात् जो निषेक शेष रहे वे क्रम से लिखे सो इस सर्व

त्रिकोणयन्त्र का जोड़ देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाण सत्ता जीव के सदाकाल रहती है। अब जोड़ने का विधान कहते हैं-

त्रिकोण यंत्र की चरम गुणहानि में चरम निषेक ९ हैं। उसके नीचे द्विचरम निषेक दो हैं ९, १०। इसी तरह त्रिचरम निषेक तीन हैं ९/१०/११। इस प्रकार एक-एक अधिक के क्रम से प्रथम निषेक में नाना समयप्रबद्धों से प्रतिबद्ध निषेक गुणहानि प्रमाण होते हैं ९/१०/११/१२/१३/१४/१५/१६। यहाँ जोड़ने के लिए सबको चरम निषेक ९ के समान करने के लिए नीचे-नीचे के निषेकों में स्थित अन्तिम गुणहानि के सर्वों को पृथक् करके उन्हें अपनी-अपनी समान निषेक संख्या के पास में स्थापित करो।

अत: अन्तिमगुणहानि का अन्तिमनिषेक ९ लिखकर उसके आगे एक-एक अधिक गुणकार ९, ऐसी एक पंक्ति करनी और दूसरी पंक्ति के अन्त में शून्य लिखना। पश्चात् सङ्कलनरूप प्रमाण लिखना। यहाँ अंतिम गुणहानि की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

९×१	०
९×२	१×१
९×३	१×२
९×४	१×६
९×५	१×१०
९×६	१×१५
९×७	१×२१
९×८	१×२८

यहाँ ९×१=९ यह प्रथम जोड़ है तथा ९×२=१८,१×१=१ इन दोनों को मिलाने से १८+१=१९,सो ९ और १०=१९। ९×३=२७,३×१=३ इन दोनों के मिलने से २७+३=३०, सो ९+१०+११ का जोड़ ३० इसप्रकार जोड़ करने पर अन्त में ९×८=७२ और २८×१=२८ इनको मिलाने से ७२+२८=१००सो अन्तिम गुणहानि के सर्वनिषेकों का योग १०० हुआ।

द्विचरमादि गुणहानि में चरमादि गुणहानि का सर्वद्रव्य तो 'आदि' जानना किन्तु दोनों पंक्तियों में पहले से दूना-दूना प्रमाण जानना। द्विचरम गुणहानि की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

९×२×१	०
९×२×२	२×१
९×२×३	२×३
९×२×४	२×६
९×२×५	२×१०
९×२×६	२×१५
९×२×७	२×२१
९×२×८	२×२८

यहाँ द्विचरम गुणहानि का चरम निषेक चरम गुणहानि के चरम निषेक से दूना है। उसके नीचे के निषेक उसी के समान करने के लिए द्विचरम गुणहानि के विशेषों को उसमें से निकाल कर उन्हें पास में स्थापित किया है। दूसरी पंक्ति में अन्त में शून्य, पश्चात् दूना संकलन रूप प्रमाण लिखा है।

९×२=१८ अर्थात् १८×१=१८ यह तो प्रथमनिषेक और ९×२=१८,१८×२=३६ और २×१=२ इनको मिलाने पर ३८ सो १८ और २० मिलकर (१८+२०) ३८ होते हैं। इसी प्रकार अन्त में ९×२=१८ और १८×८=१४४ तथा २८×२=५६ ये दोनों मिलने से २०० सो द्विचरम गुणहानि में सर्वनिषेकों का जोड़ जानना। इस द्विचरम गुणहानि में चरम गुणहानि का द्रव्य सर्वत्र एक-एक जगह मिलाने पर त्रिकोण रचना में जोड़ होता है।

जैसे प्रथमगुणहानि का द्रव्य १०० मिलाने पर ११८, उसके नीचे ३८ में १०० मिलाने से १००+३८=१३८, इसीप्रकार जानना। इसका कारण यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाम में ९/१०/११/१२/१३/१४/१५/१६ ये निषेक होते हैं। त्रिचरम गुणहानि में दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

९×४×१	०
९×४×२	४×१
९×४×३	४×३
९×४×४	४×६
९×४×५	४×१०
९×४×६	४×१५
९×४×७	४×२१
९×४×८	४×२८

यहाँ त्रिचरम गुणहानि का अन्तिम निषेक चरम गुणहानि के अन्तिम निषेक से चतुर्गुणा है। उसके नीचे के निषेक उसी के समान करने के लिए त्रिचरम गुणहानि के विशेषों को उन निषेकों में से निकाल कर उन्हें पास में स्थापित किया है। दूसरी पंक्ति में अन्त में शून्य,पश्चात् चतुर्गुणा संकलन रूप प्रमाण लिखा है। ९×४=३६ प्रथम निषेक, ९×४=३६ और ४×१=४ तो ३६+४=४० द्वितीय निषेक। दोनों का योग ३६+४०=७६ हुआ। अन्त में ९×४=३६ और ४×८=३२ अर्थात् ३६+३२=६८ अन्तिम निषेक। ९×४×८=२८८,४×२८=११२, दोनों का योग ४०० हुआ। यह त्रिचरम गुणहानि में सर्व निषेकों का जोड़ जानना। इस त्रिचरमगुणहानि में द्विचरम-चरम दोनों गुणहानि का द्रव्य सर्वत्र एक-एक जगह मिलाने पर त्रिकोण रचना में जोड़ होता है।

ऐसे प्रथम गुणहानि पर्यन्त दोनों पंक्तियों में तो दूना-दूना प्रमाण लिखकर उन दोनों पंक्तियों के एक-एक स्थान का प्रमाण मिलाने पर तथा पहले हुई गुणहानियों का सर्वद्रव्य मिलाने पर जो प्रमाण हो उतना-उतना त्रिकोण रचना में क्रम से पंक्तियों का जोड़ जानना। ९। १९। ३०। ४२। ५५। ६९। ८४। १००। ११८। १३८। १६०। १८४। २१०। २३८। २६८। ३००। ३३६। ३७६। ४२०। ४६८। ५२०। ५७६। ६३६। ७००। ७७२। ८५२। ९४०। १०३६। ११४०। १२५२। १३७२। १५००। १६४४। १८०४। १९८०। २१७२। २३८०। २६०४। २८४४। ३१००। ३३८८। ३७०८। ४०६०। ४४४४। ४८६०। ५३०८। ५७८८। ६३००। इन सर्वका जोड़ करने पर जो प्रमाण हो उतना त्रिकोणयन्त्रसम्बन्धी कुल जोड़ होता है, सो यह जोड़ किंचित् ऊन डेढ़गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण होता है। सर्वत्रिकोणरचना के द्रव्य का जोड़ ७१,३०४ है तथा गुणहानि आयाम के प्रमाण ८ को डेढ़गुणा करने से $(८\times \frac{३}{२})$ १२ इसी द्व्यर्ध (डेढ़) गुणहानि से समयप्रबद्ध ६३०० को गुणा करने पर ६३००×१२=७५,६०० लब्ध होता है, किन्तु यहाँ पर तो सर्वद्रव्य का प्रमाण ७१,३०४ ही है। इसका कारण यह है कि यहाँ गुणकार किंचित्ऊन कहा है। यहाँ त्रिकोणरचना का जो सर्व जोड़ है वही सत्तारूप द्रव्य जानना। सो अङ्कसन्दृष्टि द्वारा जैसे कथन किया वैसे ही अर्थसन्दृष्टि की अपेक्षा भी सर्वकथन है। निषेकादिका प्रमाण जैसा हो वैसा ही जानना तथा अन्य सर्वविधान अङ्कसन्दृष्टिवत् जानना।

इस प्रकार कुछकम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण कर्मकी सत्ता जीव के सदैव पायी जाती है। गुणहानिआयाम के समयों का जो प्रमाण है उसको डेढ़गुणा करके उसमें से किंचित्ऊन अर्थात् पल्य की संख्यातवर्गशलाका से अधिक गुणहानिआयाम का १८ वाँ भाग घटाना और उससे समयप्रबद्धप्रमाण को गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने कर्मपरमाणु जीव के साथ सदाकाल रहते हैं। इसी से सर्वस्थितिसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानों से कर्मप्रदेश अनन्तगुणे कहे हैं। जैसे समय-समय में एक-एक नवीनसमयप्रबद्ध बँधते हैं वैसे ही एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप होकर खिरते हैं तथापि सत्ता पूर्वोक्त प्रमाण सदा बनी रहती है। एक समय में एकसमयप्रबद्ध की निर्जरा (खिरना) किस प्रकार होती है, सो कहते हैं-

वर्तमान विवक्षितसमय में जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर आबाधाकाल भी हो गया और जिसका पहले एक भी निषेक नहीं खिरा उसके तो ५१२ रूप प्रथमनिषेक उदयरूप होता है और शेष निषेक आगामी काल में उदय में आवेंगे तथा जिस समयप्रबद्ध का बन्ध होने पर आबाधाकाल और एक समय हो गया हो एवं जिसके एकनिषेक पहले खिर गया हो उसका ४८० रूप दूसरानिषेक वर्तमान समय में उदय आता है। ४६ निषेक आगे उदय में आवेंगे तथा जिस समयप्रबद्धको बन्ध होने के बाद आबाधाकाल और दो समय व्यतीत हो गए हों उसके २ निषेक तो पहले खिरे और ४४८ रूप तीसरानिषेक वर्तमान समय में खिरता है, शेष ४५ निषेक आगामी काल में खिरेंगे। इसी क्रम से जिस-जिस समयप्रबद्ध का बन्ध पहले-पहले हुआ उसका पिछला-पिछला निषेक वर्तमान काल में उदय होता

है शेष निषेक आगामी काल में उदय होते हैं। अन्त में समयप्रबद्ध का बन्ध होने से अब आबाधाकाल और ४७ समय होगए तथा ४७ निषेक जिसके पहले खिर गए हैं उसका ९ रूप अन्तिमनिषेक वर्तमान काल में उदयरूप होता है। शेष कोई निषेक नहीं रहा अत: पहले जो समयप्रबद्ध बंधे थे उनके सर्वनिषेक निर्जीर्ण हो गए इसलिए उनका कुछ प्रयोजन ही नहीं ।

इस प्रकार वर्तमानविवक्षित एक समय में ५१२ से ९ पर्यन्त सर्वनिषेक एकसमय में उदय होते हैं उनका जोड़ देने पर सम्पूर्ण समयप्रबद्ध का उदय कहा है। ऐसे एक-एक समय प्रबद्धप्रमाण परमाणु खिरते हैं वहीं एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु नवीन बँधते हैं तथा किंचित्ऊन डेढ़गुणहानि से गुणित प्रमाण समयप्रबद्ध सत्ता में रहते हैं। अङ्कसन्दृष्टिवत् अर्थसन्दृष्टि का कथन है अत: अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानों से कर्मपरमाणु अनन्तगुणे कहे हैं, क्योंकि एकसमय प्रबद्ध में, अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवेंभागप्रमाण अनन्तकर्मपरमाणु होते हैं।

"इति प्रदेशबन्धप्रकरण"

॥ इसप्रकार बन्धोदयसत्त्वाधिकार में बन्धप्रकरण पूर्ण हुआ ॥

❋❋❋

अथ उदयप्रकरण

चार प्रकार के बन्ध का निरूपण करने के अनन्तर अब गुणस्थानों में उदय का नियम कहते हैं-

आहारं तु पमत्ते, तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से।
सम्मं वेदगसम्मे, मिच्छदुगयदेव आणुदओ॥२६१॥

अर्थ- आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपाङ्ग का उदय प्रमत्तगुणस्थान में ही होता है, तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय सयोगी और अयोगकेवली के ही है। मिश्रमोहनीय का उदय सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान में ही है। सम्यक्त्वप्रकृति का उदय असंयतादि चारगुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि के ही है, आनुपूर्वी का उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतगुणस्थान में ही है, अन्यत्र उनके उदय का अभाव है।

आनुपूर्वीकर्म के उदयसम्बन्धी कुछ विशेषता कहते हैं-

णिरयं सासणसम्मो, ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू।
मिच्छादिसु सेसुदओ, सगसगचरमोत्ति णादव्वो॥२६२॥

अर्थ- सासादनसम्यग्दृष्टि मरणकर नरकगति में नहीं जाता है इसी कारण उसके सासादनगुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है तथा शेष प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपने-अपने उदयस्थान के अन्तसमय पर्यन्त जानना।

विशेषार्थ- यहाँ उदयप्रकरण में व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय ऐसे तीन प्रकार से कथन करते हैं- जिस- जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही, उन प्रकृतियों का उस गुणस्थानपर्यन्त उदय जानना तथा उन गुणस्थानों से आगे के गुणस्थानों में उनका उदय नहीं रहता है और उन गुणस्थानों में जितनी प्रकृतियों का उदय हो सो उदय जानना।

नीचे के गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों का उदय कहा हो उनमें से उसी गुणस्थान में जितनी व्युच्छित्ति कही हो उनको घटाने पर उस गुणस्थान के ऊपरवर्ती गुणस्थान में उदय प्रकृति का प्रमाण जानना। यहाँ इतनी विशेषता है कि जो प्रकृति आगे के गुणस्थानों में उदय योग्य है, विवक्षित गुणस्थान में उसका उदय नहीं है तो उसको उस गुणस्थान की उदययोग्य प्रकृतिमें से घटा देना और पूर्वगुणस्थान में जिसका उदय नहीं था किन्तु विवक्षितगुणस्थान में उसका उदय होगा अतः उसको जोड़ देना यही उदयसम्बन्धी व्यवस्था का क्रम है तथा जितनी प्रकृतियों का मूल में उदय कहा उनमें जो प्रकृति शेष रहें उनका अनुदय होता है। इस प्रकार व्युच्छित्ति-उदय और अनुदय का कथन जानना।

अब गुणस्थानों में व्युच्छित्तिको षट्खण्डागमके कर्त्ता श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्य के मतानुसार क्रम से कहते हैं-

दस चउरिगि सत्तरसं, अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग,चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधि ॥२६३॥

अर्थ- अभेदविवक्षा से मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से उदयव्युच्छित्ति १०-४-१-१७-८-५-४-६-६-१-२-२-१४-२९ और १३ प्रकृति की जानना।

विशेषार्थ- कर्मकी १४८ प्रकृतियों में से अभेदविवक्षा से उदययोग्य १२२ प्रकृतियाँ हैं। उदयव्युच्छित्ति गुणस्थानों के क्रम से होती गई है जैसे-मिथ्यात्वगुणस्थान में १० प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति है। सासादनगुणस्थान में उदय से व्युच्छिन्नप्रकृति चार हैं। इस मत में एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय नामकर्मकी इन प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थान में ही होती है, सासादन गुणस्थान में इनका उदय **पुष्पदंत-भूतबली** आचार्य के मतानुसार नहीं है[1] तथा **यतिवृषभाचार्य** के मतानुसार इनका उदय सासादनगुणस्थान में भी कहा है[2]। मिश्रगुणस्थान में १, असंयतगुणस्थान में

१. धवल पु. १ सूत्र ३६ पृ. २६१, धवल पु. ३ सूत्र ७४-७६।

२. जयधवल पु. २ पृ. १०८ व १२२। धवल पु. ४ पृ. १६५ "जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति भणंति।"

१७, देशसंयतगुणस्थान में ८, प्रमत्तगुणस्थान में ५, अप्रमत्तगुणस्थान में ४, अपूर्वकरणगुणस्थानमें ६, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ६, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में १, उपशान्तमोहगुणस्थानमें २, क्षीणमोहगुणस्थान में २ और १४, सयोगकेवली के २९ प्रकृतिकी उदयव्युच्छित्ति है, क्योंकि नानाजीवों की अपेक्षा साता और असाता दोनों ही वेदनीयकी व्युच्छित्ति नहीं है। अयोगकेवली के १३ प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति जानना।

मिथ्यात्वगुणस्थान में उदय ११७, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयका उदय नहीं होने से पाँचप्रकृति का अनुदय है। सासादनगुणस्थान में उदय १०६ प्रकृति का, मिथ्यात्वगुणस्थान की व्युच्छिन्नप्रकृति १० और नरकगत्यानुपूर्वी इस प्रकार से ११ का उदय न होने से अनुदय १६ का। मिश्रगुणस्थान में उदयरूपप्रकृति १००, सासादनसम्बन्धी ४ और तीनआनुपूर्वी का उदय नहीं है तथा मिश्रप्रकृति के मिलने से अनुदयप्रकृति २२। असंयतगुणस्थान में उदययोग्यप्रकृति १०४,आनुपूर्वी ४ और सम्यक्त्वमोहनीय मिलने से तथा मिश्रमोहनीयगुणस्थान की मिश्रगुणस्थान में ही व्युच्छित्ति हुई अतः १८ प्रकृति का अनुदय है। असंयत में व्युच्छित्ति १७ प्रकृति की है इसलिए देशसंयतगुणस्थान में उदयप्रकृति ८७ और अनुदयप्रकृति ३५। प्रमत्तगुणस्थान में आहारकद्विकसहित तथा देशसंयतगुणस्थान की व्युच्छिन्नप्रकृति ८ बिना उदयप्रकृति ८१ और अनुदयप्रकृति ४१ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ५ प्रकृतियों के बिना अप्रमत्तगुणस्थान में उदयप्रकृति ७६ और अनुदय ४६ प्रकृति का है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति ४ हैं अतः उनके बिना अपूर्वकरणगुणस्थान में उदय ७२ प्रकृति का है,अनुदय ५०प्रकृति का है। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति ६ कही हैं उनके बिना अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में उदयरूप प्रकृति ६६ एवं अनुदयरूप प्रकृति ५६ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में उदय से व्युच्छिन्न प्रकृति ६ हैं अतः इनके बिना सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में उदय प्रकृति ६० एवं अनुदय ६२ प्रकृति का है। यहाँ व्युच्छिन्नरूपप्रकृति १ कही गई है। इसी कारण १ प्रकृति बिना उपशान्तमोह गुणस्थान में उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ६३ हैं। इस गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति दो हैं अतः इन दो प्रकृति के बिना क्षीणमोहगुणस्थान में उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६५ हैं। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नरूप १६ प्रकृति के बिना तथा तीर्थङ्करप्रकृति के मिलने से सयोगकेवली के उदय प्रकृति ४२ एवं अनुदयप्रकृति ८० हैं। इसी गुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली २९ प्रकृतियाँ कही हैं, उनके बिना अयोगकेवलीगुणस्थान में उदयरूपप्रकृति १३ तथा अनुदय प्रकृति १०९ हैं।

षट्खण्डागम रचयिता 'पुष्पदंत-भूतबली' आचार्य के मतानुसार उदयव्युच्छित्ति उदय और अनुदय प्रकृतियों की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	११७	५	५(तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व,सम्यक्त्व) १० (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय व विकलत्रय)
सासादन	४	१०६	१६	१६ (१०+५+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	१००	२२	२२ (१६+४+३ आनुपूर्वी : नरकगत्यानुपूर्वीबिना- १ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१८	१८ (२२+१-५ आनुपूर्वीचार व सम्यक्त्वप्रकृति) १७ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकषट्क, नरक व देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय व अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	३५	८ (प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र, उद्योत)
प्रमत्तसंयत	५	८१	४१	४१ (३५+८-२ आहारकद्विक) ५ (आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्त	४	७६	४६	४ (सम्यक्त्व और अर्धनाराच-कीलक व सृपाटिकासंहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	५०	६ (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	६ (स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद व सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	६३	२ (नाराच व वज्रनाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	६५	१६ (ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, निद्रा और प्रचला)

सयोगकेवली	२९	४२	८०	८० (६५+१६-१ तीर्थंकर) २९ (वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, औदारिक-शरीर, औदारिकअंगोपांग, तैजस-कार्मण, संस्थान ६, वर्णादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर)
अयोग	१३	१३	१०९	१३ (साता-असातावेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र)

आगे यतिवृषभाचार्यकृत चूर्णिसूत्र का उपदेश रूप द्वितीयपक्ष कहते हैं-

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच च चउर छक्क छच्चेव।
इगिदुग सोलस तीसं बारस उदये अजोगंता॥२६४॥

अर्थ - अपने अनुभागरूप स्वभाव की अभिव्यक्ति को उदय कहते हैं। अपना कार्य करके कर्मरूपता को छोड़ने का नाम उदय है। उदय के अन्त को उदयव्युच्छित्ति कहते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान से अयोगकेवलीगुणस्थान पर्यन्त व्युच्छिन्नप्रकृतियाँ क्रम से ५-९-१-१७-८-५-४-६-१-१६-३० और १२ हैं।

विशेषार्थ - यद्यपि गाथोक्त इस मत का स्पष्ट रूप से कथन नहीं है, किन्तु निष्कर्ष से ऐसा ज्ञात होता है।

जयधवल पु.२ पृष्ठ १२२ पर सञ्ज्ञीजीवों की कालप्ररूपणा पुरुषवेद के समान कही है तथा पृष्ठ ११५ पर पुरुषवेदी के अनन्तानुबन्धीविभक्तिकाल एकसमय कहा है। मोहनीयकी २४ प्रकृतियों की सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टिजीव अनन्तानुबन्धी की संयोजनाकर पश्चात् एक समय के लिए अनन्तानुबन्धीसहित सञ्ज्ञी रहा तथा अगले समय में मरण कर असञ्ज्ञीजीवों में उत्पन्न हो गया। इसप्रकार सासादन गुणस्थान में मरणकर असञ्ज्ञीजीवों में उत्पन्न होता है। यदि कहा जाय कि अगले समय में मिथ्यादृष्टि होकर मरणकर असञ्ज्ञी हो गया सो सम्भव नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टि होने के प्रथम समय में मरण नहीं होता है।

कषायपाहुडचूर्णिसूत्र के कर्त्ता आचार्यके अनुसार उदयव्युच्छित्ति, उदय व अनुदयप्रकृतियों की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	५	पूर्वसन्दृष्टि में १० प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति कही है, किन्तु स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय की व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में न होकर सासादनगुणस्थान में होती है अत: यहाँ ५ की व्युच्छित्ति कही है।
सासादन	९	१११	११	९ (अनन्तानुबन्धी ४ कषाय+स्थावर एवं एकेन्द्रियादि चारजाति।) ११ (५+५+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	१००	२२	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
असंयत	१७	१०४	१८	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
देशसंयत	८	८७	३५	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
प्रमत्तसंयत	५	८१	४१	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
अप्रमत्त	४	७६	४६	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
अपूर्वकरण	६	७२	५०	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
उपशान्तमोह	२	५९	६३	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
क्षीणमोह	१६	५७	६५	पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार
सयोगकेवली	३०	४२	८०	पूर्वसन्दृष्टि में १३वें-१४वें गुणस्थान में साता-असाता
अयोगकेवली	१२	१२	११०	इन दोनों ही प्रकृतियों का उदय नाना-जीवों की अपेक्षा १४वें गुणस्थान तक माना है, किन्तु यहाँ दोनों में से एक का ही उदय माना है। इसीकारण दोनों गुणस्थानों में उदय-अनुदय प्रकृतियों में पूर्व की अपेक्षा १-१ प्रकृति का अन्तर है।

अब गुणस्थानों में उदयव्युच्छित्तिरूप प्रकृतियों के नाम आठगाथाओं से कहते हैं-

मिच्छे मिच्छादावं,सुहुमतियं सासणे अणेइंदी।
थावरवियलं मिस्से, मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ॥२६५॥

अयदे बिदियकसाया, वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी, दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२६६॥

देसे तदियकसाया, तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥२६७॥

अपमत्ते सम्मत्तं, अंतिमतियसंहदी यऽपुव्वम्हि।
छच्चेव णोकसाया, अणियट्टी भागभागेसु ॥२६८॥

वेदतिय कोहमाणं, मायासंजलणमेव सुहुमंते।
सुहुमो लोहो संते, वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

खीणकसायदु चरिमे, णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा।
णाणंतरायदसयं, दंसणचत्तारि चरिमम्हि ॥२७०॥

तदियेक्कवज्जणिमिणं, थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं।
संठाणं वण्णागुरुचउक्क पत्तेय जोगिम्हि ॥२७१॥

तदियेक्कं मणुवगदी, पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं।
जसतित्थं मणुवाऊ , उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥२७२॥

अर्थ - मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व,आतप,सूक्ष्म,अपर्याप्त, साधारण इन पाँचप्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धीकषाय चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय इन ९ प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है। मिश्रगुणस्थान में एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की ही उदयव्युच्छित्ति है॥२६५॥

असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणकषाय चार,वैक्रियकशरीर,वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग,नरकगति, देवगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी,दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १७ प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं॥२६६॥

देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यान की चारकषाय,तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र व तिर्यञ्चगति की उदयव्युच्छित्ति होती है। प्रमत्तगुणस्थान में आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला की उदयव्युच्छित्ति है॥२६७॥

अप्रमत्तगुणस्थान में सम्यक्त्वमोहनीय, अर्धनाराच-कीलित व सृपाटिकासंहननकी अपूर्वकरणगुणस्थान में हास्य,रति,अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उदयव्युच्छित्ति होती है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में तीनों वेद व सञ्ज्वलनक्रोध के साथ श्रेणी चढ़ने की अपेक्षा सवेदभाग और अवेदभाग में व्युच्छित्ति कहेंगे॥२६८॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग में तीनों वेद की, अवेद-वेदरहितभाग में क्रम से सञ्ज्वलनक्रोध, सञ्ज्वलनमान,सञ्ज्वलनमाया इस प्रकार ६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है। बादरलोभ भी अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ही व्युच्छिन्न होता है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के अन्त में सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभ की एवं उपशान्तमोहगुणस्थान में वज्रनाराच और नाराचसंहनन की उदयव्युच्छित्ति होती है॥२६९॥

क्षीणकषायगुणस्थान के अन्तिम दो समयों में से द्विचरमसमय में निद्रा और प्रचला की तथा चरमसमय में ५ ज्ञानावरण,४ दर्शनावरण और ५ अन्तरायकी इस प्रकार सर्व १६ प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है॥२७०॥

सयोगकेवलीगुणस्थान में दोनों वेदनीय में से कोई एकवेदनीय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ,सुस्वर-दु:स्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त-विहायोगति, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, तैजस-कार्मणशरीर, ६ संस्थान, वर्णादिचार, अगुरुलघु, उपघात,परघात,उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर इन ३० प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है॥२७१॥

अयोगीगुणस्थान के अन्त में साता-असातावेदनीय में से कोई एक,मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और उच्चगोत्र ये १२ प्रकृतियाँ व्युच्छित्तिरूप हैं॥२७२॥

विशेषार्थ - पूर्वमतानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का उदय मिथ्यात्व में ही कहा है अत: मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्त में इनकी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है, किन्तु गाथा २६४ के मतानुसार उपर्युक्त ५ प्रकृतिका उदय सासादनगुणस्थान में कहा अत: इनकी उदयव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में होती है। सयोगकेवली व अयोगकेवलीगुणस्थान में यहाँ जो साता-असातावेदनीय में से एककी व्युच्छित्ति कही है वह एकजीव की अपेक्षा कथन किया गया है, किन्तु नानाजीवों की अपेक्षा इन दोनों गुणस्थानों में साता-असातावेदनीयकी व्युच्छित्ति नहीं है, क्योंकि सयोगी व

अयोगीगुणस्थान में एक जीवापेक्षा ३० व १२ प्रकृति की क्रम से व्युच्छित्ति कही है एवं नानाजीवों की अपेक्षा २९ व १३ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही गई है।

जिस प्रकार अन्य गुणस्थानों में साता-असातावेदनीयजन्य सुख-दुःख होता है उसी प्रकार केवलीभगवान् के भी होना चाहिए। ऐसी शंका होने पर आचार्य समाधान करते हुए अगली गाथा कहते हैं-

णट्ठा य रायदोसा, इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं॥२७३॥

अर्थ - केवलीभगवान् के घातियाकर्मों का नाश हो जाने से राग के कारणभूत चार प्रकार की माया, चारप्रकार का लोभ, तीनवेद, हास्य-रति तथा द्वेष के कारणभूत चारप्रकार का क्रोध, चार प्रकार का मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका निर्मूल नाश हो गया है अत: इनका राग-द्वेष नष्ट हो चुका है तथा युगपत् सकलतत्त्वप्रकाशी ज्ञान में क्षयोपशमरूप परोक्ष मतिज्ञान और श्रुतज्ञान नहीं हो सकते इसलिए इन्द्रियजनित ज्ञान नष्ट हो गया, इसी कारण केवली के साता और असातावेदनीय के उदयसे सुख-दुःख नहीं है, क्योंकि सुख-दुःख इन्द्रियजनित हैं तथा वेदनीय के सहकारी कारण मोहनीय का अभाव हो गया है अत: वेदनीय के उदय होने पर भी वह सुख-दुःख देने रूप कार्य करने में असमर्थ है।

वेदनीय कर्म केवली के इन्द्रियजन्य सुख-दुःख का कारण क्यों नहीं है? इसके उत्तरस्वरूप दो गाथाएँ कहते हैं-

समयट्ठिदिगो बंधो, सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ, सादसरूवेण परिणमदि॥२७४॥

एदेण कारणेण दु, सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता, परीसहा जिणवरे णत्थि॥२७५॥

अर्थ - केवली भगवान के सातावेदनीय का बन्ध एकसमय की स्थितिवाला है अत: उदयरूप ही है तथा केवली के असाता वेदनीय का उदय सातारूप से परिणत होता है॥२७४॥

केवली के निरन्तर साता का ही उदय है, अत: असाता के उदय से होने वाले (क्षुधा,पिपासा,शीत,उष्ण,दंशमशक,चर्या, शय्या, निषद्या,रोग,तृणस्पर्श और मल) परीषह नहीं होते हैं॥२७५॥

विशेषार्थ - केवलीभगवान के अनन्तगुणीहीन अनुभागशक्तिवाली असाता का उदय है, क्यों कि पूर्व में अनेक अनुभाग काण्डकों के द्वारा असातावेदनीय की अनुभागशक्ति क्षीण की जा चुकी है और मोहनीय की सहायता का भी अभाव हो गया है अत: असातावेदनीय का अप्रकट सूक्ष्म उदय है तथा जो सातावेदनीय का सत्त्व होता है उसका अनुभाग अनन्तगुणा है। सातावेदनीय की स्थिति की अधिकता संक्लेश से एवं अनुभाग की अधिकता विशुद्धता से होती है, अत: श्रेणि में विशुद्धता विशेष होने से उत्कृष्ट अनुभागबन्ध (सूक्ष्मसाम्पराय के चरम समय में) होना है। फिर उसी अघातित अनुभाग का सत्त्व केवली के भी पाया जाता है।(धवला १२/१६-१८) इस प्रकार केवली के सातावेदनीय का अनुभाग, सत्त्व व उदय अनन्तगुणा होता है अत: जो असाता का उदय है, वह भी उदयागत अनुभागयुक्त सातावेदनीय के द्वारा प्रतिहत[1] हो जाता है।

शंका - कोई कहता है कि सातावेदनीय असातारूप परिणत होती है, ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

समाधान - साता का स्थितिबन्ध दो समय का नहीं है, किन्तु उदयरूप एक समयवाला है, अन्यथा कहने पर असाता के बन्ध का प्रसङ्ग आता है, किन्तु वह सम्भव नहीं है, क्योंकि उदयरूप एक समय की स्थिति लिये हुए बँधने वाली साता की पूर्वसमय में सत्ता ही नहीं है अत: साता का असातारूप स्तिबुकसंक्रमण सम्भव नहीं है।

दूसरी बात यह है कि '**एकादशजिने**' तथा '**वेदनीये शेषाः**' तत्त्वार्थ सूत्र के इन सूत्रों के अनुसार वेदनीयकर्म के निमित्त से होने वाली ११ परीषह केवली के होती हैं ऐसा जो कहा गया है, उसका कारण यह है कि यद्यपि असातावेदनीय का उदय केवली के पाया जाता है[2] अत: उसके कार्यरूप परीषहों का होना मात्र उपचार से कहा है मुख्यरूपेण तो केवली के परीषह का अभाव ही है।

---

१. धवल पु. १३ पृ. ५३।

२. **शंका** - यह तो ठीक है कि साता व असाता में से अन्यतर का उदय ही सम्भव है? परन्तु उपशान्तकषायादि गुणस्थानवर्ती महात्माओं के उदयस्वरूप साता के साथ जब असातावेदनीय उदित होता है तब उनके दोनों साथ में उदित मानने पड़ेंगे? इसका भी कारण यह कि सयोगकेवली तक के सब जीवों के असाता का उदय सम्भव है। (गो. क. २७१) तथा ईर्यापथ आस्रवत्व को परिप्राप्त नवबद्ध साता तो उदयस्वरूप ही होने से नित्य उदित है ही।
समाधान - ठीक है। चौदहवें गुणस्थान में साता व असाता में से एक का ही उदय रहता है। ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानों में जब प्राचीन काल की बद्ध असाता का उदय होता है उस समय एक समय स्थिति वाली नवकबद्ध साता भी उदित होती है, अत: इन तीन गुणस्थानों में नवीन बँधने वाली साता तथा प्राचीन असाता, इन दोनों का युगपत् उदय सम्भव है।

शंका - साता का उदय काल तो अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। उसका कुछकम एक कोटिपूर्वतक केवलीभगवान के निरन्तर उदय कैसे रह सकता है?

समाधान - सयोगकेवली के अतिरिक्त अन्यत्र साता का उदयकाल अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। केवली के निरन्तर उदयरूप एकसमय की स्थितिवाला साता का बन्ध होता रहता है जो अन्यत्र सम्भव नहीं है[1]।

अब उदय-अनुदय दो गाथाओं से कहते हैं-

सत्तरसेक्कारखं चदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया॥२७६॥

अर्थ - मिथ्यात्व से अयोगी गुणस्थान पर्यन्त क्रम से ११७-१११-१००-१०४-८७-८१-७६-७२-६६-६०-५९-५७-४२ और १२ प्रकृति का उदय पाया जाता है।

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठि असीदि दुगुणपणवण्णं॥२७७॥

अर्थ - मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानों में क्रम से ५-११-२२-१८-३५-४१-४६-५०-५६-६२-६३-६५-८० और ११० प्रकृतियाँ अनुदयरूप हैं। अर्थात् इनका उदय नहीं पाया जाता है।

नोट - गाथा २७७ तक का विशेषकथन गाथा २६३ के विशेषार्थ से जानना चाहिए तथा इस कथन (उदय-अनुदय-उदयव्युच्छित्ति) सम्बन्धी सन्दृष्टियाँ गाथा २६३ व २६४ में दी गई हैं वहाँ से जानना।

उदय-उदीरणारूप प्रकृतियों की विशेषता तीनगाथाओं से कहते हैं-

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो।
मोत्तूण तिण्णिठाणं पमत्त जोगी अजोगी य॥२७८॥

अर्थ - उदय और उदीरणारूप प्रकृतियों में स्वामीपने की अपेक्षा कुछ विशेषता नहीं है, किन्तु प्रमत्त, सयोगी व अयोगी इन तीन गुणस्थानों को छोड़ देना, क्योंकि इन तीन गुणस्थानों में ही विशेषता है, शेष गुणस्थानों में समानता ही है। (अब उसी विशेषता को आगे कहते हैं।)

---

१. धवल पु. १३ पृ. ५४।

भावार्थ - उदीरणा का अर्थ है अपक्वपाचन अर्थात् दीर्घकाल में उदय में आने वाले कर्म-परमाणुओं में से अग्रिम निषेकों का अपकर्षण करके अल्पस्थितिवाले नीचे के निषेकों में देकर उदयावली में लाकर उदय रूप से उनको भोग कर, कर्मरूप से छुड़ा कर अन्य पुद्गल रूप से परिणमाना।

तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिणमेकदं किच्चा।
सादमसादं च तहिं, मणुवाउगमवणिदं किच्चा ॥२७९॥

अर्थ- सयोग-अयोगकेवलीगुणस्थान की ३० और १२ प्रकृति मिलकर ४२ प्रकृतियों में से साता-असाता और मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को घटाना चाहिए।

अवणिद तिप्पयडीणं, पमत्तविरदे उदीरणा होदि।
णत्थित्ति अजोगिजिणे, उदीरणा उदयपयडीणं ॥२८०॥

अर्थ - घटाई हुई साता आदि तीन प्रकृतियों की उदीरणा से व्युच्छित्ति प्रमत्त गुणस्थान में हो जाती है अत: यहाँ आठ प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है। शेष ३९ प्रकृतियों की उदीरणा तथा उदीरणाव्युच्छित्ति सयोगकेवली के ही होती है। अयोगकेवली के उदय प्रकृतियों की उदीरणा नहीं पाई जाती, यही यहाँ विशेषता है।

अब उदीरणा से व्युच्छिन्न प्रकृतियों का कथन गुणस्थानों में करते हैं-

पण णव इगि सत्तरसं, अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलुगदालं, उदीरणा होंति जोगंता ॥२८१॥

अर्थ - मिथ्यात्व से सयोगकेवलीगुणस्थानपर्यन्त क्रम से ५-९-१-१७-८-८-४-६-६-१-२-१६ और ३९ प्रकृतियों की उदीरणाव्युच्छित्ति होती है।

अथानन्तर दो गाथाओं से उदीरणा-अनुदीरणारूप प्रकृतियों को कहते हैं-

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि तियसदरी।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥

पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी, पणछक्कडसट्ठि तेसीदी ॥२८३॥

अर्थ- मिथ्यात्वादि १३ गुणस्थानों में क्रम से ११७-१११-१००-१०४-८७-८१-७३-६९-६३-५७-५६-५४-३९ प्रकृतियाँ उदीरणारूप हैं तथा ५-११-२२-१८-३५-४१-४९-५३-५९-६५-६६-६८ और ८३ प्रकृतियाँ अनुदीरणारूप हैं। इनका विशेष कथन निम्नसन्दृष्टि से जानना चाहिए।

गुणस्थानों उदीरणाव्युच्छित्ति-उदीरणा और अनुदीरणारूप प्रकृतियों की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	उदीरणा व्युच्छित्ति	उदीरणा	अनुदीरणा	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	५	गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार
सासादन	९	१११	११	गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार
मिश्र	१	१००	२२	गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार
असंयत	१७	१०४	१८	गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार
देशसंयत	८	८७	३५	गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार
प्रमत्त	८	८१	४१	८ (उदयव्युच्छित्ति में कथित ५ प्रकृति तथा साता व असातावेदनीय और मनुष्यायु)
अप्रमत्त	४	७३	४९	यहाँ उदय में ७६ प्रकृति कही है, किन्तु सातादि तीन प्रकृतियों की उदीरणा छठे गुण- स्थान में ही हो जाने से यहाँ अनुदीरणा में ३ प्रकृति बढ़ गईं अतः उदीरणारूप ७३ प्रकृतियाँ ही रहीं।
अपूर्वकरण	६	६९	५३	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
अनिवृत्तिकरण	६	६३	५९	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
सूक्ष्मसाम्पराय	१	५७	६५	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
उपशान्तमोह	२	५६	६६	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
क्षीणमोह	१६	५४	६८	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
सयोग	३९	३९	८३	८३ (६८+१६-१ तीर्थंकर)

गुणस्थानों में उदय-उदीरणारूप त्रिभङ्गीका कथन करके गतिआदि १४ मार्गणाओं में उदयत्रिभङ्गीका कथन करते हुए प्रथम ही उदय का कथन करते हैं-

गदियादिसु जोग्गाणं, पयडिप्पहुदीणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं णेदव्वं, कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

अर्थ - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध गुणस्थानों में सिद्ध किए जा चुके हैं। उदयापेक्षा उनका स्वामित्व, गतिआदि मार्गणाओं में क्रम से घटित करना चाहिए।

आगे इस विषय में सर्वप्रथम कुछ विशेष बातें पाँच गाथाओं से कहते हैं-

गदिआणुआउउदओ, सपदे भूपुण्णबादरे ताओ।
उच्चुदओ णरदेवे, थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

अर्थ - किसी भी विवक्षित भव के प्रथमसमय में ही उस विवक्षित भव के योग्य गति, आनुपूर्वी और आयुका उदय होता है। तथा 'सपदे' कहने से एकजीव के एक ही गति,आनुपूर्वी तथा आयुका उदय युगपत् होता है। आतपनामकर्म का उदय बादर-पर्याप्तपृथ्वीकायिकजीव के ही होता है। उच्चगोत्र का उदय मनुष्य और देवों के ही सम्भव है[१] और स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओं का उदय मनुष्य और तिर्यञ्च के ही सम्भव है, अन्य के नहीं ।

संखाउगणरतिरिए, इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय, आहारविगुव्विणुट्ठवगे॥२८६॥

अर्थ - संख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्चों के ही इन्द्रियपर्याप्ति के पूर्ण होने के पश्चात् स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्राप्रकृति उदययोग्य हैं,किन्तु आहारकऋद्धि और वैक्रियिकऋद्धि के धारक मनुष्यों को छोड़कर सर्वकर्मभूमिज मनुष्यों में इसके उदय की योग्यता है।

अयदापुण्णे ण हि थी, संढोवि य घम्मणारयं मुच्चा।
थीसंढयदे कमसो, णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू॥२८७॥

अर्थ - निवृत्तिअपर्याप्त के असंयतगुणस्थान में स्त्रीवेद-नपुंसकवेद का उदय नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरणकर स्त्री में उत्पन्न नहीं होता, किन्तु घर्मानामक प्रथमनरक नपुंसकवेद के लिए अपवादरूप है, क्योंकि जिसने पूर्व में नरकायु का बन्ध कर लिया है, ऐसा मनुष्य क्षायिक या कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वसहित मरण कर घर्मानरक में ही उत्पन्न होता है अतः असंयतगुणस्थान में स्त्रीवेदी के तो चारों आनुपूर्वी का उदय नहीं है, किन्तु नपुंसकवेदी के नरकगत्यानुपूर्वी का उदय तो है। शेष तीन का उदय नहीं है।

इगिविगलथावरचऊ, तिरिए अपुण्णो णरेवि संघडणं।
ओरालदुणरतिरिए, वेगुव्वदु देवणेरयिए॥२८८॥

अर्थ - एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, ये तिर्यञ्चों के ही उदययोग्य हैं, किन्तु अपर्याप्तप्रकृति मनुष्यों के भी उदययोग्य है। वज्रर्षभनाराचादि छहसंहनन और औदारिकशरीरनामकर्म का युगल, मनुष्य व तिर्यञ्च के उदययोग्य है। वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग देव और नारकियों के ही उदययोग्य है।

---

१. धवल पु. १५ पृ. १५२ पर देशसंयमी तिर्यञ्चों के भी उच्च गोत्र का उदय कहा है।

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु।
सेसाणं पयडीणं, ओघं वा होदि उदओ दु॥२८९॥

अर्थ - तेज-वायु और साधारणवनस्पतिकायिक के बिना अन्य बादरपर्याप्तक तिर्यञ्चों के उद्योतप्रकृति का उदय होता है और शेष प्रकृतियों का उदय गुणस्थान के क्रम से जानना।

विशेष - आतपनामकर्म का उदय पृथ्वीकायिक में ही है।

इस प्रकार पाँच गाथासूत्रों में उदय का विशेष नियम कहकर अब गतिमार्गणा सम्बन्धी कथन में सर्वप्रथम 'नरकगति' में उदयरूप प्रकृतियों को कहते हैं-

थीणतिथीपुरिसूणा, घादी णिरयाउणीचवेयणियं।
णामे सगवचिठाणं, णिरयाणू णारयेसुदया॥२९०॥

अर्थ - स्त्यानगृद्धिआदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन पाँच बिना घातिया कर्म की ४२ प्रकृति और नरकायु, नीचगोत्र, साता व असातावेदनीय एवं नामकर्म में से नारकियों के भाषापर्याप्तिके स्थान में होनेवाली २९ प्रकृतियाँ, नरकगत्यानुपूर्वी इस प्रकार ये ७६ प्रकृतियाँ नरकगति में उदययोग्य कही गई हैं।

नामकर्मसम्बन्धी २९ प्रकृतियों के नाम कहते हैं-

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं॥२९१॥

अर्थ - वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, तैजस-कार्मण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अप्रशस्तविहायोगति, हुण्डकसंस्थान, निर्माण, पञ्चेन्द्रियजाति, नरकगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श ये २९ प्रकृतियाँ नारकीजीव के वचनपर्याप्ति के स्थान पर उदयरूप हैं।

अब घर्मानामक प्रथम नरक में उदयव्युच्छित्ति, उदय-अनुदयरूप प्रकृतियों को कहते हैं-

मिच्छमणंतं मिस्सं, मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ॥२९२॥

अर्थ - यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में एक मिथ्यात्व की व्युच्छित्ति होती है। सासादनगुणस्थान

में अनन्तानुबन्धी ४ कषाय की व्युच्छित्ति, मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) में सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की व्युच्छित्ति और असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यान की चारकषाय, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग इन १२ प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - घर्मानरकसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में उदय ७४ प्रकृति का एवं मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय का अनुदय होता है। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ है अतः वह मिथ्यात्वगुणस्थान की अनुदयरूप दो तथा नरकगत्यानुपूर्वीसहित सासादन में अनुदयप्रकृति४,उदयप्रकृति ७२, मिश्रगुणस्थान में उदयप्रकृति ६९, मिश्रमोहनीयका उदय होने से अनुदयप्रकृति ७। असंयतगुणस्थान में उदयप्रकृति ७० तथा सम्यक्त्व और नरकगत्यानुपूर्वी का उदय होने से अनुदयप्रकृति ६।

घर्मानरकसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति, उदय, अनुदयरूप प्रकृतियों की सन्दृष्टि-

उदययोग्य प्रकृति ७६, गुणस्थान ४।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	७२	४	४ (२+१+नरकगत्यानुपूर्वी) व्यु. ४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	६९	७	७ (४+४-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	७०	६	६ (७+१-२ सम्यक्त्व, नरकगत्यानुपूर्वी) १२ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, नरकायु, अयशस्कीर्ति, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक)

अब द्वितीयादि छह पृथ्वियों में उदयादि का कथन करते हैं -

बिदियादिसु छसु पुढिविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो॥२९३॥

अर्थ - वंशादि छह पृथ्वियों में घर्मावत् उदययोग्य प्रकृति ७६ हैं, किन्तु यहाँ विशेषता यह है कि असंयतगुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है, क्योंकि जिसके नरकायुका बन्ध हो गया

है ऐसा सम्यग्दृष्टिजीव वंशादि छह पृथ्वियों में जन्म नहीं लेता है। अतः इस (नरकगत्यानुपूर्वी) की व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थान में ही होने से मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति२, उदयप्रकृति ७४, अनुदय सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन दो का है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४ प्रकृति की, उदय ७२ प्रकृतिका, अनुदय ४ प्रकृति का। मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने से अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति ६९, व्युच्छिन्नप्रकृति १। असंयतगुणस्थान में सम्यक्त्वप्रकृति के मिलने से अनुदय-प्रकृति ७, उदयप्रकृति ६९ और व्युच्छिन्नप्रकृति ११ हैं।

वंशादि ६ पृथ्वीसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ७६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	७४	२	व्यु. २ (मिथ्यात्व और नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	४	७२	४	पूर्व सन्दृष्टि अनुसार
मिश्र	१	६९	७	पूर्व सन्दृष्टि अनुसार
असंयत	११	६९	७	७ (७+१-१ सम्यक्त्व) ११ (पूर्वसन्दृष्टि कथित १२-१ नरकगत्यानुपूर्वी)

अब तिर्यञ्चगति में उदयादि का कथन करते हैं-

तिरिये ओघो सुरणरणिरयाऊ उच्च मणुदुहारदुगं।
वेगुव्वछक्कतित्थं, णत्थि हु एमेव सामण्णे ॥२९४॥

अर्थ - तिर्यञ्चगति में सर्वरचना गुणस्थानवत् जानना। उदययोग्य १२२ प्रकृतियों में से यहाँ देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आहारकशरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर ये १५ प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं अतः १०७ प्रकृति का उदय पाया जाता है।

विशेषार्थ - पाँचप्रकार के तिर्यञ्चों में से सामान्यतिर्यञ्च के उदययोग्य १०७ प्रकृति ही हैं, गुणस्थान ५ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में उदय से व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदय प्रकृति १०५, अनुदयप्रकृति २। सासादनगुणस्थान में अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति १००, व्युच्छिन्नप्रकृति ९। (सासादन की व्युच्छिन्नप्रकृति ९, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी का उदयाभाव तथा सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने से) मिश्रगुणस्थान में अनुदय १६, उदय ९१ और व्युच्छित्ति एकप्रकृति की है। (सम्यक्त्व और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी का उदय

होने से) असंयतगुणस्थान में अनुदयप्रकृति १५, उदयप्रकृति ९२, व्युच्छिन्नप्रकृति (अप्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति) ८ हैं। देशसंयतगुणस्थान में अनुदयरूपप्रकृति २३, उदयप्रकृति ८४ तथा असंयतगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८ ही हैं।

सामान्यतिर्यञ्चसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०७, गुणस्थान ५

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	१०५	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	९	१००	७	७ = (५+२) ९ = (अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रियादि जाति ४, स्थावर)
मिश्र	१	९१	१६	१६ (९+७+१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९२	१५	१५ (१६+१-२ सम्यक्त्व व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८४	२३	८ (प्रत्याख्यानकषाय ४, उद्योत, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र और तिर्यञ्चायु)

अथानन्तर सामान्यपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पर्याप्तक पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चों में उदयादि कहते हैं-

थावरदुगसाहारणतावेगिविगलूण ताणि पंचक्खे।
इत्थिअपज्जत्तूणा, ते पुण्णे उदयपयडीओ ॥२९५॥

अर्थ - सामान्यतिर्यञ्चसम्बन्धी पूर्वोक्त १०७ प्रकृति में से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय और विकलत्रय की तीन इन ८ प्रकृतियों के बिना शेष ९९ प्रकृतियां पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च के उदय योग्य हैं।

विशेषार्थ - यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व व अपर्याप्त इन दो प्रकृति की,

उदय ९७ प्रकृति का और अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्वप्रकृति का है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति ९५ और अनुदय प्रकृति ४ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति १, उदयप्रकृति ९१, अनुदय प्रकृति ८। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति पूर्वोक्त ८ प्रकृति की, उदय ९२ प्रकृति का और अनुदय तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी व सम्यक्त्वबिना ७ प्रकृति का। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८, उदयप्रकृति ८४ और अनुदयप्रकृति १५।

पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसामान्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि – उदययोग्यप्रकृति ९९, गुणस्थान ५

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	९७	२	अनु. २ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) व्यु. २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	९५	४	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९१	८	८ (४+४-१ सम्यग्मिथ्यात्व+तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी)
असंयत	८	९२	७	७ (८+१-२ सम्यक्त्व, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (पूर्वसन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८४	१५	पूर्ववत्

पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसामान्य की उदय योग्य प्रकृतियों में से स्त्रीवेद और अपर्याप्त के बिना (योनिनी और अपर्याप्त जीवों की प्ररूपणा अलग से की गई है। इसलिए यहाँ इन दो प्रकृतियों को कम करके पुरुषवेद की अपेक्षा की है।) पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च के उदययोग्य ९७ प्रकृतियाँ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १(मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ९५,अनुदयप्रकृति २ (सम्यग्मिथ्यात्व,सम्यक्त्व)। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय), उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, अनुदयप्रकृति ७, उदयप्रकृति ९०। असंयत में व्युच्छित्ति ८, उदय ९१ का और अनुदय ६ का। देशसंयत में व्युच्छित्ति आठ की, उदय ८३ का एवं अनुदय १४ का है।

पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति- उदय-अनुदय की सन्दृष्टि
उदययोग्यप्रकृति ९७, गुणस्थान ५

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९५	२	२ (मिश्रप्रकृति व सम्यक्त्वप्रकृति) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	९४	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९०	७	१ (सम्यग्मिथ्यात्व) ७ (७+१ तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी-१ मिश्रमोहनीय)
असंयत	८	९१	६	६ (७+१-२ सम्यक्त्व, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी) ८ (४ अप्रत्याख्यानकषाय+दुर्भग, अनादेय; अयशस्कीर्ति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८३	१४	८ (पूर्वोक्त)

अथानन्तर योनिनी और लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चों में उदयादि कहते हैं-

पुसंढूणित्थिजुदा, जोणिणिये अविरदे ण तिरयाणू।
घुण्णिदरे थी थीणति, परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥

सरगदिदु जसादेज्जं, आदीसंठाणसंहदीपणगं।
सुभगं सम्मं मिस्सं,हीणा तेऽपुण्णसंढजुदा ॥२९७॥जुम्मं ॥

अर्थ- पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च के उदययोग्य ९७ प्रकृतियों में से पुरुषवेद व नपुंसकवेद कम करके स्त्रीवेद मिलाने से तिर्यंचयोनिनी के उदययोग्य प्रकृति ९६ हैं (गुणस्थान पाँच हैं।) तिर्यंचयोनिनी सम्बन्धी उदययोग्य ९६ प्रकृतियों में से स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, उद्योत, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, यशस्कीर्ति, आदेय, आदि के पाँच संस्थान, आदि के पाँच संहनन, सुभग, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, इन २७ प्रकृतियों को घटाकर तथा अपर्याप्त व नपुंसकवेद मिलाने से पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्च के उदय योग्य प्रकृति ७१ हैं और एक मिथ्यात्वगुणस्थान है।

विशेषार्थ- तिर्यंचयोनिनी के उदययोग्यप्रकृति ९६ तथा गुणस्थान ५ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में उदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वप्रकृति की, उदयप्रकृति ९४, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति

का है। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धीकषाय ४, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन ५ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ९३, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व की व्युच्छित्ति, उदयरूप प्रकृति ८९, अनुदय ७ प्रकृति का है। अविरतसम्यग्दृष्टि मरण कर तिर्यञ्चिनी अर्थात् स्त्रियों में उत्पन्न नहीं होता अतः असंयतगुणस्थान में पूर्वोक्त ८ में से तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी के बिना ७ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८९ हैं, क्योंकि यहाँ सम्यक्त्वप्रकृति का उदय पाया जाता है, अनुदयप्रकृति ७ हैं। देशसंयतगुणस्थान में गुणस्थानोक्त ८ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति, उदय ८२ प्रकृति का तथा अनुदय १४ प्रकृति का है।

तिर्यञ्चयोनिनी सम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ९६, गुणस्थान ५

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९४	२	पूर्वसन्दृष्टि अनुसार
सासादन	५	९३	३	५ (अनन्तानुबन्धी ४+ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	८९	७	७ (५+३-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	८९	७	अनु. ७ (७+१-सम्यक्त्वप्रकृति) व्यु. ७ (पूर्वोक्त ८-१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८२	१४	व्यु. ८ (पूर्वोक्त)

अथानन्तर मनुष्यगति में उदयादि का कथन करते हैं-

मणुवे ओघो थावरतिरियादावदुगएयवियलिंदी।
साहरणिदराउतियं, वेगुव्वियछक्क परिहीणो ॥२९८॥

अर्थ - मनुष्य चार प्रकार के हैं, उनमें से सामान्य मनुष्य के गुणस्थानोक्त उदययोग्य १२२ प्रकृतियों में से स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, साधारण, नरक-तिर्यञ्च व देवायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, इन २० प्रकृतियों को घटाने से उदय योग्य १०२ प्रकृतियाँ हैं।

मिच्छमपुण्णं छेदो, अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे।
बिदियकसायणराणू, दुब्भगऽणादेज्ज अज्जसयं ॥२९९॥

देसे तदियकसाया, णीचं एमेव मणुससामण्णे।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तिपरिहीणो ॥३००॥

अर्थ - मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व और अपर्याप्त की, सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्वकी, असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति इन आठप्रकृति की और देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यान की ४ कषाय और नीच गोत्र की उदयव्युच्छित्ति होती है। इसके आगे प्रमत्त से अयोगीगुणस्थानपर्यन्त गुणस्थानोक्त क्रम से उदयव्युच्छित्ति जानना। पर्याप्त मनुष्य में, सामान्यमनुष्य की १०२ प्रकृतियों में से स्त्रीवेद और अपर्याप्त प्रकृति कम करने पर १०० प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ - सामान्य मनुष्य के मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ९७ एवं अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर ये ५ हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, उदयरूपप्रकृति ९५, अनुदयरूप प्रकृति ७ हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृति की, उदय ९१ प्रकृति का और मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदयाभाव तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के उदय होने से यहाँ अनुदय ११ प्रकृति का है। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ८ प्रकृति की, उदय ९२ प्रकृति का तथा सम्यक्त्व और मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय होने से अनुदय १० प्रकृति का है। देशसंयत गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८४, अनुदयप्रकृति १८। प्रमत्त गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१ और आहारकद्विकके मिलने से अनुदयप्रकृति २१ हैं। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ४, उदयरूप प्रकृति ७६ और अनुदयरूप प्रकृति २६ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ७२ प्रकृति का, अनुदय ३० प्रकृति का है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६ प्रकृतिकी, उदय ६६ प्रकृतिका, अनुदय ३६ प्रकृति का। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृति की , उदय ६० प्रकृति का तथा अनुदय ४२ प्रकृति का है। उपशान्तकषायगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ४३। क्षीणकषायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदय प्रकृति ५७ एवं अनुदयप्रकृति ४५। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०,तीर्थङ्करसहित उदययोग्यप्रकृति ४२ एवं अनुदयप्रकृति ६० हैं।

अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्ति १२ प्रकृति की, उदय १२ प्रकृति का और अनुदय ९० प्रकृति का जानना चाहिए।

सामान्य मनुष्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०२, गुणस्थान १४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	९७	५	५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	९५	७	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९१	११	११(७+४+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९२	१०	१० (११+१-२, मनुष्यगत्यानुपूर्वी व सम्यक्त्व) ८ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	५	८४	१८	५ (प्रत्याख्यानकषाय ४ और नीचगोत्र)
प्रमत्तसंयत	५	८१	२१	२१ (१८+५-२ आहारकद्विक) ५ (स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा और आहारकद्विक)
अप्रमत्तसंयत	४	७६	२६	४ (अर्धनाराच, कीलक, सृपाटिकासंहनन, सम्यक्त्व)
अपूर्वकरण	६	७२	३०	६ (हास्यादि नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	३६	६ (स्त्री-पुरुष व नपुंसकवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४२	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	४३	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	४५	१६ (निद्रा, प्रचला, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय)
सयोगकेवली	३०	४२	६०	६० (४५+१६-१ तीर्थंकर) ३० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	९०	१२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

इसी प्रकार सामान्य मनुष्य में उदययोग्य १०२ प्रकृति में से स्त्रीवेद और अपर्याप्त प्रकृति कम करनेपर पर्याप्तमनुष्य के उदययोग्य १०० प्रकृति हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९५,अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्वादि ५। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति ६। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ९०, अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ९१, सम्यक्त्व और मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय होने से अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८३,अनुदयप्रकृति १७। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८०, अनुदयप्रकृति २०। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७५ और अनुदयप्रकृति २५ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६,उदयप्रकृति ७१, अनुदय२९ प्रकृति का। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ५, उदयप्रकृति ६५ तथा अनुदयप्रकृति ३५। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १, उदयरूप प्रकृति ६० तथा अनुदयरूप प्रकृति ४० हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ४१। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ४३। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०, उदयरूप प्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ५८। अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्ति १२ प्रकृति की, उदय १२ प्रकृति का तथा अनुदय ८८ प्रकृति का पाया जाता है।

पर्याप्तमनुष्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १००, गुणस्थान १४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९५	५	५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर)
सासादन	४	९४	६	४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	९०	१०	१०(६+४+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	९१	९	९ (१०+१-२ मनुष्यगत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) ८ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)
देशसंयत	५	८३	१७	५ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)
प्रमत्तसंयत	५	८०	२०	२० (१७+५-२ आहारकद्विक) ५ (पूर्व-सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७५	२५	४ (पूर्वसन्दृष्टि में कही हुई)
अपूर्वकरण	६	७१	२९	६ (पूर्वसन्दृष्टि में कही हुई)

अनिवृत्तिकरण	५	६५	३५	५ (पुरुष व नपुंसकवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४०	१ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	४१	२ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	४३	१६ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	५८	५८ (४३+१६-१ तीर्थंकर) ३० (पूर्व-सन्दृष्टि के अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	८८	१२ (पूर्वसन्दृष्टि के अनुसार)

मणुसिणिएत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

अर्थ - पर्याप्त मनुष्यसम्बन्धी उदययोग्य १०० प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये ५ प्रकृति कम करके स्त्रीवेद मिलाने पर मनुष्यनी के उदययोग्य ९६ प्रकृतियाँ हैं तथा लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य के लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्चवत् ७१ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं(किन्तु तिर्यञ्च आनुपूर्वी, तिर्यञ्च गति और तिर्यञ्चायु ये तिर्यञ्चसम्बन्धी तीनप्रकृतियाँ छोड़कर उनके स्थान पर मनुष्यसम्बन्धी मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी-मनुष्यायु जानना) गुणस्थान एक मिथ्यात्व है।

विशेषार्थ - मनुष्यनी के उदययोग्य प्रकृति ९६ तथा गुणस्थान १४ हैं। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थान में उदयव्युच्छित्ति १ मिथ्यात्व की, उदयप्रकृति ९४, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चारकषाय और मनुष्यगत्यानुपूर्वी की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ९३, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व की व्युच्छित्ति, उदय ८९ प्रकृति का, अनुदय ७ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन ७ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८९, अनुदय ७ प्रकृति का। देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यानकषाय चार और नीचगोत्र इन ५ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ८२, अनुदयप्रकृति १४। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धि और तीननिद्रा की, उदय ७७ प्रकृति का तथा अनुदय १९ प्रकृति का है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति २२। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७० और अनुदयप्रकृति २६ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के भागों में व्युच्छिन्नप्रकृति क्रम से स्त्रीवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया ये चार हैं। उदयप्रकृति ६४, अनुदयप्रकृति ३२। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में सूक्ष्मलोभ की व्युच्छित्ति, ६० प्रकृति का उदय एवं ३६ प्रकृति का अनुदय है। उपशान्तमोहगुणस्थान में वज्रनाराच व नाराचसंहनन की व्युच्छित्ति, उदयरूप प्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ३७। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की, उदय ५७ प्रकृति का, अनुदय ३९ प्रकृति का।

सयोगीगुणस्थान में व्युच्छित्ति ३० प्रकृति की, उदय ४१ प्रकृति का और अनुदय ५५ प्रकृति का। अयोगीगुणस्थान में व्युच्छित्ति तीर्थङ्करबिना ११ प्रकृति की, उदय ११ प्रकृति का तथा अनुदय ८५ प्रकृतियों का है।

मनुष्यनी के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ९६, गुणस्थान १४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	९४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	५	९३	३	५ (अनन्तानुबन्धी ४ + १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	८९	७	७ (३+५-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	८९	७	अनु. ७ (७+१-१ सम्यक्त्वप्रकृति) व्यु. ७ (पूर्वोक्त ५+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	५	८२	१४	५ (पूर्वोक्त)
प्रमत्तसंयत	३	७७	१९	३ (स्त्यानगृद्धिआदि ३ निद्रा)
अप्रमत्तसंयत	४	७४	२२	४ (अर्धनाराचादि तीन संहनन और सम्यक्त्व)
अपूर्वकरण	६	७०	२६	६ (हास्यादि नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	४	६४	३२	४ (स्त्रीवेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	३६	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	३७	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	३९	
सयोगकेवली	३०	४१	५५	
अयोगकेवली	११	११	८५	

अब भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्चों में उदयादि का कथन दो गाथाओं में करते हैं।

मणुसोघं वा भोगे, दुब्भग चउणीचसंढथीणतियं।
दुग्गदितित्थमपुण्णं, संहदिसंठाणचरिमपणं॥३०२॥

हारदुहीणा एवं, तिरये मणुदुच्चगोदमणुवाउं।
अवणिय पक्खिव णीचं, तिरियदुतिरियाउउज्जोवं॥३०३॥जुम्मं॥

अर्थ - भोगभूमिज मनुष्यों में सामान्यमनुष्य के उदययोग्य १०२ प्रकृतियों में से दुर्भग आदि

चार (दुर्भग,दु:स्वर,अनादेय,अयशस्कीर्ति) नीचगोत्र नपुंसकवेद स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, अप्रशस्तविहायोगति,तीर्थङ्कर, अपर्याप्त वज्रनाराचादि अन्तिम ५ संहनन, न्यग्रोधपरिमण्डलादि ५ संस्थान और आहारकद्विक इन २४ प्रकृति के बिना शेष ७८ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। तथैव भोगभूमिजमनुष्यसम्बन्धी ७८ प्रकृतियों में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु और उच्चगोत्र कम करके नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु और उद्योतप्रकृति मिलाने पर ७९ प्रकृतियाँ भोगभूमिज तिर्यञ्चके उदययोग्य जानना।

विशेषार्थ - भोगभूमिज मनुष्य के मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति २ सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ मिश्रमोहनीयकी, उदय ७१ प्रकृति का तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का उदय होने और आनुपूर्वीका उदय नहीं होने से अनुदय ७ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय चार एवं मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ६, क्योंकि यहाँ सम्यक्त्वप्रकृति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय पाया जाता है।

भोगभूमिजमनुष्यसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ७८, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७६	२	२ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार)
				१ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	४	७५	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	७१	७	७ (४+३+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	५	७२	६	६ (७+१-२ सम्यक्त्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
				५ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)

इसी प्रकार भोगभूमिजतिर्यञ्चसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७७, अनुदयरूप सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति ये २ हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी की चारकषाय,उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की, सम्यग्मिथ्यात्वसहित उदय ७२ प्रकृति का, आनुपूर्वी के उदय का अभाव होने से अनुदयप्रकृति ७ हैं। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४ और

तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उदयप्रकृति ७३ तथा अनुदयप्रकृति सम्यक्त्व और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी का उदय होने से ६ हैं।

भोगभूमिजतिर्यञ्चों के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७७	२	२ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार) १ (गाथा ३०१ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	४	७६	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	७२	७	७ (४+३+१ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी -१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	५	७३	६	५ (४ अप्रत्याख्यानकषाय और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)

अथानन्तर देवगतिसम्बन्धी उदयादि का कथन करते हैं-

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं।
खिव देवे णेवित्थी, इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य॥३०४॥

अर्थ - भोगभूमिजमनुष्य के उदययोग्य ७८ प्रकृतियों में से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, मनुष्यायु और वज्रर्षभनाराचसंहनन इन छह प्रकृतियों को कम करके देवगति , देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग और देवायु इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने पर देवगति में सामान्य से ७७ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं, किन्तु देवों में स्त्रीवेद और देवांगनाओं में पुरुषवेद का उदय नहीं होता अत: देव-देवांगनाओं में उदययोग्य ७६ प्रकृति हैं।

विशेषार्थ- मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ७५, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दो प्रकृतियों का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी की चारकषाय, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्व की, उदयप्रकृति ७०, देवगत्यानुपूर्वी का उदय न होने से और मिश्रप्रकृति का उदय है अत: अनुदयप्रकृति ७। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यान की कषाय चार, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग और देवायु की व्युच्छित्ति तथा उदय ७१ प्रकृति का, देवगत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्वप्रकृति का उदय होने से अनुदय ६ प्रकृति का है।

सामान्यदेवों के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७५	२	१ (मिथ्यात्व) २ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व)
सासादन	४	७४	३	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	७०	७	७ (४+३+१ देवगत्यानुपूर्वी, १ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	९	७१	६	९ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअंगोपांग और देवायु)

सौधर्म स्वर्ग से नवग्रैवेयकपर्यन्त देवों में स्त्रीवेद बिना उदययोग्य ७६ प्रकृति हैं, गुणस्थान आदि के चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में उदय से व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियाँ क्रमसे १-४-१-९। उदयरूप प्रकृतियाँ क्रम से ७४-७३-६९-७०। अनुदय रूप प्रकृति २-३-७-६ क्रम से जानना।

सौधर्मस्वर्ग से नवग्रैवेयकपर्यन्त देवों में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय सम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ७६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
सासादन	४	७३	३	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
मिश्र	१	६९	७	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
असंयत	९	७०	६	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)

अब अनुदिशादिविमानसम्बन्धी कथन करते हैं-

अविरदठाणं एक्कं, अणुदिसादिसु सुरोघमेव हवे।
भवणतिकप्पित्थीणं, असंजदे णत्थि देवाणु ॥३०५॥

अर्थ - नवअनुदिश, पंचअनुत्तर इन १४ विमानों में एक असंयतगुणस्थान ही होता है अतः सामान्य से देवों में असंयतगुणस्थान में उदयरूप जो ७० प्रकृतियाँ कही वे ही यहाँ भी उदयरूप जानना। भवनत्रिकदेव-देवियों में और कल्पवासिनी देवांगनाओं में सामान्यदेववत् उदययोग्य ७७ में से देवों में स्त्रीवेद और देवांगनाओं में पुरुषवेदबिना ७६ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ - भवनत्रिक में और कल्पवासिनी देवांगनाओं में सम्यग्दृष्टिजीव उत्पन्न नहीं होते हैं अत: इनके असंयतगुणस्थान में देवगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है। विशेष यह है कि सासादन और असंयतगुणस्थान में क्रमश: ५ एवं ८ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति जानना, शेष कथन सुगम है। तद्यथा- मिथ्यात्वादि चारगुणस्थानों में क्रमश: १-५-१-८ प्रकृति की व्युच्छित्ति, ७४-७३-६९-६९ प्रकृति का उदय एवं २-३-७-७ प्रकृति का अनुदय है।

भवनत्रिकदेव-देवी एवं कल्पवासिनीदेवियों में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय सम्बन्धी सन्दृष्टि- उदययोग्यप्रकृति ७६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७४	२	(सामान्यदेवसम्बन्धी सन्दृष्टिवत्)
सासादन	५	७३	३	५ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४+१ देवगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	६९	७	७ (५+३-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	८	६९	७	७ (७+१-१ सम्यक्त्व)

॥ इति गतिमार्गणा ॥

❋❋❋

अथ इन्द्रियमार्गणा

अथानन्तर इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी उदयादि को तीन गाथाओं में कहते हैं-

तिरियअपुण्णं वेगे, परघादचउक्कपुण्णसाहरणं।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं ॥३०६॥

रिणमंगोवंगतसं, संहदिपंचक्खमेवमिह वियले।
अवणिय थावरजुगलं, साहरणेयक्खमादावं ॥३०७॥

खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं।
ओघं सयले साहरणिगिविगलादावथावरदुगूणं ॥३०८॥विसेसयं॥

अर्थ- पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चसम्बन्धी ७१ प्रकृतियों में परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रियजाति, यशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थावर और सूक्ष्म इन १३ प्रकृतियों को मिलाने से तथा अङ्गोपाङ्ग, त्रस, सृपाटिकासंहनन और पञ्चेन्द्रियजाति इन चार प्रकृतियों को कम करने पर एकेन्द्रिय के ८० प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

विकलत्रय में एकेन्द्रियसम्बन्धी उपर्युक्त ८० प्रकृति में से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतपप्रकृति घटाकर एवं त्रस, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, अङ्गोपाङ्ग, सृपाटिका- संहनन तथा द्वीन्द्रियादि अपनी-अपनी जाति मिलाने से उदययोग्य ८१ प्रकृतियाँ हैं। सकलेन्द्रिय में गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृति में से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय (तीन), आतप, स्थावर और सूक्ष्म ये ८ प्रकृति कम करके शेष ११४ प्रकृतियाँ उदययोग्य जानना।

विशेषार्थ - मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण तथा सासादनगुणस्थान में जिनका उदय नहीं पाया जाता ऐसी स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, क्योंकि इन ६ प्रकृति का उदय एकेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तावस्था में नहीं होता है। अतः उपर्युक्त सर्व ११ प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति एकेन्द्रियमार्गणासम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में होती है और उदय ८० प्रकृति का, अनुदय का यहाँ अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावर की होती है। यहाँ उदय ६९ प्रकृति का एवं अनुदय ११ प्रकृति का है।

एकेन्द्रिय में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ८०, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	११	८०	०	११ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, परघात, उद्योत, आतप, उच्छ्वास)
सासादन	६	६९	११	६ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर)

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, अपर्याप्त स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, परघात, उच्छ्वास, उद्योत,अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वर इन १० की, उदय ८१ का, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति अनन्तानुबन्धीरूप चारकषाय तथा द्वीन्द्रियादि अपनी-अपनी जाति इस प्रकार ५ हैं, उदयप्रकृति ७१ और अनुदयप्रकृति १० हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ८१, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	८१	०	१० (मिथ्यात्व, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दुःस्वर, अप्रशस्तविहायोगति)
सासादन	५	७१	१०	५ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४ और स्व-स्वजाति)

पञ्चेन्द्रिय के मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व और अपर्याप्त की, उदयप्रकृति १०९, अनुदय गुणस्थानोक्त ५ प्रकृति का। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चारकषाय की व्युच्छित्ति, उदय १०६ प्रकृति का, नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होने से अनुदय ८ प्रकृति का। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति गुणस्थानोक्त१, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १४। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १०। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदप्रकृति २७। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३३। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३८। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६ प्रकृति की, उदय ६६ प्रकृति का, अनुदय ४८ प्रकृति का। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ की, उदय

६० का, अनुदय ५४ का। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ५५। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ की, उदय ५७ प्रकृति का और अनुदय भी ५७ प्रकृति का है। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ७२। अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १२, उदयरूप प्रकृति १२ तथा अनुदय प्रकृति १०२ हैं।

पञ्चेन्द्रिय के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ११४, गुणस्थान १४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	१०९	५	५ (तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व)
सासादन	४	१०६	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	१००	१४	१४ (८+४+नरकगत्यानुपूर्वीबिना ३ आनुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
			१	(सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१०	१० तीर्थंकर, आहारकद्विक, अनन्तानुबन्धी की ४ कषाय, सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व और अपर्याप्त)
			१७	(गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२७	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३३	३३ (२७+८-२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	४	७६	३८	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४२	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४८	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५४	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५५	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	५७	१६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	७२	७२ (५७+१६-१ तीर्थंकरप्रकृति)
			३०	(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	१०२	१२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

॥ इति इन्द्रियमार्गणा ॥

अथ कायमार्गणा

अब कायमार्गणा में उदयादि का कथन करते हैं-

एवं वा पणकाये, ण हि साहारणमिणं च आदावं।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं, कमेण चरिमम्हि आदावं॥३०९॥

अर्थ- इन्द्रियमार्गणा में कथित एकेन्द्रियसम्बन्धी ८० प्रकृति में से साधारण प्रकृति कम करने से पृथ्वीकाय में उदययोग्य ७९, साधारण और आतपप्रकृति घटाने पर जलकाय में ७८, साधारण, आतप व उद्योत कम करने से ७७ प्रकृति तेजकाय-वायुकाय में एवं आतपप्रकृति कम करने से वनस्पतिकाय में ७९ प्रकृतियाँ उदययोग्य जानना।

विशेषार्थ- पृथ्वीकाय में उदययोग्य ७९ प्रकृति तथा गुणस्थान दो हैं। **''णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगेय तेउदुगे''** गाथा ११५ के इस सूत्रवचन से पृथ्वी-जल और प्रत्येक वनस्पतिकाय में सासादनगुणस्थान वाला मरणकर उत्पन्न होता है। अतः इन तीनकायों में उत्पन्न हुए सासादनगुणस्थानवर्तीजीव के मिथ्यात्व, आतप, उद्योत, सूक्ष्म व अपर्याप्त ये पाँच प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं और सासादनगुणस्थान तो इनके निर्वृत्यपर्याप्तावस्था में ही रहता है। स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने पर, उच्छ्वासप्रकृति उच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होने पर और परघातप्रकृति शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर उदययोग्य है अतः इन ५ प्रकृतियों का यहाँ उदय नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १०, उदयप्रकृति ७९ तथा अनुदयप्रकृति का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६ प्रकृति की, उदय ६९ प्रकृति का , अनुदय १० प्रकृति का है।

पृथ्वीकाय में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	७९	०	१० (मिथ्यात्व, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उच्छ्वास, परघात)
सासादन	६	६९	१०	६ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावर)

जलकाय में उदययोग्य ७८ प्रकृतियाँ हैं। गुणस्थान २ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति पूर्वोक्त १० में से आतपबिना ९, उदयप्रकृति ७८, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, अनुदयप्रकृति ९ तथा उदयप्रकृति ६९।

जलकाय में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ७८, गुणस्थान २।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	९	७८	०	९ (मिथ्यात्व, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा,उच्छ्वास, परघात)
सासादन	६	६९	९	६ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय, एकेन्द्रिय और स्थावर)

तेजकाय तथा वायुकाय में उदययोग्य ७७ प्रकृति तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

वनस्पतिकाय में उदययोग्यप्रकृति ७९ तथा गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन ये दो हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा,परघात, उच्छ्वास और उद्योत ये १० हैं, उदयरूप प्रकृति ७९, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ६, उदयप्रकृति ६९, अनुदयप्रकृति १० हैं।

वनस्पतिकाय में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ७९, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१०	७९	०	१० (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उच्छ्वास, परघात, उद्योत)
सासादन	६	६९	१०	६ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय और स्थावर)

अथानन्तर त्रसकाय में उदयादि का कथन करते हैं-

ओघं तसे ण थावरदुगसाहरणेयतावमथ ओघं।

अर्थ - त्रसकाय में उदयादि का कथन गुणस्थानवत् जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है

कि यहाँ पर गुणस्थानोक्त उदययोग्य १२२ प्रकृति में से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतपप्रकृति घटाने से उदययोग्य ११७ प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ - त्रसकाय में उदययोग्य ११७ प्रकृतियाँ, गुणस्थान १४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति मिथ्यात्व और अपर्याप्त, उदयप्रकृति ११२, अनुदयप्रकृति ५। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीचारकषाय और विकलत्रयकी तीन, उदयप्रकृति १०९, नरकगत्यानुपूर्वी का उदयाभाव होनेसे अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १७। असंयत गुणस्थानमें व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १३। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ८ प्रकृति की, उदय ८७ प्रकृति का, अनुदय ३० प्रकृति का। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति ५ प्रकृति की, उदय ८१ प्रकृति का तथा अनुदय ३६ प्रकृति का है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४ प्रकृति की, उदय ७६ प्रकृति का, अनुदय ४१ प्रकृति का। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७१, अनुदयप्रकृति ४६। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छित्ति ६ प्रकृति की, उदय ६६ प्रकृति का, अनुदय ५१ प्रकृति का है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ प्रकृति की, उदय ६० प्रकृति का और अनुदय ५७ प्रकृति का। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति २ प्रकृति की, उदय ५९ प्रकृति का, अनुदय ५८ प्रकृति का है। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६०। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२ तथा अनुदयप्रकृति ७५। अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १२, उदयरूपप्रकृति १२ तथा अनुदयप्रकृति १०५ हैं।

त्रसकायिकजीवों में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ११७, गुणस्थान १४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	११२	५	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	७	१०९	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ७ (अनन्तानुबन्धी ४+विकलत्रय ३)
मिश्र	१	१००	१७	१७(८+७+नरकगत्यानुपूर्वीबिना शेष ३ गत्यानुपूर्वी - १ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१३	१३(१७+१-४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८७	३०	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

प्रमत्त	५	८१	३६	३६ (३०+८-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४		४१	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४५	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५१	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५७	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५८	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	६०	१६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	७५	७५ (६०+१६=७६-१ तीर्थंकर) ३० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	१०५	१२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

॥ इति कायमार्गणा ॥

अथ योगमार्गणा

अब योगमार्गणा में सर्वप्रथम चारमनोयोग तथा सत्य, असत्य, उभय वचन-योगसम्बन्धी उदयादि का कथन करते हैं-

मणवयणसत्तगे ण हि तावितिगिविगलं च थावराणुचओ ॥३१०॥

अर्थ - सत्यआदि चारमनोयोग और सत्य, असत्य व उभय वचनयोग इस प्रकार इन ७ में सामान्य से उदययोग्य १२२ प्रकृति में से आतप, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, आनुपूर्वीचतुष्क और स्थावर चतुष्क इन १३ प्रकृति के बिना उदययोग्य प्रकृति १०९ तथा गुणस्थान १३ होते हैं।

विशेषार्थ - यहाँ गुणस्थान १३ कहे हैं, सो सत्य व अनुभयमनोयोग एवं सत्य वचनयोग की अपेक्षा कहे हैं, किन्तु असत्य व उभयमनोयोग में तथा असत्य व उभय वचन योग में १२ गुणस्थान ही होते हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व की, उदय १०४ प्रकृति का, अनुदय ५ प्रकृति का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चारकषाय की, उदय १०३ प्रकृति का, अनुदय ६

प्रकृति का। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्व की, उदय १०० प्रकृति का, अनुदय ९ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति १३ प्रकृति की, क्योंकि चारों गत्यानुपूर्वी का उदय तो परभव के लिए गमन करते समय होता है और मनोयोग तथा वचनयोग अपनी-अपनीपर्याप्ति अर्थात् मनपर्याप्ति और वचनपर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् होते हैं अत: यहाँ आनुपूर्वी को नहीं कहा। असंयतगुणस्थान में उदयप्रकृति १०० और अनुदयप्रकृति ९ हैं। देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यञ्चगति की व्युच्छित्ति, ८७ प्रकृति का उदय, २२ प्रकृति का अनुदय है। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति ५ प्रकृति की, उदय ८१ प्रकृति का, अनुदय २८ प्रकृति का। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४,उदयप्रकृति ७६ तथा ३३ अनुदयप्रकृति हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ३७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति ५०" हैं। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४२ हैं, क्योंकि अयोगकेवलीगुणस्थान में योग का अभाव है अत: अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली १२ प्रकृतियाँ भी सयोगकेवलीगुणस्थान में ही व्युच्छित्ति को प्राप्त होती हैं। सयोगकेवली के उदयप्रकृति भी ४२ हैं तथा अनुदय ६७ प्रकृति का पाया जाता है।

सत्यादि चार मनोयोग तथा सत्य-असत्य-उभय वचनयोगसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि–

उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०४	५	१ (मिथ्यात्व) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	४	१०३	६	४ (अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क)
मिश्र	१	१००	९	९ (६+४=१०-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	९	९ (९+१=१०-१ सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअंगोपांग, देवायु, नरकायु, देवगति, नरकगति, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)

देशसंयत	८	८७	२३	८० (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	५	८१	२८	२८(२२+८=३०-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार) .
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७(५२+१६=६८-१ तीर्थंकर) नोट : यह १३वाँ गुणस्थान सत्य-अनुभयमनोयोग व सत्य वचनयोगकी अपेक्षा से है।

आगे अनुभयवचनयोग और औदारिककाययोग में उदयादि कहते हैं-

अणुभयवचि वियलजुदा, ओघमुरालेण हारदेवाऊ ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ॥३११॥

अर्थ - अनुभयवचनयोग में पूर्वोक्त १०९ प्रकृति में से विकलत्रय की तीन मिलाने से उदययोग ११२ प्रकृति हैं तथा औदारिककाययोग में गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृति में से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देव-नरकगति, देव-नरकगत्यानुपूर्वी, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अपर्याप्त और नरकायु कम करने से १०९ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ – अनुभयवचनयोग में उदययोग्य ११२ प्रकृति तथा गुणस्थान १३ हैं। यहाँ मिथ्यात्व से सयोगीगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे १ मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी और विकलत्रय इस प्रकार ७,१-१३-८-५-४-६-६-१-२-१६ और ४२ प्रकृति व्युच्छित्ति रूप जानना। उसीप्रकार १०७-१०६-१००-१००-८७-८१-७६-७२-६६-६०-५९-५७ और ४२ प्रकृति गुणस्थान क्रम से उदययोग्य हैं एवं यथाक्रम से ५-६-१२-१२-२५-३१-३६-४०-४६-५२-५३-५५ और ७० प्रकृति गुणस्थानों में अनुदयरूप जानना।

अनुभयवचनयोग में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि— उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०७	५	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत्) १ (गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत्)
सासादन	७	१०६	६	७ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, विकलत्रय)
मिश्र	१	१००	१२	१२(७+६=१३-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	१२	१२(१२+१=१३-सम्यक्त्व) १३ (गाथा ३१० की सन्दृष्टिवत्)
देशसंयत	८	८७	२५	८ (गाथा २६४ के अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३१	३१(२५+८=३३-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३६	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४०	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४६	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५२	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५३	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	५५	१६(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	४२	४२	७०	७०(५५+१६=७१-१ तीर्थंकर)

औदारिककाययोग में उदययोग्य १०९ प्रकृति, गुणस्थान १३ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृतियों में से अपर्याप्तबिना ४ तथा एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय इस प्रकार इन ९ प्रकृति की, उदयप्रकृति १०६, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमोहनीय और तीर्थङ्कर ये तीन हैं। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति रूप प्रकृति अनन्तानुबन्धी कषाय ४, उदय ९७ प्रकृति का, अनुदय १२ प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तप्रकृति १ (सम्यग्मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ९४,

अनुदयप्रकृति १५। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानकषाय ४ और दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन ७ प्रकृतियों की, उदय ९४ प्रकृति का, अनुदय १५ प्रकृति का। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ८ प्रकृति की, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २२ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में औदारिककाययोग की प्रवृत्ति होते हुए आहारककाययोग की प्रवृत्ति नहीं होती है, क्योंकि एककाल में दो योग नहीं हो सकते इसलिए यहाँ व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धिआदि ३ की, उदयप्रकृति ७९, अनुदयप्रकृति ३०। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३३। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ३७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५०। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२ और अनुदयप्रकृति ६७ हैं।

औदारिककाययोग में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०९, गुणस्थान १३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	९	१०६	३	३ (तीर्थंकर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व) ९ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय)
सासादन	४	९७	१२	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९४	१५	१५(१२+४=१६-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	७	९४	१५	१५(१५+१=१६-१ सम्यक्त्व) ७ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	२२	८ (४ प्रत्याख्यानकषाय+तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चायु, नीचगोत्र और उद्योत)
प्रमत्त	३	७९	३०	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)

अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६(गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७(५२+१६=६८-१ तीर्थंकर)

औदारिकमिश्रकाययोग में उदयादि का कथन दो गाथाओं में करते हैं-

तम्मिस्से पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं।
परघादचओ अयदे णादेज्जदुदुब्भगं ण संढिच्छी ॥३१२॥

साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे।
चउदालं वोछेदो अयदे जोगिम्हि छत्तीसं ॥३१३॥ जुम्मं॥

अर्थ - पूर्वोक्त १०९ प्रकृतियों में एक अपर्याप्तप्रकृति के मिलने से तथा सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धिआदि तीन, स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति, परघात, आतप, उद्योत और उच्छ्वास ये १२ प्रकृति कम करने से औदारिकमिश्रकाययोग में उदययोग्य ९८ प्रकृति हैं। असंयतगुणस्थान में अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उदय नहीं है अत: इन प्रकृतियों की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही हो जाती है। मिथ्यात्वगुणस्थान में सूक्ष्मत्रय और मिथ्यात्व की, सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धीआदि १४, असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानआदि ४४ और सयोगकेवली के ३६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - औदारिकमिश्रकाययोग में उदययोग्य प्रकृति ९८; गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगकेवली ये चार हैं।

सामान्य से उदययोग्य १२२ प्रकृतियों में से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नरकायु, सम्यग्मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, सुस्वर-दु:स्वर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, परघात, आतप, उद्योत और उच्छ्वास इन २४ प्रकृतियों को कम करने से औदारिकमिश्रकाययोग में उदययोग्य ९८ प्रकृति हैं, क्योंकि यहाँ देव-नरकगतिसम्बन्धी तथा पर्याप्तकाल और विग्रहगतिसम्बन्धी प्रकृतियों का उदय नहीं है तथा आतपप्रकृति पर्याप्ति पूर्ण होने पर ही उदययोग्य है अत: उसका यहाँ उदय नहीं कहा है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्न होनेवाली १४ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-

अनन्तानुबन्धी की चार कषाय, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुंसकवेद और स्त्रीवेद। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय चार तथा देशसंयत की उद्योत बिना शेष ७, प्रमत्त की आहारकद्विक-स्त्यानगृद्धित्रिकबिना शून्य, अप्रमत्त की चार, अपूर्वकरणकी ६, अनिवृत्तिकरण की स्त्री व नपुंसकवेद बिना ४, सूक्ष्मसाम्पराय की १ सूक्ष्मलोभ, उपशान्तकषाय की वज्रनाराच व नाराचसंहनन, क्षीणकषाय की १६ इस प्रकार ४+७+०+४+६+४+१+२+१६=४४ प्रकृतियाँ असंयतगुणस्थान में ही व्युच्छिन्न होती हैं, क्योंकि देशसंयत से क्षीणकषायगुणस्थान पर्यन्त औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। सयोगीगुणस्थान में ३६ प्रकृति की व्युच्छित्ति है, क्योंकि कपाटसमुद्घात के समय इनके औदारिकमिश्रकाययोग में सुस्वर, दु:स्वर, प्रशस्तअप्रशस्तविहायोगति, परघात और उच्छ्वास का उदय नहीं होता।

इस प्रकार यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४ प्रकृति की, उदय ९६ प्रकृति का तथा अनुदय सम्यक्त्व और तीर्थंकर प्रकृति का है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १४, उदयप्रकृति ९२, अनुदयप्रकृति ६। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति ४४ प्रकृति की, उदय सम्यक्त्वसहित ७९ प्रकृति का, अनुदय १९ प्रकृति का। सयोगकेवली के व्युच्छिन्नप्रकृति ३६, उदयप्रकृति तीर्थङ्करसहित ३६, अनुदयप्रकृति ६२ हैं।

औदारिकमिश्रकाययोग में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ९८, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	४	९६	२	२ (तीर्थंकर, सम्यक्त्व) ४ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	१४	९२	६	१४(अनन्तानुबन्धी की चारकषाय, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
असंयत	४४	७९	१९	१९(१४+६=२०-१ सम्यक्त्व) ४४(अप्रत्याख्यानकषाय ४, प्रत्याख्यानकषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, नीचगोत्र, सम्यक्त्व, हास्यादि ६, अन्त के तीन संहनन, पुरुषवेद, सञ्ज्वलनकषाय ४, वज्रनाराच और नाराचसंहनन तथा गाथा २६४ की सन्दृष्टिवत् क्षीणकषायगुणस्थान की १६।
सयोगकेवली	३६	३६	६२	६२ (४४+१९=६३-१ तीर्थंकर)

नोट - सयोगकेवली के कपाटसमुद्घात की अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोग कहा गया है, क्यों कि उस समय उनके औदारिकमिश्रकाययोग पाया जाता है।

अब वैक्रियिककाययोग में उदयादि का कथन करते हैं-

देवोघं वेगुव्वे, ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ ।
णिरयगदिहुंडसंढं, दुग्गदि दुब्भगचओ णीचं ।।३१४।।

अर्थ - देवगति में उदययोग्य ७७ प्रकृतियों में से देवगत्यानुपूर्वी कम करके तथा नरकायु, नरकगति, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भगचतुष्क और नीचगोत्र मिलाने पर वैक्रियककाययोग में उदययोग्य ८६ प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ - वैक्रियककाययोग में उदययोग्य प्रकृति ८६ तथा गुणस्थान आदि के चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ (मिथ्यात्व), उदयप्रकृति ८४, अनुदयप्रकृति २, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धी की चार कषाय, उदयप्रकृति ८३, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ८०, अनुदयप्रकृति ६। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यान की ४ कषाय, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, नरकगति-देवगति, नरकायु-देवायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १३, उदयप्रकृति सम्यक्त्वसहित ८० तथा अनुदयप्रकृति ६ हैं।

वैक्रियिककाययोग सम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ८६,गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	८४	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	८३	३	४ (अनन्तानुबन्धी)
मिश्र	१	८०	६	६ (४+३=७-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	८०	६	६ (६+१=७-१ सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय, वैक्रियकद्विक, नरकगति, नरकायु, देवगति, देवायु, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति)

अब वैक्रियकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग में उदयादि का कथन ३ गाथाओं से करते हैं-

वेगुव्वं वा मिस्से, ण मिस्स परघादसरविहायदुगं।
सग्गे ण हुंडसंढं, दुभगणादेज्ज अजसं ।।३१५।।

णिरयगदिआउणीचं, ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं।
छट्ठगुणं वाहारे, ण थीणतियसंढथीवेदं ।।३१६।।

दुग्गदिदुस्सरसंहदि, ओरालदु चरिमपंचसंठाणं।
ते तम्मिस्से सुस्सर, परघाददुसत्थगदि हीणा ।।३१७।। विसेसयं ।।

अर्थ - वैक्रियिककाययोग में उदययोग्य ८६ प्रकृतियों में से मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) परघात, उच्छ्वास, स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति इन प्रकृतियों को कम करने से वैक्रियिकमिश्रकाययोग में उदययोग्य ७९ प्रकृतियाँ हैं। उसमें भी यहाँ सासादनगुणस्थान में हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकगति, नरकायु, नीचगोत्र का उदय नहीं है,(क्योंकि सासादनगुणस्थान वाला जीव मरकर नरक में नहीं जाता है।) किन्तु असंयतगुणस्थान में इनका उदय रहता है। सासादन में स्त्रीवेद और अन०४ इन पाँच की व्युच्छित्ति होती है।(वैक्रियिक मिश्र के असंयत गुणस्थान में स्त्रीवेदी नहीं होते हैं।)

आहारककाययोग में सामान्य से छठे गुणस्थान में उदययोग्य ८१ प्रकृतियों में से स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, नपुंसकवेद और स्त्रीवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर, ६ संहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रबिना शेष पाँचसंस्थान, इन २० प्रकृतिबिना ६१ प्रकृति उदययोग्य हैं। आहारकमिश्रकाययोग में उपुर्यक्त ६१ प्रकृतियों में से सुस्वर, परघात, उच्छ्वास और प्रशस्तविहायोगति कम करने से ५७ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग में १ प्रमत्त गुणस्थान ही है।

विशेषार्थ - वैक्रियकमिश्रकाययोगसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में एक मिथ्यात्व प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७८, अनुदयप्रकृति १ (सम्यक्त्व)। सासादनगुणस्थान में स्त्रीवेद और अनन्तानुबन्धी चार कषाय की व्युच्छित्ति, उदय ७७ प्रकृति का और अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यान की चार कषाय, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देव-नरकगति, देव-नरकायु, दुर्भगादितीन इस प्रकार इन १३ प्रकृति की व्युच्छित्ति, सम्यक्त्व, हुण्डकसंस्थानादिक आठ इन ९ का उदय पाया जाने से उदयप्रकृति ७३ और अनुदय ६ प्रकृति का है।

वैक्रियकमिश्रकाययोग में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ७९, गुणस्थान ३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	७८	१	अनुदय १ (सम्यक्त्व) व्यु. १ (मिथ्यात्व)
सासादन	५	६९	१०	१० (हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकगति, नरकायु, नीचगोत्र, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व) ५ (अनन्तानुबन्धी की ४ कषाय और स्त्रीवेद)
असंयत	१३	७३	६	६ (१०+५=१५-९ उपर्युक्त हुण्डक-संस्थानादि ८ और सम्यक्त्व) १३ (गाथा ३१४ की सन्दृष्टि अनुसार)

आगे कार्मणकाययोग में उदयादि का कथन दो गाथाओं से करते हैं-

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं।
उवघादपणविगुव्वदुथीणतिसंठाणसंहदी णत्थि ॥३१८॥

साणे थीवेदछिदी, णिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं।
इगिवण्णं पणवीसं, मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो॥३१९॥जुम्मं॥

अर्थ - कार्मणकाययोग में उदययोग्य प्रकृति ८९ हैं। गुणस्थानोक्त सामान्य से १२२ प्रकृतियों में से स्वरद्विक, प्रशस्त व अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, उपघात, परघात, आतप,उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक, ६ संस्थान, ६ संहनन इस प्रकार इन ३३ प्रकृतियों के बिना उदययोग्य ८९ प्रकृति हैं। उसमें भी सासादनगुणस्थान में स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति होती है और नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी व नरकायु इन तीन का उदय नहीं होता तथा मिथ्यात्वगुणस्थान में ३, सासादनगुणस्थान में १०, असंयतगुणस्थान में ५१ और सयोगकेवली के २५ प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - कार्मणकाययोग में उदययोग्य प्रकृतियाँ ८९ हैं।

शंका - अनादिसंसार में विग्रहगति और अविग्रहगति में मिथ्यात्व से सयोगी पर्यन्त सर्व गुणस्थानों में कार्मणशरीर का निरन्तर उदय है। **विग्रहगतौ कर्मयोगः** इस सूत्र द्वारा विग्रहगति में ही कार्मणकाययोग क्यों कहा?

समाधान - सिद्धे सत्यारंभो नियमाय सिद्ध होते हुए भी पुनश्च आरम्भ नियम के लिए है अत: यहाँ पर ऐसा नियम है कि विग्रहगति में कार्मणयोग ही है अन्य योग नहीं है क्योंकि विग्रहगति में कार्मणवर्गणा के अतिरिक्त अन्य वर्गणा नहीं आती, अन्यत्र अन्य वर्गणाओं के कारण योग होता है इसलिए अन्यत्र कार्मणकाययोग नहीं होता है।

शंका - विग्रहगति का अर्थ तो यह भी है कि विग्रह-नवीनशरीर को धारण करने के लिए जो गमन होता है वह विग्रहगति है। अत: यहाँ मिथ्यात्व, सासादन और असंयतगुणस्थान में तो विग्रहगति हो सकती है, किन्तु सयोगीगुणस्थान में तो विग्रहगति का अभाव है फिर वहाँ कार्मणकाययोग कैसे हो सकता है?

समाधान - विग्रहगति में ही कार्मणकाययोग हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि प्रतर व लोकपूरणसमुद्घात में भी तीनसमयपर्यन्त कार्मणकाययोग पाया जाता है।

कार्मणकाययोग सम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व, सूक्ष्म और अपर्याप्त की व्युच्छित्ति, उदय ८७ प्रकृति का, अनुदय तीर्थंकर और सम्यक्त्व इन २ प्रकृति का है। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी की ४ कषाय, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय और स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति, उदय ८१ प्रकृति का, अनुदय नरकद्विक और नरकायुसहित ८ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति वैक्रियिकद्विकबिना १५ तथा देशसंयत की उद्योत बिना सात, प्रमत्त की आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धिबिना शून्य। अप्रमत्तकी तीनसंहनन बिना एक सम्यक्त्व, अपूर्वकरणकी ६, अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी स्त्रीवेद की व्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही हो जाने से ५, सूक्ष्मसाम्पराय की एक, उपशान्तमोह की शून्य, क्षीणमोह सम्बन्धी १६ इसप्रकार ये सर्व मिलकर ५१ प्रकृति की होती है, क्योंकि देशसंयत से क्षीणमोहगुणस्थानपर्यन्त कार्मणकाययोग नहीं होता है। यहाँ सम्यक्त्व, नरकद्विक, नरकायुसहित उदयप्रकृति ७५ एवं अनुदय १४ प्रकृति का है। सयोगकेवली में व्युच्छिन्न रूप ४२ प्रकृति में से वज्रर्षभनाराच, स्वरद्विक, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, औदारिकद्विक, संस्थान ६, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर के बिना शेष २५ प्रकृति की यहाँ सयोगकेवली में व्युच्छित्ति होती है। उदयरूप प्रकृति तीर्थङ्करसहित २५ और अनुदयप्रकृति ६४ हैं।

कार्मणकाययोगसम्बन्धी उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय की सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ८९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	३	८७	२	२ (तीर्थंकर, सम्यक्त्व) ३ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त)
सासादन और	१०	८१	८	८ (३+२=५+३ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी नरकायु)
असंयत	५१	७५	१४	१४ (१०+८=१८-४ सम्यक्त्व, नरकद्विक और नरकायु) ५१ (वैक्रियकद्विकबिना असंयत की १५+ उद्योतबिना देशसंयत की ७+अप्रमत्त की १ सम्यक्त्व+अपूर्वकरण की ६ हास्यादि +अनिवृत्तिकरणकी स्त्रीवेदबिना ५+सूक्ष्म-साम्पराय की १ लोभ+क्षीणमोहकी १६)
सयोगकेवली	२५	२५	६४	६४ (५१+१४=६५-१ तीर्थंकर)

॥ इति योगमार्गणा ॥

❋ ❋ ❋

अथ वेदमार्गणा

अब वेदमार्गणासम्बन्धी उदयादि का कथन करते हैं-

मूलोघं पुंवेदे, थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं।
इगिविगलं थीसंढं, तावं णिरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

अर्थ - पुरुषवेद में सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियों में से स्थावरादि चार, नरकद्विक, तीर्थङ्कर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आतप और नरकायु ये १५ प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं।

विशेषार्थ - पुरुषवेद में उदययोग्य १०७ प्रकृति, गुणस्थानआदि के ९ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान

में व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०३, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विक। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकी ४ कषाय, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ५। मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति,उदयप्रकृति ९६ तथा तीनआनुपूर्वी के उदय का अभाव होने से एवं सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने से अनुदयप्रकृति ११। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय चार, वैक्रियिकद्विक, सुरद्विक, देवायु, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति १४, उदयप्रकृति ९९, सम्यक्त्व और तिर्यञ्च-मनुष्यदेवगत्यानुपूर्वीका उदय होने से अनुदयप्रकृति ८। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८५, अनुदयप्रकृति २२। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति आहारकद्विकसहित ७९, अनुदयप्रकृति २८। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३३। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ३७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग में पुरुषवेद तथा अवेदभागसम्बन्धी सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया, १० वें की सूक्ष्मलोभ, ११ वें की वज्रनाराच व नाराच सहनन, क्षीणकषायगुणस्थान की १६ और तीर्थङ्करबिना शेष ४१ प्रकृति सयोगकेवली सम्बन्धी इस प्रकार व्युच्छिन्नप्रकृति ६४ हैं, क्योंकि सवेदभाग के आगे वेद का उदय नहीं है। उदयप्रकृति ६४ और अनुदयप्रकृति ४३ है।

पुरुषवेद में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति १०७, गुणस्थान ९

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	५	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	९६	११	११ (५+४=९+३ आनुपूर्वी (नरकगत्यानुपूर्वीबिना) और सम्यग्मिथ्यात्वका उदय है अतः उसे कम किया)
असंयत	१४	९९	८	८ (११+१=१२-४, तीनआनुपूर्वी और सम्यक्त्व) १४ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, देवायु, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, देवद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश)

देशसंयत	८	८५	२२	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	७९	२८	२८(२२+८=३०-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७४	३३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	३७	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण सवेदभाग	६४	६४	४३	६४ (पुरुषवेद+अवेदभागसे सयोगीपर्यन्त क्रमशः व्युच्छिन्न होने वाली ३+१+२+१६+४१=६४)

अथानन्तर स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में उदयादि का कथन करते हैं-

इत्थिवेदे वि तहा, हारदुपुरिसूणमित्थिसंजुत्तं।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं॥३२१॥

अर्थ - पुरुषवेदसम्बन्धी उदययोग्य प्रकृति १०७ में से आहारकद्विक और पुरुषवेद कम करके स्त्रीवेद मिलाने से स्त्रीवेद में उदययोग्य प्रकृति १०५ हैं तथा सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृति में से देवद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थङ्कर ये आठप्रकृतियाँ कम करने पर नपुंसकवेद में उदययोग्य प्रकृति ११४ हैं।

विशेषार्थ - स्त्रीवेद में उदययोग्यप्रकृति १०५, गुणस्थान ९ हैं। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०३, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दो। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय ४, देव-मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन ७ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ३। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९६ अनुदयप्रकृति ९। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, वैक्रियिकद्विक, देवायु, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति ये ११ हैं। उदयप्रकृति ९६, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ८, उदयप्रकृति ८५ और अनुदयप्रकृति २०। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, क्योंकि स्त्रीवेदी संक्लेशी हैं अतः उनके आहारकद्विक नहीं हैं। उदयप्रकृति ७७, अनुदयप्रकृति २८। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति, सम्यक्त्व एवं अंतिमतीन संहनन ये ४ हैं, उदयप्रकृति ७४ तथा अनुदय ३१ प्रकृति का है। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६ हास्यादि नोकषाय, उदयप्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ३५ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग में व्युच्छिन्नप्रकृति पूर्वोक्त ६४, उदयप्रकृति ६४ और अनुदयप्रकृति ४१ हैं।

स्त्रीवेद में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति १०५, गुणस्थान ९

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	२	२ (सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	७	१०२	३	७ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, देव-मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९६	९	९ (७+३=१०-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	११	९६	९	९ (९+१=१०-१ सम्यक्त्व) ११ (अप्रत्याख्यानकषाय ४,देवगति, देवायु, वैक्रियकद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश.)
देशसंयत	८	८५	२०	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	३	७७	२८	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	३१	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	३५	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६४	६४	४१	६४(गाथा ३२० की सन्दृष्टि अनुसार)

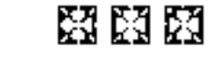
नपुंसकवेद में उदययोग्य प्रकृति ११४, गुणस्थान ९ हैं। यहाँ मिथ्यात्व गुण स्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये ५, उदयप्रकृति ११२, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व ये दो। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी ये ११, उदयप्रकृति १०६, अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९६, अनुदयप्रकृति १८। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियिकद्विक, नरकद्विक, नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १२ उदयप्रकृति ९७, अनुदयप्रकृति १७। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त८, उदयप्रकृति ८५, अनुदयप्रकृति २९। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धिआदि निद्रा तीन, उदयप्रकृति ७७, अनुदयप्रकृति ३७। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यक्त्व और अन्तिम तीन संहनन ये ४, उदयप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ४०। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति

हास्यादि ६ नोकषाय, उदयप्रकृति ७० तथा अनुदयप्रकृति ४४ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के सवेदभाग में व्युच्छिन्नप्रकृति ६४, उदयप्रकृति ६४ तथा अनुदयप्रकृति ५० जानना।

नपुंसकवेद में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ११४, गुणस्थान ९

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११२	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त)
सासादन	११	१०६	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ११ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९६	१८	१८ (११+८=१९-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	९७	१७	१७ (१८+१=१९-सम्यक्त्व, नरकगत्यानुपूर्वी) १२ (अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियकद्विक, नरकद्विक, नरकायु, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८५	२९	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्तसंयत	३	७७	३७	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	४०	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	४४	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६४	६४	५०	

॥ इति वेदमार्गणा ॥



अथ कषायमार्गणा

अब कषायमार्गणा में उदयादि का कथन करते हैं-

तित्थयरमाणमायालोहचउक्कूणमोघमिह कोहे।
अणरहिदे णिगिविगलं तावऽणकोहाणुथावरचउक्कं ॥३२२॥

अर्थ - कषायमार्गणा में क्रोधकषाय में सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतियों में से चारप्रकार के क्रोध को छोड़कर शेष मान-माया व लोभचतुष्क सम्बन्धी १२ कषाय और तीर्थङ्कर इसप्रकार १३ प्रकृति बिना १०९ प्रकृति उदययोग्य हैं तथा अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यादृष्टि के (अर्थात् अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर जो मिथ्यात्व में आया है) शेष तीन प्रकार के क्रोध में एकेन्द्रिय,विकलत्रय,आतप,अनन्तानुबन्धीक्रोध, ४ आनुपूर्वी, स्थावरादि चार इन १४ प्रकृतियों का उदय नहीं है तथा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व व आहारकद्विक का भी उदय नहीं है।

"एवं माणादितिए" गाथा ३२३ के इन वचनों के अनुसार मानादि तीन कषायों में क्रोधकषायवत् ही कथन जानना। स्व-स्व कषाय के अतिरिक्त १२ कषाय एवं तीर्थङ्करप्रकृति इन १३ के बिना उदययोग्य १०९ प्रकृति हैं।

विशेषार्थ - क्रोधकषाय में उदययोग्य प्रकृतियाँ १०९ हैं और गुणस्थान ९ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ५, उदयप्रकृति १०५, अनुदयप्रकृति सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आहारकद्विक। सासादनगुणस्थान में अनन्तानुबन्धीक्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रयकी तीन इस प्रकार ६ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदय ९९ प्रकृति का, नरकगत्यानुपूर्वीसहित अनुदयरूप १० प्रकृति। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ मिश्रप्रकृति की, उदय ९१ प्रकृति का तथा नरकगत्यानुपूर्वीबिना शेष तीनआनुपूर्वीका उदय नहीं होने से अनुदयप्रकृति १८। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानक्रोध, वैक्रियिकषट्क, मनुष्य व तिर्यञ्चआनुपूर्वी,देवायु व नरकायु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १४। उदयप्रकृति ९५, सम्यक्त्व तथा चारों आनुपूर्वी का उदय होने से अनुदयप्रकृति १४। देशसंयत में प्रत्याख्यानक्रोध, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति इन पाँचप्रकृति की व्युच्छित्ति, उदय ८१ प्रकृति का और अनुदयप्रकृति २८ हैं। प्रमत्तसंयत में आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा इन पाँच की व्युच्छित्ति, उदय ७८ प्रकृति का, आहारकद्विक का उदय होने से अनुदय ३१ प्रकृति का। अप्रमत्तगुणस्थान में सम्यक्त्वप्रकृति, अन्तिम तीनसंहनन इन चारप्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७३, अनुदयप्रकृति ३६। अपूर्वकरणगुणस्थान में हास्यादि छह नोकषाय की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ६९, अनुदयप्रकृति ४०। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में व्युच्छित्ति तीन वेद की, दूसरे भाग में सञ्ज्वलनक्रोध तथा सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी शून्य, उपशान्तकषाय सम्बन्धी

२, क्षीणकषायसम्बन्धी १६ और सयोगकेवलीसम्बन्धी तीर्थङ्करबिना शेष ४१ इसप्रकार ६३ प्रकृतियों की है। उदयप्रकृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के दूसरे क्रोधकषाय वाले भाग में ६३, अनुदयप्रकृति ४६ हैं।

अनन्तानुबन्धी रहित क्रोध में मिथ्यादृष्टि के उदययोग्य प्रकृति ९१ हैं, क्योंकि क्रोधकषायसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थान की उदययोग्यप्रकृति १०५ में से एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धीक्रोध, चारआनुपूर्वी, स्थावर,सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त इन १४ प्रकृतियोंका यहाँ उदय नहीं होने से इनको कम किया है अर्थात् अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यात्व को जो प्राप्त हुआ है उसके एकआवलीकालपर्यन्त अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता है, उसके उदययोग्य ९१ प्रकृतियाँ हैं।

नोट- अनन्तानुबन्धी ४ कषाय की विसंयोजना करके मिथ्यात्व के उदय से जो प्रथमगुणस्थान में आया ऐसे जीव के अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता है, क्योंकि इस जीव के अनन्तानुबन्धीचारकषाय सत्ता में नहीं है, किन्तु पहले गुणस्थान में आनेपर अनन्तानुबन्धीका नवीनबन्ध होने से इसका उदय बन्धावलीकाल के पश्चात् होगा। मिथ्यात्वगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी ४ कषाय का उदय नहीं है उस समय इस जीव के, १०५ में से १४ बिना ९१ प्रकृति का उदय होता है।

क्रोधकषाय में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति १०९, गुणस्थान ९

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	१०५	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	६	९९	१०	१०(५+४=९+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ६ (अनन्तानुबन्धीक्रोध, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और स्थावर)
मिश्र	१	९१	१८	१८(१०+६=१६-१ सम्यग्मिथ्यात्व+३ गत्यानुपूर्वी) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१४	९५	१४	१४(१८+१=१९-सम्यक्त्व और चार गत्यानुपूर्वी) १४व्यु. (अप्रत्याख्यानक्रोध वैक्रियकषट्क, देव-नरकायु, मनुष्य-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी दुर्भग, अनादेय, अयश.)

देशसंयत	५	८१	२८	५ (प्रत्याख्यानक्रोध, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चायु, उद्योत, नीचगोत्र)
प्रमत्त	५	७८	३१	३१ (२८+५=३३-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७३	३६	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अपूर्वकरण	६	६९	४०	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६३	६३	४६	व्यु. ६३ (अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम-भाग की ३ वेद, द्वितीयभाग की सञ्ज्वलनक्रोध, सूक्ष्मसाम्परायकी शून्य, उपशान्तकषाय की २, क्षीणकषाय की १६, सयोग-केवली की तीर्थंकरबिना ४१)

इसीप्रकार मान-माया-लोभकषायों में भी उदयादि का कथन जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि सूक्ष्मलोभसम्बन्धी कथन में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का भी कथन होगा। यहाँ ९वें गुणस्थान में तीन वेद की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति६३, अनुदय प्रकृति ४६। १० वें गुणस्थान में ६० की व्युच्छित्ति, ६० का उदय और ४९ अनुदय प्रकृति है।

॥ इति कषायमार्गणा ॥

अथ ज्ञानमार्गणा

एवं माणादितिए, मदिसुदअण्णाणगे दु सगुणोघं।
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ ॥३२३॥

अर्थ - इस प्रकार मानादि तीनकषायों में जानना। (इसका कथन गाथा ३२२ में कषायमार्गणा के अन्तर्गत कर दिया है।) ज्ञानमार्गणा के अन्तर्गत कुमति और कुश्रुत ज्ञान में सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृति में से आहारकद्विक, तीर्थङ्कर, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व बिना शेष ११७ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं तथा विभङ्ग (कुअवधि) ज्ञान में भी ११७ में से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आनुपूर्वी ४ इन १३ प्रकृतियों के बिना शेष १०४ प्रकृति उदययोग्य हैं।

विशेषार्थ - ज्ञानमार्गणा के अन्तर्गत कुमति-कुश्रुतज्ञान में मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगत्यानुपूर्वी की, उदयप्रकृति ११७, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति रूप प्रकृति गुणस्थानोक्त ९, उदयप्रकृति १११ और अनुदयप्रकृति ६ हैं।

कुमति-कुश्रुतज्ञान में उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ११७, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	६	११७	०	६ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	९	१११	६	९ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

विभङ्ग (कुअवधि) ज्ञान में उदययोग्य १०४ प्रकृति तथा गुणस्थान दो ही हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्तप्रकृति १ मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १०४, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तप्रकृति अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, उदयप्रकृति १०३ और अनुदय प्रकृति १ है।

कुअवधिज्ञान में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०४, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०४	०	१ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०३	१	४ (अनन्तानुबन्धी कषाय)

सण्णाणपंचयादी, दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं।
मणपज्जवपरिहारे, णवरि ण संढित्थि हारदुगं॥३२४॥

चक्खुम्मि ण साहारणतावि गिबितिजाइ थावरं सुहुमं।

अर्थ- पाँचज्ञान से दर्शनमार्गणा पर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् रचना है, किन्तु मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयम में विशेषता यह है कि नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और आहारकद्विक ये चारप्रकृति

उदययोग्य नहीं हैं तथा चक्षुदर्शन में साधारण, आतप, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रियजाति, स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थङ्कर ये आठप्रकृति उदययोग्य नहीं हैं अतः इन बिना ११४ प्रकृतियों का उदय पाया जाता है।

विशेषार्थ- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में गुणस्थान असंयत से क्षीणकषायपर्यन्त ९ होते हैं, उदययोग्य प्रकृति १०६ हैं। यहाँ सामान्य से गुणस्थानोक्त १२२ प्रकृतिमें से प्रथम, द्वितीय और तृतीयगुणस्थानसम्बन्धी व्युच्छिन्नप्रकृतियाँ १५ तथा तीर्थङ्कर इन १६ प्रकृतियों का उदय नहीं पाया जाता है। उदयव्युच्छित्ति, उदय और अनुदय का कथन इसप्रकार है-

असंयतगुणस्थान से क्षीणकषायपर्यन्त ९ गुणस्थानों में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति क्रम से १७-८-५-४-६-६-१-२ और १६ जानना तथा उदय यथाक्रम १०४-८७-८१-७६-७२-६६-६०-५९ व ५७ प्रकृतियों का है। अनुदयगुणस्थानों में क्रम से २-१९-२५-३०-३४-४०-४६-४७ और ४९ प्रकृतियों का जानना।

मति-श्रुत-अवधिज्ञान में उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०६,गुणस्थान ९

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१७	१०४	२	२ (आहारकद्विक) १७ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
देशसंयत	८	८७	१९	८ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	२५	२५(१९+८=२७-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३०	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३४	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४०	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४६	१ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	४७	२ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	४९	१६(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

मन:पर्ययज्ञान में नपुंसकवेद व स्त्रीवेद और आहारकद्विक उदययोग्य नहीं है अत: सामान्य से गुणस्थानोक्त प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी ८१ प्रकृतियों में से इन चार को कम करने पर यहाँ उदययोग्य प्रकृति ७७ हैं और गुणस्थान प्रमत्त से क्षीणकषायपर्यन्त सात हैं। यहाँ प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छित्ति स्त्यानगृद्धि आदि तीननिद्रा, उदययोग्य प्रकृति ७७, अनुदय का अभाव है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदययोग्यप्रकृति ७४, अनुदयप्रकृति ३। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति हास्यादि ६ नोकषाय, उदयप्रकृति ७०, अनुदयप्रकृति ७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति पुरुषवेद तथा सञ्ज्वलनक्रोध मान-माया, उदयप्रकृति ६४, अनुदयप्रकृति १३। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सञ्ज्वलनलोभ, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति १७। उपशान्तमोह में व्युच्छिन्नप्रकृति, वज्रनाराच और नाराचसंहनन, उदयप्रकृति ५९ और अनुदयप्रकृति १८। क्षीणकषायगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति गुणस्थानोक्त १६, उदयप्रकृति ५७ तथा अनुदयप्रकृति २० हैं।

मन:पर्ययज्ञान में उदयव्युच्छित्ति-उदय और अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान ७

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	३	७७	०	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा)
अप्रमत्त	४	७४	३	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७०	७	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	४	६४	१३	४ (पुरुषवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	१७	१ (सञ्ज्वलनलोभ)
उपशान्तकषाय	२	५९	१८	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणकषाय	१६	५७	२०	१६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

केवलज्ञान में उदययोग्य प्रकृति ४२, गुणस्थान सयोग और अयोगकेवली ये २। सयोगकेवली गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदय नहीं है। अयोगकेवली के व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ३० हैं।

केवलज्ञान में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ४२, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
सयोगकेवली	३०	४२	०	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार
अयोगकेवली	१२	१२	३०	गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार

॥ इति ज्ञानमार्गणा ॥

अथ संयममार्गणा

संयममार्गणा में सामायिक-छेदोपस्थापनासंयम में उदययोग्य प्रकृति ८१, गुणस्थान प्रमत्तादि ४ हैं। यहाँ प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदय नहीं है। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ५। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ९। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति १५ हैं।

सामायिक छेदोपस्थापनासंयम में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ८१, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	५	८१	०	५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	५	४ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	९	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	१५	६ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

परिहारविशुद्धिसंयम में **संदिट्ठी हारदुगं ण** के अनुसार नपुंसक-स्त्रीवेद और आहारकद्विक इन चार के बिना उदययोग्य प्रकृति ७७ और गुणस्थान दो हैं। यहाँ प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति स्त्यानगृद्धित्रिक, उदयप्रकृति ७७, अनुदय नहीं है। अप्रमत्त में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७४ और अनुदयप्रकृति ३ हैं।

परिहारविशुद्धिसंयम में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि–
उदययोग्यप्रकृति ७७, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
प्रमत्त	३	७७	०	३ (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्त	४	७४	३	४ (सम्यक्त्व, अर्धनाराच-कीलित-सृपाटिकासंहनन)

सूक्ष्मसाम्परायसंयम में उदयादि का सर्वकथन सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवत् जानना। उदययोग्य प्रकृति ६०, गुणस्थान १ सूक्ष्मसाम्पराय।

यथाख्यातसंयम में, सामान्य गुणस्थानोक्त उपशान्तकषायसम्बन्धी उदयप्रकृति ५९ में एक तीर्थङ्कर प्रकृति और मिलाने से उदययोग्य प्रकृति ६० हैं तथा उपशान्तकषायादि चारगुणस्थान। यहां उपशान्तकषाय गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति १। क्षीणकषाय में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १६, उदयरूप प्रकृति ५७, अनुदयरूप प्रकृति ३ हैं। सयोगकेवली गुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ३०,उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति १८ हैं। अयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२, अनुदयप्रकृति ४८ हैं।

यथाख्यातसंयम में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि–
उदययोग्यप्रकृति ६०, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
उपशान्तकषाय	२	५९	१	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन) १ (तीर्थंकर)
क्षीणकषाय	१६	५७	३	१६(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	१८	१८(१६+३=१९-१ तीर्थंकर) ३०(गाथा २६४ के अनुसार)
अयोगकेवली	१२	१२	४८	१२(गाथा २६४ की सन्दृष्टि के अनुसार)

देशसंयम में उदयादि की सर्वरचना देशसंयतगुणस्थान के समान जानना। उदययोग्य प्रकृति ८७ तथा गुणस्थान एक देशसंयत।

असंयम में तीर्थङ्कर और आहारकद्विकबिना उदययोग्य प्रकृति ११९ प्रकृति हैं। गुणस्थान

मिथ्यात्वादि चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति गुणस्थानोक्त पाँच में से तीर्थङ्कर और आहारकद्विक बिना शेष दो। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ९, उदयप्रकृति १११, अनुदय प्रकृति ८। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १९। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १५ हैं।

असंयम में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति ११९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	९	१११	८	८ (५+२=७+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	१००	१९	१९ (८+९=१७+३ नरकबिना शेष गत्यानुपूर्वी=२०-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१५	१५ (१९+१=२०-४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

॥ इति संयममार्गणा ॥

अथ दर्शनमार्गणा

दर्शनमार्गणा के अन्तर्गत चक्षुदर्शन में उदययोग्य प्रकृतियाँ ११४, गुणस्थान मिथ्यात्व से क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व और अपर्याप्त की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ११०, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विक ये चार। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति अनन्तानुबन्धी ४ कषाय और चतुरिन्द्रियजाति, उदयप्रकृति १०७, अनुदयप्रकृति ७। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति १४। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १७, उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति १०। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २७। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३३। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३८। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४२। अनिवृत्तिकरण में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४८। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ५४ है। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५५। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७ और अनुदय प्रकृति ५७ हैं।

चक्षुदर्शन में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्य प्रकृति ११४, गुणस्थान १२

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	११०	४	४ (आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	५	१०७	७	७ (४+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ५ (अनन्तानुबन्धीकषाय४ और चतुरिन्द्रियजाति)
मिश्र	१	१००	१४	१४(७+५=१२+ नरकबिना शेष ३ गत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१०	१०(१४+१=१५-४ गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्व) १७ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि के अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२७	८ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि के अनुसार)

प्रमत्तसंयत	५	८१	३३	३३(२७+८=३५-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्तसंयत	४	७६	३८	४ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४२	६ (हास्यादि ६ नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४८	६ (तीनलोभ, संज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५४	१ (सूक्ष्मलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	५५	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	५७	१६(गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

अचक्षुदर्शन में तीर्थङ्करबिना शेष १२१ प्रकृतियाँ हैं। गुणस्थानमिथ्यात्व से क्षीणमोहपर्यन्त १२ हैं। यहाँ उदयादिकी सर्वरचना गुणस्थान की रचनावत् है सो निम्नसन्दृष्टि से जानना।

अचक्षुदर्शनावरण में उदयादिसम्बन्धी सन्दृष्टि–
उदययोग्यप्रकृति १२१, गुणस्थान १२

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक) ५ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण)
सासादन	९	१११	१०	१०(५+४=९+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ९ (गाथा २६४ के अनुसार)
मिश्र	१	१००	२१	२१(१०+९+३ शेषआनुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	१७	अनुदय १७ (२१+१=२२-५, गत्यानुपूर्वी ४ और सम्यक्त्व) व्यु. १७ (गुणस्थानोक्त)
देशसंयत	८	८७	३४	८ (गुणस्थानोक्त)
प्रमत्तसंयत	५	८१	४०	४०(३४+८=४२-२ आहारकद्विक) ५ (गुणस्थानोक्त)
अप्रमत्त	४	७६	४५	४ (गुणस्थानोक्त)
अपूर्वकरण	६	७२	४९	६ (गुणस्थानोक्त)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५५	६ (गुणस्थानोक्त)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६१	१ (गुणस्थानोक्त)
उपशान्तमोह	२	५९	६२	२ (गुणस्थानोक्त)
क्षीणमोह	१६	५७	६४	१६(गुणस्थानोक्त)

अवधिदर्शन में उदययोग्य प्रकृति अवधिज्ञानवत् ही १०६ हैं तथा उदयादिकी सर्वरचना अवधिज्ञान के समान ही है। अवधिदर्शन में गुणस्थान असंयत से क्षीणमोहपर्यन्त ९ हैं।

केवलदर्शन में उदययोग्य प्रकृति ४२ हैं गुणस्थान २ हैं। उदयादिकी सर्वरचना केवलज्ञानवत् ही जानना।

॥ इति दर्शनमार्गणा ॥

❋ ❋ ❋

अथ लेश्यामार्गणा

अथानन्तर लेश्यामार्गणा में उदयादि का कथन करते हैं-

किण्हदुगे सगुणोघं, मिच्छे णिरयाणुवोच्छेदो ॥३२५॥
साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणुवोच्छिदी एवं।
काओदे अयदगुणे, णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ॥३२६॥

अर्थ - लेश्यामार्गणा में कृष्ण-नीललेश्या में तीर्थङ्करादि तीनप्रकृतियों के बिना उदययोग्य प्रकृति ११९ हैं और सर्वकथन अपने-अपने गुणस्थानवत् है, किन्तु मिथ्यात्व गुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी की भी व्युच्छित्ति हो जाती है।

कृष्ण व नीललेश्यासहित सासादनगुणस्थान में गुणस्थानोक्त ९ तथा देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है। तथैव कापोतलेश्या में भी उदययोग्य ११९ प्रकृति हैं। कापोतलेश्या के असंयतगुणस्थान में नरक व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी की भी व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ- लेश्यामार्गणा में कृष्ण व नीललेश्या में तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके बिना उदययोग्य प्रकृति ११९ हैं। गुणस्थान मिथ्यात्वआदि चार हैं। **अयदोत्ति छल्लेस्साओ** इस वचन से असंयतगुणस्थानपर्यन्त छहलेश्या हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृति और नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृति की है, क्योंकि सासादनगुणस्थानवाला मरणकर नरक नहीं जाता है। मिश्रगुणस्थान में आनुपूर्वी का उदय नहीं है तथा असंयतगुणस्थानवर्ती द्वितीयादि नरकपृथ्वी में उत्पन्न नहीं होते अतः कृष्ण-नीललेश्यारूप नरकगत्यानुपूर्वी की यहीं (मिथ्यात्व में) व्युच्छित्ति कही है।

सासादनगुणस्थान में गुणस्थानोक्त ९ तथा असंयतसम्बन्धी देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है। मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की तथा असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय ४, नरकगति, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये तीन इस प्रकार १२ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है। यहाँ "**भोग पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे**" भोगभूमिया निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टि के कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। इन वचनों के अनुसार यहाँ तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी नहीं कही, क्योंकि असंयतदेव-नारकी, तिर्यञ्चों में उत्पन्न नहीं होते हैं। नरक से आया सम्यग्दृष्टिजीव कर्मभूमि के मनुष्यों में उत्पन्न होता है, यहाँ पर अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त पूर्वभवसम्बन्धी लेश्या रहती है अतः मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय यहाँ असंयतगुणस्थान में पाया जाता है।

तथा मिथ्यात्वगुणस्थान में उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थान में उदयप्रकृति १११, अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थान में उदयप्रकृति ९८, अनुदयप्रकृति २१। असंयतगुणस्थान में उदयप्रकृति ९९, अनुदयप्रकृति २० हैं।

कृष्ण-नील लेश्या में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ११९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	६	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ६ (गुणस्थानोक्त ५+१ नरकगत्यानुपूर्वी)
सासादन	१३	१११	८	१३(४ अनन्तानुबन्धीकषाय, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, देवद्विक, देवायु और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)
मिश्र	१	९८	२१	२१(१३+८+१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१२	९९	२०	२०(२१+१=२२-सम्यक्त्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी) १२(अप्रत्याख्यानकषाय ४, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, अनादेय, नरकगति, नरकायु)

कापोतलेश्या में उदययोग्य ११९ प्रकृति हैं तथा गुणस्थान आदि के ४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ५ प्रकृति की, उदयप्रकृति ११७, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त ९ प्रकृति तथा देवगति, देवगत्यानुपूर्वी और देवायु इन १२ प्रकृति की, उदयप्रकृति १११, अनुदयप्रकृति ८। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९८, अनुदयप्रकृति २१। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय ४, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्च व मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भगादि तीन इन १४ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १०१, अनुदयप्रकृति १८ हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषीदेवों के अपर्याप्तकाल में कृष्ण, नील और कापोतलेश्या ही है तथा पर्याप्तकाल में तेजोलेश्या का जघन्यअंश पाया जाता है। अशुभलेश्या का धारक असंयत भवनत्रिक में उत्पन्न नहीं होता अतः देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायुकी उदयव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थान में ही होती है।

कापोतलेश्या में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ११९, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११७	२	२ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) ५ (गुणस्थानोक्त)
सासादन	१२	१११	८	८ (५+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) १२(९ गुणस्थानोक्त, देवद्विक देवायु)
मिश्र	१	९८	२१	२१(१२+८+२ मनुष्य व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१४	१०१	१८	१८(२१+१=२२-४, नरकगत्यानुपूर्वी बिना तीन आनुपूर्वी और सम्यक्त्व) १४(१२ कृष्ण व नीललेश्यासम्बन्धी सन्दृष्टिवत् + नरक व तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी)

आगे तीन शुभलेश्याओं में उदयादि का कथन करते हैं-

तेउतिये सगुणोघं णादाविगिविगलथावरचउक्कं।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे॥३२७॥

अर्थ- तेजोआदि तीन शुभलेश्याओं में अपने-अपने गुणस्थान के समान १२२ प्रकृति में से आतप, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रय, स्थावरादि ४, नरकद्विक, नरकायु, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी इन १३

प्रकृति का उदय न होने से उदययोग्य १०९ प्रकृति हैं। उसमें भी मिथ्यादृष्टिआदि दो गुणस्थानों में मनुष्यगत्यानुपूर्वी का भी उदय नहीं है।

विशेषार्थ- पीत (तेजो) और पद्मलेश्या में तीर्थङ्करप्रकृतिबिना उदययोग्य १०८ प्रकृति हैं, आदि के सात गुणस्थान हैं। यहाँ पर मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति १ मिथ्यात्वप्रकृतिकी, उदयप्रकृति १०३, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और "**णराणू ण मिच्छदुगे**" इस वचन से मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृति का। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धी की कषाय ४, उदयप्रकृति १०२, अनुदयप्रकृति ६। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छित्ति सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की, उदय ९८ प्रकृति का, अनुदयप्रकृति १०। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अप्रत्याख्यानकषाय ४, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये १३ हैं, उदयप्रकृति १०० और अनुदयप्रकृति ८ हैं। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति प्रत्याख्यान की कषाय ४, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, उद्योत, नीचगोत्र ये आठ, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २१ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धिआदि तीन, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति २७। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यक्त्व और अन्तिम तीनसंहनन, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३२ हैं।

पीत (तेज) और पद्मलेश्या में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति १०८, गुणस्थान १ से ७ तक

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	५	५ (मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी) १ (सम्यग्मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	६	४ (अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया)
मिश्र	१	९८	१०	१० (६+४+देवगत्यानुपूर्वी-सम्यग्मिथ्यात्व) १ (सम्यग्मिथ्यात्व) है।असंज्ञी के द्रव्यमन भी नहीं होता, किन्तु केवली के द्रव्यमन है। अतः वे असंज्ञी नहीं हैं।
असंयत	१३	१००	८	८ (१०+१=११-मनुष्य-देवगत्यानुपूर्वी, सम्यक्त्व) १३ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय, देवद्विक, देवायु, वैक्रियकद्विक, मनुष्यगत्या-नुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)
देशसंयत	८	८७	२१	८ (गुणस्थानोक्त, गाथा २६४ की सन्दृष्टि)

प्रमत्त	५	८१	२७	२७(२१+८=२९-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६४ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३२	४ (गुणस्थानोक्त,गाथा २६४ की सन्दृष्टिअनुसार)

शुक्ललेश्या में उदययोग्यप्रकृति १०९ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त १३ हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्वप्रकृति की, उदयप्रकृति १०३, अनुदय सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थङ्कर, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृति का है। सासादनगुणस्थान में व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति पीत, पद्मलेश्यावत् १०२। अनुदय पीत, पद्मलेश्या की अपेक्षा यहाँ तीर्थङ्करप्रकृति सर्वत्र अनुदयरूप होने से अनुदयप्रकृति अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त एक-एक अधिक होती जाने से सासादनगुणस्थान में ७ प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति ९८, अनुदयप्रकृति ११। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १३, उदयप्रकृति १००, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २२। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनदुयप्रकृति २८। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३३ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति गुणस्थानोक्त ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति गुणस्थानोक्त में से १३ कम जानना। क्योंकि शुक्ललेश्या में मूल में ही उदययोग्य १३ प्रकृतियाँ कम की हैं अत: यहाँ ३७ प्रकृति अनुदयरूप है। यह १३ प्रकृति कम का क्रम आगे के गुणस्थानों में सर्वत्र जानना। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४३। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४९। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ५०। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ५२। सयोगकेवलीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति ६७ जानना।

शुक्ललेश्या में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति १०९, गुणस्थान १३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१	१०३	६	६ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थंकर) १ (मिथ्यात्व)
सासादन	४	१०२	७	४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)

मिश्र	१	९८	११	११(७+४+१ देवगत्यानुपूर्वी-१सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	९	९ (११+१=१२-३ सम्यक्त्व, देव-मनुष्यगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८७	२२	८ (गुणस्थानोक्त गाथा२६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	२८	२८(२२+८=३०-२ आहारकद्विक) ५ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३३	४ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	३७	६ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४३	६ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४९	१ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५०	२ (गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
क्षीणमोह	१६	५७	५२	१६(गुणस्थानोक्त गाथा २६३ के अनुसार)
सयोगकेवली	४२	४२	६७	६७(५२+१६=६८-१ तीर्थंकर)

"इति लेश्यामार्गणा"

❋ ❋ ❋

अथ भव्य-सम्यक्त्वमार्गणा

भव्विदरुवसमवेदगखइये सगुणोघमुवसमे खइये।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥

खाइयसम्मो देसो णर एव जदो तहिं ण तिरियाऊ।
उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्हि वोच्छेदो ॥३२९॥

अर्थ- भव्य-अभव्य, उपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व मार्गणा में अपने-अपने गुणस्थानवत् कथन जानना, किन्तु विशेषता यह है कि उपशम व क्षायिकसम्यक्त्व में सम्यक्त्वप्रकृति का उदय नहीं है तथा उपशमसम्यक्त्व में तीन (नरक तिर्यञ्च-मनुष्य) गत्यानुपूर्वी और आहारकद्विक ये पाँच प्रकृति उदययोग्य नहीं हैं और देशसंयतगुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होता है (क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि भोगभूमिज तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है वहाँ पर देशसंयम नहीं है) इसलिए देशसंयतगुणस्थान में तिर्यञ्चायु-उद्योत और तिर्यञ्चगति इन तीनों का उदय नहीं है। इस कारण

इन तीनों की उदयव्युच्छित्ति असंयतगुणस्थान में हो जाती है। **सेसाणं सगुणोघं** गाथा २३० के इन वचनों के अनुसार शेष तीन (सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व) में अपने-अपने गुणस्थान के समान उदयादिकी रचना जानना।

विशेषार्थ- भव्यमार्गणा में गुणस्थानवत् उदययोग्यप्रकृति १२२ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्व से अयोगीपर्यन्त १४ हैं तथा उदयव्युच्छित्ति-उदय व अनुदयसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थान के समान ही जानना। अभव्यमार्गणा में उदययोग्य प्रकृति ११७ और गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही होता है।

सम्यक्त्वमार्गणा में सम्यक्त्वी के उदययोग्यप्रकृति १०४ हैं, किन्तु यहाँ **''णादि-तियाणूयहारदुगं''** इस वचन से उपशमसम्यक्त्व में नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा सम्यक्त्वबिना १०० प्रकृति उदययोग्य है, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यक्त्व में नरक तिर्यञ्च व मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होता कारण कि जिसने पहले देवायु का बन्ध कर लिया है उसके उपशमश्रेणी से उतरते समय यदि अपूर्वगुणस्थानपर्यन्त मरण हो तो वह मरकर असंयतगुणस्थानवर्ती देव ही होता है तथा द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में तो देवायु के बिना अन्य तीन आयु का सत्त्व ही नहीं है, क्योंकि द्वितीयोपशमसम्यक्त्व श्रेणी के सम्मुख सातिशयअप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव के ही स्वीकार किया गया है तथा अणुव्रत व महाव्रत देवायुबिना अन्य आयु को बाँधने वाले जीवों के नहीं होते हैं।[1] इसलिए द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में देवगत्यानुपूर्वी बिना तीनों आनुपूर्वी का उदय नहीं है। उपशमसम्यक्त्व में गुणस्थान असंयतादि आठ होते हैं। असंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, देव-नरकआयु, नरक-देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअङ्गोपाङ्ग, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति इन १४ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति १००, अनुदय नहीं है नरकगति और नरकायु का उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्व की अपेक्षा ही जानना। देशसंयतगुणस्थान में प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, तिर्यञ्चायु,

---

१. **शंका** - गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा ३२९ में लिखा है कि देवायु का बंध बगैर अणुव्रत महाव्रत नहीं पले। सो कैसे?

समाधान - नारकी जीवों के तो नित्य अशुभ लेश्या रहती है, इसलिए वे अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकते। देवों और भोगभूमिया मनुष्यों का आहार नियत है, इसलिये वे भी अणुव्रत या महाव्रत नहीं पालन कर सकते। यद्यपि वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि और अत्यधिक शक्ति वाले होते हैं तथापि वे संयम या संयमासंयम नहीं धारण कर सकते, क्योंकि उनके आहार करने की पर्याय नियत होने से वे आहार संबंधी संयम नहीं कर सकते।

अतः **मात्र** कर्मभूमिया मनुष्य संयम धारण कर सकते हैं। किन्तु जिन मनुष्यों ने नारक, तिर्यञ्च तथा मनुष्य आयु का बंध कर लिया है वे संयम या संयमासंयम धारण नहीं कर सकते, क्योंकि नरकायु आदि का बंध हो जाने पर उनके अणुव्रत या महाव्रत को ग्रहण करने की बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। कहा भी है -

''देवगतिव्यतिरिक्तगतित्रयसम्बद्धायुषोपलक्षितानामणुव्रतोपादानबुद्ध्यनुत्पत्तेः।'' धवल पु. १ पृ. ३२६।

अर्थ - देवगति को छोड़कर शेष तीन गति सम्बन्धी आयुबन्ध से युक्त जीवों के अणुव्रत ग्रहण करने की बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती है।

उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति इन आठ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति यहाँ भी तिर्यञ्चायु आदि चार प्रकृति का उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्व की अपेक्षा जानना, उदय ८६ प्रकृति का, अनुदयप्रकृति १४ हैं। प्रमत्तगुणस्थान में स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा की व्युच्छित्ति है, क्योंकि आहारकद्विक तो उपशमसम्यक्त्व में मूल में उदययोग्य नहीं है। प्रमत्तगुणस्थान में उदयप्रकृति ७८, अनुदयप्रकृति २२। अप्रमत्तगुणस्थान में अन्तिम तीनसंहनन की ही व्युच्छित्ति है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व में सम्यक्त्वप्रकृति का मूल में ही उदय नहीं है, उदययोग्य प्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति २५। अपूर्वकरणगुणस्थान में हास्यादि ६ नोकषाय की व्युच्छित्ति, उदय ७२ प्रकृति का, अनुदय २८ प्रकृति का। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में तीन वेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया इन ६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति, ६६ प्रकृति का उदय, ३४ प्रकृति का अनुदय है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में सञ्ज्वलन लोभ की व्युच्छित्ति, उदय ६० प्रकृति का और अनुदय ४० प्रकृति का है। उपशान्तमोहगुणस्थान में वज्रनाराच और नाराच इन दो संहननों की व्युच्छित्ति, उदय ५९ प्रकृति का तथा अनुदय ४१ का है।

उपशमसम्यक्त्व में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि—
उदययोग्यप्रकृति १००, गुणस्थान ८

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१४	१००	०	१४(गुणस्थानोक्त १७-३ मनुष्य-तिर्यञ्च व नरकगत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८६	१४	८ (प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, तिर्यञ्चआयु, तिर्यञ्चगति, उद्योत और नीचगोत्र)
प्रमत्त	३	७८	२२	३ (स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा)
अप्रमत्त	३	७५	२५	३ (अर्धनाराच-कीलक व असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	२८	६ (हास्य-रति-अरति-शोक-भय और जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	३४	६ (तीनवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४०	१ (सञ्ज्वलन (सूक्ष्म) लोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	४१	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)

वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व में उदययोग्य प्रकृति १०६ हैं क्योंकि यहाँ उदययोग्य १२२ प्रकृति में से आदि के तीनगुणस्थानों में क्रम से व्युच्छिन्न होने वाली ५-९ व १ प्रकृति तथा तीर्थङ्करप्रकृति इन १६ का उदय नहीं है। गुणस्थान असंयतगुणस्थान से अप्रमत्तपर्यन्त ४ हैं। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त १७, क्योंकि कृतकृत्यवेदकवाले जीव का गमन चारों गतियों में सम्भव है इसलिए चारों गत्यानुपूर्वी की व्युच्छित्ति होती है। उदयप्रकृति १०४, अनुदयप्रकृति २(आहारकद्विक)। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति १९। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति गुणस्थानोक्त ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति २५। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४ तथा उपरितनगुणस्थानों में व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियाँ क्रम से ६+६+१+२+१६+३० एवं तीर्थङ्कर बिना ११ इसप्रकार सर्वप्रकृति ७६ हैं। यहाँ उदय ७६ प्रकृति का एवं अनुदय ३० प्रकृति का है।

वेदकसम्यक्त्व में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि--
उदययोग्य प्रकृति १०६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	१७	१०४	२	२ (आहारकद्विक) १७ (गुणस्थानोक्त)
देशसंयत	८	८७	१९	८ (पूर्वसन्दृष्टि में कथित)
प्रमत्त	५	८१	२५	२५(१९+८=२७-२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	७६	७६	३०	व्यु.७६ अप्रमत्तगुणस्थान से अयोगीपर्यन्त व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियाँ क्रम से ४+६+६+१+२+१६+३०+तीर्थंकर-बिना ११=७६

क्षायिकसम्यक्त्व में भी उदययोग्य १०६ प्रकृति हैं क्योंकि यहाँ आदि के तीन गुणस्थानों में व्युच्छिन्न होने वाली १५ तथा सम्यक्त्वप्रकृति, इन १६ का उदय नहीं है। गुणस्थान असंयत से अयोगीपर्यन्त ११ हैं। यहाँ असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्ति गुणस्थानोक्त १७ तथा तिर्यञ्चायु, उद्योत और तिर्यञ्चगति इन २० प्रकृति की है, क्योंकि देशसंयतगुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दर्शन मनुष्य के ही होता है, तिर्यञ्च के नहीं अतः तिर्यञ्चायु-उद्योत व तिर्यञ्चगति इन तीनप्रकृति का उदय पञ्चमगुणस्थान में नहीं होने से इनकी व्युच्छित्ति चतुर्थगुणस्थान में ही हो गई। असंयतगुणस्थान में उदयप्रकृति १०३, अनुदय आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन तीन प्रकृति का। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति प्रत्याख्यानावरणकषाय ४ और नीचगोत्र, उदयप्रकृति ८३, अनुदयप्रकृति २३। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५,

उदयप्रकृति आहारकद्विकसहित ८०, अनुदयप्रकृति २६। अप्रमत्तगुणस्थान में सम्यक्त्वबिना गुणस्थानोक्त ३ प्रकृति की व्युच्छित्ति, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति ३१। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ३४। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ४०। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ, उदयप्रकृति ६०, अनुदयप्रकृति ४६। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २, उदयप्रकृति ५९, अनुदयप्रकृति ४७। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति १६ प्रकृति की,उदय ५७ प्रकृति का और अनुदय ४९ प्रकृति का है। सयोगकेवली में व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ३०, उदयप्रकृति ४२, अनुदयप्रकृति तीर्थङ्करबिना ६४, क्योंकि यहाँ तीर्थङ्करप्रकृति का उदय पाया जाता है। अयोगकेवली में व्युच्छिन्नप्रकृति १२, उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ९४ जानना।

क्षायिकसम्यक्त्व में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्य प्रकृति १०६, गुणस्थान ११

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
असंयत	२०	१०३	३	३ (आहारकद्विक व तीर्थंकर) २० (१७ तो गाथा २६३ के अनुसार एवं तिर्यञ्चायु, उद्योत, तिर्यञ्चगति)
देशसंयत	५	८३	२३	५ (प्रत्याख्यानावरणकषाय ४, नीचगोत्र)
प्रमत्त	५	८०	२६	५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि के अनुसार) २६(२३+५=२८-२ आहारकद्विक)
अप्रमत्त	३	७५	३१	३ (अन्तिम तीन संहनन)
अपूर्वकरण	६	७२	३४	६ (हास्यादि नोकषाय)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४०	६ (तीनवेद, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	४६	१ (सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	४७	२ (वज्रनाराच व नाराचसंहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	४९	१६(गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	३०	४२	६४	६४(४९+१६=६५-१ तीर्थंकर)
अयोगकेवली	१२	१२	९४	३०(गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) में मिश्रगुणस्थानवत् उदययोग्यप्रकृति १०० हैं तथा गुणस्थान एक मिश्र ही है। सासादनसम्यक्त्व में सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व आहारकद्विक और तीर्थङ्कर तथा नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ बिना उदययोग्यप्रकृति १११ हैं, गुणस्थान एक सासादन ही है। मिथ्यात्व में सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन ५ प्रकृतियों के बिना उदययोग्य ११७ प्रकृति तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

"इति भव्य-सम्यक्त्वमार्गणा"

❋ ❋ ❋

अथ सञ्ज्ञीमार्गणा

अथानन्तर सञ्ज्ञीमार्गणा में उदयादि का कथन करते हैं-

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्सवि णत्थि तावसाहरणं।
थावरसुहुमिगिविगलं असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं॥३३०॥

वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं।

अर्थ- शेष सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन व मिथ्यात्व इन तीन में अपने-अपने गुणस्थान के समान उदयादि जानना। (इसका कथन सम्यक्त्वमार्गणा में किया जा चुका है।)

सामान्य से उदययोग्य १२२ प्रकृति में से आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रय और तीर्थङ्कर इन ९ प्रकृति बिना सञ्ज्ञीमार्गणा में उदययोग्य प्रकृति ११३ हैं। असञ्ज्ञी के मनुष्यगति व मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, वैक्रियिकषट्क, आदि के पाँच संहनन, आदि के पाँच संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगादि तीन, नरकादि तीन आयु ये २६ प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं। इसकारण सामान्य से मिथ्यात्वगुणस्थान सम्बन्धी ११७ प्रकृतियों में से उपर्युक्त २६ प्रकृतियाँ घटाने पर उदययोग्य ९१ प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ- सञ्ज्ञीमार्गणा में उदययोग्य प्रकृति ११३, गुणस्थान मिथ्यात्व से क्षीणमोहपर्यन्त १२। सयोगकेवली और अयोगकेवली भी भावमनरहित हैं इसलिए सञ्ज्ञी नहीं हैं तथा तिर्यञ्चों के बिना अन्यत्र असञ्ज्ञीपना नहीं पाया जाता है। अतः सयोग व अयोगकेवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति २(मिथ्यात्व और अपर्याप्त), उदयप्रकृति १०९, अनुदयप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और आहारकद्विक ये चार। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति अनन्तानुबन्धीकषाय ४, उदयप्रकृति १०६, नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होने से अनुदयप्रकृति ७। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १ सम्यग्मिथ्यात्व, उदयप्रकृति १००, तिर्यञ्च-मनुष्य व देवगत्यानुपूर्वी का उदय न होने से तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का उदय है अतः अनुदयप्रकृति १३ हैं। असंयतगुणस्थान में व्युच्छित्तिरूपप्रकृति १७, उदयप्रकृति नरकादि चारों गत्यानुपूर्वी और सम्यक्त्वसहित १०४, अनुदयप्रकृति ९। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २६। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३२। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६, अनुदयप्रकृति ३७। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४१। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ६ प्रकृति की व्युच्छित्ति, ६६ प्रकृति का उदय, ४७ प्रकृति का अनुदय है। सूक्ष्मसाम्पराय में सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलनलोभ की व्युच्छित्ति, ६० प्रकृति का उदय और ५३ प्रकृतियों का अनुदय है। उपशान्तमोह गुणस्थान में २ प्रकृति की व्युच्छित्ति, ५९ प्रकृति का उदय तथा ५४ प्रकृति का अनुदय जानना। क्षीणमोहगुणस्थान में गुणस्थानोक्त १६ तथा सयोगी व अयोगीगुणस्थान सम्बन्धी ४२ प्रकृतियों में से तीर्थङ्करबिना शेष ४१ इस प्रकार ५७ प्रकृति की व्युच्छित्ति, ५७ प्रकृति का ही उदय और ५६ प्रकृति अनुदयरूप जानना।

सञ्ज्ञीमार्गणा में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि –
उदययोग्यप्रकृति ११३, गुणस्थान १२।

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	२	१०९	४	४ (सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व, आहारकद्विक) २ (मिथ्यात्व, अपर्याप्त)
सासादन	४	१०६	७	७ (४+२+१ नरकगत्यानुपूर्वी) ४ (अनन्तानुबन्धीकषाय)
मिश्र	१	१००	१३	१३(७+४=११+३ गत्यानुपूर्वी- १ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१७	१०४	९	१७(गुणस्थानोक्त गाथा २६४ के अनुसार)
देशसंयत	८	८७	२६	८ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३२	३२(२६+८=३४-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अप्रमत्त	४	७६	३७	४ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

अपूर्वकरण	६	७२	४१	६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	४७	६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५३	१ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
उपशान्तमोह	२	५९	५४	२ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
क्षीणमोह	५७	५७	५६	

नोट-शङ्का- मनसहित होने के कारण सयोगकेवली भी सञ्ज्ञी होते हैं ?

समाधान- सयोगकेवली सञ्ज्ञी नहीं होते, क्योंकि ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म से रहित होने के कारण केवली के मन के अवलम्बन से बाह्य अर्थ का ग्रहण नहीं होता अत: केवली को सञ्ज्ञी नहीं कह सकते।

शङ्का- तो केवली असञ्ज्ञी रहे आवें ?

समाधान- केवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं, क्योंकि जिन्होंने समस्त पदार्थों का साक्षात् कर लिया है उन्हें असञ्ज्ञी मानने में विरोध आता है।

शङ्का - केवली असञ्ज्ञी होते हैं, क्योंकि वे मन की अपेक्षा के बिना ही विकलेन्द्रिय जीवों के समान बाह्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं?

समाधान- यदि मन की अपेक्षा न करके ज्ञान की उत्पत्ति मात्र का आश्रय करके असञ्ज्ञीपना सम्भव होता, किन्तु ऐसा तो है नहीं।

शङ्का- असञ्ज्ञी के विषय में ऐसा क्यों कहा जाता है?

समाधान- असञ्ज्ञीजीवों के मन का अभाव होने से अतिशय बुद्धि का भी अभाव है, किन्तु केवली के मन का अभाव होने से अतिशयबुद्धि के अभाव का दोष नहीं है अर्थात् केवली के मन का अभाव होते हुए भी अतिशयबुद्धि पाई जाती है अत: केवली असञ्ज्ञी भी नहीं हैं।

क्षायोपशमिक ज्ञान अवश्य ही कहीं पर (सञ्ज्ञी जीवों में) मन से उत्पन्न होता है इसलिए मन का अभाव होने से विशेष क्षायोपशमिक ज्ञान का अभाव सिद्ध होगा न कि केवलज्ञान का अभाव सिद्ध होगा अर्थात् केवली के मन का अभाव होने से अतिशयरूप केवलज्ञान का सद्भाव पाया जाता है।

असञ्ज्ञीमार्गणा में मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र, देवगति, नरकगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, आदि के पाँच संहनन, आदि के ५ संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगादि ३, नरक-मनुष्य और देवायु इन २६ प्रकृतियों को मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी ११७ उदययोग्य प्रकृतियों में से घटाने पर शेष ९१ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन। यहाँ

मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्न प्रकृति गुणस्थानोक्त ५ तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दु:स्वर, अप्रशस्तविहायोगति इस प्रकार १३ (क्योंकि स्त्यानगृद्धिआदि प्रकृतियों का उदय पर्याप्तअवस्था में होता है, किन्तु सासादनगुणस्थान असञ्ज्ञी के पर्याप्तअवस्था में नहीं होता अत: इनकी भी व्युच्छित्ति मिथ्यात्वगुणस्थान में ही हो जाती है।) मिथ्यात्वगुणस्थान में उदयप्रकृति ९१, अनुदय का अभाव है। सासादनगुणस्थान में गुणस्थानोक्त ९ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति, उदय ७८ प्रकृति का और अनुदय १३ प्रकृति का है।

असञ्ज्ञीजीवों के उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ९१, गुणस्थान २

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	१३	९१	०	१३ (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दु:स्वर और अप्रशस्तविहायोगति)
सासादन	९	७८	१३	९ गुणस्थानोक्त(गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)

॥ इति सञ्ज्ञीमार्गणा ॥

❋ ❋ ❋

अथ आहारमार्गणा

अब आहारमार्गणा में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदय कहते हैं-

आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥
कम्मे व अणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

अर्थ- आहारमार्गणा में आहारकअवस्था में उदयादि का कथन सामान्य से गुणस्थान के समान ही जानना, किन्तु विशेष यह है कि यहाँ चारों आनुपूर्वियों का उदय नहीं है अत: उदययोग्य प्रकृति ११८ ही हैं तथा अनाहारकअवस्था में कार्मणकाययोग के समान ८९ प्रकृतियों का उदय है। इस प्रकार मार्गणास्थानों में कर्मप्रकृतियों के उदयादि का कथन (अपने भाई) बलदेव और माधवचन्द्र से पूजित

(आचार्य) नेमिचन्द्र (सिद्धान्तचक्रवर्ती) ने कहा है। (यहाँ संस्कृत टीकाकार ने **बलमाहवचंदच्चियणेमि-चंदेण** इस पद का बलभद्र और माधव (नारायण) से पूजित नेमिनाथ तीर्थङ्करने कहा है, ऐसा भी अर्थ किया है।)

विशेषार्थ- आहारमार्गणा में चारआनुपूर्वी के बिना उदययोग्य ११८ प्रकृतियाँ हैं। गुणस्थान आदि के १३ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ११३, अनुदयप्रकृति ५। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ९, उदयप्रकृति १०८ और अनुदयप्रकृति १० हैं। मिश्रगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति १००, और अनुदयप्रकृति १८। असंयतगुणस्थान में चार आनुपूर्वी बिना व्युच्छित्ति १३ प्रकृति की, उदय १०० प्रकृति का, अनुदय १८ प्रकृति का। देशसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ८, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति ३१। प्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५, उदयप्रकृति ८१, अनुदयप्रकृति ३७। अप्रमत्तगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४, उदयप्रकृति ७६ और अनुदयप्रकृति ४२ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ७२, अनुदयप्रकृति ४६ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ६, उदयप्रकृति ६६, अनुदयप्रकृति ५२। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १, उदयप्रकृति ६० और अनुदयप्रकृति ५८ हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में व्युच्छित्ति २ प्रकृति की, उदय ५९ प्रकृति का, अनुदय ५९ प्रकृति का। क्षीणमोहगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १६, उदयप्रकृति ५७, अनुदयप्रकृति ६१। सयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ४२, उदयप्रकृति ४२ और अनुदयप्रकृति ७६ जानना।

आहारमार्गणा में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ११८, गुणस्थान १३

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	५	११३	५	अनु. ५ (सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर) व्यु. ५ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
सासादन	९	१०८	१०	९ (गाथा २६४ की सन्दृष्टि अनुसार)
मिश्र	१	१००	१८	१८(१०+९=१९-१ सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	१३	१००	१८	१८(१८+१=१९-१ सम्यक्त्व) १३(गुणस्थानोक्त १७-४ गत्यानुपूर्वी)
देशसंयत	८	८७	३१	८ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
प्रमत्त	५	८१	३७	३७(३१+८=३९-२ आहारकद्विक) ५ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)

अप्रमत्त	४	७६	४२	४ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	६	७२	४६	६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	६	६६	५२	६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	५८	१ (सूक्ष्मरूप सञ्ज्वलन लोभ)
उपशान्तमोह	२	५९	५९	२ (वज्रनाराच व नाराच संहनन)
क्षीणमोह	१६	५७	६१	१६ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	४२	४२	७६	७६ (६१+१६=७७-१ तीर्थंकर)

अनाहारकमार्गणा में उदययोग्य प्रकृति ८९, गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सयोगी, अयोगी ये ५ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ३, उदयप्रकृति ८७, अनुदयप्रकृति २। सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १०, उदयप्रकृति ८१, अनुदय प्रकृति ८। असंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति ५१, उदयप्रकृति ७५, अनुदयप्रकृति१४। सयोगकेवलीगुणस्थान[1] में उदयव्युच्छित्ति साता-असाता में से कोई एक, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, तैजस-कार्मण, वर्णादिचार, अगुरुलघु इन १३ प्रकृति की, उदयप्रकृति २५, अनुदयप्रकृति ६४। अयोगीगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति १२ (गाथा २६३ की सन्दृष्टि अनुसार), उदयप्रकृति १२ और अनुदयप्रकृति ७७ हैं।

अनाहारक में उदयव्युच्छित्ति-उदय-अनुदयसम्बन्धी सन्दृष्टि-
उदययोग्यप्रकृति ८९, गुणस्थान ५

गुणस्थान	उदय-व्युच्छित्ति	उदय	अनुदय	विशेष
मिथ्यात्व	३	८७	२	२ (सम्यक्त्व और तीर्थंकर) ३ (मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त)
सासादन	१०	८१	८	८ (३+२=५+३ नरकद्विक-नरकायु)
असंयत	५१	७५	१४	१४ (१०+८=१८-४ सम्यक्त्व, मनुष्य-तिर्यञ्च और देवगत्यानुपूर्वी) ५१ (गाथा ३१८-३१९ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगी	१३	२५	६४	६४ (१४+५१=६५-१ तीर्थंकर) १३ (साता-असाता में से एक, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु और वर्णादि चार)
अयोगी	१२	१२	७७	

॥ इति उदयप्रकरण समाप्त ॥

१. सयोगकेवली के अनाहारकअवस्था केवलीसमुद्घात में होती है, किन्तु वहाँ उदयव्युच्छित्ति किसी भी प्रकृति की नहीं होती है।

अथ सत्त्वप्रकरणम्

आगे प्रकृतियों के सत्त्व का निरूपण करते हुए सर्वप्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्व का वर्णन करते हैं-

तित्थाहारा जुगवं, सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए।
तस्सत्तिकम्मियाणं, तग्गुणठाणं ण संभवदि॥३३३॥

अर्थ - मिथ्यात्वगुणस्थान में जिसके तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व है उसके आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता, तथा जिसके आहारकद्विक का सत्त्व होता है उसके तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है। जिसके आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति का युगपत् सत्त्व पाया जाता है उसके मिथ्यात्वगुणस्थान नहीं होता है। अत: मिथ्यात्वगुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति का युगपत् सत्त्व न होकर एक का ही सत्त्व रहता है तथा नानाजीवों की अपेक्षा दोनों का सत्त्व पाया जाता है। इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में १४८ प्रकृतियों का सत्त्व नानाजीवों की अपेक्षा होता है। सासादनगुणस्थान में एक जीव अथवा नानाजीवों की अपेक्षा क्रम से या युगपत् तीर्थङ्कर और आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होने से १४५ प्रकृति सत्त्वयोग्य हैं। मिश्र गुणस्थान में एक तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व न होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है, क्योंकि इन प्रकृतियों का जिनके सत्त्व पाया जावे उनके वह गुणस्थान नहीं होता।[१]

---

१. **शंका** - दूसरे गुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृति, आहारकशरीर व आहारक अंगोपांग का सत्त्व नहीं है और तीसरे मिश्रगुणस्थान में आहारकशरीर व आहारक अंगोपांग का सत्त्व बतलाया है, सो किस अपेक्षा से बताया है ?

समाधान - तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध सम्यग्दृष्टि के होता है और इस प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता अर्थात् सम्यग्दृष्टि ही बना रहता है। यदि तीर्थंकरप्रकृति से पूर्व उस जीव ने दूसरे या तीसरे नरक की आयु का बंध कर लिया है तो ऐसा जीव दूसरे या तीसरे नरक में उत्पन्न होने से एक अन्तर्मुहूर्तपूर्व और उत्पन्न होने के एक अन्तर्मुहूर्त पश्चात् तक मिथ्यादृष्टि होता है। केवल ऐसे जीव के मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृति का सत्त्व पाया जाता है। नरक में उत्पन्न होने वाले जीव के दूसरे या तीसरे गुणस्थान में मरण नहीं है क्योंकि नरक में दूसरा या तीसरा गुणस्थान अपर्याप्त अवस्था में नहीं पाया जाता अत: तीर्थंकरप्रकृति के सत्त्व वाला जीव दूसरे या तीसरे गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है। यही कारण है कि दूसरे व तीसरे गुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृति के सत्त्व का निषेध किया है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व से गिरकर ही दूसरे गुणस्थान को जाता है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि के आहारकद्विक का बंध नहीं होता है। जिस जीव के आहारकद्विक का सत्त्व है वह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता क्योंकि आहारकद्विक की उद्वेलना के बिना सम्यक्त्व व मिश्र प्रकृति की स्थिति प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य नहीं होती। तेरह उद्वेलन प्रकृतियों में सर्वप्रथम आहारकद्विक की उद्वेलना होती है। अत: दूसरे गुणस्थान में आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता। अथवा आहारकद्विक के सत्त्ववाला जीव सम्यक्त्व से गिरकर दूसरे गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता, ऐसा स्वभाव है और स्वभाव तर्क का विषय नहीं है। आहारकद्विक की उद्वेलना के बिना भी आहारकद्विक के सत्त्ववाला मिथ्यादृष्टि जीव मिश्रगुणस्थान को जा सकता है अत: तीसरे गुणस्थान में आहारकद्विक का सत्त्व कहा है। (पं. रतनचन्द्र मुख्तार व्य. कृति, ११६)

अब आयुबन्ध होने पर सम्यक्त्व और अणुव्रत-महाव्रत सम्बन्धी नियम कहते हैं-

चत्तारिवि खेत्ताइं, आउगबंधेण होदि सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहदि देवाउगं मोत्तुं॥३३४॥

अर्थ - चारों ही गतियों में किसी भी आयु का बन्ध होने पर सम्यक्त्व होता है, किन्तु देवायु के बिना अन्य तीनआयु का बन्ध करने वाला अणुव्रत-महाव्रत धारण नहीं कर सकता।

भावार्थ - यदि चारों आयु में से किसी भी आयु का बन्ध पहले हुआ है तो सम्यक्त्व होने में कोई बाधा नहीं है, किन्तु यदि पहले नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यायु में से किसी एक आयु का बन्ध हुआ है तो तिर्यञ्च तो अणुव्रत तथा मनुष्य अणुव्रत और महाव्रत धारण करने में समर्थ नहीं है। यदि देवायु पहले बँधी है तो अणुव्रत-महाव्रत धारण में कोई बाधा नहीं है।

णिरियतिरिक्खसुराउग-सत्ते ण हि देससयलवदखवगा।
अयदचउक्कं तु अणं, अणियट्टीकरणचरिमम्हि॥३३५॥

जुगवं संजोगित्ता, पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं।
वोलिय कमसो मिच्छं, मिस्सं सम्मं खवेदि कमे॥३३६॥जुम्मं॥

अर्थ - नरक,तिर्यञ्च तथा देवायु का सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत-महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती है। असंयतादि चार गुणस्थानवाले जीव अनिवृत्तिकरणपरिणाम के चरमसमय में अनन्तानुबन्धी की युगपत् विसंयोजना करते हैं। पुनः तीन करण करके अनिवृत्तिकरण काल के बहुभाग बीत जानेपर शेष संख्यातवें एकभाग में क्रम से मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति का क्षय करते हैं। इस प्रकार सात प्रकृतियों के क्षय का क्रम है॥३३५-३३६॥

विशेषार्थ - यहाँ तीन गुणस्थानों में प्रकृतियों का सत्त्व पूर्वोक्त ही समझना। असंयतगुणस्थान से अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त उपशमसम्यग्दृष्टि तथा क्षयोपशमसम्यग्दृष्टि, इन दोनों के असंयतगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी आदि की उपशमरूप सत्ता होने से १४८ प्रकृतियों का सत्त्व है। देशसंयतगुणस्थान में नरकायु न होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है। प्रमत्तगुणस्थान में नरक तथा तिर्यञ्चायु का सत्त्व नहीं है अतः यहाँ १४६ प्रकृति का ही सत्त्व है। तथैव अप्रमत्तगुणस्थान में भी १४६ प्रकृति का ही सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धी चार कषाय,मिथ्यात्व,सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सातप्रकृतियों का सत्त्व असंयतादि गुणस्थानों में नहीं है अतः क्षायिक सम्यग्दृष्टि के इन गुणस्थानों में सात-सात प्रकृतियों को कम करके सत्त्व पाया जाता है।

विद्यमान जिस आयु को भोगाजावे वह भुज्यमान और आगामी काल के लिए जिसका बन्ध किया जावे वह बध्यमान कहलाती है। इन दोनों की अपेक्षा से नरकायु का सत्त्व होने पर जीव देशव्रत धारण नहीं कर सकता तथा तिर्यञ्चायु का सत्त्व होने पर महाव्रत नहीं होता, देवायु का सत्त्व होने पर क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता तथा अनन्तानुबन्धीकषाय चार और दर्शनमोहनीय की तीन इस प्रकार इन ७ प्रकृतियों की सत्ता का नाश असंयतादि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है।

अब इनके (उपर्युक्त ७ प्रकृतियों के) नाश का क्रम कहते हैं-

इन सप्तप्रकृतियों का नाश करते हुए सर्वप्रथम तीनकरण करता है उनमें से अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्तकाल के अन्तिम समय में अनन्तानुबन्धी चार कषाय की युगपत् विसंयोजना करता है अर्थात् अप्रत्याख्यान आदि १२ कषाय और ९ नोकषाय में से किन्हीं पाँच कषायरूप परिणमाता है। इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके पीछे दर्शनमोह के नाश के लिए उद्यम करके पहले अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन करण करता है। यहाँ अनिवृत्तिकरण का जो अन्तर्मुहूर्तमात्र काल है उसमें संख्यात का भाग देकर उसमें से एक भाग बिना बहुभाग व्यतीत हो जाय तब उस एक भाग के प्रथम समय से क्रम से तीन प्रकृतियों का क्षय करता है। प्रथमसमय में मिथ्यात्वप्रकृति का क्षय करता है पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करता है। इसके अनन्तर सम्यक्त्वप्रकृति का क्षय करता है तब क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त होता है। इसका विशेष कथन लब्धिसार क्षपणासारग्रन्थ में है तथा जयधवल पु० १३ में है।

अब स्वयं नेमिचन्द्राचार्य क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थान में क्षययोग्य प्रकृतियों का क्रम कहते हैं-

सोलट्ठेक्किगिछक्कं, चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं।
खीणे सोलसऽजोगे, बावत्तरि तेरुवत्तंते॥३३७॥

अर्थ - क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थान के ९ भागों में क्रम से १६,८,१,१ और ६ तथा शेष चार भागों में एक-एक प्रकृति की सत्ताव्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में एक प्रकृति की, क्षीणकषाय में १६, सयोगीगुणस्थान में सत्त्वव्युच्छित्ति का अभाव तथा अयोगीगुणस्थान में अन्तिम दो समयों में से द्विचरमसमय में तो ७२ की और चरम समय में १३ प्रकृतियों की सत्त्व से व्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ - यहाँ सम्बन्ध प्राप्त उपशमन और क्षपणविधि कहते हैं, किन्तु उनमें भी सर्वप्रथम उपशमनविधि कहते हैं-

[१] अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों का असंयतसम्यग्दृष्टि से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक चार गुणस्थानों में रहने वाला कोई भी जीव उपशम करने वाला होता है। अपने स्वरूप को छोड़कर अन्यप्रकृतिरूप से रहना अनन्तानुबन्धी का उपशम है और उदय में नहीं आना ही दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम है, क्योंकि उत्कर्षण, अपकर्षण और परप्रकृतिरूप से संक्रमण को प्राप्त और उपशान्त हुई उन तीनप्रकृतियों का अस्तित्व पाया जाता है। अपूर्वकरणगुणस्थान में एक भी कर्म का उपशम नहीं होता, किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थानवालाजीव प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से बढ़ता हुआ एक-एक अन्तर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिखण्ड का घात करता हुआ संख्यातहजार स्थितिखण्डों का घात करता है और उतने ही स्थिति बन्धापसरणों को करता है। तथा एक-एक स्थितिखण्ड के काल में संख्यातहजार अनुभागखण्डों का घात करता है और प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीरूपसे प्रदेशों की निर्जरा करता है तथा जिन अप्रशस्तप्रकृतियों का बन्ध नहीं होता, उनकी कर्मवर्गणाओं को उससमय बँधनेवाली अन्यप्रकृतियों में असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से संक्रमण कर देता है। इस प्रकार अपूर्वकरणगुणस्थान का उल्लंघन करके एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में प्रवेश करके एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पूर्वोक्तविधि से रहता है। तत्पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा बारहकषाय और ९ नोकषाय का अन्तर (करण) करता है। (नीचे के व ऊपर के निषेकों को छोड़कर बीच के कितने ही निषेकों के द्रव्य को निक्षेपण करके बीच के निषेकों में से मोहनीयकर्म के अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।) अन्तरकरणविधि हो जाने पर प्रथमसमय से लेकर ऊपर अन्तर्मुहूर्त जाकर असंख्यातगुणीश्रेणि के द्वारा नपुंसकवेद का उपशम करता है।

शङ्का – उपशम किसे कहते हैं ?

समाधान – उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृतिसंक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात के बिना ही कर्मों के सत्ता में रहने को उपशम कहते हैं।

तदनन्तर एकअन्तर्मुहूर्त जाकर नपुंसकवेद की उपशमविधि के समान ही स्त्रीवेद का उपशम करता है, पुनः एक अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होने पर उसी विधि से पुरुष वेद के (एक समय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्ध को छोड़कर शेष सम्पूर्ण) प्राचीन सत्ता में स्थित कर्म के साथ छह नोकषाय का उपशम करता है। इसके आगे एक समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा पुरुषवेद के नवकसमयप्रबद्ध का उपशम करता है। इसके पश्चात् प्रत्येक समय में असंख्यातगुणीश्रेणी के द्वारा सञ्ज्वलनक्रोध के एक समय कम दो आवली मात्र नवकसमयप्रबद्ध को छोड़कर सत्ता में स्थित पूर्वकर्मों के साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानक्रोध का एकअन्तर्मुहूर्त में युगपत् ही उपशम करता है। इसके पश्चात् एक समय कम दो आवली में सञ्ज्वलनक्रोध के नवकसमयप्रबद्ध का उपशम करता है। तत्पश्चात् प्रतिसमय असंख्यातगुणी

---

१. ध.पु. १५. २१०

श्रेणी के द्वारा संज्वलनमान के एक समय कम दो आवलीमात्र नवकसमयप्रबद्ध को छोड़कर प्राचीनसत्ता में स्थित कर्मों के साथ अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानमान का एक अन्तर्मुहूर्त में उपशम करता है। इसके पश्चात् एक समय कम दो आवली मात्र काल में सञ्ज्वलनमान के नवकसमयप्रबद्ध का उपशम करता है। तदनन्तर प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणी रूप से उपशम करता हुआ, मानत्रय सञ्ज्वलन के नवकसमयप्रबद्ध को छोड़कर सत्ता में स्थित प्राचीनकर्मों के साथ अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमाया का अन्तर्मुहूर्त में उपशम करता है। तत्पश्चात् एक समय कम दोआवलीमात्रकाल में मायासञ्ज्वलन के नवकसमयप्रबद्ध का उपशम करता है। तत्पश्चात् प्रत्येक समय में असंख्यातगुणी श्रेणीरूप से कर्मप्रदेशों का उपशम करता हुआ लोभ वेदक के दूसरे त्रिभाग में सूक्ष्मकृष्टि करता हुआ सञ्ज्वलनलोभ के नवकसमय प्रबद्ध को छोड़कर सत्ता में स्थित प्राचीन कर्मों के साथ प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान लोभ का एक अन्तर्मुहूर्त में उपशम करता है। इस प्रकार सूक्ष्मकृष्टिगत लोभ को छोड़कर और एक समय कम दोआवलीमात्र नवकसमयप्रबद्ध तथा उच्छिष्टावलीमात्र निषेकों को छोड़कर शेष स्पर्द्धकगत सम्पूर्ण बादरलोभ अनिवृत्तिकरण के चरमसमय में उपशान्त हो जाता है। इस प्रकार नपुंसकवेद से लेकर जबतक बादरसञ्ज्वलनलोभ रहता है तब तक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवाला जीव इन पूर्वोक्त प्रकृतियों का उपशम करने वाला होता है। इसके अनन्तरसमय में जो सूक्ष्मकृष्टिगत लोभ का अनुभव करता है और जिसने अनिवृत्ति इस सञ्ज्ञा को नष्ट कर दिया है ऐसा जीव सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती होता है। तदनन्तर वह अपने काल के चरमसमय में सूक्ष्मकृष्टिगत सम्पूर्णलोभ-सञ्ज्वलन का उपशम करके उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ होता है। इस प्रकार मोहनीय की उपशमनविधि का वर्णन संक्षेप से हुआ।

भावार्थ - लब्धिसारादि अन्य ग्रन्थों में द्वितीयोपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में ही बतलाई है, किन्तु यहाँ उपशमनविधि के कथन में उसकी उत्पत्ति असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक किसी भी एक गुणस्थान में बतलाई गई है तथा अनन्तानुबन्धी का अन्य प्रकृति रूप से संक्रमण होने को ग्रन्थान्तरों में विसंयोजना कहा है, किन्तु यहाँ उसे उपशम कहा है। यद्यपि यह केवल शब्दभेद है और स्वयं वीरसेनस्वामी को द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी का अभाव इष्ट है तथापि उसे 'विसंयोजना' शब्द से न कहकर उपशमशब्द के द्वारा कहने से उनका अभिप्राय यह रहा हो कि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त होकर पुनः अनन्तानुबन्धी का बन्ध करने लगता है और जिन कर्मप्रदेशों का उसने अन्य प्रकृतिरूप से संक्रमण किया था, उनका पुनः अनन्तानुबन्धीरूप से संक्रमण हो सकता है। इसप्रकार यद्यपि द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की सत्ता नहीं रहती है, तथापि उसका पुनः सद्भाव होना सम्भव है। अतः द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन न कहकर 'उपशम' शब्द का प्रयोग किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है।

अब क्षपणविधि कहते हैं-

[1]अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन सात प्रकृतियों का असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत जीव नाश करता है।

शङ्का - इन सात प्रकृतियों का युगपत् नाश करता है या क्रम से?

समाधान - नहीं, क्योंकि तीन करण करके अनिवृत्तिकरण के चरमसमय में पहले अनन्तानुबन्धी चार कषाय का युगपत् क्षय करता है। तत्पश्चात् पुनः तीन करण करके उनमें से अधःकरण और अपूर्वकरण को उल्लंघकर अनिवृत्तिकरण के संख्यातभाग व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्व का क्षय करता है। इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त व्यतीत कर सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर सम्यक्प्रकृति का क्षय करता है।

इस प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव सातिशय अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त होकर जिस समय क्षपणविधि प्रारम्भ करता है उस समय अधः प्रवृत्तकरण करके क्रम से अन्तर्मुहूर्त में अपूर्वकरणगुणस्थानवाला होता है। वह एक भी कर्म का क्षय नहीं करता है, किन्तु प्रत्येकसमय में असंख्यातगुणितरूप से कर्मप्रदेशों की निर्जरा करता है। एक-एक अन्तर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिकाण्डकघात करता हुआ अपने काल के भीतर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों का घात करता है। और उतने ही स्थितिबन्धापसरण करता है तथा उनसे संख्यातहजारगुणे अनुभागकाण्डकों का घात करता है, क्योंकि एक अनुभागकाण्डक के उत्कीरण-काल से एक स्थितिकाण्डक का उत्कीरणकाल संख्यातगुणा है, ऐसा सूत्रवचन है। इस प्रकार अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी क्रिया करके और अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में प्रविष्ट होकर, वहाँ पर भी अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात भागों को अपूर्वकरण के समान स्थितिकाण्डकघात आदि विधि से व्यतीत कर अनिवृत्तिकरण के काल में संख्यातभाग शेष रहने पर स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी आतप,उद्योत,स्थावर,सूक्ष्म और साधारण इन सोलहप्रकृतियों का क्षय करता है, पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीत कर प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणसम्बन्धी क्रोध-मान-माया और लोभ इन आठ प्रकृतियों का एक साथ क्षय करता है, यह सत्कर्मप्राभृत का उपदेश है, किन्तु कषायप्राभृत का उपदेश तो इस प्रकार है कि पहले आठ कषायों का क्षय हो जाने के पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्त में पूर्वोक्त १६ कर्मप्रकृतियाँ क्षय को प्राप्त होती हैं। ये दोनों ही उपदेश हमारे लिए तो सत्य हैं, क्योंकि वर्तमान में केवली-श्रुतकेवली का अभाव होने से

---

१. ध.पु. १ पृ. २१५ से

यह निर्णय नहीं हो सकता कि कौनसा उपदेश घटित हो सकता है। तत्पश्चात् आठ कषाय और १६ प्रकृतियों के नाश होने पर एकअन्तर्मुहूर्त जाकर चार सञ्ज्वलन और नौ नोकषायों का अन्तरकरण करता है। अन्तरकरण करने के पहले चार सञ्ज्वलन और नौ नोकषायों सम्बन्धी तीन वेदों में से जिन दो प्रकृतियों का उदय रहता है उनकी प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित करता है और अनुदयरूप ११ प्रकृतियों की प्रथमस्थिति एकसमय कम आवलीमात्र स्थापित करता है। तत्पश्चात् अन्तरकरण करके एक अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होने पर नपुंसकवेद का क्षय करता है। तदनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर स्त्रीवेद का क्षय करता है। पुनः एक अन्तर्मुहूर्त जाकर सवेदभाग के द्विचरम समय में पुरुष वेद के पुरातन सत्तारूप कर्मों के साथ ६ नोकषाय का युगपत् क्षय करता है। तदनन्तर एक समय कम दो आवलीमात्र काल के व्यतीत होने पर पुरुषवेद का क्षय करता है। तत्पश्चात् एकअन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर क्रोधसञ्ज्वलन का क्षय करता है। पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होने पर मानसञ्ज्वलन का क्षय करता है। इसके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर मायासञ्ज्वलन का क्षय करता है। पुनः एकअन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान को प्राप्त होता है। वह सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव भी अपने गुणस्थान के अन्तिमसमय में लोभसञ्ज्वलन का क्षय करता है और उसी काल में क्षीणकषायगुणस्थान को प्राप्त करके तथा अन्तर्मुहूर्त बिताकर अपने काल के द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला का युगपत् क्षय करता है। तदनन्तर अपने काल के अन्तिम (चरम) समय में ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण और ५ अन्तराय इन १४ प्रकृतियों का क्षय करता है। इस प्रकार इन ६० प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर यह जीव सयोगकेवलीजिन होता है। सयोगीजिन किसी भी कर्म का क्षय नहीं करते। तत्पश्चात् बिहार करके और क्रम से योगनिरोध करके वे अयोगकेवली होते हैं। अयोगकेवली भी अपने काल के द्विचरमसमय में वेदनीयकी दोनों प्रकृतियों में से अनुदयरूप कोई एक वेदनीय, देवगति, पाँच शरीर, पाँच शरीरसंघात, पाँच शरीरबन्धन, छह संस्थान, तीन अङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु,उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र इन ७२ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। पश्चात् अपने काल के अन्तिम समय में उदयागत कोई एकवेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र इन १३ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। अथवा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी सहित अयोगकेवली अपने द्विचरमसमय में ७३ प्रकृतियों का और चरम समय में १२ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। इस प्रकार संसार की उत्पत्ति के कारणों का विच्छेद हो जाने से इसके अनन्तरवर्तीसमय में कर्मरज से रहित निर्मल दशा को प्राप्त सिद्ध हो जाते हैं। इनमें से जो जीव कर्म-क्षपणव्यापार करते हैं उन्हें क्षपक कहते हैं और जो जीव कर्मों के उपशमन करने में व्यापार करते हैं उन्हें उपशमक कहते हैं।

आगे क्षपकअनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानों में क्षय (सत्त्व से व्युच्छित्ति) योग्य प्रकृतियों के नाम दो गाथाओं में कहते हैं-

णिरियतिरिक्खदु वियलं-थीणतिगुज्जोवतावएइंदी।
साहरणसुहुमथावर, सोलं मज्झिमकसायट्ठं॥३३८॥

संढित्थि छक्कसाया, पुरिसो कोहो य माण मायं च।
थूले सुहुमे लोहो, उदयं वा होदि खीणम्हि॥३३९॥जुम्मं॥

अर्थ- नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय३, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा, उद्योत,आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर ये १६ प्रकृतियाँ अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में तथा अप्रत्याख्यान की चार कषाय, प्रत्याख्यानकी चार कषाय ये आठ दूसरे भाग में सत्ता से व्युच्छिन्न होती हैं। तृतीयभाग में नपुंसकवेद, चतुर्थभाग में स्त्रीवेद, पञ्चमभाग में हास्यादि ६ नोकषाय। छठेभाग में पुरुषवेद, सातवें भाग में सञ्ज्वलनक्रोध और आठवें भाग में सञ्ज्वलनमान, नवभाग में सञ्ज्वलनमाया। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में (१६+८+१+१+६+१+१+१+१)३६ प्रकृतियों की सत्त्व से व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सञ्ज्वलनलोभ और क्षीणकषायगुणस्थान में उदयव्युच्छित्ति के समान ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, निद्रा और प्रचला इन १६ प्रकृतियों की सत्त्वव्युच्छित्ति है। सयोगकेवली के सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

अब अयोगकेवली गुणस्थान में सत्त्व से व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियों के नाम कहते हैं-

देहादी फस्संता, थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं।
णिमिणाजसऽणादेज्जं, पत्तेया पुण्ण अगुरुचऊ॥३४०॥

अणुदयतदियं णीचम-जोगिदुचरिमम्हि सत्तवोच्छिण्णा।
उदयगबार णराणू, तेरस चरिमम्हि वोच्छिण्णा॥३४१॥जुम्मं॥

अर्थ - पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, ६संस्थान, तीन अङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, पाँचवर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर,देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास तथा जिसका उदय नहीं पाया जाता ऐसी साता-असाता में से एकवेदनीय और नीचगोत्र ये ७२ प्रकृतियाँ अयोगीगुणस्थान के द्विचरमसमय में सत्त्व से व्युच्छिन्न होती

हैं। अयोगीगुणस्थान के चरमसमय में जिसका उदय है ऐसी साता-असाता में से एकवेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन १३ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

अब आचार्य गुणस्थानों में असत्त्व और सत्त्वरूप प्रकृतियों को कहते हैं-

णभतेगिणभइगि दोद्दो, दस दससोलसट्ठगा दिहीणेसु।
सत्ता हवंति एवं, असहायपरक्कमुद्दिट्ठं॥३४२॥

अर्थ - मिथ्यात्व से क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त क्रम से शून्य-तीन-एक-शून्य-एक-दो-दो और दस प्रकृतियों का असत्त्व जानना तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में १०, द्वितीयभाग में १६ प्रकृति का असत्त्व है। आगे तृतीयादिभागों में आठआदि प्रकृतियों का असत्त्व है। यहाँ असत्त्वरूप प्रकृतियों को सत्त्वरूप सर्व (१४८) प्रकृतियों में से घटाने पर अवशेष प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानों में सत्त्वप्रकृतियाँ हैं सो सहायतारहित है पराक्रम जिनका ऐसे वर्धमानस्वामी ने कहा है।

विशेषार्थ - जिन प्रकृतियों की सत्ता नहीं पाई जावे उसे असत्त्व और जिनकी सत्ता पाई जाती है उसे सत्त्व कहते हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व शून्य, सत्त्वप्रकृति १४८, व्युच्छित्तिशून्य। सासादनगुणस्थान में असत्त्वप्रकृति ३, सत्त्व १४५ प्रकृति का, व्युच्छित्तिशून्य। मिश्रगुणस्थान में असत्त्वप्रकृति १, सत्त्व १४७ प्रकृति का, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतगुणस्थान में असत्त्व शून्य, सत्त्वप्रकृति १४८, व्युच्छित्ति १ प्रकृति की। देशसंयतगुणस्थान में असत्त्वप्रकृति १, सत्त्वप्रकृति १४७, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति १। प्रमत्तगुणस्थान में असत्त्वरूप प्रकृति २, सत्त्वरूप प्रकृति १४६, व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य। अप्रमत्तगुणस्थान में असत्त्वरूप प्रकृति २, सत्त्वरूप प्रकृति १४६, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति ८ हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में असत्त्वरूप प्रकृति १०, सत्त्वरूपप्रकृति १३८, व्युच्छित्तिरूप प्रकृति शून्य।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में असत्त्वरूप प्रकृतियाँ १०, सत्त्वरूप प्रकृतियाँ १३८, सत्त्व से व्युच्छिन्नप्रकृति १६। दूसरे भाग में असत्त्वरूप प्रकृतियाँ २६, सत्त्वरूप प्रकृतियाँ १२२, व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियाँ ८ हैं। तृतीयभाग में असत्त्व ३४ प्रकृति का, सत्त्व ११४ प्रकृति का, व्युच्छित्ति १ प्रकृति की। चतुर्थभाग में असत्त्व ३५ का, सत्त्व ११३ का, व्युच्छित्ति १ की। पञ्चमभाग में असत्त्व ३६ का, सत्त्व ११२ का और व्युच्छित्ति ६ की। षष्ठभाग में असत्त्वप्रकृति ४२, सत्त्वप्रकृति १०६, व्युच्छिन्नप्रकृति १। सप्तम भाग में असत्त्वरूप प्रकृति ४३, सत्त्वरूप प्रकृति १०५, व्युच्छिन्नप्रकृति १। अष्टम भाग में असत्त्वप्रकृति ४४, सत्त्वप्रकृति १०४, व्युच्छिन्नप्रकृति १। नवमभाग में असत्त्वप्रकृति

४५, सत्त्वप्रकृति १०३, व्युच्छिन्नप्रकृति १। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में असत्त्वप्रकृति ४६, सत्त्वप्रकृति १०२, व्युच्छिन्नप्रकृति १। क्षीणकषायगुणस्थान में असत्त्वप्रकृति ४७, सत्त्वप्रकृति १०१ और व्युच्छिन्नप्रकृति १६। सयोगकेवली गुणस्थान में असत्त्वरूप प्रकृति ६३, सत्त्वप्रकृति ८५, व्युच्छित्ति का अभाव है। अयोगीगुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यन्त असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्वप्रकृति ८५, व्युच्छिन्नप्रकृति ७२। चरमसमय में असत्त्वरूप प्रकृति १३५, सत्त्वरूप प्रकृति १३, व्युच्छिन्नप्रकृति १३।

नोट- १४ वें गुणस्थान में मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है अत: शेष ७२ प्रकृतियों के साथ स्तिबुकसंक्रमण द्वारा मनुष्यगत्यानुपूर्वी की भी सत्त्वव्युच्छित्ति द्विचरमसमय में हो जाती है, चरमसमय में केवल १२ प्रकृतियों की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है[1]।

क्षपकश्रेणी की अपेक्षा गुणस्थानों में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति की सन्दृष्टि-

सत्त्वयोग्य [illegible] १४८ प्रकृति, गुणस्थान [illegible]

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	३	१४५	०	३ (आहारकद्विक-तीर्थंकर)
मिश्र	१	१४७	०	१ (तीर्थंकर)
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)
देशसंयत	१	१४७	१	असत्त्व १ (नरकायु) १ (तिर्यञ्चायु)
प्रमत्त	२	१४६	०	२ (नरकायु व तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्त	२	१४६	८	८ (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, देवायु, दर्शन-मोहनीयकी ३)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	१० (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, दर्शनमोहनीय ३, नरक-तिर्यञ्च व देवायु)
अनिवृत्तिकरण क्षपक- प्रथम भाग	१०	१३८	१६	१६ (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय ३, स्त्यानगृद्धि आदि निद्रा ३, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)
द्वितीय भाग	२६	१२२	८	८ (अप्रत्याख्यानकी ४ कषाय और प्रत्याख्यानकी ४ कषाय)
तृतीय भाग	३४	११४	१	१ (नपुंसकवेद)

१. ध.पु. ६ पृ. ४१७

चतुर्थ भाग	३५	११३	१	१ (स्त्रीवेद)
पंचम भाग	३६	११२	६	६ (हास्यादि नोकषाय)
षष्ठ भाग	४२	१०६	१	१ (पुरुषवेद)
सप्तम भाग	४३	१०५	१	१ (सञ्ज्वलन क्रोध)
अष्टम भाग	४४	१०४	१	१ (सञ्ज्वलन मान)
नवम भाग	४५	१०३	१	१ (सञ्ज्वलन माया)
सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक	४६	१०२	१	१ (सञ्ज्वलन लोभ)
क्षीणमोह	४७	१०१	१६	१६ (५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, निद्रा, प्रचला)
सयोगकेवली	६३	८५	०	६३ (घातियाकर्म की ४७, नरक-देव और तिर्यञ्चायु, नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि चारजाति, आतप, उद्योत, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)
अयोगकेवली के द्विचरम में	६३	८५	७२	७२ (५ शरीर, ५ बन्धन, ५ संघात, ६ संहनन, ३ अंगोपांग, ६ संस्थान, ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-प्रशस्त-विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, साता या असाता में से कोई एक, नीचगोत्र)
अयोगकेवली चरम समय में	१३५	१३	१३	व्यु. १३ (साता-असातावेदनीय में से एक, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस-बादर-पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)

अब उपशमश्रेणीवाले के चारित्रमोहनीय की शेष २१ प्रकृतियों के उपशम का विधान कहते हैं-

खवणं वा उवसमणे, णवरि य संजलण पुरिसमज्झम्हि।
मज्झिमदोद्दो कोहा-दीया कमसोवसंता हु॥३४३॥

अर्थ- उपशमविधान में भी क्षपणाविधान के समान क्रम जानना, किन्तु विशेष बात यह है कि सञ्ज्वलनकषाय और पुरुषवेद के मध्य में बीच के जो अप्रत्याख्यान तथा प्रत्याख्यानकषायसम्बन्धी दो-दो क्रोधादि हैं सो पहले उनको क्रम से उपशमन करता है पश्चात् सञ्ज्वलनक्रोधादि का उपशम करता है। (इसका विशेष कथन गाथा ३३७ के विशेषार्थ कर चुके हैं।)

विशेषार्थ- नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि ६ नोकषाय, पुरुषवेद का अनुक्रम से उपशम होता है और पुरुषवेद को उपशमाने के अनन्तर उस पुरुषवेद का नवकसमय-प्रबद्धरूप बन्धसहित मध्यमअप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोध का उपशम करता है। यहाँ जो तत्कालीन नवीनबन्ध हुआ उसका नाम नवकबन्ध है तथा जो पुरुष वेद का नवीन बन्ध हुआ उसके निषेक पुरुषवेद को उपशमाने के काल में उपशमावने योग्य न हुए क्योंकि अचलावली में कर्मप्रकृति को अन्यथारूप परिणमाने के लिए असमर्थता है, इससे पुरुषवेद के निषेक मध्यमक्रोधयुग्म को उपशमावने के काल में उपशमाते हैं। इसीप्रकार सञ्ज्वलनक्रोधादि के नवकबन्ध का स्वरूप यथावस्थित जानना। उसके अनन्तर सञ्ज्वलनक्रोध का उपशम होता है, इसके अनन्तर इसी सञ्ज्वलनक्रोध के नवकबन्धसहित मध्यमरूप अप्रत्याख्यानमान और प्रत्याख्यानमान को उपशमाता है। उसके अनन्तर सञ्ज्वलनमान का उपशम होता है। इसके पश्चात् उस सञ्ज्वलनमान के नवकबन्धसहित मध्यमअप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानमायायुगल का उपशम होता है तथा इसके पश्चात् सञ्ज्वलनमाया का उपशम होता है। तदनन्तर सञ्ज्वलनमाया का नवकबन्धसहित मध्यम अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानलोभ का उपशम होता है। उसके अनन्तर बादरसञ्ज्वलनलोभ को उपशमाता है। ऐसी विशेषता मोहनीय कर्म में ही जानना, इसीलिए मोहनीय के बिना अन्य कर्मों का उपशम विधान नहीं है। इसप्रकार उपशमश्रेणी में मोह का उपशम होता है, सत्ता का नाश नहीं होता अतः अपूर्वकरण से उपशान्तकषाय गुणस्थानपर्यन्त उपशमश्रेणीवाले के नरकायु तिर्यञ्चायु बिना १४६ प्रकृति की सत्ता जानना तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकषाय की विसंयोजना कर दी हो उसके १४२ प्रकृति की सत्ता होती है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवाले के १३८ प्रकृति की सत्ता अपूर्वकरण से उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त जानना जिसके आयुबन्ध ही न हुआ हो; उस ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि के असंयतादि चारगुणस्थानों में भी १३८ प्रकृति की ही सत्ता जानना, किन्तु जिसके देवायु का बन्ध हो गया हो उसके १३९ का सत्त्व जानना।

णिरयादिसु पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदभिण्णस्स।
सत्तस्स य सामित्तं, णेदव्वमिदो जहा जोग्गं॥३४४॥

अर्थ- नरकगति आदि मार्गणाओं में भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारभेदों से सहित जो प्रकृतियों का सत्त्व है, वह यथायोग्य समझना।

अब गत्यादिमार्गणाओं में सत्त्व को कहने के लिए परिभाषासूत्र कहते हैं-

तिरिए ण तित्थसत्तं, णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि।
आऊणि होंति सत्ता, सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

अर्थ- तिर्यञ्चगति में तीर्थङ्करप्रकृति की सत्ता नहीं होती, नरकगति में भुज्यमान नरकायु तथा बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायु का सत्त्व है, देवायु का नहीं है। तिर्यञ्चगति में भुज्यमानतिर्यञ्चायु एवं बध्यमान नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवायु का सत्त्व है। मनुष्यगति में भुज्यमान मनुष्यायु तथा बध्यमान नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देवायु का सत्त्व है। देवगति में भुज्यमानदेवायु और बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायु का सत्त्व है। अवशेष प्रकृति का सत्त्व गुणस्थानवत् जानना। (जिसको भोग रहा है उसको भुज्यमान और भविष्यकाल में उदयहोने योग्य जिसका बन्ध हुआ है उसको बध्यमान कहते हैं।)

अथानन्तर नरक-तिर्यञ्च व मनुष्यगति में सत्त्व का कथन दो गाथाओं से करते हैं-

ओघं वा णेरइये, ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ, तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥३४६॥

एवं पंचतिरिक्खे, पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ।
ओघं मणुसतियेसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥३४७॥

अर्थ- नरकगति में गुणस्थानवत् सत्ता जानना, किन्तु यहाँ देवायु का सत्त्व नहीं है अतः १४७ प्रकृतियाँ सत्त्वयोग्य हैं। तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व तृतीयनरकपर्यन्त ही है, मनुष्यायु का सत्त्व छठे नरकपर्यन्त ही है। तिर्यञ्चगति में भी सत्त्व का कथन गुणस्थानवत् ही जानना, परन्तु तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है अतः वहाँ सत्त्वयोग्य १४७ प्रकृतियाँ हैं॥३४६॥

इसी प्रकार पाँच प्रकार के तिर्यञ्चों में भी सामान्यरीति से सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चों में नरक व देवायु का सत्त्व नहीं है। तीन प्रकार के मनुष्यों में भी गुणस्थानवत् ही सत्त्व समझना, किन्तु लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य में लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्च के समान नरक व देवायु और तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व न होने से १४५ प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है॥३४७॥

विशेषार्थ- नरकगति में सामान्य से सत्त्वयोग्यप्रकृति देवायुबिना १४७ हैं। घर्मादितीन नरकपृथ्वियों में सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७ ही हैं। गुणस्थान आदि के चार हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व का अभाव है, सत्त्व १४७ प्रकृति का, सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है। सासादनगुणस्थान में आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति का असत्त्व तथा १४४ प्रकृति का सत्त्व, व्युच्छित्ति शून्य। मिश्रगुणस्थान में असत्त्व १

तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्व १४६ प्रकृति का, व्युच्छित्ति नहीं है। असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं है, सत्त्व १४७ प्रकृति का, सत्त्वव्युच्छित्ति का यहाँ भी अभाव है।

घर्मा-वंशा-मेघा इन तीन पृथ्वियों में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति-सम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४७	०	
सासादन	३	१४४	०	३ (तीर्थंकर व आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४६	०	१ (तीर्थंकर)
असंयत	०	१४७	०	

अञ्जना-अरिष्टा-मघवी नामा ४थी, ५वीं व ६ठी पृथ्वी में देवायु व तीर्थङ्कर प्रकृति के बिना सत्त्वयोग्य १४६ प्रकृति हैं, गुणस्थान ४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति का अभाव है, सत्त्वप्रकृति १४६ हैं। सासादनगुणस्थान में असत्त्व आहारकद्विक का, सत्त्व १४४ प्रकृति का, व्युच्छित्ति नहीं है। मिश्र व असंयतगुणस्थान में भी असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है, इन दोनों गुणस्थानों में सत्त्व प्रकृति १४६-१४६ हैं।

अञ्जना-अरिष्टा-मघवी पृथ्वियों में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४६	०	
सासादन	२	१४४	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४६	०	
अविरत	०	१४६	०	

माघवीनामक सप्तमपृथ्वी में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना सत्त्वयोग्य १४५ प्रकृतियाँ हैं। गुणस्थान आदि के ४ हैं। यहाँ पर मिथ्यात्व, मिश्र और असंयतगुणस्थान में असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति का अभाव है, किन्तु सासादनगुणस्थान में आहारकद्विक का असत्त्व पाया जाता है। चारों ही गुणस्थानों में सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है तथा सत्त्व चारों गुणस्थानों में क्रम से १४५-१४३-१४५ और १४५ प्रकृति का है।

माघवीपृथ्वी में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४५	०	
सासादन	२	१४३	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४५	०	
असंयत	०	१४५	०	

तिर्यंचगति में सामान्य से सत्त्वयोग्य प्रकृति १४७ हैं, क्योंकि यहाँ तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है।

तिर्यञ्चगति में सामान्य से असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्य प्रकृति १४७, गुणस्थान ५

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४७	०	
सासादन	२	१४५	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४७	०	
असंयत	०	१४७	२	२ (नरकायु व मनुष्यायु)
देशसंयत	२	१४५	१	१ (भुज्यमान तिर्यञ्चायु अपेक्षा)

सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, योनिमतितिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्ततिर्यंच में भी सत्त्व इसी प्रकार जानना, किन्तु विशेषता यह है कि लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच में नरक-देवायु का सत्त्व नहीं है अतः सत्त्व १४५ प्रकृति का है। **ण हि सासणो अपुण्णे** इत्यादि वचनों से लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यंच के सासादनगुणस्थान नहीं है इसलिए एकमात्र मिथ्यात्वगुणस्थान ही है। शेष चार प्रकार के तिर्यंचों में ५-५ गुणस्थान हैं।

मनुष्यगति में सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनी में गुणस्थानवत् सर्व कथन है, किन्तु मनुष्यनी के क्षपकश्रेणी में विशेषता यह है कि क्षपकश्रेणी में स्थित मनुष्यनी के तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तावाला अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यनियों में उत्पन्न नहीं होता है

और तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व होने पर नपुंसक और स्त्रीवेद के उदय से संक्लिष्ट परिणामी जीव के क्षपकश्रेणी में आरोहण का अभाव है। (गाथा ३५४)

सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य, मनुष्यिनी में देशसंयतगुणस्थान में नरक व तिर्यंचायु की सत्ता नहीं है इसलिए इस गुणस्थान में १४६ प्रकृति का सत्त्व और दो प्रकृति का असत्त्व है। मनुष्यनी के क्षपकश्रेणी में तीर्थङ्करप्रकृति की सत्ता का अभाव है, इस कारण से अपूर्वकरणगुणस्थान में सत्त्व १३७ और असत्त्व १०० प्रकृति का जानना। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग से अयोगीगुणस्थानपर्यन्त गुणस्थानोक्त सत्त्वप्रकृतियों से एक-एक प्रकृति हीन रूप से सत्त्व जानना, किन्तु असत्त्व गुणस्थानोक्त ही है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य में लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्च के समान तीर्थङ्कर, नरकायु और देवायुबिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५ और गुणस्थान १ मिथ्यात्व ही है।

सामान्य व पर्याप्त मनुष्य की अपेक्षा असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	१४८ (नानाजीवों की अपेक्षा)
सासादन	३	१४५	०	३ (आहारकद्विक-तीर्थंकर)
मिश्र	१	१४७	०	१ (तीर्थंकर)
असंयत	०	१४८	२	२ (नरक व तिर्यञ्चायु)
देशसंयत	२	१४६	०	
प्रमत्त	२	१४६	०	
अप्रमत्त	२	१४६	८	८ (अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, दर्शनमोह ३ देवायु)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	—
उपशमक	२	१४६	०	बद्धायुष्क उपशम सम्यग्दृष्टि के उपशम क्षेणीअपेक्षा
क्षपक	१०	१३८	०	अबद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशम श्रेणी अपेक्षा
अनिवृत्तिकरण	१०	१३८	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)

भाग १				बद्धायुष्क उपशम सम्यग्दृष्टि के उपशम श्रेणी अपेक्षा
उपशमक	२	१३८,१४६	०	अबद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणी
क्षपक	१०	१३८	०	अपेक्षा
भाग २	२६	१२२	८	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ३	३४	११४	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ४	३५	११३	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ५	३६	११२	६	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ६	४२	१०६	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ७	४३	१०५	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ८	४४	१०४	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
भाग ९	४५	१०३	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
सयोगकेवली	६३	८५	०	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
अयोगकेवली द्विचरमसमय	६३	८५	७२	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)
अयोगकेवली चरमसमय	१३५	१३	१३	(गाथा ३४२ की संदृष्टि के अनुसार)

आगे देवगति में सत्त्वादि का कथन करते हैं –

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ, सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

अर्थ- देवगति में सामान्योक्त गुणस्थानवत् सत्त्वादिका कथन है, किन्तु नरकायु का सत्त्व नहीं होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है तथा सहस्रारस्वर्ग तक ही तिर्यंचायु का सत्त्व है, आगे नहीं । भवनत्रिक के सभी देवों में तथा कल्पवासिनीदेवियों में तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ- सौधर्म से सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १२ स्वर्गों में १४७ प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि तिर्यंचायु का सत्त्व सहस्रारस्वर्ग तक ही है। गुणस्थान आदि के ४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में **किण्ह दुगसुहतिलेस्सय वामेविणितित्थयरसत्तं** अर्थात् कृष्ण, नील तथा तीन शुभ लेश्या में मिथ्यादृष्टि

गुणस्थान में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता। इस वचन से तीर्थङ्कर प्रकृति के सत्त्व बिना १४६ प्रकृति का सत्त्व, असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है। सासादनगुणस्थान में असत्त्वप्रकृति आहारकद्विक और तीर्थङ्कर सत्त्वप्रकृति १४४, व्युच्छित्ति शून्य। मिश्रगुणस्थान में असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्व १४६ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में असत्त्व का अभाव होने से सत्त्व १४७ प्रकृति का। मिश्र और असंयतगुणस्थान में सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

सौधर्मस्वर्ग से सहस्रारस्वर्गपर्यन्त असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि – सत्त्वयोग्यप्रकृति १४७, गुणस्थान आदि के चार

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१	१४६	०	१ (तीर्थङ्कर)
सासादन	३	१४४	०	३ (आहारकद्विक व तीर्थङ्कर)
मिश्र	१	१४६	०	१ (तीर्थङ्कर)
असंयत	०	१४७	०	

शेष आनतादि ४ स्वर्गों में और नवग्रैवेयक में नरकायु-तिर्यंचायुबिना सत्त्व १४६ प्रकृति का है। गुणस्थान मिथ्यात्वादि ४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व एक तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्व १४५ प्रकृति का। सासादनगुणस्थान में असत्त्व आहारकद्विक, तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्व १४३ प्रकृति का। मिश्रगुणस्थान में असत्त्व १ तीर्थङ्करप्रकृति का, सत्त्व १४५ प्रकृति का। असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४६। यहाँ चारों ही गुणस्थानों में सत्त्वव्युच्छित्ति का अभाव है।

आनतादि ४ स्वर्ग तथा नवग्रैवेयक में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि– सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	१	१४५	०	१ (तीर्थंकर)
सासादन	३	१४३	०	३ (तीर्थंकर व आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४५	०	१ (तीर्थंकर)
असंयत	०	१४६	०	

नौअनुदिश, पञ्चअनुत्तर विमानों में नरकायु व तिर्यञ्चायु के बिना सत्त्वयोग्य प्रकृतियाँ १४६ हैं और गुणस्थान एक असंयत ही है।

सर्वभवनत्रिकदेव-देवियों व कल्पवासिनीदेवियों के तीर्थङ्कर और नरकायु का सत्त्व नहीं होने से सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६ हैं एवं गुणस्थान ४ हैं। मिथ्यात्व-मिश्र और असंयतगुणस्थान में असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति का सर्वथा अभाव है, किन्तु सासादनगुणस्थान में आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व १४४ प्रकृतियों का, सत्त्वव्युच्छित्ति का यहाँ भी अभाव है।

भवनत्रिकदेव-देवियों और कल्पवासिनीदेवियों में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४६	०	
सासादन	२	१४४	०	२ (आहारकद्विक)
मिश्र	०	१४६	०	
असंयत	०	१४६	०	

आगे इन्द्रिय और कायमार्गणा में सत्त्वादि का कथन करते हैं –

ओघं पंचक्खतसे, सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा।
तेउदुगे ण णराऊ, सव्वत्थुव्वेल्लणावि हवे॥३४९॥

अर्थ– पञ्चेन्द्रिय और त्रसकाय में सामान्य से गुणस्थानवत् ही सत्त्वादिका कथन है, सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८ हैं। शेष एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियपर्यन्त तथा पृथ्वी से वनस्पतिकायपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तकतिर्यञ्च के समान १४५ प्रकृतियों की सत्ता है, किन्तु तेजकाय और वायुकाय में मनुष्यायु का सत्त्व नहीं है अतः इन दोनों के १४४ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है। इन्द्रिय और कायमार्गणा में सर्वत्र प्रकृतियों की उद्वेलना भी होती है।

विशेषार्थ– इन्द्रिय और कायमार्गणा में पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायमार्गणा में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान १४ हैं। सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना। अवशेष एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियमार्गणा में एवं पृथ्वीकाय, जलकाय और वनस्पतिकायमार्गणा में लब्ध्यपर्याप्तकवत् तीर्थङ्कर, नरकायु और देवायुबिना सत्त्व प्रकृति १४५ हैं और गुणस्थान दो हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व नहीं है, सत्त्व १४५ प्रकृतियों का सासादनगुणस्थान में असत्त्व आहारकद्विक का, सत्त्व १४३ प्रकृति का। तेजकाय, वायुकाय में मनुष्यायु का भी सत्त्व नहीं होने से सत्त्वप्रकृति १४४ हैं। गुणस्थान एक मिथ्यात्व है।

पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायमार्गणा में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान १४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
सासादन	३	१४५	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
मिश्र	१	१४७	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
असंयत	०	१४८	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
देशसंयत	१	१४७	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
प्रमत्त	२	१४६	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अप्रमत्त	२	१४६	८	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अपूर्वकरण	१०	१३८	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	१०	१३८	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
भाग १				
भाग २	२६	१२२	८	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
भाग ३	३४	११४	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार)
भाग ४	३५	११३	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
भाग ५	३६	११२	६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
भाग ६	४२	१०६	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
भाग ७	४३	१०५	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
भाग ८	४४	१०४	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
भाग ९	४५	१०३	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
उपशान्त	२	१४६	०	(उपशमसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा)
कषाय	१०	१३८	०	(आयुबन्ध बिना क्षायिक सम्यक्त्वसहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा)
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
सयोगकेवली	६३	८५	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)

अयोगकेवली द्विचरम समय	६३	८५	७२	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)
अयोगकेवली चरम समय	१३५	१३	१३	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के समान)

एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पृथ्वी-जल-वनस्पतिकाय में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि- सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५, गुणस्थान आदि के २

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४५	०	
सासादन	२	१४३	०	२ (आहारकद्विक)

शङ्का - उद्वेलना किसे कहते हैं?

समाधान - जिस प्रकार रस्सी को बल देकर बटा था, पुनः बट को खोल दिया उसी प्रकार जिन प्रकृतियों का बन्ध किया था पश्चात् उनको उद्वेलना भागहार से अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप प्राप्त कराकर नाशकरना उद्वेलना कहलाती है।

अब उद्वेलनारूप प्रकृतियों के नाम कहते हैं-

हारदु सम्मं मिस्सं, सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥३५०॥

अर्थ - आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये १३ प्रकृतियाँ उद्वेलनप्रकृतियाँ हैं।

अथानन्तर उद्वेलनप्रकृतियों के स्वामी कहते हैं-

चदुगदिमिच्छे चउरो, इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं, सपदे उप्पण्ण ठाणेवि ॥३५१॥

अर्थ - चारोंगतिवाले मिथ्यादृष्टिजीवों के चारप्रकृतियाँ, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रियजीवों के ६ प्रकृतियाँ और तेजकाय व वायुकाय में तीनप्रकृतियाँ उद्वेलनयोग्य हैं तथा अपने स्थान में व उत्पन्नस्थान में कथंचित् सत्त्व है और कथंचित् सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ - तीर्थङ्कर, नरकायु व देवायु की सत्ता जिसके नहीं है ऐसे चतुर्गतिवाले संक्लेशपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के उद्वेलना हुए बिना सत्त्व तो १४५ प्रकृति का है तथा आहारकद्विक की उद्वेलना होने पर १४३ प्रकृति का सत्त्व[1], सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना होने पर १४२ प्रकृति का सत्त्व, मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्त्व) की उद्वेलना होने पर १४१ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार स्वस्थानों में सत्त्व जानना तथा उत्पन्नस्थान में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी-जल और वनस्पतिकाय में पूर्वोक्तप्रकार से १४५-१४३-१४२-१४१ का सत्त्व है तथा देवगति व देवगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियों की उद्वेलना होने पर स्वस्थान में इन एकेन्द्रियादि के १३९ प्रकृति का सत्त्व है और नरकद्विक-वैक्रियिकद्विक अर्थात् इन चार की उद्वेलना होने पर स्वस्थान में १३५ प्रकृति का सत्त्व है एवं उत्पन्नस्थान में तेजकाय व वायुकाय में मनुष्यआयु का भी सत्त्व नहीं है। अतः उद्वेलना हुए बिना सत्त्व १४४ प्रकृति का है तथा आहारकद्विक की उद्वेलना होने पर क्रम से १४२-१४१-१४० प्रकृति का सत्त्व, देवगति व देवगत्यानुपूर्वी की उद्वेलना होने से १३८ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, नारकचतुष्क (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग) की उद्वेलना होने से १३४ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, तथा स्वस्थान में तेजकाय, वायुकाय के उच्चगोत्र की उद्वेलना होने पर सत्त्व १३३ प्रकृति का है एवं मनुष्यद्विक की उद्वेलना होने पर सत्त्व १३१ प्रकृति का है।[2]

ये अन्तिम दो सत्त्व (१३३-१३१ का) उत्पन्न स्थान में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पृथ्वी, जल और वनस्पतिकाय में भी जानना। यहाँ पूर्वपर्याय में उद्वेलन होकर अथवा उद्वेलना के बिना जो सत्त्व है उसके साथ उत्तरपर्याय में उत्पन्न होते समय उस उत्तरपर्याय में जो सत्त्व है उसे उत्पन्नस्थान

---

१. संयत, असंयतावस्था को प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त में आहारकद्विक की उद्वेलना प्रारम्भ करता है। जब तक वह असंयत रहता है तब तक वह उद्वेलना करता है। (ध. पु. १६ पृ. ४१८)

२. **शंका** - गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा ३५१ बड़ी टीका : तेजकाय-वायुकाय के उत्पन्न स्थान विषे १४४ की सत्ता और उद्वेलना करने पर १३१ की सत्ता बतलाई है। तो क्या वहाँ पर १४४ की सत्ता से भी मरण कर सकता है ? हमारी यह शंका है कि तेजकाय-वायुकाय का जीव उद्वेलना प्रकृतियों में से प्रारम्भ की १० प्रकृतियों का तो नियम करके उद्वेलना करेगा ही, क्या यह ठीक है ?

समाधान - १४४ प्रकृतियों की सत्ता के साथ जीव तेजकाय व वायुकाय में उत्पन्न होकर क्षुद्रभव ग्रहण मात्र काल के पश्चात् १४४ प्रकृतियों की सत्ता के साथ मरण करके अन्य काय में उत्पन्न हो सकता है। यदि वह दीर्घकाल तक तेजकाय-वायुकाय में भ्रमण करता रहे तो १३ प्रकृतियों की उद्वेलना कर १३१ प्रकृतियों के साथ अन्य काय में उत्पन्न हो सकता है। १० प्रकृतियों की उद्वेलना करने के पश्चात् ही तेजकाय, वायुकाय से निकलता है, ऐसा कोई नियम नहीं है।

सत्त्व कहते हैं तथा उस विवक्षितपर्याय मे उत्पन्न होने के बाद उद्वेलना होकर अथवा उद्वेलना हुए बिना नवीन बन्ध होकर जो सत्त्व होता है उसे स्वस्थानसत्त्व कहते हैं।

तेजकाय-वायुकाय जीवों में सत्त्वयोग्यप्रकृति १४४

	०	०	०	०	०	०	०
	आ २	स १	मि १	सु २	ना ४	उ १	म २
१४४	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४	१३३	१३१

उपर्युक्त सन्दृष्टि में तेजकाय-वायुकाय जीवसम्बन्धी कथन किया गया है। तीन आयु और तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व न होने से यहां १४४ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है। प्रथम पंक्ति में शून्य स्थापित किया है उसका अभिप्राय उद्वेलना का अभाव बताना है। द्वितीय पंक्ति में उद्वेलन हुई प्रकृतियों को बताया गया है। तृतीय पंक्ति १४४ सत्त्वयोग्य प्रकृतियों में से उद्वेलना होने पर कितनी प्रकृतियां सत्त्व में रहती हैं यह दर्शाया गया है। द्वितीय और तृतीय पंक्ति का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि आहारकद्विक (आ २) की उद्वेलना होने पर सत्त्व १४२ प्रकृति का, सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना होने पर सत्त्व १४१ प्रकृति का, मिश्रप्रकृति की उद्वेलना होने पर सत्त्व १४० प्रकृति का, देवद्विक (सु २) की उद्वेलना होने पर १३८ प्रकृति का सत्त्व, नारकचतुष्क (ना ४) अर्थात् नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग की उद्वेलना होने पर सत्त्व १३४ प्रकृति का, उच्चगोत्र की उद्वेलना होने पर सत्त्व १३३ प्रकृति का, मनुष्यद्विक (म २) अर्थात् मनुष्यगति व मनुष्यगत्यानुपूर्वी की उद्वेलना होने पर १३१ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है।

विकलत्रय तथा पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय में सत्त्वयोग्य १४५ प्रकृति-

ए	द्वि	त्रि	च	पृ	आ	व	१४५
०	०	०	०	०			
आ २	स १	मि १	सु २	नार ४			
१४३	१४२	१४१	१३९	१३५	१३३	१३१	

उपर्युक्त सन्दृष्टि में प्रथम पंक्ति में एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पृथ्वीकाय अप्काय तथा वनस्पतिकाय में सत्त्वयोग्य देवायु-नरकायु व तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४५ प्रकृति है, यह दर्शाया गया है। द्वितीयपंक्ति में जो शून्य रखे गए हैं वे जिसके उद्वेलना नहीं हुई है, वह दिखाने के लिये हैं। तृतीय

पंक्ति में उद्वेलन प्रकृतियों के नाम बताए गए हैं तथा चतुर्थपंक्ति में उद्वेलना प्रकृतियों के बिना सत्त्वयोग्य प्रकृतियां कही गई हैं। इसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

आहारकद्विक की उद्वेलना होने पर (१४५-२) १४३ का सत्त्व, सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना होने पर १४२ प्रकृति का सत्त्व, मिश्रप्रकृति की उद्वेलना होने पर १४१ प्रकृति का सत्त्व, देवद्विक (सु २) की उद्वेलना होने पर १३९ प्रकृति का सत्त्व, नारकचतुष्क की उद्वेलना होने पर सत्त्व १३५ प्रकृति का, तेजकाय व वायुकाय में उच्चगोत्र की उद्वेलना करके तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वाले के उच्चगोत्र व मनुष्यायुबिना सत्त्व १३३ प्रकृति का, तेजकाय-वायुकाय में मनुष्यद्विक की उद्वेलना करके तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वालों के सत्त्व १३१ प्रकृति का पाया जाता है।

अब योगमार्गणा में सत्त्वादि का कथन करते हैं-

पुण्णेकारसजोगे, साहारयमिस्सगेवि सगुणोघं।
वेगुव्वियमिस्सेवि य, णवरि ण माणुसतिरिक्खाऊ ॥३५२॥

अर्थ- चार मनोयोग, चार वचनयोग तथा औदारिक-वैक्रियिक-आहारक और आहारकमिश्रकाययोग में अपने-अपने गुणस्थानवत् सत्त्वादि का कथन जानना। तथैव वैक्रियिकमिश्रकाययोग में गुणस्थान के समान ही सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि यहाँ मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु की सत्ता नहीं है, अतः सत्त्वप्रकृतियाँ १४६ ही हैं।

विशेषार्थ- चार मनोयाग, चार वचनयोग, औदारिककाययोग में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान १२ या १३ हैं। यहाँ सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना, कुछ भी विशेषता नहीं है।

चार मनोयोग-चार वचनयोग-औदारिककाययोग में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान १२ या १३

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	३	१४५	०	३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
मिश्र	१	१४७	०	१ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)
देशसंयत	१	१४७	१	अस. १ (नरकायु) व्यु. १ (तिर्यञ्चायु)

प्रमत्तसंयत	२	१४६	०	२ (नरक व तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्तसंयत	२	१४६	८	२ (नरक व तिर्यञ्चायु) ८ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अपूर्वकरण	१०	१३८		० (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अनिवृत्तिकरण	१०	१३८	१६	१० व १६ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
भाग १				
भाग २	२६	१२२	८	२६ व ८ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
भाग ३	३४	११४	१	१ (नपुंसकवेद)
भाग ४	३५	११३	१	१ (स्त्रीवेद)
भाग ५	३६	११२	६	६ (हास्यादि नोकषाय)
भाग ६	४२	१०६	१	१ (पुरुषवेद)
भाग ७	४३	१०५	१	१ (सञ्ज्वलन क्रोध)
भाग ८	४४	१०४	१	१ (सञ्ज्वलन मान)
भाग ९	४५	१०३	१	१ (सञ्ज्वलन माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	४६	१०२	१	१ (सञ्ज्वलन लोभ)
उपशान्त-कषाय १	२	१४६	०	२ (नरक व तिर्यञ्चायु) उपशमसम्यक्त्व-सहित उपशमश्रेणी की अपेक्षा
उपशान्त-कषाय २	१०	१३८	०	१० (८वें गुणस्थानवत्) क्षायिक सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणी की अपेक्षा
क्षीणकषाय	४७	१०१	१६	४७ व १६ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	६३	८५	०	६३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) यह गुणस्थान सत्य व अनुभय मनोयोग व वचनयोग में है

आहारक-आहारक मिश्रकाययोग में नरकायु व तिर्यञ्चायुबिना शेष १४६ प्रकृति का सत्त्व है और गुणस्थान एक प्रमत्त ही है।

वैक्रियिककाययोग में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान ४ हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्वप्रकृति १४८, असत्त्व का अभाव है और सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करकी सत्तावाला तृतीयपृथ्वीपर्यन्त जाता है उसके अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मिथ्यात्व रहता है इसीलिए यहाँ १४८ प्रकृति का सत्त्व कहा। सासादन-मिश्र और असंयत गुणस्थान में गुणस्थानवत् सत्त्व-असत्त्वादि का कथन जानना।

वैक्रियिकमिश्र काययोग में तिर्यञ्च व मनुष्यायु के बिना सत्त्वप्रकृति १४६, गुणस्थान (१-२-४) ३ हैं। यहाँ मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थान में सत्त्व १४६ प्रकृति का तथा असत्त्व नहीं है। सासादनगुणस्थान में आहारकद्विक, तीर्थङ्कर और नरकायुबिना सत्त्व १४२ प्रकृति का है, क्योंकि इन चार प्रकृतियों का यहाँ असत्त्व पाया जाता है।

औदारिकमिश्रकाययोग में तथा कार्मणकाययोग में सत्त्वादि का कथन करते हैं-

ओरालमिस्सजोगे, ओघं सुरणिरयआउगं णत्थि।
तम्मिस्सवाममे ण हि, तित्थं कम्मंवि सगुणोघं ॥३५३॥

अर्थ- औदारिकमिश्रकाययोग में देवायु और नरकायु के बिना गुणस्थानोक्त सामान्यवत् सत्त्वप्रकृति १४६ हैं, गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में **तम्मिस्से वाममे ण हि तित्थं** इस वचन से असत्त्व एक तीर्थङ्करप्रकृति का एवं सत्त्व १४५ प्रकृति का है। सासादनगुणस्थान में तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीनप्रकृति का असत्त्व और १४३ प्रकृति का सत्त्व। असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं होने से सत्त्वप्रकृति १४६ हैं। सयोगीगुणस्थान में असत्त्व ६१ प्रकृति का और सत्त्व ८५ प्रकृति का है। यहाँ चारों ही गुणस्थानों में सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है।

कार्मणकाययोग में चारों भुज्यमानआयु सम्भव हैं अत: सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान १-२-४-१३ ये चार हैं। यहाँ मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं है अत: सत्त्व १४८ प्रकृति का है, किन्तु सासादनगुणस्थान में आहारकद्विक और तीर्थङ्कर एवं नरकायु का असत्त्व, सत्त्व १४४ प्रकृति का । सयोगकेवलीगुणस्थान में असत्त्व ६३ प्रकृति का और सत्त्व ८५ प्रकृति का है। यहां भी चारों गुणस्थानों में सत्त्वव्युच्छित्ति का अभाव है।

अथानन्तर वेदमार्गणा से आहारमार्गणापर्यन्त सत्त्वादि का कथन करते हैं-

वेदादाहारोत्ति य, सगुणोघं णवरि संढथीखवगे।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तं ॥३५४॥

अर्थ- वेदमार्गणा से आहारमार्गणापर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् सामान्य से सत्त्व जानना, किन्तु विशेषता यह है कि क्षपकश्रेणी वाले नपुंसकवेदी और स्त्रीवेदी के तीर्थङ्करप्रकृति की सत्ता नहीं है। इसी प्रकार कृष्ण व नीललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि के और पीत-पद्म-शुक्लरूप तीन शुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिजीव के भी तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ- वेदमार्गणा में पुरुषवेदी के सत्त्वप्रकृति १४८ और मिथ्यात्व से

सवेदअनिवृत्तिकरणपर्यन्त गुणस्थान ९ हैं। यहाँ सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार) जानना। नपुंसकवेद में और स्त्रीवेद में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान आदि के ९ किन्तु यहाँ **णवरि संढथीखवगे** इन वचनों से क्षपकश्रेणी में तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व होने पर नपुंसक और स्त्रीवेद के उदय से संक्लिष्टपरिणामीजीव के क्षपकश्रेणी में आरोहण का अभाव है इसलिए क्षपकअपूर्वकरणादिगुणस्थानों में गुणस्थानोक्त सत्त्वप्रकृतियों में एक-एक प्रकृति से हीन सत्त्व जानना। शेष सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)जानना।

कषायमार्गणा में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान क्रोध-मान-माया कषाय में तो मिथ्यात्व से अनिवृत्तिकरणपर्यन्त ९ हैं, किन्तु लोभकषाय में सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त १० गुणस्थान हैं। सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार) जानना।

ज्ञानमार्गणा में कुमति, कुश्रुत और कुअवधि (विभङ्ग) ज्ञान में सत्त्व १४८ प्रकृति का, मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४८ हैं। सासादनगुणस्थान में असत्त्व आहारकद्विक व तीर्थङ्कर इन ३ प्रकृति का और सत्त्व १४५ प्रकृति का। **मति-श्रुत-अवधिज्ञान** में सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान असंयत से लेकर क्षीणमोह पर्यन्त ९ हैं। सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) जानना। **मनःपर्ययज्ञान** में नरक और तिर्यञ्चायु के बिना सत्त्व १४६ प्रकृति का है, गुणस्थान प्रमत्त से क्षीणकषाय पर्यन्त ७ हैं। यहाँ सत्त्व तो गुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु असत्त्व गुणस्थानोक्त असत्त्वरूप प्रकृतियों में दो-दो प्रकृतिकम जानना। **केवलज्ञान** में सत्त्वयोग्य प्रकृति ८५, गुणस्थान सयोगी-अयोगी ये दो हैं। यहां सत्त्व तो गुणस्थानवत् ही है, किन्तु असत्त्व सयोगी गुणस्थान में नहीं है और अयोगीगुणस्थान के भी द्विचरमसमयपर्यन्त तो असत्त्व नहीं है किन्तु चरमसमय में ७२ प्रकृति का असत्त्व है।

संयममार्गणा में सामायिक-छेदोपस्थापनासंयम में नरक-तिर्यञ्चायु बिना सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६ गुणस्थान प्रमत्तादि चार हैं। यहाँ सत्त्वसम्बन्धी कथन तो गुणस्थानवत् है, असत्त्व गुणस्थानोक्त प्रकृतियों में से दो-दो प्रकृति कम जानना। सो सर्वत्र नरक व तिर्यञ्चायु ये दो प्रकृतियाँ कम करनी चाहिए।

परिहारविशुद्धिसंयम में सत्त्व पूर्वोक्त १४६ प्रकृति का, गुणस्थान प्रमत्त और अप्रमत्त ये दो हैं तथा क्षपक सूक्ष्मसाम्परायसंयम में सत्त्वप्रकृति १०२, गुणस्थान एक सूक्ष्मसाम्पराय। यथाख्यातसंयम में सत्त्वयोग्य प्रकृति १४६, गुणस्थान उपशान्तकषायादि चार हैं। उपशान्तकषाय में उपशम सम्यक्त्वसहित उपशम श्रेणी चढ़ते हुए १४६ प्रकृति का सत्त्व है और क्षायिकसम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी चढ़ते हुए देवायुबन्ध सहित १३९ व आयुबन्धरहित १३८ प्रकृति का सत्त्व है। यहाँ दोनों स्थानों पर असत्त्व क्रम से २ व ९ या १० प्रकृतियों की सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं है। क्षीणकषाय गुणस्थान में १०१ प्रकृति का सत्त्व,

३७ प्रकृति का असत्त्व और १६ प्रकृति की सत्त्व से व्युच्छित्ति। सयोगीगुणस्थान में सत्त्व ८५ प्रकृति का, असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्व से व्युच्छिन्नप्रकृति शून्य। अयोगीगुणस्थान के द्विचरमसमयतक सत्त्वप्रकृति ८५, असत्त्वप्रकृति ६३, सत्त्व से व्युच्छिन्न प्रकृति ७२। अयोगीगुणस्थान के चरमसमय में सत्त्वप्रकृति १३, असत्त्वप्रकृति १३५, सत्त्व से व्युच्छिन्न प्रकृति १३।

यथाख्यातसंयम में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्ति सम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४६, गुणस्थान ४

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
उपशान्तकषाय	२	१४६	०	(उपशमसम्यक्त्वसहित उपशमश्रेण्यापेक्षा)
उपशान्तकषाय	९ या १०	१३९ वा १३८	०	द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना न मानने वाले मतानुसार १४६ प्रकृति की सत्ता है) (क्षायिक सम्यक्त्वसहित उपशमश्रेण्यापेक्षा)
क्षीणकषाय	३७	१०१	१६	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
सयोगकेवली	६३	८५	०	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगीद्विचरम समयपर्यन्त	६३	८५	७२	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगी के चरम समय में	१३५	१३	१३	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)

देशसंयम (संयमासंयम) में नरकायुबिना सत्त्वयोग्य प्रकृति १४७ और गुणस्थान एक देशसंयत ही है। असंयम में सत्त्वप्रकृति १४८ और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार हैं। यहाँ दोनों ही संयमों में सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) जानना।

दर्शनमार्गणा में चक्षु-अचक्षुदर्शन में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्व से क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं। यहाँ सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिवत्) जानना। अवधिदर्शनमें सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान असंयत से क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ९ हैं। यहाँ भी सत्त्वादिसम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना। केवलदर्शन में सर्वरचना केवलज्ञानवत् ही जानना।

लेश्यामार्गणा में कृष्ण और नील लेश्या में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान मिथ्यात्वादि चार। यहाँ **किण्ह दुगे वामे ण तित्थयरसत्तं** इस वचन से मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं है,

क्योंकि तीन अशुभ लेश्याओं में तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ नहीं होता तथा जिसके नरकायु का बन्ध हो गया है वह भी दूसरी-तीसरी पृथ्वी में कापोत लेश्या से ही गमन करता है अतः यहाँ तीर्थङ्करप्रकृति का असत्त्व होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है। सासादन आदि गुणस्थानों में रचना गुणस्थानवत् ही जानना।

कापोतलेश्या में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान आदि के चार। सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानोक्त ही जानना। तेज (पीत) और पद्मलेश्या में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्व से अप्रमत्तपर्यन्त ७ हैं। यहाँ **सुहतिण्णलेस्सिय बाऊ ण तित्थयर सत्तं** इस वचन से मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व नहीं है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तावालाजीव जो कि नरक जाने के सम्मुख है उसके ही सम्यक्त्व की विराधना होती है। तीनों शुभलेश्याओं में सम्यक्त्व की विराधना नहीं होती इसलिए तीर्थङ्करप्रकृति का असत्त्व होने से यहां मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्व १४७ प्रकृति का है। सासादन आदि गुणस्थानों में सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिवत्) जानना। शुक्ललेश्या में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं, गुणस्थान मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त १३। मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं होने से सत्त्व १४७ प्रकृति का है। शेष सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार) जानना।

भव्यमार्गणा में सत्त्वयोग्य प्रकृति १४८, गुणस्थान १४ हैं। यहां सत्त्वादि सम्बन्धी सर्वकथन गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टिवत्) जानना।

आगे अभव्यमार्गणा में जो विशेषता है उसे कहते हैं-

अभव्वसिद्धे णत्थि हु, सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं।
आहारचउक्कस्सवि, असण्णिजीवे ण तित्थयरं॥३५५॥

अर्थ- अभव्यमार्गणा में तीर्थङ्करप्रकृति, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकचतुष्क इन ७ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं है। असञ्ज्ञीजीवों के तीर्थंकरप्रकृति का सत्त्व नहीं है।

विशेषार्थ- अभव्यमार्गणा में तीर्थंकर, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग, आहारकबन्धन और आहारकसङ्घात इन ७ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं होने से सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं और गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है, क्योंकि अभव्यजीव के कभी सम्यग्दर्शन की अभिव्यक्ति नहीं होती है।

सम्यक्त्वमार्गणा में उपशमसम्यक्त्व में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान असंयत से उपशान्तकषायपर्यन्त ८ हैं। यहाँ असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं है, सत्त्वप्रकृति १४८। देशसंयतगुणस्थान

में असत्त्व १ नरकायु का, सत्त्व १४७ प्रकृति का है। आगे प्रमत्तगुणस्थान से उपशान्तमोहगुणस्थानपर्यन्त असत्त्व नरकायु और तिर्यञ्चायु का, सत्त्व १४६ प्रकृति का । अन्य सर्वकथन गुणस्थानवत् जानना।

उपशमसम्यक्त्व में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान ८

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	०	१४८	१	१ (नरकायु)
देशसंयत	१	१४७	१	१ (तिर्यञ्चायु)
प्रमत्त	२	१४६	०	
अप्रमत्त	२	१४६	०	
अपूर्वकरण	२	१४६	०	यह कथन उस मत की अपेक्षा है जो
अनिवृत्तिकरण	२	१४६	०	द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की
सूक्ष्मसाम्पराय	२	१४६	०	विसंयोजना का नियम स्वीकार नहीं करता है।
उपशान्तकषाय	२	१४६	०	

वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व में सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान असंयत से अप्रमत्तपर्यन्त चार हैं। गुणस्थानों में सत्त्वादि का सर्वकथन गाथा ३४२ की सन्दृष्टि के अनुसार जानना।

क्षायिकसम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की चार कषाय और दर्शनमोहनीय की ३ इन सातप्रकृति बिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं। गुणस्थान असंयत से अयोगीपर्यन्त ११ हैं। यहाँ असंयतगुणस्थान में असत्त्व नहीं है अत: सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१ हैं। नरकायुतिर्यञ्चायु की व्युच्छित्ति भी यहीं पर हो जाती है। क्षायिकसम्यक्त्वी तिर्यञ्च के देशसंयतगुणस्थान नहीं हो सकता, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजतिर्यञ्चों में ही उत्पन्न होता है और भोगभूमिजजीवों का नियत आहार होने से व्रत अर्थात् संयम नहीं हो सकता। अत: देशसंयतगुणस्थान में असत्त्व दो प्रकृति का, सत्त्व १३९ प्रकृति का। प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में भी १३९ प्रकृतियों का ही सत्त्व है। अपूर्वकरणगुणस्थान में दोनों (उपशम-क्षपक) श्रेणी की अपेक्षा सत्त्व १३९ व १३८ प्रकृति का है। आगे अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानों में गुणस्थानवत् ही सर्वकथन है।

क्षायिकसम्यक्त्व में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि – सत्त्वयोग्यप्रकृति १४१, गुणस्थान ११

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
असंयत	०	१४१	२	२ (नरकायु-तिर्यञ्चायु)
देशसंयत	२	१३९	०	इस गुणस्थान में क्षायिकसम्यक्त्वसम्मुख तो हो सकता है, किन्तु तिर्यञ्च नहीं हो सकता है।
प्रमत्त	२	१३९	०	
अप्रमत्त	२	१३९	१	१ (देवायु-क्षपकश्रेणी की अपेक्षा)
अपूर्वकरण	२	१३८	०	क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा पहले देवायु का बन्ध होने से कोई क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणी चढ़ता हो तो उसके १३९ प्रकृति का सत्त्व रह सकता है, यदि देवायुका बन्ध नहीं हुआ हो तो १३८ प्रकृति का सत्त्व रहेगा।
अनिवृत्तिकरण से अयोगीपर्यन्त	–	–	–	यहाँ सर्वकथन गुणस्थानवत् गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार जानना।

सम्यग्मिथ्यात्व में तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४७ प्रकृति का सत्त्व है। गुणस्थान एक सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र)। सासादनसम्यक्त्वमार्गणा में तीर्थङ्कर और आहारकद्विक बिना सत्त्वयोग्यप्रकृति १४५ हैं। गुणस्थान एक सासादन ही है। मिथ्यात्व में सत्त्वयोग प्रकृति १४८ हैं तथा गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

सञ्ज्ञीमार्गणा में सत्त्वप्रकृति १४८ हैं तथा गुणस्थान मिथ्यात्व से क्षीणकषायपर्यन्त १२ हैं। सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना। असञ्ज्ञीमार्गणा में ण तित्थयरं इस वचन से तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व नहीं होने से १४७ प्रकृति का सत्त्व है। गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन ये दो ही हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान में असत्त्व नहीं होने से सत्त्वप्रकृति १४७ हैं। सासादनगुणस्थान में आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होने से १४५ प्रकृति का ही सत्त्व है। आहारमार्गणा में सत्त्वप्रकृति १४८, गुणस्थान मिथ्यात्व से सयोगीपर्यन्त १३ हैं, सत्त्वादि का सर्वकथन गुणस्थानवत् ही जानना।

अनाहारमार्गणा में सत्त्वादि का कथन करके सत्त्वअधिकार को पूर्ण करते हैं-

कम्मेवाणाहारे, पयडीणं सत्तमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३५६॥

अर्थ- अनाहारमार्गणा में कार्मणकाययोग के समान सत्त्वादि का कथन जानना। इस प्रकार बलदेव और माधवचन्द्र से अर्चित ऐसे नेमिचन्द्राचार्य ने कहा है।

विशेषार्थ- अनाहारमार्गणा में कार्मणकाययोगवत् सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८ हैं। गुणस्थान १-२-४-१३-१४ ये पाँच हैं। यहाँ मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और सयोगीगुणस्थान में सर्वरचना कार्मणकाययोगवत् जानना, किन्तु अयोगीगुणस्थान में गुणस्थानवत् (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार) कथन जानना।

अनाहारमार्गणा में असत्त्व-सत्त्व-सत्त्वव्युच्छित्तिसम्बन्धी सन्दृष्टि-
सत्त्वयोग्यप्रकृति १४८, गुणस्थान ५

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	०	
सासादन	४	१४४	०	४ (तीर्थंकर, आहारकद्विक और नरकायु)
असंयत	०	१४८	६३	६३ (गाथा ३४२ की सन्दृष्टि में १३वें गुणस्थानके अनुसार)
सयोगी	६३	८५	०	
अयोगीद्विचरम समय पर्यन्त	६३	८५	७२	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)
अयोगी के चरमसमय में	१३५	१३	१३	(गाथा ३४२ की सन्दृष्टि अनुसार)

नोट- संस्कृत टीकाकार ने गाथा का अर्थ करते हुए उत्तरार्ध के अर्थ में "एक बार तो बलभद्र, माधव (नारायण) से अर्चित श्री नेमि तीर्थङ्करदेव ने तथा दूसरी बार बलदेव और माधवचन्द्रत्रैविद्यदेव नामा अपने भाइयों से पूजित सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य ने मार्गणास्थान में कर्मप्रकृतियों का सत्त्व सम्बन्धी कथन किया है।" ऐसा कहा है।

अब बन्ध-उदय-सत्त्वाधिकार को पूर्ण करते हुए अन्तिम मंगलाचरण करते हैं-

सो मे तिहुवणमहिदो, सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो।
दिसदु वरणाणलाहं, बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥३५७॥

अर्थ- जो तीनलोक से पूजित, सिद्ध, बुद्ध, कर्मरूपी अञ्जन से रहित और नित्य हैं वे मुझको ज्ञानीजनों से प्रार्थना करने योग्य ऐसे परम-उत्कृष्ट शुद्धज्ञान (केवलज्ञान) का लाभ देवें।

इस प्रकार नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीविरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की **सिद्धान्त ज्ञानदीपिका** नामा हिन्दी टीका में **बन्ध-उदय-सत्त्व** नामक **द्वितीय अधिकार** पूर्ण हुआ।

❋ ❋ ❋

अथ सत्त्वभंगाधिकार

अब नेमिचन्द्राचार्य मंगलाचरणपूर्वक कर्मप्रकृतियों के भङ्गसहित सत्त्वस्थानों को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं-

णमिऊण वड्ढमाणं, कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं।
पयडीण सत्तठाणं, ओघे भंगे समं वोच्छं॥३५८॥

गाथा- (मैं ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य) स्वर्ण के समान शरीरवर्णवाले, इन्द्रद्वारा पूजित वर्धमानतीर्थङ्करदेव को नमस्कार करके गुणस्थानों में प्रकृतियों के भङ्गसहित सत्त्व स्थानों को कहूँगा।

विशेषार्थ- एक जीव के एक काल में जितनी कर्मप्रकृतियों की सत्ता पाई जावे उनके समूह का नाम स्थान है। इस प्रकार अन्य-अन्य संख्या को लिये हुए कर्मप्रकृतियों की जो सत्ता पायी जावे वह अन्य-अन्य सत्त्वस्थान कहलाते हैं तथा उस सत्त्वस्थान की समान संख्यारूप कर्मप्रकृतियों में संख्या तो समान ही रहे, किन्तु प्रकृतियाँ बदल जाँय उसे भङ्ग कहते हैं। जैसे- किसी जीव के १४६ प्रकृति की सत्ता है और किसी के १४५ प्रकृति की सत्ता हो तो ये स्थान तो दो हुए, किन्तु उस एक स्थान की संख्या में जैसे कि १४५ प्रकृति की सत्तावाले स्थान में किसी के तो मनुष्यायु तथा देवायुसहित १४५ प्रकृति की सत्ता है, तथा किसी के तिर्यञ्चायु और नरकायु की सत्तासहित १४५ प्रकृति की सत्ता है। अतः यहाँ पर स्थान तो एक ही रहा, क्योंकि संख्या तो एक है, किन्तु प्रकृतियों के बदलने से भङ्ग दो हुए। इसी प्रकार सर्वत्र स्थान और भङ्ग समझना।

अथानन्तर गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भङ्गों के कहने का विधान बताते हैं-

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्हि॥३५९॥

अर्थ - यहाँ प्रकृतियों के सत्त्वस्थान और भङ्गों का वर्णन दो प्रकार से समझना। आयु के बन्ध और अबन्ध के भेद की अपेक्षा नहीं करके प्रथमवर्णन तथा आयुबन्ध के भेद सहित उसकी अपेक्षा रखकर दूसरा वर्णन है।

अब इन दोनों पक्षों में से पहले सामान्य से प्रथमपक्ष के अनुसार सत्ता का विधान करते हैं-

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोण्णि चउसु छद्दस य दुगे।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पडि सत्तं जाणे॥३६०॥

अर्थ- मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानों में से क्रम से सर्व, तीन कम, एक कम, सर्व, एक कम आगे ६ गुणस्थानों में दो कम, पुनश्च उपशमश्रेणी के चारगुणस्थानों में छह कम, क्षपकश्रेणी की अपेक्षा दो गुणस्थानों में १० कम। आगे के दो गुणस्थानों में अर्थात् सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणमोह गुणस्थान में क्रम से ४६ व ४७ कम तथा ६३ कम प्रकृतिरूप सत्त्व जानना तथा 'च' शब्द से अयोगकेवली के १३५ कम प्रकृति का सत्त्व जानना।

सयोगकेवली गुणस्थान में जिन ६३ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं रहता उनके नाम कहते हैं-

घाई तियउज्जोवं थावरवियलं च ताव एइंदी।
णिरय-तिरिक्ख दु सुहुमं साहरणे होइ तेसट्ठी ॥३६०क॥

अर्थ- चार घातियाकर्मों की ४७ प्रकृतियाँ, मनुष्यायुबिना शेष तीन आयु, उद्योत, स्थावर, विकलत्रय, (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) आतप, एकेन्द्रियजाति, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म और साधारण। ये ६३ प्रकृतियाँ हैं, जिनका सत्त्व केवलीभगवान के नहीं पाया जाता है।

विशेषार्थ- मिथ्यात्वगुणस्थान में १४८ प्रकृति का सत्त्व, सासादनगुणस्थान में तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन बिना १४५ प्रकृति का, मिश्रगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४७ प्रकृति का, असंयतगुणस्थान में १४८ प्रकृति का, देशसंयतगुणस्थान में नरकायुबिना १४७ प्रकृति का, प्रमत्तादि छह गुणस्थानों में नरकायु और तिर्यञ्चायु के बिना १४६ प्रकृति का सत्त्व है, किन्तु उपशमश्रेणी के अपूर्वकरणादि चार गुणस्थानों में पूर्वोक्त नरक-तिर्यञ्चायु तथा अनन्तानुबन्धी ४ कषाय के बिना १४२ प्रकृति का सत्त्व है। क्षपकश्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरणादि दो गुणस्थानों में नरकायु, तिर्यञ्चायु, देवायु, दर्शनमोह की तीन और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन १० प्रकृतिबिना १३८ प्रकृति का सत्त्व है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में व्युच्छिन्नप्रकृति (१६+८+१+१+६+१+१+१+१)३६ तथा पूर्वोक्त नरकायु आदि १० (३६+१०) इन ४६ प्रकृतिबिना सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में १०२ प्रकृति का सत्त्व है। क्षीणकषायगुणस्थान में लोभसहित ४७ प्रकृतिबिना १०१ प्रकृति का सत्त्व है। सयोगी और अयोगीगुणस्थान में घातियाकर्म की ४७ प्रकृति, नामकर्म की १३ और मनुष्यायुबिना शेष तीनआयु इन ६३ प्रकृति बिना ८५ प्रकृति का सत्त्व है। 'चकार' से अयोगीगुणस्थान के अन्तसमय में १३५ प्रकृतिबिना १३ प्रकृति का सत्त्व है। इस प्रकार गुणस्थानों में प्रकृतियों का सत्त्व जानना।

आगे जिन गुणस्थानों में जो प्रकृतियां कम की गई हैं, उनके नाम कहते हैं-

सासणमिस्से देसे, संजददुग सामगेसु णत्थी य।
तित्थाहारं तित्थं, णिरयाऊ णिरयतिरिय आउअणं ॥३६१॥

अर्थ- सासादनगुणस्थान में तीर्थङ्कर और आहारकद्विक, मिश्रगुणस्थान में तीर्थङ्कर, देशसंयतगुणस्थान में नरकायु, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान में नरकायु-तिर्यञ्चायु और उपशमश्रेणी में नरकायु, तिर्यञ्चायु अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये ६ तथा 'च' कार से क्षपकश्रेणी में **दस ये दुगे** इत्यादि गाथा ३६० के पूर्वार्ध के इन वचनानुसार कम की हुई प्रकृतियाँ जानना।

गुणस्थानों में सत्त्वस्थानगत सत्त्व-असत्त्वप्रकृतिसम्बन्धी सन्दृष्टि-

गुणस्थान	असत्त्व	सत्त्व	विशेष
मिथ्यात्व	०	१४८	
सासादन	३	१४५	३ (तीर्थंकर, आहारकद्विक)
मिश्र	१	१४७	१ (तीर्थंकर)
असंयत	०	१४८	
देशसंयत	१	१४७	१ (नरकायु)
प्रमत्त	२	१४६	२ (नरक-तिर्यञ्चायु)
अप्रमत्त	२	१४६	२ (नरक-तिर्यञ्चायु)
१. अपूर्वकरण सामान्य से उपशम श्रेणी की अपेक्षा	२	१४६	२ (नरक-तिर्यञ्चायु) उस मत के अनुसार जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना का नियम स्वीकार नहीं करता।
२. अनन्तानुबन्धी के विसंयोजक के उपशम श्रेणी की अपेक्षा	६	१४२	६ (नरक-तिर्यञ्चायु+४अनन्तानुबन्धी) उपशमश्रेणी चढ़ने के पहले चार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना हो जाती है।
३. क्षायिकसम्यग्दृष्टि (उपशमश्रेणी आरोहक) की अपेक्षा	९	१३९	९ (नरक-तिर्यञ्चायु, दर्शनमोहनीय की ३, अनन्तानुबन्धी ४)

४. क्षपकश्रेणी की अपेक्षा	१०	१३८	१० (नरक-तिर्यञ्च-देवायु, दर्शनमोहनीय ३, अनन्तानुबन्धी ४)
अनिवृत्तिकरण			
१. सामान्य से उपशम श्रेणी की अपेक्षा	२	१४६	अपूर्वकरणगुणस्थानवत्
२. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	६	१४२	
३. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	९	१३९	
४. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	१०	१३८	
सूक्ष्मसांपराय			
१. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	२	१४६	अपूर्वकरणगुणस्थानवत्
२. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	६	१४२	
३. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	९	१३९	
४. उपर्युक्त ८वें गुण-स्थानवत्	४६	१०२	
उपशान्तकषाय			
१. ८वें गुणस्थानवत्	२	१४६	अपूर्वकरणगुणस्थानवत्
२. ८वें गुणस्थानवत्	६	१४२	
३. ८वें गुणस्थानवत्	९	१३९	
क्षीणमोह	४७	१०१	
सयोगकेवली	६३	८५	
अयोगकेवली			
१. द्विचरमसमयपर्यन्त	६३	८५	
२. चरमसमय में	१३५	५३	

गुणस्थानों में आयु के बन्ध-अबन्ध का भेदपूर्वक वर्णन तो आगे करेंगे, यहाँ अब सत्त्वस्थान-संख्या को दो गाथाओं में कहते हैं-

विगुणणव चारि अट्ठं, मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं।
तिय उवसमगे संते, चउवीसा होंति पत्तेयं ॥३६२॥

चउछक्कदि चउअट्ठं, चउछक्क य होंति सत्तठाणाणि।
आउगबंधाबंधे, अजोगि अंते तदो भंगा ॥३६३॥

अर्थ- मिथ्यात्वादि तीनगुणस्थानों में क्रमशः १८-४ व ८ सत्त्वस्थान हैं। असंयतादि चार गुणस्थानों में ४०-४० सत्त्वस्थान, अपूर्वकरणादि तीन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानों में तथा उपशान्तकषायगुणस्थान में प्रत्येक के २४-२४ सत्त्वस्थान, क्षपकश्रेणी की अपेक्षा अपूर्वकरण से अयोगकेवली गुणस्थानपर्यन्त क्रम से ४-३६-४-८-४ और ६ सत्त्व स्थान हैं। इस प्रकार आयु कर्म के बन्ध और अबन्ध की विवक्षा में अयोगी गुणस्थान पर्यन्त सत्त्वस्थान कहे। इसके आगे जो स्थानों के भंग हैं, उन्हें आगे की गाथा में कहते हैं।

विशेषार्थ- क्षपकश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणगुणस्थान में ४, अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ३६, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में ४, क्षीणकषायगुणस्थान में ८, सयोगकेवलीगुणस्थान में ४ और अयोगकेवलीगुणस्थान में ६ सत्त्वस्थान जानना।

तित्थसमे णिधिमिच्छे बद्धाउसि माणुसीगदि एग।
मणुवणिरयाऊ भंगुप्पज्जत्ते भुज्जमाण णिरयाऊ ॥३६३ क॥

अर्थ- तीर्थङ्करप्रकृति के सत्त्वसहित बद्धायुष्क मिथ्यादृष्टि के मनुष्यगति में मनुष्यायु-नरकायु का एक भङ्ग होता है। मरकर उत्पन्न होने पर भुज्यमाननरकायु का एक भङ्ग होता है।

विशेषार्थ- तीर्थङ्करप्रकृति के सत्त्वसहित मिथ्यादृष्टि के दो ही गति सम्भव हैं १. मनुष्यगति २. नरकगति। जिसने पूर्व में नरकायु का बन्ध कर लिया हो उसी मनुष्य के मिथ्यात्वगुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृति का सत्त्व हो सकता है, क्योंकि द्वितीय या तृतीय नरक में उत्पन्न होने से एक अन्तर्मुहूर्त पूर्व वह मनुष्य मिथ्यात्व में आ जावेगा। अतः मनुष्यगति में एक बद्धायुष्कसम्बन्धी भङ्ग ही सम्भव है। किन्तु नरकगति में बद्धायुष्क सम्बन्धी भङ्ग सम्भव नहीं है। नरक में उत्पन्न होने के एक अन्तर्मुहूर्त तक वह मिथ्यादृष्टि रहता है उसके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध करने लगता है। नरकगति में परभवसम्बन्धी आयु का बन्ध मरण से छहमाह पूर्व होता है।

अब उपर्युक्त सत्त्वस्थानों में भङ्गों की संख्या कहते हैं-

पण्णास बार छक्कदि, वीससयं अट्ठदाल दुसु दालं।
अडवीसा बासट्ठी, अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठ॥३६४॥

अर्थ- मिथ्यात्वादि सातगुणस्थानों में तथा उपशम-क्षपकश्रेणी संयुक्त ८-९-१० वें गुणस्थान में एवं उपशान्तकषाय से अयोगीगुणस्थानपर्यन्त अठारह आदि सत्त्वस्थानों में क्रम से ५०-१२-३६-१२०-४८-४०-४०-२८-६२-२८-२४-८-४ और ८ भङ्ग जानना।

विशेषार्थ- मिथ्यात्वगुणस्थान के १८ सत्त्वस्थानों में ५०, सासादनगुणस्थान के ४ सत्त्वस्थानों में १२, मिश्रगुणस्थान के ८ सत्त्वस्थानों में ३६, असंयतगुणस्थानसम्बन्धी ४० सत्त्वस्थानों में १२० भङ्ग, देशसंयतगुणस्थान के ४० सत्त्वस्थानों के ४८ भङ्ग प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान के ४०-४० स्थानों के ४०-४० भङ्ग, उपशम-क्षपकश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणगुणस्थान के (२४+४)२८ सत्त्वस्थानों में २८ भंग, उपशम-क्षपकश्रेणी सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के (२४+३६) ६० सत्त्वस्थानों में ६२ भङ्ग, उपशमक्षपकश्रेणीसम्बन्धी सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के (२४+४) २८ सत्त्वस्थानों में २८ भङ्ग, उपशान्तकषायगुणस्थान में २४ सत्त्वस्थानसम्बन्धी २४ भङ्ग, क्षीणकषायगुणस्थान में ८ सत्त्वस्थानों के ८ भङ्ग हैं, सयोगकेवली गुणस्थान के चार सत्त्वस्थानों में ४ भङ्ग तथा अयोगकेवलीगुणस्थान के ६ सत्त्वस्थानों में ८ भङ्ग हैं।

गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भङ्गों की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	मिथ्या.	सासा.	मिश्र	असं.	देशसं.	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्व.		अनिवृ.		सूक्ष्मसां.		उपशां.	क्षीण.	सयो.	अयो.
सत्त्व स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	२४ उप.	४ क्षप.	२४ उप.	३६ क्षप.	२४ उप.	४ क्षप.	२४	८	४	६
भंग	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०	२८		६२		२८		२४	८	४	८

णिरियादिसु भुजेगं, बंधुदगं बारि बारि दोण्णेत्थ।
पुणरुत्तसमविहीणा, आउगभंगा पजेव॥३६४ क॥

णिरयतिरयाणु, णेरइयणहाउ तिरियमणुय आऊ य।
तेरिच्छिदेवाऊ, माणुसदेवाउ एगेगे॥३६४ ख॥

अर्थ- नरकादि चारआयु में से भुज्यमान एक आयु तथा दूसरी आयु का बन्ध हो जाने पर १२ भङ्ग होते हैं (नरकायु-मनुष्यायु, नरकायु-तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चायु-नरकायु, तिर्यञ्चायु-तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चायु-मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु-देवायु, मनुष्यायु-नरकायु, मनुष्यायु-तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु-मनुष्यायु, मनुष्यायु-देवायु, देवायु-तिर्यञ्चायु और देवायु-मनुष्यायु) इन १२ भङ्गों में से पुनरुक्त (तिर्यञ्चायु-नरकायु, मनुष्यायु-नरकायु, मनुष्यायु-तिर्यञ्चायु,देवायु-तिर्यञ्चायु, देवायु-मनुष्यायु) पाँचभङ्गों को तथा दो समभङ्गों (तिर्यञ्चायु-तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु-मनुष्यायु) को कम कर देने पर शेष पाँच भङ्ग बद्धयमानआयु की अपेक्षा होते हैं। जो निम्न प्रकार हैं-

१.नरकायु-तिर्यञ्चायु २. नरकायु-मनुष्यायु ३. तिर्यञ्चायु-मनुष्यायु ४. तिर्यञ्चायु-देवायु ५. मनुष्यायु-देवायु।

आयु के बन्ध-अबन्ध की अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थान के १८ सत्त्वस्थानों में कर्मप्रकृतियों की संख्या बताते हैं-

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्कसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं।
हीणा सव्वे सत्ता, मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं॥३६५॥

अर्थ- मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती बद्धायुष्क के सत्त्वरूप सर्वप्रकृतियों में से २-३-६-७-८-९-११-१७-१९ और २१ प्रकृतियाँ कम करने से १० सत्त्वस्थान हुए तथा अबद्धायुष्क के ८ सत्त्वस्थानपर्यन्त तो इनमें से एक-एक प्रकृति और कम करना एवं शेष दो स्थान पूर्वोक्त ही जानना। इस प्रकार अबद्धायुष्क के भी १० स्थान हैं और दोनों (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्क) के मिलकर २० स्थानों में नवमा-दसवाँ तथा १९-२० वाँ स्थान समान होने से दो स्थान कम करने से शेष १८ सत्त्वस्थान मिथ्यात्वगुणस्थान के कहे हैं।

विशेषार्थ- जिसके आगामी आयु का बन्ध हो गया है उसे बद्धायुष्क तथा जिसके आगामी आयु का बन्ध नहीं हुआ उसे अबद्धायुष्क कहते हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानों में जो प्रकृतियाँ कम की गई हैं उनके नाम कहते हैं-

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं।
देवतिरियाउसहिया, हारचउक्कं तु छच्चेदे॥३६६॥

आउदुगहारतित्थं, सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं॥३६७॥जुम्मं॥

अर्थ - मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानों में कम की गई प्रकृतियाँ क्रम से तिर्यञ्चायु देवायु। भुज्यमान-बध्यमान आयु से रहित कोई भी दोआयु, तीर्थङ्करप्रकृति। देवायु, तिर्यञ्चायु और आहारकचतुष्क। कोई भी दो आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क। कोई भी दो आयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्वप्रकृति। इन्हीं ८ प्रकृतियों में सम्यग्मिथ्यात्व मिलाने पर ९। इन्हीं ९ प्रकृतियों में देवद्विक मिलाने पर ११ प्रकृति। इन ११ प्रकृतियों में नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरसंघात ये ६ प्रकृतियाँ मिलाने पर १७। इन १७ प्रकृतियों में मनुष्यायु और उच्चगोत्र मिलाने पर १९ प्रकृति तथा इन्हीं १९ प्रकृतियों में मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी मिलाने पर २१ प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ - यहाँ तिर्यञ्च व देवायु के बिना १४६ प्रकृति की सत्ता से युक्त बद्धायुष्क का एक सत्त्वस्थान है तथा भुज्यमान-बध्यमान आयुबिना दो आयु व तीर्थङ्करप्रकृति रहित १४५ प्रकृति की सत्तायुक्त एक सत्त्वस्थान : देवायु-तिर्यञ्चायु, आहारकचतुष्क, इन ६ प्रकृतिबिना १४२ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान : दो आयु, आहारकचतुष्क, और तीर्थङ्कर इन सात प्रकृतिबिना १४१ प्रकृति से युक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ७ और एक सम्यक्त्व, इन ८ प्रकृतिबिना १४० प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ८ और सम्यग्मिथ्यात्व इन ९ प्रकृतिबिना १३९ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ९ और देवगति-देवगत्यानुपूर्वी इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ११ और नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिक अंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसङ्घात इन १७ प्रकृतियों के बिना १३१ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त १७ और मनुष्यायु, उच्चगोत्र इन १९ प्रकृतिबिना १२९ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त १९ और मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन २१ प्रकृतिबिना १२७ प्रकृतियुक्त एक सत्त्वस्थान है। इस प्रकार ये १० सत्त्वस्थान बद्धायुष्क के जानने चाहिए।

अबद्धायुष्क के भुज्यमानआयु की सत्ता पाई जाती है किन्तु बध्यमान आयु की सत्ता नहीं पाई जाती है अत: पूर्वोक्तसत्त्व से एक-एक बध्यमानआयु से रहित अबद्धायुष्क के १० सत्त्वस्थान जानना। इस प्रकार बद्धायुष्क व अबद्धायुष्कसम्बन्धी (१०+१०)२० सत्त्वस्थानों में यहाँ पर पुनरुक्त दो स्थानों से रहित मिथ्यात्वगुणस्थान के १८ सत्त्वस्थान हैं।

यहाँ पहले जिसके नरकायु का बन्ध हुआ ऐसा मिथ्यादृष्टि मनुष्य वेदकसम्यक्त्व को ग्रहण करके असंयतगुणस्थानवर्ती होकर केवली अथवा श्रुतकेवली के निकट सोलहकारण भावना की आराधना करके तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध प्रारम्भ करता है, इस प्रकार तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तासहित मरण के समय भुज्यमानमनुष्यायु का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यादृष्टि हुआ, उस समय उस जीव के तिर्यञ्चायु और देवायु के सत्त्व का अभाव है अत: १४६ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान पाया जाता है, यहाँ भंग भी एक

ही पाया जाता है। जिनके बध्यमानतिर्यञ्च व मनुष्यायु हो और भुज्यमानमनुष्यायु हो उन असंयतसम्यग्दृष्टि के तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ नहीं होता। बध्यमानदेवायु एवं भुज्यमानमनुष्यायुसहित असंयतादि चारगुणस्थानवर्तीजीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में नहीं जाते तथा भुज्यमाननरकायु बध्यमानमनुष्यायु इस प्रकार का एक भंग नरकायु के ६ माह शेष रहने पर होता है वहाँ मिथ्यात्वपना नहीं होता अतः भुज्यमानमनुष्यायु, बध्यमाननरकायु इस प्रकार एक ही भंग होता है, अन्य प्रकार प्रकृतियों के बदलने से १४६ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं पाया जाता है तथा अबद्धायुष्क के भुज्यमान एक आयु के सत्त्वबिना अन्य आयु का सत्त्व सम्भव नहीं हो सकता अतः देवायु, मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु बिना १४५ प्रकृति का सत्त्वरूप स्थान होता है वहाँ भी भुज्यमाननरकायुरूप एक भंग जानना, क्योंकि वह बध्यमाननरकायु और तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तावाला मनुष्य मरणकर नारकी हुआ उसके (अपर्याप्त-विश्राम-विशुद्धि-इन तीन) अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यादृष्टिपना रहता है, वहाँ अबद्धायुष्क होने से भुज्यमाननरकायु के सत्त्वबिना अन्यसत्त्व नहीं है उस जीव के १४५ प्रकृति का सत्त्वस्थान होता है अन्य जीव के इस प्रकार का सत्त्व नहीं पाया जाता।

बद्धायुष्क के दूसरा सत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमान इन दो आयु को छोड़कर शेष दो आयु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४५ प्रकृतियों का जानना। यहाँ पर भंग कहते हैं-

भुज्यमाननरकायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानमनुष्यायु - बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु, इस प्रकार १२ भंग हुए। इनमें भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु और भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु ये दो भंग पुनरुक्त हैं, क्योंकि भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु इस भंग में तिर्यञ्चायु की ही सत्ता है, अन्य आयु की नहीं। इसी प्रकार भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु में भी जानना चाहिए।

उपर्युक्त पुनरुक्तभंगों के बिना शेष १० भंग रहे, उनमें भुज्यमान-तिर्यञ्चायु-बध्यमान-नरकायु के और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु के समानता है अतः दोनों भङ्गों में नरकायु-तिर्यञ्चायु की ही सत्ता होने से दोनों भङ्गों में एक ही भङ्ग गिनना। इसी प्रकार भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु में तथा भुज्यमानमनुष्यायु और भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु में, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु और भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु में, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु एवं भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु में, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु तथा भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु में समानता है इसलिए एक-एक ही भङ्ग गिना, इस प्रकार १४५ प्रकृति की सत्ता वाले बद्धायुष्क के ५ भङ्ग जानने।

अबद्धायुष्क का दूसरा सत्त्वस्थान, १४५ प्रकृति में से बध्यमान एक आयु की सत्ता घटाने पर १४४ प्रकृतिरूप ही है अतः चारों गति के जीवों के भुज्यमान आयु की अपेक्षा चार भङ्ग हैं। भुज्यमानतिर्यञ्चायु वाले के तिर्यञ्चायुसहित १४४ प्रकृति का सत्त्वस्थान पाया जाता है। भुज्यमाननरकायु वाले के नरकायु की सत्ता सहित १४४ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान हैं। इस प्रकार प्रकृतियों के बदलने से यहां भी अन्य-अन्य भङ्ग जानना, तथैव अन्यत्र भी जानना चाहिए।

किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने पहले अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त करके वहाँ पर आहारक चतुष्क का बन्ध नहीं किया इसलिए उसके आहारकचतुष्कका सत्त्व नहीं है। अथवा अप्रमत्तगुणस्थान में आहारकचतुष्कका बन्ध करके पश्चात् असंयमी या मिथ्यादृष्टि होकर आहारकचतुष्क की उद्वेलना करके आहारकचतुष्क के सत्त्वरहित हुआ ऐसा जीव मनुष्य में उत्पन्न होकर पहले नरकायु का बन्ध करके पश्चात् वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त कर असंयतगुणस्थानवर्ती होता हुआ। केवली-श्रुतकेवली के निकट षोडशकारणभावना को भाकर तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध करके तथा तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व होने से भुज्यमान आयु के अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर द्वितीय और तृतीय पृथ्वी में गमन करने के योग्य मिथ्यादृष्टि होता है। जिस जीव के तीसराबद्धायुस्थान तिर्यञ्चायु, देवायु और आहारकचतुष्क के बिना १४२ प्रकृतिरूप पाया जाता है, वहाँ पर ही एक भङ्ग है। अतः इसीप्रकार से १४२ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, अन्य प्रकार से नहीं।

जिसने पहले मनुष्य-तिर्यञ्चायु का बन्ध कर लिया है उसके तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध नहीं होता और जिसके देवायु का बन्ध हो गया हो उसके तीर्थङ्करप्रकृति का सत्त्व हो सकता है, किन्तु मिथ्यादृष्टि के नहीं।

शङ्का - तीर्थङ्कर प्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ मनुष्य के ही कहा है तो फिर असंयत देव-नारकी के तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध कैसे कहा?

समाधान - यद्यपि तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ तो मनुष्य के ही होता है, तथापि वह यदि सम्यक्त्व से च्युत नहीं होता है तो अन्तर्मुहूर्तअधिक आठवर्षकम दो-कोटिपूर्वअधिक तैंतीससागरपर्यन्त उत्कृष्टरूप से प्रतिसमय तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध समयप्रबद्ध में होता रहता है। इसलिए देव-नारकी में भी तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध घटित होता है।

तृतीय अबद्धायुष्कसत्त्वस्थान मनुष्यायु के सत्त्व से भी रहित है अतः तिर्यञ्च-मनुष्य-देवायु और आहारकचतुष्टय इन सात प्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप है। यदि तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तावाला मरणकर द्वितीय-तृतीयनरक में गया वहाँ अपर्याप्तादि अवस्थाओं में तीन अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मिथ्यादृष्टि ही रहता है उसके भुज्यमाननरकायुबिना अन्यआयु का सत्त्व नहीं है। इसी जीव के इस प्रकार की सत्ता पाई जाती है अतः एक ही भङ्ग है, अन्य प्रकार से ऐसी सत्ता नहीं पायी जाती।

बद्धायुष्क का चतुर्थसत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दो आयु, आहारकचतुष्क और तीर्थंकर इन ७ प्रकृति के बिना १४१ प्रकृति रूप जानना। यहाँ पूर्वोक्त १२ भङ्गों में से दोपुनरुक्त और ५ समान भङ्गों के बिना शेष ५ भङ्ग जानना। तथैव अबद्धायुष्क का चतुर्थसत्त्वस्थान भुज्यमानआयुबिना शेष तीन आयु, आहारकचतुष्क और तीर्थंकरबिना १४० प्रकृतिरूप जानना। यहाँ भुज्यमान चार आयु की अपेक्षा चार भङ्ग हैं।

बद्धायुष्क का पञ्चमसत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु, आहारकचतुष्क, तीर्थंकर और सम्यक्त्वप्रकृति इन आठप्रकृति के बिना १४० प्रकृतिरूप है। यहाँ पूर्वोक्त प्रकार ही ५ भंग जानने। अर्थात् पूर्वकथित १२ भंगों में से २ पुनरुक्त और ५ समानभंगबिना शेष ५ भंग हैं। अबद्धायुष्क का पञ्चमसत्त्वस्थान पूर्वोक्त १४० प्रकृति में से बध्यमानआयुबिना १३९ प्रकृतिरूप जानना। यहाँ भी चारआयु के भेद से चारभंग हैं।

बद्धायुष्क की अपेक्षा छठा सत्त्वस्थान भुज्यमान-बध्यमानआयु बिना दोआयु, तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिबिना १३९ प्रकृतिरूप जानना। यहाँ पर भंग पूर्वोक्त प्रकार ५ ही जानने। तथैव अबद्धायुष्क की अपेक्षा उपर्युक्त १३९ प्रकृतियों में से बध्यमानआयुबिना १३८ प्रकृतिरूप है। यहाँ भंग चारगति की अपेक्षा चार ही जानना।

बद्धायुष्क की अपेक्षा देवद्विककी उद्वेलना जिनके हो गई है ऐसे एकेन्द्रिय, विकलत्रयजीवों के भुज्यमानतिर्यञ्चायु व बध्यमानमनुष्यायुबिना शेष देवायु और नरकायु, आहारकचतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतिरूप सातवाँ सत्त्वस्थान जानना। यहाँ एकेन्द्रिय व विकलत्रयसम्बन्धी भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु तथा भुज्यमान तिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु ये दो भंग हैं। उनमें भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमान-तिर्यञ्चायु यह पुनरुक्त भंग है अतः यहाँ नहीं गिना, इस कारण एक ही भंग जानना। उद्वेलना का स्वरूप जो पहले कहा है, वही यहाँ जानना।

अब मिथ्यादृष्टि के किसी-किसी स्थान के भङ्ग कहते हुए अबद्धायुष्क की अपेक्षा सातवें सत्त्वस्थानसम्बन्धी चारभङ्ग दो गाथाओं से कहते हैं-

उव्वेल्लिददेवदुगे, बिदियपदे चारि भंगया एवं।
सपदे पढमो बिदियं, सो चेव णरेसु उप्पण्णो॥३६८॥

वेगुव्वअट्ठरहिदे, पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो॥३६९॥जुम्मं॥

अर्थ- बद्धायुष्क के सप्तमसत्त्वस्थान के बाद अबद्धायुष्कापेक्षा १३६ प्रकृतिरूप ७ वाँ स्थान है। यहाँ जिसके देवगतिआदि दो प्रकृतियों की उद्वेलना हुई है उसके चारभंग हैं। वे इस प्रकार हैं- जैसे एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रयजीव के देवद्विक की उद्वेलना होने पर अपनी ही पर्याय में १३६ प्रकृतिरूप स्थान होना प्रथमभंग है। वही जीव मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ वहाँ दूसराभंग हुआ। जिसके वैक्रियक-अष्टक की उद्वेलना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रयजीव मरणकरके तिर्यञ्चपंचेन्द्रियजाति में उत्पन्न हुआ और वहाँ देवगति आदि छहप्रकृतियों का बन्ध करने पर भी आहारकचतुष्कआदि १० व नरकद्विक इन १२ के बिना १३६ रूप तीसरा भंग हुआ। वही जीव मरण करके मनुष्य हुआ और यहाँ पर देवगति आदि छह प्रकृतियों का बन्ध करता है, किन्तु नरकद्विकबिना १३६ प्रकृति का ही बन्ध करता है अतः यह चौथाभङ्ग जानना।

विशेषार्थ- अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तमसत्त्वस्थान १३६ प्रकृतिरूप है। जिसके देवद्विककी उद्वेलना हुई ऐसे एकेन्द्रिय अथवा विकलत्रय मिथ्यादृष्टि के उसी पर्याय में आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी ये ९ और भुज्यमानतिर्यञ्चायुबिना शेष तीनआयु इन १२ प्रकृति के बिना सत्त्व १३६ प्रकृति का पाया जाता है सो एक यह भङ्ग है। जिसके देवद्विक की उद्वेलना हो गई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयमिथ्यादृष्टि मरणकर मनुष्य हुआ उसके अपर्याप्तावस्था में मिथ्यात्व होने से सुरचतुष्क का बन्ध नहीं होता अतः पूर्वोक्त ९ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीनआयु इस प्रकार १२ प्रकृतिबिना १३६ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, यह दूसराभङ्ग हुआ। जिसके वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपांग, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरसंघातरूप वैक्रियिकअष्टककी उद्वेलना हो गई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरण करके पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च में उत्पन्न हुआ। यहाँ देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकसंघात और वैक्रियिकबन्धनरूप सुरषट्क का तो बन्ध किया और नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी का बन्ध नहीं किया। यहाँ आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी ये ९ और भुज्यमानतिर्यञ्चायु बिना तीन आयु इसप्रकार १२ प्रकृति बिना १३६ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, यह तृतीय भङ्ग है। वैक्रियिकअष्टक की उद्वेलना करने वाला वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ वहाँ सुरषट्क का बन्ध होने से पूर्वोक्त ९ और भुज्यमानमनुष्यायुबिना तीनआयु इस प्रकार १२ प्रकृति बिना १३६ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है यह चौथा भङ्ग है। यहाँ सर्वभंगों में १३६ प्रकृति ही हैं इसलिए स्थान तो एक ही है और प्रकृति बदलने के चारप्रकार हैं अतः भंग भी चार हुए।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा अष्टमसत्त्वस्थान नारकषट्ककी उद्वेलना होने से एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियजीव के होता है। भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायु के बिना देवनरकायु, आहारकचतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर,

वैक्रियिकअंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसंघात इन १७ प्रकृतिबिना १३१ प्रकृतिरूप जानना, यहाँ भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानमनुष्यायुरूप दो भंग हैं, किन्तु भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमानतिर्यञ्चायु यह भंग पुनरुक्त होने से एक ही भंग समझना।

अथानन्तर अबद्धायुष्क की अपेक्षा दो भङ्ग कहते हैं-

णारकछक्कुव्वेल्ले, आउगबंधुज्झिदे दु भंगा हु।
इगिविगलेसिगिभंगो, तम्मि णरे विदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

अर्थ- अबद्धायुष्क की अपेक्षा आठवें सत्त्वस्थान में आयुबन्ध के बदलने से दो भंग होते हैं। उनमें से नरकगति आदि ६ प्रकृतियों की उद्वेलना करने वाले एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियजीव के अपनी ही पर्याय में १३० प्रकृति रूप स्थान होना प्रथम भंग है तथा वही जीव मरणकर मनुष्य हुआ वहां आयु के बदलने से १३० प्रकृतिरूप स्थान होना दूसरा भंग है।

विशेषार्थ- अबद्धायुष्क की अपेक्षा अष्टमसत्त्वस्थान भुज्यमानआयु के बिना तीन आयु और आहारकचतुष्कआदि १५ प्रकृतिबिना १३० प्रकृतिरूप जानना। यहाँ भङ्ग २ हैं। नारकषट्क (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअंगोपांग, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसंघात) की उद्वेलना होने पर एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव के तिर्यञ्चायुबिना ३ आयु और आहारकचतुष्टयआदि १५ इस प्रकार १८ प्रकृति के बिना १३० प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, यह एक भंग है तथा वही एकेन्द्रिय या विकलत्रयजीव मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ वहाँ अपर्याप्तकाल में मनुष्यायु के बिना तीन आयु और आहारकचतुष्क आदि १५ प्रकृति के बिना १३० प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है यह दूसरा भंग है।

बद्धायुष्क की अपेक्षा नवमसत्त्वस्थान उच्चगोत्र की उद्वेलना होने पर तेजकाय-वायुकायजीवों में पाया जाता है, यह पूर्वोक्त १३० प्रकृतियों में से उच्चगोत्र का अभाव होने से १२९ प्रकृति रूप है, यहाँ भंग एक ही है। भुज्यमानतिर्यञ्चायु, बध्यमानतिर्यञ्चायुरूप भंग पुनरुक्त है। यहाँ अन्य प्रकार कोई भंग नहीं है इसलिए इसी का ग्रहण करना। तथैव अबद्धायुष्क की अपेक्षा ९ वाँ सत्त्वस्थान १२९ प्रकृतिरूप ही है। यह स्थान बद्धायुष्क के समान ही है अतः पुनरुक्त होने से इस स्थान का ग्रहण नहीं करना।

बद्धायुष्क की अपेक्षा १० वाँ सत्त्वस्थान मनुष्यद्विक की उद्वेलना होने पर अग्निकाय-वायुकायजीवों में पाया जाता है। यह स्थान पूर्वोक्त १२९ प्रकृति में से मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी के बिना १२७ प्रकृति के सत्त्ववाला है। यहाँ पर भी भंग एक ही है। तथैव अबद्धायुष्ककी अपेक्षा भी १० वाँ सत्त्वस्थान पूर्वोक्त १२७ प्रकृतिरूप ही जानना। इस प्रकार बद्धायुष्क-अबद्धायुष्ककी अपेक्षा इस

१० वें सत्त्वस्थान में प्रकृति और उसकी संख्या में कुछ भी विशेषता नहीं है। अतः यह स्थान ग्रहण नहीं करना।

अब बद्धायुष्कसम्बन्धी पाँच भेद कहते हैं-

णिरियाऊ -तिरियाऊ णिरिय-णराऊ तिरिय-मणुयाउ।
तेरंचिय-देवाऊ माणुस-देवाउ एगेगं ॥३७० क ॥

अर्थ- नरकायु-तिर्यञ्चायु, नरकायु-मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु-मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु-देवायु, मनुष्यायु-देवायु इन पाँच भेदों में से बद्धायुष्कजीव के कोई भेद होता है॥३७० क॥

विशेषार्थ- बद्धायुष्क की अपेक्षा पाँच भंगों का कथन है। बद्धायुष्क के आयुकर्म की दो प्रकृतियों का सत्त्व होता है। प्रकृति के बदलने से बद्धायुष्क के आयुकर्म की अपेक्षा पाँच भंग होते हैं, जिनका गाथा में उल्लेख किया गया है।

आगे १८ स्थानों के पुनरुक्त और असम्भव के बिना जो ५० भङ्ग कहे हैं उनमें से किस-किस स्थान में कितने-कितने भङ्ग होते हैं उनकी संख्या कहते हैं-

विदिये तुरिये पणगे, छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं।
विगचउपणछस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ॥३७१॥

अर्थ- बद्धायुष्कापेक्षा द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ सत्त्वस्थान में ५-५ भंग जानना तथा शेष प्रथम-तृतीय-सप्तम-अष्टम-नवम और दशम स्थान में १-१ भंग है। अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ और सप्तम स्थान में चार-चार भंग हैं। अष्टमस्थान में दो तथा शेष प्रथम व तृतीयस्थान में एक-एक भंग जानना चाहिए। इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्वस्थान १८ और उनके भंग ५० जानने चाहिए।

मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थान एवं भंग (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्क की अपेक्षा) की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंग संख्या	प्रकृति संख्या	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१	१४६	१४६ (१४८-२ तिर्यञ्च-देवायु) मिथ्यादृष्टि मनुष्य ने नरकायु का बन्ध करने के पश्चात् वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त किया और तीर्थङ्करप्रकृति का भी बन्ध कर लिया। मरण के अन्तर्मुहूर्त पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में आया उस समय उसके १४६ प्रकृति की सत्ता होती है। नोट : जिस सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने मनुष्य व तिर्यञ्चायु बाँध ली हो उसके तीर्थङ्कर-प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ नहीं होता है। ४ से ७वें गुणस्थानवर्ती जिस मनुष्य ने देवायु बाँध ली हो वह मिथ्यात्व में नहीं आ सकता।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१	१४५	१४५ (१४८-३, मनुष्य-तिर्यञ्च-देवायु) उपर्युक्त प्रकार से तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्ता सहित द्वितीय व तृतीय नरक का नारकी उत्पन्न होने से तीन अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यादृष्टि रहता है, उस समय उसके आगामी आयुका बन्ध नहीं होता, क्योंकि नरक में आयु का बन्ध अन्तिम ६ माह में होता है। अतः बध्यमान आयु की सत्ता कम होने से बद्धायुष्क की अपेक्षा जो १४६ प्रकृति का सत्त्वस्थान कहा उसमें से बध्यमान मनुष्य-आयु घटा देने पर १४५ प्रकृति की सत्तासहित सत्त्वस्थान यहाँ होता है।

मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१ न.ति. १ न.म. १ ति.म. १ ति.दे. १ म.दे.	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना दोआयु एवं तीर्थङ्कर) इस स्थान में १२ भंग सम्भव हैं, क्योंकि मनुष्य व तिर्यञ्चगति में चारों ही आयु का बन्ध हो सकता है, किन्तु नरक व देवगति में जीवों के तिर्यञ्च व मनुष्यगति का ही बन्ध हो सकता है।
		५		

भुज्यमान आयु	बध्यमान आयु	भंग संख्या
नरक	तिर्यञ्च	१
नरक	मनुष्य	१
तिर्यञ्च	नरक	०
तिर्यञ्च	तिर्यञ्च	०
तिर्यञ्च	मनुष्य	१
तिर्यञ्च	देव	१
मनुष्य	नरक	०
मनुष्य	तिर्यञ्च	०
मनुष्य	मनुष्य	०
मनुष्य	देव	१
देव	तिर्यञ्च	०
देव	मनुष्य	०

उपर्युक्त सन्दृष्टि में १२ भंगों में पुनरुक्त भंग में तथा जहाँ भुज्यमान व बध्यमान आयु समान ही है उस भंग के आगे शून्य दिया है अतः १२ में से यहाँ ५ ही भंग गिने हैं।

मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४४	१४४ (१४८-४, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर) १४५ प्रकृति की सत्तासहित पूर्वोक्त जीवकी १४५ सत्त्व प्रकृतियों में से बध्यमान आयु कम करने से अबद्धायुष्क के १४४ प्रकृति की सत्ता रही अतः ४ गति की अपेक्षा (८-९-१०-११वां) ४ भङ्ग होते हैं।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१	१४२	१४२ (१४८-६, तिर्यञ्च व देवायु और आहारकचतुष्क) कोई मिथ्यादृष्टिमनुष्य पहले अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ, किन्तु वहाँ उसने आहारकचतुष्क का बन्ध नहीं किया और मिथ्यात्वगुणस्थान को पुनः प्राप्त कर लिया। अथवा अप्रमत्तगुणस्थान में आहारकचतुष्क का बन्ध कर लिया पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें आकर पश्चात् असंख्यात वर्षों में आहारकचतुष्ककी उद्वेलना कर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ नरकायु का बन्ध करके पश्चात् वेदकसम्यग्दृष्टि होकर केवली-श्रुत-केवली के पादमूल में षोडशकारणभावना भाकर तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध प्रारम्भकरके उस कर्म से सहित होकर द्वितीय-तृतीय नरकको जानेवाला जीव भुज्यमानआयु का अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहने पर मरण से पूर्व मिथ्यात्व में आ गया। उसके १४२ प्रकृति का सत्त्व होता है तथा जिस मनुष्य ने देवायु का बन्ध कर लिया है एवं तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध आरम्भ कर लिया हो उसके सम्यक्त्व नहीं छूटता है तथा उसके प्रतिसमय आठवर्ष व एक अन्तर्मुहूर्तकम दोकोटि पूर्वसहित ३३ सागरपर्यन्त उत्कृष्टरूप से तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध समयप्रबद्ध में होता रहेगा। इस प्रकार नारकी होने वाले जीव के ही यह भङ्ग सम्भव है।

मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु और आहारकचतुष्क) तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्तासहित २-३ नरक में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टिजीव के निवृत्त्य-पर्याप्तावस्था में १४१ प्रकृति की सत्ता रहेगी, क्योंकि इस अवस्था में बध्यमानआयु की सत्ता नहीं रहती है तथा नरकायु के अन्तिम छह माह पूर्व तक १४१ प्रकृति का सत्त्व रहता है, क्यों कि नरकायु के अन्तिम छह माह में आयु बन्ध होता है।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१ न.ति. १ न.म. १ ति.म. १ ति.दे. १ म.दे. ५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) बद्धायुष्क की अपेक्षा पूर्वकथित दूसरे स्थान में चारों गति में जीवों के १२ भङ्गों में से २ पुनरुक्त और ५ समान भङ्गों को कम करके शेष जो पाँच भङ्ग कहे हैं। वे ही यहाँ भी जानना, किन्तु वहाँ और यहाँ अन्तर इतना ही है कि उस स्थान में आहारकचतुष्क का सत्त्व है और यहाँ नहीं है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	१४० (१४८-८, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थसत्त्व स्थान में ४ गति के जीवों की बध्यमान आयुको छोड़कर केवल भुज्यमानआयु की अपेक्षा ४ भङ्ग हैं।

मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४०	१४० (१४८-८, भुज्यमान-बध्यमानआय बिना दो आयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क और सम्यक्त्वप्रकृति) बद्धायुष्ककी अपेक्षा पूर्वोक्तस्थानों के समान ही यहाँ पर भी ५ भङ्ग हैं, किन्तु अन्तर इतना ही है कि यहाँ सम्यक्त्वप्रकृति भी कम हुई है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३९	(१४८-९, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क और सम्यक्त्वप्रकृति) अबद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानके समान ही यहाँ भी ४ भङ्ग जानना, किन्तु यहाँ पर सम्यक्त्वप्रकृति भी कम हुई है।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठ स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१३९	१३९ (१४८-९, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति) बद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चमस्थानके समान ही यहाँ पर भी ५ ही भङ्ग हैं, किन्तु यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम हुई है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठ स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३८	बद्धायुष्क की अपेक्षा छठे सत्त्वस्थान में कही गई १३९ प्रकृतियों में से बध्यमान आयु कम करने पर यहाँ १३८ प्रकृति की सत्ता पाई जाती है तथा अबद्धायुष्क की अपेक्षा पूर्वोक्त ५वें स्थान के समान ही यहाँ भी ४ भङ्ग जानना।

मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३७	१४८-११, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमान-मनुष्यायु के बिना २ आयु, आहारक-चतुष्क, तीर्थङ्कर, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति और देवगत्यानुपूर्वी। १३७ प्रकृति सहित यह सत्त्वस्थान एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियपर्यन्त तिर्यञ्चोंके हो सकता है। जिसने देवद्विककी उद्वेलना की है ऐसा जीव तिर्यञ्चायु व मनुष्यायु बाँध सकता है अतः दो भङ्ग होते हैं, किन्तु भुज्यमान-तिर्यञ्चायु व बध्यमानतिर्यञ्चायु को मानकर तो पुनरुक्त होने से उसे नहीं गिना। अतः तिर्यञ्चमनुष्यायु का एक भंग होता है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३६	१३६ (बद्धायुष्कापेक्षा सप्तमस्थान में कथित १३७ प्रकृति में से बध्यमानआयु कम करके १३६ प्रकृति रहती हैं।)
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३६	बद्धायुष्कापेक्षा सप्तमसत्त्वस्थान वाला एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियपर्यन्त मिथ्यादृष्टिजीव मरणकर मनुष्य हुआ उसके अपर्याप्तावस्था में १३६ प्रकृति की सत्ता होती है। (१४८-१२, भुज्यमान मनुष्यायुबिना शेष तीन आयु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और देवद्विक)
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३६	वही एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्तका तिर्यञ्चजीव जिसके वैक्रियिकअष्टककी उद्वेलना हो गई है तथा मरकर पंचेन्द्रियतिर्यञ्च हुआ तथा पर्याप्तावस्था में सुर-षट्क (देवद्विक, वैक्रियिकद्विक, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिक-संघात) का बन्ध किया ऐसे जीव की १३६ प्रकृति की सत्ता हो सकती है। १३६ (१४८-१२, भुज्यमानतिर्यञ्च-आयु बिना तीन आयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकद्विक)

मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	१	१३६	उपर्युक्त भङ्ग में तिर्यञ्च मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ। वहाँ बध्यमानआयु का बन्ध नहीं था, किन्तु सुरषट्कका बन्ध किया उस जीव के १३६ प्रकृति की सत्ता हो सकती है। यहाँ १३६ प्रकृति उपर्युक्त ही है, किन्तु भुज्यमानतिर्यञ्चायु के स्थान पर भुज्यमान मनुष्यायु होगी।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा अष्टम स्थान	१	१३१	एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रियपर्यन्त जिस जीव के नारकषट्ककी उद्वेलना हुई तथा मनुष्यायु का बन्ध किया हो उसके १३१ प्रकृति की सत्ता पाई जाती है। १३१ (१४८-१७, देव-नरकायु, तीर्थङ्कर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक, वैक्रियिकशरीरबन्धन और वैक्रियिकशरीरसंघात) यहाँ भुज्यमान और बध्यमान तिर्यञ्चआयु और भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमान-मनुष्यायुरूप दो भंग हो सकते हैं, किन्तु पहला भंग पुनरुक्त होने से यहाँ एक ही भंग ग्रहण करना।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा अष्टम स्थान	१	१३०	बद्धायुष्क की अपेक्षा पूर्वकथित आठवें स्थान में जो १३१ प्रकृतियाँ कही हैं उनमें से यहाँ पर बध्यमान मनुष्य आयु कम करने पर १३० प्रकृतिरूप स्थान होता है।
		१	१३०	एकेन्द्रिय या विकलत्रय जीव मरणकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ उसके निवृत्त्यपर्याप्तावस्था में १३० प्रकृति की सत्ता हो सकती है, किन्तु अबद्धायुष्क की अपेक्षा कथित उपर्युक्त अष्टम स्थान में भुज्यमान तिर्यञ्चायु है और यहाँ भुज्यमानमनुष्यायु है, इतना ही अन्तर है।

मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा नवम स्थान		१२९	उच्चगोत्र की जिसके उद्वेलना हुई है ऐसे तेजकाय-वायुकायजीवको यह स्थान होता है। १२९ (अबद्धायुष्कापेक्षाकथित अष्टम-स्थानसम्बन्धी १३० प्रकृतियों में से उच्च गोत्र कम कर दिया) तेजकाय-वायुकायजीव तिर्यञ्च हैं और तिर्यञ्चायु का ही बन्ध करते हैं अन्य आयु का नहीं।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा नवम स्थान	१	१२९	ऊपरवर्ती तेजकाय-वायुकायजीवों के बध्यमानतिर्यञ्चायु का बन्ध नहीं हुआ तो भी १२९ प्रकृति की ही सत्ता रहेगी तथा भंग भी उपर्युक्त ही रहेगा, प्रकृति भी वे ही रहेंगी अतः सत्त्वस्थान और भंग नहीं बदलने से ग्रहण नहीं किया।
मिथ्यात्व	बद्धायुष्क की अपेक्षा दशम स्थान	१	१२७	तेजकाय-वायुकाय (अबद्धायुष्कापेक्षा नवमस्थानवाले) जीवों के मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वीकी उद्वेलना होने से १२७ प्रकतिकी ही सत्ता रहती है। इस जीव ने तिर्यञ्चायु का बन्ध कर लिया है।
मिथ्यात्व	अबद्धायुष्क की अपेक्षा दशम स्थान	१	१२७	उपर्युक्त जीव ने तिर्यञ्चायुका पहले बन्ध नहीं किया तथापि १२७ प्रकृतिकी ही सत्ता रहेगी, सत्त्वस्थान और भंगमें भी कोई अन्तर नहीं होने से इसका ग्रहण नहीं किया गया है।

अब सासादन तथा मिश्रगुणस्थान में सत्त्वस्थान और भङ्गोंकी संख्या चार-गाथाओं में कहते हैं -

सत्ततिगं आसाणे, मिस्से तिगसत्तसत्तएयारा।
परिहीण सव्वसत्तं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७२॥

अर्थ - सासादनगुणस्थान में सर्वप्रकृतियों में से सात अथवा तीनप्रकृतिकमरूप दो सत्त्वस्थान हैं। मिश्रगुणस्थान में सर्वप्रकृतियों में से तीन, सात, सात और ११ प्रकृति कमरूप चारस्थान तो बद्धायुष्क की अपेक्षा और अबद्धायुष्क की अपेक्षा उनमें से भी एक-एक प्रकृति कमरूप चारस्थान बद्धायुष्क के समान ही जानना। इसप्रकार सासादन-गुणस्थान में चार और मिश्रगुणस्थान में ८ स्थान जानने चाहिए।

आगे सासादनगुणस्थान के सत्त्वस्थानों में जो प्रकृतियाँ कम हुई हैं उनके नाम कहते हैं-

तित्थाहारचउक्कं, अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ॥३७३॥

अर्थ - सासादनगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकचतुष्क और भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना शेष दोआयु इन सातप्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान तथा प्रथमस्थान में कम की गई सातप्रकृतियों में से आहारकचतुष्क (आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, आहारकशरीरबन्धन, आहारकशरीरसंघात) के बिना शेष तीनप्रकृति कम करने से १४५ रूप दूसरा स्थान जानना तथा १४५ प्रकृतिरूप इस सत्त्वस्थान में आहारकचतुष्क का सत्त्व कहा है, वह अन्य आचार्यों के मतानुसार है।

मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानों को कहते हैं -

तित्थण्णदराउदुगं, तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च।
हारचउक्के सहिया, ते चेव य होंति एयारा ॥३७४॥

अर्थ - मिश्रगुणस्थान में तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दोआयु इन तीन बिना १४५ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान, तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमान आयुबिना दो आयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क अथवा आहारकचतुष्क इन सातप्रकृतिबिना १४१ प्रकृतिरूप द्वितीयस्थान, तृतीयस्थान भी इसीप्रकार १४१ प्रकतिरूप ही है, तीर्थङ्कर, भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दो आयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क और आहारकचतुष्क इन ११ प्रकृतिबिना १३७ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान इसप्रकार ये चारस्थान बद्धायुष्कापेक्षा तथा इनमें एक-एक प्रकृतिरूप चारस्थान अबद्धायुष्कापेक्षा जानना चाहिए।

अथानन्तर उपर्युक्त गुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थानों में भङ्ग की संख्या कहते हैं -

साणे पण इगि भंगा, बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव।
मिस्से पणपण भंगा, बद्धस्सियरस्स चउ चऊणेया ॥३७५॥

अर्थ - सासादनगुणस्थानसम्बन्धी बद्धायुष्क की अपेक्षा दो सत्त्वस्थानों में पाँच और एक तथा

अबद्धायुष्क की अपेक्षा दो सत्त्वस्थानों में ४ और २ भङ्ग हैं। इसप्रकार चारस्थानसम्बन्धी १२ भङ्ग जानना। मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी बद्धायुष्क की अपेक्षा चारस्थानों में पाँच-पाँच भंग एवं अबद्धायुष्क की अपेक्षा चारस्थानों के चार-चार भङ्ग होनेसे यहाँ आठस्थानों के ३६ भंग हुए।

बंधंदेवाउगुवसमसद्दिट्ठी बंधिऊण आहारं।
सो चेव सासणे जादो तरिसं पुण बंध एक्कोदु॥३७५क॥
तस्सेव य बंधाउगठाणे भंगा दु भुज्जमाणम्मि।
मणुवाउगम्मि एक्को देवेसु ववणगे विदियो॥३७५ख॥

अर्थ - देवायु का बन्ध करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होकर (सप्तमगुणस्थान में) आहारक का बन्ध करके सासादनगुणस्थान में जाने पर उसके आयुबन्ध की अपेक्षा मनुष्य-देवायुरूप एकही भङ्ग होता है।

उपशमसम्यग्दृष्टि मनुष्य आहारकचतुष्क का बन्ध करके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है और देवायु का बन्ध करता है तो उसके भुज्यमानआयु की अपेक्षा सासादनगुणस्थान में दो भङ्ग होते हैं। सासादनगुणस्थान में देवायु के बन्ध से पूर्व 'मनुष्यायु' का एकभङ्ग। सासादनगुणस्थान में मरणकर देवों में उत्पन्न होने पर 'देवायु' का दूसरा भङ्ग होता है।

विशेषार्थ - सासादनगुणस्थान में १४१ प्रकृतिरूप बद्धायुष्कापेक्षा सत्त्वस्थान में चारों गति के बद्धायुष्कजीवों की अपेक्षा पूर्वोक्तप्रकार १२ भंग में से समभंग और पुनरुक्तभंगविना ५ भंग जानना तथा १४० प्रकृतिरूप अबद्धायुष्कस्थान में भुज्यमान चारआयु की अपेक्षा चारभंग जानना। १४५ प्रकृतिरूप बद्धायुष्क में जिसके आहारकचतुष्क का बन्ध हुआ उसमें किसी को सासादनगुणस्थान की प्राप्ति होती है, इस उपदेशकी अपेक्षा एक ही भंग जानना। १४४ प्रकृतिरूप अबद्धायुष्कस्थान में दो भंग हैं। वहाँ भुज्यमान-मनुष्यायुवाला उपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्क का बन्धकरके सासादनगुणस्थानवर्ती हुआ यह भी एकभङ्ग है तथा पहले जिसके देवायु का बन्ध हुआ था ऐसा उपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्क का बन्धकरके सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो मरकर देव हुआ, यहाँ भुज्यमानदेवायु का सत्त्व पाया जाता है, यह दूसराभङ्ग है।

शंका - आयुबन्ध के शेष चार भङ्ग क्यों नहीं होते?

समाधान - गाथा ३३४ के अनुसार देवायु के अतिरिक्त यदि अन्य आयु का बन्ध हो जावे तो मनुष्य संयम धारण नहीं कर सकता। आहारकशरीर का बंध संयमी मनुष्य सप्तमगुणस्थान में करता है। अतः मनुष्य व देवायुके अतिरिक्त शेष चारभङ्ग सम्भव नहीं हैं।

मिश्रगुणस्थान में बद्धायुष्क की अपेक्षा चारों स्थानों में पूर्वोक्तप्रकार १२ भङ्ग में से पुनरुक्त और समभङ्गबिना पाँच-पाँच भङ्ग जानने। अबद्धायुष्क के चारों स्थानों में भुज्यमान चारआयु की अपेक्षा चार-चार भङ्ग जानना।

शंका - मिश्रगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी का सत्त्व क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान - असंयतादि चारगुणस्थानोंमें से कहीं पर तीनकरण करके अनन्तानुबन्धीकषाय का विसंयोजन किया और मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) के उदय से मिश्रगुणस्थानवर्ती हुआ उसके अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं पाया जाता।

शंका - सम्यग्मिथ्यात्वनामक तृतीयगुणस्थान में जीव चारित्रमोहनीय को अनन्तानुबन्धीरूप से क्यों नहीं परिणमा लेता?

समाधान - क्योंकि मिश्रगुणस्थानमें चारित्रमोहनीयको अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणमाने के कारणभूत मिथ्यात्व का उदय नहीं पाया जाता है अथवा सासादनगुणस्थान में जिसप्रकार के तीव्रसंक्लेशरूप परिणाम पाये जाते हैं, मिश्रगुणस्थान में उसप्रकार के तीव्रसंक्लेशरूप परिणाम नहीं पाये जाते, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चारित्रमोह को अनन्तानुबन्धीरूप से नहीं परिणमाता है।[1]

१. जयधवल पु. २ पृ. २१९।

सासादन व मिश्रगुणस्थान में बद्धायुष्क व अबद्धायुष्क की अपेक्षा सत्त्वस्थान और भङ्ग तथा उनमें पायी जानेवाली प्रकृतियों की सन्दृष्टि —

सासादन	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान व बध्यमान आयुबिना दो आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) सासादनगुणस्थानको चारों ही आयु बाँधने वाला जीव प्राप्त कर सकता है। मिथ्यात्वगुणस्थान में बद्धायुष्कापेक्षा द्वितीयस्थान में १२ भंग कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी १२ भङ्ग होते हैं, किन्तु पुनरुक्तभङ्ग २, समभङ्ग ५ इन ७ के बिना शेष ५ ही भङ्ग ग्रहण किये हैं।
सासादन	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	उपर्युक्त १४१ प्रकृति में से बध्यमान-आयु कम करने पर १४० प्रकृतिरूप यह स्थान होता है। इसके चार भंग चारोंगति की अपेक्षा हैं।
सासादन	बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीय स्थान	१	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायुबिना २ आयु और तीर्थङ्कर) मनुष्य, आहारकचतुष्क का बन्ध करलेने के बाद इस गुणस्थान में आ सकता है। किसी आचार्य के मतसे इस अवस्था में आहारकचतुष्क का सत्त्व नहीं है अर्थात् १४१ प्रकृतिका सत्त्व होता है।
सासादन	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१	१४४	बद्धायुष्क की अपेक्षा कथित द्वितीय स्थानकी १४५ प्रकृतियों में से बध्यमानदेवायु कम करने पर १४४ प्रकृति रहीं।

		१	१४४

भुज्यमानमनुष्यआयुवाला उपशम-सम्यग्दृष्टिजीव आहारकचतुष्कका बन्धकरनेके बाद सासादनगुणस्थानमें आया तब उसके १४४ प्रकृतिकी सत्ता रहेगी।

जिस उपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्य ने पहले देवायुका बन्ध किया हो और सप्तमगुणस्थान में आहारकचतुष्क का बन्ध करके प्रमत्त होकर द्वितीयगुणस्थान में आया और मरण किया तथा देव होगया उससमय उसके १४४ प्रकृति की सत्ता रहती है। अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान के प्रथमभंग में भुज्यमानमनुष्यायु होती है। यहाँ भुज्यमान देवायु है। इस गुणस्थानमें १२ भंग न होकर ११ भंग ही होते हैं ऐसा किन्हीं आचार्यों का मत है (गाथा ३९४ देखो) और बध्यमानदेवायुवाला द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिजीव सासादनगुणस्थानमें मरता नहीं, ऐसा उनका मत है।

मिश्र	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे.	५	१४५
मिश्र	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे.	४	१४४

१४५ (१४८-३, भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना दो आयु और तीर्थङ्कर)

यह गुणस्थान चारोंही गतिके जीवों में पाया जाता है तथा चारों ही बध्यमानआयुवाला जीव इस गुणस्थान को प्राप्त करता है। अतः मिथ्यात्वगुणस्थानमें बद्धायुष्कके द्वितीयस्थानमें कथित १२ भंगों के समान यहाँ भी १२ भंग होते हैं, किन्तु पूर्वके समानही दोपुनरुक्त और पाँच समानभंग कम करने पर ५ ही भंग ग्रहण किये हैं।

बद्धायुष्ककी अपेक्षा प्रथमस्थानमें कथित १४५ प्रकृतियोंमें से बध्यमानआयुको कम करने पर १४४ प्रकृति रहीं। चारोंगतिसम्बन्धी भुज्यमानआयु की अपेक्षा चार भंग होते हैं।

मिश्र	बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर और अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क) असंयतादि चारगुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थानमें तीनकरण के द्वारा अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्क की विसंयोजना जिसने की हो तथा दर्शनमोहनीयका क्षय करनेके सम्मुख न हो वह जीव संक्लिष्टपरिणामोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे मिश्रगुणस्थानमें आता है तथा १४१ प्रकृति की सत्तावाला होता है। इस स्थान में मिथ्यात्वगुणस्थान में बद्धायुष्क की अपेक्षा कथित द्वितीयस्थान के समान १२ भंग होते हैं किन्तु दो पुनरुक्त और ५ समान भंगों को छोड़कर ५ ही भंग ग्रहण किये हैं।
मिश्र	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	१४० (बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान में कथित १४१ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करने से १४० प्रकृतिकी सत्ता रहती है) ४ भंग, भुज्यमानचारों आयुकी अपेक्षा
मिश्र	बद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१ न. ति. १ न. म. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर, आहारक-चतुष्क) चारों ही गतिके जीव इस गुणस्थानमें आ सकते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थान के बद्धायुष्क की अपेक्षा कथित द्वितीयस्थान में जो १२ भंग कहे गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी १२ भंग जानना, किन्तु पूर्वानुसार यहाँ भी दो पुनरुक्त और ५ समान भंगों को कमकरके शेष ५ भंग ही ग्रहण किये गये हैं।

मिश्र	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१४०	बद्धायुष्क के तृतीयस्थान में जो १४१ प्रकृतियाँ कही गई हैं उनमें से बध्यमान आयु कम करने पर १४० प्रकृति रहती हैं। चारों गति की अपेक्षा से ४ भंग होते हैं।
मिश्र	बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१ न. ति. १ ति. म. १ ति. दे. १ म. दे. ५	१३७	१३७ (१४८-११, भुज्यमान-बध्यमान आयु-बिना दो आयु, तीर्थङ्कर, अनन्तानुबन्धी-कषायचतुष्क, आहारकचतुष्क) बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीयस्थान में जो जीव बताया है वैसा ही जीव यहाँ भी समझना, किन्तु आहारकचतुष्क यहाँ नहीं पाया जाता है। भंग यहाँ भी १२ ही हैं, किन्तु पुनरुक्त और समभंग बिना ५ ही भंग ग्रहण किये गये हैं।
मिश्र	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१ न. १ ति. १ म. १ दे. ४	१३६	१३६ (बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थस्थान में कथित १३७ प्रकृति में से बध्यमान आयु कम करने पर १३६ प्रकृति रहती हैं। चारगति की अपेक्षा ४ भंग होते हैं।)

आगे असंयतगुणस्थान में ४० स्थानों की सिद्धि करते हुए उन स्थानों के १२० भङ्ग व प्रकृतियों की संख्या आदि का कथन ६ गाथाओं से कहते हैं -

दुग छक्क सत्त अट्ठं, णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा।
णभमिगि चउ पण हीणं, बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७६॥

तित्थाहारे सहियं, तित्थूणं अह य हारचउहीणं।
तित्थाहारचउक्केणूणं इति चउपडिट्ठाणं ॥३७७॥

अण्णदरआउसहिया, तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया।
मिच्छं मिस्सं सम्मं, कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

आदिमपंचट्ठाणे, दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स।
इयरस्सवि णादव्वा, तिगतिगइगि तिण्णितिण्णेव ॥३७९॥

मणुवणिरयाउगे णरसुर आऊ णिरागबंधम्मि।
तिरियाऊणा तिगिदरे मिच्छव्वणम्मि भुज्जमणुसाऊ ॥३७९क॥

बिदियस्सवि पणठाणे, पण पण तिग तिण्ण चारि बद्धस्स।
इयरस्स होंति णेया, चउचउइगिचारि चत्तारि ॥३८०॥

पुव्वुत्तपणपणाउग, भंगा बंधस्स भुज्जमणुसाऊ।
अण्णतियाऊसहिया, तिगतिग चउणिरयतिरियाऊण ॥३८०क॥

आदिल्लदससु सरिसा, भंगेण य तिदियदसयठाणाणि।
बिदियस्स चउत्थस्स य, दसठाणाणि य समा होंति ॥३८१॥

अर्थ – दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृतियों से रहित पाँचस्थान बराबर लिखने तथा इसी प्रकार पाँच-पाँच स्थानकी चार पंक्ति नीचे-नीचे लिखना। इनमें प्रथमपंक्ति के पाँचस्थानों में तो शून्य घटाना अर्थात् वे पाँचोंस्थान जैसे थे वैसे ही २,६,७,८ और ९ प्रकृतिरहित जानना तथा द्वितीयपंक्ति में एक-एक प्रकृति और घटाने से वे पाँचों स्थान सर्वप्रकृतियों में से ३, ७, ८, ९ और १० प्रकृतिरहित जानने। तृतीय पंक्ति में चार-चार प्रकृति घटाना। वे पाँचोंस्थान ६, १०, ११, १२, १३ प्रकृति-रहित जानना। चतुर्थपंक्तिमें पाँच-पाँच प्रकृति घटाना, वे पाँचोंस्थान ७, ११, १२, १३, १४ प्रकृति-रहित जानना।

बद्धायुष्क व अबद्धायुष्क की प्रथम दो पंक्तियों के जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे तीर्थंकरप्रकृति सहित और तीर्थंकरप्रकृति रहित जानने इसलिये द्वितीयपंक्ति में एक-एक प्रकृति घटाई। बद्धायुष्क और अबद्धायुष्क की तीसरी दो पंक्तियों के जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, आहारकबन्धन, आहारकसङ्घातरहित जानने अतः तीसरीपंक्ति में चार-चार प्रकृति घटाई। बद्धायुष्क और अबद्धायुष्ककी चौथी दो पंक्तियों के जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे आहारकचतुष्क और तीर्थङ्ररहित जानना इसलिए चतुर्थपंक्ति में पाँच-पाँच प्रकृति घटाई इस प्रकार चारपंक्तिरूप स्थान जानने ॥३७७॥

तिर्यञ्चायु और एक कोई अन्य आयु ये दो प्रकृति, तथा दो तो ये और अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये ६, इन्हीं ६ में मिथ्यात्वप्रकृति मिलाने से ७, पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति मिलाने से ८ और इन्हीं में सम्यक्त्वप्रकृति मिलाने से ९ प्रकृति जानना॥३७८॥

प्रथम पंक्ति के बद्धायुष्कसम्बन्धी पाँचस्थानों में दो-दो भङ्ग होने से १० भङ्ग हैं। इसके आगे अबद्धायुष्कसम्बन्धी पाँचस्थानों में तिर्यंचायुबिना क्रमसे ३-३-१-३-३ भङ्ग हैं। इसप्रकार अबद्धायुष्क के १३ भङ्ग हैं॥३७९॥

तीर्थङ्करप्रकृति की सत्तावाले जीव के बद्धायुष्कापेक्षा अपुनरुक्तभंग दो होते हैं। (१) मनुष्यायु-नरकायु (२) मनुष्यायु-देवायु। अबद्धायुष्क जीव के तिर्यंचायु को छोड़कर अन्य तीन भुज्यमान-आयु की अपेक्षा तीनभंग होते हैं, किन्तु क्षायिक सम्यक्त्व के सम्मुख जीव के, जिसने मिथ्यात्वप्रकृति का क्षय कर दिया है, भुज्यमान मनुष्यायु का एक ही भंग होगा, क्योंकि दर्शनमोह की क्षपणा मनुष्य ही करता है॥३७९क॥

द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी बद्धायुष्क के पाँचस्थानों में क्रम से ५-५-३-३ और ४ भंग हैं। अतः ये सर्व २० भंग हैं तथा अबद्धायुष्क के ५ स्थानों में अनुक्रम से ४-४-१-४ और ४ भंग हैं। अतः ये सर्व १७ भंग हैं॥३८०॥

गाथा ३८० में जो द्वितीयपंक्ति के प्रथम व द्वितीयस्थान में आयु के पाँच-पाँच भंग बतलाए गए हैं, उनका कथन पूर्वमें कही गई गाथा ३६४ ख के अनुसार जानना। तृतीय व चतुर्थस्थानमें आयुके जो तीन-तीनभंग कहे हैं, उनमें भुज्यमान तो मनुष्यआयु है और बद्ध्यमान शेष तीन आयु (नरक-देव-तिर्यंच) की अपेक्षा तीनभंग होते हैं। (दर्शनमोहकी क्षपणा मनुष्य ही करता है अतः भुज्यमान मनुष्यायु ही होती है, अन्य आयु भुज्यमान नहीं हो सकती, क्योंकि अन्यगतियों में मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का क्षय संभव नहीं है।) पाँचवेंस्थान में जो ४ भंग कहे हैं वे पूर्वोक्त पाँच भंगोंमें से नरकायु-तिर्यंचायु रूप १ भंग कम करके शेष चारभंग जानना। (क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि नारकी तिर्यंचायु का बन्ध नहीं कर सकता, मात्र मनुष्यायु का ही बंध करेगा। क्षायिकसम्यग्दृष्टितिर्यंच के भी नरकायु का बन्ध संभव नहीं है, उसके देवगति का ही बन्ध होगा।)

प्रथमपंक्तिसम्बन्धी बद्धायुष्क व अबद्धायुष्क के ५-५ स्थानों की अपेक्षा १० स्थान हैं उनमें जो भंग हैं उसीके समान तृतीयपंक्ति के १० स्थानोंमें भी भंग जानना॥३८१॥

तृतीयपंक्ति में प्रथमपंक्ति के समान बद्धायुष्क के १० व अबद्धायुष्क के १३ भंग हैं। द्वितीय तथा चतुर्थपंक्तिसम्बन्धी दशस्थानों के भंग समान हैं।

विशेषार्थ – बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि के प्रथमपंक्तिसम्बन्धी जो पाँचस्थान हैं वे

तीर्थङ्करप्रकृतिसहित हैं, किन्तु तिर्यञ्चके तीर्थङ्कर प्रकृतिके सत्त्वका अभाव है। अतः प्रथमपंक्तिका प्रथम स्थान, भुज्यमान-बध्यमान तिर्यञ्चायु और एक अन्य कोई आयु, इन दो बिना १४६ प्रकृतिरूप है। जहाँ भुज्यमान-मनुष्यायु, बध्यमान-नरकायु, भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान देवायु, भुज्यमान नरकायु-बध्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान देवायु-बध्यमान मनुष्यायु इस प्रकार ४ भंग हैं, वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान नरकायु, भुज्यमान नरकायु-बध्यमान मनुष्यायु, इन दोनों भंगोंमें प्रकृति समान है, इसलिए एक ही भंग ग्राह्य है तथा भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमान देवायु, भुज्यमान देवायु-बध्यमान मनुष्यायु इन दोनों भंगों में प्रकृति समान हैं अतः एक ही भंग ग्राह्य है, ऐसे दोभंग जानना। प्रथमपंक्तिमें अनन्तानुबन्धीके विसंयोजकजीवके अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, तिर्यञ्चायु और अन्य कोई एकआयु इन छहप्रकृति बिना १४२ प्रकृतिरूप दूसरा सत्त्वस्थान है। जिसके मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय हुआ हो उसके १४१ प्रकृतिरूप तीसरास्थान, जिसने सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय किया है उसके १४० प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान, जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिका भी क्षय हुआ है उसके १३९ प्रकृतिरूप पाँचवाँ सत्त्वस्थान है। इन चारों-स्थानों में भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु और भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायुरूप दो-दो भंग हैं।

अबद्धायुष्क की प्रथमपंक्तिसम्बन्धी पाँच सत्त्वस्थानों में प्रथमस्थान १४५ प्रकृतिरूप और अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होनेपर दूसरास्थान १४१ प्रकृतिरूप है। इन दोनों में भुज्यमाननरकायु-मनुष्यायु व देवायु की अपेक्षा ३ भंग हैं तथा मिथ्यात्व का क्षय होने पर तीसरास्थान १४० प्रकृतिरूप है, यहाँ भुज्यमानमनुष्यायुरूप एक ही भंग है। मिश्रमोहनीय (सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृति का क्षय होने पर १३९ प्रकृतिरूप चतुर्थ-स्थान है, यहाँ भुज्यमाननरकायु मनुष्यायु और देवायु की अपेक्षा तीनभंग हैं क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिमनुष्य मरणकर नरकगति या देवगति में उत्पन्न होता है, यहाँ नरक-देवगतिमें भी ऐसी सत्ता पाई जाती है। सम्यक्त्व-प्रकृति का अभाव होनेपर १३८ प्रकृतिकी सत्तारूप पाँचवाँस्थान है, यहाँ भी भुज्यमान मनुष्य-देव और नरकायु की अपेक्षा तीन भंग पाये जाते हैं तथा मनुष्यायुसहित १३८ प्रकृतिकी सत्तावाला क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव इसीभवमें घातियाकर्मों का नाशकरके केवली हुआ तो इस जीवके गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक न होकर तपआदि तीन ही कल्याणक होते हैं एवं जो तीसरे भवमें घातियाकर्मोंका नाशकरते हैं वे नियम से देवायुका ही बन्ध करते हैं। यहाँ देवपर्यायमें देवायुसहित १३८ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है इसको आयुके छहमाह अवशेष रहने पर मनुष्यायु का बन्ध होता है और पञ्चकल्याणक भी होते हैं। जिसके मिथ्यात्वावस्था में नरकायुका बन्ध हुआ, पश्चात् सम्यग्दृष्टिहोकर तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध किया हो तो वह जीव नरक में उत्पन्न होता है, यहाँ नरकायुसहित १३८ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है, इसके छह मास आयु अवशिष्ट रहने पर मनुष्यायु का ही बन्ध होता है और तब इस नारकी के उपसर्ग का निवारण हो जाता है[1] तथा गर्भादिकल्याणक होते हैं।

१. "तित्थयर संतकम्मुवसग्गं णिरए णिवारयंति सुरा। छम्मासाउगसेसे सग्गे अमलाणमालं को ॥१९५॥" त्रि.सा. जिन नारकियों के तीर्थङ्करनामकर्म सत्तामें है, उनकी आयुमें छःमाह शेष रहने पर देवगण उन नारकियों का उपसर्ग निवारण करदेते हैं और स्वर्ग में माला नहीं मुरझाती।

बद्धायुष्कके द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी पाँच सत्त्वस्थानोंमें भुज्यमान-बध्यमानआयुबिना दो आयु और तीर्थंकरप्रकृतिरहित १४५ प्रकृतिरूप प्रथम स्थान है, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर १४१ प्रकृतिरूप दूसरास्थान है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें जिसप्रकार १४५ प्रकृतिके सत्त्वस्थानमें चारोंगतिसम्बन्धी १२ भंगोंमें से दो पुनरुक्त और ५ समभंगबिना पाँच भंग ग्रहण किये थे उसीप्रकार इनदोनों स्थानोंमें भी ५-५ भंग जानना। मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय होने पर १४० प्रकृतिरूप तृतीयस्थान है, यहाँ भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमाननरकायु-तिर्यञ्चायु-देवायु तथा मनुष्यायुकी अपेक्षा चार भङ्ग होते हैं। इनमें भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु यह भङ्ग पुनरुक्त है और प्रकृतिसमान होनेसे इसके बिना शेष तीन भङ्ग ग्रहण करना। सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृतिका क्षय होने पर १३९ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान है यहाँ भी पूर्वोक्त तीनभङ्ग जानना। सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होने पर १३८ प्रकृतिरूप पाँचवाँस्थान है, यहाँ भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु, भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु इन सात भङ्गों में पाँचवाँभङ्ग पुनरुक्त है, क्योंकि एकमनुष्यायु ही है तथा प्रथम व तृतीयभङ्ग समान है, छठा और सातवाँभङ्ग भी समान है, क्योंकि इनमें प्रकृतियोंकी समानता है अतः इन तीनभंगबिना यहाँ ४ ही भंग ग्रहण करना। चारोंगतिसम्बन्धी पूर्वोक्त १२ भंगोंमें से यहाँ पाँचभंग नहीं होते, क्योंकि तिर्यञ्चायु-नरकायु का भंग सम्भव नहीं है, इसलिए उपर्युक्त ७ भंगों में से चार ही भंग कहे हैं।

अबद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयपंक्तिसम्बन्धी पाँचस्थानोंमें भुज्यमानआयुबिना तीनआयु और तीर्थङ्करप्रकृतिबिना १४४ प्रकृतिरूप प्रथमस्थान, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेपर १४० प्रकृतिरूप द्वितीयस्थान है। इन दोनों स्थानोंमें भुज्यमान-चारोंआयुकी अपेक्षा चार-चार भंग हैं तथा मिथ्यात्वप्रकृति का क्षय होनेपर १३९ प्रकृतिरूप तीसरास्थान है यहाँ भुज्यमानमनुष्यायुबिना अन्यभंगका अभाव है इसलिए एक ही भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय होने पर १३८ प्रकृतिरूप चतुर्थस्थान है यहाँ भुज्यमानमनुष्यायु और कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा भुज्यमाननरकायु-तिर्यञ्चायु और देवायुरूप चारभंग हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होनेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टिके १३८ प्रकृतिरूप पाँचवाँस्थान है। यहाँ भुज्यमान चार आयु की अपेक्षा चार भंग हैं।

बद्धायुष्क-अबद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयपंक्तिमें आहारकचतुष्करूप चार-चार प्रकृति घटाने पर दस स्थान होते हैं। यहाँ प्रथमपंक्तिके समान २३ भंग जानने, क्योंकि यहाँपर भी तीर्थङ्करप्रकृतिका सत्त्व है।

चतुर्थपंक्ति में बद्धायुष्क व अबद्धायुष्क की अपेक्षा दस स्थानों में तीर्थङ्कर व आहारकचतुष्करूप पाँच-पाँच प्रकृति घटाने पर दस स्थान होते हैं। यहाँ द्वितीयपंक्ति के समान ३७ भंग जानना, क्योंकि यहाँ पर तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है। इस प्रकार असंयतगुणस्थानमें सर्वमिलकर ४० सत्त्वस्थान और उनके १२० भंग हैं।

असंयतगुणस्थानके ४० सत्त्वस्थान व १२० भङ्गोंकी संक्षिप्तसन्दृष्टि –

				प्रथमपंक्ति					
				दो व तीन आयु रहित	अनंतानुबंधी चतुष्करहित	मिथ्यात्व-रहित	सम्यग्मिथ्यात्व रहित	सम्यक्त्व रहित	जोड़
तीर्थङ्करसहित	बद्धायुष्क	दो आयु रहित	सत्त्व	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९	५ स्थान
			भंग	२	२	२	२	२	१० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीन आयु रहित	सत्त्व	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५ स्थान
			भंग	३	३	१	३	३	१३ भङ्ग

द्वितीयपंक्ति

तीर्थङ्करसहित	बद्धायुष्क	दो आयु रहित	सत्त्व	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८	५ स्थान
			भंग	५	५	३	३	४	२० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीन आयु रहित	सत्त्व	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७	५ स्थान
			भंग	४	४	१	४	४	१७ भङ्ग

तृतीयपंक्ति

तीर्थसहित व आहा. चतुष्करहित	बद्धायुष्क	दो आयु रहित	सत्त्व	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५	५ स्थान
			भंग	२	२	२	२	२	१० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीन आयु रहित	सत्त्व	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५ स्थान
			भंग	३	३	१	३	३	१३ भङ्ग

चतुर्थपंक्ति

तीर्थङ्कर व आहारक चतुष्करहित	बद्धायुष्क	दो आयु रहित	सत्त्व	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४	५ स्थान
			भंग	५	५	३	३	४	२० भङ्ग
	अबद्धायुष्क	तीन आयु रहित	सत्त्व	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३	५ स्थान
			भंग	४	४	१	४	४	१७ भङ्ग
				असंयतगुणस्थानसम्बन्धी सर्वसत्त्वस्थान तथा सर्वभङ्गों का योग					४० स्थान १२० भङ्ग

असंयतगुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वस्थान व भङ्गसम्बन्धी विस्तृतसन्दृष्टि –

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंग संख्या	प्रकृति संख्या	विशेष विवरण
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	२	१४६	१४६ (१४८-२, तिर्यञ्चायु व एक अन्य आयु) १४६ प्रकृतिकी सत्तावाले जीवों के चार भङ्ग हैं– १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु ३. भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु ४. भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु इन चारभङ्गों में से १ व तीसरे भंगमें आयु (नरकायु-मनुष्यायु) समान है, तथा २ व ४थे भंग में आयु (मनुष्य-देवायु) समान है, इसलिये दोभंग कमकरके २ ही भंग ग्रहण किये हैं।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	३	१४५	१४५ (उपर्युक्त १४६ प्रकृति में से बध्यमानआयु कम करने से १४५ प्रकृति रहीं), क्योंकि यहाँ आयुबन्ध हुआ ही नहीं, अबद्धायुष्क है। यहाँ ३ भङ्ग इस प्रकार हैं - १. भुज्यमाननरकायु २. भुज्यमानमनुष्यायु ३. भुज्यमानदेवायु

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	२	१४२	१४२ (१४८-६ तिर्यञ्चायु, अन्य कोई आयु, अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क) २ भङ्ग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु । २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु । अथवा १. भुज्यमानदेवायु-बध्यमानमनुष्यायु । २. भुज्यमाननरकायु-बध्यमानमनुष्यायु।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	३	१४१	१४१ (उपर्युक्त १४२–१, बध्यमानआयु) ३ भङ्ग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानदेवायु, ३. भुज्यमानमनुष्यायु
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	२	१४१	१४१ (बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीयस्थानमें कथित १४२–१ मिथ्यात्व) २ भङ्ग बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानके अनुसार जानना। इसमें भुज्यमान-मनुष्यायु है।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१	१४०	१४० (उपर्युक्त १४१–१ भुज्यमानमनुष्यायु, क्योंकि मनुष्य ही क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ करने वाला होता है कारण कि इस क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है। अतः एक ही भङ्ग होता है।)
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	२	१४०	१४० (बद्धायुष्ककी अपेक्षा तृतीयस्थानमें कथित १४१ प्रकृतियोंमें से सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की) २ भङ्ग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान के अनुसार यहाँ भी जानना।

असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	३	१३९	१३९ (उपर्युक्त १४० प्रकृतिमें से बध्यमान आयु कम की) ३ भङ्ग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानमनुष्यायु ३. भुज्यमानदेवायु क्षायिकसम्यक्त्व को जिस मनुष्यने प्रारंभ किया हो ऐसा कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिजीव देव अथवा नरकगतिमें गया इस अपेक्षा से भुज्यमान ३ आयु होती हैं। अतः भंग तीन हैं।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम स्थान	२	१३९	१३९ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा चतुर्थस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्व-प्रकृति कमकी) २ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थान के समान जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा पञ्चम स्थान	३	१३८	उपर्युक्त १३९ प्रकृति में १ बध्यमानआयु कम करने पर १३८ प्रकृति शेष रहीं। यहाँ ३ भंग हैं, वे इस प्रकार हैं – १. भुज्यमानमनुष्यायु २. भुज्यमानदेवायु ३. भुज्यमाननरकायु। तीर्थङ्करप्रकृति सहित क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव के १३८ प्रकृतिकी सत्तावाला वह स्थान होता है। इस सत्त्वस्थानवाले जीवके यदि भुज्यमानआयु मनुष्य हो और वह क्षायिकसम्यक्त्वसहित तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध कर चुका है तो उसी भव से मोक्ष जाता है एवं उसके तप-ज्ञान-निर्वाण ये तीन ही कल्याणक होते हैं।

				यदि तीसरे भवमें मोक्ष जाने वाला हो तो देवायुका बन्धकर देवगतिमें जाता है वहाँ पर इसके १३८ प्रकृतिकी सत्ता रहती है। वहाँ से मरणकर मनुष्यगतिमें आता है, वहाँ से मोक्ष जाता है। इस जीव के पाँचों कल्याणक होते हैं। यदि इस मनुष्यने पहले नरकायुका बन्ध किया हो तो नरकमें जावेगा, वहाँ इसके १३८ प्रकृतिकी सत्ता रहेगी। वहाँ से मरणकर मनुष्यभवमें आकर पञ्चकल्याणक होंगे और मोक्ष जावेगा। नरक से मनुष्यपर्यायमें आकर तीर्थङ्कर होने वाले जीव के नरकसे निकलने के ६ माह पहिलेसे ही उपसर्ग नहीं होता। नरक व देवगति से मनुष्यभवमें आने वाले जीव के १३८ प्रकृतिकी सत्ता होती है, किन्तु आयुके ६ माह अवशेष रहने पर मनुष्यायु का बन्ध हुआ अतः बध्यमान आयुके बढ़ने से १३९ प्रकृतिकी सत्ता हो जाती है।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठ स्थान	५	१४५	१४५ (१४८-३, भुज्यमान-बध्यमानआयु-बिना २ आयु और तीर्थंकर) मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४५ प्रकृति की सत्तावाले बद्धायुष्ककी अपेक्षा द्वितीयस्थानमें १२ भंगों में से २ पुनरुक्त और ५ समभङ्ग-बिना शेष ५ भङ्ग कहे थे उसीके समान यहाँ भी ५ भङ्ग जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा षष्ठ स्थान	४	१४४	१४४ (१४८–४, भुज्यमानआयुबिना शेष ३ आयु, तीर्थङ्कर) भुज्यमान चारों आयु की अपेक्षा ही चार भंग कहे हैं।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	५	१४१	१४१ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा छठेस्थानमें कथित १४५ प्रकृतिमेंसे अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क कम की)

				५ भंग भी बद्धायुष्कके छठेस्थानवत् ही यहाँ जानने।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सप्तम स्थान	४	१४०	१४० (अबद्धायुष्ककी अपेक्षा छठेस्थानमें कथित १४४ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क कम की) भुज्यमान चारोंआयुकी अपेक्षाही यहाँ भी चार भङ्ग हैं।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा अष्टम स्थान	३	१४०	१४० (बद्धायुष्ककी अपेक्षा सप्तमस्थानमें कथित १४१ प्रकृतिमें से १ मिथ्यात्व-प्रकृति कम की) ३ भङ्ग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु। २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु। ३. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायु। ४. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु। उपर्युक्त ४ भङ्गोंमेंसे तीसराभङ्ग भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्यायुरूप है और वह पुनरुक्त होनेसे उसके बिना शेष तीन-भङ्ग यहां जानना चाहिए। यहां पुनरुक्तता का कारण यह है कि भुज्यमान-बध्यमान ये दोनोंही मनुष्यायु हैं।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा अष्टम स्थान	१	१३९	१३९ (अबद्धायुष्ककके सातवेंस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से मिथ्यात्वप्रकृति कम करने से १३९ प्रकृति हैं) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायुसम्बन्धी।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा नवम स्थान	३	१३९	(बद्धायुष्ककके आठवेंस्थानमें कथित १४० प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की)

				१. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु। २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्च। ३. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानमनुष्य। ४. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु। उपर्युक्त ४ भङ्गोंमें तीसराभंग पुनरुक्त है क्योंकि वहाँ भुज्यमान-बध्यमान दोनों ही मनुष्यायु हैं अतः उस भंगके बिना शेष ३ भंगोंको ही यहाँ ग्रहण किया है।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा नवम स्थान	४	१३८	अबद्धायुष्ककी अपेक्षा आठवें स्थानमें कथित [illegible] प्रकृतियोंमेंसे 'सम्यग्मिथ्यात्व' प्रकृति कम करनेपर १३८ प्रकृति रहीं। फिर कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि हो गया। ४ भंग, भुज्यमान चारों आयु की अपेक्षा कहे हैं, क्योंकि पूर्वबद्धायु की अपेक्षा ऐसा जीव मरणकर चारों गतियों में उत्पन्न हो सकता है।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा दशम स्थान	४	१३८	बद्धायुष्कके ९वें स्थानमें कथित १३९ प्रकृतियोंमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कम करनेसे १३८ प्रकृति का सत्त्व है। यहां ४ भङ्ग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमाननरकायु। २. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानतिर्यञ्चायु। ३. भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु। ४. भुज्यमानतिर्यञ्चायु-बध्यमानदेवायु।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा दशम स्थान	४	१३७	अबद्धायुष्कसम्बन्धी ९वें स्थानमें कथित १३८ प्रकृतियोंमें से सम्यक्त्वप्रकृति कम करने पर १३७ प्रकृतिका सत्त्व है। ४ भंग, भुज्यमान चारों आयुकी अपेक्षासे हैं।

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा ११वाँ स्थान	२	१४२	१४२ (१४८–६, तिर्यञ्चायु, अन्य कोई एकआयु, आहारकचतुष्क) बद्धायुष्ककी अपेक्षा दूसरे स्थान में कथित २ भंगों के समान ही यहां भी दोभंग हैं।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ११वाँ स्थान	३	१४१	उपर्युक्त १४२ प्रकृतिमें से बध्यमान-आयु कम करने पर १४१ प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है। ३ भंग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमाननरकायु २. भुज्यमानमनुष्यायु ३. भुज्यमानदेवायु।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १२वाँ स्थान	२	१३८	१३८ (बद्धायुष्कके ११वें स्थानमें कथित १४२-४ अनन्तानुबन्धी कषाय) २ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा कथित द्वितीयस्थान के समान ही जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १२वाँ स्थान	३	१३७	१३७ (अबद्धायुष्क की अपेक्षा कथित ११वें स्थानकी १४१ प्रकृतियोंमें से अनन्तानुबन्धीकषाय ४ कम की) ३ भंग इस प्रकार हैं – १. भुज्यमाननरकायु, २. भुज्यमानमनुष्यायु ३. भुज्यमानदेवायु
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १३वाँ स्थान	२	१३७	१३७ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा १२वें स्थानमें कथित १३८ प्रकृतियोंमें १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) २ भंग, बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीयस्थान के समान यहां भी जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १३वाँ स्थान	१	१३६	१३६ (अबद्धायुष्कके १२वें स्थानमें कथित १३७ प्रकृति में से मिथ्यात्वप्रकृति कम की)

				१ भंग, अबद्धायुष्कसम्बन्धी तृतीयस्थान के समान जानना।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १४वाँ स्थान	२	१३६	१३६ (बद्धायुष्कके १३वें स्थानमें कथित १३७ प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति कम की) २ भंग, बद्धायुष्कके दूसरे स्थानके अनुसार यहाँ भी जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १४वाँ स्थान	३	१३५	१३५ (अबद्धायुष्कके १३वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भंग, अबद्धायुष्कके प्रथमस्थानके समान यहाँ भी जानना।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १५वाँ स्थान	२	१३५	१३५ (बद्धायुष्कके १४वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कम की) २ भंग, बद्धायुष्क की अपेक्षा दूसरे स्थानके समान यहाँ भी जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १५वाँ स्थान	३	१३४	१३४ (अबद्धायुष्कके १४वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कम की) ३ भंग, अबद्धायुष्क के प्रथमस्थान के समान यहाँ भी जानना।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १६वाँ स्थान	५	१४१	१४१ (१४८-७, भुज्यमान व बध्यमान-आयुबिना २ आयु, तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) ५ भंग, बद्धायुष्ककी अपेक्षा छठे स्थान के समान यहाँ भी जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १६वाँ स्थान	४	१४०	उपर्युक्त १४१ प्रकृतिमें से १ बध्यमान आयु कम करने से १४० प्रकृति हैं। ४ भंग, भुज्यमानचारोंआयुकी अपेक्षा जानना।

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १७वाँ स्थान	५	१३७	१३७ (बद्धायुष्कके १६वें स्थानमें कथित १४१ प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धीकषाय ४ कम की) ५ भंग, बद्धायुष्कके छठे स्थानवत् जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १७वाँ स्थान	४	१३६	१३६ (अबद्धायुष्कके १६वें स्थानकी १४० प्रकृतिमें से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की) ४ भंग, भुज्यमान चारों आयु की अपेक्षा जानना।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १८वाँ स्थान	३	१३६	१३६ (बद्धायुष्कके १७वें स्थानकी १३७ प्रकृतिमें से १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भंग, बद्धायुष्कके ९वें स्थानके समान जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १८वाँ स्थान	१	१३५	१३५ (अबद्धायुष्कके १७वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमेंसे १ मिथ्यात्वप्रकृति कम की) १ भङ्ग, अबद्धायुष्कके ८वें स्थानके समान है।
असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा १९वाँ स्थान	३	१३५	१३५ (बद्धायुष्कके १८वें स्थानकी १३६ प्रकृतिमें से १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति कम की) ३ भङ्ग, बद्धायुष्कके ९वें स्थानके समान।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १९वाँ स्थान	४	१३४	१३४ (अबद्धायुष्कके १८वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से सम्यग्मिथ्यात्व कम की) ४ भंग, भुज्यमान चारों आयुकी अपेक्षा।

असंयत	बद्धायुष्क की अपेक्षा २०वाँ स्थान	४	१३४	१३४ (बद्धायुष्ककी अपेक्षा १९वें स्थानकी १३५ प्रकृतिमें से सम्यक्त्वप्रकृति कम की) ४ भंग, बद्धायुष्कके १०वें स्थानके समान ही जानना।
असंयत	अबद्धायुष्क की अपेक्षा २०वाँ स्थान	४	१३३	१३३ (अबद्धायुष्ककके १९वें स्थानकी १३४ प्रकृतिमें से १ सम्यक्त्वप्रकृति कम की) ४ भंग, अबद्धायुष्ककके १०वें स्थान के समान हैं।

आगे देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानों में स्थान और भङ्ग कहते हैं –

देसतियेसुवि एवं, भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा॥३८२॥

अर्थ- असंयतगुणस्थान के समान देशसंयतादि तीन गुणस्थानों में ४०-४० सत्त्वस्थान जानना और सर्वस्थानों में एक-एक भङ्ग है, किन्तु देशसंयतगुणस्थान की द्वितीय और चतुर्थपंक्ति के (बद्धायुष्क-अबद्धायुष्क) प्रथम व द्वितीय स्थान में दो-दो भङ्ग जानना।

विशेषार्थ- देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थान में भी असंयतगुणस्थान के समान दो-छह-सात-आठ और ९ प्रकृतिरहित पाँच स्थान बराबर लिखना तथा इसके नीचे-नीचे चार पंक्ति बद्धायुष्क की करना और उसके नीचे बध्यमान एक-एक आयु घटाकर अबद्धायुष्क की भी चार ही पंक्ति करनी। इन पंक्तियों में प्रथम पंक्ति तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क सहित है अतः यहाँ कोई प्रकृति कम नहीं की, द्वितीय पंक्ति में तीर्थङ्कर प्रकृति कम करना। तृतीय पंक्ति में तीर्थंकर प्रकृति मिलाना और आहारकचतुष्क कम करना, चतुर्थ पंक्ति में तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क ये पाँच प्रकृति कम करना, इस प्रकार बद्धायुष्क व अबद्धायुष्क की आठ पंक्ति के ४० स्थान हुए। यहाँ बद्धायुष्क के जो २० स्थान हैं वहाँ भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु ऐसा एक-एक ही भंग है, इसके बिना अन्य तीन आयु का बन्ध होने पर देशव्रत व महाव्रत नहीं होते (गाथा ३३४)। अबद्धायुष्क के जो २० स्थान हैं वहाँ मात्र भुज्यमानमनुष्यायुसम्बन्धी एक-एक ही भङ्ग है, किन्तु विशेषता इतनी है कि देशसंयतगुणस्थान में तीर्थङ्करप्रकृतिरहित द्वितीयपंक्ति और चतुर्थपंक्ति के दस स्थानों में से प्रथम व द्वितीय स्थान में दो-दो भंग हैं, तथा बद्धायुष्क की द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति के प्रथम व द्वितीय स्थान में तो भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु तथा

भुज्यमानतिर्यञ्चायु व बध्यमानदेवायुरूप दो-दो भंग हैं। अबद्धायुष्क की द्वितीय व चतुर्थ पंक्ति के प्रथम व द्वितीय स्थान में भुज्यमानमनुष्यायु और भुज्यमानतिर्यञ्चायुरूप दो-दो भंग हैं। इस प्रकार देशसंयतगुणस्थान के ४० स्थानों में ४८ भंग हुए तथा प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान में ४०-४० स्थानों में एक-एक भंग की अपेक्षा ४०-४० भंग हैं।

देशसंयतगुणस्थान के ४० सत्त्वस्थानों के ४८ भंगसंबंधी सन्दृष्टि

			प्रथमपंक्ति				
			दो व तीन-आयु रहित प्रथम स्थान	अनन्तानुबंधी चतुष्करहित द्वि. स्थान	मिथ्यात्व-रहित तृतीय स्थान	सम्यग्मि-थ्यात्व रहित चतुर्थ स्थान	सम्यक्त्व-रहित पंचमस्थान
तीर्थङ्कर व आ. चतुष्कसहित	बद्धा-युष्क	प्रकृति	१४६	१४२	१४१	१४०	१३९
		भंग	१	१	१	१	१
	अबद्धा-युष्क	प्रकृति	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८
		भंग	१	१	१	१	१

द्वितीयपंक्ति (तीर्थङ्कर रहित)

आहारक चतुष्क सहित	बद्धा-युष्क	प्रकृति	१४५	१४१	१४०	१३९	१३८
		भंग	२	२	१	१	१
	अबद्धा-युष्क	प्रकृति	१४४	१४०	१३९	१३८	१३७
		भंग	२	२	१	१	१

तृतीयपंक्ति

तीर्थङ्कर-सहित आहारक-चतुष्क रहित	बद्धा-युष्क	प्रकृति	१४२	१३८	१३७	१३६	१३५
		भंग	१	१	१	१	१
	अबद्धा-युष्क	प्रकृति	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४
		भंग	१	१	१	१	१

चतुर्थपंक्ति

तीर्थङ्कर व आहारक-चतुष्क रहित	बद्धा-युष्क	प्रकृति	१४१	१३७	१३६	१३५	१३४
		भंग	२	२	१	१	१
	अबद्धा-युष्क	प्रकृति	१४०	१३६	१३५	१३४	१३३
		भंग	२	२	१	१	१

आगे उपशम श्रेणी के चार गुणस्थानों में सत्त्वस्थान और भंग कहने की इच्छा से आचार्य सर्वप्रथम अपूर्वकरण गुणस्थान में स्थान और भंग कहते हैं–

दुगछक्कतिण्णिवग्गेणूणापुव्वस्स चउपडिं किच्चा।
णभमिगिचउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

अर्थ– उपशम श्रेणी के अपूर्वकरण गुणस्थान में दो-छह, तीन का वर्ग (३×३) अर्थात् ९ प्रकृति से हीन तीन स्थान जानना। उन स्थानों की ४ पंक्ति करके क्रम से शून्य १-४ और ५ प्रकृति कम करें तो बद्धायुष्क के स्थान होते हैं और इतर अर्थात् अबद्धायुष्क के स्थानों में बद्धायुष्क के स्थानों में से भी एक-एक प्रकृति कम करना चाहिए। इसप्रकार २४ स्थान हुए।

विशेषार्थ– उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थान में २-६ व ९ प्रकृतियों से रहित तीन स्थान हैं और इनकी चार पंक्ति करना। प्रथम पंक्ति में शून्य, द्वितीय पंक्ति में तीर्थंकर प्रकृति कम करना, तृतीय पंक्ति में आहारकचतुष्क घटाना, चतुर्थपंक्ति में तीर्थंकर व आहारकचतुष्क, इन पाँच प्रकृतियों को कम करना। इस प्रकार बद्धायुष्क के १२ स्थान हुए तथा अबद्धायुष्क की चारों पंक्तियों में सर्वस्थानों में अपने-अपने नीचे एक-एक बध्यमानदेवायु घटाने पर १२ स्थान होते हैं। इस प्रकार आठ पंक्तियों में तीन-तीन स्थान होने से सर्व २४ स्थान होते हैं।

अब जो प्रकृतियाँ घटाईं उनके नाम तथा सत्त्वस्थानों के भंग कहते हैं—

णिरियतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि।
हीणा एदे णेया भंगे एक्केक्कगा होंति ॥३८४॥

अर्थ– नरक और तिर्यञ्च ये दोनों आयु, प्रथम (अनन्तानुबन्धी) चार कषाय इस प्रकार ६ तथा ६ तो ये और ३ दर्शनमोहनीय ऐसी सर्व ९ प्रकृति सो इन प्रकृतियों से हीन ३ स्थान जानने। इनके भंग एक-एक ही होते हैं।

विशेषार्थ– नरक व तिर्यञ्चायु, ये दो प्रकृति घटाने पर १४६ प्रकृति रूप प्रथम स्थान है। नरक-तिर्यञ्चायु और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृति बिना १४२ प्रकृतिरूप द्वितीय सत्त्वस्थान है। पूर्वोक्त ६ और ३ दर्शनमोहनीयकी इन ९ प्रकृति के बिना १३९ प्रकृतिरूप तृतीय स्थान है। इन तीनों स्थानों की चार पंक्ति करना, यहाँ प्रथम पंक्ति में तो एक भी प्रकृति कम नहीं होगी, द्वितीय पंक्ति में एक तीर्थङ्करप्रकृति कम करके तीनस्थान जानने। तृतीयपंक्ति में आहारकचतुष्करूप चार-चार प्रकृति कम-करके तीनस्थान जानना। चतुर्थपंक्ति में आहारकचतुष्क और तीर्थङ्कर ये ५-५ प्रकृति कम करके तीन स्थान जानने। इस प्रकार ये १२ स्थान बद्धायुष्क की अपेक्षा से हैं। इन्हीं स्थानों की प्रकृतियों में से

बध्यमानदेवायु घटाने पर अबद्धायुष्क के १२ स्थानों में प्रकृतियों की संख्या जानना। इन २४ स्थानों में एक-एक ही भंग होता है। यहाँ बध्यमान आयु के स्थानों में तो भुज्यमानमनुष्यायु और बध्यमानदेवायु रूप ही एक भंग जानना और अबद्धायुष्क स्थानों में भुज्यमानमनुष्यायुरूप एक भंग जानना। इस प्रकार उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के २४ स्थान और २४ ही भंग होते हैं।

उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थान सम्बन्धी सत्त्वस्थान--भंग और प्रकृति संख्यासम्बन्धी विशेषविवरण सहित संदृष्टि –

गुणस्थान	सत्त्व स्थान	भंगसंख्या	प्रकृति संख्या	विशेष
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१	१४६	१४६ (१४८-२, नरकायु-तिर्यञ्चायु) । १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा प्रथम स्थान	१	१४५	१४५ (उपर्युक्त १४६ प्रकृति में से १ बध्यमान आयु कम करने पर १४५ प्रकृति की सत्ता) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु,
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१	१४२	१४२ (बद्धायुष्क के प्रथम स्थान की १४६ प्रकृति में से अनन्तानुबन्धी चार कषाय कम की) १ भंग, भुज्यमान मनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा द्वितीय स्थान	१	१४१	१४१ (१४२ उपर्युक्त प्रकृतियों में से १ बध्यमान आयु कम करने पर १४१ प्रकृति की सत्ता है) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१	१३९	बद्धायुष्कसम्बन्धी द्वितीय स्थान की १४२ प्रकृतियों में से दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति कम की। यह जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होने से तीर्थङ्कर प्रकृति वाला हो सकता है। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा तृतीय स्थान	१	१३८	उपर्युक्त १३९ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१	१४५	१४५ (१४८-३, आयु २, तीर्थङ्कर) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान	१	१४४	उपर्युक्त १४५ प्रकृति में से बध्यमानआयु कम करने से १४४ प्रकृति की सत्ता है। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा पंचम स्थान	१	१४१	बद्धायुष्क की अपेक्षा चतुर्थ स्थान की १४५ प्रकृति में से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की। १ भंग, मनुष्यायु (भुज्यमान)-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा पंचम स्थान	१	१४०	उपर्युक्त १४१ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा छठा स्थान	१	१३८	बद्धायुष्क की अपेक्षा पंचम स्थान की १४१ प्रकृति में से दर्शनमोहनीय की ३ प्रकृति कम की है। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा छठा स्थान	१	१३७	उपर्युक्त १३८ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम करने पर १३७ प्रकृतियों की सत्ता है। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा सातवाँ स्थान	१	१४२	१४२ (१४८-६, २ आयु, आहारकचतुष्क) १ भंग भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा सातवाँ स्थान	१	१४१	१४१ (उपर्युक्त १४२ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा आठवाँ स्थान	१	१३८	१३८ (बद्धायुष्क के ७वें स्थान सम्बन्धी १४२ प्रकृति में से अनन्तानुबन्धी ४ कषाय कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा आठवाँ स्थान	१	१३७	१३७ (उपर्युक्त १३८ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा नौवाँ स्थान	१	१३५	१३५ (बद्धायुष्क के ८ वें स्थान की १३८ प्रकृतियों में से दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।

उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा नौवाँ स्थान	१	१३४	१३४ (उपर्युक्त १३५ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा दसवाँ स्थान	१	१४१	१४१ (१४८-७, २ आयु-तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा दसवाँ स्थान	१	१४०	१४० (उपर्युक्त १४१ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम करने पर १४० प्रकृति की सत्तावाला स्थान बना) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा ११वाँ स्थान	१	१३७	१३७ (बद्धायुष्क के १०वें स्थान सम्बन्धी १४१ प्रकृति में से अनन्तानुबन्धी चार कषाय कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा ११वाँ स्थान	१	१३६	१३६ (उपर्युक्त १३७ प्रकृति में से १ बध्यमानआयु कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
उपशमक अपूर्वकरण	बद्धायुष्क की अपेक्षा १२वाँ स्थान	१	१३४	१३४ (बद्धायुष्कसम्बन्धी ११वें स्थान की १३७ प्रकृति में से दर्शनमोहनीय की ३ प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु-बध्यमानदेवायु।
उपशमक अपूर्वकरण	अबद्धायुष्क की अपेक्षा १२वाँ स्थान	१	१३३	१३३ (अबद्धायुष्कसम्बन्धी ११ वें स्थान की १३६ प्रकृति में से दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

अथानन्तर उपशमक की अपेक्षा अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय में तथा उपशान्तकषाय में एवं क्षपकअपूर्वकरण में सत्त्वस्थान और भंग कहते हैं—

एवं तिसु उवसमगे, खवगापुव्वम्मि दसहिं परिहीणं।
सव्वं चउपडि किच्चा, णभमेक्कं चारि पण हीणं॥३८५॥

अर्थ– उपशमकअपूर्वकरण गुणस्थान के समान उपशमक अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तकषाय इन तीन गुणस्थानों में भी सत्त्वस्थान और भंग (गाथा ३८३ के समान) २४-२४ ही जानना। क्षपकअपूर्वकरण गुणस्थान में १० प्रकृति रहित एक स्थान की चार पंक्तियाँ करके क्रम से शून्य- १-४ और ५ प्रकृतियाँ कम करनी चाहिए। इस प्रकार स्थान ४ और उसके भंग भी चार होते हैं।

विशेषार्थ– क्षपकअपूर्वकरण गुणस्थान में भुज्यमानमनुष्यायु बिना तीन आयु अनन्तानुबन्धी चतुष्क और दर्शनमोहनीय की ३, इन दस प्रकृति बिना १३८ प्रकृति रूप एक सत्त्व स्थान की चार पंक्ति करना। यहाँ पूर्व के समान ही प्रथम पंक्ति में शून्य, द्वितीय पंक्ति में तीर्थङ्कर, तृतीय पंक्ति में आहारकचतुष्क तथा चतुर्थ पंक्ति में तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क घटाने पर क्रमशः १३८, १३७, १३४ और १३३ प्रकृति रूप चार स्थान होते हैं। इनमें भुज्यमानमनुष्यायुरूप एक-एक ही भंग है अतः चार ही भंग जानना।

क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थानमें सत्त्वस्थान और भङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि –

गुणस्थान	सत्त्वस्थान	भंगसंख्या	प्रकृतिसंख्या	विशेष
क्षपक अपूर्वकरण	१ला	१	१३८	१३८ (१४८-१०, भुज्यमानआयुबिना ३ आयु, अनन्तानुबन्धी ४ कषाय दर्शनमोहनीय ३) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
क्षपक अपूर्वकरण	२रा	१	१३७	उपर्युक्त १३८ में से १ तीर्थङ्कर प्रकृति कम की। १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

क्षपक अपूर्वकरण	३रा	१	१३४	१३४ (प्रथम सत्त्वस्थान की १३८ प्रकृति में से आहारकचतुष्क रूप ४ प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।
क्षपक अपूर्वकरण	४था	१	१३३	१३३ (प्रथम सत्त्वस्थान सम्बन्धी १३८ प्रकृति में से आहारकचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृति कम की) १ भंग, भुज्यमानमनुष्यायु।

अब क्षपकअनिवृत्तिकरण में सत्त्वस्थान और भंग कहते हैं—

एदे सत्तट्ठाणा, अणियट्टिस्सवि पुणोवि खविदेवि।
सोलस अट्ठेक्केक्कं, छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा॥३८६॥

णिरयदुगं तिरियदुगं, विगतिगचउरक्खजादिथीणतियं।
उज्जोवं आतावेगि, साहारणसुहुम थावरयं॥३८६ क॥

मज्झिमकसाय संढथीवेदं हस्सपमुहछक्कसाया।
पुरिसो कोहो माणो, अणियट्टीभागहीण पयडिओ॥३८६ ख॥

अर्थ– क्षपकअपूर्वकरण के समान क्षपकअनिवृत्तिकरण में भी चार स्थान हैं और १६-८-१-१-६-१-१ और १ प्रकृति कम करने से आठ स्थान अन्य भी हैं। इन आठ की भी चार पंक्तियां करके पूर्ववत् क्रम से शून्यादि घटाने से ३२ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार ४ और ३२ मिलकर क्षपकअनिवृत्तिकरण के ३६ स्थान जानना॥३८३॥

नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, मध्य की आठकषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय पुरुषवेद, क्रोध और मान ये प्रकृतियां अनिवृत्तिकरण गुण स्थान में क्षय होती हैं॥३८६ क ख॥

विशेषार्थ– गाथा ३८६ में जिन १६-८-१-१-६-१-१-१ प्रकृतियों को अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कम करने के लिए कहा गया है उनका नामोल्लेख मात्र गाथा ३८६ क ख में किया है। क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अनुक्रम से एकेन्द्रियादि चार जाति, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी,

नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, स्त्यानगृद्धिआदि तीन निद्रा ये १६ तथा आगे अप्रत्याख्यानकषाय ४, प्रत्याख्यानकषाय ४ ये आठ, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, ६ (हास्यादि नोकषाय), पुरुषवेद, सञ्ज्वलन क्रोध, सञ्ज्वलनमान ये प्रकृतियाँ कम करने पर क्रमशः १२२-११४-११३-११२-१०६-१०५-१०४-१०३ प्रकृति रूप आठ स्थान हैं। इन आठ स्थानों की चार पंक्ति करना और प्रथम पंक्ति में कोई भी प्रकृति कम नहीं की, द्वितीय पंक्ति में तीर्थङ्कर प्रकृति घटाई, तृतीय पंक्ति में आहारकचतुष्क घटाया और चतुर्थ पंक्ति में तीर्थङ्कर और आहारकचतुष्क कम किया। इस प्रकार चार पंक्ति की अपेक्षा ३२ स्थान हुए तथा अपूर्वकरणवत् ४ स्थान कहे ये सर्व (३२+४) ३६ स्थान क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान में हैं।

अब इन स्थानों के भंग दो गाथाओं से कहते हैं—

भंगा एक्केक्का पुण, णउंसयक्खविदचउसु ठाणेसु।
विदियतुरियेसु दो दो, भंगा तित्थयरहीणेसु ॥३८७॥

अर्थ– क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ३६ स्थानों में एक-एक भंग है, किन्तु जहाँ नपुंसकवेद का क्षय होता है ऐसे चारों स्थानों में तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्तारहित दूसरी और चौथी पंक्ति के दो स्थानों में दो-दो भंग हैं।

थीपुरिसोदयचडिदे, पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि।
संढस्सुदये पुव्वं, थीखविदं संढमत्थित्ति ॥३८८॥

अर्थ– जो जीव भावस्त्रीवेद अथवा पुरुषवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़ते हैं वे पहले भावनपुंसकवेद का क्षय करते हैं, किन्तु भावस्त्रीवेद की सत्ता वहाँ रहती है। भावनपुंसकवेद के उदय सहित जो क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे पहले भावस्त्रीवेद का क्षय करते हैं, उनके पूर्व में कहे गए दो स्थानों में नपुंसकवेद की सत्ता रहती है। इस प्रकार दो स्थानों के दो-दो भंग हैं। ऐसा होने पर ३६ स्थानों के ३८ भंग जानना तथा पूर्व में उपशमकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान के २४ स्थान सम्बन्धी २४ भंग कहे थे सो ये सर्व मिलकर (३८+२४) ६२ भंग हुए। इस मत के अनुसार माया के सत्त्वरहित चार पंक्तियों के चार स्थान नहीं कहे हैं तथा **'चदुसेक्के बादरे'** इत्यादि जो गाथा आगे कहेंगे, उस मत के अनुसार माया के सत्त्वरहित चार स्थान होते हैं।

क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ३६ सत्त्वस्थान व उनके ३८ भंगों की सन्दृष्टि—

नरक, तिर्यञ्च व देवायुरहित	सत्त्व प्र.	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तीर्थङ्कर रहित	सत्त्व प्र.	१३७	१२१	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आहारक चतुष्करहित	सत्त्व प्र.	१३४	११८	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तीर्थङ्कर व आहारक चतुष्करहित	सत्त्व प्र.	१३३	११७	१०९	१०८	१०७	१०१	१००	९९	९८
	भङ्ग	१	१	१	१	१	१	१	१	१

जहाँ एक भंग है वहाँ भुज्यमानमनुष्यायुरूप भंग जानना। दो-दो भंगों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिसके तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्ता नहीं है ऐसे जीव के यदि क्षपक श्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में स्त्रीवेदका उदय हो तो वह पहले नपुंसकवेद का नाश करके पश्चात् स्त्री वेदका नाश करेगा, किन्तु यदि श्रेणी चढ़ते हुए नपुंसकवेद का उदय है तो पहले स्त्रीवेदका नाश करेगा पश्चात् नपुंसकवेद का नाश होगा इसलिए दो-दो भंग होते हैं। अर्थात् नपुंसकवेद रहित स्त्रीवेद सहित १ भंग और दूसरा स्त्रीवेदरहित नपुंसकवेदसहित इस प्रकार दो भंग जानना।

अब क्षपकसूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषायगुणस्थान में सत्त्वस्थान और भंग कहते हैं—

अणियट्टिचरिमठाणा, चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स।
ते इगिदोण्णिविहीणं, खीणस्सवि होंति ठाणाणि ॥३८९॥

अर्थ– क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान में सञ्ज्वलनमान रहित १०३ प्रकृति रूप अन्तिम स्थान कहा था, उसकी चार पंक्तियों में क्रम से शून्य-एक-चार और पाँचप्रकृति घटाने से १०३-१०२-९९-९८ प्रकृति रूप अन्तिम चार स्थान हुए। इन चारों में सञ्ज्वलनमाया घटाने से १०२-१०१-९८ और ९७ प्रकृतिरूप स्थान क्षपकसूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के होते हैं तथा इन चारों ही स्थानों में सञ्ज्वलनलोभ

घटाने पर १०१-१००-९७ और ९६ प्रकृति रूप स्थान क्षीणकषाय गुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यन्त रहते हैं और इन चारों स्थानों में निद्रा-प्रचलाप्रकृति घटाने पर ९९-९८-९५ और ९४ प्रकृति रूप चार स्थान क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय में होते हैं।

आगे सयोगी-अयोगीगुणस्थान में स्थान और भंग कहते हैं—

ते चोद्दसपरिहीणा, जोगिस्स अजोगिचरिमगेवि पुणो।
बावत्तरिमडसट्ठिं, दुसु दुसु हीणेसु दुगदुगा भंगा ॥३९०॥

अर्थ– क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय संबंधी चार स्थानों में १४ प्रकृतियाँ कम करने पर ८५ आदि प्रकृति रूप चार स्थान सयोगकेवली गुणस्थान में होते हैं और वे अयोगकेवली के द्विचरमसमयपर्यंत रहते हैं। पुनः अयोगकेवली के द्विचरमसमय सम्बन्धी चार स्थानों में से प्रथम और द्वितीय स्थान में ७२ प्रकृतियाँ तथा तीसरे-चौथे स्थान में ६८ प्रकृतियाँ घटाने पर १३-१२-१३-१२ ये चार स्थान अयोगकेवली के अन्तिम समय में होते हैं। यहाँ पुनरुक्तता होने से दो ही स्थान जानना। अंतिम दो समयवर्ती जो दो-दो स्थान हैं उनमें दो-दो भंग हैं।

विशेषार्थ– क्षीणकषाय गुणस्थान के चरमसमय सम्बन्धी चार स्थानों में से ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४ और अन्तराय ५ ये १४ प्रकृति घटाने पर ८५-८४-८१ और ८० प्रकृति रूप चार स्थान सयोगीगुणस्थान में और अयोगी गुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यन्त रहते हैं तथा इनमें पहले स्थान में ७२ प्रकृतियाँ और दूसरे स्थान में भी ७२ प्रकृतियाँ घटाने से १३ व १२ प्रकृतिरूप दो स्थान होते हैं और तृतीय-चतुर्थस्थान में ६८ प्रकृतियाँ घटाने से १३ व १२ प्रकृति रूप दो स्थान होते हैं।

बिदियंतेरसबारसठाणं पुणरुत्तमिदि विहायपुणो।
दुसु सादेदरपयडी, परियट्टणदो दुगदुगा भंगा ॥३९० क॥

अर्थ– अयोगीजिन के तृतीय व चतुर्थ स्थान में जो दुबारा १३ व १२ प्रकृति के स्थान बने हैं वे पुनरुक्त होने से छोड़ने योग्य हैं। इन १३ व १२ प्रकृति के सत्त्व स्थानों में साता व असातावेदनीय प्रकृतियों के बदलने से दो-दो भंग जानना। किसी जीव के साता का ही सत्त्व रह जाय और अन्य किसी जीव (अयोगीजिन) के असातावेदनीय का सत्त्व रह जाता है। इस प्रकार साता व असाता की अपेक्षा दो-दो भंग होते हैं।

आगे "दुगछक्कतिण्णिवग्गे" इत्यादि गाथा ३८३ में पहले अनन्तानुबन्धी सहित आठ स्थान उपशमश्रेणी वालों के कहे थे वे श्री कनकनन्दी आचार्य के पक्ष में नहीं हैं इत्यादि विशेषकथनपूर्वक उन आठ स्थानों के भंग चार गाथाओं में कहते हैं—

णत्थि अणं उवसमगे, खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठ य।
पच्छा सोलादीणं, खवणं इदि केइ णिद्दिट्ठं॥३९१॥

अर्थ– श्रीकनकनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्ती के सम्प्रदाय में इस प्रकार कहा है कि उपशमश्रेणी के चार गुणस्थानों में अनन्तानुबन्धी के सत्त्वसहित १४६ प्रकृतियों के सत्त्व को आदि लेकर बद्धायुष्क और अबद्धायुष्क की चार पंक्तियों में जो आठ स्थान कहे थे वे नहीं हैं इसलिए जो २४ स्थान कहे थे उनमें आठ स्थान कम कर देने पर १६ ही स्थान हैं। क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती प्रथम तो अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप आठकषायों का क्षय करते हैं पश्चात् १६ आदि प्रकृतियों का क्षय करते हैं ऐसा किन्हीं आचार्यों के मतानुसार कहते हैं।

जो आठ स्थान कम होते हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

बद्धायुष्क की अपेक्षा		**अबद्धायुष्क की अपेक्षा**	
प्रथम स्थान १४६ प्रकृति युक्त	१ भंग	प्रथम स्थान १४५ प्रकृति युक्त	१ भंग
द्वितीय स्थान १४५ प्रकृति युक्त	१ भंग	द्वितीय स्थान १४४ प्रकृति युक्त	१ भंग
तृतीय स्थान १४२ प्रकृति युक्त	१ भंग	तृतीय स्थान १४१ प्रकृति युक्त	१ भंग
चतुर्थ स्थान १४१ प्रकृति युक्त	१ भंग	चतुर्थ स्थान १४० प्रकृति युक्त	१ भंग
सर्व	४ भंग	सर्व	४ भंग

अन्य आचार्यों के मतानुसार क्षपकअनिवृत्तिकरण गुणस्थान के सत्त्वस्थान व उनकी प्रकृति संख्या—

	१३८	१३०	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
तीर्थङ्कर-रहित	१३७	१२९	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
आहारक-चतुष्करहित	१३४	१२६	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
तीर्थंकर और आहा.-चतुष्करहित	१३३	१२५	१०९	१०८	१०७	१०१	१००	९९	९८

अणियट्टिगुणट्ठाणे, मायारहिदं च ठाणमिच्छंति।
ठाणा भंगपमाणा, केई एवं परूवेंति॥३९२॥

अर्थ– कोई आचार्य "अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में मायाकषाय रहित चार स्थान हैं" ऐसा मानते हैं। तथा कोई आचार्य स्थानों को भंग के प्रमाण अर्थात् दोनों की एक सी संख्या मानते हैं।

इस प्रकार की मान्यता होने पर स्थान और भंगों की संख्या कहते हैं–

अट्ठारह चउ अट्ठं, मिच्छतिये उवरि चाल चउठाणे।
तिसु उवसमगे संते, सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

अर्थ– मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानों में पूर्वोक्त प्रकार १८-४ और ८ स्थान हैं। आगे असंयतादि चार गुणस्थानों में ४०-४० स्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय तथा उपशान्तमोह इन चार गुणस्थानों में १६-१६ स्थान हैं।

विशेषार्थ– मिथ्यात्व गुणस्थान में १८, सासादन गुणस्थान में ४, मिश्र गुणस्थान में ८, असंयत गुणस्थान में ४०, देशसंयत गुणस्थान में ४०, प्रमत्तगुणस्थान में ४०, अप्रमत्त गुणस्थान में ४० स्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतमोह इन चारों गुणस्थानों में अनन्तानुबन्धी के सत्त्वरहित बद्धायुष्क-अबद्धायुष्कसम्बन्धी चार-चार पंक्तियों के आठ-आठ स्थान होने से १६-१६ स्थान होते हैं अत: सर्व ३२ स्थान हुए। क्षपकअपूर्वकरण में पूर्वोक्त चार स्थान हैं, क्षपकअनिवृत्तिकरण में ३६ स्थान तो पूर्वोक्त और सञ्ज्वलनमायारहित चार स्थान जो सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कहे थे वे यहाँ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही कहे हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त ३६ और मायाकषायरहित ४ ऐसे (३६+४) ४० स्थान हैं। क्षपकसूक्ष्मसाम्पराय में चार, क्षीणकषाय में आठ, सयोगी के चार और अयोगी के पूर्वोक्त ६ स्थान जानना।

अब इन स्थानों के भंगों की संख्या कहते हैं—

पण्णेकारं छक्कादि, बीससयं अट्ठदाल दुसु तालं।
वीसडवण्णं वीसं, सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ॥३९४॥

अर्थ– मिथ्यात्वादि गुणस्थानों के क्रम से पूर्वोक्त प्रकार ५०-११-३६-१२०-४८-४०-४० तथा उपशम-क्षपक इन दोनों श्रेणियों के मिलकर २०-५८-२०-१६-८-४-८ भंग जानना। यहाँ पर गुरुओं के सम्प्रदाय भेद से अनेक प्रकार का कथन किया है वह भी श्रद्धा करने योग्य है, क्योंकि इनकी अपेक्षा का निश्चय साक्षात् केवली-श्रुतकेवली बिना नहीं हो सकता है।

विशेषार्थ– इन स्थानों के भंग पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान में ५०, सासादन गुणस्थान में १२, इनमें से बद्धायुष्क सम्बन्धी स्थान में देव अपर्याप्तक भेद निकालकर ११ भंग हैं। जिसके देवायु का बन्ध हुआ है ऐसे द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव का सासादन गुणस्थान में मरण नहीं होता ऐसा कोई

आचार्य कहते हैं, सो इनकी अपेक्षा ही ११ भंग हैं। मिश्र गुणस्थान में ३६, असंयत गुणस्थान में १२०, देशसंयत गुणस्थान में ४८, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान में ४०-४०, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशमक के १६ और क्षपक में चार इस प्रकार २० स्थान। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उपशमक के पूर्वोक्त १६, क्षपक के ३६ तथा नपुंसकवेद में क्षपणास्थान के चार स्थानों में तीर्थङ्करहित दूसरी व चौथी पंक्ति में स्त्री-नपुंसकवेद के बदलने से दो भंग होते हैं तथा मायारहित चार स्थान के चार भंग ये सर्व मिलकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ५८ भंग हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशमक में १६, क्षपक में चार इस प्रकार सर्व (१६+४) २० भंग हैं। उपशान्तमोहगुणस्थान में १६, क्षीणकषाय में ८ स्थानों के ८ भंग, सयोगी गुणस्थान के ४, अयोगी में ६ स्थानों के आठ भंग जानना।

अब सत्त्वस्थानाधिकार को पूर्ण करने के इच्छुक आचार्य इसके पढ़ने का फल बताते हैं–

एवं सत्तट्ठाणं, सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ॥३९५॥

अर्थ– इस प्रकार सत्त्वस्थान का विस्तार सहित मैंने वर्णन किया। इसको सम्यक् प्रकार जो पढ़े, सुने अथवा भावना करे वह निर्वाण सुख को प्राप्त होता है।

वरइंदणंदिगुरुणो, पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा, सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

अर्थ– आचार्यों में प्रधान श्रीमद् इन्द्रनंदी भट्टारक के पास सम्पूर्णसिद्धान्त को सुनकर श्रीकनकनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती के द्वारा यह सत्त्वस्थान सम्यक् प्रकार से प्ररूपण किया गया।

अब आचार्य स्वयं को चक्रवर्ती के समान बताते हुए इस सत्त्वस्थान कथन के अधिकार को समाप्त करते हैं—

जह चक्केण य चक्की, छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया, छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

अर्थ–जिस प्रकार चक्रवर्ती ने भरतक्षेत्र के छहखण्डों को चक्ररत्न के द्वारा निर्विघ्नरूप से अपने वश में किया, उसी प्रकार मैंने भी बुद्धिरूपी चक्र से जीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्ध के भेद से षट्खण्डागमरूप शास्त्रसमुद्र में भले प्रकार अवगाहन किया है।

इस प्रकार आचार्यश्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की **'सिद्धान्तज्ञानदीपिका'** नामा हिन्दी टीका में **सत्त्वस्थानभंग** प्ररूपक **तृतीय अधिकार** सम्पूर्ण हुआ।

अथ त्रिचूलिका अधिकार

अब त्रिचूलिकाधिकार कहने की प्रतिज्ञा करते हुए नमस्कारात्मक मङ्गल करते हैं–

अक्खायणिरवलंबिदे, अप्पक्खायपरक्कमे महावीरे।
पणमिय सिरसा वोच्छं, तिचूलियं सुणह एयमणा ॥३९८॥

अर्थ– इन्द्रियादिक की सहायता से रहित है ज्ञानादि शक्ति रूप पराक्रम जिनका ऐसे महावीर प्रभु और शेष वृषभादि तीर्थङ्कर जिनेन्द्र देवों को सिरसा नमस्कार करके मैं (नेमिचन्द्राचार्य) त्रिचूलिकाधिकार कहूँगा सो भव्यजीवो ! तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

विशेषार्थ– जिसमें कथित अथवा अकथित या विशेषतापूर्वक नहीं कहे हुए अर्थ का चिन्तन किया जाता है वह चूलिका कहलाती है।

सूत्र द्वारा सूचित अर्थ का विशेष वर्णन करना चूलिका है। जिससे अर्थप्ररूपणा किये जाने पर पूर्व में वर्णित पदार्थ के विषय में शिष्यों को निश्चय उत्पन्न हो उसे चूलिका कहते हैं ऐसा अभिप्राय है।[१] अन्यत्र भी कहा है–

सूत्र में सूचित अर्थ को प्रकाशित करना चूलिका है।[२] अनुयोग द्वारों से सूचित अर्थों की विशेष प्ररूपणा करना चूलिका है।[३] किसी पदार्थ के विशेष व्याख्यान को, कथित विषय में जो अनुक्तविषय हैं उनको अथवा उक्त-अनुक्तविषय से मिले हुए कथन को चूलिका कहते हैं।[४]

यहाँ पर **नव प्रश्न, पञ्चभागहार, दशकरण** इन तीन विषयों का चिन्तन किया जावेगा अतः इस अधिकार का नाम त्रिचूलिका है।

---

१. ध. पु ११ पृ. १४०। २. ध. पु. १० पृ. ३९५। ३. ध. पु. ७ पृ. ५७५।
४. वृहद्द्रव्यसंग्रह की टीका पृ. ६८ (शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, शांतिवीरनगर से प्रकाशित)

आगे उन तीन चूलिकाओं में से सर्वप्रथम नवप्रश्न चूलिका कहते हैं—

किं बंधो उदयादो, पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो।
सपरोभयोदयो वा, णिरंतरो सांतरो उभयो॥३९९॥[1]

अर्थ– पहले जो प्रकृतियाँ कहीं उनमें से उदयव्युच्छित्ति के पहले बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियों की होती है? उदयव्युच्छित्ति के पश्चात् बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियों की होती है? उदयव्युच्छित्ति के साथ-साथ बन्धव्युच्छित्ति किन-किन प्रकृतियों की होती है? इस प्रकार ये **तीन प्रश्न** हुए। जिनका अपना ही (स्वयं का ही) उदय होने पर बन्ध हो ऐसी कौन-कौन सी प्रकृतियाँ है? जिनका अन्य प्रकृतियों के उदय होने पर बंध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियाँ हैं? जिनका दोनों (स्व-परप्रकृतियों) के उदय होने पर बन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियाँ हैं? इस प्रकार ये **तीन प्रश्न** हुए। जिनका निरन्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियाँ हैं? जिनका सान्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियाँ हैं? जिनका निरन्तर व सान्तरबन्ध हो ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियाँ हैं? इस प्रकार ये **तीन प्रश्न** हैं। ऐसे सर्व **नौ प्रश्न** हैं जिनका इस अधिकार में विचार किया जावेगा।

विशेषार्थ– नवप्रश्न चूलिका के नौ प्रश्न इस प्रकार हैं—

जिनकी बन्धव्युच्छित्ति पहले तथा उदयव्युच्छित्ति बाद में होती है, जिनकी उदयव्युच्छित्ति पहले और बन्धव्युच्छित्ति बाद में होती है, जिनकी बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है, अन्य प्रकृति के उदय में ही जिनका बन्ध होता है, स्वोदय में ही जिनका बन्ध होता है, स्वोदय-परोदय में जिनका बन्ध होता है, जिनका अन्तर्मुहूर्तकाल आदिपर्यन्त बन्ध होता हो ऐसी निरन्तर बँधने वाली, एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त से कम काल पर्यंत जिनका बन्ध होता है ऐसी सान्तर बँधने वाली और जिनका कभी निरन्तर तथा कभी सान्तर बंध होता है, ऐसी कौन-कौन सी प्रकृतियाँ हैं। सान्तर-निरन्तर का लक्षण[2]

पडिवक्खपयडिबन्धमस्सिदूण थक्कमाणबंधा सांतरबंधि त्ति तं सांतरबंधीसु पडिवक्खपयडिबंधाविणाभावं दट्ठूण वुत्तं। परमत्थदो पुण एगसमयं बंधिदूण विदियसमए जिस्से बंधविरामो दिस्सदि सा सांतरबंधपयडी। जिस्से बंधकालो जहण्णो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो सा णिरंतरबंधपयडि त्ति घेत्तव्वं।

---

१. प्रा. पं.सं. पृष्ठ ७४-७९ गाथा ६५-७७ तक नवप्रश्न।

२. बंधो भूत्वा क्षणं यासां समाप्तो निवर्तते। बंधाऽपूर्वे क्षणेनैता : सान्तरा विनिवेदिता ॥९९॥
अन्तर्मुहूर्तमात्रत्वाज्जघन्यस्यापि कर्मणां। सर्वेषां बंधकालस्य बन्ध: सामायिकोऽस्ति यो ॥१००॥
– अमितगति कृत संस्कृत पंचसंग्रह अध्याय ३

प्रतिपक्षप्रकृति के बन्ध का आश्रय करके बन्ध विश्रान्ति को प्राप्त होने वाली प्रकृति सान्तरबन्धी है, इस प्रकार जो कहा है वह सान्तरबन्धी प्रकृतियों में प्रतिपक्ष प्रकृति के बन्ध के अविनाभाव को देखकर कहा है। वास्तव में तो एक समय बँधकर द्वितीय समय में जिस प्रकृति की बन्ध विश्रान्ति देखी जाती है वह सान्तरबन्ध प्रकृति है। जिसका बन्धकाल जघन्य भी अन्तर्मुहूर्तमात्र है वह निरन्तरबन्ध प्रकृति है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।[1] अन्यत्र भी कहा है—

यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्रं बन्धः, उत्कर्षतः समयादारभ्य यावदन्तर्मुहूर्तं न परतः, सान्तरबन्धाः, अन्तर्मुहूर्तमध्येऽपि सान्तरो विच्छेदलक्षणान्तरसहितो बंधो यासां ताः सान्तरा इति व्युत्पत्तेः। अन्तर्मुहूर्तोपरि विच्छिद्यमानबन्धवृत्तिजातिमत्यः सान्तरबन्धा इति फलितार्थः। जघन्येनापि या अन्तर्मुहूर्तं यावन्नैरन्तर्येण बन्ध्यन्ते ता निरन्तरबन्धाः, निर्गतमन्तरमन्तर्मुहूर्तमध्ये व्यवच्छेदलक्षणं यस्य तादृशो बन्धो यासामिति व्युत्पत्तेः, अन्तर्मुहूर्तमध्याविच्छिन्न बन्धवृत्तिजातिमत्य इति यावत्।[2]

अथानन्तर उपर्युक्त ९ प्रश्नों में से प्रथम तीन प्रश्नों के उत्तरस्वरूप प्रकृतियों के नाम दो गाथाओं से कहते हैं—

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा।
मिच्छत्तादावाणं, णराणुथावरचउक्काणं ॥४००॥

पण्णरकसायभयदुगहस्सदुचउजाइपुरिसवेदाणं।
सममेक्कत्तीसाणं, सेसिगिसीदाण पुव्वं तु ॥४०१॥ जुम्मं॥

अर्थ– देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, अयशस्कीर्ति और देवायु इन आठ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति, उदयव्युच्छित्ति के पश्चात् होती है। मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावरादि चार, सञ्ज्वलन लोभ बिना १५ कषाय, भय-जुगुप्सा, हास्यरति, एकेन्द्रियादि चार जाति और पुरुषवेद इन ३१ प्रकृतियों की बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है। शेष ज्ञानावरणादि ८१ प्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्ति से पूर्व होती है।

विशेषार्थ– प्रश्न १. जिनकी बन्धव्युच्छित्ति से पहले उदयव्युच्छित्ति होती है वे प्रकृति कौन-कौनसी हैं? **उत्तर**– देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर-आहारक अङ्गोपाङ्ग, अयशस्कीर्ति और देवायु इन आठ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति से पहले उदयव्युच्छित्ति होती है। **प्रश्न २.** जिन प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति से पहले बन्धव्युच्छित्ति होती है वे प्रकृतियाँ कौन-

१. ध. पु. ८ पृ. १००। २. क. प्र. पृ. १४-१५।

कौनसी हैं? **उत्तर**– ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, सञ्ज्वलनलोभ, स्त्री-नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरक तिर्यञ्च-मनुष्यायु, नरक-तिर्यञ्च-मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, ६ संहनन, औदारिकअङ्गोपाङ्ग, ६ संस्थान, वर्ण चतुष्क, नरक-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात और श्वासोच्छ्वास), उद्योत, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति, निर्माण तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र-नीचगोत्र और अन्तराय की पाँच ये ८१ प्रकृतियाँ उदयव्युच्छित्ति से पूर्व बन्ध से व्युच्छिन्न होती हैं। **प्रश्न ३.** बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् किन-किन प्रकृतियों की होती है? **उत्तर**– मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण, सञ्ज्वलनलोभ बिना १५ कषाय, भय-जुगुप्सा, हास्य-रति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजाति, पुरुषवेद इन ३१ प्रकृतियों की बन्ध-उदयव्युच्छित्ति युगपत् होती है।

यहाँ पर महाधवल के अनुसार स्थावर, एकेन्द्रिय और विकलत्रय की व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में होती है, ऐसा जानना। आगे के गुणस्थानों में उदय अथवा बन्ध का अभाव हो जाना व्युच्छित्ति कहलाती है।

आगे अन्य तीन प्रश्नों का समाधान दो गाथाओं से करते हैं—

सुरणिरयाऊ तित्थं, वेगुव्वियछक्कहारमिदि जेसिं।
परउदयेण य बंधो, मिच्छं सुहुमस्स घादीओ॥४०२॥

तेजदुगं वण्णचऊ, थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया।
सोदयबंधा सेसा, बासीदा उभयबंधाओ॥४०३॥जुम्मं॥

अर्थ– देवायु, नरकायु, तीर्थङ्कर, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारकअङ्गोपाङ्ग इन ११ प्रकृतियों का पर के उदय में बंध होता है। इनका उदय रहते इनका बंध नहीं होता। मिथ्यात्व प्रकृति तथा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय इस प्रकार ये तो १५ प्रकृति और तैजस-कार्मण, वर्णादि चार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण ये १२ ध्रुवउदयी प्रकृति मिलकर २७ प्रकृतियाँ स्वोदय प्रकृतियाँ हैं अर्थात् इनका बन्ध स्वयं के उदय होने पर ही होता है, किन्तु उदय तो बन्ध के अभाव में भी होता है। अर्थात् इन प्रकृतियों के उदय होने में इन्हीं का बन्ध होना आवश्यक नहीं है। जैसे ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४ और अन्तराय ५ इन १४ प्रकृतियों का बन्ध तो १०वें गुणस्थान तक होता है, किन्तु उदय १२वें गुणस्थान तक है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों का भी जानना

तथा अवशेष ५ निद्रा, २ वेदनीय, २५ मोहनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्च-मनुष्यगति, ५ जाति, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, ६ संहनन, ६ संस्थान, तिर्यञ्च-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, उच्च-नीचगोत्र ये ८२ प्रकृतियाँ स्वपरोदयबंधी हैं अर्थात् स्वयं के उदय में अथवा पर प्रकृति के उदय में इनका बन्ध होता है।

अब पूर्वोक्त ९ प्रश्नों में से अन्तिम तीन प्रश्नों का उत्तर ४ गाथाओं से देते हैं—

सत्तेताल धुवावि य, तित्थाहाराउगा णिरंतरगा।
णिरयदुजाइचउक्कं, संहदिसंठाणपणपणगं ॥४०४॥

दुग्गमणादावदुगं, थावरदसगं असादसंढित्थि।
अरदीसोगं चेदे, सांतरगा होंति चोत्तीसा ॥४०५॥जुम्मं॥

अर्थ– ज्ञानावरणादि ४७ ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ, तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, आयु ४ ये ५४ प्रकृतियाँ निरन्तर बँधने वाली हैं और नरकद्विक, एकेन्द्रियादि चार जाति, प्रथम संहनन बिना ५ संहनन, प्रथम संस्थान बिना ५ संस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर आदि १०, असातावेदनीय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति और शोक ये ३४ प्रकृतियाँ सान्तरबन्धी हैं। एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त से कम काल पर्यन्त जिनका बन्ध होता है, वे सान्तर प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ– पाँचज्ञानावरण, नौदर्शनावरण, पाँचअन्तराय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादिचतुष्क इन ४७ प्रकृतियों का अपनी-अपनी व्युच्छित्तिपर्यन्त सदा बंध पाया जाता है अतः ये ध्रुवबन्धी हैं।[1] तीर्थङ्कर, आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, चार आयु ये ७ प्रकृति उपर्युक्त ४७ प्रकृतियों में मिलकर ५४ प्रकृतियाँ निरन्तरबन्धी हैं।[2] इनमें से ४७ प्रकृतियों का तो व्युच्छित्ति से पूर्व समय तक निरन्तर बन्ध पाया जाता है और आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् जिन गुणस्थानों में इनका बन्ध पाया जाता है वहां निरन्तर प्रति समय अन्तर्मुहूर्त से अधिककाल पर्यन्त बन्ध पाया जाता है। आयु का जिसकाल में बन्ध होना योग्य है उस समय से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त निरन्तर बन्ध होता है इसलिए इसको निरन्तरबन्धी कहते हैं। नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति वज्रर्षभनाराच बिना पाँचसंहनन, समचतुरस्रबिना पांच संस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर,

१. धवल पु. ८ पृ. १७। २. धवल पु. ८ पृ. १६।

अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, असातावेदनीय, स्त्री-नपुंसकवेद, अरति और शोक ये ३४ प्रकृति सांतरबन्धी हैं, क्योंकि इन प्रकृतियों का बन्ध एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त से कम काल पर्यन्त होता है।[1] जैसे किसी समय नरकगति का बन्ध होता है, किसी समय अन्य गति का बन्ध होता है, किसी समय एकेन्द्रिय जाति का बन्ध होता है, किसी समय अन्य जाति का बन्ध होता है। इस प्रकार ये प्रकृतियाँ सान्तरबन्धी हैं।

सुरणरतिरियोरालियवेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं।
परघाददुसमचउरं, पंचिंदिय तसदसं सादं ॥४०६॥

हस्सरदिपुरिसगोददु, सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति।
णट्ठे पुण पडिवक्खे, णिरंतरा होंति बत्तीसा ॥४०७॥जुम्मं॥

अर्थ– देवद्विक, मनुष्यद्विक, तिर्यञ्चद्विक, औदारिकद्विक, वैक्रियिकद्विक, प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्रसंस्थान, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसादिदश, सातावेदनीय, हास्य-रति, पुरुषवेद, गोत्रकर्म की दो ये ३२ प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी के रहते हुए सान्तरबन्धी हैं और प्रतिपक्षी के बंध का नाश होने पर निरन्तरबन्धी हैं अर्थात् ये प्रकृतियाँ उभयबन्धी हैं।

विशेषार्थ– देवगति-देवगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर-औदारिकअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, समचतुरस्र संस्थान, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये ३२ प्रकृतियाँ सान्तर व निरन्तर अर्थात् उभयबन्धी हैं।[2] जैसे– अन्य गति का जहाँ बन्ध पाया जाय वहाँ तो देवगति सप्रतिपक्षी है, क्योंकि वहाँ देवगति का बन्ध अन्तर्मुहूर्त से कम काल पर्यंत पाया जाता है तथा जब केवल देवगति का ही बन्ध होता है तो देवगति निष्प्रतिपक्षी है, क्योंकि यहाँ पर अन्य गति की बंधव्युच्छित्ति हो जाने से बन्ध नहीं पाया जाता है इसलिए वह निरन्तरबन्धी है, इसी कारण देवगति को उभयबन्धी कहा है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों का भी उभयरूपबन्ध जानना। उभयबन्धी प्रकृतियों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

देवद्विक, वैक्रियिकद्विक व उच्चगोत्र—द्वितीय गुणस्थान तक सांतरबंधी तथा आगे के गुणस्थानों में एवं भोगभूमिज जीवों में निरन्तरबन्धी है। **मनुष्यद्विक—** १२वें स्वर्गपर्यंत सान्तरबंधी एवं

१. धवल पु. ८ पृ. १७-१८। २. धवल पु. ८ पृ. १८।

आगे के स्वर्गों में तथा सम्यग्दृष्टि देव व नारकियों में निरन्तरबंधी है। **तिर्यञ्चद्विक और नीचगोत्र**— ७वें नरक में मिथ्यादृष्टि तथा सासादनी जीव के एवं तेजकायिक-वायुकायिक जीवों के निरन्तरबंधी तथा अन्य जीवों के सासादन गुणस्थान पर्यंत सान्तरबंधी है। **औदारिकद्विक**—देव-नारकियों व चतुरिन्द्रियपर्यन्त तिर्यञ्च जीवों के निरन्तरबंधी है, अन्य जीवों के दूसरे गुणस्थान तक सांतरबंधी है। **प्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान**— सुभग, सुस्वर, आदेय और पुरुषवेद दूसरे गुणस्थान तक सांतरबंधी और उसके आगे निरन्तरबंधी है। **परघात, उच्छ्वास, पंचेंद्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक**— प्रथमगुणस्थान में सांतरबंधी और आगे निरन्तरबंधी है। **स्थिर, शुभ, यशस्कीर्ति, सातावेदनीय, हास्य, रति**— छठे गुणस्थान तक सांतरबंधी और आगे के गुणस्थानों में निरन्तरबंधी है।

नवप्रश्नचूलिका के अन्तर्गत आगत प्रश्नों के उत्तरस्वरूप प्रकृतियों की सन्दृष्टि –

प्रकृति	स्वोदयपरोदय बन्धी	सान्तर व निरन्तरबन्धी	बंध किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक	उदय किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक	प्रकृति संख्या
ज्ञानावरण ५	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१२	१-५
चक्षुदर्शनावरणादि ४	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१२	६-९
निद्रा-प्रचला	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१२	१०-११
निद्रानिद्रादि ३	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-२	१-६	१२-१४
सातावेदनीय	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-१३	१-१४	१५
असातावेदनीय	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-६	१-१४	१६
मिथ्यात्व	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१	१	१७
अनन्तानुबन्धी ४	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-२	१-२	१८-२१
अप्रत्याख्यानावरण ४	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-४	१-४	२२-२५
प्रत्याख्यानावरण ४	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-५	१-५	२६-२९
संज्वलनक्रोधादि ३	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-९	१-९	३०-३२
संज्वलनलोभ	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-९	१-१०	३३

हास्य-रति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-८	३४-३५
अरति-शोक	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-६	१-८	३६-३७
भय-जुगुप्सा	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-८	३८-३९
नपुंसकवेद	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१-९	४०
स्त्रीवेद	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-९	४१
पुरुषवेद	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-९	१-९	४२
नरकायु	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१	१-४	४३
तिर्यञ्चायु	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-२	१-५	४४
मनुष्यायु	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१,२,४	१-१४	४५
देवायु	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१,२,४-७	१-४	४६
नरकगति	परोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१-४	४७
तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर- निरन्तरबन्धी	१-२	१-५ आनुपूर्वी १,२,४	४८-४९
मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-४	१-१४ आनुपूर्वी १,२,४	५०-५१
देवगति	परोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-४	५२
एकेन्द्रियादि ४ जाति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	५३-५६
पञ्चेन्द्रियजाति	स्वपरोदयसम्बन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	५७
औदारिकशरीर व औदारिक अंगोपांग	स्वपरोदयसम्बन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-४	१-१३	५८-५९
वैक्रियिकशरीर	परोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-४	६०
आहारकशरीर	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	७-८	६	६१
तैजसशरीर	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	६२
कार्मणशरीर	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	६३
वैक्रियिक अंगोपांग	परोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-४	६४

आहारकअंगोपांग	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	७-८	६	६५
निर्माण	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	६६
समचतुरस्रसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	६७
न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	६८
स्वातिसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	६९
कुब्जकसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	७०
वामनसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	७१
हुण्डकसंस्थान	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१-१३	७२
वज्रर्षभनाराचसंहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-४	१-१३	७३
वज्रनाराचसंहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-११	७४
नाराचसंहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-११	७५
अर्धनाराचसंहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-७	७६
कीलितसंहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-७	७७
असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१-७	७८
वर्णादिचतुष्क	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	७९-८२
नरकगत्यानुपूर्वी	परोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१, ४	८३
देवगत्यानुपूर्वी	परोदयबन्धी	सान्तरनिरन्तरबन्धी	१-८	१, ४	८४
अगुरुलघु	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	८५
उपघात	स्वपरोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	८६
परघात	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	८७
आतप	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	८८
उद्योत	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-५	८९
उच्छ्वास	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	९०
प्रशस्तविहायोगति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	९१
अप्रशस्तविहायोगति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	९२

प्रत्येक शरीर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	९३
साधारणशरीर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	९४
त्रस	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	९५
स्थावर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	९६
सुभग	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	९७
दुर्भग	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-४	९८
सुस्वर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	९९
दुःस्वर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-१३	१००
शुभ	स्वोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	१०१
अशुभ	स्वोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-६	१-१३	१०२
बादर	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	१०३
सूक्ष्म	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	१०४
पर्याप्त	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	१०५
अपर्याप्त	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१	१	१०६
स्थिर	स्वोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१३	१०७
अस्थिर	स्वोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-६	१-१३	१०८
आदेय	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-८	१-१४	१०९
अनादेय	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-२	१-४	११०
यशस्कीर्ति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१४	१११
अयशस्कीर्ति	स्वपरोदयबन्धी	सान्तरबन्धी	१-६	१-४	११२
तीर्थङ्कर	परोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	४-८	१३-१४	११३
उच्चगोत्र	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१४	११४
नीचगोत्र	स्वपरोदयबन्धी	सान्तर-निरन्तरबन्धी	१-२	१-५	११५
अन्तराय ५	स्वोदयबन्धी	निरन्तरबन्धी	१-१०	१-१२	११६-१२०

''इति नवप्रश्नचूलिका प्रकरण सम्पूर्ण''

❋ अथ पञ्चभागाहारचूलिका ❋

जत्थ वरणेमिचंदो, महणेण विणा सुणिम्मलो जादो।
सो अभयणंदिणिम्मलसुओवही हरउ पावमलं॥४०८॥

अर्थ– जिसमें मन्थन बिना ही उत्कृष्ट नेमिचन्द्र निर्मल हुए ऐसे अभयनंदि का निर्मल शास्त्रसमुद्र जीवों के पापमल को दूर करे।

भावार्थ– लोकोक्ति है कि "समुद्रमंथन करके चन्द्रमा प्रकट हुआ" इसी प्रकार अभयनंदिनामा आचार्य के द्वारा उपदिष्ट शास्त्रसमुद्र में से मंथनबिना ही नेमिचन्द्राचार्यरूपी निर्मलचन्द्रमा प्रकट हुए अर्थात् उस शास्त्र के अत्यल्पाभ्यास से ही निर्मलता प्राप्त हुई, ऐसी निर्मलता का कारण जो शास्त्रसमुद्र है वह समस्त जीवों के पापमल को दूर करे। इस प्रकार यहाँ आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण किया गया है।

अब भागाहारचूलिका के पाँच भेद कहते हैं—

उव्वेलणविज्झादो, अधापवत्तो गुणो य सव्वो य।[1]
संकमदि जेहिं कम्मं, परिणामवसेण जीवाणं॥४०९॥

अर्थ– संसारी जीवों के अपने जिन परिणामों से शुभकर्म और अशुभकर्म संक्रमण करें अर्थात् अन्य प्रकृति रूप परिणमें उन परिणामों को संक्रमण कहते हैं।[2] उस संक्रमण के उद्वेलन, विध्यात, अधः-प्रवृत्त, गुण और सर्व के भेद से पाँचभेद हैं।

विशेषार्थ– उद्वेलन प्रकृतियों के द्रव्य में उद्वेलन भागहार का भाग देने पर जो द्रव्य आवे उतना द्रव्य प्रत्येक उद्वेलनकाण्डक द्वारा परप्रकृतिरूप संक्रमण होता है।

---

१. ध. पु. १६ पृ ४०८। तथा उव्वेलण-विज्झादो, अधापवत्त-गुणसकमो चेय। तह सव्वसंकमो त्ति य पंचविहो संकमो णेयो॥ (जय ध. पु. ९ पृ. १७२)

२. संकमादो समयाविरोहेण एयपयडिट्ठिदिपदेसाणं अण्णपयडिसरूवेण परिणमणलक्खणादो। अर्थात् जैसा आगम में बतलाया है तदनुसार एक प्रकृति के स्थितिगत कर्मपरमाणुओं का अन्य सजातीय प्रकृति रूप परिणमना संक्रमण है। (जयधवल पु. ७ पृ. २३८)

गाथोक्त भागाहार (संक्रम) के जो उद्वेलनादि ५ भेद हैं उनके लक्षण कहते हैं—[१]करणपरिणामों के बिना रस्सी को उकलने के समान कर्मप्रदेशों का परप्रकृतिरूप से संक्रांत होना **उद्वेलनासंक्रम** है, इसका भागहार अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। यथा सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में आकर अन्तर्मुहूर्तपर्यंत सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का अधःप्रवृत्तसंक्रम करता है उसके बाद उद्वेलनासंक्रम को प्रारम्भकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का स्थितिघात करने वाले उसके पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण उद्वेलना काल के अन्त तक निरंतर उद्वेलना भागहार के द्वारा विशेषहीन प्रदेश संक्रम होता है। यहां पर भज्यमान द्रव्य प्रत्येक समय में विशेषहीन होता जाता है इसे विशेष हानि का कारण कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के अंतिम स्थितिकाण्डक में गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम हो जाता है। इस प्रकार उद्वेलना संक्रम का कथन किया।[२] अब **विध्यातसंक्रम** का कथन करते हैं—वेदकसम्यक्त्व काल के भीतर दर्शनमोहनीय की क्षपणासम्बन्धी अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय तक सर्वत्र ही मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का विध्यातसंक्रम होता है तथा उपशमसम्यग्दृष्टि के भी गुणसंक्रमकाल के पश्चात् सर्वत्र विध्यातसंक्रम होता है। इसका भागहार भी अङ्गुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि उद्वेलनाभागहार से यह असंख्यात गुणाहीन है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों के भी विध्यातसंक्रम का विषय यथासम्भव जानना चाहिए। अब **अधःप्रवृत्तसंक्रम** का लक्षण कहते हैं—बन्धप्रकृतियों का अपने बंध के सम्भव विषय में जो प्रदेश संक्रम होता है उसे अधःप्रवृत्तसंक्रम कहते हैं। उसका प्रतिभाग पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। चारित्रमोहनीय की २५ प्रकृतियों का अपने बंध के योग्य विषय में बध्यमान प्रकृतिप्रतिग्रह रूप से अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है।[३]**गुणसंक्रम** का लक्षण कहते हैं—प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित श्रेणि रूप से जो प्रदेश संक्रम होता है उसे गुणसंक्रम कहते हैं। अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा में, चारित्रमोहनीय की क्षपणा में, उपशमश्रेणि में, अनन्तानुबंधी की विसंयोजना में, सम्यक्त्व की उत्पत्ति में तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना के अंतिमकाण्डक में गुणसंक्रम होता है। इसका भागहार भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण होकर भी अधःप्रवृत्तसंक्रम के भागहार से असंख्यातगुणा हीन है। **सर्वसंक्रम** का स्वरूप कहते हैं—सभी प्रदेशों का जो संक्रम होता है उसे सर्वसंक्रम कहते हैं। वह कहां पर होता है? उद्वेलना, विसंयोजना और क्षपणा में अंतिम स्थिति काण्डक की अंतिम फालि के संक्रम के समय होता है। उसका भागहार एक अङ्कप्रमाण है।

बंधे संकामिज्जदि, णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं।
दंसणचरित्तमोहे, आउचउक्के ण संकमणं ॥४१०॥

१. जयधवल पु.९ पृ. १७०-१७१। २. जयध. पु. ९ पृ. १७१। ३. जयध. पु. ९ पृ. १७२।

अर्थ– अन्य प्रकृति रूप परिणमने को **संक्रमण** कहते हैं। जिस प्रकृति का बंध होता है उसी में संक्रमण होता है[१] अर्थात् अन्य प्रकृति बंधप्रकृति रूप होकर परिणमन करती है यह सामान्यकथन है तथा कहीं जिस प्रकृति का बंध नहीं हुआ है उसमें भी संक्रमण होता है। 'नो बंधे' अर्थात् 'जिसका बंध नहीं हुआ है उसमें संक्रमण भी नहीं होता' इस वचन के कहने का अभिप्राय यह है कि दर्शनमोहनीय में सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व प्रकृति का बंध न होने पर भी मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य संक्रमण कर जाता है अत: दर्शनमोहनीय के बिना शेष प्रकृतियाँ बंध होने पर उनमें ही संक्रमण रूप होती हैं ऐसा नियम है। मूलप्रकृतियों का परस्पर में संक्रमण नहीं होता। जैसे— ज्ञानावरणप्रकृति दर्शनावरणादिप्रकृति रूप नहीं होती, किन्तु उत्तरप्रकृतियों में संक्रमण पाया जाता है। जैसे– ज्ञानावरणकर्म की ५ उत्तरप्रकृतियों में परस्पर संक्रमण पाया जाता है। इसी प्रकार सभी उत्तरप्रकृतियों में जानना, किन्तु दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय में कदाचित् भी संक्रमण नहीं पाया जाता अर्थात् दर्शनमोहनीय की प्रकृतियाँ चारित्रमोहनीय रूप होकर परिणमन नहीं करती और चारित्रमोहनीय की प्रकृतियाँ दर्शनमोहनीय रूप होकर नहीं परिणमतीं। चारों आयुओं में भी परस्पर संक्रमण नहीं होता। इस प्रकार संक्रमण का स्वरूप जानना।

सम्मं मिच्छं मिस्सं, सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि।
सासणमिस्से णियमा, दंसणतियसंकमो णत्थि ॥४११॥

अर्थ– सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति अपने-अपने असंयतादि गुणस्थानों में संक्रमण नहीं करती। सम्यक्त्व प्रकृति का संक्रमण चतुर्थ गुणस्थान से सप्तमगुणस्थान पर्यंत नहीं होता है। दर्शनमोहनीय की इन तीनों ही प्रकृतियों का संक्रमण सासादन और मिश्रगुणस्थान में नहीं होता। सामान्य से दर्शनमोहनीय का संक्रमण चतुर्थ से सप्तमगुणस्थान पर्यंत होता है।

मिच्छे सम्मिस्साणं, अधापवत्तो मुहुत्तअंतोत्ति।
उव्वेलणं तु तत्तो, दुचरिमकंडोत्ति णियमेण ॥४१२॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का अंतर्मुहूर्त पर्यंत अध:प्रवृत्तकरण संक्रमण होता है और उद्वेलन संक्रमण उपान्त्य (अन्त के समीपवर्ती अर्थात् द्विचरम) काण्डक पर्यंत नियम से होता है।

विशेषार्थ– यहाँ पर संक्रमण फालिरूप रहता है। एक समय में संक्रमण होने वाले प्रदेशपुंज को **फालि** कहते हैं। समय समूह में संक्रमण होने को **काण्डक** कहते हैं।

---

१. बन्धे संकमो अबन्धे णत्थि। कुदो? सभावियादो। अर्थात् बन्ध के होने पर संक्रमण सम्भव है, बन्ध के अभाव में वह सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। (ध.पु. १६, पृ. ३४०)

उव्वेलणपयडीणं गुणं तु चरिमम्हि कंडये णियमा।
चरिमे फालिम्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं॥४१३॥

अर्थ– उद्वेलन प्रकृतियों का द्विचरमकाण्डकपर्यंत उद्वेलन संक्रमण तथा अन्तिमकाण्डक में नियम से गुणसंक्रमण होता है और अन्तिम फालि में सर्वसंक्रमण होता है। सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति उद्वेलनप्रकृति में समाविष्ट है इसलिए इन प्रकृतियों का भी चरमकाण्डक में गुणसंक्रमण व चरमफालि में सर्वसंक्रमण होता है। (गाथा ६१२ से ६१७ तक देखो।)

आगे सर्वसंक्रमण प्रकृतियों में तिर्यगेकादश अर्थात् जिनका उदय तिर्यञ्चगति में ही होता है ऐसी जो ११ प्रकृतियाँ हैं उनके नाम गिनाते हैं—

तिरियदुजादिचउक्कं, आदावुज्जोवथावरं सुहुमं।
साहारणं च एदे, तिरियेयारं भुणेदव्वा॥४१४॥

अर्थ– तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम कर्म की इन ११ प्रकृति का उदय तिर्यञ्चगति में ही होता है इसलिए इनको तिर्यगेकादश कहते हैं।

अब उद्वेलन प्रकृतियों को कहते हैं—

आहारदुगं सम्मं, मिस्सं देवदुगणारयचउक्कं।
उच्चं मणुदुगमेदे, तेरस उव्वेलणा पयडी॥४१५॥

अर्थ– आहारकशरीर-आहारकअङ्गोपाङ्ग, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, देवगतिदेवगत्यानुपूर्वी, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकअंगोपांग, उच्चगोत्र और मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये १३ उद्वेलनप्रकृतियाँ हैं।

बंधे अधापवत्तो, विज्झादं अबंध सत्तमोत्ति हु अबंधे।
एत्तो गुणो अबन्धे, पयडीणं अप्पसत्थाणं॥४१६॥[1]

अर्थ– प्रकृतियों का बन्ध होने पर अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, किन्तु मिथ्यात्वप्रकृति का नहीं होता है, क्योंकि "**सम्मं मिच्छं मिस्सं**" इत्यादि गाथा ४११ के द्वारा इसका निषेध पहले ही कर दिया

१. बन्धे अधापवत्तो विज्झाद अबन्ध अप्पमत्ततो। गुणसंकमो दु एत्तो पयडीणं अप्पसत्थाणं। धवल पु. १६ पृ. ४०९।

है और असंयत से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यंत मिथ्यात्व का विध्यातसंक्रमण होता है अपूर्वकरण से उपशांतकषाय गुणस्थान पर्यन्त बन्धरहित अप्रशस्तप्रकृतियों का गुणसंक्रमण है। अतः अन्यत्र भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वादि के ग्रहण के प्रथम समय से अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त गुणसंक्रमण है ऐसा जानना। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति के पूरणकाल में मिथ्यात्व के क्षय करने में अपूर्वकरण परिणामों से मिथ्यात्व के अंतिमकाण्डक की द्विचरमफालिपर्यन्त गुणसंक्रमण और चरमफालि में सर्वसंक्रमण होता है।

विशेषार्थ– [1]'बंधे अधापवत्तो' का स्पष्टीकरण करते हुए बतलाते हैं कि जहाँ जिन प्रकृतियों का बन्ध सम्भव है वहाँ उन प्रकृतियों का बन्ध होने पर और उसके न होने पर भी अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। यह नियम बन्धप्रकृतियों के लिए है, अबन्धप्रकृतियों के लिए नहीं; क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियों में भी अधःप्रवृत्तसंक्रम पाया जाता है। 'विज्झाद अबंधे' का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जिन प्रकृतियों का जहाँ नियम से बन्ध सम्भव नहीं है वहाँ उन प्रकृतियों का विध्यातसंक्रम होता है। यह भी नियम मिथ्यात्व से अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त ही ध्रुव स्वरूप से है। 'गुणसंकमो दु एत्तो' अर्थात् अप्रमत्तगुणस्थान से आगे के गुणस्थानों में बन्धरहित प्रकृतियों का गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम भी होता है।

शंका– सर्वसंक्रम भी होता है यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान– यह उपर्युक्त गाथा में प्रयुक्त 'तु' शब्द से जाना जाता है। यह प्ररूपणा 'अप्पसत्थाणं' अर्थात् अप्रशस्तप्रकृतियों की की गयी है, न कि प्रशस्तप्रकृतियों की; क्योंकि उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि में भी बन्धरहित प्रशस्तप्रकृतियों का अधःप्रवृत्तसंक्रम देखा जाता है।

अथानन्तर सर्वसंक्रमणरूप प्रकृतियों को कहते हैं—

तिरियेयारुव्वेल्लणपयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा।
मोहा थीणतिगं च य, बावण्णे सव्वसंकमणं ॥४१७॥

अर्थ– पूर्वोक्त तिर्यगेकादशप्रकृतियाँ, उद्वेलनरूप प्रकृतियाँ, (सञ्ज्वलनलोभ, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन तीन बिना) मोहनीय कर्म की २५ और स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा इन सर्व ५२ प्रकृतियों में सर्वसंक्रमण होता है।

---

१. धवल पु. १६, पृ. ४०९-४१०।

आगे प्रकृतियों के संक्रमण का नियम कहते हैं—

उगुदालतीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के।
इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगतिण्णि संकमणा ॥४१८॥[1]

अर्थ– उनतालीस प्रकृतियों में एक, ३० प्रकृतियों में चार, सात प्रकृतियों में दो, बीस प्रकृतियों में तीन, एक प्रकृति में तीन, एक प्रकृति में चार, बारह प्रकृतियों में पाँच, चार प्रकृतियों में दो, और चार प्रकृतियों में तीन प्रकार के संक्रमण होते हैं। इस गाथा में कही गई प्रकृतियों और भागहारों की यह संदृष्टि है—[2]

प्रकृति	३९	३०	७	२०	१	१	१२	४	४	४
भागहार	१	४	२	३	३	४	५	२	३	३

किस-किस प्रकृति में कौन-कौनसे संक्रमण होते हैं इसका कथन १० गाथाओं में करते हैं—

सुहुमस्स बंधघादी, सादं संजलणलोहपंचिंदी।
तेजदुसमवण्णचऊ, अगुरुगपरघादउस्सासं ॥४१९॥

सत्थगदी तसदसयं, णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु।
थीणतिबारकसाया, संढित्थी अरदि सोगो य ॥४२०॥

तिरियेयारं तीसे, उव्वेलणहीणचारि संकमणा।
णिद्दा पयला असुहं, वण्णचउक्कं च उवघादे ॥४२१॥

सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदिसंठाणदसं, णीचापुण्णथिरछक्कं च ॥४२२॥

वीसण्हं विज्झादं, अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते।
विज्झादगुणे सव्वं, सम्मे विज्झादपरिहीणा ॥४२३॥विसेसयं॥

---

१. उगुदाल तीस सत्त य वीसं एगेग वार तियचउक्कं। एवं चदु दुग तिय तिय चदु पण दुग तिग दुगं च बोद्धव्वं।

२. धवल पु. १६ पृ. ४१०।

अर्थ– पाँचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, पाँचअन्तराय, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णादिचार, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय इन ३९ प्रकृतियों में उद्वेलनसंक्रमण नहीं होता तथा **'विज्झादंसत्तमोत्ति हु अबंधे'** इस सूत्रानुसार अप्रमत्तगुणस्थान से पूर्व इनकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होने से विध्यातसंक्रमण भी इनमें नही है। **'एत्तो गुणे अबंधे'** इस सूत्र के अनुसार इनमें गुणसंक्रमण भी नहीं है। सर्वसंक्रमण रूप जो ५२ प्रकृतियाँ कही हैं उनमें ये प्रकृतियां नहीं हैं अत: सर्वसंक्रमण भी इनमें नहीं होता। इस प्रकार उपर्युक्त ३९ प्रकृतियों में एक अध:प्रवृत्त संक्रमण ही होता है, शेष चार संक्रमण नहीं होते। अन्य प्रकृतियों में भी इसी प्रकार संक्रमण का कथन आगे करेंगे सो वहाँ से समझना।

शंका– मिथ्यात्वप्रकृति का मिथ्यात्वगुणस्थान में अध:प्रवृत्तसंक्रमण क्यों नहीं कहा ?

समाधान– **''सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि''** इत्यादि गाथा ४११ के अनुसार मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्वप्रकृति का अध:प्रवृत्तसंक्रमण नहीं कहा है।

स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, बारहकषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक और तिर्यगेकादश की इन ३० प्रकृतियों में उद्वेलन संक्रमण के बिना चार संक्रमण पाए जाते हैं। निद्रा, प्रचला, अशुभवर्णादि चार और उपघात इन ७ प्रकृतियों में गुणसंक्रमण और अध:प्रवृत्तसंक्रमण ही पाए जाते हैं। असातावेदनीय, अप्रशस्तविहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन बिना ५ संहनन समचतुरस्रसंस्थान बिना ५ संस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति इस प्रकार २० प्रकृतियों में विध्यात, अध:प्रवृत्त और गुणसंक्रमण पाए जाते हैं। मिथ्यात्वप्रकृति में विध्यात, गुण और सर्वसंक्रमण पाये जाते हैं तथा सम्यक्त्वप्रकृति में विध्यातसंक्रमण के बिना चार संक्रमण पाए जाते हैं॥४१९-२३॥

विशेषार्थ– पाँचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पञ्चेन्द्रियजाति तैजससशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तवर्ण-रस-गंध-स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय; इन ३९ प्रकृतियों का एक अध:प्रवृत्तसंक्रम ही होता है, क्योंकि पाँचज्ञानावरण, चारदर्शनावरण और पाँच अन्तराय का मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के अन्तिम समय तक बन्ध ही है। इसीलिए इन प्रकृतियों के अध:प्रवृत्त संक्रमण को छोड़कर अन्य संक्रम नहीं होते, बन्धव्युच्छित्ति के हो जाने पर उनका संक्रमण नहीं होता, क्योंकि प्रतिग्रह (जिनमें विवक्षित प्रकृतियां संक्रान्त होती हैं।) प्रकृतियों का यहाँ अभाव है।

शंका– सातावेदनीय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजससशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान,

प्रशस्तवर्ण, गन्ध, रस व स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर आदि छह और निर्माण; इनकी बंधव्युच्छित्ति हो जाने पर विध्यात अथवा गुणसंक्रम क्यों नहीं होता?

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे प्रशस्तप्रकृतियाँ हैं।

सञ्ज्वलनलोभ का एक अधःप्रवृत्तसंक्रम ही होता है, क्योंकि बंध के होने पर ही आनुपूर्वीसंक्रम (सञ्ज्वलनक्रोध का सञ्ज्वलनमानादि में, सञ्ज्वलनमान का सञ्ज्वलनमायादि में, इत्यादि) द्वारा उनका संक्रम होता है।

शंका– इन प्रकृतियों का सर्वसंक्रम क्यों नहीं होता?

समाधान– नहीं, क्योंकि अन्य प्रकृतियों में क्षेपण करके इनका विनाश नहीं होता, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, बारहकषाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंगति, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति, तिर्यंगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर; इन तीस प्रकृतियों के उद्वेलनसंक्रमण बिना शेष चार संक्रम होते हैं। यथा–स्त्यानगृद्धित्रय, स्त्रीवेद, तिर्यंगति, तिर्यंगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत और अनन्तानुबंधीचतुष्क का मिथ्यात्व से सासादन गुणस्थान तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिश्रगुणस्थान से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक उनका विध्यातसंक्रमण होता है, क्योंकि वहाँ उनके बंध का अभाव है। क्षपकअपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथमसमय से लेकर अपने-अपने अन्तिमस्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक उनका गुणसंक्रमण होता है तथा अन्तिमफालि का सर्वसंक्रमण होता है।

नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर का मिथ्यात्वगुणस्थान में अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहां पर इनका बंध पाया जाता है। सासादनगुणस्थान से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि अप्रशस्तता के होने पर वहाँ बन्ध का अभाव है। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण; इनका देव व नारकमिथ्यादृष्टियों में विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनके इनका बन्ध नहीं होता। विशेष इतना है कि एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृति के ईशानकल्प तक के देव अधःप्रवृत्तसंक्रम के द्वारा संक्रामक हैं, क्योंकि उनमें इनका बन्ध देखा जाता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय से अन्तिम स्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक इन प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है, क्योंकि अप्रशस्तता के होने पर उनके बन्ध का अभाव है, इनकी अन्तिमफालि का सर्वसंक्रम होता है, क्योंकि उसका विनाश निक्षेपपूर्वक होता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का मिथ्यात्व से असंयतगुणस्थान तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है,

क्योंकि वहाँ इनका बन्ध देखा जाता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थान के अंतिम समय तक उनका विध्यातसंक्रम होता है। ऊपर अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से अंतिमकाण्डक की द्विचरमफालि तक उनका गुणसंक्रमण होता है। इसका कारण सुगम है। अन्तिम फालि का सर्वसंक्रम होता है, क्योंकि वह अन्यप्रकृति में प्रक्षिप्त होकर नष्ट होती है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क की प्ररूपणा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के समान है। विशेष इतना है कि देशसंयतगुणस्थान तक इनका अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है।

अरति और शोक का मिथ्यात्व से प्रमत्तसंयत गुणस्थानपर्यन्त अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध पाया जाता है। अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में इनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध नहीं है। अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर अपने अन्तिम स्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ अप्रशस्तता होने पर उनका बन्ध नहीं होता। उनकी अंतिमफालि का सर्वसंक्रम होता है। इसका कारण सुगम है।

निद्रा, प्रचला तथा अप्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस व स्पर्श और उपधात के अध:प्रवृत्तसंक्रम और गुणसंक्रम ये दो ही संक्रम होते हैं। यथा-निद्रा और प्रचला का मिथ्यात्व से अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम सप्तमभाग तक अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि यहाँ इनका बन्ध पाया जाता है। आगे सूक्ष्मसाम्परायिक के अंतिम समय तक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि यहाँ उनका बन्ध नहीं है।

अप्रशस्तवर्णादिचतुष्क मिथ्यात्व से अपूर्वकरणगुणस्थान के सात भागों में से छठे भाग तक इनका अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है। आगे सूक्ष्मसाम्परायिक के अन्तिम समय तक उनका गुणसंक्रम होता है। इसके आगे उनका संक्रम नहीं है, क्योंकि बन्ध के न होने से उनकी प्रतिग्रह प्रकृतियों का वहाँ अभाव है।

उपघात की प्ररूपणा वर्णचतुष्क के समान है। इन निद्रा आदि सात प्रकृतियों का विध्यातसंक्रम नहीं होता, क्योंकि क्षपक और उपशमक श्रेणियों में इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। इनका उद्वेलनसंक्रम भी नहीं होता, क्योंकि अन्य प्रकृतियों में प्रक्षिप्त होकर उनका विनाश नहीं होता।

असातावेदनीय, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति और नीचगोत्र इन २० प्रकृतियों के अध:प्रवृत्तसंक्रम, विध्यातसंक्रम और गुणसंक्रम ये तीन संक्रम होते हैं। यथा-असातावेदनीय, अस्थिर और अशुभ इनका मिथ्यात्व से प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक अध:प्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि यहाँ इनका बन्ध पाया जाता है। अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियों का अभाव है।

हुण्डकसंस्थान और असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन का मिथ्यात्वगुणस्थान में अध:प्रवृत्त संक्रम

होता है, क्योंकि वहाँ पर इनका बन्ध पाया जाता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक इनका विध्यात संक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध नहीं होता। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्च व मनुष्यमिथ्यादृष्टियों में भी उनका विध्यातसंक्रम ही होता है, क्योंकि उनके इन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिकगुणस्थान के अन्तिम समय तक उनका गुणसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ पर इनके बन्ध का अभाव है। आगे उनका संक्रम नहीं होता, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियों का अभाव है।

चार संस्थान, चार संहनन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र और अप्रशस्तविहायोगति का मिथ्यात्वगुणस्थान से सासादनगुणस्थान पर्यंत अधःप्रवृत्त संक्रम होता है। आगे अप्रमत्तसंयतगुणस्थान के अन्तिम समय तक उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि आगे उनका बंध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के अन्तिम समय पर्यंत उनका गुण संक्रम होता है, क्योंकि वे अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। आगे उनका संक्रम नहीं है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृतियों का अभाव है। इसी प्रकार अपर्याप्त नाम कर्म के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष इतना है कि इसका अधःप्रवृत्तसंक्रमण केवल मिथ्यात्वगुणस्थान में ही होता है।

अयशस्कीर्तिकी प्ररूपणा अपर्याप्त प्रकृति के समान है। विशेष इतना है कि मिथ्यात्व से प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक इसका अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, क्योंकि इन गुणस्थानों में उसका बन्ध पाया जाता है।

मिथ्यात्वप्रकृति के विध्यातसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम ये तीन संक्रम होते हैं। यथा— प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव के मिथ्यात्व का गुणसंक्रम होता है। क्षपणा में भी अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर अन्तिम स्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक उसका गुणसंक्रम होता है। तथा अन्तिम फालि का सर्वसंक्रम होता है। उपशमसम्यग्दृष्टि के ही मिथ्यात्वप्रकृति का विध्यातसंक्रम भी होता है।

वेदकसम्यक्त्व (सम्यक्त्वप्रकृति) के अधःप्रवृत्तसंक्रम, उद्वेलनसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम; ये चार संक्रम होते हैं। यथा–मिथ्यात्व को प्राप्त हुए सम्यग्दृष्टि के अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्वप्रकृति का अधःप्रवृत्त संक्रम होता है। उसके आगे पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र काल तक उसका अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रतिभागवाला उद्वेलनसंक्रम होता है। उद्वेलन के अन्तिमकाण्डक के प्रथम समय से लेकर उसकी ही द्विचरमफालि तक उसी का गुणसंक्रम होता है तथा उसकी अंतिम फालि का सर्वसंक्रम होता है।

सम्मविहीणुव्वेल्ले पंचेव य तत्थ होंति संकमणा।
संजलणतिये पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य॥४२४॥

अर्थ– सम्यक्त्व प्रकृति बिना उद्वेलनारूप १२ प्रकृतियों में पाँचों संक्रमण होते हैं तथा सञ्ज्वलनक्रोधादि तीन और पुरुषवेद में अधःप्रवृत्त एवं सर्वसंक्रमण ही पाए जाते हैं। इन प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होते हुए भी गुणसंक्रमण की प्राप्ति नहीं होती है।

विशेषार्थ– सम्यग्मिथ्यात्व, देवगति, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आहारकशरीर, आहारकशरीरअंगोपांग नामकर्म और उच्चगोत्र इन बारह प्रकृतियों के पाँच संक्रमण होते हैं। यथा- मिथ्यात्व को प्राप्त सम्यग्दृष्टि के अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यग्मिथ्यात्व का अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है। उसके आगे पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल तक सम्यग्मिथ्यात्व का उद्वेलनसंक्रम होता है। अन्तिमकाण्डक में उसकी ही द्विचरमफालि तक गुणसंक्रम होता है। चरमफालि का सर्वसंक्रम होता है। दर्शनमोहक्षपकअपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर अन्तिम स्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक सम्यग्मिथ्यात्व का गुणसंक्रम होता है। उसकी अन्तिम फालि का सर्वसंक्रम होता है। उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि के उसका अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रतिभागवाला विध्यातसंक्रम होता है।

देवगति और देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यात्वगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थान के सात भागों में से छठे भाग पर्यंत अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध पाया जाता है। उसके आगे बन्ध का अभाव होने पर भी अधःप्रवृत्तसंक्रम ही होता है, क्योंकि वे प्रशस्तप्रकृतियाँ हैं। देव-नारकियों में उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनके इनका बन्ध नहीं होता। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में उद्वेलन के अन्तिमकाण्डक के प्राप्त न होने तक उनका उद्वेलनसंक्रमण होता है। अंतिमकाण्डक में उसी की द्विचरमफालि तक गुणसंक्रम होता है तथा अंतिमफालि का सर्वसंक्रम होता है।

वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरअंगोपांग प्ररूपणा देवगति के समान है। नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी की भी प्ररूपणा देवगति के समान है। विशेष इतना है कि मिथ्यात्वगुणस्थान में ही इनका अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। सासादनगुणस्थान से अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक उनका विध्यातसंक्रम होता है। देव-नारकियों में भी इनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि देव-नारकियों के इनका बन्ध नहीं होता। अपूर्वकरणगुणस्थान से अपने अन्तिमस्थितिकाण्डक की द्विचरमफालि तक उनका गुणसंक्रम और अन्तिमफालि का सर्वसंक्रम होता है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में उनका उद्वेलनसंक्रम होता है। उद्वेलन के अन्तिमकाण्डक में (द्विचरमफालि तक) उनका गुणसंक्रम और उसी की अन्तिमफालि का सर्वसंक्रम होता है। इस प्रकार उक्त दो प्रकृतियों के पाँच संक्रम होते हैं।

मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यात्व से असंयतगुणस्थानपर्यंत अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध पाया जाता है। देशसंयत से अप्रमत्तसंयतगुणस्थानपर्यंत उनका विध्यातसंक्रम होता है। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चों और मनुष्यों में उनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध नहीं होता है। तेजवायुकायिकों में द्विचरम उद्वेलनकाण्डक तक उनका उद्वेलनसंक्रम होता है। अन्तिम उद्वेलनकाण्डक में (द्विचरमफालि तक) गुणसंक्रम और उसी की अन्तिमफालि का सर्वसंक्रम होता है।

आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग नामकर्मों का अप्रमत्तसंयत से लेकर अपूर्वकरण तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है और प्रमत्तगुणस्थान में विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ इनका बन्ध नहीं होता। आहारकशरीर सत्कर्मिकसंयत असंयम को प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त में उद्वेलना प्रारम्भ करता है, जब तक वह असंयत है और जब तक सत्कर्म से रहित होता है तब तक वह उद्वेलना करता है। आहारकद्विक का उद्वेलनकाल के भीतर उद्वेलन संक्रम होता है। अंतिम स्थितिकाण्डक में गुणसंक्रम होता है। उसमें ही अंतिमफालि का सर्वसंक्रम होता है।

उच्चगोत्र का मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानों में अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। आगे इस प्रकृति का संक्रम नहीं होता है, क्योंकि प्रतिग्रह प्रकृति का अभाव है। सप्तमपृथ्वी के नारकियों में उसका विध्यातसंक्रम होता है। तेजकायिक और वायुकायिक जीवों में उसका उद्वेलनसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ उद्वेलन के योग्य परिणाम पाये जाते हैं। अन्तिम उद्वेलनकाण्डक में गुणसंक्रम होता है। उसी की अन्तिम फालि का सर्वसंक्रम होता है।

तीन संज्वलनकषायों और पुरुषवेद के अधःप्रवृत्तसंक्रम और सर्वसंक्रम ये दो संक्रम होते हैं। यथा—तीन संज्वलनकषायों और पुरुषवेद का मिथ्यात्व से अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। इनके अन्तिमकाण्डक की अन्तिमफालि का सर्वसंक्रम होता है।

ओरालदुगे वज्जे तित्थे विज्झादधापवत्तो य।
हस्सरदिभयजुगुच्छे अधापवत्तो गुणो सव्वो ॥४२५॥

अर्थ– औदारिक शरीर-औदारिक अंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृति में विध्यात व अधःप्रवृत्त संक्रमण पाया जाता है। यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृति में जो विध्यातसंक्रमण कहा है वह द्वितीय व तृतीय नरक जाने के सम्मुख मनुष्य एवं जो मरण को प्राप्त हुआ है ऐसा मिथ्यादृष्टि नारकी जीव के होता है। हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों में अधःप्रवृत्तसंक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण पाये जाते हैं। इस प्रकार प्रकृतियों में सर्वसंक्रमण कहा।

विशेषार्थ– हास्य, रति, भय और जुगुप्सा के अधःप्रवृत्तसंक्रमण, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम होते हैं। यथा– औदारिकद्विक और प्रथमसंहनन का मिथ्यात्व से असंयतगुणस्थान तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ पर उनका बन्ध देखा जाता है। असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चों और मनुष्यों में इनका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि उनमें इनका बन्ध नहीं होता। तीर्थङ्कर प्रकृति का असंयतगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान तक अधःप्रवृत्तसंक्रम होता है। मिथ्यात्वगुणस्थान में उसका विध्यातसंक्रम होता है, क्योंकि वहाँ उसका बन्ध नहीं होता।

सम्मत्तूणुव्वेलणथीणतितीसं च दुक्खवीसं च।
वज्जोरालदुतित्थं मिच्छं विज्झादसत्तट्ठी ॥४२६॥

अर्थ– सम्यक्त्वप्रकृति के बिना १२ उद्वेलनप्रकृतियाँ, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान की १२ कषाय, स्त्री नपुंसकवेद, अरति-शोक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, असातावेदनीय, अप्रशस्त-विहायोगति, वज्रर्षभनाराचसंहनन बिना ५ संहनन, समचतुरस्रसंहनन बिना ५ संस्थान, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, तीर्थङ्कर और मिथ्यात्व ये सर्व ६७ प्रकृतियाँ विध्यातसंक्रमण की हैं।

अब जिन प्रकृतियों का अधःप्रवृत्तसंक्रमण और जिन प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है उन प्रकृतियों के नाम कहते हैं।

मिच्छूणिगिवीससयं, अधापवत्तस्स होंति पयडीओ।
सुहुमस्स बंधघादिप्पहुदी उगुदालुरालदुगतित्थं ॥४२७॥

वज्जं पुंसंजलणति ऊणा गुणसंकमस्स पयडीओ।
पणहत्तरिसंखाओ पयडीणियमं विजाणाहि ॥४२८॥जुम्मं॥

अर्थ– मिथ्यात्वप्रकृति बिना शेष १२१ प्रकृतियाँ अधःप्रवृत्तसंक्रमण की जानना तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में बँधने वाली घातिया कर्मों की १४ प्रकृतियों को आदि लेकर ३९ प्रकृति, औदारिकद्विक, तीर्थङ्कर, वज्रर्षभनाराचसंहनन, पुरुषवेद और सञ्ज्वलनक्रोधादि ३ इन ४७ प्रकृतियों के बिना ७५ प्रकृति गुणसंक्रमण संबंधी जानना।

विशेषार्थ– अधःप्रवृत्तसंक्रमण सम्बन्धी प्रकृतियाँ १२१ हैं तथा ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, सातावेदनीय, सञ्ज्वलनलोभ, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसकार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान

शुभवर्णादि ४, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, औदारिकशरीर-औदारिकअंगोपांग, तीर्थङ्कर, वज्रर्षभनाराचसंहनन, पुरुषवेद और सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया इन ४७ प्रकृति बिना शेष ७५ प्रकृति गुणसंक्रमण की जानना। इस प्रकार प्रकृतियों में संक्रमण सम्बन्धी नियम कहा।

जिन-जिन प्रकृतियों में जो-जो संक्रमण होते हैं उनकी पृथक् संदृष्टि—

प्रकृतियों के नाम	उद्वेलन संक्रमण	विध्यात संक्रमण	अधःप्रवृत्त संक्रमण	गुणसंक्रमण	सर्वसंक्रमण
ज्ञानावरण ५	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
दर्शनावरण ४	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
स्त्यानगृद्धिआदि निद्रा ३	नहीं है	है	है	है	है
निद्रा-प्रचला २	नहीं है	नहीं है	है	है	नहीं है
सातावेदनीय १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
असातावेदनीय १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अनन्तानुबन्धी ४	नहीं है	है	है	है	है
अप्रत्याख्यानावरण ४	नहीं है	है	है	है	है
प्रत्याख्यानावरण ४	नहीं है	है	है	है	है
संज्वलनक्रोधादि ३	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	है
सञ्ज्वलनलोभ १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
नोकषाय ४	नहीं है	नहीं है	है	है	है
अरति-शोक २	नहीं है	है	है	है	है
नपुंसकवेद १	नहीं है	है	है	है	है
स्त्रीवेद १	नहीं है	है	है	है	है
पुरुषवेद १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	है

मिथ्यात्व १	नहीं है	है	नहीं है	है	है
सम्यग्मिथ्यात्व १	है	है	है	है	है
सम्यक्त्व १	है	नहीं है	है	है	है
नरकगति-नरक-गत्यानुपूर्वी	है	है	है	है	है
तिर्यञ्चगति-तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी	नहीं है	है	है	है	है
मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी	है	है	है	है	है
देवगति-देवगत्यानुपूर्वी	है	है	है	है	है
एकेन्द्रिय १	नहीं है	है	है	है	है
विकलत्रय ३	नहीं है	है	है	है	है
पञ्चेन्द्रिय १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
औदारिकद्विक २	नहीं है	है	है	नहीं है	नहीं है
वैक्रियिकद्विक २	है	है	है	है	है
आहारकद्विक २	है	है	है	है	है
तैजस-कार्मण २	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
निर्माण १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
समचतुरस्रसंस्थान १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
स्वातिसंस्थान १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
कुब्जकसंस्थान १	नहीं है	है	है	है	नहीं है

हुण्डकसंस्थान १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
वामनसंस्थान १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
वज्रर्षभनाराचसंहनन १	नहीं है	है	है	नहीं है	नहीं है
वज्रनाराचादिसंहनन ४	नहीं है	है	है	है	नहीं है
असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन	नहीं है	है	है	है	नहीं है
[illegible]	[illegible]	[illegible]	है	नहीं है	नहीं है
अशुभवर्णादि ४	नहीं है	नहीं है	है	है	नहीं है
अगुरुलघु	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
उपघात	नहीं है	नहीं है	है	है	नहीं है
परघात १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
उच्छ्वास १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
आतप १	नहीं है	है	है	है	है
उद्योत १	नहीं है	है	है	है	है
प्रशस्तविहायोगति १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
अप्रशस्तविहायोगति १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
प्रत्येकशरीर १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
त्रस १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
सुभग १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
सुस्वर १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
शुभ १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
बादर १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
पर्याप्त १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है

स्थिर १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
आदेय १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
यशस्कीर्ति १	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है
साधारणशरीर १	नहीं है	है	है	है	है
स्थावर १	नहीं है	है	है	है	है
दुर्भग १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
दुःस्वर १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अशुभ १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
सूक्ष्म १	नहीं है	है	है	है	है
अपर्याप्त १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अस्थिर १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अनादेय १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अयशस्कीर्ति	नहीं है	है	है	है	नहीं है
तीर्थङ्कर १	नहीं है	है	है	नहीं है	नहीं है
उच्चगोत्र १	है	है	है	है	है
नीचगोत्र १	नहीं है	है	है	है	नहीं है
अन्तराय ५	नहीं है	नहीं है	है	नहीं है	नहीं है

ठिदिअणुभागाणं पुण, बंधो सुहुमोत्ति होदि णियमेण।
बंधपदेसाणं पुण, संकमणं सुहुमरागोत्ति॥४२९॥

अर्थ– स्थिति और अनुभागबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यंत ही है इसलिए स्थिति और अनुभाग का कारण कषाय है तथा बन्ध रूप हुए परमाणुओं का संक्रमण भी सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत ही है। **"बंधे अधापवत्तो"**[1] इस सूत्र के अभिप्राय से स्थितिबन्ध पर्यन्त ही संक्रमण संभव हैं।

१. गो. क. गाथा ४१६।

अथानन्तर पाँच भागहारों का अल्पबहुत्व ६ गाथाओं से कहते हैं—

सव्वस्सेक्कं रूवं, असंखभागो दु पल्लछेदाणं।
गुणसंकमो दु हारो, ओकट्टुक्कट्टणं तत्तो ॥४३०॥

हारं अधापवत्तं, तत्तो जोगम्हि जो दु गुणगारो।
णाणागुणहाणिसला, असंखगुणिदक्कमा होंति ॥४३१॥

तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति।
पल्लस्स पढममूलं, गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा ॥४३२॥

अण्णोण्णब्भत्थं पुण, पल्लमसंखेज्जएणगुणिदकमा।
संखेज्जरूवगुणिदं, कम्मुक्कस्साद्धिदी होदि ॥४३३॥

अंगुलअसंखभागं, विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ ॥४३४॥

गुणहाणिअणंतगुणं, तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य।
अहियकमाणण्णोण्णब्भत्थो रासी अणंतगुणो ॥४३५॥कुलयं॥

अर्थ– सर्वसंक्रमणनामा भागहार सबसे स्तोक है, उसका प्रमाण १ संख्या रूप है। चरमफालि में जितने परमाणु शेष रहे थे सर्वसंक्रमण भागहार के प्रमाण १ से भाग देने पर जितने परमाणु आए वे सर्वपरमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करें उसे सर्वसंक्रमण जानना तथा असंख्यात गुणे पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणसंक्रमणनामा भागहार है। जिन प्रकृतियों में गुणसंक्रमण होता है उनके परमाणुओं में गुणसंक्रमण भागहार का भाग देने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उतने परमाणु यथायोग्य काल में समय-समयप्रति असंख्यात गुणे होकर अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे गुणसंक्रमण कहते हैं तथा इससे उत्कर्षण व अपकर्षणभागहार असंख्यातगुणा है तथापि वह पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है, उसका इन पंचभागहारों में कथन नहीं है फिर भी जहाँ उत्कर्षण, अपकर्षणभागहार का कथन आवे वहाँ यही प्रमाण जानना। इससे अधःप्रवृत्तसंक्रमणभागहार असंख्यातगुणा है तो भी वह पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अधःप्रवृत्तसंक्रमण रूप प्रकृतियों के परमाणुओं में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो प्रमाण आवे उतने परमाणु अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करें उसे अधःप्रवृत्तसंक्रमण कहते हैं। योगों के कथन में जो गुणकार

कहा है वह असंख्यातगुणा है तथापि वह पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग ही है। जघन्य योग स्थानों को पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर उत्कृष्टयोगस्थान होता है तथा कर्मस्थिति की नानागुणहानिशलाका का प्रमाण असंख्यातगुणा है अर्थात् पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों में से घटाने पर जो प्रमाण शेष रहे उतने प्रमाण हैं। इससे पल्य के अर्धच्छेदों का प्रमाण अधिक है, अधिकता का यह प्रमाण वर्गशलाका के अर्धच्छेदों के बराबर है। इससे पल्य का प्रथमवर्गमूल असंख्यातगुणा है। द्विरूप वर्गधारा में पल्य के अर्धच्छेदरूप स्थान से असंख्यातस्थान व्यतीत होने पर पल्य का प्रथमवर्गमूल होता है, इससे कर्मस्थिति की एक गुणहानि के समयों का प्रमाण असंख्यातगुणा है सो ७०० को चार बार करोड़ से गुणा करने पर जो लब्ध आया उससे गुणित पल्य में नानागुणहानि के प्रमाण का भाग देने पर यह प्रमाण प्राप्त होता है। इससे कर्मस्थिति की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण असंख्यातगुणा है अतः नाना गुणहानि के प्रमाण बराबर दो का अंक लिखकर परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण होता है। इससे पल्य का प्रमाण असंख्यातगुणा है सो अन्योन्याभ्यस्तराशि के प्रमाण को पल्य की वर्गशलाका से गुणा करने पर पल्य का प्रमाण प्राप्त होता है, इससे कर्म की उत्कृष्टस्थिति संख्यातगुणी है। इस प्रकार एक सागर के १० कोड़ा कोड़ी पल्य हैं तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर के पल्यों का प्रमाण ७०० को चार बार करोड़ से गुणा करने पर पल्य होते हैं। इससे विध्यात संक्रमण भागहार असंख्यातगुणा है तथापि वह सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है अर्थात् सूच्यंगुल में आकाश के जितने प्रदेश होते हैं उनका असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इस प्रकार विध्यातसंक्रमण रूप प्रकृतियों के परमाणुओं में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो प्रमाण हो उतने परमाणु अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करें उसे **विध्यातसंक्रमण** जानना चाहिए। इससे उद्वेलनभागहार असंख्यातगुणा फिर भी वह सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उद्वेलनरूप प्रकृतियों के परमाणुओं में उद्वेलनभागहार का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमें उसे **उद्वेलनसंक्रमण** कहते हैं। इससे कर्मों के अनुभागबन्ध कथन में नानागुणहानि शलाका का प्रमाण अनन्त है, इससे उस अनुभाग की एक गुणहानि आयाम का प्रमाण अनन्तगुणा है, उसी की डेढ़ गुणहानि आयाम का प्रमाण एक गुणहानि आयाम के प्रमाण से आधा (१/२) अधिक है तथा अनुभाग की दो गुणहानि का प्रमाण डेढ़ गुणहानि के प्रमाण से आधा (१/२) अधिक है। अनुभाग की अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण अनन्तगुणा जानना। इस प्रकार पञ्चभागहारों के अल्पबहुत्व का प्रसंग होने से अन्य का भी अल्पबहुत्व निरूपण किया।

पञ्चभागाहार (संक्रमण) सम्बन्धी अल्पबहुत्व का कथन करते हैं—

गुणसंक्रमण के द्वारा संक्रान्त होने वाले प्रदेशाग्र का अवहारकाल स्तोक है। अधःप्रवृत्तसंक्रम के द्वारा संक्रांत होने वाले प्रदेशाग्र का अवहारकाल असंख्यातगुणा है। विध्यातसंक्रम के द्वारा संक्रांत

होने वाले प्रदेशाग्र का अवहारकाल असंख्यातगुणा है। यह अल्पबहुत्व उत्कृष्टप्रदेश संक्रमभागहारों का है, न कि सर्वभागहारों का; क्योंकि विध्यातसंक्रमभागहार से अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहार विशेष हीन पाया जाता है।

शंका– यह कहाँ से जाना जाता है?

समाधान– वह, प्रत्याख्यानावरणलोभ के जघन्य संक्रमद्रव्य से केवलज्ञानावरण का जघन्य संक्रम द्रव्य विशेष अधिक है, इस आगे कहे जाने वाले अल्पबहुत्व से जाना जाता है।

उसकी अपेक्षा उद्वेलनसंक्रम से संक्रांत होने वाले द्रव्य का अवहारकाल असंख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्व का यहाँ अवधारण करना चाहिए।[१]

उद्वेलनसंक्रम में प्रदेशाग्र सबसे स्तोक हैं, क्योंकि उसे लाने का भागहार अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इससे असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र विध्यातसंक्रम में है, क्योंकि इन दोनों को लाने का भागहार अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप से समान होने पर भी पहले भागहार से विध्यातसंक्रम का भागहार असंख्यातगुणा हीन स्वीकार किया गया है। उससे अधःप्रवृत्तसंक्रम में प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि इसे लाने के लिए भागहार पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उससे गुणसंक्रम में प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि पूर्वद्रव्य के भागहार से यह द्रव्य असंख्यातगुणेहीन भागहार से सम्बन्ध रहता है। गुणसंक्रम के प्रदेशाग्र से सर्वसंक्रम में प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह द्रव्य एक अंकप्रमाण भागहार से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार द्रव्यों के अल्पबहुत्व के द्वारा इन पाँच संक्रमभेदों के भागहार विशेष का भी ज्ञान करा दिया है। इसलिए इसके द्वारा रचित हुए भागहारों के अल्पबहुत्व को भी विलोमक्रम से ले जाना चाहिए।[२] वह विलोमक्रम इस प्रकार है— सर्वसंक्रम भागहार सबसे स्तोक है, क्योंकि वह एक अंकप्रमाण है। उससे गुणसंक्रमभागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उससे अधःप्रवृत्तसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्य के असंख्यातवें भाग होते हुए भी पूर्व से असंख्यातगुणा है। उससे विध्यातसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह अंगुल के असंख्यातवें भाग है। उससे उद्वेलनसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है, क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग होते हुए भी पूर्व से असंख्यातगुणा है।

इति पञ्चभागहारचूलिका।

---

१. धवल पु. १६ पृ. ४२१।

२. जयधवल पु. ९ पृ. १७२-७३।

❋ अथ दशकरणचूलिका ❋

आगे नेमिचन्द्राचार्य १४ गाथाओं में दसकरणचूलिका का कथन करने की इच्छा करते हुए सर्वप्रथम अपने श्रुतगुरु को नमस्कार करते हैं—

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो, णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥४३६॥

अर्थ– वीरेन्द्रनन्दी आचार्य का शिष्य मैं (ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्राचार्य) जिन श्रुतगुरु के चरण प्रसाद से अनन्तरूप संसारसमुद्र के पार को प्राप्त हुआ हूँ उन अभयनन्दी आचार्य को नमस्कार करता हूँ।

अब दस करणों के नाम कहते हैं—

बंधुक्कट्टणकरणं, संकमणोकट्टुदीरणा सत्तं।
उदयुवसामणिधत्ती, णिकाचणा होदि पडिपयडी ॥४३७॥

अर्थ– बन्ध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति और निकाचित ये दस करण कर्मप्रकृतियों के होते हैं।

अथानन्तर १० करणों का स्वरूप तीन गाथाओं से कहते हैं—

कम्माणं संबंधो, बंधो उक्कट्टणं हवे वड्ढी।
संकमणमण्णत्थगदी, हीणा ओकट्टणं णाम ॥४३८॥

अण्णत्थठियस्सुदये, संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं।
सत्तं सकालपत्तं, उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥४३९॥

उदये संकमुदये, चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं।[1]
उवसंतं च णिधत्ति णिकाचिदं होदि जं कम्मं ॥४४०॥

---

१. उदए संकमउदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं। उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं॥ (ध. पु.६ पृ. २९५, ध. पु. ९ पृ. २३६ और ध. पु. १५ पृ. २७६)

अर्थ– पुद्गलद्रव्य का कर्मरूप होकर आत्मप्रदेशों के साथ संश्लेषसम्बन्ध होना **बन्ध** है। कर्मों का जो स्थिति व अनुभाग पूर्व में था उसमें वृद्धि का होना **उत्कर्षण** कहलाता है। जो प्रकृति पूर्व में बंधी थी उसका अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करना अर्थात् उस प्रकृति के परमाणुओं का अन्य प्रकृति रूप होना प्रकृति **संक्रमण** है। कर्मों की स्थिति व उनका अनुभाग जो पूर्व में था उसको कम करना (घटाना) **अपकर्षण** कहलाता है। उदयावली के बाहर स्थित द्रव्य को अपकर्षण-करण के बल से उदयावली में लाना **उदीरणा** कहलाती है। जिन प्रकृतियों के निषेकों का उदयकाल नहीं आया अर्थात् उदयावली से उनका अधिककाल है सो उनकी स्थिति को घटाकर जो निषेक आवलीमात्र काल में उदय में आवें उनमें उनके परमाणुओं का मिलाना सो उनके साथ ही उनका उदय होवे, वह उदीरणा है। अस्तित्व अर्थात् पुद्गलों का कर्मरूप रहना **सत्त्व** कहलाता है। कर्मों का अपनी पूर्वबद्ध स्थितिबन्ध के अनुसार उदय को प्राप्त होना **उदय** कहलाता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो कर्म परमाणु उदीरणा को प्राप्त होने में समर्थ न हो उसे **उपशान्तकरण** कहते हैं तथा जो कर्मपरमाणु उदयावली को प्राप्त करने में तथा अन्य प्रकृति रूप संक्रमण करने में समर्थ नहीं होता उसे **निधत्ति** कहते हैं और जो कर्मपरमाणु उदयावली को प्राप्त करने में तथा अन्य प्रकृति रूप संक्रमण करने में अथवा उत्कर्षण-अपकर्षण करने में समर्थ नहीं होता उसे **निकाचित** कहते हैं।

विभिन्न ग्रन्थों में दस करणों के लक्षण इस प्रकार हैं—

बन्ध– **''बंधो णाम दुभावपरिहारेण एयत्तावत्तो''** अर्थात् द्वित्व का त्याग करके एकत्व की प्राप्ति का नाम बन्ध है।[१] **''एकीभावो बन्धः''** अर्थात् एकीभाव (जीवकर्म की एकरूपता) होने को बन्ध कहते हैं।[२] **''जीव-कम्माणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगेहिं एयत्तपरिणामो बंधो''** अर्थात् जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्वपरिणाम होता है उसे बन्ध कहते हैं।[३] **''जम्मि अणियोगद्दारे कम्मइयवग्गणाए पोग्गलक्खंधाणं कम्मपरिणामपाओग्गभावेणावट्ठिदाणं जीवपदेसेहिं सह मिच्छत्तादिपच्चयवसेण संबंधो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेयभिण्णो परूविज्जइ तमणुयोगद्दारं बंधोत्ति भण्णदे।''** अर्थात् जिस अनुयोगद्वार में कार्मणवर्गणा के कर्मरूप परिणमन करने की योग्यता को प्राप्त हुए पुद्गलस्कंधों का जीव-प्रदेशों के साथ मिथ्यात्वादि के निमित्त से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार प्रकार का सम्बन्ध कहा जाता है उस अनुयोगद्वार को 'बन्ध' कहते हैं।[४] ''श्लेषलक्षणः बन्धः''।[५]

और भी कहा है—

---

१. धवल पु. १३ पृ. ७। २. धवल पु. १३ पृ. ३४८। ३. ध. पु. ८ पृ. २। ४. जयधवल पु. ८ पृ. २।
५. रा. वा. अ. ५। ३३ सूत्र।

बन्धं प्रति भवत्यैक्यमन्योन्यानुप्रवेशतः।[१]
युगपद् द्रावितस्वर्णरौप्यवज्जीवकर्मणोः॥

अर्थ– जिस प्रकार एक साथ पिघलाए हुए स्वर्ण और चांदी का एक पिण्ड बनाए जाने पर परस्पर प्रदेशों के मिलने से दोनों में एकरूपता मालूम होती है उसी प्रकार बन्ध की अपेक्षा जीव और कर्मों के प्रदेशों के परस्पर मिलने से दोनों में एकरूपता मालूम होती है।

उत्कर्षण– ''कम्मप्पदेसट्ठिदिवड्ढावणमुक्कड्डणा'' अर्थात् कर्मप्रदेशों की स्थिति को बढ़ाना उत्कर्षण है।[२] **''उक्कड्डणा णाम कम्मपदेसाणं पुव्विल्लट्ठिदीदो अहिणवबंधसंबंधेण ट्ठिदिवड्ढावणं''** अर्थात् नवीन बंध के संबंध से पूर्व की स्थिति में से कर्मपरमाणुओं की स्थिति बढ़ाना उत्कर्षण है।[३] **''स्थित्यनुभागयोर्वृद्धिः उत्कर्षणं''** अर्थात् स्थिति व अनुभाग में वृद्धि का होना उत्कर्षण कहलाता है।[४]

अपकर्षण– ''(कम्म) पदेसाणं ठिदीणमोवट्टणा ओक्कड्डणा णाम'' अर्थात् कर्मप्रदेशों की स्थितियों के अपवर्तन का नाम अपकर्षण है।[५] ''स्थित्यनुभागयोर्हानिरपकर्षण णाम'' अर्थात् स्थिति व अनुभाग (कर्मों के) में हानि का होना अपकर्षण है।[६]

संक्रमण– ''बंधेण लद्धप्पसरूवस्स कम्मस्स मिच्छत्तादिभेयभिण्णस्स समयाविरोहेण सहावंतरसंकंतिलक्खणो संकमो पयडिसंकमादिभेयभिण्णो'' अर्थात् बन्ध के द्वारा जिन्होंने कर्मभाव को प्राप्त किया है और जो मिथ्यात्वादि अनेक भेदरूप हैं ऐसे कर्मों का यथाविधि स्वभावान्तर संक्रमणरूप संक्रम का लक्षण है और वह संक्रमण प्रकृतिसंक्रमणादि अनेक भेद रूप है।[७] **''अवत्थादो अवत्थंतरं संकंति संकमो त्ति''** अर्थात् एक अवस्था से दूसरी अवस्था रूप संक्रांत होना संक्रम है।[८] **''जा पयडी अण्णपयडिं णिज्जदि एसो पयडिसंकमो''** अर्थात् जो एक प्रकृति अन्यप्रकृतिस्वरूपता को प्राप्त कराई जाती है, यह प्रकृतिसंक्रम कहलाता है।[९] **''कम्मसंकमो चउव्विहो। तं जहा पयडिसंकमो ट्ठिदिसंकमो अणुभागसंकमो पदेससंकमो चेदि॥ मिच्छत्तादिकज्जजणणक्खमस्स पोग्गलक्खंधस्स कम्मववएसो। तस्स संकमो कम्मत्तापरिच्चाएण सहावंतर संकंती। सो पुण दव्वट्ठियणयावलंबणेणेगत्तमावण्णो पज्जवट्ठियणयावलंबणेण चउप्पयारो होइ पयडिसंकमादिभेएण। तत्थ पयडीए पयडिअंतरेसु संकमो पयडिसंकमो त्ति भण्णइ, जहा कोह पयडीए माणादिसु संकमो त्ति।** अर्थात् कर्मसंक्रमण चार प्रकार का है। यथा– प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम। जो पुद्गलस्कंध मिथ्यात्वादि कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ है वह

१. तत्त्वार्थसार अ. ५ श्लो. १८। २. ध. पु. १० पृ. ५२। ३. जयधवल पु. ८ पृ. २५३।
४. गो.क. गाथा ४३८ की टीका। ५. ध.पु. १० पृ. ५३। ६. गो. क. टीका (गाथा ४३८ की)
७. जयध. पु. ८ पृ. २। ८. जयध. पु. ९ पृ. ३। ९. धवल पु. १६ पृ. ३४०।

कर्म कहलाता है। उसका अपनी कर्मरूप अवस्था का त्याग किए बिना अन्य स्वभाव रूप से संक्रमण करना **कर्मसंक्रम** कहलाता है। वह यद्यपि द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से एक प्रकार का है तथापि पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से वह प्रकृतिसंक्रम आदि के भेद से चार प्रकार का है। इनमें से एक प्रकृति का दूसरी प्रकृतियों में संक्रमण होना प्रकृति संक्रम कहलाता है। जैसे क्रोधप्रकृति का मानादिक में संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम है।[१] **''जा ट्ठिदी ओकड्डिज्जदि वा उक्कड्डिज्जदि वा अण्णपयडिं संकामिज्जइ वा सो ट्ठिदिसंकमो''** अर्थात् जो स्थिति अपकर्षित, उत्कर्षित और अन्य प्रकृति रूप से संक्रमित होती है वह स्थितिसंक्रम है।[२] **''अणुभागो ओकड्डिदो वि संकमो, उक्कड्डिदो वि संकमो, अण्णपयडिं णीदो वि संकमो''**। अर्थात् अपकर्षित हुआ अनुभाग भी संक्रम है, उत्कर्षित हुआ अनुभाग भी संक्रम है तथा अन्य प्रकृति को प्राप्त हुआ अनुभाग भी संक्रम है।[३]

''जं पदेसग्गमण्णपयडिं णिज्जदे जत्तो पयडीदो तं पदेसग्गं णिज्जदि तिस्से पयडीए सो पदेससंकमो। एदेण परपयडिसंकंतिलक्खणो चेव पदेससंकमो ण ओकड्डुक्कड्डणलक्खणो त्ति जाणाविदं, ट्ठिदि-अणुभागाणं व ओकड्डुक्कड्डणादि पदेसग्गस्स अण्णभावावत्तीए अणुवलंभादो।'' अर्थात् जो प्रदेशाग्र जिस प्रकृति से अन्य प्रकृति को ले जाया जाता है वह प्रदेशाग्र यतः ले जाया जाता है इसलिए उस प्रकृति का वह प्रदेशसंक्रम है। इस वचन द्वारा पर प्रकृति संक्रमलक्षण ही प्रदेशसंक्रम है, अपकर्षण-उत्कर्षणलक्षण नहीं यह ज्ञान कराया गया है, क्योंकि जिस प्रकार अपकर्षण-उत्कर्षण के द्वारा स्थिति और अनुभाग का अन्यरूप होना पाया जाता है उस प्रकार उनके द्वारा प्रदेशाग्र का अन्यरूप होना नहीं पाया जाता है।[४]

नवीन बन्ध होने पर ही बन्ध प्रकृति में अन्य स्वजाति प्रकृतियों का संक्रमण होता है। कहा भी है– **''बंधे संकमदि त्ति एसो वि णाओ जाणाविदो।''**[५] जिस प्रकृति का बंध नहीं हो रहा है उस प्रकृति में अर्थात् उस प्रकृति रूप संक्रमण नहीं होता। संक्रमण भी एक प्रकार का बन्ध है। कहा भी है– **''कथमेत्थ संकमस्स बंधगववएसो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स वि बंधंतब्भावित्तादो। तं जहा– दुविहो बंधो अकम्मबंधो कम्मबंधो चेदि। तत्थाकम्मबंधो णाम कम्मइयवग्गणादो अकम्मसरूवेणावट्ठिदपदेसाणं गहणं। कम्मबंधो णाम कम्मसरूवेणावट्ठिदपोग्गलाणमण्णपयडिसरूवेण परिणमणं। तं जहा– सादत्ता बद्धकम्ममंतरंगपच्चयविसेसवसेणासादत्ताए जदा परिणामिज्जइ, जदा वा कसायसरूवेण बद्धा कम्मंसा बंधावलियं वोलाविय णोकसायसरूवेण संकामिज्जंति तदा सो कम्मबंधो उच्चइ, कम्मसरूवापरिच्चाएणेव कम्मंतरसरूवेण बज्झमाणत्तादो।''**[६] अर्थात् संक्रम को बन्ध संज्ञा कैसे प्राप्त होती है? ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रम का भी बन्ध में अन्तर्भाव हो जाता है।

---

१. जयधवल पु. ८ पृ. १४। २. जयधवल पु. ८ पृ. २४२। ३. जयध. पु. ९ पृ. ३।
४. जयध. पु. ९ पृ. १६९। ५. जयध. पु. ८ पृ. ३३। ६. जयध. पु. ८ पृ. २।

यथा– अकर्मबन्ध कर्मबन्ध के भेद से बन्ध के दो भेद हैं। उनमें से जो कार्मणवर्गणाओं में से अकर्मरूप से स्थित परमाणुओं का ग्रहण होता है वह अकर्मबन्ध है और कर्मरूप से स्थित पुद्गलों का अन्य प्रकृतिरूप से परिणमना कर्मबन्ध है। उदाहरणार्थ– सातारूप से बन्ध को प्राप्त हुए जो कर्म अन्तरंग कारण के मिलने पर जब असातारूप से परिणमन करते हैं, या कषायरूप से बँधे हुए कर्म बन्धावली के बाद जब नोकषायरूप से परिणमन करते हैं, तब वह कर्मबन्ध कहलाता है, क्योंकि कर्मरूपता का त्याग किये बिना ही ये कर्मान्तररूप से पुनः बँधते हैं।

अपकर्षण और उत्कर्षण में भी कर्म कर्मरूपता का त्याग किये बिना ही स्थित्यन्तर व अनुभागान्तररूप से पुनः बँधते हैं अतः अपकर्षण-उत्कर्षण का भी संक्रमण में अन्तर्भाव किया गया है। इस प्रकार बन्ध के साथ-साथ संक्रमण, अपकर्षण व उत्कर्षण का कथन किया गया है।

सत्त्व– "बंधो चेव बंधविदियसमयप्पहुडि संतकम्मं उच्चदि जाव णिल्लेवणचरिमसओत्ति"– अर्थात् बंध की ही बँधने के दूसरे समय से लेकर निर्लेपन अर्थात् क्षपण होने के अन्तिम समय तक सत्कर्म या सत्त्व संज्ञा है।[१] अकर्मबन्धरूप व कर्मबन्धरूप संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण के पश्चात् कर्म का सत्त्व होता है और जब तक उस कर्म का वेदन होकर अकर्मभाव को प्राप्त नहीं होता तब तक उस कर्म का सत्त्व रहता है। अतः जिन कर्मों का सत्त्व है उन्हीं कर्मों का वेदन होता है। वह वेदन कर्मोदय व उदीरणा के द्वारा होता है। कहा भी है– **"कधं पुण उदयोदीरणाणं वेदगववएसो? ण, वेदिज्जमाणत्तसामण्णावेक्खाए दोण्हमेदेसिं तव्ववएससिद्धीए विरोहाभावादो।"** अर्थात् उदय और उदीरणा दोनों ही सामान्य से वेद्यमान हैं, इस अपेक्षा उन दोनों की वेदक संज्ञा सिद्ध होने में विरोध नहीं आता।[२] अतः वेद्यमान उदय और उदीरणा में प्रथम कर्मोदय का कथन किया जाता है।

उदय– "ते च्चेय फलदाणसमए उदयववएसं पडिवज्जंति" अर्थात् जीव से संबद्ध हुए वे ही कर्मस्कंध फल देने के समय में 'उदय' इस संज्ञा को प्राप्त होते हैं।[३] **"सो चेव दुसमयाधियबंधावलियाए ट्ठिदिक्खएण उदए पदमाणो उदयसण्णिदो।"** अर्थात् बँधा हुआ कर्म दो समय अधिक बंधावली के व्यतीत हो जाने पर निषेकस्थिति के क्षय से उदय में पतमान अर्थात् गिरता हुआ उदय इस संज्ञावाला होता है।[४] **"तत्थोदयो णाम कम्माणं जहाकालजणिदो फलविवागो। कम्मोदयो उदयो त्ति भणिदं होदि।"** अर्थात् यथाकाल उत्पन्न हुए फल के विपाक का नाम कर्मोदय है। कर्मोदय का नाम उदय है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है।[५] **"स्वफलसंपादनसमर्थ–**

१. ध. पु. ६ पृ. २०१। २. जयधवल पु. १० पृ. २।
३. जयधवल पु. १ पृ. २९१ पेराग्राफ नं. २५० (प्रथमसंस्करणापेक्षा) तथा द्वितीयावृत्ति की अपेक्षा पृ. २६५ पं. नं. ७।
४. ध. पु. ६ पृ. २०२। ५. जयध. पु. १० पृ. २।

कर्मावस्थालक्षणान्युदयस्थानानि'' अर्थात् कर्मों का अपना फल देने की समर्थतारूप अवस्था को प्राप्त होना उदय का लक्षण है।[१] ''**स्वफलसम्पादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणानि स्वफलभूतसुखदुःखाद्यात्मकजीवविभावपरिणामजननसामर्थ्यसम्पन्नकर्मपरिणाम-स्वरूपाण्युदयस्थानानि।**'' अर्थात् अपने फल को देने की सामर्थ्यरूप कर्म की अवस्था यानी कर्मों का फल जीव में सुख-दुःखादि विभावों (परिणामों) को उत्पन्न करना है। उस फल को उत्पन्न करने की शक्ति सहित जो पौद्गलिक कर्म के परिणाम हैं वह उदय का लक्षण या स्वरूप है।[२] ''**जे कम्मक्खंधा ओकड्डुक्कड्डणादिपओगेण विणा ट्ठिदिक्खयं पाविदूण अप्पप्पणो फलं देंति, तेसिं कम्मक्खंधाणमुदओ त्ति सण्णा।**'' अर्थात् जो कर्मस्कंध अपकर्षण, उत्कर्षणादि प्रयोगबिना स्थिति-क्षय को प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं उन कर्मस्कंधों की 'उदय' यह संज्ञा है।[३] ''**कर्मणामनुभवनमुदयः**'' अर्थात् कर्मफल का वेदन उदय कहलाता है।[४] ''**कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः**'' अर्थात् कर्मों का फलदान समर्थ रूप से उद्भव सो उदय है।[५]

उदीरणा– ''**सो चेव बंधो बंधावलियादिक्कंतो ओकड्डिदूण उदए संछुब्भमाणो उदीरणा होदि।**'' कर्मबँधने के पश्चात् आवलीकाल (बंधावली) व्यतीत होने पर अपकर्षणकर जब उदय संक्षुभ्यमान किया (दिया) जाता है सो उदीरणा है। बंधावलीकाल तक तो कर्मबन्ध अचल (ज्यों का त्यों) रहता है उसके पश्चात् अपनी स्थिति पर्यंत अपकर्षण के द्वारा उसका जो द्रव्य उदयावली में दिया जाता है उस कर्मद्रव्य की उदीरणा संज्ञा है।[६] ''**जे कम्मक्खंधा महंतेसु ट्ठिदि-अणुभागेसु अवट्ठिदा ओक्कड्डिदूण फलदाइणो कीरंति तेसिमुदीरणा त्ति सण्णा।**'' अर्थात् जो महान् स्थिति व अनुभाग में स्थित कर्मस्कंध अपकर्षण करके फल देने वाले किए जाते हैं उन कर्मस्कंधों की 'उदीरणा' संज्ञा है।[७] ''**अपक्वपाचनमुदीरणा। आवलियाए बाहिरट्ठिदिमादिं कादूण उवरिमाणं ठिदीणं बंधावलियवदिक्कंतपदेसग्गमसंखेज्जलोगपडिभागेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण वा ओकट्टिदूण उदयावलियाए देदि सा उदीरणा।**'' अर्थात् नहीं पके हुए कर्मों के पकाने का नाम उदीरणा है। आवली से बाहर की स्थितियों के बन्धावली अतिक्रान्त प्रदेशाग्र को असंख्यातलोक प्रतिभाग से अथवा पल्योपम के असंख्यातवें भागरूप प्रतिभाग से अपकर्षण करके उदयावली में देना, यह उदीरणा कहलाती है।[८] ''उदीरणा पुण अपरिपत्तकालाणं चेव कम्मणमुवायविसेसेण परिपाचणं, अपक्व परिपाचनमुदीरणेति वचनात्।'' अर्थात् जिनकर्मों का उदयकाल प्राप्त नहीं हुआ है उनको उपायविशेष से पचाना उदीरणा है, क्योंकि अपक्व का परिपाचन उदीरणा है ऐसा वचन है।[९]

---

१. समयसार गाथा ५२ आत्मख्याति टीका। २. ३. ध. पु. ६ पृ. २१३।
४. प्राकृत पंचसंग्रह पृष्ठ ६७६ (भारतीज्ञानपीठ प्रकाशन)। ५. पञ्चास्तिकाय गाथा ५६ की टीका।
६. धवल पु. ६ पृ. २०२। ७. धवल पु. ६ पृ. २१४। ८. धवल पु. १५ पृ. ४३।
९. जयधवल पु. १० पृ. २।

"अपक्कपाचनमुदीरणेति" उदय के लिए अपक्वकर्मों का पाचन करना (पचना) उदीरणा है।[1]

उपशामना– उपशामना दो प्रकार की है– प्रशस्तोपशामना और अप्रशस्तोपशामना अधःकरण अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणों के द्वारा जो मोहनीयकर्म की उपशामना होती है वह प्रशस्तोपशामना है। बन्ध के समय सभी कर्मों के कुछ प्रदेशों में अप्रशस्तोपशामना होती है, यहाँ पर उसका प्रकरण है। **"कम्मपरमाणूणं बज्झंतरंगकारणवसेण केत्तियाणं पि उदीरणावसेण उदयागागमपइण्णा अप्पसत्थउवसामणा त्ति भण्णदे"** अर्थात् कितने ही कर्म परमाणुओं का बहिरंग-अन्तरंग कारणवश उदीरणा द्वारा उदय में अनागमन रूप प्रतिज्ञा को अप्रशस्तोपशामना कहते हैं।[2] **"अप्पसत्थुवसामणाए जमुवसंतं पदेसग्गं तमोकड्डिदुं पि सक्कं, उक्कड्डिदुं पि सक्कं, पयडीए संकामिदुं पि सक्कं उदयावलियं पवेसिदुं ण उ सक्कं।"** अर्थात् अप्रशस्तोपशामना के द्वारा जो प्रदेशाग्र उपशान्त होता है वह अपकर्षण के लिए भी शक्य है, उत्कर्षण के लिए भी शक्य है तथा अन्य प्रकृति में संक्रमण कराने के लिए भी शक्य है। वह केवल उदयावली में प्रविष्ट कराने के लिए शक्य नहीं है।[3] "जं कम्ममोकड्डुक्कड्डण-परपयडिसंकमाणं पाओग्गं होदूण पुणो णो सक्कमुदयट्ठिदिमोकड्डिदुं उदीरणाविरुद्धसहावेण परिणदत्तादो तं तहाविहपइण्णाए पडिगहियमप्पसत्थ उवसामणाए उवसंतमिदि भण्णदे। तस्स सो पज्जाओ अप्पसत्थउवसामणाकरणं णाम।" अर्थात् जो कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रम के योग्य होकर पुनः उदीरणा के विरुद्ध स्वभाव रूप से परिणत होने के कारण उदयस्थिति में अपकर्षित होने के अयोग्य है वह उस प्रकार से स्वीकार की गई अप्रशस्तोपशामना की अपेक्षा उपशांत ऐसा कहलाता है। उसकी उस पर्याय का नाम उपशामनाकरण है।[4]

निधत्ति– "जं पदेसग्गं ण सक्कमुदए दादुं अण्णपयडिं वा संकामेदुं तं णिधत्तं णाम।" अर्थात् जो कर्म प्रदेशाग्र उदय में देने के लिए अथवा अन्य प्रकृति रूप परिणमाने के लिए शक्य नहीं वह निधत्त है।[5] **"जं कम्ममोकड्डुक्कड्डणासु अविरुद्धसंचरणं होदूण पुणो उदय-परपयडिसंकमाणमणागमणपइण्णाए पडिग्गहियं तस्स सो अवत्थाविसेसो णिधत्तीकरणमिदि भण्णदे।"** अर्थात् जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षण के अविरुद्धपर्याय के योग्य होकर पुनः उदय और परप्रकृतिसंक्रमरूप न हो सकने की प्रतिज्ञा रूप से स्वीकृत उसकी उस अवस्था विशेष को निधत्तीकरण कहते हैं।[6] **"जं पदेसग्गं णिधत्तीकयं उदए दादुं णो सक्कं, अण्णपयडिं संकामिदुं पि णो सक्कं, ओकड्डिदुमुक्कड्डिदुं च सक्कं; एवं विहस्स पदेसग्गस्स णिधत्तमिदि सण्णा।"** अर्थात् जो कर्मप्रदेशाग्र निधत्तीकृत है यानी उदय में देने के लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृति में संक्रांत करने के लिए भी शक्य

---

१. प्रा. पंचसंग्रह पृ. ६७६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
२. धवल पु. १५ पृ. २७६।
३. जयधवल पु. १३ पृ. २३१।
४. जयधवल पु. १३ पृ. २३१।
५. ध. पु. ९ पृ. २३५।
६. जयधवल पु. १३ पृ. २३१।

नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करने के लिए शक्य है; ऐसे प्रदेशाग्र की निधत्ति संज्ञा है।[1]

निकाचित– **"जं पदेसग्गं ओकड्डिदुं णो सक्कं, उक्कड्डिदुं णो सक्कं, अण्णपयडिं संकामिदुं णो सक्कं, उदए दादुं णो सक्कं तं पदेसग्गं णिकाचिदं णाम।"** अर्थात् जो कर्मप्रदेशाग्र अपकर्षण करने के लिए शक्य नहीं है, उत्कर्षण के लिए शक्य नहीं हैं, अन्य प्रकृति में संक्रान्त करने के लिए शक्य नहीं है तथा उदय में देने के लिए भी शक्य नहीं है; उस प्रदेशाग्र को निकाचित कहते हैं।[2] **"जं पदेसग्गं ण सक्कमोकट्टिदुमुक्कट्टिदुमण्णपयडिसंकामेदुमुदए दादुं वा तण्णिकाचिदं णाम।"** अर्थात् जो प्रदेशाग्र अपकर्षण-उत्कर्षण के लिए, अन्य प्रकृति रूप परिणमाने के लिए और उदय में देने के लिए शक्य नहीं है वह निकाचित कहलाता है।[3] **"जं पुण कम्मं चदुण्णभेदेसिं उदयादीणमप्पाओग्गं होदूणावट्ठाणपइण्णं तस्स तहावट्ठाणलक्खणो पज्जायविसेसो णिकाचणाकरणं णाम।"** जो कर्म इन चारों (उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण) के अयोग्य होकर अवस्थान की प्रतिज्ञा में प्रतिबद्ध है उसकी उस अवस्थान लक्षण पर्यायविशेष को निकाचनाकरण कहते हैं।[4]

दश करणों का स्वरूप कहकर आगे कर्मप्रकृतियों तथा गुणस्थानों में इनका कथन करते हैं–

संकमणाकरणूणा, णवकरणा होंति सव्वआऊणं।
सेसाणं दसकरणा, अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा॥४४१॥

अर्थ– चारों आयु में संक्रमण करण के बिना ९ करण पाये जाते हैं, क्योंकि चारों आयु परस्पर में परिणमन नहीं करतीं। शेष बन्धयोग्य सर्वप्रकृतियों में दश करण होते हैं तथा मिथ्यात्व से अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त तो दशों करण पाये जाते हैं।

आदिमसत्तेव तदो, सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा।
छच्च सजोगित्ति तदो, सत्तं उदयं अजोगित्ति॥४४२॥

अर्थ– अपूर्वकरणगुणस्थान के आगे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यन्त उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरण के बिना आदि के सातों करण पाये जाते हैं, क्योंकि अनिवृत्तिकरणपरिणामों के द्वारा उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरण टूट जाता है तथा संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरण

१. ध. पु. १६ पृ. ५१६। २. धवल पु. १६ पृ. ५१७। ३. ध. पु. ९ पृ. २३६।
४. जयधवल पु. १३ पृ. २३१।

के बिना सयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त ६ करण होते हैं, उसके आगे अयोगीगुणस्थान में सत्त्व और उदयरूप दो ही करण होते हैं।

अब उपशान्तकषाय गुणस्थान में और भी जो विशेषता है उसको कहते हैं–

णवरि विसेसं जाणे, संकममवि होदि संतमोहम्मि।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं॥४४३॥

अर्थ– उपशान्तकषायगुणस्थान में विशेषता यह है कि मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृति में संक्रमणकरण भी पाया जाता है अर्थात् इनके परमाणुओं को सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमन करता है शेष प्रकृतियों के छह ही करण होते हैं।

विशेषार्थ– यथा अपूर्वकरणगुणस्थान में तो उपशम, निधत्ति और निकाचित इन तीन करणों की व्युच्छित्ति होने पर अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में व्युच्छित्ति नहीं है तथा उपशान्तकषायगुणस्थान में मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति के ७ करण हैं, अन्य प्रकृतियों में संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति और निकाचितकरण बिना ६ करण हैं। क्षीणकषायगुणस्थान में व्युच्छित्ति नहीं है, सयोगीगुणस्थान में बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण और उदीरणा इन चार करणों की व्युच्छित्ति होती है। अयोगीगुणस्थान में सत्त्वउदय इन दो करणों की व्युच्छित्ति होती है, शेष कथन सुगम है।

बंधुक्कट्टणकरणं, सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण।
संकमणं करणं पुण, सगसगजादीण बंधोत्ति॥४४४॥

अर्थ– जिस-जिस प्रकृति का जब बन्ध होता है तभी बन्ध और उत्कर्षण करण होते हैं और अपनी-अपनी स्वजातीय प्रकृतियों के बन्ध समय में संक्रमणकरण होता है।

ओक्कट्टणकरणं पुण, अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति।
खीणं सुहुमंताणं, खयदेसं सावलीयसमयोत्ति॥४४५॥

अर्थ– अयोगीगुणस्थान में सत्त्वरूप जो ८५ प्रकृतियाँ हैं उनका अपकर्षणकरण सयोगीगुणस्थान के अन्तसमय पर्यंत जानना। क्षीणकषायगुणस्थान में सत्त्व से व्युच्छिन्न होने वाली १६ प्रकृतियाँ और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में सत्त्व से व्युच्छिन्न होने वाली सूक्ष्मलोभ इस प्रकार इन १७ प्रकृतियों का अपकर्षणकरण एक आवली कम क्षयदेशपर्यंत जानना।

शंका– क्षयदेश किसे कहते हैं ?

समाधान– जो प्रकृति अन्य प्रकृति रूप उदय होकर नाश को प्राप्त होती है उन परमुखोदयी प्रकृतियों के तो अन्तकाण्डक की अन्तिमफालि क्षयदेश है तथा जो स्वमुखोदय रूप से उदय होकर निकलती हैं उन स्वमुखोदयी प्रकृति के एक-एक समय अधिक एक-एक आवलीप्रमाण काल शेष रहने पर क्षयदेश है इसलिए इन १७ प्रकृतियों का एक आवली काल शेष रहने पर अपकर्षण होता है।

उवसंतोत्ति सुराऊ, मिच्छत्तिय खवगसोलसाणं च।
खयदेसोत्ति य खवगे, अट्ठकसायादिवीसाणं ॥४४६॥

अर्थ– उपशान्तकषायगुणस्थान पर्यंत देवायु के प्रदेश अपकर्षण (अवलम्बना)[१] करण है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्वप्रकृति ये ३ और अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में क्षय होने वाली [२]सोलहप्रकृतियों के अन्तकाण्डक की अन्तिमफाली पर्यंत अपकर्षणकरण है ऐसा जानना। अनिवृत्तिकरण में ही शेष [३]बीस प्रकृतियों के अपने-अपने क्षयदेशपर्यन्त अपकर्षणकरण है।

मिच्छतियसोलसाणं, उवसमसेढिम्मि संतमोहोत्ति।
अट्ठकसायादीणं, उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ॥४४७॥

अर्थ– उपशमश्रेणी में मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति एवं नरकाद्विकादिक १६ प्रकृतियों का उपशांतकषाय पर्यंत अपकर्षणकरण है तथा आठ कषायादिक का अपने-अपने उपशम के स्थान पर्यंत अपकर्षणकरण है॥४४७॥

पढमकसायाणं च विसंजोजकं वोत्ति अयददेसोत्ति।
णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ॥४४८॥

अर्थ– अनन्तानुबन्धीचतुष्क की असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में यथासम्भव

---

१. **शंका**– अवलम्बनाकरण किसे कहते हैं? **समाधान**– परभवसम्बन्धी आयु की उपरिम स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण द्वारा नीचे पतन करना अवलम्बनाकरण कहा जाता है। **शंका**– इसकी अपकर्षण संज्ञा क्यों नहीं की? **समाधान**– नहीं, क्योंकि परभविक आयु का उदय नहीं होने से इसका उदयावलि के बाहर पतन नहीं होता इसलिए इसकी अपकर्षण संज्ञा करने में विरोध आता है। (आशय यह है कि परभव सम्बन्धी आयु का अपकर्षण होने पर भी उसका पतन आबाधाकाल के भीतर न होकर आबाधा से ऊपर स्थित स्थिति निषेकों में ही होता है इसी से इसे अपकर्षण से जुदा बतलाया गया है।) (ध. पु. १० पृ. ३३०-३३१)

२. नरकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, एकेन्द्रियादि ४ जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत, स्त्यानगृद्धिआदि तीननिद्रा ये १६ प्रकृति।

३. अप्रत्याख्यानकषाय ४, प्रत्याख्यानकषाय ४, ९ नोकषाय, सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया।

जहाँ विसंयोजना हो वहाँ पर्यन्त अपकर्षणकरण है तथा नरकायु का असंयतगुणस्थान पर्यन्त और तिर्यञ्चायु का देशसंयतगुणस्थान पर्यंत अपकर्षण, उदीरणाकरण, सत्त्वकरण और उदयकरण होते हैं॥४४८॥

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य, उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स॥४४९॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में उपशमसम्यक्त्व के सम्मुख होने वाले जीव के एक समय अधिक आवलीप्रमाण काल शेष रहने तक मिथ्यात्वप्रकृति का उदीरणाकरण होता है। सूक्ष्मलोभ का सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में ही एक समय अधिक आवलीकाल शेष रहने तक उदीरणाकरण है, क्योंकि उदयावली शेष रह जाने पर उदीरणा संभव नहीं है।

उदये संकममुदये, चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं।[1]
उवसंतं च णिधत्तिं, णिकाचिदं तं अपुव्वोत्ति॥४५०॥

अर्थ– जो उदयावली को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता है ऐसा उपशांतकरणद्रव्य तथा जो संक्रमण अथवा उदय को प्राप्त होने में समर्थ नहीं है ऐसा निधत्तिकरणद्रव्य एवं जो उदयावली, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण को प्राप्त होने में समर्थ नहीं है ऐसा निकाचितकरणद्रव्य है। ये तीनों ही प्रकार के करणद्रव्य अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त ही पाए जाते हैं, क्योंकि अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में प्रवेश करने के प्रथम समय में ही सभी कर्मों के ये तीनों करण युगपत् व्युच्छिन्न हो जाते हैं।[2] इन तीनों करणों का स्वरूप सविस्तार गा. ४४० के विशेषार्थ में दिया जा चुका है।

इति दशकरणचूलिकाधिकार सम्पूर्ण।

इस प्रकार आचार्यश्री. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की **सिद्धांतज्ञानदीपिका** नामा हिन्दी टीका में **'त्रिकरणचूलिका'** नामक चतुर्थाधिकार पूर्ण हुआ।

◆ ◆ ◆

१. उदए सक्कमउदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं। उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं॥ (धवल पु. ६ पृ. २९५, धवल पु. ९ पृ. २३६ और ध. पु. १५ पृ. २७६, गो. क. गाथा ४४०)

२. 'सव्वेसिं कम्माणमणियट्टिगुणट्ठाणपवेसपढमसमए चेव एदाणि तिण्णि वि करणाणि अक्कमेण वोच्छिण्णाणि त्ति भणिदं होइ।' जयधवल पु. १३ पृ. २३१।

अथ स्थानसमुत्कीर्तनाधिकार

त्रिचूलिका अधिकार का कथन पूर्णकर आचार्य इष्टदेव को नमस्कार करके स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार के कहने की प्रतिज्ञा करते हैं—

णमिऊण णेमिणाहं, सच्चजुहिट्ठिरणमंसियंघिजुगं।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ठाणसमुक्कित्तणं वोच्छं॥४५१॥

अर्थ– प्रत्यक्ष वन्दना करने वाले सत्यवादी युधिष्ठिरनामा पाण्डव द्वारा जिनके चरणकमलों को वन्दन किया गया है ऐसे श्री नेमिनाथभगवान को नमस्कार करके मैं (नेमिचन्द्राचार्य) प्रकृतियों के बन्ध-उदय और सत्त्व सहित स्थानसमुत्कीर्तन कहूँगा।

विशेषार्थ– शंका– स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार कहने का क्या प्रयोजन है?

समाधान– पूर्व में प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार में जो प्रकृतियाँ कहीं उनका बंध क्रम से होता है या अक्रम से होता है, ऐसा प्रश्न होने पर 'इस प्रकार होता है' इस बात को जानने के लिए स्थान समुत्कीर्तनाधिकार कहा जाता है।

शंका– स्थान किसे कहते हैं?

समाधान– जिसमें प्रकृतियाँ रहती हैं उसे अर्थात् प्रकृतियों के समुदाय को स्थान कहते हैं।[1] वे प्रकृतिस्थान (१) बंधस्थान, (२) उदयस्थान, और (३) सत्त्वस्थान के भेद से तीन प्रकार के होते हैं।[2] एक जीव के एक काल में जितनी प्रकृतियों का बंध, उदय या सत्त्व सम्भव हो उसको स्थान कहते हैं, इसी का कथन इस अधिकार में किया जावेगा।

अब सर्वप्रथम मूलप्रकृतियों के बन्ध-उदय-उदीरणा और सत्त्व के भेद सहित स्थानों का कथन गुणस्थानों में छह गाथाओं से करते हैं—

छसु सगविहमट्ठविहं, कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेकट्ठाणे, तिसु एक्कमबंधगो एक्को॥४५२॥

---

१. "चिट्ठंति एत्थ पयडीओ त्ति ट्ठाणं।" जयध. पु. २ पृ १९९।

२. "ताणि च बंधट्ठाणाणि उदयट्ठाणाणि संतट्ठाणाणि त्ति तिविहाणि होंति।" ज. ध. पु. २ पृ. १९९।

अर्थ– मिश्रगुणस्थान के बिना अप्रमत्तपर्यन्त ६ गुणस्थानों में जीव आयु बिना ७ प्रकार के अथवा आयु सहित ८ प्रकार के कर्म को बाँधता है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में आयु बिना सात प्रकार के ही कर्म बँधते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में आयु व मोह के बिना ६ प्रकार के कर्म का ही बन्ध होता है, उपशान्तकषायादि तीन (उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली) गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म का ही बन्ध होता है और अयोगीगुणस्थान बन्ध रहित है।

चत्तारि तिण्णि तिय चउ, अवट्ठिदाणाणि मूलपयडीणं।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि कमे होंति॥४५३॥

अर्थ– मूल प्रकृतिबन्धस्थान, भुजगारबन्धस्थान, अल्पतरबन्धस्थान और अवस्थितबन्धस्थान क्रम से चार, तीन, तीन और चार हैं॥४५३॥

विशेषार्थ– इस प्रकार मूल प्रकृतियों के सामान्य से आठ, सात, छह और एक प्रकृति रूप चार बन्धस्थान हैं। यहाँ उपशमश्रेणी से उतरते हुए **भुजकारबन्ध** तीन प्रकार हैं। उपशान्तकषायगुणस्थान में एक प्रकृति का बन्ध था वहाँ से सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में आया तब ६ प्रकृति का बन्ध किया अत: एक **भुजकारबन्ध** तो यह हुआ तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में ६ प्रकृति का बन्ध था वहाँ से अनिवृत्तिकरणगुणस्थान को प्राप्त हुआ और वहाँ सात प्रकृति का बन्ध होने से यह भी **भुजकारबन्ध** हुआ। अपूर्वकरणगुणस्थान में सातप्रकृति का बन्ध था, नीचे प्रमत्तादि गुणस्थानों में आठ प्रकृति का बन्ध होगा, यह भी एक **भुजकार बन्ध** है। इस प्रकार ये तीन भुजकार बन्ध होते हैं।

तथैव **अल्पतरबन्ध** तीन होते हैं— आठकर्म के बन्ध के पश्चात् सातकर्मों का बन्ध होना एक अल्पतरबन्ध है, सात प्रकृति के बन्ध के बाद ६ प्रकृति का बन्ध होना दूसरा अल्पतरबन्ध है, तथा ६ प्रकृति के अनन्तर एक प्रकृति का बन्ध हुआ सो एक यह भी अल्पतर बन्ध है। इस प्रकार अल्पतरबन्ध के ये तीन भेद जानना।

स्वस्थान में पहले जितने कर्मों का बन्ध हो उतने ही कर्म अनन्तरसमय में भी बँधे वह **अवस्थित बन्ध** कहलाता है। इसके भी चार भेद हैं— पूर्व में आठकर्मों का बन्ध करता था पश्चात् भी आठकर्मों का ही बन्ध होना प्रथम अवस्थितबन्ध है, पहले सातकर्मों का बन्ध करता था पश्चात् भी सातकर्मों का बन्ध करने लगा यह अवस्थित बन्ध का दूसरा प्रकार है। पूर्व में ६ कर्मों का बन्ध करता था अनन्तर भी ६ ही कर्मों का बन्ध करना तीसरा अवस्थितबन्ध है तथा पहले एक कर्म का बन्ध करता था पश्चात् भी एक ही कर्म का बन्ध करता है यह चतुर्थ अवस्थितबन्ध है। इस प्रकार अवस्थितबन्ध भी चार प्रकार का जानना।

उपशान्तकषायगुणस्थान से नीचे उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान को छोड़कर अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थानों को प्राप्त नहीं होते इसलिए एक प्रकृति के बन्ध होने के बाद सात और आठप्रकृति के बन्ध रूप दो भुजाकारबन्ध नहीं होते तथा अप्रमत्त व अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के बीच के गुणस्थान छोड़कर उपशान्तकषायगुणस्थान को प्राप्त नहीं होते इसलिए आठ और सात प्रकृति के बन्ध के पश्चात् एक प्रकृति के बन्धरूप दो अल्पतरबन्ध भी नहीं करते हैं।

शंका– उपशान्तकषायगुणस्थान में मरणकर देव असंयत होता है तो वहाँ एक प्रकृति के बन्ध के पश्चात् सात प्रकृति का बन्ध एवं एक प्रकृतिक बन्ध के बाद आठ प्रकृति के बन्धरूप जो दो भुजकारबन्ध है वे क्यों नहीं कहे?

समाधान– नहीं कहे, क्योंकि अबद्धायुष्क का मरण नहीं होता अतः एकप्रकृतिकबन्ध के बाद सात प्रकृति के बन्धरूप भुजकार का अभाव है और यदि बद्धायुष्क मरण कर असंयतगुणस्थानवर्ती देव हो वहाँ एक प्रकृतिक बन्ध के पश्चात् ७ प्रकृति का बंधरूप भुजकारबन्ध तो सम्भव है, किन्तु एक प्रकृतिकबन्ध के बाद आठ प्रकृति के बन्धरूप भुजकारबन्ध का अभाव है क्योंकि देव के अपनी आयु के छह माह अवशेष रहने पर ही परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है इसी कारण वे दोनों भुजकारबन्ध नहीं कहे। पहले किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता था किन्तु बाद में बन्ध करे सो यह अवक्तव्यबन्ध है। अवक्तव्यबन्ध मूल प्रकृतियों के बन्ध में सम्भव नहीं है, क्योंकि सर्वमूलप्रकृतियों के बन्ध का अभाव नहीं है।

इस प्रकार बन्धस्थान का कथन करके अब उदयस्थान कहते हैं—

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य, मोहेण विणा हु संतखीणेसु।
घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा ॥४५४॥

अर्थ– सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यन्त आठ मूल प्रकृतियों का उदय है। उपशांतकषाय-क्षीणकषायगुणस्थान में मोहनीयकर्म के बिना सात मूलप्रकृतियों का उदय है तथा सयोगकेवली-अयोगकेवलीगुणस्थान में चार अघातियाकर्मों का उदय नियम से जानना; क्योंकि चार घातिया कर्मों का क्षय हो जाता है।

घादीणं छदुमट्ठा उदीरगा रागिणो हि मोहस्स।
तदियाऊण पमत्ता जोगंता होंति दोण्हंपि ॥४५५॥

अर्थ– तीन घातिया कर्मों की उदीरणा क्षीणकषायगुणस्थान पर्यंत छद्मस्थज्ञानी करते हैं। मोहनीयकर्म की उदीरणा करने वाले सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती सरागीजीव हैं, वेदनीय और आयुकर्म

की उदीरणा प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत के प्रमादी जीव करते हैं, नाम और गोत्रकर्म की उदीरणा सयोगीगुणस्थान तक के जीव करते हैं।

मिस्सूणपमत्तंते, आउस्सद्धा हु सुहुमखीणाणं।
आवलिसिट्ठे कमसो, सग पण दो चेवुदीरणा होंति ॥४५६॥

अर्थ– मिश्रगुणस्थान के बिना प्रमत्तगुणस्थान पर्यंत पाँच गुणस्थानों में भुज्यमानआयु के आवलीमात्र काल शेष रहने पर आयु बिना सातकर्मों की उदीरणा होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में उतना ही काल शेष रहने पर आयु, मोहनीय और वेदनीयकर्म बिना पाँचकर्मों की तथा क्षीणकषायगुणस्थान में भी पूर्वोक्त काल शेष रहने पर नाम और गोत्रकर्म की उदीरणा होती है।

इस प्रकार उदय-उदीरणास्थानों का कथन करके सत्त्वस्थान कहते हैं—

संतोत्ति अट्ठ सत्ता, खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य, चत्तारि हवंति सत्ताणि ॥४५७॥

अर्थ– उपशांतकषायगुणस्थान पर्यंत आठों मूलप्रकृतियों का सत्त्व है। क्षीणकषायगुणस्थान में मोहनीयकर्मों के बिना सात कर्मों का, सयोगी-अयोगीगुणस्थान में चार अघातियाकर्मों का सत्त्व है। इस प्रकार आठ-सात और चार प्रकृति रूप तीन सत्त्व स्थान जानना।

मूलप्रकृतियों में बन्ध-उदय-उदीरणा और सत्त्वस्थानों का कथन करके अब उत्तरप्रकृति सम्बन्धी उदयादिस्थानों का कथन करते हैं—

तिण्णि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं।
एत्थेव य भुजगारा, सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४५८॥[1]

अर्थ– दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्म के क्रम से ३-१० और ८ बन्धस्थान हैं। इन तीनों कर्मों के भुजकारबन्ध भी इन्हीं तीन में होते हैं। शेष ज्ञानावरण व अन्तरायकर्म की पाँच प्रकृति का बन्धरूप एक ही स्थान है और गोत्र, आयु तथा वेदनीय कर्म का एकात्मक प्रकृति रूप एक-एक ही बंधस्थान है।

---

१. "तिण्णि दस अट्ठ ट्ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं। एत्थेव य भुजयारा सेसेसेयं हवइ ठाणं।"
(पंचसंग्रह ज्ञानपीठ पृ. १८६ गाथा २४२)

णव छक्क चदुक्कं च य, बिदियावरणस्स बंधठाणाणि।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि य जाणाहि॥४५९॥

अर्थ– दर्शनावरणकर्म की सर्व ९ प्रकृति रूप प्रथम, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राबिना ६ प्रकृति रूप द्वितीय और निद्रा-प्रचलाप्रकृति बिना ४ प्रकृति रूप तृतीय इस प्रकार तीन बन्धस्थान हैं तथा इनमें भुजकार, अल्पतर और अवस्थित एवं 'अपि' शब्द से अवक्तव्य, ये चारों प्रकार के बन्ध होते हैं।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणी से उतरने वाला अपूर्वकरणगुणस्थान के द्वितीय भाग में चार प्रकृति रूप दर्शनावरणकर्म को बाँधकर अपूर्वकरणगुणस्थान के ही प्रथमभाग में ६ प्रकृति रूप बाँधने लगा, यह एक भुजकार बन्ध है। प्रमत्त, देशसंयत, असंयत और मिश्रगुणस्थान में छह प्रकृति रूप स्थान बाँधते हुए मिथ्यात्वावस्था को प्राप्त कर तथा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि सासादनगुणस्थान को प्राप्त कर ९ प्रकृति रूप स्थान बाँधने लगा सो यह एक भुजकार है। इस प्रकार २ भुजकारबन्ध जानने। प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अभिमुख हुआ सातिशयमिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरणपरिणामों के अन्तिमसमय में ९ प्रकृति रूप स्थान बाँधता है तथा अनन्तर समय में असंयत, देशसंयत अथवा अप्रमत्त होकर ६ प्रकृतिकस्थान बाँधता है यह एक अल्पतरबन्ध है। तथैव उपशमक व क्षपक अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम भाग के चरमसमय में छह प्रकृति रूप स्थान का बन्ध करता है वही द्वितीय भाग के प्रथम समय में चार प्रकृतिरूप स्थान बाँधने लगा सो एक यह अल्पतर हुआ, इस प्रकार दो अल्पतरबन्ध जानना। मिथ्यादृष्टि अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि ९ प्रकृति रूप, मिश्रगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम भाग पर्यंत ६ प्रकृति रूप और अपूर्वकरणगुणस्थान के द्वितीय भाग से सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यंत चार प्रकृति रूप स्थान का बन्ध करता है, अनन्तरसमय में भी उतनी ही प्रकृति रूप स्थानों का बन्ध करे तो इस प्रकार अवस्थित बन्ध के तीन प्रकार हुए। उपशांतकषायगुणस्थानवर्ती जीव दर्शनावरण का बन्ध नहीं करता, किन्तु उपशमश्रेणी से उतरते हुए सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में चार प्रकृति रूप तथा बद्धायुष्क मरणकर देव असंयत होकर छह प्रकृति रूप स्थान का अवक्तव्यबन्ध करता है। इस प्रकार अवक्तव्यबन्ध को दो प्रकार जानना।

यही बात और भी स्पष्ट करते हैं—

णव सासणोत्ति बंधो, छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो, सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति॥४६०॥

अर्थ– दर्शनावरणकर्म का ९ प्रकृतिकस्थान सासादनगुणस्थान पर्यंत होता है, इसके आगे अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथमभाग पर्यंत ६ प्रकृतिकस्थान और अपूर्वकरणगुणस्थान के द्वितीय भाग से सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के चरमसमयपर्यंत ४ प्रकृतिकस्थान का बन्ध होता है।

दर्शनावरणकर्म के बन्धस्थानों का कथन करके आगे उदयस्थानों का कथन करते हैं—

खीणोत्ति चारि उदया, पंचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु।
एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया।।४६१।।

अर्थ– दर्शनावरणकर्म की चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियों का उदयस्थान जागृतावस्था वाले जीव के मिथ्यात्व से क्षीणकषायगुणस्थान पर्यंत है और निद्रावान् जीव के क्षीणकषायगुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यंत पाँच प्रकृति रूप उदयस्थान जानना।

विशेष– प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत ५ निद्राओं में से किसी एक निद्रा का तथा उसके आगे निद्रा-प्रचला में से किसी एक का उदय होता है।[१]

उदयस्थानों का कथन करके अब दर्शनावरणकर्म के सत्त्वस्थानों का कथन करते हैं—

मिच्छादुवसंतोत्ति य, अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदूवरिमे।।४६२।।

अर्थ– मिथ्यात्व से उपशान्तकषायगुणस्थान पर्यंत और क्षपकश्रेणी में अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग पर्यन्त दर्शनावरणकर्म का ९ प्रकृति रूप सत्त्वस्थान है। इसके आगे क्षीणकषायगुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यंत ६ प्रकृतिरूप ही सत्त्वस्थान है, क्योंकि स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में ही नष्ट होती हैं। क्षीणकषायगुणस्थान के द्विचरमसमयपर्यंत दर्शनावरणकर्म का ६ प्रकृति रूप तथा चरमसमय में ४ प्रकृति रूप सत्त्वस्थान है।

अथानन्तर मोहनीय कर्म के बन्धस्थानों को कहते हैं—

बावीसमेक्कवीसं, सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चदुतियदुगं च एक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स।।४६३।।[२]

अर्थ– मोहनीय कर्म के २२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२ और १ प्रकृति रूप १० बन्धस्थान जानने चाहिए।

---

१. धवल पु. १५ पृ. ८१।
२. "बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच। चउ तिय दुग च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स।"
(पंचसंग्रह ज्ञानपीठ पृ. १८८ गा. २४६)

उपर्युक्त मोहनीयकर्म के बन्धस्थानों को गुणस्थानापेक्षा कहते हैं—

बावीसमेक्कवीसं, सत्तर सत्तार तेर तिसु णवयं।
थूले पणचदुतियदुगमेक्कं मोहस्स ठाणाणि ॥४६४॥

अर्थ– मोहनीय कर्म के उपर्युक्त बन्धस्थानों में से मिथ्यात्वगुणस्थान में २२ प्रकृतिरूप, सासादन गुणस्थान में २१ प्रकृति रूप, मिश्र और असंयतगुणस्थान में १७-१७ प्रकृति रूप, देशसंयतगुणस्थान में १३ प्रकृति रूप, प्रमत्तादि तीन गुणस्थानों में ९-९ प्रकृति रूप बन्धस्थान हैं तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ५-४-३-२ और १ प्रकृति रूप ५ स्थान हैं।

अब उपर्युक्त स्थानों में ध्रुवबन्धी प्रकृतियों को कहते हैं—

उगुवीसं अट्ठारस, चोद्दस चोद्दस य दस य तिसु छक्कं।
थूले चदुतिदुगेक्कं, मोहस्स य होंति धुवबंधा ॥४६५॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान से देशसंयतगुणस्थान पर्यंत १९-१८-१४-१४ और १०, प्रमत्तादि तीन गुणस्थानों में ६-६-६, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ४-३-२ और १ इस प्रकार मोहनीयकर्म की ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय और जुगुप्सा ये १९ प्रकृति ध्रुवबन्धी तथा हास्य व शोक में से एक, रति-अरति में से एक, तीन वेद में से एक इस प्रकार ये तीन प्रकृति अध्रुवबन्धी हैं। सासादन गुणस्थान में– उपर्युक्त १९ प्रकृति में से १ मिथ्यात्वप्रकृति कम करके १८ प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं और अध्रुवप्रकृति पूर्वोक्त तीन हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थान उपर्युक्त १८ प्रकृति में से अनंतानुबंधी कषाय ४ कम करने से १४ प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धी हैं तथा अध्रुवबन्धी ३ प्रकृतियाँ पूर्वोक्त ही हैं। देशसंयतगुणस्थान में उपर्युक्त १४ प्रकृति में से अप्रत्याख्यान की ४ कषाय कम करने से १० प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं तथा अध्रुवप्रकृति ३ पूर्ववत् ही हैं। प्रमत्त-अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानमें उपर्युक्त १० प्रकृतिमें से प्रत्याख्यानकी ४ कषाय कम करनेसे ६ प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं, अध्रुवप्रकृति पूर्ववत् ही ३ जानना। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में उपर्युक्त ६ प्रकृति में से भय-जुगुप्सा प्रकृति कम करने से ४ प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं और १ पुरुषवेद अध्रुवप्रकृति है। द्वितीयभाग में–सञ्ज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार प्रकृति ध्रुवबन्धी हैं। तृतीय भाग में– सञ्ज्वलनमान-माया-लोभ ये तीन, चतुर्थ भाग में– सञ्ज्वलनमाया-लोभ ये दो और पाँचवें भाग में– सञ्ज्वलनलोभ यह एक प्रकृतिध्रुवबन्धी है।

मोहनीय कर्म के बन्धस्थानों के भंगों का विधान एवं उनकी संख्या दो गाथाओं में कहते हैं–

सगसंभवधुवबंधे, वेदेक्के दोजुगाणमेक्के य।
ठाणो वेदजुगाणं, भंगहदे होंति तब्भंगा ॥४६६॥

अर्थ– अपनी-अपनी पूर्वोक्त ध्रुवप्रकृतियों में से यथासम्भव तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-शोक, रति-अरति में से एक-एक प्रकृति मिलाने से स्थान होते है तथा वेदों के प्रमाण में युगल का (हास्य-शोक, रति-अरति, भय-जुगुप्सारूप) गुणा करने पर स्थानों के भंग होते हैं।

छब्बावीसे चदु इगिवीसे दो दो हवंति छट्ठोत्ति।
एक्केक्कमदो भंगो बंधट्ठाणेसु मोहस्स ॥४६७॥[1]

अर्थ– मोहनीय कर्म के बन्धस्थानों में २२ प्रकृतिक स्थान में ६, २१ प्रकृतिक स्थान में ४ और आगे प्रमत्तगुणस्थान पर्यंत दो-दो और उसके बाद सभी बन्धस्थानों में एक-एक भंग है।

विशेषार्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में मोहनीय कर्म की २२ प्रकृतियों का बन्ध होता है। उसके भंग ६ होते हैं जो निम्न प्रकार हैं–

१.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	पुरुषवेद	+ हास्य-रति	+	भय-जुगुप्सा।
२.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	स्त्रीवेद	+ हास्य-रति	+	भय-जुगुप्सा।
३.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	नपुंसकवेद	+ हास्य-रति	+	भय-जुगुप्सा।
४.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	पुरुषवेद	+ अरति-शोक	+	भय-जुगुप्सा।
५.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	स्त्रीवेद	+ अरति-शोक	+	भय-जुगुप्सा।
६.	मिथ्यात्व	+	सोलहकषाय	+	नपुंसकवेद	+ अरति-शोक	+	भय-जुगुप्सा।

सासादन गुणस्थान में मोहनीयकर्म की २१ प्रकृतियों का बन्ध होता है और उसके भंग चार हैं—

१.	सोलहकषाय	+	पुरुषवेद	+	हास्य-रति	+	भय-जुगुप्सा।
२.	सोलहकषाय	+	स्त्रीवेद	+	हास्य-रति	+	भय-जुगुप्सा।
३.	सोलहकषाय	+	पुरुषवेद	+	अरति-शोक	+	भय-जुगुप्सा।
४.	सोलहकषाय	+	स्त्रीवेद	+	अरति-शोक	+	भय-जुगुप्सा।

१. "छब्बावीस चउ इगवीसे सत्तरस तेर दो दो दु। णवबंधए पि एवं एगेगमदो पर भंगा ॥२५१॥ द्वाविंशतिके षट् भंगाः ६। एकविंशतिके चत्वारो भंगाः ४। सप्तदशके द्विवार द्वौ द्वौ भंगौ २, २। त्रयोदशके नवकबन्धेऽपि प्रमत्तपर्यन्त द्वौ द्वौ भंगौ २, २। अन्त उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भंगः १॥२५१॥" प्रा. पं. सं. पृ. १९१

मिश्र-असंयतगुणस्थान में मोहनीय कर्म की १७ प्रकृतियों के बंध में २ भंग हैं—

१. बारहकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. बारहकषाय + पुरुषवेद + अरति-शोक + भय-जुगुप्सा।

देशसंयतगुणस्थान में मोहनीय कर्म की १३ प्रकृतियों के बन्ध में २ भंग हैं—

१. आठकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. आठकषाय + पुरुषवेद + अरति-शोक + भय-जुगुप्सा।

प्रमत्तगुणस्थान में मोहनीय कर्म की ९ प्रकृतियों के बन्ध में २ भंग हैं—

१. चारकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।
२. चारकषाय + पुरुषवेद + अरति-शोक + भय-जुगुप्सा।

अप्रमत्त-अपूर्वकरणगुणस्थान में मोहनीय कर्म की ९ प्रकृतियों के बंध में १ भंग है—

१. चारकषाय + पुरुषवेद + हास्य-रति + भय-जुगुप्सा।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में ५ प्रकृति के बन्ध में १ भंग है—

१. चारकषाय + पुरुषवेद।

अनिवृत्तिकरण के द्वितीयभाग में ४ प्रकृति के बन्ध में १ भंग है—

१. सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभरूप ४ कषाय।

अनिवृत्तिकरण के तृतीयभाग में ३ प्रकृति के बन्ध में १ भंग है—

१. सञ्ज्वलनमान-माया-लोभरूप ३ कषाय।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के चतुर्थभाग में २ प्रकृति के बन्ध में १ भंग है—

१. सञ्ज्वलनमाया-लोभरूप २ कषाय।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के पञ्चमभाग में १ प्रकृति के बन्ध में १ भंग है—

१. सञ्ज्वलनलोभरूप १ कषाय।

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान से अनिवृत्तिकरणगुणस्थान पर्यन्त मोहनीय कर्म की बन्धयोग्य प्रकृतियों के स्थान और उनके भंग जानने चाहिए।

उपर्युक्त मोहनीय कर्म के १० बन्धस्थानों में पाए जाने वाले भुजकारबंधादिक की संख्या कहते हैं—

दस वीसं एक्कारस, तेत्तीसं मोहबंधठाणाणि।
भुजगाप्पदरवाणि य, अवट्ठिदाणिवि य सामण्णे ॥४६८॥

अर्थ– मोहनीय कर्म के पूर्वोक्त १० बन्धस्थानों में सामान्य प्रकार से भुजकार बंध २०, अल्पतरबन्ध ११ और अवस्थितबन्ध ३३ हैं।[1]

भुजकार-अल्पतर-अवस्थितबन्ध का लक्षण आचार्य स्वयं अगली गाथा में कहते हैं—

अप्पं बंधंतो, बहुबंधे बहुगादु अप्पबंधेवि।
उभयत्थ समे बंधे, भुजगारादी कमे होंति ॥४६९॥

अर्थ– पहले अल्पप्रकृतियों का बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियों का बन्ध होना भुजकार बन्ध है। पहले अधिक प्रकृतियों का बन्ध होवे और पश्चात् अल्पप्रकृतियों का बन्ध होने लगे सो यह अल्पतरबन्ध है। भुजकार एवं अल्पतरबन्ध में पहले जितनी प्रकृतियों का बन्ध होता था बाद में भी उतनी ही प्रकृतियों का बन्ध होवे वह अवस्थित बन्ध है तथा 'अपि' शब्द से इन स्थानों में अवक्तव्यबन्ध भी होता है।

नोट– पहले मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं था, किन्तु अगले समय में उसका बन्ध हुआ, यही अवक्तव्यबन्ध कहलाता है।

अथानन्तर सामान्यअवक्तव्यबन्ध के भंगों की संख्या कहते हैं—

सामण्णअवत्तव्वो, ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
एक्कं च होदि एत्थवि, दो चेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७०॥

अर्थ– सामान्य से (भंगों की विवक्षा किए बिना) उपशमश्रेणी से उतरते हुए एक अवक्तव्यबन्ध है और दूसरा अवक्तव्यबन्ध वहीं पर मरण होने से होता है। इस प्रकार दो अवक्तव्यबंध हैं तथा द्वितीयादि समयों में उसी प्रकार बंध होने पर यहाँ अवस्थितबंध भी दो ही होते हैं।

---

१. भुजकाराः विंशतिः २०। अल्पतरबन्धा एकादश ११। अवक्तव्यौ २। एवं सर्वे एकीकृताः संक्षेपेणावस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् (३३) भवन्ति।

विशेषार्थ[१]– उपशमश्रेणी से उतरने वाला अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में एक सञ्ज्वलनलोभ को बाँधता था, किन्तु वहाँ से और नीचे उतरकर लोभ और मायाप्रकृति को बाँधने लगा अथवा बद्धायुष्क वहाँ मरण करके देव असंयत होकर १७ प्रकृतियों का बन्ध करता है इस प्रकार एक प्रकृति रूप स्थान दो भुजकार बन्ध हुए। माया-लोभप्रकृति को बाँधते हुए नीचे उतरकर मानसहित तीन प्रकृतियों को बाँधता है अथवा मरणकर देव असंयत होकर १७ प्रकृति को बाँधता है। इस प्रकार दो प्रकृति रूप स्थान में भी दो भुजकारबन्ध जानना। लोभ-मान और मायाप्रकृति को बाँधते हुए नीचे उतरकर क्रोधसहित सञ्ज्वलनकषायचतुष्क को बाँधता है अथवा मरणकर देव असंयत होकर १७ प्रकृति को बाँधता है सो तीन प्रकृति रूप स्थान में भी दो भुजकार बन्ध हुए। चारों सञ्ज्वलनकषाय को बाँधता हुआ नीचे उतरकर सवेदभाग में पुरुषवेद सहित पाँचप्रकृति को बाँधने लगा और मरणकर देव असंयमी हुआ तो वहाँ १७ प्रकृति का बन्ध करने लगा। इस प्रकार चार प्रकृति रूप स्थान में भी दो भुजकारबन्ध जानना। पाँच प्रकृतियों को बाँधता हुआ नीचे उतरकर अपूर्वकरणगुणस्थान में ९ प्रकृति का बन्ध करता है अथवा मरणकर देव असंयमी होकर १७ प्रकृतियों को बाँधता है सो पाँच प्रकृति रूप स्थान में ये दो भुजकारबन्ध जानना।

अपूर्वकरण या अप्रमत्त अथवा प्रमत्तगुणस्थान में ९ प्रकृति का बन्ध करता हुआ क्रम से उतरकर देशसंयती होता है और वहाँ १३ प्रकृति का बन्ध करता है अथवा असंयमी होकर या मरणकर देव असंयमी होकर १७ प्रकृतियों को बाँधता है अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वी सासादनगुणस्थानवर्ती होकर २१ प्रकृतियों का बन्ध करता है और प्रथमोपशमसम्यक्त्वी या वेदकसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व को प्राप्त होकर २२ प्रकृतियों का बन्ध करता है, इस प्रकार ९ प्रकृति रूप बंधस्थान में चार भुजकार बन्ध हुए। १३ प्रकृतियों को बाँधता हुआ असंयत या देव असंयत होकर १७ प्रकृतियों का बन्ध करता है अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि सासादन गुणस्थान को प्राप्त हो २१ प्रकृति का बन्ध करने लगा, अथवा प्रथमोपशम या क्षयोपशम (वेदक) सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व को प्राप्त होकर २२ प्रकृति का बन्ध करता है। इस प्रकार १३ प्रकृति रूप बन्धस्थान में तीन भुजकारबन्ध जानना। १७ प्रकृति का बन्ध करता हुआ प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि सासादनगुणस्थानवर्ती होकर २१ प्रकृतियों को बाँधता है अथवा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि अथवा मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यात्व को प्राप्त होकर २२ प्रकृतियों का बन्ध करता है इस प्रकार १७ प्रकृति रूप बन्धस्थान में दो भुजकारबन्ध हुए तथा २१ प्रकृतियों का बन्ध करते हुए मिथ्यात्व को प्राप्त होकर २२ प्रकृतियों का बन्ध करने लगा इस प्रकार २१ प्रकृति रूप बन्ध स्थान में एक भुजकार बन्ध हुआ। इस प्रकार सर्व २+२+२+२+२+४+३+२+१=२० भुजकारबन्ध जानना। अब अल्पतरबन्ध कहते हैं, अनादि अथवा सादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनकरण करता हुआ अनिवृत्तिकरण

१. प्राकृत पंचसंग्रह पृष्ठ १९२ से १९५ भी देखो।

के अन्त समय में २२ प्रकृति का बन्ध करता हुआ अनन्तर समय में प्रथमोपशमसम्यक्त्वी होकर अथवा सादिमिथ्यादृष्टि २२ प्रकृति का बन्ध करते हुए विशुद्धि से वेदकसम्यग्दृष्टि होकर असंयतगुणस्थान में १७ प्रकृतियों का बंध करता है या देशसंयती होकर १३ प्रकृतियों का बन्ध करता है अथवा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होकर ९ प्रकृतियों को बाँधता है; इस प्रकार १७ प्रकृति के बन्ध स्थान में दो अल्पतरबन्ध हैं। १३ प्रकृति का बन्ध करता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर ९ प्रकृति का बन्ध करता है तथैव इन्हीं ९ प्रकृतियों का बन्ध करते हुए अपूर्वकरणगुणस्थान में अथवा अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथमभाग में ५ प्रकृति को बाँधता है। पाँच प्रकृतियों को बाँधता हुआ द्वितीय भाग में चार प्रकृति का बन्ध करता है तथा तृतीय भाग में ३ प्रकृति का, चतुर्थभाग में दो प्रकृति का, पाँचवें भाग में एक प्रकृति का बन्ध करता है। इस प्रकार इन स्थानों में एक-एक अल्पतरबन्ध है, ये सर्व ११ अल्पतर हैं। वे इस प्रकार हैं—२२ प्रकृति रूप स्थान के ३, १७ प्रकृति रूप स्थान के २, १३ प्रकृति रूप स्थान का १, नौ प्रकृति रूप स्थान का १, पाँच प्रकृति रूप स्थान का १, चार प्रकृति रूप स्थान का १, तीन प्रकृति रूप स्थान का १ और दो प्रकृति रूप स्थान का १ ये सर्व ११ अल्पतरबन्ध जानना तथा दो अवक्तव्यबन्ध हैं। बीस भुजकार, दो अवक्तव्य और ग्यारह अल्पतरबन्धों में जितनी प्रकृतियों का बंध कहा उतनी ही प्रकृतियों का बंध द्वितीयादिक समयों में भी होवे सो अवस्थित बंध है अतः २०+२+११=३३ ये सर्व अवस्थितबन्ध जानना।

अथानन्तर भुजकारादिबन्ध के भंगों की संख्या कहते हैं—

सत्तावीसहियसयं, पणदालं पंचहत्तरिहियसयं।
भुजगारप्पदराणि य, अवट्ठिदाणिवि विसेसेण ॥४७१॥

अर्थ– विशेषपने से अर्थात् प्रकृतियों के परिवर्तन की अपेक्षा से भुजकार बन्ध के १२७, अल्पतरबंध के ४५ और अवस्थितबन्ध के १७५ भंग हैं।

उपर्युक्त गाथा में कथित भुजकारादिबन्धों में सर्वप्रथम भुजकारबन्ध के भंगों का विशेषतापूर्वक वर्णन करते हैं—

णभ चउवीसं बारस, वीसं चउरट्ठवीस दो दो य।
थूले पणगादीणं, तियतिय मिच्छादिभुजगारा ॥४७२॥

अर्थ– भंगों की विवक्षा से विशेष भुजकार भंग मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं हैं, सासादनगुणस्थान में २४, मिश्रगुणस्थान में १२, असंयतगुणस्थान में २०, देशसंयत गुणस्थान में २४, प्रमत्तगुणस्थान में २८, अप्रमत्तगुणस्थान में २, अपूर्वकरणगुणस्थान में २ और अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में पाँच आदि

प्रकृति के बन्धरूप स्थानों में ३-३ भंगों की अपेक्षा सर्व भंग १५ हैं इस प्रकार सभी गुणस्थानों में मिलकर भुजकार बन्ध के भंगों की संख्या १२७ जाननी चाहिए।

विशेषार्थ– यहाँ सर्वप्रथम भुजकार बन्ध के भंगों का कथन करते हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीव के मोहनीय कर्म की २२ प्रकृतियों का ही बन्ध है। इससे अधिक प्रकृति रूप मोहनीय कर्म का बन्धस्थान नहीं है अतः यहाँ भुजकारबन्ध का भंग नहीं है। सासादनगुणस्थान में बन्ध योग्य २१ प्रकृति हैं जिनके चार भंग हैं। प्रथम तो २२ प्रकृति रूप स्थान का बन्ध करके सासादन से मिथ्यात्वगुणस्थान में आता है तो यहाँ एक-एक भंग की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि के २२ प्रकृति के बन्ध स्थान संबंधी छह भंगों में २१ प्रकृति रूप स्थान के चार भंगों का गुणा करने से इस भुजकार के २४ भंग हुए। तथैव मिश्रगुणस्थान में १७ प्रकृतिरूप स्थान के दो भंग हैं। यहाँ से जीव मिश्रात्वगुणस्थान में आता है तो मिथ्यादृष्टि के २२ प्रकृति रूप ६ भंगों में १७ प्रकृति के २ भंगों का गुणा करने से इस भुजकार के १२ भंग हुए, असंयतगुणस्थान में १७ प्रकृतिरूप बन्धस्थान के दो भंग हैं। यहाँ से जीव सासादन गुणस्थान में आता है और २१ प्रकृति का बन्ध करता है जिसके चार भंग हैं। इन चार भंगों में १७ प्रकृति के दो भंगों का गुणा करने से आठ भुजकार बन्ध के भंग हुए तथा यदि मिथ्यात्व में आता है तो वहाँ २२ प्रकृति का बन्ध करता है उसके ६ भंग हैं अतः इन ६ भंगों में १७ प्रकृति के २ भंगों में १७ प्रकृति के दो भंगों का गुणा करने से इस भुजकार के १२ भंग हुए। इस प्रकार दो भुजकार बन्ध के १२+८=२० भंग जानना। देशसंयतगुणस्थान में १३ प्रकृति का बन्ध है उसके २ भंग हैं, यहाँ से गिरकर जीव मिश्र अथवा असंयतगुणस्थान में या मरण करके देव असंयत में जाता है। वहाँ १७ प्रकृति का बन्ध करता है उसके भी दो भंग हैं। अतः १३ प्रकृति रूप बन्धस्थान के २ भंगों का और १७ प्रकृति रूप दो भंगों का परस्पर गुणा करने पर इस भुजकार बन्ध के ४ भंग हुए तथा यदि सासादनगुणस्थान में आता है तो २१ प्रकृति का बन्ध करता है, उसके चार भंग हैं। इन चार भंगों का तथा पूर्वोक्त १३ प्रकृति रूप स्थान के दो भंगों का परस्पर में गुणा करने पर इस भुजकार के आठ भंग होते हैं। यदि मिथ्यात्व में आता है तो २२ प्रकृतियों को बाँधता है, इसके ६ भंग हैं, इन भंगों में पूर्वोक्त २ भंगों का गुणा करने से इस भुजकारबन्ध के १२ भंग होते हैं। इस प्रकार देशसंयतगुणस्थान सम्बन्धी १७-२१-२२ प्रकृति रूप तीन भुजकार बन्ध के ४+८+१२=२४ भंग हैं। प्रमत्तगुणस्थान में ९ प्रकृति का बंध करता है उसके २ भंग हैं। यहाँ से यदि जीव देशसंयतगुणस्थान में जाता है तो वहाँ १३ प्रकृति का बन्ध करता है उसके २ भंग हैं अतः २×२=४ भंग इस भुजकारबन्ध के हैं और यदि मिश्र अथवा असंयतगुणस्थान में आता है तो वहाँ १७ प्रकृति का बन्ध करता है उसके दो भंग हैं अतः २×२=४ भंग इस भुजकार के भी हुए। यदि सासादनगुणस्थान को प्राप्त करता है तो २१ प्रकृति का बन्ध करता है इसके चार भंग हैं सो २×४=८ भंग इस भुजकारबन्ध के हैं तथा यदि मिथ्यात्वगुणस्थान में आवे तो २२ प्रकृति का बन्ध

करता है इसके ६ भंग हैं अत: २×६=१२ भंग इस भुजकारबन्ध के हुए। इस प्रकार प्रमत्तगुणस्थानसंबंधी ४ भुजकारबन्धों के २८ भंग होते हैं। तथैव अप्रमत्तगुणस्थान में ९ प्रकृति का बन्ध करता है सो यहाँ एक भंग है, यहाँ से मरणकर देव असंयत हुआ तो १७ प्रकृति का बन्ध करता है उसके दो भंग हैं इस प्रकार इस भुजकार बन्ध के १×२=२ भंग जानना।

अपूर्वकरणगुणस्थान में भी अप्रमत्तगुणस्थानवत् भुजकार के २ भंग हैं, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में ५ प्रकृति का बन्ध करता है सो गिरकर अपूर्वकरणगुणस्थान में ९ प्रकृति का बन्ध करने लगा जिसका १ भंग इस प्रकार १×१=१ इसका एक भंग तथा यदि मरणकर देव असंयत हुआ तो १७ प्रकृति का बन्ध करता है जिसके २ भंग हैं अत: इस भुजकारबन्ध के भी १×२=२ भंग होते हैं। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथमभाग में होने वाले दो भुजकार बन्ध के १+२=३ भंग होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के द्वितीय भाग में चार प्रकृति का बन्ध करने लगा सो इसका एक भंग है वहाँ से प्रथम भाग में आकर ५ प्रकृति का बन्ध करने लगा, इसका भंग भी एक है अत: इस भुजकार बन्ध के १×१=१ ही भंग होता है, और यदि मरण करके देव असंयत हुआ तो वहाँ १७ प्रकृति का बन्ध करता है उसके दो भंग हैं इस प्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के द्वितीयभाग सम्बन्धी २ भुजकार के २+१=३ भंग जानना। इसी गुणस्थान के तृतीय भाग में पहले ३ प्रकृति का बन्ध करता था उसका भंग एक है वहाँ से गिरकर यदि द्वितीय भाग में आवे तो चार प्रकृति का बन्ध करता है इसका एक भंग तो इस भुजकार के १×१=१ ही भंग हुआ और यदि मरणकर देव असंयत होवे तो १७ प्रकृति का बन्ध करता है इसके दो भंग हैं अत: इस भुजकार के १×२=२ भंग होते हैं। इस प्रकार तृतीय भाग सम्बन्धी दो भुजकारों के १+२=३ भंग जानना। तथैव चतुर्थभाग में २ प्रकृति का बन्ध करता था उसका एक भंग है, वहाँ से गिरकर यदि तृतीय भाग में आवे तो ३ प्रकृति का बन्ध करने लगा उसका भी एक भंग है अत: इस भुजकारबन्ध के १×१=१ भंग है। यदि मरणकरके देव असंयत होता है तो १७ प्रकृति का बन्ध करता है इसके दो भंग हैं सो १×२=२ भंग इस भुजकारबन्ध के होते हैं। इस प्रकार चतुर्थभाग में भी दो भुजकारों के १+२=३ भंग होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के पञ्चमभाग में एक प्रकृति का बन्ध करता है उसका एक भंग है वहाँ से गिरकर चतुर्थभाग में आवे और दो प्रकृति का बन्ध करने लगे तो इसका एक ही भंग है अत: इस भुजकारबन्ध का १×१=१ भंग है। यदि मरणकर देव असंयत हुआ तो १७ प्रकृति का बन्ध करता है सो इसके दो भंग हैं इसलिए इस भुजकारबन्ध सम्बन्धी १×२=२ भंग हैं। इस प्रकार पञ्चमभाग सम्बन्धी दो भुजकारों के १+२=३ भंग जानना।

उपर्युक्त गुणस्थानोक्त भुजकारबन्ध सम्बन्धी भंगों की सन्दृष्टि—

सासादनगुणस्थान	२१ प्रकृति से २२ प्रकृति रूप	एक भुजकारबन्ध के	= २४ भंग
मिश्रगुणस्थान	१७ प्रकृति से २२ प्रकृति रूप	एक भुजकारबन्ध के	= १२ भंग
असंयतगुणस्थान	१७ प्रकृति से २१ व २२ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= २० भंग
देशसंयतगुणस्थान	१३ प्रकृति से १७-२१-२२ प्रकृति रूप	३ भुजकारबन्ध के	= २४ भंग
प्रमत्तगुणस्थान	९ प्रकृति से १३-१७-२१-२२	४ भुजकारबन्ध के	= २८ भंग
अप्रमत्तगुणस्थान	९ प्रकृति से १७ प्रकृति रूप	१ भुजकारबन्ध के	= २ भंग
अपूर्वकरणगुणस्थान	९ प्रकृति से १७ प्रकृति रूप	१ भुजकारबन्ध के	= २ भंग
अनिवृत्तिकरण :			
प्रथम भाग	५ प्रकृति से ९ व १७ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= ३ भंग
द्वितीयभाग	४ प्रकृति से ५ व १७ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= ३ भंग
तृतीयभाग	३ प्रकृति से ४ व १७ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= ३ भंग
चतुर्थभाग	२ प्रकृति से ३ व १७ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= ३ भंग
पंचमभाग	१ प्रकृति से २ व १७ प्रकृति रूप	२ भुजकारबन्ध के	= ३ भंग
		सर्वभंग	= १२७

अब अल्पतरबन्ध के भंग कहते हैं—

अप्पदरा पुण तीसं, णभ णभ छद्दोण्णि दोण्णि णभ एक्कं।
थूले पणगादीणं, एक्केक्कं अंतिमे सुण्णं ॥४७३॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान से अपूर्वकरण पर्यन्त गुणस्थानों में तीस, शून्य, शून्य, छह, दो, दो, शून्य और एक प्रकृति रूप अल्पतर भंग होते हैं। स्थूल कषाय वाले ९ वें गुणस्थान में पाँच आदि प्रकृति रूप एक-एक ही अल्पतरभंग होता है, किन्तु अन्तिम ५ वें भाग में शून्य अर्थात् अल्पतरभंग नहीं होता है।

विशेषार्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में बाईस प्रकृति का बन्ध ६ प्रकार से होता है तथा यहाँ से मिश्रगुणस्थान अथवा असंयतगुणस्थान में जाकर १७ प्रकृतियों का बन्ध दो प्रकार से है अत: इनके एक-एक प्रकार में ६-६ प्रकार होने से बाईस प्रकृति से १७ प्रकृति के बन्ध की अपेक्षा अल्पतरबन्ध के बारह

भंग हैं। देशसंयतगुणस्थान में जाकर वहाँ १३ प्रकृति का बन्ध दो प्रकार से है। इस अपेक्षा यहाँ भी अल्पतरबन्ध के बारह भंग जानना। अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त होकर वहाँ ९ प्रकृति का बन्ध एक तरह से है अतः वहाँ अल्पतरबन्ध के ६ भंग हुए। इस प्रकार ये सर्व (१२+१२+६) ३० भंग अल्पतरबन्ध के हैं। आगे सासादन और मिश्रगुणस्थान में अल्पतरबन्ध नहीं है इसलिये शून्य कहा। असंयतगुणस्थान में १७ प्रकृति का बन्ध दो प्रकार से है। यहाँ से देशसंयतगुणस्थान में जाकर वहाँ १३ प्रकृतियों का बन्ध दो प्रकार से करता है, इस अपेक्षा से अल्पतरबन्ध के चार भंग और अप्रमत्तगुणस्थान में जाकर वहाँ ९ प्रकृतियों का बन्ध एक प्रकार से करता है। इस अपेक्षा अल्पतरभंग दो हुए अतः ये ४+२=६ भंग जानना। पुनः देशसंयत में १३ प्रकृति का बन्ध दो प्रकार से है। यहाँ से अप्रमत्तगुणस्थान में जाकर वहाँ ९ प्रकृति का बन्ध एक प्रकार से करता है। इस अपेक्षा अल्पतरबंध के दो भंग हैं तथा प्रमत्तगुणस्थान में ९ प्रकृति बंध दो प्रकार से होता है। यहाँ से अप्रमत्तगुणस्थान में जाकर वहाँ ९ प्रकृति का बन्ध एक प्रकार से करता है, इस अपेक्षा भी दो अल्पतर भंग हैं।

शंका– प्रमत्त अथवा अप्रमत्तगुणस्थान में जाकर ९ प्रकृतियों का बन्ध पाया जाता है, किन्तु यहाँ समान संख्या होने से अवस्थितबन्ध हो सकता है तो फिर यहाँ उसे अल्पतरबन्ध क्यों कह रहे हो?

समाधान– प्रमत्तगुणस्थान में अरति व शोक प्रकृति की बन्धव्युच्छित्ति होती है, इसी अपेक्षा से अल्पतरबन्ध होता है।

अप्रमत्तगुणस्थान से अपूर्वकरणगुणस्थान में जाता है। यहाँ दोनों में ही समान रूप से ९ प्रकृति का बन्ध है अतः यहाँ पर अल्पतरबन्ध नहीं होने से शून्य कहा है और अपूर्वकरणगुणस्थान में ९ प्रकृति का बन्ध एक प्रकार से है तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में ५ प्रकृति का बन्ध एक प्रकार से है अतः अल्पतरबन्ध का यहाँ एक ही भंग है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में ५ प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार, पश्चात् चार प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार होने से उसकी अपेक्षा एक अल्पतर भंग, ४ प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार, बाद में ३ प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार है उसकी अपेक्षा एक अल्पतरभंग, पुनः तीन प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार पश्चात् दो प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार है इसलिए यहाँ भी एक अल्पतरभंग एवं दो प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार पश्चात् एक प्रकृति के बन्ध का एक प्रकार होने से यहाँ भी अल्पतर का एक भंग है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के चरमभाग में एक प्रकृति का बन्ध करता है और यहाँ से सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में जाकर वहाँ बन्ध का अभाव होने से वह अवक्तव्यबन्ध कहलाता है। इस प्रकार सर्व ३०+६+२+२+१+१+१+१+१=४५ अल्पतरबन्ध के भंग हैं।

आगे भंगविवक्षा से अवक्तव्यबन्ध के भंग व तीनों प्रकार के बन्धों की अपेक्षा अवस्थितबन्ध के भी भंग कहते हैं—

भेदेण अवत्तव्वा, ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
दो चेव होंति एत्थवि, तिण्णेव अवट्ठिदा भंगा॥४७४॥

अर्थ– भंगविवक्षा से अवक्तव्यबन्ध कहा है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान मोहनीय कर्म के बन्ध से रहित है अतः वहाँ से नीचे उतरकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती होकर सञ्ज्वलनलोभ को बाँधता है सो एक तो यह अवक्तव्यबन्ध का भंग है और मरण करके देवअसंयत होकर दो प्रकार से १७ प्रकृतियों का बन्ध करता है इस अपेक्षा अवक्तव्यबन्ध के दो भंग हैं। ऐसे अवक्तव्यबन्ध के सर्व (१+२) ३ भंग हैं। भुजकारबन्ध के पूर्वोक्त १२७, अल्पतरबन्ध के ४५ और अवक्तव्यबन्ध के ३ भंगों में द्वितीयादिक समयों में समान प्रकृतियों का बन्ध होने से अवस्थितबन्ध होता है जिसके १२७+४५+३=१७५ भंग जानना।

मोहनीयकर्म के सामान्य-विशेष भुजकारादि चार प्रकार के बन्ध को कहकर अब मोहनीयकर्म के उदयस्थान कहते हैं—

दस णव अट्ठ य सत्त य, छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च।
उदयट्ठाणा मोहे, णव चेव य होंति णियमेण॥४७५॥[1]

अर्थ– मोहनीयकर्म के उदयस्थान दस, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, दो और एक प्रकृति रूप ९ ही हैं ऐसा नियम से जानना।

मिच्छं मिस्सं सगुणे, वेदगसम्मेव होदि सम्मत्तं।
एक्का कसायजादी, वेददुजुगलाणमेक्कं च॥४७६॥

अर्थ– मोहनीयकर्म की उदयप्रकृतियों में मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति अपने-अपने गुणस्थान में ही उदय होती हैं, किन्तु सम्यक्त्व प्रकृति वेदक सम्यग्दृष्टि जीव के असंयतादि चार गुणस्थानों में उदय होती है तथा अनन्तानुबन्धी आदि चारकषायों की क्रोध, मान, मायारूप चार जाति में से एक-एक कषायजाति का, तीनों वेदों में से एक वेद का, हास्य-रति और अरति-शोकरूप दो युगलों में से किसी एक युगल का उदय पाया जाता है।

भय सहियं च जुगुच्छासहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि।
मिच्छादिअपुव्वंते, चत्तारि हवंति णियमेण॥४७७॥

---

१. "एक्कं च दो व चत्तारि तदो एयाधिया दसुक्कस्सं। ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति।" प्रा. पं. सं. पृ. ३१९ गाथा ३० व पृ. ४३८ गा. ३०३।

अर्थ– एक काल में एक जीव के भय सहित ही प्रकृतियों का उदय होने से अथवा केवल जुगुप्सा सहित ही उदय होने से या भय और जुगुप्सा इन दो सहित ही उदय होने से अथवा च शब्द से दोनों ही से रहित उदय होने से कूट के आकार चार-चार हैं सो ये मिथ्यात्व से अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त निश्चय से होते हैं। इसी कारण यहाँ पर चार-चार कूट कहे गए हैं। कूट के आकारों की रचना इस प्रकार है—

अनन्तानुबन्धी सहित मिथ्यात्व का कूट

	२	भय-जुगुप्सा		१	जुगुप्सा
अरति-शोक	२-२	हास्य-रति	अरति-शोक	२-२	हास्य-रति
	१ १ १	वेद		१ १ १	वेद
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	कषाय
	१	मिथ्यात्व		१	मिथ्यात्व
	१	भय		०	
अरति-शोक	२-२	हास्य-रति	अरति-शोक	२-२	हास्य-रति
	१ १ १	वेद		१ १ १	
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	
	१	मिथ्यात्व		१	मिथ्यात्व

प्रथम कूट में १० प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना, दूसरे व तीसरे कूट में ९-९ प्रकृति रूप उदयस्थान, चतुर्थ कूट में ८ प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना इस प्रकार ये चारों कूट अनन्तानुबन्धी सहित मिथ्यात्वगुणस्थान के जानना तथा इन चारों कूटों में मिथ्यात्व को हटाकर चारों कूट सासादनगुणस्थान के जानना।

सासादनगुणस्थान के कूट

	२	भय-जुगुप्सा		१	जुगुप्सा
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	हास्य-रति	२-२	अरति-शोक
	१ १ १	वेद		१ १ १	वेद
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	कषाय
	१	भय		०	
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	हास्य-रति	२-२	अरति-शोक
	१ १ १	वेद		१ १ १	
	४ ४ ४ ४	कषाय		४ ४ ४ ४	

मिथ्यात्व के स्थान पर सम्यग्मिथ्यात्व लिखना और जो कषाय चार-चार लिखी थीं वहाँ ३-३ ही लिखना, क्योंकि एक काल में एक जीव के जो क्रोध का उदय है वह अनन्तानुबन्धी आदि चार रूप है। इन कूटों में अनन्तानुबन्धी कषाय के बिना तीन रूप ही है, इसी प्रकार मानादिक का उदय जानना, ऐसे ये चार कूट मिश्रगुणस्थान के जानने।

मिश्रगुणस्थान के कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
रति-हास्य २-२ अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
१ १ १ वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
३ ३ ३ ३ कषाय	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
१ सम्यग्मिथ्यात्व	१	१	१

वेदकसम्यग्दृष्टि के कूट में सम्यग्मिथ्यात्व के स्थान पर सम्यक्त्वप्रकृति लिखना। ये चार कूट वेदकसम्यक्त्वयुत अविरतगुणस्थान के जानने।

वेदकसम्यक्त्व के असंयतगुणस्थान सम्बन्धी कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २-२ अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद १ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय ३ ३ ३ ३ अनन्तानुबन्धी	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
सम्यक्त्व १ रहित	१	१	१

वेदकसम्यक्त्वसहित देशसंयतगुणस्थानवर्ती के कूट में कषाय के स्थान में दो-दो कषायें लिखना, क्योंकि देशसंयतगुणस्थान में अनन्तानुबन्धी व अप्रत्याख्यानकषाय के उदय का भी अभाव है, उनका उदय नहीं पाया जाता।

वेदकसम्यक्त्वसंयुक्त देशसंयतगुणस्थान के कूट

२ भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २-२ अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद १ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय २ २ २ २ प्रत्याख्यान व	२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २
सम्यक्त्व १ संज्वलन	१	१	१

वेदकसम्यक्त्वसहित प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के कूटों में प्रत्याख्यानकषाय कम करना और दो-दो कषायों के स्थान पर एक-एक कषाय लिखना।

वेदकसम्यक्त्वसहित प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के कूट

२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
१ १ १	वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय १ १ १ १	सञ्ज्वलन	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १
१	सम्यक्त्व	१	१	१

अपूर्वकरणगुणस्थान में सम्यक्त्वप्रकृति कम करने से चार कूट होते हैं-

२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति २-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
१ १ १	वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय १ १ १ १	सञ्ज्वलन	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

इस प्रकार मिथ्यात्व से अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त चार-चार कूट नियम से हैं। यहाँ पर हास्यादिकषाय की व्युच्छित्ति हुई इसलिए अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में सञ्ज्वलनरूप चार कषायों में एक कषाय, तीन वेदों में से एक वेद का उदय रूप एक ही कूट है तथा इनमें से वेद को कम करने से दूसरे भाग में सञ्ज्वलन रूप चार कषायों में से एक कषाय के उदयरूप एक ही कूट है इनमें से क्रोध को घटाने पर तृतीय भाग में तीन सञ्ज्वलन कषाय में एक का उदयरूप एक ही कूट है तथा इनमें भी मानकषाय को घटाने पर चतुर्थभाग में दो सञ्ज्वलनकषायों में से एक का उदय रूप एक ही कूट है इनमें से मायाकषाय को भी कम करने पर पाँचवें भाग में बादर सञ्ज्वलन लोभ का उदयरूप एक ही कूट है।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी कूट

प्रथमभाग	द्वितीयभाग	तृतीयभाग	चतुर्थभाग	पञ्चमभाग
१ १ १ वेद	०	०	०	०
१ १ १ १ कषाय	१ १ १ १	१ १ १	१ १	१

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में एक सूक्ष्मलोभ के उदयरूप एक ही कूट है।

सूक्ष्मसाम्पराय का कूट
१

इस प्रकार कूटाकार रूप से मोहनीय कर्म के उदयस्थान कहे।

अथानन्तर मिथ्यात्व, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानों में विशेष रूप से कथन करते हैं—

अणसंजोजिदसम्मे, मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं।
उवसमखइये सम्मं, ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि ॥४७८॥

अर्थ– अनन्तानुबन्धी कषाय का जिसके विसंयोजन हो गया है ऐसे वेदक या उपशमसम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्वकर्म के उदय से मिथ्यात्वगुणस्थान होता है। उसके बन्धावली या अचलावलीकाल पर्यंत अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता तथा पहले अनन्तानुबंधी थी, किन्तु अब उसका विसंयोजन कर दिया इसलिए उस जीव के आवलीप्रमाण काल तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं आता इस अपेक्षा मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी रहित चारकूट और जानना।

अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वगुणस्थान के कूट

	२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
	१ १ १	वेद	१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय	३ ३ ३ ३	अनं.बंधी रहि.	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
	१	मिथ्यात्व	१	१	१

इनमें प्रथमकूट नौ प्रकृतिरूप दूसरे व तीसरे में आठ प्रकृतिरूप और चतुर्थभाग में सात प्रकृति रूप उदयस्थान जानने तथा उपशम सम्यक्त्व में और क्षायिकसम्यक्त्व में सम्यक्त्व प्रकृति का उदय नहीं होता, सम्यक्त्व प्रकृति का उदय वेदक सम्यक्त्व में ही होता है, इसलिए असंयत, देशसंयत, प्रमत्त व अप्रमत्तसंयत के पूर्व में जो सम्यक्त्वमोहनीय सहित चार-चार कूट किए हैं वे वेदकसम्यक्त्व की अपेक्षा जानने। उन सभी कूटों में सम्यक्त्व प्रकृति घटाने पर उपशम और क्षायिकसम्यक्त्व की अपेक्षा असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्तगुणस्थान में चार-चार कूट और होते हैं।

वेदकसम्यक्त्वरहित असंयतगुणस्थान के कूट

	२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद	१ १ १		१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय	३ ३ ३ ३	अनंतानुबंधी कषायरहित	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३

वेदकसम्यक्त्वरहित देशसंयतगुणस्थान के कूट

	२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद	१ १ १		१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय	२ २ २ २	प्रत्याख्यान व सञ्ज्वलन	२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २

वेदकसम्यक्त्वरहित प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के कूट

	२	भय-जुगुप्सा	१ भय	१ जुगुप्सा	०
हास्य-रति	२-२	अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद	१ १ १		१ १ १	१ १ १	१ १ १
कषाय	१ १ १ १	सञ्ज्वलन	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे, अड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव।
चत्तारि दोण्णि एक्कं, ठाणा मिच्छादिसुहुमंते॥४७९॥[1]

अर्थ– (गाथा ४७८ में) कथित कूटों को पूर्वोक्त (गाथा ४७७ में) कूटों में मिलाने से मिथ्यात्वगुणस्थान में ८, सासादन और मिश्रगुणस्थान में चार-चार, असंयतादि चार गुणस्थानों में ८-८, अपूर्वकरणगुणस्थान में ४, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में २ और सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान में १ कूट है। (इसका विशेष स्पष्टीकरण अग्रलिखित संदृष्टि से जानना)।

१. मिच्छे अड चउ चउ दुसु तदो चउसु हवंति अट्ठेव। चत्तारि अपुव्वे वि य उदयट्ठाणाणि मोहम्मि॥ १. प्रा.पं.सं.पृ.४४४ गाथा ३१५।

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	अविरत	देशविरत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्व-करण	अनिवृत्ति-करण	सूक्ष्म-साम्पराय
गाथा ४७७ के अनुसार उदयस्थान	८ ९ । ९ १०	७ ८ । ८ ९	७ ८ । ८ ९	७ ८ । ८ ९	६ ७ । ७ ८	५ ६ । ६ ७	५ ६ । ६ ७	४ ५ । ५ ६	१ २	१
गाथा ४७८ के अनुसार उदयस्थान	७ ८ । ८ ९	०	०	६ ७ । ७ ८	५ ६ । ६ ७	४ ५ । ५ ६	४ ५ । ५ ६	०	०	०
जोड़	८	४	४	८	८	८	८		२	१

नोट– अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के ५ भाग हैं उसके उदयस्थान २-१-१-१-१ हैं, किन्तु ऊपर संदृष्टि में २-१ इस प्रकार संक्षेप में ही लिखा गया है।

आगे अपुनरुक्तस्थानों को कहते हैं—

दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ ।
ठाणा छादि तियं च य, चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में दशआदि प्रकृति रूप उदयस्थान हैं अर्थात् १० प्रकृतिरूप, ९ प्रकृति रूप, ८ प्रकृति रूप और ७ प्रकृति रूप हैं। सासादन और मिश्रगुणस्थान में ९-८ व ७ प्रकृति रूप, असंयतगुणस्थान में ९-८-७ व ६ प्रकृति रूप हैं। देशसंयत में ८-७-६ व ५ प्रकृतिरूप हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में ७-६-५ व ४ प्रकृति रूप, अपूर्वकरणगुणस्थान में ६-५-४ प्रकृति रूप उदयस्थान हैं, ये सभी स्थान २४-२४ भंगों से संयुक्त हैं। मिथ्यात्वादि ५ गुणस्थानों में जो अपुनरुक्त स्थान कहे उनमें किसी-किसी की संख्या समान होते हुए भी प्रकृतिभेद की अपेक्षा अपुनरुक्तपना है। जैसे– ९-९ प्रकृतिरूप स्थान बहुत तथापि उनमें प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न पाई जाती हैं इसलिए अपुनरुक्तता है, क्योंकि मिथ्यात्वगुणस्थान में जो स्थान हैं वे मिथ्यात्वप्रकृति सहित हैं, सासादनगुणस्थान में

अनन्तानुबंधी प्रकृति सहित हैं, मिश्रगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति सहित, असंयतगुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति सहित और देशसंयतगुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषायरहित स्थान हैं। इस प्रकार प्रकृति भेद से अपुनरुक्तता जाननी चाहिए।

एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि।[1]
एदे चउवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे ॥४८१॥

अर्थ– मिथ्यात्वादि सर्वगुणस्थानों में १० प्रकृतिरूप एक, ९ प्रकृतिरूप छह, ८-७ व ६ प्रकृतिरूप ११-११, ५ प्रकृतिरूप ९ और चार प्रकृतिरूप ३ स्थान हैं। ये सर्वस्थान २४-२४ भंगों से सहित हैं तथा दो प्रकृतिरूप १ स्थान के २४ भंग और एक प्रकृतिरूप एक स्थान के ११ भंग हैं।

विशेषार्थ– उपर्युक्त १० प्रकृति रूप एक स्थान तो मिथ्यात्वगुणस्थान में ही है, ९ प्रकृति रूप ६ स्थान हैं ये छह स्थान पहले कूटों में २ व पिछले कूटों में एक इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में तो ३, सासादन-मिश्र और असंयतगुणस्थान सम्बन्धी पहले कूटों में एक-एक और एक इस प्रकार सर्व ६ स्थान हैं। ८ प्रकृतिरूप ११ स्थानों में से मिथ्यादृष्टि के पहले कूटों में एक तथा पिछले कूटों में २ इस प्रकार तीनस्थान, सासादन व मिश्रगुणस्थान के दो-दो, असंयतगुणस्थान में पहले कूटों में २ तथा पिछले कूटों में एक इस प्रकार ३, देशसंयतगुणस्थान में पहले कूटों में एक इस प्रकार ८ प्रकृति के ११ स्थान हैं। ७ प्रकृति रूप ११ स्थानों में मिथ्यात्वगुणस्थान के पिछले कूटों में एक तथा सासादन और मिश्रगुणस्थान के एक-एक स्थान, असंयतगुणस्थान में पहले कूटों में एक एवं पिछले कूटों में २ ऐसे ३ स्थान, देशसंयतगुणस्थान के पहले कूटों में २ व पिछले कूटों में एक ऐसे ३ स्थान एवं प्रमत्तअप्रमत्तगुणस्थान के एक-एक स्थान ऐसे ७ प्रकृति रूप ११ स्थान हैं। ६ प्रकृति रूप ११ स्थानों में असंयतगुणस्थान के पिछले कूटों में एक, देशसंयतगुणस्थान के पहले कूटों में एक तथा पिछले कूटों में दो इस प्रकार ३ स्थान, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के पहले कूटों में २-२ स्थान और पिछले कूटों में एक-एक स्थान ऐसे ३-३ स्थान जानना तथा अपूर्वकरणगुणस्थान में एक इस प्रकार ६ प्रकृतिरूप ११ स्थान हैं। ५ प्रकृति रूप ९ स्थानों में देशसंयतगुणस्थान के पिछले कूट में एक स्थान, प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के पहले कूटों में १-१ और पिछले कूटों में २-२ ऐसे ३-३ स्थान एवं अपूर्वकरणगुणस्थान के २ स्थान ये ९ स्थान ५ प्रकृति रूप हैं। चार प्रकृति रूप तीनस्थानों में प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान के पिछले कूटों में एक-एक स्थान और अपूर्वकरणगुणस्थान में एक स्थान है, इस प्रकार तीन स्थान हैं।

---

१. "एक्क य छक्केगारं, एगारेगारसेव णव तिण्णि। एदेचदुवीसगदा, बारस दुग पंच एगम्मि ॥३१२॥" "प्रा.पं.सं.पृ.४४२।"

उपर्युक्त सर्वस्थानों में २४-२४ भंग हैं। १० प्रकृतिरूप उदयस्थानों में क्रोधादि चार कषायों का उदय एक-एक वेद के साथ होने से १२ भंग होते हैं सो इन १२ भंगों में हास्य-रति अथवा अरति-शोक का गुणा करने से २४ भंग होते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी २४-२४ भंग जानने तथा दो प्रकृतिरूप एक स्थान के २४ एवं एक प्रकृतिरूप १ स्थान के ११ भंग हैं।

अथानन्तर दो और एक प्रकृति रूप स्थानों के भंगों का विधान कहते हैं–

उदयट्ठाणं दोण्हं, पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स।
चदुविहबंधट्ठाणे, सेसेसेयं हवे ठाणं॥४८२॥

अर्थ– अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में पाँच प्रकृति का जहाँ बन्ध पाया जाता है ऐसे प्रथम भाग में तो कषाय-वेदरूप २ प्रकृति का उदय है। चार प्रकृति का जहाँ बन्ध पाया जाता है ऐसे द्वितीयभाग में भी एक समय तक एक वेद और एक कषायरूप दो प्रकृतियों का उदय रहता है, इस प्रकार इन दोनों में ३ वेद और सञ्ज्वलन कषाय चतुष्क में से एक-एक प्रकृति का उदय होने से दो प्रकृति रूप स्थान पाया जाता है तथा चार-तीन-दो और एक प्रकृति के बन्धस्थानों में तथा अबंधस्थान में क्रम से ४, ३, २, १ व १ सञ्ज्वलनकषायों में से एक कषाय का उदय होने से एक-एक प्रकृति रूप उदयस्थान हैं। अतएव वहाँ पर ४, ३, २, १, १ भंग होते हैं। इस प्रकार एक प्रकृति रूप उदयस्थान में भंग ११, द्विप्रकृति रूप उदयस्थान में भंग २४, कुल भंग २४+११=३५ होते हैं।

विशेषार्थ– [1]अनिवृत्तिकरणस्य द्विकोदये इति पंचबन्धक-चतुर्बन्धकानिवृत्तिकरण-भागयोस्त्रिवेदचतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं $\frac{५}{२}\ \frac{४}{१}$ स्यात्। तत्र संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभश्चत्वारः त्रिभिर्वेदैर्हताः द्वादशः भंगा भवन्ति। द्विद्वादश द्वाद्वश द्वाद्वशेति $\frac{५}{२}\ \frac{४}{१}$ । अर्थात् अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में दो प्रकृतिक, पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान में १२ और $\frac{१२}{}\ \frac{१२}{}$ ४ प्रकृतिकबन्धस्थान में १२ ये २४ भंग होते हैं।

आगे इसी बात का विशेष कथन चार गाथासूत्रों में करते हैं—

अणियट्टिकरणपढमा, संढित्थीणं च सरिस उदयद्धा।
तत्तो मुहुत्तअंते, कमसो पुरिसादिउदयद्धा॥४८३॥

अर्थ– अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग के प्रथम समय से सवेदभाग के अन्तसमय तक नपुंसकवेद और स्त्रीवेद के उदय का काल समान है तथा इससे पुरुषवेद और सञ्ज्वलनक्रोधादि चतुष्क का उदयकाल यथासम्भव क्रम से अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना।

---

१. प्रा. पं. सं. पृ. ३२८।

पुरिसोदएण चडिदे, बंधुदयाणं च दुगवदुच्छित्ती।
सेसोदयेण चडिदे, उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी ॥४८४॥

अर्थ– जो जीव पुरुषवेद के उदय सहित श्रेणी चढ़ते हैं उनके पुरुषवेद की बंधव्युच्छित्ति व उदयव्युच्छित्ति एक साथ होती है अथवा चकार से बन्धव्युच्छित्ति उदय के द्विचरमसमय में होती है तथा स्त्री व नपुंसकवेद के उदय से जो श्रेणि चढ़ते हैं उनके पुरुषवेद की बन्धव्युच्छित्ति दोनों (स्त्री-नपुंसक) वेदों के उदय के द्विचरमसमय में होती है।[1] अथवा सवेदभाग के चरम समय तक पुरुषवेद का बंधक रहता है।[2]

विशेषार्थ– कोधसंजलणपुरिसवेदोदएणक्खवगसेढिं चडिदस्स सवेदियदुचरिमसमए छण्णोकसाएहि सह खविदपुरिसवेदचिराणसंतस्स सवेदियचरिमसमए समयूणदोआवलियमेत्तपुरिसवेदणवकसमयपबद्धाणमुवलंभादो। अर्थात् क्रोधसञ्ज्वलन और पुरुषवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ा है अतएव जिसने सवेदभाग के द्विचरमसमय में छह नोकषायों के साथ पुरुषवेद के सत्ता में स्थित पुराने कर्मों का नाश कर दिया है, उसके सवेद भाग के चरम समय में एक समय कम दो आवलीप्रमाण काल तक स्थित रहने वाले पुरुषवेद संबंधी नवकसमयप्रबद्ध पाए जाते हैं। अतः पाँच प्रकृतिक स्थान का जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कम दो आवली होता है।[3] इससे जाना जाता है कि पुरुषवेद की बंधव्युच्छित्ति उदय के द्विचरमसमय में होती है।

पणबंधगम्मि बारस, भंगा दो चेव उदयपयडीओ।
दोउदये चदुबंधे, बारेव हवंति भंगा हु ॥४८५॥

अर्थ– अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग में ५ प्रकृतियों का बन्ध होता है। इसमें दो प्रकृति-रूप उदयस्थान है और इसके भंग (४ कषाय×३ वेद की अपेक्षा) १२ हैं। नवम गुणस्थान के ही द्वितीय भाग में ४ प्रकृतियों का बन्ध है वहाँ भी एक समय पर्यंत दो प्रकृतियों के उदय रूप १२ भंग हैं, इस प्रकार दो प्रकृति के उदय रूप दो बन्धस्थानों में २४ भंग हैं।

कोहस्स य माणस्स य, मायालोहाणियट्टिभागम्हि।
चदुतिदुगेक्कं भंगा, सुहुमे एक्को हवे भंगा ॥४८६॥

---

१. जयधवल पु. २ पृ. २३४-२३५।
२. जयधवल पु. २ पृ. २४० एवं जयधवल १४/११७।
३. जयधवल पु. २ पृ. २४३।

अर्थ– अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के द्वितीय भाग से सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त कषायों की अपेक्षा से ११ भंग होते हैं।

विशेषार्थ– क्रोध-मान-माया और लोभ के उदय रूप अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के चार भागों में क्रम से चार-तीन-दो और एक प्रकृति का बन्ध पाया जाता है। उनमें क्रम से कषाय के बदलने की अपेक्षा ४+३+२ और १ भंग है। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान में मोहनीय कर्म के बन्धरहित सूक्ष्मलोभ के उदयस्थान में एक भंग है।

आगे सर्व उदयस्थानों की तथा उनमें पाई जाने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

बारससयतेसीदीठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्मि ॥४८७॥

अर्थ– गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के सर्व १२८३ उदयस्थानों में तथा उन स्थानों की ८५०७ प्रकृति भेदों में जगत् के चराचर जीव मोहित हो रहे हैं।

विशेषार्थ– गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के १० प्रकृतिरूप एक, ९ प्रकृतिरूप छह, ८-७ व ६ प्रकृति के ११-११, पाँच प्रकृति रूप नौ, चार प्रकृतिरूप तीन, दो प्रकृतिरूप एक ये सर्व ५३ उदयस्थान हैं और इनमें प्रत्येक उदयस्थान के २४-२४ भंग होने से (५३×२४) १२७२ तथा एक प्रकृति रूप स्थान के ११ भंग हैं इस प्रकार (१२७२+११) सर्व १२८३ भंग उदयस्थानों के जानना। इन स्थानों में पाई जाने वाली प्रकृतियों का कथन इस प्रकार है— दश प्रकृतिरूप एक स्थान की १० प्रकृति, नौ प्रकृतिरूप ६ स्थानों की ९×६=५४ प्रकृतियाँ, आठ प्रकृतिरूप ११ स्थानों की ८×११=८८ प्रकृतियाँ, सात प्रकृति रूप ११ स्थानों की ७×११=७७ प्रकृतियाँ, छह प्रकृतिरूप ११ स्थानों की ६×११=६६ प्रकृतियाँ, पाँच प्रकृति रूप ९ स्थानों की ५×९=४५ प्रकृतियाँ, चार प्रकृति रूप ३ स्थानों की ४×३=१२ प्रकृतियाँ, दो प्रकृति रूप १ स्थान की २×१=२ प्रकृतियाँ, ये सर्व मिलकर १०+५४+८८+७७+६६+४५+१२+२=३५४ प्रकृतियाँ हुईं। इनको २४ भंगों से गुणा करने पर ३५४×२४=८४९६ होते हैं और एक प्रकृति रूप स्थान के ११ भंगों की ११ प्रकृतियाँ मिलाने से ८४९६+११=८५०७ सर्वप्रकृतियों की संख्या जानना।

प्रकृतियाँ	१०	९	८	७	६	५	४	२
स्थान	१	६	११	११	११	९	३	१

आगे अपुनरुक्तस्थानों की तथा उनमें पाई जाने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

एक्क य छक्केयारं, दससगचदुरेक्कयं अपुणरुत्ता।[1]
एदे चदुवीसगदा, बार दुगे पंच एक्कम्मि ॥४८८॥

अर्थ– दशप्रकृतिरूप एक स्थान, ९ प्रकृतिरूप छह स्थान, ८ प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान, ७ प्रकृतिरूप दस स्थान, ६ प्रकृतिरूप सात स्थान, ५ प्रकृतिरूप चारस्थान और ४ प्रकृतिरूप एक स्थान अपुनरुक्त है। इन ४० स्थानों में प्रत्येक के २४-२४ भंग हैं। दो प्रकृति रूप स्थान के १२ भंग और एक प्रकृतिरूप स्थान के ५ भंग हैं।

विशेषार्थ– १० प्रकृतिरूप, ९ प्रकृतिरूप, ८ प्रकृतिरूप स्थान तो पूर्ववत् ही हैं, किन्तु ७ प्रकृति आदिरूप स्थानों में कुछ विशेषता है उसे ही यहाँ कहते हैं—

पूर्व में ७ प्रकृतिरूप ११ स्थान कहे थे, किन्तु यहाँ ७ प्रकृतिरूप १० ही स्थान कहे हैं। इसका कारण यह है कि पूर्व में कहे हुए ११ स्थानों में पहले कूटों में सम्यक्त्वप्रकृति सहित वेदकसम्यग्दृष्टि के प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी सात प्रकृतिरूप जो दो स्थान कहे थे, वे समान हैं अतः पुनरुक्त होने से यहाँ एक ही ग्रहण किया इसीलिए १० स्थान कहे गए हैं। तथैव पूर्व में ६ प्रकृतिरूप स्थान भी ११ कहे थे, किन्तु यहाँ पर ७ ही स्थान कहे हैं, क्योंकि पूर्वोक्त ११ स्थानों में वेदकसम्यक्त्वसहित पहले कूटों में छह प्रकृति रूप दो-दो कूट प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी कहे थे उनमें समानता होने से ४ में से दो कूट ग्रहण किए और शेष दो कूट पुनरुक्त होने से कम कर दिए तथा वेदकसम्यक्त्व रहित पिछले कूटों में छह प्रकृतिरूप स्थान के प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी एक-एक कूट मिलकर दो कूट हुए सो ये कूट अपूर्वकरण गुणस्थान के ६ प्रकृति रूप कूट के समान ही हैं अतः यहाँ भी दो कूटों को पुनरुक्त होने से ग्रहण नहीं किया, इस प्रकार चार कूट सम्बन्धी चार पुनरुक्त स्थानों को छोड़ देने से ६ प्रकृति रूप ७ ही स्थान यहाँ कहे हैं। उसी प्रकार पूर्व में ५ प्रकृतिरूप ९ स्थान कहे थे, किन्तु यहाँ पर ४ ही स्थान कहे हैं, क्योंकि पूर्वोक्त ९ स्थानों में वेदकसम्यक्त्वसहित पहले कूटों में प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान सम्बन्धी एक-एक कूट कहा था, किन्तु समान होने से यहाँ पर पुनरुक्त को छोड़कर एक ही ग्रहण किया तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूटों में देशसंयतगुणस्थान का एक, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी दो-दो और अपूर्वकरणगुणस्थान सम्बन्धी दो इस प्रकार इन सात कूटों में प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी दो-दो कूट अपूर्वकरण गुणस्थान के दो कूटों के समान हैं अतः चार कूटों के ४ स्थान कम कर दिए एवं वेदकसम्यक्त्व सहित कूटों में एक पुनरुक्तकूट को छोड़ दिया ऐसे ५ कूटों के ५ स्थान कम कर देने से ५ प्रकृति के चार ही स्थान शेष रहे। तथैव पूर्व में ४ प्रकृति रूप ३ स्थान कहे थे, किन्तु

१. "एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगं चेव। दोसु च बारस भङ्गा एक्कम्हि य होंति चत्तारि॥" जयधवल पु. १० पृ. ५२। ध.पु. १५, पृ. ८२ भी देखो।

यहाँ एक ही ग्रहण किया, इसका कारण यह है कि पूर्व में ४ प्रकृति रूप जो तीन स्थान कहे थे उन तीनों में समानता होने से दो पुनरुक्त स्थानों को कम कर दिया। जिनमें प्रकृतियों की समानता पाई जाती है ऐसे पुनरुक्त स्थानों को घटाने पर जो स्थान रहे उन सभी का जोड़ ४० है और प्रत्येक स्थान २४-२४ भंग सयुक्त है अत: ४० स्थानों को २४ भंगों से गुणा करने पर ४०×२४=९६०, इनमें दो प्रकृति रूप स्थान के पूर्वोक्त २४ भंगों में से १२ पुनरुक्त भंग कम कर देने पर शेष १२ रहे अत: उनको मिलाने से तथा एक प्रकृतिरूप स्थान के पूर्व कथित ११ भंगों में से छह पुनरुक्तभंग घटाकर शेष ५ भंग मिलाने से ९६०+१२+५=९७७ भंग होते हैं।[1]

इन ९७७ भंगों में पाई जाने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

णवसयसत्तत्तरिहिं, ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा।
इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णादव्वा ॥४८९॥

अर्थ– इस प्रकार ९७७ स्थान और उनमें पाई जाने वाली ६९४१ प्रकृतियों के भेदों में तीनों लोकों के सभी जीव मोहित हो रहे हैं।

विशेषार्थ– पूर्वोक्त गाथा में कथित ९७७ भंगों की प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं— दस प्रकृतिरूप एक स्थान की १०, नौ प्रकृतिरूप ६ स्थानों की ५४, आठ प्रकृतिरूप ११ स्थानों की ८८, सात प्रकृति रूप १० स्थानों की ७०, छह प्रकृतिरूप सात स्थानों की ४२, पाँच प्रकृतिरूप चार स्थानों की २०, चार प्रकृति रूप एक स्थान की ४ इनको जोड़ने पर २८८ प्रकृतियाँ हुईं, इनको २४ भंगों से गुणा करने पर २८८×२४=६९१२ प्रकृतियाँ, तथा दो प्रकृतिरूपस्थान के १२-१२ भंग एक-एक प्रकृति के गिने इसलिए २४ भंग तथा एक प्रकृतिरूप स्थान के पाँच भंग इस प्रकार ये २९ भेद और मिलाने पर ६९१२+२९=६९४१ भेद हुए।

आगे मोहनीय कर्म के उदयस्थान तथा उनकी प्रकृतियों को गुणस्थानों में उपयोगादि की अपेक्षा से कहते हैं—

उदयट्ठाणं पयडिं, सगसगउवजोगजोगआदीहिं।
गुणयित्ता मेलविदे, पदसंखा पयडिसंखा य ॥४९०॥

अर्थ– 'पुव्विल्लेसुविमिलिदे' इत्यादि गाथा ४७९ में कही हुई उदयस्थान की संख्या और उन स्थानों की प्रकृतियों की संख्या को अपने-अपने गुणस्थानों में संभावित ऐसे उपयोग और योग आदि

१. "एत्थ सव्व भंगसमासो एतियो होई ९७६।" जयध. पु. १० पृ. ५३।

शब्द से संयम, देशसंयम, लेश्या और सम्यक्त्व से गुणा करके सबको जोड़ने से जो प्रमाण हो उतनी ही वहाँ पर मोहनीय कर्म के उदयस्थानों की और प्रकृतियों की संख्या जाननी चाहिए।

मिच्छदुगे मिस्सतिये, पमत्तसत्ते जिणे य सिद्धे य।
पण छस्सत्त दुगं च य, उवजोगा होंति दो चेव॥४९१॥

अर्थ– मिथ्यात्व और सासादन इन दो गुणस्थानों में तीन अज्ञान और दो दर्शन ये पाँच उपयोग हैं। मिश्र, असंयत व देशसंयत इन तीन गुणस्थानों में तीन ज्ञान व तीन दर्शन इस प्रकार ६ उपयोग हैं। प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय व क्षीणकषाय इन सात गुणस्थानों में चार ज्ञान और तीन दर्शन ये सात उपयोग हैं। सयोगी व अयोगी जिन में तथा सिद्धों में केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग हैं।[1]

विशेषार्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में प्रकृति स्थान दश प्रकृतिरूप एक, नौ-नौ प्रकृतिरूप दो, आठ प्रकृतिरूप एक इस प्रकार सर्व चार स्थान हैं। इन स्थानों की प्रकृतियों का जोड़ ३६ है तथा अनन्तानुबन्धी रहित नौ प्रकृतिरूप एक, आठ-आठ प्रकृति रूप दो और सात प्रकृतिरूप एक इस प्रकार इन चार स्थानों की ३२ प्रकृतियां मिलाकर सर्व आठ स्थान और ६८ प्रकृतियाँ हुईं इनको पाँच उपयोग से गुणा करने पर ४० स्थान और ३४० प्रकृतियाँ होती है। सासादन गुणस्थान में नौ प्रकृतिरूप एक, आठ-आठ प्रकृतिरूप दो और सात प्रकृतिरूप एक इस प्रकार चार स्थान और ३२ प्रकृति को पाँच उपयोग से गुणा करने पर २० स्थान और १६० प्रकृतियाँ होती हैं। मिश्रगुणस्थान में नौ प्रकृतिरूप एक, आठ-आठ प्रकृतिरूप दो और सात प्रकृतिरूप एक इस प्रकार चार स्थान और इनकी ३२ प्रकृतियों को ६ उपयोग से गुणा करने पर २४ स्थान और १९२ प्रकृतियाँ होती हैं। असंयतगुणस्थान में वेदकसम्यक्त्वसहित पहले कूट में नौ प्रकृतिरूप एक, आठ-आठ प्रकृतिरूप दो और सात प्रकृतिरूप एक स्थान इस प्रकार ४ स्थान और ३२ प्रकृतियाँ हैं तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूट में आठ प्रकृति रूप एक, सात प्रकृतिरूप दो और छह प्रकृतिरूप एक स्थान इस प्रकार चार स्थान और उनकी २८ प्रकृतियाँ हैं उपर्युक्त चार स्थानों में ये चार स्थान मिलाने से ८ स्थान और ३२ प्रकृतियों में ये २८ प्रकृतियाँ मिलाने पर ६० प्रकृतियाँ हुईं, इनमें छह उपयोग से गुणा करने पर ४८ स्थान और ३६० प्रकृतियाँ होती हैं।

देशसंयत गुणस्थान में वेदकसम्यक्त्वसहित पहले कूट में ८ प्रकृतिरूप एक, सात प्रकृतिरूप दो और छह प्रकृतिरूप एक स्थान ऐसे चार स्थान हैं और उनकी २८ प्रकृतियाँ हैं तथा वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूट में सात प्रकृतिरूप एक, छह प्रकृतिरूप दो और पाँच प्रकृतिरूप एक स्थान ये चार स्थान

१. देखो प्रा. पं. सं. पृ. ४६५ गा. ३६१।

हैं और इनकी २४ प्रकृतियाँ हैं इस प्रकार पूर्वोक्त चार स्थान और ये चार स्थान मिलाने पर स्थान तो आठ हैं और पूर्वोक्त २८ प्रकृतियों में २४ प्रकृतियाँ मिलाने से ५२ प्रकृतियाँ हैं इनमें ६ उपयोग से गुणा करने से ४८ स्थान और ३१२ प्रकृतियाँ होती हैं। प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थान में वेदकसम्यक्त्वसहित पहले कूट में सात प्रकृतिरूप एक, छह प्रकृतिरूप दो और पाँच प्रकृतिरूप एक स्थान, इस प्रकार चार स्थान और २४ प्रकृतियों में वेदकसम्यक्त्वरहित पिछले कूट में छह प्रकृति रूप एक, पाँच प्रकृतिरूप दो और चार प्रकृतिरूप एक स्थान इस प्रकार चार स्थान और २० प्रकृतियाँ मिलाने पर ८ स्थान और ४४ प्रकृतियाँ हुईं इनमें सात उपयोग से गुणा करने पर प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान के ५६-५६ स्थान और ३०८-३०८ प्रकृतियाँ होती हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान में ६ प्रकृतिरूप एक, पाँच प्रकृतिरूप दो और चार प्रकृतिरूप एक स्थान इस प्रकार चार स्थान और उनकी २० प्रकृतियों को सात उपयोग से गुणा करने पर २८ स्थान और १४० प्रकृतियाँ होती हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान से अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त उपर्युक्त सभी स्थान व प्रकृतियों की संख्या को जोड़ देने पर (४०+२०+२४+४८+४८+५६+५६+२८=) ३२० स्थान तथा (३४०+१६०+१९२+३६०+३१२+३०८+३०८+१४०=) २१२० प्रकृतियाँ जानना। इन सभी स्थानों और प्रकृतियों में २४ भंगों से गुणा करने पर (३२०×२४=) ७६८० तो उदयस्थानों के भंग[1] एवं २१२०×२४=५०८८० प्रकृतियाँ हुईं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में २ प्रकृतिरूप एक स्थान को ७ उपयोग से गुणा करने पर ७ स्थान और प्रकृतियाँ १४ होती हैं इनको १२ भंगों से गुणा करें तो स्थानों की संख्या ८४ तथा प्रकृतियों की संख्या १६८ होती है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अवेदभाग में एक प्रकृतिरूप एक स्थान है इनको ७ उपयोग से गुणा करने पर ७ स्थान और ७ ही प्रकृतियाँ हुईं, इनमें पुनः ४ भंग से गुणा करने पर २८ स्थान और २८ ही प्रकृतियाँ होती हैं। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में एक प्रकृतिरूप एक स्थान है। यहाँ इनको ७ उपयोग से गुणा करने पर ७ स्थान और ७ ही प्रकृतियाँ हैं। यहाँ पर भंग एक ही है अतः उसका गुणा करने पर ७ स्थान व उनकी ७ प्रकृतियाँ हुईं। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण गुणस्थान और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान सम्बन्धी स्थान और प्रकृतियों की संख्या (८४+२८+७=११९ स्थान)[2] (१६८+२८+७=२०३ प्रकृतियाँ) जानना। इनको अपूर्वकरण गुणस्थान तक ऊपर जो स्थान और प्रकृतियाँ कही गई हैं उनमें मिलाना चाहिए।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ४६५-४६६ गाथा ३६२ की टीका।

२. प्रा.पं.सं.पृ. ४६६ गाथा ३६३ व टीका।

प्रकरणप्राप्त उपयोग का कथन करते हैं कि कौन-कौन से उपयोग किस-किस गुणस्थान में पाए जाते हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, कुमति, कुश्रुत और विभंग ज्ञान।

सासादन गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, कुमति, कुश्रुत और विभंग ज्ञान।

मिश्र गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और मिश्ररूप तीन ज्ञान।

असंयत गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा मति-श्रुत-अवधिज्ञान।

देशसंयत गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा मति-श्रुत-अवधिज्ञान।

प्रमत्त गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा मति-श्रुत और मनःपर्ययज्ञान।

अप्रमत्त गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

अपूर्वकरण गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

उपशान्तकषाय गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

क्षीणमोह गुणस्थान में — चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान।

सयोगकेवली गुणस्थान में — केवलदर्शन और केवलज्ञान।

अयोगकेवली गुणस्थान में — केवलदर्शन और केवलज्ञान।

गुणस्थान की अपेक्षा उपयोग, मोहनीय के उदयस्थान व प्रकृति की संख्या का परस्पर गुणा करके जो स्थान और प्रकृति संख्या होती हैं उन्हें इस संदृष्टि में दिखाते हैं—

[1]

गुणस्थान	उदय स्थान सं.	प्रकृति संख्या	उपयोग-संख्या	उदयस्थान× उपयोग	प्रकृति× उपयोग
मिथ्यात्व	८	६८=३६+३२	५	८×५=४०	६८×५=३४०
सासादन	४	३२	५	४×५=२०	३२×५=१६०
मिश्र	४	३२	६	४×६=२४	३२×६=१९२
असंयत	८	३२+२८=६०	६	८×६=४८	६०×६=३६०
देशसंयत	८	२८+२४=५२	६	८×६=४८	५२×६=३१२
प्रमत्त	८	२४+२०=४४	७	८×७=५६	४४×७=३०८
अप्रमत्त	८	२४+२०=४४	७	८×७=५६	४४×७=३०८
अपूर्वकरण	४	२०	७	४×७=२८	२०×७=१४०
जोड़	५२	३५२	४९	३२०	२१२०
अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग	१	२	७	१×७=७	२×७=१४
अनिवृत्तिकरण शेष भाग	१	१	७	१×७=७	१×७=७
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१	७	१×७=७	१×७=७

आगे मोहनीयकर्म के उदयस्थानों के भेदों की सर्वसंख्या का प्रमाण कहते हैं—

[2]णवणउदिसगसयाहिय सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु, उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९२॥

अर्थ– इस प्रकार गुणाकार करने पर उपयोग की अपेक्षा मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के सर्वभेद ७७९९ हुए, ऐसा जानना चाहिए।

अब उपयोग की अपेक्षा मोहनीयकर्म के उदयस्थानों में पाई जाने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

१. पं.सं. पृ. ४६७। २. देखो प्रा.पं.सं.पृ. ४६६ गा. ३६४।

एक्कावण्णसहस्सं, तेसीदिसमण्णियं वियाणाहि।
पयडीणं परिमाणं, उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९३॥[1]

अर्थ– उपयोग के आश्रय से मोहनीय कर्म के उदयस्थानों में एक्कावनहजार तिरियासी (५१०८३) प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

सन्दृष्टि—

[2]

गुणस्थान	उपयोगसंख्या	उदयपदसंख्या	गुणाकार	भंग
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिकरण	७	२	१२	१६८
अनिवृत्तिकरण	७	१	४	२८
सूक्ष्मसांपराय	७	१	१	७
सर्वपदवृन्द				५१०८३

आगे किस-किस गुणस्थान में कितने-कितने योग पाए जाते हैं, उनकी संख्या कहते हैं—

तिसु तेरं दस मिस्से, णव सत्तसु छट्ठयम्मि एक्कारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥४९४॥[3]

अर्थ– मिथ्यात्व, सासादन और असंयतगुणस्थान में १३-१३ योग, मिश्रगुणस्थान में १०, देशसंयत गुणस्थान में व प्रमत्तगुणस्थान बिना अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय,

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ४६९ गा. ३७१। २. प्रा.पं.सं.पृ. ४७०।
३. देखो पं. सं. पृ. ४४८ गाथा ३२८।

उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय इन सात गुणस्थानों में ९-९ योग, प्रमत्त गुणस्थान में ११, सयोग केवली के ७ योग हैं तथा अयोगकेवली के योगों का अभाव है।

विशेषार्थ— किस-किस गुणस्थान में कौन-कौन से योग होते हैं उसे निम्न सन्दृष्टि से जानना चाहिए।

गुणस्थान	योग संख्या	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	१३	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियककाययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग।
सासादन	१३	उपर्युक्त।
मिश्र	१०	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियककाययोग।
असंयत	१३	मिथ्यात्वगुणस्थानोक्त।
देशसंयत	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग और औदारिककाययोग।
प्रमत्त	११	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग।
अप्रमत्त	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
अपूर्वकरण	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
अनिवृत्तिकरण	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
सूक्ष्मसांपराय	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
उपशांतकषाय	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
क्षीणकषाय	९	४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग।
सयोगकेवली	७	सत्य-अनुभयमनोयोग, सत्य-अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग।
अयोगकेवली	०	०

अथानन्तर अपर्याप्त और पर्याप्तावस्थासम्बन्धी योगों से युक्त गुणस्थानों का कथन करते हैं—

मिच्छे सासण अयदे, पमत्तविरदे अपुण्णजोगगदं।
पुण्णगदं च य सेसे, पुण्णगदे मेलिदं होदि॥४९५॥

अर्थ– मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और प्रमत्तविरत इन चार गुणस्थानों में अपर्याप्त व पर्याप्त योग सम्बन्धी स्थान और प्रकृतियों को योगों से गुणा करने पर स्थान और प्रकृतियों का प्रमाण होता है तथा शेष गुणस्थानों में केवल पर्याप्त योग के स्थान और उनकी प्रकृतियों को पर्याप्त सम्बन्धी योग से गुणा करने पर पर्याप्त योग सम्बन्धी गुणस्थानों के स्थान और प्रकृतियों का प्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ– मिथ्यात्वगुणस्थान में चार स्थान और उनकी ३६ प्रकृतियों को १३ योगों से गुणा करने पर ५२ स्थान और ४६८ प्रकृतियां होती हैं तथा अनन्तानुबन्धी रहित मिथ्यात्वगुणस्थान अपर्याप्तावस्था में नहीं होता है अत: पिछले कूट की बत्तीस प्रकृति और ४ स्थान हैं इनको पर्याप्त सम्बन्धी १० योगों से गुणा करने पर ४० स्थान और ३२० प्रकृतियाँ होती हैं। इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में पर्याप्त-अपर्याप्तावस्था सम्बन्धी सर्वस्थान ५२+४०=९२ एवं इन स्थानों की ४६८+३२०=७८८ प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। सासादन गुणस्थान में स्थान चार और उनकी प्रकृतियाँ बत्तीस हैं। इनमें बारह योग से गुणा करने पर स्थान तो ४८ हुए तथा प्रकृतियाँ ३८४ जानना। यहाँ बारह योग से ही गुणा करने का यही कारण है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोग का कथन पृथक् करेंगे।

मिश्रगुणस्थान में चार स्थान व उनकी बत्तीस प्रकृतियाँ हैं, इनको १० योग से गुणा करने पर ४० स्थान तथा ३२० प्रकृतियाँ होती हैं। असंयतगुणस्थान में आठ स्थान व उनकी ६० प्रकृतियों को १० योगों से गुणा करने पर स्थान ८० और प्रकृतियाँ ६०० होती हैं। यहाँ १० योगों से ही गुणा करने का यह कारण है कि औदारिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोग व कार्मणकाययोग का पृथक् वर्णन करेंगे। देशसंयतगुणस्थान में स्थान ८ और उनकी प्रकृतियाँ ५२ हैं इनको ९ योगों से गुणा करने पर स्थान ७२ एवं प्रकृति ४६८ होती हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में स्थान ८ व प्रकृतियाँ ४४ हैं अत: इन स्थान व प्रकृतियों में ९ योगों से गुणा करने पर प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान के स्थान ७२-७२ तथा प्रकृतियाँ ३९६-३९६ हैं। यहाँ ९ योगों से ही गुणा करने का कारण यह है कि आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोग का वर्णन पृथक् करेंगे। अपूर्वकरण गुणस्थान में चारस्थान और उनकी २० प्रकृतियाँ हैं इनको ९ योगों से गुणा करनेपर स्थान तो ३६ और प्रकृतियाँ १८० होती हैं[1]। इसप्रकार अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत योगोंकी अपेक्षा स्थान और प्रकृतियोंको गुणा करनेसे तथा सर्वस्थान और प्रकृतियोंका कुल जोड़करके (९२+४८+४०+८०+७२+७२+७२+३६=) ५१२ स्थान एवं (७८८+३८४+३२०+६००+४६८+३९६+३९६+१८०=) ३५३२ प्रकृतियाँ हुईं। इस स्थान (५१२) और प्रकृतियों (३५३२) की २४ भंगोंसे गुणा करनेपर ५१२×२४=१२,२८८ स्थान एवं ३५३२×२४=८४,७६८ प्रकृतियाँ होती हैं।

---

१. प्रा.पं.सं. पृ. ४५६ गाथा ३४४ से पृ. ४६० गाथा ३५४ तक, किन्तु प्रमत्त गुणस्थानमें अन्तर है।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के[1] सवेदभाग में एक स्थान और दो प्रकृति हैं। इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर ९ स्थान और १८ प्रकृति होती हैं, इनको १२ भंगोंसे गुणा करने पर १०८ स्थान और २१६ प्रकृतियाँ होती हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के अवेदभाग में एकस्थान और एकप्रकृति है। इनको ९ योगोंसे गुणा करनेपर ९ स्थान और ९ प्रकृतियाँ होती हैं। पुनः इनको ४ भङ्गों से गुणा करें तो ३६ स्थान एवं ३६ ही प्रकृतियाँ होती हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एकस्थान और एकप्रकृतिको ९ योगोंसे गुणा करें तो ९ स्थान तथा ९ प्रकृतियाँ, पुनः इनको १ भङ्गसे गुणा किया तो भी ९ स्थान और ९ प्रकृतियाँ ही होती हैं।

पूर्वमें जिन योगोंके लिए यह कहा था कि इनका वर्णन पृथक् करेंगे सो अब उन्हीं योगों के विशेष कथन को बताते हैं–

सासणअयदपमत्ते, वेगुव्वियमिस्स तं च कम्मयियं।
ओरालमिस्स हारे, अडसोलडवग्ग अट्ठवीससयं॥४९६॥

अर्थ– सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें आठका वर्ग अर्थात् ६४ स्थान हैं।[2] असंयतगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें १६ का वर्ग अर्थात् २५६ स्थान हैं।[3] असंयतगुणस्थानके औदारिकमिश्रकाययोगमें आठका वर्ग अर्थात् ६४ स्थान हैं।[4] अप्रमत्तगुणस्थानके आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें १२८ स्थान हैं।

विशेषार्थ– सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें ६४ स्थानोंमें ५१२ प्रकृति हैं सो ही कहते हैं–

सासादनगुणस्थानसम्बन्धी जो चारकूट बतलाए थे उनमें तीनवेदोंमें से एकका उदय कहा था, किन्तु यहाँ नपुंसकवेदबिना शेष दो वेदोंमें से एकका उदय जानना। यहाँ ९ प्रकृतिरूप एक, ८ प्रकृतिरूप दो और ७ प्रकृतिरूप एक ऐसे चारस्थान और उनकी ३२ प्रकृतियाँ हैं। इनको चारकषाय, दोवेद, हास्य-रति तथा अरति-शोकरूप दो युगलों को परस्पर गुणा करने से बने १६ भंगोंसे गुणा करनेपर ६४ स्थान और ५१२ प्रकृतियाँ होती हैं। असंयतगुणस्थानसम्बन्धी वैक्रियकमिश्र और कार्मणकाययोगके पूर्वमें कहे गए आठ कूटोंमें स्त्रीवेदबिना दो वेदोंमें से एक वेदका उदय यहाँ है। अतः इन कूटोंमें आठस्थान और ६० प्रकृति हैं। इनको चारकषाय और स्त्रीवेदबिना दो वेद तथा हास्य-रति, अरति-शोकरूप दो युगलोंको परस्पर गुणा करनेपर जो १६ भंग बने हैं उनसे गुणा करनेसे एवं २ योगोंसे गुणा करके २५६

१. प्रा.पं.सं.पृ. ४५५ गाथा ३४२। २. प्रा.पं.सं.पृ. ४५३ गाथा ३३८।
३. प्रा.पं.सं.पृ. ४५३ गाथा ३३९। ४. प्रा.पं.सं.पृ. ४५४ गाथा ३४०।

स्थान और १९२० प्रकृतियाँ होती हैं। तथैव असंयतगुणस्थानसम्बन्धी औदारिकमिश्रकाययोगमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नहीं होनेसे पूर्वोक्त आठकूटोंमें तीन-तीन वेद लिखे थे, उनके स्थान में एक पुरुषवेद ही जानना। इसप्रकार आठकूटोंके आठस्थान और ६० प्रकृति को चारकषाय, एकवेद और पूर्वोक्त दो युगलसे गुणाकरनेपर जो आठभंग बने उनसे गुणाकर के पुनः एकयोगसे गुणा किया तो ६४ स्थान और ४८० प्रकृतियाँ हुईं। प्रमत्तसंयतगुणस्थानके आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें स्त्री-नपुंसकवेदरहित आठकूटोंके आठस्थान और ४४ प्रकृतियोंको आठभंगोंसे गुणाकरके पुनः आहारक-आहारकमिश्रकाययोगरूप दो योगोंसे गुणाकरनेपर १२८ स्थान और ७०४ प्रकृतियाँ होती हैं।

सासादन-असंयत व प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी उदयस्थान व प्रकृतियोंकी योगकी अपेक्षा संख्याको बतानेवाली संदृष्टि-

गुणस्थान	उदयस्थान	प्रकृति संख्या	योग संख्या	उदयस्थान × योग	प्रकृति × योग
सासादन	४	३२	१ वैक्रियकमिश्र	४ × १=४	३२ × १=३२
असंयत	८	६०	२ वै.मिश्र,कार्मण	८ × २=१६	६० × २=१२०
असंयत	८	६०	१ औदारिकमिश्र	८ × १=८	६० × १=६०
प्रमत्त	८	४४	२ आहारकद्विक	८ × २=१६	४४ × २=८८

सासादन असंयत व प्रमत्त इन तीनगुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी अपेक्षा भङ्गों की संदृष्टि-

सासादनगुणस्थानमें	उदयस्थान ४	प्रत्येकके भङ्ग १६ अतः	४ × १६	= ६४
असंयतगुणस्थानमें	उदयस्थान १६	प्रत्येकके भङ्ग १६ अतः	१६ × १६	= २५६
असंयतगुणस्थानमें	उदयस्थान ८	प्रत्येकके भङ्ग ८ अतः	८ × ८	= ६४
प्रमत्तगुणस्थानमें	उदयस्थान १६	प्रत्येकके भङ्ग ८ अतः	१६ × ८	= १२८
				५१२

प्रकृतियोंकी अपेक्षा उपर्युक्त तीनगुणस्थानोंमें भङ्गों की संदृष्टि–

सासादनगुणस्थानमें	प्रकृतियाँ	३२	प्रत्येकके भङ्ग १६ अत:	३२×१६ =	५१२
असंयतगुणस्थानमें	प्रकृतियाँ	१२०	प्रत्येकके भङ्ग १६ अत:	१२०×१६ =	१९२०
असंयतगुणस्थानमें	प्रकृतियाँ	६०	प्रत्येकके भङ्ग ८ अत:	६०×८ =	४८०
प्रमत्तगुणस्थानमें	प्रकृतियाँ	८८	प्रत्येकके भङ्ग ८ अत:	८८×८ =	७०४
					३६१६

आगे उक्त स्थानोंके प्रकृतिप्रमाणोंमें कम किए हुए वेदोंका ग्रन्थकर्त्ता स्वयं निषेध करते हैं–

णत्थि णउंसयवेदो, इत्थीवेदो णउंसइत्थिदुगे।
पुव्वुत्तपुण्णजोगगचदुसुट्ठाणेसु जाणेज्जो ॥४९७॥

अर्थ– पूर्वमें कहे हुए अपर्याप्तयोगको प्राप्त चारस्थानोंमें क्रमसे नपुंसक-स्त्रीवेद नहीं हैं और शेष दो स्थानोंमें भी नपुंसक-स्त्रीवेद नहीं हैं।

विशेषार्थ– सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें नपुंसकवेद नहीं है, क्योंकि सासादनगुणस्थानवाला मरणकर नरकमें नहीं जाता है। असंयतगुणस्थानके वैक्रियकमिश्र व कार्मणकाययोगमें स्त्रीवेद नहीं है, क्योंकि असंयतगुणस्थानवर्ती मरणकर स्त्रीवेदी नहीं होता है। असंयतगुणस्थानके ही औदारिकमिश्रकाययोगमें और प्रमत्तगुणस्थानके आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें स्त्री व नपुंसकवेद नहीं हैं, क्योंकि असंयतगुणस्थानवर्ती नपुंसक व स्त्रीवेदसहित तिर्यञ्च और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होता है तथा स्त्री व नपुंसकवेदवालेके आहारक-आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता है। यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त जितने स्थान हैं उन सभी को जोड़कर उनमें २४ भंगोंसे गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उसमें अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेद-अवेदभाग और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के १५३ स्थान तथा सासादन, असंयत और प्रमत्तवर्ती अपर्याप्तावस्थाके ५१२ स्थान मिलाकर सबका जोड़ करना चाहिए।

उपर्युक्त विधिसे योगोंकी अपेक्षा सर्वस्थानोंका जोड़ करनेपर जो संख्या प्राप्त हुई उसका प्रमाण कहते हैं–

तेवण्णणवसयाहियबारसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥४९८॥

अर्थ– इसप्रकार मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद योगोंकी अपेक्षा १२,९५३ जानना।

आगे प्रकृतियों के भेदों की संख्या कहते हैं–

बिदिये बिगिपणमयदे, खदुणवएक्कं खअट्ठचउरो य।
छट्ठे चउसुण्णसगं, पयडिवियप्पा अपुण्णम्हि ॥४९९॥

अर्थ– सासादनगुणस्थानके वैक्रियकमिश्रकाययोगमें २,१,५ अर्थात् 'अङ्कानां वामतो गतिः' इसके अनुसार ५१२, असंयतगुणस्थानके वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगमें ०,२,९,१ अर्थात् १९२० च शब्दसे असंयतगुणस्थानके औदारिकमिश्रकाययोगमें शून्य-आठ-चार अर्थात् ४८० तथा प्रमत्तगुणस्थानके आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें चार, शून्य, सात अर्थात् ७०४ अङ्करूप प्रकृतियोंके भेद अपर्याप्तावस्थामें होते हैं। इन भेदोंको पूर्ववर्ती भेदोंमें मिलाना चाहिए।

अब सर्वभेदोंको मिलाकर जो संख्या प्राप्त हुई उसे बताते हैं–

पणदालछस्सयाहियअट्ठासीदोसहस्समुदयस्स।
पयडीणं परिसंखा, जोगं पडि मोहणीयस्स ॥५००॥

अर्थ– इसप्रकार सर्वभेदोंको मिलानेसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंकी संख्या योगकी अपेक्षा ८८,६४५ होती है, ऐसा जानना।

अथानन्तर संयम के आश्रय से स्थानादि कहते हैं–

तेरसयाणि सत्तरिसत्तेव य मेलिदे हवंतित्ति।
ठाणवियप्पे जाणसु, संजमलंबेण मोहस्स ॥५०१॥

अर्थ– संयमकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७७ होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

विशेषार्थ– संयमके अवलम्बनकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७७ हैं। वे इसप्रकार घटित होते हैं–प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीनसंयम हैं। इनको आठ-आठस्थानसे गुणा करनेपर २४-२४ स्थान होते हैं और उन स्थानों की ४४ प्रकृतियोंको तीनसंयमसे गुणा करनेपर १३२-१३२ प्रकृतियाँ होती हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें सामायिक, छेदोपस्थापना ये दो संयम हैं। इनके ४-४ स्थान मिलकर आठस्थान हुए और २०-२० प्रकृति मिलकर ४० प्रकृतियाँ हैं। इनको तथा प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानके स्थान और प्रकृतियोंको २४ भंगोंसे गुणा करना एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें एकस्थान और २ प्रकृतिको २ संयमसे गुणा करनेपर दोस्थान और ४ प्रकृति होती हैं। इनको पुनः १२ भंगोंसे गुणा करना तथा अवेदभागमें एकस्थान एकप्रकृतिको

सर्वाधिकार : आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

२ संयमसे गुणा करनेपर दोस्थान और दोप्रकृति होती हैं, इनको चारभंगोंसे गुणा करना। सूक्ष्मसाम्परायमें एकस्थान, एकप्रकृति और एकही संयम है एवं भंग भी एकही है। यहाँ प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरण इन तीनगुणस्थानोंके ५६ स्थानोंको २४ से गुणा करनेपर १३४४ और अनिवृत्तिकरणके सवेद-अवेदभाग एवं सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान के ३३ स्थान मिलानेसे १३७७ स्थान हो जाते हैं।[१]

गुणस्थान	उदयविकल्प	संयम	गुणाकार	सर्वभंग
प्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१९२
अनिवृत्तिकरण	१	२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१	१	१
			सर्व उदयविकल्प	१३७७

आगे मोहनीयकर्मकी उदय प्रकृतियोंके भेद कहते हैं–

तेवण्णतिसदसहियं[२], सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
पयडिवियप्पे जाणसु, संजमलंबेण मोहस्स॥५०२॥

अर्थ– संयमकी अपेक्षासे मोहनीयकी उदयप्रकृतियोंके भेद ७३५३ मात्र हैं ऐसा जानना चाहिए। (इनका विशेष विवरण निम्नलिखित सन्दृष्टि के अनुसार जानना)

संयमकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थान और उनमें पाई जानेवाली प्रकृतियोंकी संदृष्टि–

गुणस्थान	उदयस्थान × संयम × भंग	प्रकृति × संयम × भंग
प्रमत्त	८×३ = २४×२४ = ५७६	४४×३ = १३२×२४=३१६८
अप्रमत्त	८×३ = २४×२४ = ५७६	४४×३ = १३२×२४=३१६८
अपूर्वकरण	४×२ = ८×२४ = १९२	२०×२ = ४०×२४ = ९६०

१. प्रा.पं.सं. पृ. ४७८। २. देखो प्रा. पं. सं. पृ. ४८० गाथा ३९०।

अनिवृत्तिकरण सवेदभाग	१×२ = २×१२	=	२४	२×२ = ४×१२	= ४८
अवेदभाग	१×२ = २×४	=	८	१×२ =२×४	= ८
सूक्ष्मसाम्पराय	१×१ = १×१	=	१	१×१ = १×१	= १
	कुलस्थान	= १३७७		कुल प्रकृतियाँ	=७३५३

अथानन्तर किस गुणस्थानमें कौनसी लेश्या होती है सो कहते हैं–

मिच्छ चउक्के छक्कं, देसतिये तिण्णि होंति सुहलेस्सा।
जोगित्ति सुक्कलेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५०३॥[1]

अर्थ– मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र और असंयतगुणस्थानमें छह लेश्या होती हैं; देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में तीन शुभलेश्या हैं तथा अपूर्वकरण से सयोगीगुणस्थानतक एक शुक्ललेश्या ही है एवं अयोगीगुणस्थानमें लेश्याका अभाव है।

उपर्युक्त गाथामें कथित लेश्याके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान और प्रकृतियोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं–

पंचसहस्सा बेसयसत्ताणउदी हवंति उदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु, लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०४॥[2]

अर्थ– लेश्याकी अपेक्षासे मोहनीयकर्मके स्थानोंके भेद ५,२९७ होते हैं ऐसा हे शिष्य! तू जान।

अट्ठतीससहस्सा, बेण्णिसया होंति सत्ततीसा य।
पयडीणं परिमाणं, लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०५॥[3]

अर्थ– लेश्याके आश्रयसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंका परिमाण ३८,२३७ होता है, ऐसा जानना चाहिए।

---

१. देखो प्रा. पं. सं. पृ. ४७०-७१ गाथा ३७२-३७३।
२. प्रा.पं.सं.पृ. ४७३ गाथा ३७९ भी देखो।
३. प्रा.पं.सं.पृ. ४७५ गा. ३८६ भी देखो।

लेश्या की अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके उदयस्थान व प्रकृतियोंकी संदृष्टि–

गुणस्थान	उदयस्थान × लेश्या × भंग	प्रकृति × लेश्या × भंग
मिथ्यात्व	८×६ = ४८×२४ = ११५२	६८×६ = ४०८×२४ = ९७९२
सासादन	४×६ = २४×२४ = ५७६	३२×६ = १९२×२४ = ४६०८
मिश्र	४×६ = २४×२४ = ५७६	३२×६ = १९२×२४ = ४६०८
असंयत	८×६ = ४८×२४ = ११५२	६०×६ = ३६०×२४ = ८६४०
देशसंयत	८×३ = २४×२४ = ५७६	५२×३ = १५६×२४ = ३७४४
प्रमत्त	८×३ = २४×२४ = ५७६	४४×३ = १३२×२४ = ३१६८
अप्रमत्त	८×३ = २४×२४ = ५७६	४४×३ = १३२×२४ = ३१६८
अपूर्वकरण	४×१ = ४×२४ = ९६	२०×१ = २०×२४ = ४८०
अनिवृत्तिकरण सवेदभाग	१×१ = १×१२ = १२	२×१ = २×१२ = २४
अवेदभाग	१×१ = १×४ = ४	१×१ = १×४ = ४
सूक्ष्मसाम्पराय	१×१ = १×१ = १	१×१ = १×१ = १
	कुलस्थान = ५,२९७	कुल प्रकृतियाँ = ३८,२३७

अब सम्यक्त्वके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान व प्रकृतियोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं–

अट्ठत्तरीहिं सहिया तेरसयसया हवंति उदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०६॥

अर्थ– सम्यक्त्वगुणसे सहित मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंके भेद १३७८ हैं, ऐसा जानो।

नोट– प्रा. पं. सं. पृ. ४८१ गा. ३९१ में २५३० भेद कहे हैं।

अट्ठेव सहस्साइं छव्वीसा तह य होंति णादव्वा।
पयडीणं परिमाणं सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०७॥

अर्थ– सम्यक्त्वगुणसे सहित मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंकी संख्या ८०२६ हैं।

नोट– प्रा.पं.सं.पृ. ४८२ गा. ३९२ में १५४१८ संख्या बतलाई है।

सम्यक्त्वके आश्रयसे मोहनीयकर्मके उदयस्थान और प्रकृतियोंकी संदृष्टि–

गुणस्थान	उदयस्थान×सम्यक्त्व×भंग	प्रकृति×सम्यक्त्व×भंग
असंयत वेदकसम्यक्त्व	४×१ = ४×२४ = ९६	३२×१ = ३२×२४ = ७६८
औपशमिक, क्षायिक	४×२ = ८×२४ = १९२	२८×२ = ५६×२४ = १३४४
देशसंयत वेदकसम्य.	४×१ = ४×२४ = ९६	२८×१ = २८×२४ = ६७२
औपशमिक, क्षायिक	४×२ = ८×२४ = १९२	२४×२ = ४८×२४ = ११५२
प्रमत्त वेदकसम्यक्त्व	४×१ = ४×२४ = ९६	२४×१ = २४×२४ = ५७६
औपशमिक, क्षायिक	४×२ = ८×२४ = १९२	२०×२ = ४०×२४ = ९६०
अप्रमत्त वेदकसम्य.	४×१ = ४×२४ = ९६	२४×१ = २४×२४ = ५७६
औपशमिक, क्षायिक	४×२ = ८×२४ = १९२	२०×२ = ४०×२४ = ९६०
अपूर्वकरण		
औपशमिक, क्षायिक	४×२ = ८×२४ = १९२	२०×२ = ४०×२४ = ९६०
अनिवृत्ति. सवेदभाग	१×२ = २×१२ = २४	२×२ = ४×१२ = ४८
अनिवृत्ति. अवेदभाग	१×२ = २×४ = ८	१×२ = २×४ = ८
सूक्ष्मसाम्पराय	१×२ = २×१ = २	१×२ = २×१ = २
	कुल स्थान =१३७८	कुल प्रकृतियाँ = ८०२६

आगे मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानका कथन ११ गाथाओंसे करते हैं–

अट्ठय सत्तय छक्क य, चदुतिदुगेगाधिमाणि वीसाणि।
तेरस बारेयारं, पणादि एगूणयं सत्तं ॥५०८॥[1]

अर्थ– मोहनीयकर्मके २८-२७-२६-२४-२३-२२-२१-१३-१२-११ और ५ प्रकृति रूप ११ तथा ५ प्रकृतिसे भी एक-एक प्रकृति कम अर्थात् ४-३-२ और १ प्रकृतिरूप ४ स्थान इस प्रकार सर्व १५ सत्त्वस्थान हैं।

विशेषार्थ– दर्शनमोहनीयकी ३ और चारित्रमोहनीयकी २५ प्रकृति इन २८ प्रकृतिका प्रथम

१. प्रा. पं. सं. पृ. ३२० गाथा ३३।

सत्त्वस्थान है। २८ प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वमोहनीयकी उद्वेलना होनेसे २७ प्रकृतिरूप सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेसे २६ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। यह सत्त्वस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिको भी होता है। २८ प्रकृतियोंमें से अनन्तानुबंधीचतुष्कका विसंयोजन होनेपर २४ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है इनमें मिथ्यात्वका क्षय होने पर २३ प्रकृतिका, सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जानेसे २२ प्रकृतिका, सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय होने पर २१ प्रकृतिका, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानरूप आठ मध्यमकषायका क्षय होनेपर १३ प्रकृतिका, स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें से एकका क्षय होनेपर १२ प्रकृतिका, स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें से अवशिष्ट एक वेदका क्षय होनेसे ११ प्रकृतिका तथा हास्यादि ६ नोकषायका क्षय होनेपर ५ प्रकृतिका, पुरुषवेदका क्षय होनेपर ४ प्रकृतिका, सञ्ज्वलनक्रोधका क्षय होनेपर ३ प्रकृतिका, सञ्ज्वलनमानका क्षय होनेपर २ प्रकृतिका, संज्वलनमायाका क्षय होनेपर बादरलोभका सत्त्व तथा बादरलोभके क्षयसे सूक्ष्मलोभका सत्त्व रहता है। बादर व सूक्ष्मलोभ एकलोभप्रकृतिके ही भेद हैं अतः इनके पृथक्-पृथक् स्थान नहीं गिने इसीकारण १५ ही सत्त्वस्थान जानना।

अथानन्तर इन १५ स्थानोंका गुणस्थानोंकी अपेक्षा ३ गाथाओंमें कथन करते हैं–

तिण्णेगे एगेगं, दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए।
तिण्णि य थूलेयारं, सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते ॥५०९॥[1]

पढमतियं च य पढमं, पढमं चउवीसयं च मिस्सम्हि।
पढमं चउवीसचऊ, अविरददेसे पमत्तिदरे ॥५१०॥

अडचउरेक्काबीसं, उवसमसेढिम्हि खवगसेढिम्हि।
एक्काबीसं सत्ता, अट्ठकसायाणियट्टित्ति ॥५११॥ कुलयं॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८-२७-२६ प्रकृतिरूप तीन, सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक एक, मिश्रगुणस्थानमें २८-२४ प्रकृतिक दो, असंयत-देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप पाँच-पाँच, अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिरूप ग्यारह, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें २८-२४-२१ व १ प्रकृतिरूप चार तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ४८२ गाथा ३८३।

गुणस्थानोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानों की संदृष्टि[1]–

गुणस्थान	सत्त्वस्थान	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	३	२८-२७ व २६ प्रकृतिरूप। २६ प्रकृतिकस्थान सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेसे बनता है और इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना चारों ही गतिके मिथ्यादृष्टिजीव करते हैं। यह २६ प्रकृतिरूपस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिजीवके भी होता है।
सासादन	१	२८ प्रकृति रूप।
मिश्र	२	२८-२४ प्रकृतिरूप।
असंयत	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप।
देशसंयत	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप।
प्रमत्त	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप।
अप्रमत्त	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप।
अपूर्वकरण उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
अपूर्व.क्षपकश्रेणी	१	२१ प्रकृतिरूप।
अनिवृत्तिकरण उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
अनि.क्षपकश्रेणी	९	२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृति रूप।
सूक्ष्मसांपराय उपशमश्रेणी	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।
सूक्ष्म.क्षपकश्रेणी	१	१ सूक्ष्मलोभरूप।
उपशांतकषाय	३	२८-२४-२१ प्रकृतिरूप।

१. प्रा.प.सं.पृ. ४८३।

तेरस बारेयारं, तेरस बारं च तेरसं कमसो।
पुरिसित्थिसंढवेदोदयेण गदपणगबंधम्हि ॥५१२॥

अर्थ– अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस भागमें पुरुषवेद और चार सञ्ज्वलनकषाय इन ५ प्रकृतियों का बन्ध होता है उस भाग में पुरुषवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके १३-१२ और ११ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान होते हैं। स्त्रीवेदके उदयसहित श्रेणीपर आरोहण करनेवालेके १३ व १२ प्रकृतिरूप दोस्थान तथा नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके १३ प्रकृतिरूप स्थान है।

विशेषार्थ– अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमसमयसे पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होने तक चार संज्वलनकषाय और पुरुषवेदरूप पाँचप्रकृतिक बन्धस्थान मोहनीय कर्मका होता है। जो पुरुषवेदकेसाथ क्षपकश्रेणी चढ़ा है उसके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रारम्भमें मोहनीयकर्मका १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, नपुंसकवेदका क्षय कर देनेपर मोहनीयकर्मका १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है तथा स्त्रीवेद क्षय कर देनेपर मोहनीय कर्मका ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सवेदभाग के द्विचरमसमयमें छह नोकषायोंके साथ पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुराने कर्मोंका नाश कर दिया है उसके यद्यपि सवेदभागके चरमसमयमें पाँचप्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है,[1] किन्तु उसके उस पुरुषवेदका बन्ध नहीं होनेसे चारप्रकृतिक बन्धस्थान पाया जाता है, क्योंकि मोहनीयकर्मकी दो प्रकृति रूप (पुरुषवेद-एक संज्वलनकषाय) उदयस्थानमें पाँचप्रकृतिक (पुरुषवेद और चार सञ्ज्वलनकषाय) तथा चार प्रकृतिरूप (चार सञ्ज्वलनकषाय) दो बन्धस्थान एवं १३-१२ व ११ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान बतलाए गए हैं।[2] अतः मोहनीयकर्मके पाँचप्रकृतिक बन्धस्थान में पांचप्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं हैं।

जो स्त्रीवेदके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ा है उसके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रारंभमें मोहनीयकर्मका १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान एवं नपुंसकवेदका क्षय हो जानेपर १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।[3] जो नपुंसकवेदके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ा है उसके सवेदभागके द्विचरमसमयमें स्त्रीवेदका क्षय होकर चरमसमयमें १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है किन्तु उस समय पुरुषवेदका बन्ध नहीं होने से पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं पाया जाता।[4] अतः नपुंसकवेदवालेके १३ प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है।

पुरिसोदयेण चडिदे, अंतिमखंडंतिमोत्ति पुरिसुदओ।
तप्पणिधिम्मिदराणं, अवगदवेदोदयं होदि ॥५१३॥

अर्थ– पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके अन्तिमखण्डके चरमसमयपर्यन्त पुरुषवेदके

१. जयधवल पु. २ पृ. २४३। २. गो.क. गाथा ६६७। ३. जयधवल पु. २ पृ. २४६।
४. गो.क. गाथा ४८४ का उत्तरार्ध।

उदयकी प्रथमस्थितिके कालमें नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद के क्षपणाखण्ड होते हैं। पुरुषवेद की क्षपणा के अन्तिमखण्डके चरमसमयपर्यन्त पुरुषवेदका उदय और बन्ध निरन्तर पाया जाता है, किन्तु उस समय नपुंसक या स्त्रीवेदके उदयका अभाव होता है।

तट्ठाणे एक्कारस, सत्ता तिण्होदयेण चडिदाणं।
सत्तण्हं समग छिदी, पुरिसे छण्हं च णवगमत्थित्ति ॥५१४॥

अर्थ– स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके क्षयके स्थानोंमें पुरुषवेद, ६ नोकषाय और चार सञ्ज्वलनकषाय इन ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। तीनों वेदोंमें से किसी भी वेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके ६ नोकषाय और पुरुषवेदके पुरातनद्रव्यकी व्युच्छित्ति एक ही कालमें होती है, किन्तु विशेष यह है कि पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके पुरुषवेदके नूतन समयप्रबद्ध पाए जाते हैं इसलिये उसके ६ नोकषायकी ही सत्त्वव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ– पुरुषवेद के उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागके अन्तिमखण्डसे पूर्ववर्तीखण्डमें तथा स्त्रीवेद या नपुंसकवेदसे श्रेणीपर आरोहण करनेवाले जीवके अवेदभागमें स्त्री-नपुंसकवेदकी सत्ताका अभाव है अतः इन स्थानोंमें पुरुषवेद, ६ नोकषाय, संज्वलनकी चारकषाय इन ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है तथा तीनों वेदोंमें से किसी एक वेदके उदयसे श्रेणी चढ़नेवालेके ६ नोकषाय और पुरुषवेदके पुरातन द्रव्यका इसप्रकार इन ७ प्रकृतिका युगपत् क्षय होता है, किन्तु पुरुषवेदसे श्रेणी चढ़नेवाले जीवके एकसमय कम दोआवलीप्रमाण नवकसमयप्रबद्ध और सञ्ज्वलनकी चारकषायसहित ५ प्रकृतिका सत्त्वस्थान है। अचलावली के बीतने पर वे नवक समयप्रबद्ध प्रतिसमय एक-एक फालि परमुख रूप से उदय होकर आवली काल में क्षय होते हुए एक समय कम दो आवली काल में सब उच्छिष्टावली मात्र निषेकों के साथ क्षय को प्राप्त होते हैं। **उच्छिष्टावली**–जो कर्म उदय को प्राप्त हैं उनके आवली मात्र निषेक, शेष रहे निषेक और जो कर्म उदय को प्राप्त नहीं हुए उनके आवली मात्र निषेकों को लांघकर स्थिति के अन्तिम काण्डक की अन्तिम फालि के पतन में आवली काल मात्र शेष रहे निषेक, वे क्षपणा बिना संक्रम विधान के द्वारा अन्य प्रकृतिरूप हो परमुख उदय द्वारा प्रतिसमय एक-एक निषेक क्रम से गल कर नष्ट होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वेद के क्षपणाकाल में जो पुरुषवेद के नवक समयप्रबद्ध का सत्त्व शेष रहता है वह क्रोध क्षपणाकाल में क्रोध रूप परिणमन करके नष्ट होता है। इससे वहाँ पाँच का भी सत्त्व जानना।

आगे क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थान में सत्त्वस्थानकी विशेषता दिखाते हैं–

इदि चदुबंधक्खवगे, तेरस बारस एगार चउसत्ता।
तिदुइगिबंधे तिदुइगि, णवगुच्छिट्ठाणमविवक्खा ॥५१५॥

अर्थ– पूर्वोक्तप्रकारसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस भागमें चारप्रकृतियोंका बन्ध होता है उसमें १३-१२ और ११ एवं चारप्रकृतिरूप सत्त्वस्थान हैं। ३ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको ३ प्रकृतिका, २ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको २ प्रकृतिका एवं १ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेको १ प्रकृतिका सत्त्वस्थान पाया जाता है, किन्तु अन्तिम तीनबन्धस्थानोंमें नवकसमयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलीकी विवक्षा नहीं है।

विशेषार्थ– नपुंसकवेदसहित श्रेणी चढ़नेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें जहाँ पुरुषवेदका बन्ध रुक गया है वहाँ मोहनीयकर्मकी चारप्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है और १३ प्रकृतियोंका सत्त्व भी है। स्त्रीवेदके उदयसे जो श्रेणी चढ़ता है उसके चारप्रकृतियोंके बन्धमें बारहप्रकृतियोंका सत्त्व भी है, किन्तु १३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है तथा जो नपुंसक व स्त्रीवेदके उदय से श्रेणीपर आरोहण करता है उसके अवेदभागमें चारप्रकृतिका बन्ध होते हुए ११ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है एवं ६ नोकषाय और पुरुषवेद का युगपत् क्षय होनेपर चारप्रकृतिरूप सत्त्वस्थान भी है। पुरुषवेदसहित श्रेणी चढ़नेवालेको चारप्रकृतिके बन्धमें ५ व ४ प्रकृतिका सत्त्वस्थान है तथा पुरुषवेदकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेपर ४ प्रकृतिका सत्त्व है। तीनों वेदसहित श्रेणीपर आरोहण करनेवालेको सञ्ज्वलनक्रोधकी उदय-बन्ध और सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेपर ३ प्रकृतिका बन्ध एवं इन्हीं तीनका सत्त्व है। सञ्ज्वलनमानकी बन्ध-उदय-सत्त्वव्युच्छित्ति होनेसे २ प्रकृतिका बन्ध और सत्त्व भी २ प्रकृतिका रहता है। सञ्ज्वलनमायाकी बन्ध-उदयसत्त्व व्युच्छित्ति हो जानेपर एकप्रकृतिका बन्ध एवं एकप्रकृतिका ही सत्त्व पाया जाता है, किन्तु विशेषता यह है कि ३-२ और १ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंमें क्रोध-मान-मायाके नवकसमयप्रबद्ध व उच्छिष्टावलीकी विवक्षा नहीं है। इसी कारण पाँच प्रकृति रूप सत्त्वस्थान नहीं कहा गया है।

मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थान किसप्रकार पाए जाते हैं उसे आगे दो गाथाओंमें कहते हैं–

[1]तिण्णेव दु बावीसे, इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा।
सत्तरतेरेणवबन्धगेसु पंचेव ठाणाणि ॥५१६॥

पंचविधचदुविधेसु य, छ सत्त सेसेसु जाण चत्तारि।
उच्छिट्ठावलिणवक, अविवेक्खिय सत्तठाणाणि ॥५१७॥ जुम्मं॥

अर्थ– मोहनीयकर्मके २२ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें कर्मांश अर्थात् २८, २७ और २६ प्रकृतिके तीन सत्त्वस्थान, २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें २८ प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान, १७-१३ व ९ प्रकृतिके

१. देखो प्रा.पं.सं. पृ. ३३०-३३२ गा. ४७-५०।

बन्धस्थानमें २८-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान, ५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२ और ११ प्रकृतिके छह सत्त्वस्थान, ४ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१-१३-१२-११ और ४ प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान हैं। शेष ३-२ और एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८-२४-२१ तथा क्रमशः ३-२-१ प्रकृतिरूप एक-एक इसप्रकार चार-चार सत्त्वस्थान हैं। इन सत्त्वस्थानोंमें उच्छिष्टावली और नवकसमयप्रबद्धकी विवक्षा नहीं है, किन्तु गाथा ४८४ के अनुसार जिनके मतमें सवेद भाग के द्विचरमसमय में पुरुषवेद की बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है उनके मतमें ४ प्रकृतिक बन्धमें पाँच प्रकृतिक सत्त्व भी है।

विशेषार्थ– ये गाथाएँ देशामर्षक हैं। यद्यपि इन गाथाओंसे मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानोंका कथन किया गया है तथापि इस कथनसे बन्धस्थानोंमें उदयस्थानोंकी भी सूचना मिलती है। मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंमें उदय स्थान इस प्रकार हैं–

बावीसादिसु पंचसु दसादि-उदया हवंति पंचेव।
सेसे दु दोण्णि एगं एगेगमदो परं णेयं ॥३७॥ प्रा.पं.सं.पृ. ३२२॥

अर्थ– मोहनीयकर्मके २२ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। २१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ९-८ व ७ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इसीप्रकार १७ प्रकृतिक बन्धस्थान में ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान, १३ प्रकृतिक बन्धस्थान में ८-७-६ व ५ प्रकृतिक चार उदयस्थान, ९ प्रकृतिक बंधस्थान में ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। पांचप्रकृतिक बन्धस्थानमें पांच व चार प्रकृतिक दो उदयस्थान, चारप्रकृतिक बन्धस्थानमें भी ५ व ४ प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। ३-२ व १ प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें क्रमशः ३-२ व १ प्रकृतिक एक-एक उदयस्थान होता है।

बन्धस्थानोंमें उदय व सत्त्वस्थान सम्बन्धी सन्दृष्टि इसप्रकार है–

गुणस्थान	बन्धस्थान		उदयस्थान		सत्त्वस्थान		
मिथ्यात्व	२२ प्रकृतिक	१	१०-९-८ व ७ प्रकृति.	४	२८-२७ व २७ प्रकृतिक		३
सासादन	२१ प्रकृतिक	१	९-८ व ७ प्रकृतिक	३	२८ प्रकृतिक		१
मिश्र	१७ प्रकृतिक	१	९-८ व ७ प्रकृतिक	३	२८ व २४ प्रकृतिक		२
असंयत	१७ प्रकृतिक	१	९-८-७ व ६ प्रकृतिक	४	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक		५
देशसंयत	१३ प्रकृतिक	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible] व २१ प्रकृतिक		५
प्रमत्त	९ प्रकृतिक	१	७-६-५ व ४ प्रकृतिक	४	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक		५
अप्रमत्त	९ प्रकृतिक	१	७-६-५ व ४ प्रकृतिक	४	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक		५
					उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी	
अपूर्वकरण	९ प्रकृतिक	१	६-५ व ४ प्रकृतिक	३	२८-२४ व २१ उपशमश्रेणी	२१ प्रकृतिक क्षपकश्रेणी	३व१
अनिवृत्तिकरण	५ प्रकृतिक	१	५ व ४ प्रकृतिक	२	२८-२४ व २१	२१ १३ १२ ११व५	३व५
अनिवृत्तिकरण	४ प्रकृतिक	१	५ व ४ प्रकृतिक	२	२८-२४ व २१	१३ १२ ११ ५व४	३व१
अनिवृत्तिकरण	३ प्रकृतिक	१	३ प्रकृतिक	१	२८-२४ व २१	३ प्रकृतिक	३ व १
अनिवृत्तिकरण	२ प्रकृतिक	१	२ प्रकृतिक	१	२८-२४ व २१	२ प्रकृतिक	३ व १
अनिवृत्तिकरण	१ प्रकृतिक	१	१ प्रकृतिक	१	२८-२४ व २१	१ प्रकृतिक	३ व १
सूक्ष्मसाम्पराय	०	०	१ प्रकृतिक	१	२८-२४ व २१	१ प्रकृतिक	३ व १
उपशान्तकषाय	०	०	० प्रकृतिक	०	२८-२४ व २१	० प्रकृतिक	३
क्षीणकषाय	०	०	० प्रकृतिक	०	०	० प्रकृतिक	०

दसणवपण्णरसाइं बंधोदयसत्तपयडिठाणाणि।[1]
भणिदाणि मोहणिज्जे, एत्तो णामं परं वोच्छं॥५१८॥

अर्थ– इसप्रकार मोहनीयकर्मके १० बन्धस्थान, ९ उदयस्थान और १५ सत्त्वस्थानोंका कथन किया। आगे नामकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान कहेंगे।

१. प्रा.पं.सं. पृ. ३३५ गा. ५१।

अब नामकर्मके स्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदोंका दो गाथाओंमें कथन करते हैं–

णिरया पुण्णा पण्हं, बादरसुहुमा तहेव पत्तेया।
वियलाऽसण्णी सण्णी, मणुवा पुण्णा अपुण्णा य ॥५१९॥

सामण्णतित्थकेवलि, उहयसमुग्घादगा य आहारा।
देवावि य पज्जत्ता, इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥ जुम्मं॥

अर्थ– सर्व नारकी जीव पर्याप्त ही हैं। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और साधारणवनस्पतिकाय ये पाँचों ही बादर और सूक्ष्म भी हैं अतः ये १०, प्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य ये १७ पर्याप्त और अपर्याप्त भी होते हैं अतः इनके ३४ भेद तथा सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली एवं समुद्घात करनेवाले सामान्य और तीर्थङ्करकेवली, आहारकशरीरी, देव ये ६ पर्याप्त ही होते हैं। इसप्रकार १+३४+६=४१ भेद जीवोंके हैं। इसीकारण इनको 'जीवपद' कहते हैं। ये नामकर्मके बन्धस्थानोंकी विवक्षासे होते हैं अतः इन्हें कर्मपद भी कहते हैं।

अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंका गुणस्थानोंमें कथन करते हैं–

तेवीसं पणवीसं, छव्वीसं अट्ठवीसमुगतीसं।
तीसेक्कतीसमेवं, एक्को बंधो दुसेढिम्हि ॥५२१॥

अर्थ– नामकर्मके २३-२५-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप सात बन्धस्थान अपूर्वकरणके छठेभाग पर्यन्त यथासम्भव पाए जाते हैं और १ प्रकृतिक अष्टम बन्धस्थान उपशम-क्षपकश्रेणियों में अपूर्वकरणगुणस्थानके ही सप्तमभागके प्रथमसमयसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके चरमसमय पर्यन्त बँधता है।

नामकर्मसम्बन्धी बन्धस्थानोंकी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	नामकर्मकी बन्धस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतियोंकी संख्या
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
सासादन	३	२८-२९-३० प्रकृतिक
मिश्र	२	२८ व २९ प्रकृतिक
असंयत	३	२८-२९ व ३० प्रकृतिक

देशसंयत	२	२८ व २९ प्रकृतिक
प्रमत्त	२	२८ व २९ प्रकृतिक
अप्रमत्त	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
अपूर्वकरण	५	२८-२९-३० व ३१ छठेभागतक, ७वें भागमें १ प्र.
अनिवृत्तिकरण	१	१
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१

अब नामकर्मके पूर्वोक्त बन्धस्थान किस-किस कर्मपदसहित बँधते हैं, यह बात दोगाथाओं में कहते हैं–

ठाणमपुण्णेण जुदं, पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव।
तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं ॥५२२॥

णिरयेण विणा तिण्हं, एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा।
बंधंति विणा गइणा, जीवा तज्जोगपरिणामा ॥५२३॥ जुम्मं॥

अर्थ– पूर्वगाथामें कहे हुए नामकर्मके आठ बन्धस्थानोंमें क्रमसे २३ प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्तसहित, २५ प्रकृतिकस्थान पर्याप्त और 'च' शब्दसे अपर्याप्तसहित भी बँधता है। २६ प्रकृतिका स्थान पर्याप्त तथा आतप-उद्योतमें से किसी एक प्रकृतिसहित, २८ प्रकृतिरूप स्थान देव अथवा नरकगतिसहित, २९ और ३० प्रकृतिकस्थान तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देवगतिसहित, ३१ प्रकृतिका स्थान देवगतिसहित और एक प्रकृतिरूप स्थान किसी भी गतिके साथ नहीं बँधता अर्थात् इस स्थानके साथ कोई भी गति नहीं बँधती है। इसप्रकार इन स्थानोंके योग्य परिणामवाले जीव इन स्थानोंको बाँधते हैं।

आतप और उद्योत ये दो प्रशस्तप्रकृतियाँ पूर्वोक्त ४१ जीवपदोंमें किस जीवपदके साथ बन्धको प्राप्त होती हैं, यह कहते हैं–

भूवादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं।
तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाणं एयदरगेण ॥५२४॥

अर्थ– आतपप्रकृति बादरपर्याप्तपृथ्वीकायसहित ही बन्ध योग्य है और उद्योतप्रकृति तेज-वायु और साधारणवनस्पति तथा अन्य सभी सूक्ष्मजीवोंके बिना बादरपर्याप्ततिर्यञ्चसम्बन्धी पुण्यप्रकृतियोंमें से किसी एक प्रकृतिके साथ बन्धयोग्य कही है।

तीर्थङ्कर और आहारकद्विकसम्बन्धी कथन करते हैं—

णरगइणामरगइणा, तित्थं देवेण हारमुभयं च।
संजदबंधट्ठाणं, इदरहि गईहि णत्थित्ति ॥५२५॥

अर्थ– तीर्थङ्करप्रकृतिको असंयतदेव या नारकी मनुष्यगतिसहित ही बाँधते हैं और असंयतादि पाँचगुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगतिसहित ही बाँधते हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरणके छठेभागपर्यन्त आहारकद्विक अथवा तीर्थङ्करसहित आहारकद्विकका बन्ध संयतमनुष्य ही करते हैं, अन्यगतिसहित नहीं बाँधते हैं।

अब नामकर्मकी ध्रुवप्रकृतियोंको कहते हैं–

णामस्स णवधुवाणि य, सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं।
गदिजादिदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ॥५२६॥

तसबंधेण हि संहदिअंगोवंगाणमेक्कदरगं तु।
तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ॥५२७॥

पुण्णेण समं सव्वेणुस्साओ णियमदो दु परघादो।
जोगट्ठाणे तावं, उज्जोवं तित्थमाहारं ॥५२८॥ विसेसयं॥

अर्थ– तैजस-कार्मण-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण ये नामकर्म की ९ ध्रुवप्रकृतियाँ, स्वरबिना त्रसादि ९ युगलों (त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति) में से एक-एकप्रकृति अतः ये ९ प्रकृतियाँ तथा चारगति, ५ जाति, तैजस-कार्मणबिना ३ शरीर, ६ संस्थान और चारआनुपूर्वीमें से एक-एक प्रकृतिका बन्ध होनेसे ५ प्रकृति ये इसप्रकार सर्व मिलकर (९+९+५=) २३ प्रकृतियाँ सामान्यसे सभी जीवोंके बँधती हैं॥५२६॥

मनुष्य या तिर्यञ्चसहित त्रसप्रकृतिका बन्ध होनेपर ६ संहनन और अङ्गोपाङ्गमें से एक-एकप्रकृतिका बन्ध होता है। त्रस-पर्याप्तसहित बंधकके सुस्वर-दुःस्वर तथा प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगतिमें से एक-एक प्रकृतिका बन्ध होता है॥५२७॥

पर्याप्तसहित सभी बन्धकोंके उच्छ्वास और परघात बन्धयोग्य हैं एवं आतपउद्योत, तीर्थंकर और आहारकद्विक ये भी प्रकृतियाँ बन्धयोग्य हैं जिसका कथन गाथा ५२५ में कर दिया गया है॥५२८॥

तित्थेणाहारदुगं, एक्कसराहेण बंधमेदीदि।
पक्खित्ते ठाणाणं, पयडीण होदि परिसंखा ॥५२९॥

अर्थ– तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका युगपत् भी बन्ध होता है। अतः पूर्वोक्त २३ प्रकृतियोंमें यथासम्भव प्रकृतियोंके मिलानेसे स्थान और प्रकृतियोंकी संख्या हो जाती है।

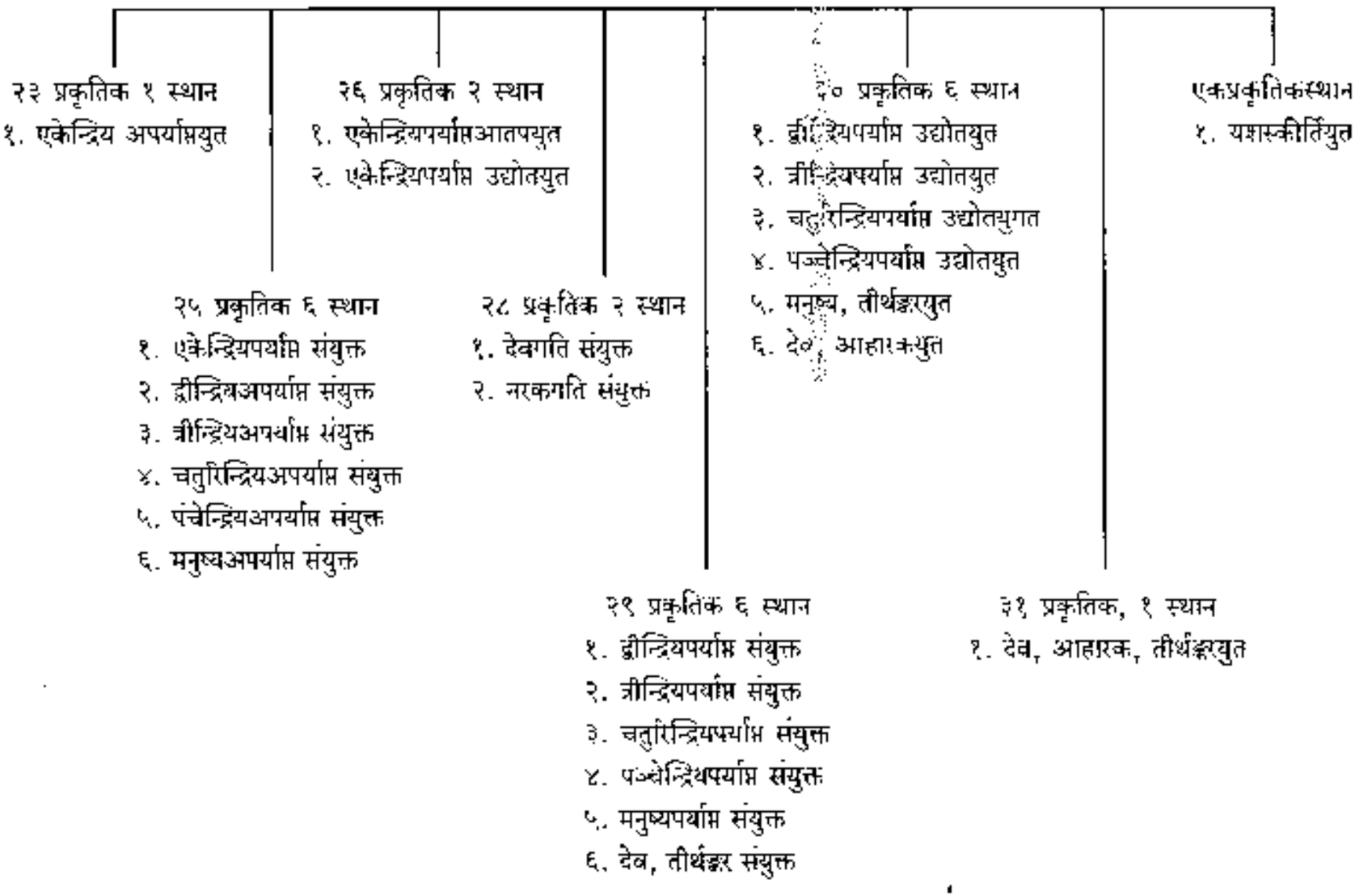
इसी बात को दो गाथाओं द्वारा स्पष्ट करते हैं–

एयक्खअपज्जत्तं, इगिपज्जत्तबितिचपणरापज्जत्तं।
एइंदियपज्जत्तं, सुरणिरयगईहिं संजुत्तं ॥५३०॥

पज्जत्तगबितिचपमणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो।
सुरगदिजुद मगदिजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥ जुम्मं॥

अर्थ– एकेन्द्रियअपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका एक बन्धस्थान है, एकेन्द्रिय पर्याप्त-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तथा मनुष्यअपर्याप्तसहित २५ प्रकृतिके ६ स्थान हैं, एकेन्द्रियपर्याप्त आतप अथवा उद्योतसहित २६ प्रकृतिक २ स्थान, देव या नरकगतिसहित २८ प्रकृतिरूप २ स्थान, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च और मनुष्यपर्याप्तसहित २९ प्रकृतिका बन्ध होता है तथा तीर्थङ्कर सहित देवगतिसंयुक्त भी २९ प्रकृतिक स्थान है, इसप्रकार ये ६ स्थान २९ प्रकृतिसम्बन्धी होते हैं। उद्योतसहित द्वि-त्री-चतु-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चसंयुक्त ४ स्थान और तीर्थङ्करसहित मनुष्यगतिसंयुक्त एवं आहारकद्विकसहित देवगतिसंयुक्त ये २ स्थान मिलकर ६ स्थान ३० प्रकृतिसम्बन्धी हैं, आहारकद्विक-तीर्थङ्करसहित देवगतिसंयुक्त ३१ प्रकृतिका एक ही स्थान है और अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त यशस्कीर्तिसहित १ प्रकृतिक एक ही स्थान है।

नामकर्म के बन्धस्थानों की सन्दृष्टि—



अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंके भङ्ग कहते हैं—

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे।
अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु॥५३२॥

अर्थ– ६ संस्थान और ६ संहनन में से तथा प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगतियुगल, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिके ६ युगल इन सभीमेंसे एक-एक प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है अतः इन सभीका (६×६×२×२×२×२×२×२×२) परस्परमें गुणा करनेसे ४६०८ भङ्ग होते हैं।

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु।
एक्कदराभावादो, तत्थेक्को चेव भंगो दु॥५३३॥

अर्थ– बन्धरूप उन प्रशस्त और अप्रशस्तप्रकृतियोंमें नरकगतिसहित हुण्डकसंस्थान, अप्रशस्तविहायोगतिआदि एक-एक अप्रशस्तप्रकृति का बन्ध है तथा त्रस-स्थावर लब्ध्यपर्याप्तकोंके अपर्याप्तसहित दुर्भग, अनादेयआदि अप्रशस्तप्रकृतियोंका बन्ध है, क्योंकि इनमें बन्धयोग्य प्रकृतिकी प्रतिपक्षीप्रकृतिका बन्ध नहीं है। अतः जो ४१ पद कहे थे उनमें नरकगतिसहित २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें एवं एकेन्द्रियके लब्ध्यपर्याप्तसम्बन्धी ११ पदोंके २३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें और त्रस लब्ध्यपर्याप्तकोंमें ६ पदोंके २५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक-एक ही भङ्ग है।

तत्थासत्थ एदि हु, साहारणथूलसव्वसुहुमाणं।
पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदरं तु चदुभंगा॥५३४॥

अर्थ– एकेन्द्रियके ११ भेदोंमें बादरपर्याप्तसाधारणवनस्पति और सभी पर्याप्तसूक्ष्मोंमें पर्याप्तसहित २५ प्रकृतिक स्थानोंमें एक-एक अप्रशस्तप्रकृतिका ही बन्ध होता है। विशेष इतना है कि स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ इन दोनों युगलोंमें से किसी एक प्रशस्त अथवा अप्रशस्तप्रकृतिका बन्ध होता है अतः यहाँ चार भङ्ग हैं।

पुढवीआऊतेऊवाऊपत्तेयवियलसण्णीणं।
सत्थेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभंगा हु॥५३५॥

अर्थ– बादरपर्याप्तपृथ्वी-अप्-तेज-वायु-प्रत्येकवनस्पतिके २५-२६ प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें तथा पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिंद्रिय-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके २९-३० प्रकृतिरूप बन्धस्थानोंमें दुर्भग-अनादेय का ही बन्ध है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीनयुगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रशस्त अथवा अप्रशस्तप्रकृतिका बन्ध होनेके कारण आठ-आठ भङ्ग होते हैं।

अब सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च और पर्याप्तमनुष्यमें २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें गुणस्थानोंकी विवक्षा से भङ्गोंका कथन करते हैं–

सण्णिस्स मणुस्सस्स य, ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु।
छादालसयं अट्ठ य, बिदिये बत्तीससयभंगा ॥५३६॥[1]

अर्थ– सञ्ज्ञीपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चसहित २९ प्रकृतिक बन्धस्थान और उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें तथा पर्याप्तमनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बन्धस्थानमें छहसंस्थान, छहसंहनन एवं विहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर, आदेय-यशस्कीर्तियुगलमें से किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध सम्भव है अतएव (६×६×२×२×२×२×२×२×२) इनको परस्परमें गुणा करनेसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४६०८ भङ्ग होते हैं। इन्हीं बन्धस्थानोंके सासादनगुणस्थानमें हुण्डकसंस्थान और सृपाटिकासंहननका बन्ध न होनेसे ५ संस्थान, ५ संहननमें से एक-एक का ही बन्ध सम्भव है इसलिए (५×५×२×२×२×२×२×२×२) इनका परस्पर गुणाकरनेसे सासादनगुणस्थानमें ३२०० भङ्ग होते हैं।

सन्दृष्टि इसप्रकार है–

मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चमें २९ प्रकृतिरूप स्थानके भङ्ग	४६०८
मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चमें ३० प्रकृतिरूप स्थानके भङ्ग	४६०८
मिथ्यादृष्टिमनुष्यमें २९ प्रकृतिरूप स्थानके भङ्ग	४६०८
सासादनवर्ती तिर्यञ्चमें २९ प्रकृतिरूप स्थानके भङ्ग	३२००
सासादनवर्ती तिर्यञ्चमें ३० प्रकृतिरूप स्थान के भङ्ग	३२००
सासादनवर्ती मनुष्यमें २९ प्रकृतिरूप स्थान के भङ्ग	३२००

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाणे।
सत्थं तु पमत्तंते, थिरसुहजसजुम्मगट्ठभंगा हु॥५३७॥

अर्थ– मिश्र तथा असंयतगुणस्थानवर्ती देव-नारकीके पर्याप्तमनुष्यगति सहित २९ प्रकृतिके स्थानमें तथा असंयतदेव-नारकीके मनुष्यगतिपर्याप्त व तीर्थङ्कर सहित ३० प्रकृतिक स्थानमें स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीन युगलों में से किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध होनेसे ८-८ भङ्ग होते हैं।

---

१. प्रा.पं.सं. पृ. ३३८ गा. ६२।

विशेषार्थ– (अप्रशस्तसंस्थान और संहनन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय व अप्रशस्तविहायोगतिकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें हो जानेसे मात्र प्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है अतएव संस्थान, संहनन आदिकी अपेक्षासे भङ्ग नहीं होते हैं।)

मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें देवगतिसंयुक्त बन्धस्थानोंमें प्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, किन्तु अस्थिर-अशुभ और अयशस्कीर्तिका बन्ध प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होनेसे इन तीन युगलोंकी अपेक्षा (२×२×२=) ८ भङ्ग सम्भव हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानमें देवगतिसहित २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होने से एक-एक ही भङ्ग है।

जीवोंकी गति-आगतिका कथन ६ गाथाओंमें करते हैं–

णेरयियाणं गमणं, सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे।
चरमचऊ तित्थूणे, तेरिच्छे चेव सत्तमिया॥५३८॥

अर्थ– घर्मादि तीनपृथ्वीवाले नारकी मरणकरके गर्भजपर्याप्तसैनीपञ्चेन्द्रियकर्मभूमिजतिर्यञ्च और मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न होते हैं, अन्तिमचार नरकोंवाले जीव तीर्थङ्करत्वादिके बिना पूर्वोक्त मनुष्य अथवा तिर्यञ्चपर्यायमें उत्पन्न होते हैं, किन्तु विशेषता यह है कि सप्तमनरकवाले जीव पूर्वोक्त तिर्यञ्चपर्यायमें ही उत्पन्न होते हैं।

विशेषार्थ– नरकसे निकले हुए जीव चक्री, नारायण-प्रतिनारायण और बलभद्र नहीं होते हैं। नरकसे निकले जीव ढाईद्वीपवर्ती मनुष्य व तिर्यञ्च तथा अन्तिम स्वयंभूरमणद्वीपके अर्धभाग एवं स्वयंभूरमणसमुद्रवर्ती तिर्यञ्चों में और उसके बाहर के चारों कोनों में जलचर-थलचर-नभचरों में उत्पन्न होते हैं। तीस भोगभूमियों और ९६ कुभोगभूमियों के तिर्यंच-मनुष्यों में, मानुषोत्तर और स्वयंप्रभाचल के मध्य में असंख्यात द्वीप और समुद्रों में जघन्य भोगभूमि है, वहाँ के तिर्यंचों में वे नारकी मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं। प्रथम-द्वितीय-तृतीय नरकसे निकले हुए जीव तीर्थङ्कर हो सकते हैं। चतुर्थ नरकसे निकला जीव मोक्ष जा सकता है। पञ्चमनरकसे निकला हुआ सकलसंयम और छठे नरकसे निकला देशसंयम धारण कर सकता है। सप्तमनरकसे निकला हुआ जीव सम्यक्त्व धारण नहीं कर सकता। यहाँपर जो यह कहा गया है कि सप्तमनरकसे निकला जीव सम्यक्त्व धारण नहीं कर सकता है सो इसी कथनकी पुष्टि षट्खण्डागमसूत्र एवं तत्त्वार्थ-राजवार्तिकमें भी की गई है[1], किन्तु यतिवृषभाचार्यका मत है कि सप्तमपृथ्वीसे निकले हुए किन्हीं बिरले जीवोंको सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है।[2]

---

१. षट्खण्डागम पु. ६ पृ. ४८४ सूत्र २०५, राज वा.अ. ३ सूत्र ६।

२. तिलोयपण्णत्ति भाग १ अ. २ श्लोक २९२।

तत्थतणऽविरदसम्मो, मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा।
बंधदि गुणपडिवण्णा, मरंति मिच्छेव तत्थ भवा ॥५३९॥

अर्थ– सप्तमपृथ्वीमें असंयतसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तीजीव अपने-अपने गुणस्थानोंमें मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका नियमसे बंध करता है। सासादन-मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती सप्तमपृथ्वीके नारकी जीव जिससमय मरण करते हैं उससे अन्तर्मुहूर्तपूर्व मिथ्यात्वको प्राप्त करते ही हैं।

तेउदुगं तेरिच्छे, सेसेगअपुण्णविलयगा य तहा।
तित्थुणणरेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥५४०॥

अर्थ– तिर्यञ्चगतिमें बादर अथवा सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्ततेजकाय-वायुकायजीव भोगभूमिजतिर्यञ्चबिना तिर्यञ्चगतिमें नियमसे उत्पन्न होते हैं। अवशेष बादरसूक्ष्मपर्याप्त व अपर्याप्तपृथ्वी-जलकायिक तथा नित्यनिगोद-चतुर्गतिनिगोदपर्याप्त-अपर्याप्त एवं प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपर्याप्त-अपर्याप्त जीव मरणकर तिर्यञ्चोंमें तथा त्रेसठशलाका पुरुषोंके बिना मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं। इतना यहाँ विशेष है कि नित्य-इतरनिगोदके सूक्ष्मजीव यदि मरणकर मनुष्य हों तो सम्यक्त्व और देशसंयमको धारण कर सकते हैं[1], किन्तु सकलसंयम ग्रहण नहीं कर सकते हैं और असंज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च प्रथमनरक एवं भवनवासी-व्यंतरदेवोंमें उत्पन्न होते हैं अन्य देव तथा नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि असंज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवकी उत्कृष्टआयुबन्धकी स्थिति पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण ही है। बादरनित्य व इतरनिगोदके जीव मरणकरके मनुष्योंमें भी उत्पन्न होकर उसी भवसे मोक्ष जा सकते हैं जैसे भरतचक्रवर्तीके पुत्र वर्द्धनकुमारादि।

सण्णीवि तहा सेसे, णिरये भोगेवि अच्चुदंतेवि।
मणुवा जंति चउग्गदि परियंतं सिद्धिठाणं च ॥५४१॥

अर्थ– संज्ञी तिर्यञ्च भी सभी नारकियोंमें, सर्वभोगभूमिजोंमें, एवं सोलहवेंस्वर्गपर्यन्त सर्वदेवोंमें जन्म लेते हैं। कर्मभूमिज पर्याप्तमनुष्य पूर्वोक्त सभी पर्यायोंमें और कल्पातीत अहमिन्द्रोंमें उत्पन्न होते हैं एवं सिद्धस्थानको भी प्राप्त करते हैं। अपर्याप्तमनुष्य कर्मभूमिजतिर्यञ्चोंमें और तीर्थङ्करादिबिना सामान्यमनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। तीस भोगभूमियोंके तिर्यञ्च व मनुष्य तथा असंख्यातद्वीप व समुद्रसम्बन्धी जघन्यभोगभूमिजतिर्यञ्चसम्यग्दृष्टि तो सौधर्म-ईशानस्वर्गमें उत्पन्न होते हैं और मिथ्यादृष्टि-सासादनगुणस्थानवर्ती एवं कुभोगभूमिजमनुष्य भवनत्रिकदेवोंमें जन्म लेते हैं।

---

१. धवल पु. १० पृ. २७६।

आहारगो दु देवे, देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे।
पत्तेयपुढविआऊ बादरपज्जत्तगे गमणं ॥५४२॥

भवणतियाणं एवं, तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती।
ईसाणंताणेगे, सदरदुगंताण सण्णीसु ॥५४३॥ जुम्मं॥

अर्थ– आहारकशरीरसहित प्रमत्तगुणस्थानवाले जीव मरणकरके वैमानिकदेवोंमें ही उत्पन्न होते हैं तथा सर्वार्थसिद्धि विमानके देव मरणकरके पन्द्रह कर्मभूमिके चरमशरीरी मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अन्यत्र नहीं, किन्तु सहस्रारस्वर्गपर्यन्तके देव कर्मभूमिके मनुष्यों में लवणोदधि, कालोदधि, स्वयंभूरमणद्वीपके उत्तरार्ध, स्वयंभूरमणसमुद्रवर्ती सञ्ज्ञीपर्याप्तजलचर, स्थलचर, नभचरतिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं। ईशानस्वर्गपर्यन्तके देव पूर्वोक्त मनुष्य व तिर्यञ्चोंमें तथा बादरपर्याप्तपृथ्वी-जलकाय, प्रत्येकवनस्पतिरूप एकेन्द्रियमें भी उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिकदेवोंका कथन भी सौधर्मईशानवत् ही जानना। विशेष इतना है कि भवनत्रिकदेव मनुष्यों में तीर्थङ्करादिक त्रेसठशलाका पुरुषोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। इसप्रकार चारों गतिके जीवोंका संक्षेपसे गति-आगतिका वर्णन किया। विशेषज्ञानके लिए धवल पु.६ में गति-आगतिचूलिका देखनी चाहिए।

आगे चतुर्दश मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थान आठ गाथाओंसे कहते हैं–

णामस्स बंधठाणा, णिरयादिसु णवयवीस तीसमदो।
आदिमछक्कं सव्वं पणछण्णववीस तीसं च ॥५४४॥

अर्थ– नामकर्मके बन्धस्थान नरकगतिमें तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसंयुक्त २९-३० प्रकृतिके दो हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके ६ बन्धस्थान, मनुष्यगतिमें सर्वस्थान तथा देवगति में २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चार बन्धस्थान जानना चाहिए।[१]

विशेषार्थ– नरकगतिमें नामकर्मके २९-३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं। उनमें पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगति तथा मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका स्थान षष्ठम मघवीपृथ्वीतकके जीव बांधते हैं। पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगतिसहित २९ प्रकृतिके अथवा उद्योतयुक्त ३० प्रकृतिक स्थानको सप्तम माघवीपृथ्वीतकके जीव बाँधते हैं। पर्याप्तमनुष्यगति व तीर्थंकरसंयुक्त ३० प्रकृतिके स्थानका बन्ध

१. "णिरए तीसुगुतीसं बंधट्ठाणाणि।" प्रा.पं.सं.पृ. ४९३ गाथा ४१९। "तिरियगई तेवीसं पणवीस छव्वीसमट्ठवीसा व तीसूण तीस बंधा।" प्रा.पं.सं.पृ. ४९४ गाथा ४२१। मनुष्यगति में बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते हैं। देवगति में २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक ये चार बन्धस्थान होते हैं। प्रा.पं.सं. पृ.४९५।

तृतीय मेघापृथ्वीपर्यन्तके ही जीव बाँधते हैं, किन्तु मनुष्यगतियुक्त २९ प्रकृतिका बन्ध छठे नरकतकके नारकी जीव करते हैं तथा मार्गणाओंमें गुणस्थानकी विवक्षासे उन स्थानोंका लगाना सुगम है इसलिए गति-इन्द्रिय-पर्याप्तादिके विशेष स्थान कहते हैं—मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानवर्ती नारकीजीव तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक स्थानको ही बाँधते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चद्विक और उद्योतकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें हो जाती है तथा असंयतजीव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थान एवं प्रथम तीननरकोंमें पर्याप्त मनुष्यगति व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानको बाँधते हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके जो ६ स्थान हैं उनमें स्थावरबादरअपर्याप्तएकेन्द्रिय या स्थावरसूक्ष्मअपर्याप्तएकेन्द्रियसहित २३ प्रकृति स्थानको बाँधते हैं तथा एकेन्द्रियबादरपर्याप्तसहित या एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तसहित अथवा त्रसअपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चगतिसहित अथवा त्रसअपर्याप्त मनुष्यगतिसहित २५ प्रकृतिके स्थानको बाँधते हैं। बादरपृथ्वीकायएकेन्द्रियजीव आतप और तिर्यञ्चगतिसहित अथवा तेज-वायुकाय तथा साधारणबिना अन्य एकेन्द्रियबादर पर्याप्तजीव उद्योत व तिर्यञ्चगतिसहित २६ प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं। त्रसपर्याप्तपंचेन्द्रियजीव नरकगतिसंयुक्त या देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। त्रसपर्याप्त-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजीव तिर्यञ्चगतिसहित अथवा मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। त्रसबादरपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय अथवा पञ्चेन्द्रियजीव तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं। इसप्रकार ये ६ स्थान हैं। तथैव लब्ध्यपर्याप्ततिर्यञ्चजीव २८ प्रकृतिक स्थानके बिना पाँच ही स्थानोंका बन्ध करते हैं, मनुष्यगतिमें सर्वस्थानोंको बाँधते हैं एवं देवगतिमें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंको बाँधते हैं। देव मरकर पर्याप्तएकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकता है इसलिये उसके २५ प्रकृतिक बन्धस्थान तथा आतप या उद्योतसहित २६ प्रकृतिक एवं संज्ञीपर्याप्ततिर्यंच-मनुष्यसंयुक्त २९-३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध संभव है।

अथानन्तर इन्द्रियादि मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं—

पंचक्खतसे सव्वं, अडवीसूणादिछक्कयं सेसे।
चउमणवयणोराले, सड देवं वा विगुव्वदुगे ॥५४५॥

अर्थ— इन्द्रियमार्गणामें पञ्चेन्द्रियके और कायमार्गणामें त्रसकायके सर्व बन्धस्थान हैं। अवशेष एकेन्द्रियादिक चारमें और पृथ्वीकायादि पाँचमें आदिके छह स्थानोंमें से २८ प्रकृतिक स्थानकेबिना पाँच-पाँच बन्धस्थान जानना। चारमनोयोग-चारवचनयोग एवं औदारिककाययोगमें सर्व बन्धस्थान हैं और वैक्रियक-वैक्रियकमिश्रकाययोगमें देवगतिवत् चार स्थान हैं।

विशेषार्थ– एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियजीवोंमें २३, २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक नामकर्मके ये ५ बन्धस्थान होते हैं। स्थावरकायमें भी इसीप्रकार ५ बन्धस्थान हैं। पंचेन्द्रिय और त्रसकायमें २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ व १ ये आठ बन्धस्थान हैं। इसीप्रकार चार मनोयोगियों व चार वचनयोगियों तथा औदारिककाययोगियों में उक्त ८ बन्धस्थान जानने। वैक्रियिक व वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें देवगतिके समान २५, २६, २९ व ३० प्रकृतिक चार बन्धस्थान होते हैं। (प्रा.पं.सं.पृ. ४९६-५००)

अडवीसदु हारदुगे, सेसदुजोगेसु छक्कमादिल्लं।
वेदकसाये सव्वं, पढमिल्लं छक्कमण्णाणे ॥५४६॥

अर्थ– आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें २८-२९ प्रकृतिक दोस्थान हैं।[१] शेष कार्मण और औदारिकमिश्रकाययोग इन दो योगोंमें आदिके ६ स्थान हैं।[२] पुरुषादि तीनवेद तथा क्रोधादि चारों कषायोंमें सर्व बन्धस्थान हैं।[३] ज्ञानमार्गणामें तीन कुज्ञानोंमें आदिके छह बन्धस्थान हैं।[४]

विशेषार्थ– आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें देवगति तथा आहारकद्विकसहित स्थान नहीं होता क्योंकि इनका बंध अप्रमत्त तथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें ही सम्भव है, किन्तु आहारकद्विक प्रमत्तगुणस्थानमें नहीं होता है तथा कार्मण और औदारिकमिश्रसहित मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च-मनुष्यमें २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध नहीं है, क्योंकि **'कम्मे उरालमिस्सं'** इस सूत्रसे देवद्विक और नरकद्विकके बन्धका कार्मण व औदारिकमिश्रकाययोगमें अभाव है। कार्मणकाययोगसहित सासादनगुणस्थानवर्तीतिर्यञ्च-मनुष्यमें एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मपर्याप्त और अपर्याप्तसहित २३-२५ व २६ का एवं नरक-देवगतिसहित २८ का तथा विकलत्रयसंयुक्त २९-३० प्रकृतिकस्थान इन सर्व स्थानोंके बिना अवशेष तिर्यञ्चपचेन्द्रिय व मनुष्यगतिसहित २९-३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं। यहाँ **"मिच्छदुगेदेवचऊ तित्थं णहि"** इस वचनसे देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानका अभाव है। कार्मणकाययोगसहित असंयतमनुष्यमें देवगति व तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिकस्थान भी जानना।

तीनोंवेदोंमें और चारोंकषायोंमें सर्व बन्धस्थान हैं। विशेष यह है कि नपुंसकवेदमें २९-३० प्रकृतिके दोस्थान तृतीयनरकपर्यन्त जानना। नपुंसकवेदसहित तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मअपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका, एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मपर्याप्तसंयुक्त २५ प्रकृतिका, त्रसअपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-मनुष्यगतिसहित २५ प्रकृतिका, एकेन्द्रियबादरपर्याप्त आतप व

---

१. प्रा.पं.सं.पृ.५०१।

२. २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक ये ६ बन्धस्थान (पं.सं.पृ. ५००, ५०१)

३. २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ व १ प्रकृतिक आठबन्धस्थान हैं। (पं.सं.पृ. ५०२)।

४. २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छहबन्धस्थान (प.सं.पृ. ५०२)।

उद्योतसहित २६ प्रकृतिका, तिर्यञ्च व मनुष्यगतिपर्याप्तसहित २९ का, तिर्यञ्चगतिपर्याप्त उद्योतसंयुक्त ३० प्रकृतिका और पर्याप्ततिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी नपुंसकवेदमें नरक-देवसहित २८ प्रकृतिका भी बन्धस्थान पाया जाता है। स्त्रीवेदी व पुरुषवेदीतिर्यञ्चमें छह बन्धस्थान जानना चाहिए तथा नपुंसकवेदी लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें एकेन्द्रिय-विकलत्रयके सम्बन्धी [illegible] बन्धस्थान जानना। तीर्थंकरसहित [illegible] नपुंसक या स्त्री अथवा पुरुषवेदी पर्याप्तमनुष्य पुरुष-स्त्री-नपुंसकवेदके उदयसे भावसे पुरुष-स्त्री या नपुंसकवेदी होते हैं; द्रव्यसे पुरुषवेदी तथा भावनपुंसकस्त्री तथा पुरुषवेदमें अनिवृत्तिकरणके अपने-अपने सवेदभागपर्यन्त गुणस्थान जानना। यहाँ तीनोंवेदोंमें आठ-आठ बन्धस्थान जानना[1], किन्तु विशेष इतना है कि क्षपकश्रेणीवाले नपुंसकवेदीके देवगति और तीर्थंकरप्रकृतिसहित २९-३१ प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं पाया जाता है, क्योंकि किन्हीं चरमशरीरीके क्षपकश्रेणीमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध सम्भव भी है तथापि वे जीव क्षपकश्रेणीमें पुरुषवेदके उदयसहित ही चढ़ते हैं तथा तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ चरमशरीरी असंयत या देशसंयतगुणस्थानवर्तीके यदि होता है तो इनके तपकल्याणकादि तीन ही कल्याणक होते हैं और यदि प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होता है तो ज्ञान व निर्वाण ये दो ही कल्याणक होते हैं तथा यदि पूर्वभवमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध किया तो उनके गर्भावतरणादि पांचों कल्याणक होते हैं, ऐसा जानना।

कषायमार्गणामें क्रोधादिके अनन्तानुबन्धी आदिके भेदसे चार भेद हैं, तथापि जातिका आश्रयकरके एकत्वपना ही ग्राह्य है, क्योंकि शक्तिकी प्रधानता होनेसे भेद कहनेकी विवक्षा नहीं है। इसीको स्पष्ट करते हैं— अनन्तानुबन्धी आदि बारहकषायके सर्वघातीरूपही स्पर्धक हैं, देशघातीरूप नहीं तथा सञ्ज्वलनके स्पर्धक देशघाती एवं सर्वघातीरूप दोनों ही प्रकारके हैं। सम्यक्त्वघाती अनन्तानुबन्धी-क्रोध-मान-माया व लोभमें से किसी एकका उदय होनेपर अप्रत्याख्यानादि तीनोंका भी उदय है। तथैव देशसंयमका घातकरनेवाली अप्रत्याख्यान क्रोधादिकमें से किसी एकका उदय होनेपर प्रत्याख्यानादिका भी उदय है ही। सकलसंयमघाती प्रत्याख्यानक्रोधादिकमें से किसी एकका उदय होनेपर सञ्ज्वलनका भी उदय है तथा यथाख्यातसंयमको घातनेवाली केवल सञ्ज्वलनके उदय होनेपर प्रत्याख्यानादि तीनका उदय नहीं होता है, क्योंकि अन्यकषायोंके स्पर्धक सकलसंयमके विरोधी हैं तथा केवल प्रत्याख्यान-सञ्ज्वलनका उदय होनेपर शेष दोकषायों का उदय नहीं है। अप्रत्याख्यानादि तीनका उदय होनेपर अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं है। इसप्रकार अनन्तानुबन्धीके उदयके साथ अप्रत्याख्यानादिकमें चारित्रमोहपना होते हुए भी इनमें सम्यक्त्व और संयमका घातपना कहा। अनन्तानुबन्धीके उदयरहित अप्रत्याख्यानादिका उदय देशसंयमको घातता है और अप्रत्याख्यानके उदयरहित प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलनका उदय सकलसंयमको घातता है तथा प्रत्याख्यानके उदयरहित केवल सञ्ज्वलनके देशघातीस्पर्धकोंका उदय यथाख्यातसंयमको

१. "त्रिषु वेदेषु प्रत्येकं बंधाष्टकम्" (प्रा.पं.सं.पृ. ५०२)।

घातता है इसप्रकार शक्ति सामान्यकी विवक्षासे सोलहकषायके क्रोधादिक भेदसे चार कषाय ही ग्रहण की हैं। इसकारणसे सम्यक्त्व-देशसंयम और सकलसंयमका असंयत-देशसंयत और प्रमत्तादिकगुणस्थानमें उत्पन्न होना कहा है।

शंका– अनन्तानुबन्धीकी तथा अन्यकषायोंकी शक्ति समान कैसे हो सकती है?

समाधान– चारज्ञानावरण, तीनदर्शनावरण, पाँचअन्तराय, चारसञ्ज्वलन और पुरुषवेद ये १७ देशघाती प्रकृतियाँ तो चार प्रकारके अनुभागरूप परिणमन करती हैं, अवशेष मिश्रमोहनीयबिना केवलज्ञानावरणादिक सर्वघाति २० प्रकृति, ८ नोकषाय और अघातियाकी ७५ प्रकृति ये सर्व प्रकृतियाँ तीनप्रकारके अनुभागरूप परिणमन करती हैं[१] अनुभागबन्धके कथनमें इसका वर्णन किया गया है इसलिए अनुभागशक्तिकी अपेक्षासे अनन्तानुबन्धी और अन्यकषायमें समानता सम्भव है।

बारहकषाय और सञ्ज्वलनके देशघातीस्पर्धकोंमें यद्यपि कथंचित् भेद है तथापि सामान्यसंयमको घात करनेकी अपेक्षा समानकार्य करती हैं इसलिए यहाँ अनंतानुबन्धीआदि भेद नहीं कहे हैं मात्र क्रोधादि चारकषाय ही कही हैं। यहाँ क्रोधमें नामकर्मके बन्धस्थान नरकमें तो २९-३० प्रकृतिरूप दो हैं। तिर्यञ्चगतिमें आदिके छहबन्धस्थान, मनुष्योंमें सर्वबन्धस्थान और देवगतिमें सामान्यसे देवगतिवत् (२५-२६-२९-३० प्रकृतिक) चार ही स्थान हैं। इसीप्रकार मान-माया और लोभमें भी जानने।

ज्ञानमार्गणामें तीन कुज्ञानोंमें आदिके छहस्थान हैं उनमें नारकियोंके तो तिर्यञ्चगति-मनुष्यगतिपर्याप्तसहित २९ प्रकृतिका तथा उद्योतसहित ३० प्रकृतिका स्थान ऐसे दोस्थान हैं। एकेन्द्रिय एवं विकलत्रयके कुमति और कुश्रुतज्ञानमें नरकगति व देवगतिसे संयुक्त २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थानकेबिना तिर्यञ्च-मनुष्यगतियुक्त २३ प्रकृतिके बन्धस्थानको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-मनुष्यअपर्याप्तके कुमति-कुश्रुतसहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें भी पूर्वोक्त पाँचस्थान हैं, तीनों कुज्ञानसहित मिथ्यात्व व सासादनगुणस्थानवर्ती पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यंच तथा मनुष्यमें यथायोग्य चतुर्गतियुक्त छहस्थान हैं तथा कुज्ञानसहित भवनत्रिक व सौधर्मयुगलमें तिर्यंचगतिसंयुक्त २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके और मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ये चार बन्धस्थान हैं। सनत्कुमार से सहस्रारस्वर्गपर्यन्त स्वर्गोंमें संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्ततिर्यंच तथा मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार दोस्थान हैं। आनतादिसे नवग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्धस्थान है क्योंकि '**तदो णत्थि सदरचऊ**' इस वचनसे यहाँ तिर्यञ्चगतिसंयुक्त स्थानका अभाव है। इसप्रकार कुज्ञानवाले जीवोंकी अपेक्षा तीन कुज्ञानोंमें छहस्थान कहे।

---

१. आवरणदेसघादंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं। चउविह भावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८४॥ गोम्मटसारकर्मकाण्ड॥

सण्णाणे चरिमपणं, केवलजहखादसंजमे सुण्णं।
सुदमिव संजमतिदए, परिहारे णत्थि चरिमपदं ॥५४७॥

अर्थ– मतिज्ञानादि चारसम्यग्ज्ञानोंमें अन्तिम पाँच बन्धस्थान हैं। केवलज्ञान और यथाख्यातसंयममें शून्य अर्थात् बन्धस्थानका अभाव है। संयमोंमें श्रुतज्ञानके समान ५ बन्धस्थान हैं, किन्तु परिहारविशुद्धिसंयममें अन्तिमस्थानबिना शेष चारस्थान हैं।

विशेषार्थ– मति-श्रुत-अवधि और मन:पर्ययज्ञानमें २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप ५ बन्धस्थान नामकर्मके हैं। मतिआदि तीनज्ञान पर्याप्त व निर्वृत्त्यपर्याप्तनारकी और सञ्ज्ञीतिर्यञ्च, मनुष्य और देवोंमें पाए जाते हैं। यहाँ नारकीजीवोंके मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका तथा आदिकी तीनपृथ्वियोंमें मनुष्यगति-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका ये दो बन्धस्थान हैं, सौधर्मादि स्वर्गके देवोंमें भी ये ही दो बन्धस्थान हैं। भवनत्रिकदेवोंमें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्धस्थान है तथा तिर्यञ्चगतिमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थान है। मनुष्योंके देवगतिसहित २८ एवं देवगतितीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिका स्थान है तथा ३०, ३१ व १ प्रकृतिक बन्धस्थान भी हैं। इसप्रकार मतिआदि तीनज्ञानोंमें बन्धस्थान कहे। मन: पर्ययज्ञानसहित चारज्ञानोंमें प्रमत्तगुणस्थानमें २८ व २९ प्रकृतिक दो स्थान हैं तथा अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त २८ व २९ प्रकृतिक दो एवं देवगति-आहारकद्विकसंयुक्त ३० प्रकृतिक और देवगति, तीर्थङ्कर व आहारकद्विकसंयुक्त ३१ प्रकृतिक ये चारबन्धस्थान हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त यशस्कीर्तिरूप एक बन्धस्थान है। केवलज्ञानमें नामकर्मके बन्धका अभाव है। सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें श्रुतज्ञानवत् ५ बन्धस्थान हैं, किन्तु परिहारविशुद्धिसंयममें इन ५ में से अन्तिमस्थान नहीं है अत: वहाँ चार ही बन्धस्थान जानना।

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें प्रमत्तगुणस्थानमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका और देवगति-तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिका ये दो बन्धस्थान हैं। अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त पूर्वोक्त दो और देवगति एवं आहारकद्विकयुत ३० प्रकृतिका, तीर्थङ्कर व आहारकद्विकसहित ३१ प्रकृतिका इसप्रकार चार बन्धस्थान हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागसे अनिवृत्तिगुणस्थानपर्यन्त एकप्रकृतिरूप एक ही बन्धस्थान है। परिहारविशुद्धिसंयममें सामायिकसंयमवत् प्रमत्तगुणस्थानमें दो एवं अप्रमत्तगुणस्थानमें चार बन्धस्थान हैं, यहाँ श्रेणीआरोहणका अभाव होनेसे एकप्रकृतिरूप बन्धस्थान नहीं है।[१]

अंतिमठाणं सुहुमे, देसाविरदीसु हारकम्मं वा।
चक्खूजुगले सव्वं, सगसगणाणं व ओहिदुगे ॥५४८॥

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५०४ व ५०५ गाथा ४४७ व ४४९।

अर्थ– सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें अन्तिम एक ही स्थान है।[1] देशसंयतगुणस्थानमें आहारककाययोगके समान २८ और २९ प्रकृतिरूप दो स्थान हैं।[2] असंयतगुणस्थानमें कार्मणकाययोगवत् आदिके ६ स्थान हैं।[3] चक्षु-अचक्षुदर्शनमें सर्वबन्धस्थान हैं[4] और अवधि-केवलदर्शनमें अपने-अपने ज्ञानके समान बन्धस्थान जानना।

विशेषार्थ– देशसंयमसहित तिर्यञ्चमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका ही स्थान है। असंयममें कार्मणकाययोगवत् २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक आदिके छहस्थान हैं। यहाँ मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती नारकीके पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च व मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप ये दो स्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका ही स्थान है। घर्मादितीन नरकपृथ्वियोंमें असंयतगुणस्थानवर्ती नारकियोंके मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका और मनुष्यगति व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका ये दो स्थान हैं। अवशेष पृथ्वियोंमें मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका स्थान है। तिर्यञ्चगतिमें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं, किन्तु यहाँ विशेषता यह है कि पर्याप्त-अपर्याप्त एकेन्द्रिय तथा विकलत्रयमें एवं अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमें नरकगति या देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थान नहीं है क्योंकि **'पुण्णिदरं विगिदगले'** के अनुसार वहाँ उसका बन्ध नहीं होता। बादर-सूक्ष्मपर्याप्त-अपर्याप्ततेजस्कायिक-वातकायिकमें मनुष्यगतिअपर्याप्तसंयुक्त २५ प्रकृतिका और पर्याप्तमनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका ये दोनों स्थान नहीं हैं। प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी विराधना करके सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ तिर्यंच, तिर्यञ्चगति व मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका, तिर्यञ्च व उद्योतयुक्त ३० प्रकृतिका तथा देवगतिसहित २८ प्रकृतिका इसप्रकार ३ स्थान बाँधता है। मरणकर नरकबिना अन्य गतियोंमें उत्कृष्टसे एक समयकम छहआवली और जघन्यसे एकसमयपर्यन्त अपर्याप्तावस्थामें सासादनगुणस्थान होता है इसलिए सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च हैं सो **'णहि सासणो अपुण्णे साहरण सुहुमगे य तेउ दुगे'** इस वचनसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीव ही अपर्याप्तावस्थामें सासादनगुणस्थानवर्ती होते हैं और वे नरकगति या देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिके स्थानको नहीं बाँधता हुआ शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके पहले ही सासादनपना छोड़कर नियमसे मिथ्यादृष्टि होकर पर्याप्तावस्थाके अनन्तर ही नरकगति या देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको बांधता है। **'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि'** इस वचनसे सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञी भी अपर्याप्तावस्थासहित सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिरूप स्थान नहीं बाँधते हैं तथा मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च संज्ञीपर्याप्त हैं, वे मिश्रगुणस्थानमें तो देवगतियुत २८ प्रकृतिका ही बन्ध करते हैं, क्योंकि **'उवरिम छण्हं च छिदीसासणसम्मे'** इस वचनसे तिर्यञ्च-मनुष्यगतिके बन्ध का इसके अभाव है। असंयतगुणस्थानमें भी पूर्वोक्त स्थान बँधते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चजीवके आहारकद्विक व तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं है। मनुष्यगतिमें लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यके

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५०५ गाथा ४४९। २. प्रा.पं.सं.पृ. ५०६ गाथा ४५२। ३. प्रा.पं.सं.पृ. ५०६ गाथा ४५३। ४. २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१ ये आठ बन्धस्थान हैं (प्रा.पं.सं.पृ. ५०६-५०७ गाथा ४५३-४५४)।)

तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पाँचस्थान बँधते हैं, किन्तु पर्याप्तमनुष्यके चारोंगतिसहित छहों स्थान पाए जाते हैं। **'चदुगति मिच्छोसण्णी'** इत्यादि लब्धिसार गाथा २ में कथित सामग्रीसहित जीव ने करणलब्धि के चरमसमयमें दर्शनमोहका उपशम करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्राप्त किया तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित देशव्रती अथवा महाव्रती होकर इस उपशमसम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्तकालमें एकसमयसे छहआवली कालपर्यंत अनंतानुबन्धीका जो अप्रशस्त उपशम हुआ था उसमेंसे किसी भी एक क्रोधादिकषायका उदय होनेपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वका घातकरके सासादनगुणस्थानवर्ती हुआ, उस मनुष्यके एकेन्द्रिय व विकलत्रयका तो मिथ्यात्वावस्थामें ही बन्ध है अतः पञ्चेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचमनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानको, तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक स्थानको एवं देवगतिसहित २८ प्रकृतिके स्थानको बाँधता है। मरण होनेपर तिर्यञ्च व मनुष्य अथवा देव अपर्याप्तकालमें यदि सासादनगुणस्थानवर्ती हैं तो तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ व तिर्यञ्च-उद्योतसंयुक्त ३० प्रकृतिरूप दो स्थानोंको बाँधते हैं, किन्तु नरकगति या देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको नहीं बाँधते हैं। सासादनगुणस्थानसम्बन्धी काल पूर्ण होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर यावत्कालपर्यन्त निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्था अवशेष रहती है उसमें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चारस्थानोंको बांधते हैं तथा पर्याप्तअवस्थामें २८ प्रकृतिसहित छह स्थानोंको बाँधते हैं। कर्मभूमिज मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्य तथा भोगभूमिज सर्वमनुष्य देवगतियुत २८ प्रकृतिको ही बाँधता है, क्योंकि नरकतिर्यञ्चगतिकी सासादनगुणस्थानमें ही व्युच्छित्ति हो जाती है। असंयतगुणस्थानवर्ती तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला मनुष्य, देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बाँधता है। पर्याप्तावस्थामें भवनत्रिक व सौधर्मयुगलवाले मिथ्यादृष्टिदेव एकेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगतिसहित २५ प्रकृतिका, आतप-उद्योतयुत २६ प्रकृतिका, पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका, तिर्यञ्च उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं। सनत्कुमारादि १० स्वर्गवाले मिथ्यादृष्टिदेव मनुष्य व तिर्यञ्चगतिसहित २९ और तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं तथा आनतादि ४ स्वर्गवाले एवं नवग्रैवेयकवासीदेव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बाँधते हैं।

निर्वृत्त्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टि भवनत्रिकदेव और कल्पवासिनीदेवी, सौधर्म-ईशान-स्वर्गवाले देव एकेन्द्रियपर्याप्तसहित २५ प्रकृतिका तथा आतप या उद्योत के साथ पर्याप्ततिर्यंचसहित २६ का पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं। उसीप्रकार सनत्कुमारस्वर्गसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्तके देव पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यंच व मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकतकके देव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका ही बन्ध करते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चगतिसहित २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थान यहाँ नहीं हैं। इसप्रकार संक्षेपसे असंयमसहित मिथ्यादृष्टिजीवके देवगतिकी अपेक्षा नामकर्म बन्धस्थानोंका कथन हुआ। यहाँ जीवसमास, पर्याप्ति, प्राणादिकी विवक्षासे ग्रन्थविस्तारके भयसे कथन नहीं किया है इसका कथन परमागमसे यथायोग्य जानना चाहिए।

सासादनगुणस्थानवर्ती भवनत्रिकदेव, कल्पवासिनीदेवियाँ व सौधर्मयुगलवाले देव तो पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्चगति-मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका अथवा पर्याप्ततिर्यंचगति-उद्योतसहित ३० प्रकृतिके स्थानको बाँधते हैं और सासादनगुणस्थानके कालको व्यतीतकर जब मिथ्यादृष्टि होते हैं तब इनके अपर्याप्तकालमें उपर्युक्त २९-३० प्रकृतिक स्थानोंके अतिरिक्त एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिका अथवा उद्योत-आतपसहित २६ प्रकृतिक स्थानका भी बन्ध होता है तथा सनत्कुमारसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गवासीदेव उपर्युक्त २९-३० प्रकृतिरूप दोनों स्थानोंको बाँधते हैं। आनतस्वर्गसे नवग्रैवेयकपर्यन्तके देव मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं तथा सासादनकाल व्यतीत होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिवत् स्थानोंको बाँधते हैं। भवनत्रिक से उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मिश्रगुणस्थानवर्ती और असंयतगुणस्थानवर्ती पर्याप्तभवनत्रिक, कल्पवासिनीदेवियाँ तो मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिके स्थानको बाँधते हैं। वैमानिक (कल्पवासी) देव तीर्थङ्करसहित पूर्वोक्त २९ प्रकृतिके और तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं।

चक्षु-अचक्षुदर्शनमें नामकर्मके सभी बन्धस्थान हैं। चक्षुदर्शनसहित नारकी २९-३० प्रकृतिके दो स्थानोंको बाँधते हैं, चतुरिन्द्रियजीव २८ प्रकृतिके स्थानबिना तिर्यञ्च-मनुष्यगतियुत २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप ५ स्थानोंको बाँधता है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छह स्थानोंका बन्ध करता है, मनुष्य सभी स्थानोंको बाँधते हैं। देव यथायोग्य २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके स्थानोंका बन्ध करते हैं। अचक्षुदर्शनसहित नारकी चक्षुदर्शनवत् दो स्थानोंको और एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रियपर्यन्तके जीव नरक या देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष २३-२५-२६-२९-३० प्रकृतिरूप ५ स्थानों को, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च २८ प्रकृतिक स्थानसहित छहस्थानों को, मनुष्य सभी बन्धस्थानोंको एवं देव चक्षुदर्शनवत् यथायोग्य २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंका बन्ध करते हैं। अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानवत् अन्तिम ५ बन्धस्थान हैं। असंयत देव-नारकीमें और असंयत-देशसंयतवर्ती सञ्ज्ञीपर्याप्ततिर्यञ्चोंमें, असंयतगुणस्थानसे क्षीणकषायपर्यन्तगुणस्थानवाले मनुष्योंमें देशावधिज्ञान है और प्रमत्तसे क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती चरमशरीरी जीवोंके परमावधि-सर्वावधिज्ञान पाया जाता है। अवधिदर्शनके धारक घर्मादि तीन नरकवाले तीर्थंकर व मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिक स्थानको और तीर्थङ्करके सत्त्वरहित अञ्जनादिपृथ्वीवाले नारकी मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं तथा तिर्यञ्चजीव देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं। मनुष्य भी देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिकस्थानसे १ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त (२८-२९-३०-३१-१) पाँच स्थानोंको, सौधर्मादिकस्वर्गके देव तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिरूप और भवनत्रिक आदि सभीदेव तीर्थङ्कररहित मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानको बाँधते हैं। केवलदर्शनमें केवलज्ञानवत् बन्धका अभाव है।

कम्मं वा किण्हतिये, पणुवीसाछक्कमट्ठवीसचऊ ।
कमसो तेऊजुगले, सुक्काए ओहिणाणं वा ॥५४९॥

अर्थ– कृष्णादि तीन अशुभलेश्याओंमें कार्मणकाययोगवत् २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप ६ बन्धस्थान हैं। तेज (पीत) और पद्मलेश्यामें क्रमसे २५-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं तथा २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप चारस्थान हैं। शुक्ललेश्यामें अवधिज्ञानवत् २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप पाँच बन्धस्थान हैं।

विशेषार्थ– वर्णनामा नामकर्मके उदयसे शरीरके वर्णरूप द्रव्यलेश्याको यहां ग्रहण नहीं किया है। मोहनीयकर्मके उदय-उपशम या क्षय अथवा क्षयोपशमसहित जीवकी योगरूप चंचलता भावलेश्या है उसीको यहाँ ग्रहण किया गया है। कृष्णादिके भेदसे लेश्या ६ प्रकारकी है। नरकोंमें तीन अशुभलेश्या ही हैं।[१] नरकोंमें उत्पन्न हुए जीव शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर अथवा नहीं होनेपर तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत

---

१. **नारकियों के लेश्या :**

शंका– कर्मकाण्ड हस्तलिखित टीका पं. टोडरमलजी पृ. ८२२— "यद्यपि नरक विषै नियमतैं अशुभ लेश्या है तथापि तहाँ तेजोलेश्या पाइये है, जिस लेश्या के मन्द उदय होते प्रथम स्पर्द्धक प्राप्त होता है" इसमें तेजोलेश्या बतलाई है लेकिन तेजोलेश्या नरक में कहाँ सम्भव है? यह समझ में नहीं आता क्योंकि नरक में तो तीनों अशुभ लेश्या पाई जाती हैं इसलिये कृपया इसका समाधान करिये।

समाधान– श्री पुष्पदन्त भूतबलि के मतानुसार नरक में तेजोलेश्या नहीं होती है। लेश्या का लक्षण इस प्रकार है— आत्मप्रवृत्ति संश्लेषकरी लेश्या अथवा लिम्पतीति लेश्या। अर्थ: आत्मा और प्रवृत्ति (कर्म) का संश्लेषण अर्थात् संयोग करने वाली लेश्या कहलाती है अथवा जो (कर्मों से आत्मा का) लेप करती है वह लेश्या है। (ष.खं.पु.७ पत्र ७)। कृष्ण, नील और कापोतलेश्या का उत्कृष्ट काल साधिक तैंतीस, सत्तरह व सात सागर क्रमशः कहा है। क्योंकि तिर्यंचों या मनुष्यों में कृष्ण, नील व कापोत लेश्या सहित सबसे अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर फिर तैंतीस, सत्तरह व सात सागरोपम आयु स्थितिवाले नारकियों में उत्पन्न होकर कृष्ण, नील व कापोतलेश्या के साथ अपनी-अपनी आयु स्थिति प्रमाण रहकर वहाँ से निकल अन्तर्मुहूर्त काल उन्हीं लेश्याओं सहित व्यतीत करके अन्य अविरुद्ध लेश्या में गए हुए जीव के उक्त तीन लेश्याओं का दो अन्तर्मुहूर्त सहित क्रमशः तैंतीस, सत्तरह व सात सागरोपम काल पाया जाता है। अतः इस कथन के अनुसार नरकों में अन्य लेश्यारूप परिवर्तन नहीं होता। इस कारण वहाँ पर तेजोलेश्या सम्भव नहीं है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अनुसार– जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य-पाप से लिप्त करे उसे लेश्या कहते हैं (गाथा ४८८)। नरकों में कापोत, नील व कृष्ण ये तीन अशुभ लेश्या प्रथमादि पृथ्वियों में होती हैं। यह स्वामी अधिकार का कथन भावलेश्या की अपेक्षा से है (गाथा ५२८)। कृष्णलेश्या का उत्कृष्टकाल तैंतीससागर, नीललेश्या का सत्तरहसागर, कापोत लेश्या का सातसागर है। यह उत्कृष्टकाल नरक में होता है क्योंकि सातवें नरक में तैंतीस सागर, पाँचवें नरक में सत्तरह सागर और तीसरे नरक में सातसागर उत्कृष्ट आयु होती है (गाथा ५५१)। इससे भी स्पष्ट है कि नरक में आयु पर्यंत अपनी-अपनी ही लेश्या रहती है। एक लेश्या पलटकर दूसरी लेश्या नहीं हो जाती है। लेश्याओं में दो प्रकार का संक्रमण है— (१) स्वस्थान संक्रमण (२) परस्थान संक्रमण। नरकों में परस्थान संक्रमण नहीं होता है। स्वस्थान संक्रमण में षट्स्थानपतित हानिवृद्धि होती है। नारकियों में अपनी-अपनी लेश्याओं का षट्स्थानरूप स्वस्थान संक्रमण सम्भव है जो अन्तर्मुहूर्त बाद होता रहता है (गाथा ५०३-५०५)। कहीं पर इस षट्स्थान परिवर्तन को इन शब्दों में भी लिख दिया है **भावलेश्यास्तु षडपि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः**। गो.जी. गाथा ४९५ में सम्पूर्ण नारकियों के कृष्ण वर्ण द्रव्यलेश्या कही है, किन्तु सर्वार्थसिद्धि व तत्त्वार्थराजवार्तिक में कृष्ण, नील और कापोत तीनों द्रव्य लेश्या नारकियों के कही गई हैं। (पं. रतनचन्दमु. व्य. ३२१-२२))

२९ व ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं तथा सासादनगुणस्थानवाले भी इसीप्रकार तिर्यञ्च और मनुष्यगतिसंयुक्त दोनों (२९-३० प्रकृतिक) स्थानोंका बंध करते हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं।

घर्मापृथ्वीमें निर्वृत्त्यपर्याप्तक व पर्याप्तक्षायिक व कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि तीर्थङ्करके सत्त्वरहित तो मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिको और तीर्थङ्करके सत्त्वसहित मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं तथा वंशा-मेघापृथ्वीमें तीर्थङ्करके सत्त्वसहित जीव पर्याप्ति पूर्ण होनेपर नियमसे मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वीहोकर ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं। तिर्यञ्चगतिमें पर्याप्तादित्रीन (पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त व लब्ध्यपर्याप्त) में सर्वएकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय तथा लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृत्त्यपर्याप्तक असंज्ञीजीवोंके और नरकादिसे आया मिथ्यादृष्टि व सासादनवर्ती अपर्याप्तसञ्ज्ञी इन सभीमें तीन अशुभलेश्यायें ही हैं तथा पर्याप्तमिथ्यादृष्टिअसञ्ज्ञीमें कृष्णादि चार लेश्याएँ हैं। पर्याप्त सासादन व मिश्रगुणस्थानवर्तीमें एवं असंयतसञ्ज्ञीतिर्यञ्चोंमें छहों लेश्या हैं। भोगभूमिज निर्वृत्त्यपर्याप्तअसंयतमें जघन्यकापोतलेश्या ही है और पर्याप्तावस्थामें मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टिके तीन शुभलेश्याही हैं, क्योंकि उत्पन्न हुए जीवोंके शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही तीन शुभलेश्याएँ आगममें कही गई हैं।

मिथ्यात्वयुत बादर-सूक्ष्मपृथ्वी, अप्-तेज-वायुकाय-नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितप्रत्येक द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय, ये १९ प्रकारके लब्ध्यपर्याप्त व पर्याप्त तिर्यञ्चसे तथा मिथ्यादृष्टि पर्याप्त व अपर्याप्तकर्मभूमिजमनुष्यसे आकर तीन अशुभलेश्यासहित जो तिर्यञ्चजीवोंमें उत्पन्न होते हैं वे २८ प्रकृतिकस्थानबिना शेष २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पाँचस्थान बाँधते हैं और तेजकाय-वायुकायके जीव तिर्यञ्चगतियुत ही इन स्थानोंको बाँधते हैं। १९ प्रकारके लब्ध्यपर्याप्त-पर्याप्ततिर्यंच व पर्याप्त-अपर्याप्तमनुष्य मिलकर ४० प्रकारके मिथ्यादृष्टि तीनप्रकारकी अशुभलेश्याओंसे मरणकर पूर्वोक्त १९ प्रकारके मिथ्यादृष्टि पर्याप्ततिर्यंचोंमें भी उत्पन्न होते हैं।

चारों ही गतिसे आकर पूर्वोक्त १९ प्रकारके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टिजीव निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप पाँचस्थानोंको बाँधते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छहस्थान, सासादनगुणस्थानमें २८-२९-३० प्रकृतिरूप तीनस्थान, मिश्र-असंयत और देशसंयतगुणस्थानमें एक मात्र २८ प्रकृतिरूप स्थान बँधता है। तथैव दाताके गुणोंसे सहित जिस मनुष्यने पूर्वभवमें दानयोग्य द्रव्य तीनप्रकारके पात्रोंको दान दिया उसके प्रभाव से अथवा उसकी अनुमोदना करके वह मनुष्य, अनुमोदना व व्रतीतिर्यञ्चोंको दान देनेसे तिर्यञ्च मिथ्यात्वअवस्थामें तिर्यञ्चायुका बन्धकरके तीन अशुभलेश्यासहित मरणकर भोगभूमिमें मिथ्यादृष्टितिर्यंच हुआ, वहाँ अपर्याप्तावस्थामें तिर्यञ्चगतिसहित तो २९-३० प्रकृतिक दोस्थान एवं मनुष्यगतियुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानको बाँधता है। जिसके भोगभूमिज तिर्यञ्चायुका बन्ध हुआ ऐसे तिर्यञ्च अथवा मनुष्यने

मरणोन्मुखदशामें प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्राप्त किया पश्चात् अनन्तानुबन्धीको किसी एक प्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वकी विराधना की तो वह भोगभूमिमें तीन अशुभलेश्यासहित सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च हुए इनके तिर्यञ्चगतिसहित २९-३० प्रकृतिक तथा मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है, क्योंकि **'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि'** इस वचन से देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध अपर्याप्तावस्था में नहीं है। जिन्होंने पहले तिर्यञ्चायुका बन्ध किया है ऐसे कर्मभूमिज मनुष्य कृतकृत्यवेदक या क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर तीन प्रकारके पात्रदानसे तीन-दो अथवा एक पल्यप्रमाण आयुवाले होकर कापोतलेश्याके जघन्यअंशोंसे उत्कृष्ट-मध्यम अथवा जघन्य भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं वहाँ वेदक अर्थात् कृतकृत्यवेदक या क्षायिकसम्यक्त्वसहित अपर्याप्तावस्थामें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक स्थानोंको ही बाँधते हैं। पर्याप्तावस्थामें मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयतगुणस्थानवर्ती भोगभूमिज तीन शुभलेश्याओंसे संयुक्त हैं यहाँ मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानवर्ती तो देवगतियुत २८ प्रकृतिकस्थानका बन्ध करते हैं तथा मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती भी २८ प्रकृतिक स्थानका ही बन्ध करते हैं। इसप्रकार लेश्यासहित तिर्यञ्चोंके बन्धस्थानोंका वर्णन हुआ। अब मनुष्योंमें नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं-

लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यमें तीन अशुभलेश्या ही हैं और निर्वृत्त्यपर्याप्तकके छहों लेश्या हैं। तीन अशुभलेश्यासहित मिथ्यादृष्टि २३-२५-२६-२९ और ३० प्रकृतिक स्थान बाँधते हैं। सासादनगुणस्थानवर्तीके २९ व ३० प्रकृतिके दो स्थान और असंयतगुणस्थानवर्तीके देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थान तथा देव-तीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिरूप स्थान ऐसे दो स्थान बँधते हैं। पर्याप्तावस्थामें छहों लेश्या पाई जाती हैं, अतः यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छह स्थान हैं, सासादनगुणस्थान में २८, २९ व ३० प्रकृतिक तीन स्थान हैं, इनमें २८ प्रकृतिरूप स्थान तो देवगतिसहित, २९ प्रकृतिका स्थान तिर्यञ्च व मनुष्यगतिसंयुक्त एवं ३० प्रकृतिका स्थान तिर्यञ्चगति और उद्योतसहित बँधता है। मिश्रगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप एक ही स्थान है। असंयतगुणस्थानमें एवं तीन शुभलेश्यासहित देशसंयत व प्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ तथा देव-तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिक बन्धस्थान है। अप्रमत्तगुणस्थान में पूर्वोक्त २८ व २९ प्रकृतिरूप दो स्थान तथा आहारकद्विक सहित ३०-३१ प्रकृतिरूप स्थान ऐसे चारस्थान बँधते हैं। अपूर्वकरणगुणस्थान में शुक्ललेश्या ही है, यहाँ पर पूर्वोक्त चारस्थान और अन्तिमभागमें एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान इसप्रकार पाँचस्थान बँधते हैं। बादरअनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान में एक प्रकृतिरूप ही बन्धस्थान है। आगे उपशान्तादिगुणस्थानों में बन्धका अभाव है। भोगभूमिज मनुष्यों में भोगभूमिज तिर्यञ्चवत् बन्धस्थान का कथन जानना। अब देवगति में बन्धस्थान कहते हैं-

भवनत्रिक निर्वृत्त्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टिदेव तो २८ प्रकृतिक स्थानबिना २५-२६-२९-३० प्रकृतिरूप चार स्थानोंका बन्ध करते हैं। ये चारस्थान एकेन्द्रियपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिक, एकेन्द्रियपर्याप्त आतप या उद्योतसहित २६ प्रकृतिक, तिर्यंच-मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३०

प्रकृतिरूप हैं। सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुक्त २९ प्रकृतिरूप और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करते हैं। मनुष्य व तिर्यग्लोकसम्बन्धी कर्मभूमिज तिर्यञ्च, नागा, संन्यासी आदि एवं द्रव्यजिनलिङ्गी आदि मिथ्यादृष्टि तेजोलेश्यासे सौधर्मयुगलमें उत्पन्न होते हैं ये निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं तथा देवायुका जिनके बन्ध हुआ है ऐसे असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च तो प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी और प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य प्रथमोपशम एवं द्वितीयोपशमसम्यक्त्व की विराधना करके तेजोलेश्यासे सहित सौधर्मस्वर्गयुगलमें सासादनगुणस्थानवर्ती होते हैं। इनके निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक तथा तिर्यञ्चगति और उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप इन दो स्थानोंका बन्ध होता है। वेदक-क्षायिकसम्यग्दृष्टि सर्वभोगभूमिज और असंयत-देशसंयतगुणस्थानवर्ती-कर्मभूमिज-वेदकसम्यग्दृष्टितिर्यञ्च, तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित अथवा उससे रहित अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त देवायुके बन्धसे संयुक्त मनुष्य सौधर्मस्वर्गयुगलमें तेजोलेश्यासहित उत्पन्न होते हैं। ये जीव असंयतगुणस्थानकी निर्वृत्त्यपर्याप्तावस्थामें तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित मनुष्यगतिसंयुक्त ३० प्रकृतिक स्थानका एवं तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वरहित मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानका बंध करते हैं। पद्म-शुक्ललेश्यासहित असंयतभोगभूमिज, पद्म-शुक्ललेश्यावाले असंयतादि कर्मभूमिज और शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरणादिगुणस्थानवर्ती मरणकालमें तेजोलेश्याको प्राप्त करके ही सौधर्मस्वर्गयुगलमें उत्पन्न होते हैं तथा सनत्कुमारस्वर्गयुगलमें चक्रइन्द्रकसे श्रेणीबद्धपर्यन्त विमानोंमें तेजोलेश्या है, किन्तु यहाँपर भोगभूमिजबिना शेष जीवोंकी उत्पत्ति है। इनके निर्वृत्त्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि व सासादनगुणस्थानवर्ती तो तिर्यञ्चमनुष्यगतिसहित २९, तिर्यञ्चगति-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानोंका बन्ध करते हैं और असंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका एवं मनुष्य-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिका बन्ध करते हैं। आगे आठ स्वर्गोंमें देवायुके बन्धसहित कर्मभूमिज मनुष्यतिर्यञ्च पद्मलेश्यासहित उत्पन्न होते हैं सो ये मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानवर्ती तो तिर्यञ्च-मनुष्यगतिसहित दो स्थान और असंयतगुणस्थानवाला मनुष्य-तीर्थंकर सहित और तीर्थंकर रहित ऐसे दो स्थानोंको बाँधते हैं। आनतादि चार स्वर्गवासीदेवोंमें एवं नवग्रैवेयकमें शुक्ललेश्या है, ये मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें मनुष्यगतिसहित २९ तथा आनतादि चारस्वर्गोंके असंयतदेव एवं अनुदिश-अनुत्तरविमानवाले असंयतदेव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप या मनुष्य-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानको बाँधते हैं।

भव्वे सव्वमभव्वे, किण्हं वा उवसमम्मि खइए य।
सुक्कं वा पम्मं वा, वेदगसम्मत्तठाणाणि ॥५५०॥

अर्थ– भव्यमार्गणामें भव्योंके सर्व, अभव्यके कृष्णलेश्यावत् आदिके छह, सम्यक्त्वमार्गणामें उपशम व क्षायिकसम्यग्दृष्टिके शुक्ललेश्यावत् २८-२९-३०-३१ व १ ये ५ तथा वेदकसम्यक्त्व में पद्म लेश्या के समान २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ४ बन्धस्थान हैं।

विशेषार्थ– घर्मादि तीन नरकवाले नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि होकर मनुष्यगतिसंयुक्त २९ तथा मनुष्यगति व तीर्थंकरयुत ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। अवशेष पृथ्वियोंके नारकीजीव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको ही बाँधते हैं।

शंका– "**अविरदादि चत्तारि तित्थयरबन्धपारम्भया णरा केवलिदुगंते**" इत्यादि गाथा ९३ के अनुसार अविरतादि चारगुणस्थानवाले मनुष्य ही केवली-श्रुतकेवलीके निकट तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करते हैं तो फिर नरकमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध किसप्रकार है?

समाधान– जिन्होंने पहले नरकायुका बन्ध किया है, ऐसे मनुष्य प्रथमोपशम अथवा वेदक या क्षायिकसम्यक्त्वमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करते हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि मरणसमयमें मिथ्यादृष्टि होकर तृतीयपृथ्वीपर्यन्त उत्पन्न होते हैं वहाँ पर्याप्तिपूर्ण होनेके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके समयप्रबद्धमें तीर्थंकरप्रकृतिका भी बन्ध करते हैं।

प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च तो देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थान का ही बन्ध करते हैं तथा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्य जो असंयत-देशसंयत या प्रमत्तगुणस्थानवर्ती हैं वे देवगतिसंयुक्त २८ एवं देव व तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिका, किन्तु अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती, देव और आहारकद्विकसहित ३०, देव, तीर्थंकर व आहारकद्विकसहित ३१ प्रकृतिक इसप्रकार चारस्थानोंका बन्ध करते हैं। देवगति में प्रथमोपशमसम्यक्त्व उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त ही है अतः मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं, तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिक स्थानको नहीं बाँधते हैं क्योंकि देवायुके बन्धसहित तीर्थंकरका बन्ध करनेवालोंके सम्यक्त्वसे प्रच्युति नहीं होती और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए बिना प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है तथा वेदक सम्यक्त्वी अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती ही तीनकरण परिणामोंसे सातप्रकृतिका उपशमकरके द्वितीयोपशमसम्यक्त्व ग्रहण करता है इस सम्यक्त्वका काल अन्तर्मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्तके प्रथमसमयमें देवगतिसहित २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप चारस्थानोंको बाँधते हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागके प्रथमसमयसे छठेभाग पर्यन्त २८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप चार बन्धस्थानोंको बाँधता हुआ सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त एक-एक प्रकृतिस्थानका ही बन्ध करता है तथा उपशान्तकषायगुणस्थानके अन्तसमयपर्यन्त नामकर्मको नहीं बाँधता है। उपशान्तकषायगुणस्थानसे अनुक्रमसे उतरते हुए असंयतगुणस्थानवर्ती होकर प्रमत्तगुणस्थानवत् २८ व २९ प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध करता है। इसप्रकार द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें आठगुणस्थान हैं।[१] देवायुके बन्धसहित श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागबिना अन्यभागोंमें और उतरते हुए सर्वत्र यदि मरण हो जावे तो वैमानिकदेवोंमें यथासम्भव

१. किन्तु धवलाकार आदि के मत से उपशमश्रेणी चढ़ने वाले के चतुर्थ गुणस्थान में भी द्वितीयोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है। (ध.पु. १ पृ. २११)

निर्वृत्तिअपर्याप्तावस्थामें मनुष्ययुत २९ व मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। इस प्रकार उपशमसम्यक्त्वमें २९ व ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानरूप नामकर्मकी प्रकृतियोंका जिसके सत्त्व पाया जाता है वह प्रमत्तगुणस्थानसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है। तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके सत्त्वसहित असंयतादिक तीनगुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होनेसे तीर्थंकरप्रकृतिकी सत्तावाला सासादनगुणस्थान में नहीं जाता और इसके सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका भी उदय नहीं होनेसे मिश्रगुणस्थान नहीं होता, क्योंकि एक जीवके तीर्थंकर और आहारकद्विकका सत्त्व होते हुए मिथ्यात्वगुणस्थान नहीं होता, आहारकद्विक का सत्त्व होते हुए सासादनगुणस्थान नहीं होता और तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिश्रगुणस्थान नहीं होता, ऐसा जानना। क्षायिकसम्यग्दृष्टि यथासम्भव २८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप ५ स्थानोंको बाँधता है।

असंयतादि तीनगुणस्थानवर्ती वेदक और कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि तो २८ और २९ प्रकृतिरूप दो स्थान तथा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती २८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप चार स्थानोंको बाँधते हैं। भोगभूमिज वेदक तथा कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देवगतिसहित २८ प्रकृतिक स्थानको ही बाँधते हैं एवं कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ एवं मनुष्यगति-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध करता है और प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि देव व देवपर्यायमें ही जिनके वेदकसम्यक्त्व हुआ है ऐसे देव मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका ही बन्ध करते हैं। नारकी और भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त सादिमिथ्यादृष्टिजीव तीनकरणोंको किये बिना यथासम्भव सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे मिथ्यात्वको छोड़कर वेदकसम्यग्दृष्टि होकर मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानका ही बन्ध करते हैं।

अडवीसतिय दु साणे, मिस्से मिच्छे दु किण्हलेस्सं वा।
सण्णीआहारिदरे, सव्वं तेवीसछक्कं तु॥५५१॥

अर्थ– सासादनसम्यक्त्वमें २८ प्रकृतिरूप स्थानको आदि लेकर २८-२९ व ३० प्रकृतिक ३ बन्धस्थान हैं सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) में २८-२९ प्रकृतिक दो तथा मिथ्यात्वमें कृष्णलेश्यावत् आदिके २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं। सञ्ज्ञीमार्गणामें और आहारमार्गणामें सर्वबन्धस्थान हैं, असञ्ज्ञी एवं अनाहारमार्गणामें २३ प्रकृतिरूप स्थानको आदि लेकर छह बन्धस्थान हैं अर्थात् २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान हैं।

विशेषार्थ– सासादनगुणस्थानमें निर्वृत्त्यपर्याप्तक-बादर-पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येकवनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय सैनी-असैनी तिर्यञ्च व मनुष्य में, पर्याप्तनारकियोंमें और पर्याप्त व अपर्याप्त भवनत्रिकादिसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त देवोंमें २९-३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध होता है तथा पर्याप्तसञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यमें २८-२९-३० प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका बन्ध होता है (यहाँ

देवगति सहित २८ प्रकृतिक, तिर्यंचमनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक ऐसे तीन स्थान हैं) आनतादिस्वर्ग से उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त पर्याप्त-अपर्याप्तदेव मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानको ही बाँधते हैं तथा अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें सासादनगुणस्थान नहीं होता, क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टिदेव ही उत्पन्न होते हैं। मिश्रगुणस्थानवर्तीके २८-२९ प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान हैं यहाँ पर्याप्तदेव तथा नारकियोंमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक स्थानका एवं तिर्यञ्च व मनुष्योंमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें मिश्रगुणस्थान नहीं है। मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीवों में कृष्णलेश्यावत् २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं। आदिकी छह पृथ्वियोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक और पर्याप्तनारकीके तिर्यञ्च तथा मनुष्यगतियुत २९-३० प्रकृतिरूप दो स्थानोंका बन्ध है। सप्तम पृथ्वीमें तिर्यञ्चगतियुत २९-३० प्रकृतिरूप दो स्थान बँधते हैं।

तिर्यञ्चगतिमें लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृत्यपर्याप्तक बादर-सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायु-काय, साधारण-प्रत्येकवनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी-सैनी तिर्यञ्च और मनुष्यमें २८ प्रकृतिरूप स्थानके बिना २३-२५-२६-२९-३० प्रकृतिक ५ बन्धस्थान हैं।

नोट– तेजकाय और वायुकायमें मनुष्यगतियुत २५ व २९ प्रकृतिके बन्धस्थान नहीं हैं। पर्याप्तअसञ्ज्ञी-सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यके २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान बंधते हैं तथा लब्ध्यपर्याप्तक-निर्वृत्यपर्याप्तक मनुष्योंमें २८ प्रकृतिरूप स्थानके बिना शेष २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप ५ स्थान बँधते हैं। देवगतिमें निर्वृत्यपर्याप्त व पर्याप्तावस्थामें भवनत्रिकादिसे ईशानस्वर्गपर्यन्त तो २५-२६-२९ और ३० प्रकृतिरूप चारस्थान बँधते हैं एवं सनत्कुमारस्वर्गसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त २९-३० प्रकृतिक दोस्थान बँधते हैं। आनतादि स्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २९ प्रकृतिरूप एकही बन्धस्थान है, क्योंकि यहाँ तिर्यञ्चगतिका बन्ध नहीं होता है। अनुदिश व अनुत्तरविमानोंमें मिथ्यादृष्टि नहीं हैं।

सञ्ज्ञी और आहारमार्गणामें नामकर्मके सभी बन्धस्थान हैं। असंज्ञी व अनाहारकमार्गणामें २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छह बन्धस्थान हैं। सञ्ज्ञीनारकीके तो २९-३० प्रकृतिरूप दो स्थान तथा तिर्यञ्चमें तीर्थङ्कर व आहारकयुगलयुत स्थान बिना २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं, मनुष्यमें २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिक इसप्रकार सर्वस्थान हैं तथा देवोंमें २८ प्रकृतिक स्थानके बिना २५-२६-२९-३० प्रकृतिके चारस्थान हैं। असञ्ज्ञीमार्गणामें लब्ध्यपर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त-पर्याप्तबादर-सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायुकाय-साधारण-प्रत्येक-वनस्पतिकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय में तीर्थङ्कर व आहारकयुगलसहित स्थानके बिना २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छहस्थान हैं।

आहारमार्गणामें सानत्कुमारसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्तदेव व नरकमें २९ व ३० प्रकृतिक दो स्थान,

तिर्यञ्चमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिरूप छह स्थान हैं, मनुष्यमें २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ और १ प्रकृतिरूप सर्वस्थान हैं। भवनत्रिक व सौधर्मयुगलमें २३, २५, २९, ३० प्रकृतिक चारस्थान हैं। अनाहारमार्गणामें विग्रहगतिमें देव तथा नारकीके २९-३० प्रकृति के दो स्थान, तिर्यञ्चोंमें २३-२५-२६-२८-२९-३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं, इनमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिरूपस्थान असंयतके ही होता है। मनुष्यके २३-२५-२६-२८-२९ और ३० प्रकृतिरूप छहस्थान हैं। इसप्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोंका कथन मार्गणाओंमें किया।

चौदह मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

मार्गणा	मार्गणा के भेद	बंध स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या
गति	१. नरकगति	२	२९ व ३० प्रकृतिक।
	२. तिर्यञ्चगति	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	३. मनुष्यगति	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	४. देवगति	४	२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
इन्द्रिय व काय	१. एकेन्द्रिय (५ स्थावरकाय)	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	२. विकलत्रय (त्रसकाय)	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	३. पञ्चेन्द्रिय (त्रसकाय)	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
योग	चार मनोयोग चार वचनयोग औदारिककाययोग	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	औदारिकमिश्रकाययोग	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	वैक्रियिककाययोग वैक्रियिकमिश्रकाय	४	२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक।
	आहारककाययोग आहारकमिश्रकाय	२	२८ व २९ प्रकृतिक।
	कार्मणकाययोग	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।

वेद	नपुंसक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	स्त्री व पुरुषवेद		
कषाय	क्रोध-मान-माया व लोभ	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
ज्ञान	१. कुमति-कुश्रुत व कुअवधिज्ञान	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	२. मति-श्रुत-अवधि एवं मनःपर्ययज्ञान	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	३. केवलज्ञान	०	०
संयम	१. सामायिक व छेदोपस्थापना	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	२. परिहारविशुद्धि	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।
	३. सूक्ष्मसाम्पराय	१	१ प्रकृतिक।
	४. यथाख्यात	०	०
	५. देशसंयम	२	२८ व २९ प्रकृतिक।
	६. असंयम	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
दर्शन	चक्षु-अचक्षुदर्शन	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	अवधिदर्शन	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	केवलदर्शन	०	०
लेश्या	कृष्ण-नील-कापोत	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	तेजोलेश्या	६	२५-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।
	पद्मलेश्या	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।
	शुक्ललेश्या	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।

भव्य	भव्य	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	अभव्य	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
सम्यक्त्व	उपशम व क्षायिक	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	वेदकसम्यक्त्व	४	२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।
	सम्यग्मिथ्यात्व	२	२८ व २९ प्रकृतिक।
	सासादन	३	२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
	मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
सञ्ज्ञी	सञ्ज्ञी	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	असञ्ज्ञी	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।
आहार	आहारक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक।
	अनाहारक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक।

अथानन्तर नामकर्मके बन्धस्थानोंमें पुनरुक्त भङ्गोंको कहते हैं–

णिरयादिजुदट्ठाणे, भंगेणप्पप्पणम्मि ठाणम्मि।
ठविदूणमिच्छभंगे, सासणभंगा हु अत्थित्ति ॥५५२॥

अविरदभंगे मिस्सयदेसपमत्ताण सव्वभंगा हु।
अत्थित्तितेदु अवणिय, मिच्छाविरदापमादेसु ॥५५३॥जुम्मं॥

अर्थ– नरकादिगतिसहित स्थानोंको अपने-अपने भङ्गोंके साथ अपने-अपने गुणस्थानोंमें स्थापित करना इनमें मिथ्यादृष्टिके स्थानोंके भङ्गों में सासादन के बन्धस्थानों के भंग गर्भित हैं और असंयत के बन्धस्थानों के भङ्गों में मिश्र-देशसंयत व प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी बन्धस्थानों के भङ्ग गर्भित हैं, क्योंकि इनके भङ्गोंमें परस्पर समानता पाई जाती है इसलिये मिथ्यादृष्टि के भङ्गोंमें से सासादनगुणस्थानके भङ्गोंको घटाकर और असंयत के भङ्गोंमें से मिश्र, देशसंयत व प्रमत्तगुणस्थानके भङ्ग घटाकर मिथ्यादृष्टि असंयत तथा अप्रमत्तगुणस्थान में बन्धस्थानोंके भङ्ग होते हैं।

विशेषार्थ– यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकयुत २८ प्रकृतिके स्थानमें एक भङ्ग है। तिर्यञ्चगतियुत २३ प्रकृतिके स्थानमें एक, २५ प्रकृतिके स्थानमें आठ, २६ प्रकृतिके स्थानमें आठ, २९ प्रकृतिरूपस्थानमें

४६०८, ३० प्रकृतिरूप स्थानमें ४६०८, मनुष्ययुत २५ प्रकृतिके स्थानमें एक, २९ प्रकृतिके स्थानमें ४६०८, देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें ८ भङ्ग हैं। सासादनगुणस्थानमें नरकगतियुत स्थान नहीं है। तिर्यञ्चगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानमें ३२००, ३० प्रकृतिके स्थानमें ३२००। मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप स्थानमें ३२०० एवं देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें ८ भङ्ग हैं। मिश्र और असंयतगुणस्थानमें नरक-तिर्यञ्चगतियुत स्थान नहीं है अतः मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिके स्थानमें आठ भङ्ग हैं। देवगतियुत २८ प्रकृतिके स्थानमें आठ भङ्ग हैं, असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९-३० प्रकृतिके एवं देवयुत २८-२९ प्रकृतिके स्थानोंमें आठ भङ्ग हैं। देवगतियुत २८-२९-३०-३१ प्रकृतिरूप स्थानोंमें एक-एक भंग है, क्योंकि इनका बन्ध अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त होता है। देशसंयत और प्रमत्तगुणस्थानमें देवगतियुत २८-२९ प्रकृतिरूप स्थानमें आठ-आठ भङ्ग हैं।

गुणस्थान	बन्ध स्थान	भंग	विशेष
मिथ्यात्व	तिर्यञ्चगतियुत २३ प्रकृतिक	१	
मिथ्यात्व	तिर्यञ्चगतियुत २५ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल
मिथ्यात्व	मनुष्ययुत २५ प्रकृतिक	१	२×२×२ = ८
मिथ्यात्व	तिर्यञ्चयुत २६ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल
मिथ्यात्व	नरकयुत २८ प्रकृतिक	१	२×२×२ = ८
मिथ्यात्व	देवयुत २८ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल २×२×२ = ८
मिथ्यात्व	पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचयुत २९ प्र.	४६०८	संहनन-संस्थान-स्थिरादि ६ युगल-विहायोग. ६×६×६×२
मिथ्यात्व	मनुष्यपर्याप्तयुत २९ प्रकृतिक	४६०८	संहनन-संस्थान-स्थिरादि ६ युगल-विहायोग. ६×६×६×२
मिथ्यात्व	पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक	४६०८	संहनन-संस्थान-स्थिरादि ६ युगल-विहायोग. ६×६×६×२
असंयत-सम्यग्दृष्टि	मनुष्यपर्याप्तयुत २९ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल २×२×२ = ८
	देव-तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल २×२×२ = ८
	मनुष्य तीर्थङ्करयुत प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल २×२×२ = ८
	देवगतियुत २८ प्रकृतिक	८	शुभ-स्थिर-यशःकीर्तियुगल २×२×२ = ८

भुजगारा अप्पदरा, अवट्ठिदावि य सभंगसंजुत्ता।
सव्वपरट्ठाणेण य, णेदव्वा ठाणबंधम्मि ॥५५४॥

अर्थ– पूर्वोक्त जो बन्धस्थान हैं वे भुजकार २२, अल्पतर २१, अवस्थित ४६ और च शब्दसे अवक्तव्यके ३ मूलभेदसे चारप्रकारके हैं। वे अपने-अपने भङ्गोंसे सहित नामकर्मके बन्धस्थानोंमें स्वस्थान एवं परस्थान इन दोनोंके साथ अथवा सर्वपरस्थानोंके साथ लगाने चाहिए।

अब उन स्वस्थानादिकोंका लक्षण कहते हैं–

अप्पपरोभयठाणे, बंधट्ठाणाण जो दु बंधस्स।
सट्ठाण परट्ठाणं, सव्वपरट्ठाणमिदि सण्णा ॥५५५॥

अर्थ– अपने विवक्षितगुणस्थानमें विचार आत्मस्थान, अन्यगुणस्थानकी अपेक्षा विचारपरस्थान, अन्यगति और अन्यही गुणस्थानरूप उभयस्थानकी अपेक्षा विचार सर्वपरस्थान इन तीनोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयत व अप्रमत्तके बन्धस्थानसम्बन्धी जो भुजाकारादि बन्ध हैं उनमें क्रमसे स्वस्थान भुजाकारादि, परस्थानभुजाकारादि और सर्वपरस्थानभुजाकारादि ये तीन नाम हैं।

चदुरेक्कदुपण पंच य, छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता।
तिसु उवसमगे संतेत्ति य, तियतिय दोण्णि गच्छंति ॥५५६॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थानसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्तके जीव अपने-अपने गुणस्थानोंको छोड़कर क्रमसे चार, एक, दो, पाँच, पाँच, छह और तीन गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं। अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानवर्तीजीव उपशमश्रेणीमें पाए जानेवाले तीन-तीनगुणस्थानोंको तथा उपशान्तकषायगुणस्थानवाले जीव दोगुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं।

किस-किस गुणस्थानवर्तीजीव किस-किस गुणस्थानको प्राप्त होता है–

सासणपमत्तवज्जं, अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो।
मिच्छत्तं बिदियगुणो, मिस्सो पढमं चउत्थं च ॥५५७॥

अविरदसम्मो देसो, पमत्तपरिहीणमप्पमत्तंतं।
छट्ठाणाणि पमत्तो, छट्ठगुणं अप्पमत्तो दु ॥५५८॥ जुम्मं॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थानवाला जीव सासादन और प्रमत्तगुणस्थानके बिना मिश्रसे

अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त चारगुणस्थानोंको प्राप्त होता है। सासादनगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्वको एवं मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानको प्राप्त होता है। असंयत व देशसंयतगुणस्थानवर्ती प्रमत्तगुणस्थानके बिना अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त पाँच गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं अर्थात् असंयतसम्यग्दृष्टिजीव मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, देशसंयत और अप्रमत्त इन पाँच गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं तथा देशसंयतगुणस्थानवाले मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होते हैं। प्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव मिथ्यात्वसे अप्रमत्तपर्यन्त छहगुणस्थानोंको तथा अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती एक मात्र प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होता है और 'दु' शब्दसे अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती यदि उपशम और क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है तो अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त होता है। अप्रमत्तजीव मरणकरके देवअसंयत होकर चतुर्थगुणस्थान को भी प्राप्त करता है, ऐसा समझना।

उवसामगा दु सेढिं, आरोहंति य पडंति य कमेण।
उवसामगेसु मरिदो, देवासंतं समप्पेइ ॥५५९॥

अर्थ– अपूर्वकरणादि गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालेजीव उपशमश्रेणीमें आरोहण (चढ़ना) एवं अवरोहण (उतरना) क्रमसे ही करते हैं। अतः आरोहणकी अपेक्षा ऊपरका एकगुणस्थान तथा अवरोहणकी अपेक्षा नीचेका एक गुणस्थान ऐसे दो गुणस्थान और उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा चतुर्थगुणस्थान भी होता है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें मरणको प्राप्त जीव देव असंयत होते हैं। इसप्रकार उपशमश्रेणिमें होनेवाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीवोंके तीन-तीन गुणस्थान होते हैं। उपशमश्रेणी पर आरोहण करनेवाला उपशान्तकषायगुणस्थानसे आगे नहीं बढ़ता अतः वहाँ गिरने की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान एवं मरण हो जावे तो देवअसंयत होनेसे चतुर्थगुणस्थान इसप्रकार दो गुणस्थान उपशान्तकषायवर्तीजीवके होते हैं।

विशेषार्थ– यहाँ गतिकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि तो मिश्र व असंयत गुणस्थानको, सासादनगुणस्थानवाला मिथ्यात्वको; मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व तथा असंयतको, असंयतगुणस्थानवाला मिथ्यात्व-सासादन व मिश्रको प्राप्त होता है। तिर्यञ्चमिथ्यादृष्टि मिश्र-असंयत और देशसंयतगुणस्थानको; सासादनवर्ती मिथ्यात्वको; मिश्रगुणस्थानवाला मिथ्यात्व एवं असंयतको; असंयतगुणस्थानवर्ती देशसंयतपर्यन्त चारगुणस्थानोंको तथा देशसंयतगुणस्थानवाला चार गुणस्थानोंको प्राप्त होता है। मनुष्य मिथ्यादृष्टि सासादन व प्रमत्तके बिना अप्रमत्तपर्यन्त चार गुणस्थानोंको; सासादनवर्ती मिथ्यात्वको, मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व-असंयतको; असंयतवाला प्रमत्तबिना अप्रमत्तपर्यन्त पाँच गुणस्थानोंको; देशसंयतवर्ती प्रमत्तबिना अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त पाँच गुणस्थानोंको; प्रमत्तवर्ती अप्रमत्तपर्यन्त छहको; अप्रमत्तवर्ती प्रमत्त व अपूर्वकरणको एवं मरण हो तो देव असंयतको; अपूर्वकरणवाला श्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरणको और उतरते हुए अप्रमत्तको तथा मरण होनेपर देव असंयतको प्राप्त होता है।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवाला श्रेणी चढ़ते हुए सूक्ष्मसाम्परायको और उतरते हुए अपूर्वकरण एवं मरण होनेपर देव असंयतको; सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती चढ़ते हुए उपशान्तकषायको तथा उतरते हुए अनिवृत्तिकरणको, मरण होनेपर देव असंयतको; उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायको, मरण होनेपर देव असंयतको प्राप्त होता है। क्षपकश्रेणीमें चढ़ना ही है उतरना नहीं इसलिए अपूर्वकरणगुणस्थानवाला अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको अनिवृत्तिकरणवाला सूक्ष्मसाम्परायको तथा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती क्षीणकषायको, क्षीणकषायगुणस्थानवाला सयोगीगुणस्थानको, सयोगी अयोगीगुणस्थानको, अयोगी सिद्धपदको प्राप्त होते हैं। मिथ्यादृष्टि देव मिश्र व असंयतगुणस्थानको, सासादनवाला मिथ्यात्वको, मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यात्व और असंयतगुणस्थानको तथा असंयतगुणस्थानवाला मिथ्यात्व-सासादन और मिश्रगुणस्थानको प्राप्त होता है।

अथानन्तर किस-किसगुणस्थानवाले जीव मरणको प्राप्त नहीं होते यह कहते-हैं–

मिस्सा आहारस्स य, खवगा चडमाणपढमपुव्वा य।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥५६०॥

अणसंजोजिदमिच्छे, मुहुत्तअंतं तु णत्थि मरणं तु।
किदकरणिज्जं जाव दु, सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥५६१॥ जुम्मं ॥[1]

अर्थ– मिश्रगुणस्थानवर्ती, आहारकमिश्रकाययोगी, क्षपकश्रेणीवाले, उपशमश्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागवर्ती, प्रथमोपशमसम्यक्त्वी, सप्तमनरकके द्वितीय, तृतीय और चतुर्थगुणस्थानवर्तीजीव मरणको प्राप्त नहीं होते। अनन्तानुबन्धी का विसंयोजनकर मिथ्यात्वको प्राप्त जीवका अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त मरण नहीं होता तथा दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाला जीव जबतक कृतकृत्यवेदक होता है तबतक मरण नहीं करता। कृतकृत्यता होनेके पश्चात् ही मरण करता है। अथवा जबतक कृतकृत्यवेदक है तबतक मरण नहीं होता।

आगे बद्धायुष्ककृतकृत्यवेदकके प्रति पूर्वोक्त तीनस्थानोंमें सर्व परस्थानोंके अर्थवान् पदोंको कहते हैं–

देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुंपि।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमसो अंतोमुहुत्तेण ॥५६२॥

अर्थ– कृतकृत्यवेदकका काल अन्तर्मुहूर्त है इसके चार भाग करना। क्रमसे प्रथमभागके

१. प्रा.पं.सं.पृ. ११७ गाथा ९३ (टीकागत)।

अन्तर्मुहूर्तमें मरण करनेवाला जीव देवोंमें उत्पन्न होता है। द्वितीयभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरनेवाला देवोंमें या मनुष्योंमें, तृतीयभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरणकर देव, मनुष्य या तिर्यञ्चोंमें तथा चतुर्थभागके अन्तर्मुहूर्तमें मरणको प्राप्त जीव देव-मनुष्यतिर्यञ्च या नरकोंमेंसे किसी एकस्थानमें जन्म लेता है।

विशेषार्थ– बावीसाए विहत्तीओ को होदि? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे समत्ते सेसे।[1] (चूर्णिसूत्र) जइवसहाइरियस्स बे उवएसा। तत्थ कदकरणिज्जो ण मरदि त्ति उवदेसमस्सिदूण एदं सुत्तं कदं, तेण मणुस्सा चेव बावीसविहत्तिया त्ति सिद्धं कदकरणिज्जो मरदि त्ति उवएसो जइवसहाइरियस्स अत्थि त्ति कथं णव्वदे? 'पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि णियमा देवेसु उववज्जदि। जदि णेरइएसु तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उववज्जदि तो णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो' त्ति जइवसहाइरियमुहविणिग्गयचुण्णिसुत्तादो।

अर्थ– यतिवृषभाचार्यके दो उपदेश हैं। उनमें से कृतकृत्यवेदीजीव मरण नहीं करता है इस उपदेशका आश्रय लेकर यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है, इसलिए मनुष्य ही बाईसप्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं यह बात सिद्ध होती है।

शङ्का– कृतकृत्यवेदी जीव मरता है यह उपदेश यतिवृषभाचार्यका है यह कैसे जाना जाता है?

समाधान– 'कृतकृत्यवेदक जीव यदि कृतकृत्य होनेके प्रथमसमयमें मरण करता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, किन्तु जो कृतकृत्यवेदक जीव नारकी, तिर्यञ्च और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है वह नियमसे अन्तर्मुहूर्तकालतक कृतकृत्यवेदक रहकर ही मरता है' इसप्रकार यतिवृषभाचार्यके द्वारा कहे गए चूर्णिसूत्रसे जाना जाता है कि कृतकृत्यवेदक जीव मरता है।[2]

अब नामकर्मके बन्धस्थानोंको कहते हैं–

तिविहो दु ठाणबंधो भुजगारप्पदरवट्ठिदो पढमो।
अप्पं बंधंतो बहुबंधे बिदियो दु विवरीयो ॥५६३॥

तदियो सणामसिद्धो सव्वे अविरुद्धठाणबंधभवा।
ताणुप्पत्तिं कमसो भंगेण समं तु वोच्छामि ॥५६४॥ जुम्मं॥

अर्थ– नामकर्मके बन्धस्थान तीनप्रकारके हैं, तद्यथा– भुजकार, अल्पतर और अवस्थित। पूर्वमें अल्पप्रकृतियोंका बन्ध करता था पश्चात् अधिक प्रकृतियोंको बाँधने लगे तो यह भुजकारबन्ध

१. जयधवल पु. २ पृ. २१३। २. जयधवल पु. २ पृ. २१५।

कहलाता है। पहले अधिक प्रकृतियाँ बाँधता था पीछे अल्पप्रकृतियाँ बाँधे तो यह अल्पतरबन्ध है। जितनी प्रकृतियाँ पूर्वमें बँधती थीं पश्चात् भी उतनी ही प्रकृतियाँ बाँधे सो यह अवस्थितबन्ध है। ये भुजकारादिबन्ध अविरुद्ध बन्धस्थानोंसे उत्पन्न होते हैं अतः उनकी उत्पत्तिके क्रमको भङ्गोंसहित आगेकी गाथामें कहेंगे।

भूबादरतेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं।
बंधदि मिच्छादिट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो ॥५६५॥

अर्थ– बादर पृथ्वीकायादि जीव २३ प्रकृतिरूप स्थानके सर्वभंगोंका बन्ध करते हुए २५ प्रकृतिरूप स्थानके सभी भङ्गोंको बांधते हैं सो एक यह भुजगारबन्ध है। इसीप्रकार मिथ्यादृष्टिके नामकर्मसम्बन्धी शेष सभी बन्धस्थानोंमें भी बन्धके भङ्ग जानने चाहिए।

जसकित्तिं बंधंतो अडवीसाई हु एक्कतीसंता।
तेवीसाई बंधइ तीसंता हवंति भुजयारा ॥५५८॥
इगितीसंता बंधइ बंधंतो अट्ठवीसाई।

अर्थ– एक यशःकीर्तिका बन्ध करता हुआ अट्ठाईसप्रकृतिको आदि लेकर इकतीसप्रकृतिपर्यन्तके स्थानोंका बन्ध करता है। इसीप्रकार २३ आदि प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करनेवाला जीव २५ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर तीसप्रकृतिक स्थानपर्यन्त स्थानोंको बाँधता है तथा २८ आदि प्रकृतिक स्थानोंको बाँधता हुआ जीव २९ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त स्थानोंका बन्ध करता है। इसप्रकार नामकर्मके २२ भुजकारबन्धस्थान होते हैं। भुजकार बन्धस्थानोंकी अङ्कसन्दृष्टि इसप्रकार है–

स्वस्थान भुजकारबन्धस्थान संख्या	४	५	४	३	३	२	१
	भु.	भु.	भु.	भु.	भु.	भु.	भु.
	१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
	२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
	२९	२६	२८	२९	३०	३१	
	३०	२८	२९	३०	३१		
	३१	२९	३०				
		३०					

इसप्रकार नामकर्मके (४+५+४+३+३+२+१) २२ भुजकारबन्धस्थान होते हैं।

विशेषार्थ– अब पूर्वमें जो बादरपृथ्वीकायादि ४१ पद कहे थे उनमें भङ्गसहित स्थानोंका कथन करते हैं– अपर्याप्तपृथ्वी-अप्-तेज-वायु और साधारणवनस्पतिकायके सूक्ष्म-बादर तथा प्रत्येकवनस्पति इसप्रकार अपर्याप्त एकेन्द्रियके ११ भेदोंसहित २३ प्रकृतिका बन्ध करनेवालोंके स्थान ११ प्रकार हैं। यहाँ भंग एक-एक ही हैं अत: इन ११ स्थानोंके ११ भंग हैं। २५ प्रकृतिकके बन्धमें बादरपर्याप्त-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकायरूप पाँच भेदोंसहित बंध करनेवाले स्थिर-शुभ और यशस्कीर्तियुगलोंकी प्रकृतियोंकी चालना (परिवर्तन) से आठ-आठ भंग पाए जाते हैं अत: सर्वभंग ४० हुए। पर्याप्तबादर-साधारण और सूक्ष्मपर्याप्त पृथ्वी-अप्-तेज-वायु तथा साधारणवनस्पतिकायरूप छह भेदसहित स्थिर व शुभयुगलों की प्रकृतियोंकी चालनासे चार-चार भङ्गोंकी अपेक्षा २४ भङ्ग तथा अपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असञ्ज्ञी-सञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्य इन छह अपर्याप्तरूप भेदोंमें मात्र अप्रशस्तप्रकृतियोंका ही बन्ध होनेसे ६ भंग हुए। इसप्रकार २५ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके (४०+२४+६) सर्वभंग ७० हुए। २६ प्रकृतिके स्थानमें बादरपृथ्वीकायसहित आतप और उद्योतयुक्त दो स्थान एवं अप्काय और वनस्पतिकायसहित उद्योतयुक्त दो स्थान ऐसे चारस्थानोंमें स्थिर-शुभ और यशस्कीर्तियुगलकी चालना से आठ-आठभंग की अपेक्षा (८×४) ३२ भंग हैं।

देवगतिसहित २८ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें स्थिरादि पूर्वोक्त तीनयुगलोंसे आठ-भंग और नरकगतिसहित इसी स्थानमें अप्रशस्तप्रकृतियोंके ही बन्धकी अपेक्षासे एकभंग इसप्रकार २८ प्रकृतिके स्थानमें ९ भंग होते हैं। २९ प्रकृतिके स्थानमें पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय एवं पञ्चेन्द्रियरूप चार भेदोंसे सहित पूर्वोक्त स्थिरादि तीनयुगलकी अपेक्षा आठ-आठ भंग होनेसे ३२ भंग तथा तिर्यञ्च व मनुष्यगतिसहितस्थानोंमें ६ संस्थान, ६ संहनन व स्थिरसे विहायोगतिपर्यन्त सातयुगलोंकी प्रकृतियोंकी चालना (परिवर्तन) से ४६०८+४६०८=९२१६ भङ्ग हुए। इसप्रकार ९२१६ में पूर्वोक्त ३२ भङ्ग मिलानेसे २९ प्रकृतिक स्थानमें सर्वभङ्ग (९२१६+३२=) ९२४८ हैं। ३० प्रकृतिकके स्थानमें उद्योतसहित पर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-संयुक्त भेदों में स्थिर, शुभ और यशस्कीर्तिरूप तीनयुगलोंकी चालनासे आठ-आठ भङ्गकी विवक्षा है अत: ८×४=३२ भङ्ग एवं उद्योतयुत सञ्ज्ञी तिर्यञ्चरूप एकस्थानमें ६ संस्थान, ६ संहनन और पूर्वोक्त स्थिरसे विहायोगतिपर्यन्त सातयुगलोंकी अपेक्षा ४६०८ भङ्ग हैं। इसप्रकार ३० प्रकृतिरूप स्थानमें ३२+४६०८=४६४० सर्वभङ्ग जानना। ये सर्वभङ्ग मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी हैं। अब उपर्युक्त भङ्गसम्बन्धी भुजकारादि बन्धोंको नानाकालकी अपेक्षा कहते हैं–

पूर्वमें २३ प्रकृतिक स्थानको बाँधता था, पश्चात् २५-२८ आदि प्रकृतिको बाँधने लगा यही भुजकार बन्ध है। यहाँ बादरपृथ्वीकायसहित २३ प्रकृतिरूप स्थानके एक भङ्गको बाँधता था पश्चात् २५

प्रकृतिके स्थानको आदि लेकर सर्वस्थानोंके भंगोंको बाँधता है तो २३ प्रकृतिक स्थानके ११ भङ्गोंको बाँधते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो २३ प्रकृतिक बन्धस्थानका एक ही भेद, फलराशि अनुक्रमसे २५ प्रकृतिक स्थानके ७०, २६ प्रकृतिक बन्धस्थानके ३२, २८ प्रकृतिक बन्धस्थानके ९, २९ प्रकृतिरूप बन्धस्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिरूप स्थानके ४६४० भंग हैं। इच्छाराशि सर्वत्र २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग हैं अतः फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेसे सर्वभेदोंका प्रमाण आता है। इसप्रकार यहाँ इच्छाराशिका प्रमाण ११ और फलराशि ७०+३२+९+९२४८+४६४०=१३,९९९ भंग और प्रमाणराशि १। $\frac{१३,९९९\times११}{१}$ = १,५३,९८९ भेद हुए सो ये २३ प्रकृतिरूप स्थानके भुजकार भंग हुए तथा २५ प्रकृतिका बन्धकर पश्चात् २६ प्रकृतिरूप स्थानसे ३० प्रकृतिक स्थानपर्यन्त सर्वस्थानोंको बाँधता है तब भुजकार बन्ध होता है। एकभेदरूप २५ प्रकृतिके स्थानका बन्धकर पश्चात् २६ आदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध होता है तो २५ प्रकृतिरूप स्थानके ७० भंगोंको बाँधते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर सर्वत्र प्रमाणराशि २५ प्रकृतिरूप एकस्थान, फलराशि क्रमसे २६ प्रकृतिक स्थानके ३२ भंग, अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ९, उनतीस प्रकृतिक स्थानके ९२४८ और तीस प्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग और इच्छाराशि पच्चीसप्रकृतिक स्थानके ७० भंग। सो फलराशि ३२+९+९२४८+४६४०=१३,९२९ को इच्छाराशिके प्रमाण ७० से गुणा करनेपर १३,९२९×७०=९,७५,०३० ये २५ प्रकृतिकस्थानके भंग हुए। प्रमाणराशिका प्रमाण यहाँ भी एक ही था। २६ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करके २८ आदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है अतः भुजकारबन्ध है। छब्बीस प्रकृतिरूपस्थानके एक भंगका बन्ध करनेके अनन्तर अट्ठाईस आदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध करे तो २६ प्रकृतिक स्थानके ३२ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा? इसप्रकार यहाँ त्रैराशिकविधि करना। प्रमाणराशि तो २६ प्रकृतिक स्थानका एक भेद, फलराशि क्रमसे २८ प्रकृतिक स्थानके ९, उनतीस प्रकृतिक स्थानके ९२४८, तीसप्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग हैं तथा इच्छाराशि छब्बीसप्रकृतिक स्थानके ३२ भंग हैं। फलराशि ९+९२४८+४६४०=१३,८९७ को इच्छाराशिके प्रमाण ३२ से गुणा करनेपर (१३८९७×३२) ४,४४,७०४ प्रमाण छब्बीस प्रकृतिरूप स्थानके भंग जानने। २८ प्रकृतिका बन्ध करके पश्चात् उनतीस व ३० प्रकृतिका बन्ध करता है सो यह भुजकारबन्ध है। अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानके एक भेदका बन्धकरके २९ व ३० प्रकृतिके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके ९ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिक विधि करनेपर यहाँ प्रमाणराशि २८ प्रकृतिक बन्धस्थानरूप एकभेद, इच्छाराशि २८ प्रकृतिक स्थानके ९ भंग तथा फलराशि क्रमसे उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिरूप स्थानके ४६४० भंग हैं। फलराशि ९२४८+४६४०=१३,८८८ को इच्छाराशि ९ से गुणा करनेपर (१३,८८८×९) १,२४,९९२ भंग २८ प्रकृतिक स्थानके जानना। उनतीस प्रकृतिका बन्ध करके अनन्तर तीस प्रकृतियोंके स्थानको बाँधता है तो भुजकारबन्ध होता है। २९ प्रकृतियोंके एक भेदको बाँधकर ३० प्रकृतियोंके सर्व ४६४० भंगोंको बाँधता है तो २९ प्रकृतियोंके

९२४८ भंगोंको बाँधते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिकविधिमें प्रमाणराशि उनतीस प्रकृतिके स्थानका एकभेद, इच्छाराशि उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भंग फलराशि ३० प्रकृतिक स्थानके ४६४० भंग। फलराशि ४६४० को इच्छाराशि ९२४८ से गुणाकरके प्रमाणराशि १ का भाग देनेपर $\frac{४६४०\times९२४८}{१}$ =४,२९,१०,७२० भंग उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके भुजकार जानना। इस सम्बन्धमें प्राकृत पंचसंग्रह (ज्ञानपीठ) पृ. ३३७ से ३४९ तक भी देखना चाहिए। विस्तारके भयसे यहाँपर नहीं लिखा गया है।

तेवीसट्ठाणादो मिच्छत्तीसोत्ति बंधगो मिच्छो।
णवरि हु अट्ठावीसं पंचिंदियपुण्णगो चेव ॥५६६॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धयोग्य २३ प्रकृतिकस्थानसे ३० प्रकृतिरूप स्थान पर्यन्त स्थानोंके भुजकारोंका बन्ध करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव ही है। यहाँ विशेषता यह है कि २८ प्रकृतिक स्थानको पञ्चेन्द्रियपर्याप्त ही बाँध सकता है।

अथानन्तर भोगभूमिज जीवोंके नामकर्मसम्बन्धी बन्धस्थान कहते हैं–

भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णे।
तिरिउगतीसं तीसं णरउगुतीसं च बंधदि हु॥५६७॥

अर्थ– भोगभूमिमें पर्याप्तपञ्चेन्द्रियसम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि और 'च' शब्दसे निर्वृत्त्यपर्याप्तसम्यग्दृष्टि जीव देवगतिसहित २८ प्रकृतियोंको ही बाँधते हैं तथा निर्वृत्त्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चगतिसहित २९ व ३० प्रकृतिरूप स्थानको और मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक स्थानको बाँधता है।

मिच्छस्स ठाणभंगा एयारं सदरि दुगुणसोल णवं।
अडदालं बाणउदी सदाण छादाल चत्तधियं॥५६८॥

अर्थ– पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टिजीवके बन्धस्थानोंमें २३ प्रकृतिक स्थानके ११,२५ प्रकृतिकस्थानके ७०,२६ प्रकृतिक स्थानके ३२, अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानके ९, उनतीसप्रकृतिक स्थानके ९२४८ और ३० प्रकृतिकस्थानके ४६४० भंग हैं। इसप्रकार स्थान और उनके भंग जानना।

आगे अल्पतर भङ्गोंका कथन करते हैं–

विवरीयेणप्पदरा होंति हु तेरासिएण भंगा हु।
पुव्वपरट्ठाणाणं भंगा इच्छा फलं कमसो ॥५६९॥

अर्थ– भुजकारबन्धके भंगोंकी संख्या प्राप्त करनेके लिए जिस क्रमसे त्रैराशिक विधिकी थी उससे विपरीत क्रमसे त्रैराशिक विधि करनेपर अल्पतरभंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है। पूर्वस्थानके भंगोंको इच्छाराशि तथा आगे-आगेके स्थानोंके भंगोंको फलराशि माननेपर अनुक्रमसे अल्पतरबन्धके भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ–

तीसाइ[1] तेवीसंता तह तीसुगुतीसमेक्कमिगितीसं ॥२५९॥
इक्कं बंधइ णियमा अडवीसुगुतीस बंधंतो।
उवरदबंधो हेट्ठा एक्कं देवेसु तीसमुगुतीसा ॥२६०॥

अर्थ– ३० प्रकृतिकस्थानको आदि लेकर २३ प्रकृतिक स्थानपर्यन्तके स्थानोंको बाँधनेपर तथा ३१ प्रकृतिक स्थानको बाँधकर २९ और एक प्रकृतिक स्थानको बाँधनेपर अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक स्थानको बाँधनेवाला एक प्रकृतिका बन्ध करता है तो अल्पतरबन्धस्थान होते हैं। अङ्क सन्दृष्टि इसप्रकार है–

स्वस्थान	अल्पतरबन्धस्थान संख्या–	५	४	३	२	१	३	१	१	१
	अल्पतर	३०	२९	२८	२६	२५	३१	२८	२९	३०
	बन्ध–	२९	२८	२६	२५	२३	३०	१	१	१
	स्थानोंमें	२८	२६	२५	२३		२९			
	प्रकृति	२६	२५	२३			१			
	संख्या	२५	२३							
		२३								

अवक्तव्यबन्धस्थान– उपरत बन्धवाला नीचे उतरकर एक प्रकृतिका बन्ध करता है अथवा मरकर देवोंमें उत्पन्न हो तीस अथवा २९ प्रकृतियोंको बाँधता है।

तीन अवक्तव्य बन्धस्थानोंकी अङ्क सन्दृष्टि– ०
१
३०
२९

१. प्रा.पं.सं.पृ. १९८

पूर्वमें तीस प्रकृतियोंका बन्ध करता था पश्चात् उनतीसआदि प्रकृतियोंका बन्ध करे तो यह अल्पतरबन्ध कहलाता है। यहाँ तीस प्रकृतिरूप स्थानके एकभङ्गका बन्धकरके उनतीसआदि प्रकृतिरूप स्थानोंके सर्वभङ्गोंका बन्ध करे तो तीसप्रकृतिरूप स्थानके ४६४० भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंका बन्ध करेगा? इसप्रकार त्रैराशिकविधिके होनेपर प्रमाणराशि तो तीसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद है, फलराशि क्रमसे उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८, अट्ठाईसप्रकृतिके ९, छब्बीसप्रकृतिके ३२, पच्चीसप्रकृतिरूप स्थानके ७० और तेईसप्रकृतिरूप स्थान के ११ भङ्ग हैं इन सभीको परस्पर जोड़ देनेपर ९२४८+९+३२+७०+११=९३७० फलराशिका प्रमाण हुआ तथा सर्वत्र इच्छाराशिका प्रमाण तीसप्रकृतिके ४६४० भङ्ग हैं। इच्छाराशिसे फलराशिको गुणा करनेपर और प्रमाणराशि एकसे भाग देनेपर $\frac{९३७०\times४६४०}{१}$ =४,३४,७६,८०० प्रमाण ३० प्रकृतिरूप स्थानसम्बन्धी अल्पतरके भङ्ग हुए। उनतीसप्रकृतिका पूर्वमें बन्ध करता था अनन्तर २८ आदि प्रकृतियोंका बन्ध करे तब अल्पतरबन्ध होता है। अतः उनतीसप्रकृतिके एकभंगका बन्धकरके २८ आदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भंगका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर यहाँ प्रमाणराशि तो उनतीस प्रकृतिके स्थानका एक भेद, फलराशि क्रमसे अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ९, २६ प्रकृतिक स्थानके ३२, पच्चीसप्रकृतिके ७० और तेईसप्रकृतिके ११ भंग जानना। इन सबको परस्पर मिला देनेसे ९+३२+७०+११=१२२ यह फलराशिका प्रमाण हुआ, इच्छाराशि उनतीस प्रकृतिरूप स्थानके ९२४८ भंग जानना। फलराशि १२२ को इच्छाराशि ९२४८ से गुणा करनेपर और प्रमाणराशि एक का भाग देनेपर १२२×९२४८÷१ = ११,२८,२५६ प्रमाण उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके अल्पतरभंग हैं। २८ प्रकृतिरूप स्थानके १ भेदका बन्ध करके छब्बीसआदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है सो यह अल्पतर बन्ध है। यहाँ अट्ठाईसप्रकृतिके एक भंगका बन्धकरके छब्बीसआदि प्रकृतियोंके सर्वभंगोंका बन्ध करता है तो अट्ठाईसप्रकृतिके ९ भंगोंका बन्ध करते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो अट्ठाईसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद, फलराशि छब्बीसप्रकृतिके ३२, पच्चीसप्रकृतिके ७० तथा तेईसप्रकृतिरूप स्थानके ११ भङ्ग हैं इन सभीको परस्पर जोड़ देनेपर ३२+७०+११=११३ और इच्छाराशि अट्ठाईसप्रकृतिके ९ भङ्गरूप है। फलराशि ११३ को इच्छाराशि ९ से गुणाकर प्रमाणराशि १ का भाग देनेसे ११३×९÷१=१०१७ प्रमाण अट्ठाईस प्रकृतिरूप स्थानके अल्पतरभंग हुए।

पूर्वमें २६ प्रकृतिका बन्ध करता था, अनन्तर २५ व २३ प्रकृतिका बन्ध करने से यहाँ अल्पतरबन्ध हुआ। छब्बीस प्रकृतिके एक भङ्गका बन्ध करता था तब पच्चीसआदि प्रकृतिके सर्वभङ्गोंको बाँधने लगा तो छब्बीसप्रकृतिके ३२ भंगोंको बाँधते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेपर प्रमाणराशि छब्बीसप्रकृतिरूप स्थानका एक भेद, फलराशि पच्चीसप्रकृतिरूप स्थानके ७० और २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग जानना। इच्छाराशि २६ प्रकृतिरूप स्थानके ३२ भंग हैं, अतः

७०+११=८१ प्रमाण फलराशि को इच्छाराशि ३२ से गुणा करनेपर और प्रमाणराशि १ से भाग देनेपर ८१×३२÷१=२५९२ प्रमाण छब्बीसप्रकृतिरूप स्थानके अल्पतरभेद जानना। पुनश्च २५ प्रकृतिका बन्ध करके पश्चात् २३ प्रकृतिका बन्ध करने लगा सो यह अल्पतरबन्ध है। २५ प्रकृतिरूप स्थानके १ भंगका बन्ध करके २३ प्रकृतिके सर्वभंगों को बाँधता है तो २५ प्रकृतिके ७० भंगोंको बाँधते हुए कितने भंगोंको बाँधेगा? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तो पच्चीस प्रकृतिका एक भेद, फलराशि २३ प्रकृतिरूप स्थानके ११ भंग तथा इच्छाराशि पच्चीसप्रकृतिके ७० भंग। यहाँ फलराशि ११ को इच्छाराशि ७० से गुणाकर प्रमाणराशि १ का भाग देनेसे ११×७०÷१=७७० प्रमाण २५ प्रकृतिरूप स्थानके अल्पतर भेद हुए।

अब पूर्वमें कथित भेदोंको त्रैराशिकविधान संक्षेपसे जाननेकी विधि कहते हैं–

लघुकरणं इच्छंतो एयारादीहिं उवरिमं जोग्गं।
संगुणिदे भुजगारा उवरीदो होंति अप्पदरा॥५७०॥

अर्थ– जो व्यक्ति संक्षेपसे जानना चाहता है उसे समझाना है कि ११ आदि अङ्कोंसे आगेके सर्वभेदोंका जोड़कर गुणा करनेपर तो भुजकारबन्धके भंगोंका प्रमाण आता है तथा ३० आदि प्रकृतिरूप स्थानोंके भंगोंसे २९ आदि सर्वप्रकृतिरूप बन्धस्थानों के भंगोंको जोड़कर गुणा करनेपर अल्पतरबन्धके भंगोंका प्रमाण निकलता है।

विशेषार्थ– अल्पतर भंगोंकी तथा भुजकार भंगोंकी सन्दृष्टि निम्न प्रकार जानना।

अल्पतरभंगोंकी सन्दृष्टि–

प्रकृतिरूप स्थान	गुण्य	गुणाकार	लब्ध
३०	९३७०	४६४०	४,३४,७६,८००
२९	१२२	९२४८	११,२८,२५६
२८	११३	९	१०१७
२६	८१	३२	२५९२
२५	११	७०	७७०

भुजकारभंगोंकी सन्दृष्टि–

प्रकृतिरूप स्थान	गुण्य	गुणाकार	लब्ध
२३	११	१३,९९९	१,५३,९८९
२५	७०	१३,९२९	९,७६,०३०
२६	३२	१३,८९७	४,४२,७०४
२८	९	१३,८८८	१,२४,९९२
२९	९२४८	४६४०	४,२९,१०,७२०

अब अवस्थितभङ्गोंकी संख्या कितनी होती है सो कहते हैं–

भुजगारप्पदराणं भंगसमासो समो हु मिच्छस्स।
पणतीसं चउणउदी सट्ठी चोदालमंककमे॥५७१॥

अर्थ– मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें कहे हुए भुजकार और अल्पतरकी संख्या समान है और वह पैंतीस, चौरानवे, साठ और चवालीसके अङ्कोंको "अङ्कानां वामतो गतिः" के क्रमसे रखनेपर ४,४६,०९,४३५ प्रमाण होती है सो यह भुजकारोंकी संख्या है, इतनी ही अल्पतरोंकी भी संख्या है और इन दोनों संख्याओंको मिलानेसे ८,९२,१८,८७० प्रमाण अवस्थितभंगोंकी संख्या होती है, क्योंकि भुजकार व अल्पतरभंगोंमें जिस-जिस प्रकृतिका बन्ध होवे उसी प्रकृतिका द्वितीयादि समयमें जहाँ बन्ध होवे वहाँ अवस्थितबन्ध होता है। यहाँ परस्पर भंगोंका गुणा करके भुजकारादिभंग निकालनेका अभिप्राय यही है कि एक-एक भंगसे अन्यभंगोंकी अपेक्षा भुजकारादि जानना। यहाँ तक मिथ्यात्व गुणस्थानकी अपेक्षा कथन है।

आगे भुजकारादिभंगों को असंयतगुणस्थान में कहते हैं–

देवट्ठवीस णरदेवुगुतीस मणुस्सतीस बंधयदे।
तिछणवणवदुगभंगा तित्थविहीणा हु पुणरुत्ता॥५७२॥

अर्थ– असंयतगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिकस्थानमें, मनुष्य या देवगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानमें एवं मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिकस्थानमें ३६९९२ भुजकारभंग होते हैं। इनमें जो तीर्थङ्करप्रकृति रहित भंग हैं वे पुनरुक्त हैं, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें अन्तर्हित हो जाते हैं।

पुनश्च इसीको स्पष्ट करते हैं–

देवट्ठवीसबंधे देवगुतीससम्मि भंग चउसट्ठी।
देवुगुतीसे बंधे मणुवत्तीसेवि चउसट्ठी ॥५७३॥

अर्थ– मनुष्य असंयतगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करके देवगति और तीर्थङ्करसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है तब दोनों स्थानोंके ८-८ भंगोंका परस्परमें गुणा करनेसे ६४ भंग होते हैं। पुनः असंयतमनुष्य तीर्थङ्कर व देवगतिसहित २९ प्रकृतिका बन्धकरके पश्चात् असंयतदेव या नारकी होकर तीर्थङ्कर और मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिको बाँधता है तब भी ६४ ही भंग होते हैं।

तित्थयरसत्तणारयमिच्छो णरउणतीसबंधो जो।
सम्मम्मि तीसबंधो तियछक्कडछक्कचउभंगा ॥५७४॥

अर्थ– तीर्थङ्करके सत्त्वसहित द्वितीय-तृतीय नरकके मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानका ४६०८ भंगसे सहित बन्ध करता है पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त करके तीर्थङ्कर व मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिको बाँधता है अतः इसके ८ भंगोंका ४६०८ में गुणा करनेपर ४६०८×८=३६,८६४ भंग होते हैं इनमें पूर्वगाथामें कथित १२८ भंगोंको जोड़ देनेसे असंयतगुणस्थानमें ३६,९९२ भुजकार होते हैं।

अथानन्तर असंयतगुणस्थानके अल्पतर भंग कहते हैं–

बावत्तरि अप्पदरा देवुगुतीसा दु णिरयअडवीसं।
बंधंत मिच्छभंगेणवगयतित्था हु पुणरुत्ता ॥५७५॥

अर्थ– जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है ऐसा असंयतमनुष्य तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करके तीर्थङ्कर और देवसहित २९ प्रकृतिका ८ भंगसहित बन्ध करता हुआ नरकगतिके सम्मुख होकर अन्तर्मुहूर्तके लिए मिथ्यादृष्टि होता है तब नरकगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करता है उसका एक भंग है इनको परस्परमें गुणा करने पर ८×१=८ भंग जानना। तथा असंयतदेव या नारकी तीर्थङ्कर व मनुष्यगतिसहित ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधता है उसके ८ भंग हैं। पश्चात् वह मरणकर तीर्थङ्करप्रकृतिके सत्त्वसहित माताके गर्भमें उत्पन्न हुआ वहाँ तीर्थङ्कर व देवसहित २९ प्रकृतिके स्थानको बाँधता है उसके भी ८ भंग होते हैं इनको परस्पर में गुणा करनेसे ८×८=६४ भंग हुए। इनमें पूर्वोक्त ८ भंग मिलानेसे ६४+८=७२ अल्पतरभंग असंयतसम्बन्धी हैं। तीर्थङ्करसे रहित मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिको बाँधकर

पीछे देवगतिसहित २८ प्रकृतिको बाँधे तो उसके ६४ अल्पतरभंग होते हैं ये पुनरुक्त भंग भी मिथ्यादृष्टिसंबंधी भंगोंके साथ ही कह आए हैं।

सन्दृष्टि–

असंयतके भुजकार			असंयतके अल्पतर			असंयतके भंगोंका योग
६४ ८×८	६४ ८×८	३६,८६४ ८×४६०८	८ ८×१	६४ ८×८	पुनरुक्त ६४ ८×८	भुजकार ३६,९९२
देव.२९ ८	मनु.३० ८	मनु.३० ८	नरक २८ १	देव.२९ ८	देव.२८ ८	अल्पतर ७२
देव.२८ ८	देव.२९ ८	मनु.२९ ४६०८	देव.२९ ८	मनु.३० ८	मनु.२९ ८	अवस्थित ३७,०६४

आगे अप्रमत्तादि गुणस्थानोंमें भुजकारभंगोंको कहते हैं–

देवजुदेक्कट्ठाणे णरतीसे अप्पमत्तभुजयारा।
पणदालिगिहारुभये भंगा पुणरुत्तगा होंति ॥५७६॥

अर्थ– अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिरूप एकस्थानको बाँधता था। पश्चात् ८ भङ्गसंयुक्त आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिक स्थान का बन्ध करने लगा। इसीप्रकार तीर्थङ्करसहित २८ से २९ प्रकृति तथा तीर्थङ्कर और आहारकद्विकसहित २९ से ३१ प्रकृतिरूप एवं ३० से ३१ प्रकृतिरूप अथवा २८ से ३१ प्रकृतिरूप स्थान बाँधने लगा अतः इन सर्वस्थानोंके भङ्गोंको मिलानेपर अप्रमत्तगुणस्थानमें ४५ भुजकार भङ्ग होते हैं।

अब उन ४५ भुजकारभङ्गोंका विधान कहते हैं–

इगि अड अट्ठगि अट्ठगिभेदड अट्ठड दुणव य वीस तीसक्के।
अडिगिगि अडिगिगि बिहि उणखिगि इगिइगितीस देवचउ कमसो ॥५७७॥

अर्थ– नीचेकी पंक्तिके १-८-८-१-८-१-१-१-१ और १ रूप भङ्ग सहित २८-२८-२८-२९-२९-३०-१-१-१-१ प्रकृतिरूप स्थानोंमें तथा ऊपरकी पंक्तिके ८-१-१-८-१-१-१-१-१-१ भङ्गोंसे सहित २९-३०-३१-३०-३१-३१-२८-२९-३०-३१ इसप्रकार ४५ भुजकार भङ्ग जानना।

विशेषार्थ– अप्रमत्तगुणस्थानीय देवगतिसहित २८ प्रकृतिका एक भङ्ग बाँधता था पश्चात्

प्रमत्तगुणस्थानमें जाकर तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करके तीर्थङ्कर व देवगतिसहित २९ प्रकृतिके स्थानको आठ भङ्गसहित बाँधने लगा, इन दोनोंके भङ्गोंको परस्पर गुणा करनेसे ८×१=८ भंग हुए तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ८ भंगसहित देवयुक्त २८ प्रकृतिको बाँधता था, पीछे अप्रमत्त होकर आहारकद्विकसंयुक्त ३० प्रकृतिके स्थानको एकभंगसहित बाँधता है इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए तथा प्रमत्तगुणस्थानीय ८ भंगसहित २८ प्रकृतिको बाँधता था पश्चात् अप्रमत्तमें आकर तीर्थंकर और आहारकद्विकसहित ३१ प्रकृतिके स्थानको एकभंगसहित बाँधता है इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए। अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर व देवगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक स्थानको एकभंग सहित बाँधता था मरण करके देव असंयत हुआ वहाँ ८ भंगसहित मनुष्य व तीर्थंकरसंयुक्त ३० प्रकृतिको बाँधने लगा इसप्रकार ये ८×१=८ भंग हुए। प्रमत्तगुणस्थानवर्तीमनुष्य देवगति एवं तीर्थंकरसहित २९ प्रकृतिक स्थानको ८ भंगसहित बाँधता था पुनः अप्रमत्तगुणस्थानमें आकर तीर्थंकर व आहारकद्विकसंयुक्त ३१ प्रकृतिरूप स्थानको एकभंगसहित बाँधने लगा, इसप्रकार ८×१=८ भंग हुए।

तथैव अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती एकभंगसंयुक्त आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करता था पश्चात् उसी गुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करके ३१ प्रकृतिरूप स्थानको बाँधने लगा इसप्रकार एकभंग जानना तथा उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागमें एकभंगसहित यशस्कीर्तिप्रकृतिको बाँधता था, फिर नीचे अपूर्वकरणके छठेभागमें आकर देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिके स्थानको, देवतीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिकस्थान या देव-आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिको अथवा देवआहारकद्विक-तीर्थंकरसहित ३१ प्रकृतिरूप स्थानको एकभंगसहित बाँधे, इसप्रकार इनके चार भंग हुए। ये सर्व ४५ भुजकारभंग जानना।

सन्दृष्टि–

प्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	असंयत-देव	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अपू.	अपू.	अपू.	अपू.	
२९ ८	३० १	३१ १	३० ८	३१ १	३१ १	२८ १	२९ १	३० १	३१ १	अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंके ४५ भुज.
अप्रमत्त	प्रमत्त	प्रमत्त	अप्रमत्त	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपू.	अपू.	अपू.	अपू.	
२८ १	२८ ८	२८ ८	२९ १	२९ ८	३० १	१ १	१ १	१ १	१ १	

१×८ ८×१ ८×१ १×८ ८×१ १×१ १×१ १×१ १×१ १×१

८+ ८+ ८+ ८+ ८+ १+ १+ १+ १+ १ = ४५

अथानन्तर अप्रमत्तगुणस्थानके अल्पतरभंगोंको कहते हैं–

इगिविहिगिगिरछक्कट्ठरीसे दस णव णवडधियवीसमट्ठविहं।
देवचउक्केक्केक्के अपमत्तप्पदरछत्तीसा ॥५७८॥

अर्थ– एक-एक भंगसहित एक, एक, शून्य, शून्यसे अधिक ३० अर्थात् ३१-३१, ३० और ३० प्रकृतिक स्थानोंको बाँधता हुआ ८-८ भंगोंसे संयुक्त १०-९-९ और ८ से अधिक २० अर्थात् ३०, २९, २९ और २८ प्रकृतिरूप स्थानोंको तथा एक-एक भंगसहित देवगतिसंयुक्त चारस्थानोंको बाँधता है। इसप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानमें ३६ अल्पतरभङ्ग होते हैं।

विशेषार्थ– अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीजीव देवगति, आहारकद्विक व तीर्थंकरसहित ३१ प्रकृतिकस्थानको एक भंगसंयुक्त बाँधता था पुनः मरणकर देवअसंयत हुआ वहाँ ८ भंगोंसे संयुक्त मनुष्य-तीर्थंकरसहित ३० प्रकृतिको बाँधने लगा अतः १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें एक भंगसहित ३१ प्रकृतिका बन्ध करता था पश्चात् प्रमत्तगुणस्थानमें आकर देव और तीर्थंकरसहित आठ भंगोंसे युक्त २९ प्रकृतिको बाँधने लगा अतः १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें देव और आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिको एकभंगसहित बाँधता था वह मरणकर देवअसंयत हुआ और वहाँ मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिस्थानको ८ भंगसंयुक्त बाँधने लगा इसप्रकार १×८=८ भंग। अप्रमत्तगुणस्थानमें एक भंगसहित आहारक व देवगतियुत ३० प्रकृतिको बाँधता था पश्चात् प्रमत्तगुणस्थानमें आकर ८ भंगसहित देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिको बाँधने लगा इसप्रकार १×८=८ भंग हुए। अपूर्वकरणगुणस्थानमें चढ़तेसमय छठेभागमें एक-एक भंगसहित देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिको तथा देवगति-तीर्थंकरसहित २९, देव व आहारकद्विकसहित ३० एवं देव-आहारकद्विक और तीर्थंकरयुत ३१ प्रकृतिको बाँधता हुआ सप्तमभागमें एकभंगसहित एकप्रकृतिरूप स्थानको बाँधता है। अतः ये चारभंग हुए। इसप्रकार सर्वअल्पतरभंग ३६ जानना।

सन्दृष्टि–

असंयतदेव	प्रमत्त	असंयतदेव	प्रमत्त	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.
प्रकृ. ३०	२९	२९	२८	१	१	१	१
भङ्ग ८	८	८	८	१	१	१	१
अप्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.	अपूर्व.
प्रकृ. ३१	३१	३०	३०	२८	२९	३०	३१
भङ्ग १	१	१	१	१	१	१	१

१×८= १×८= १×८= १×८= १×१= १×१= १×१= १×१=
८ + ८ + ८ + ८ + १ + १ + १ + १ = ३६

अब भुजकारादि भंगोंको एकत्र करके कहते हैं–

सव्वपरट्ठाणेण य अयदपमत्तिदरसव्वभंगा हु।
मिच्छस्स भङ्गमज्झे मिलिदे सव्वे हवे भंगा ॥५७९॥

अर्थ – सर्व परस्थानों तथा 'च' शब्दसे स्वस्थान-स्वस्थान और स्व-परस्थानसहित असंयत और अप्रमत्तादिगुणस्थानोंके जो सर्वभुजकारादि भंग हैं उनको मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें मिलानेपर नामकर्मके भुजकारादिभंग नियमसे जानना।

आगे उन भङ्गोंकी सिद्धिका उपाय दो गाथाओंसे कहते हैं–

भुजगारा अप्पदरा हवंति पुव्ववरठाणसंताणे।
पयडिसमोऽसंताणोऽपुणरुत्तेत्ति य समुद्दिट्ठो ॥५८०॥

अर्थ – पूर्वमें अल्पप्रकृतियोंको बाँधता था, पश्चात् अधिकप्रकृतियोंको बाँधने लगा इसप्रकार लगानेपर भुजकार कहलाता है तथा पूर्वमें अधिकप्रकृतियों को बाँधता था पश्चात् अल्पप्रकृतियोंको बाँधने लगा सो यह अल्पतर कहलाता है। प्रकृतियोंकी समान संख्या होनेपर भी प्रकृतिसमुदाय प्रकृतिभेदसहित अर्थात् भिन्नप्रकृतिरूप हो तो वह अपुनरुक्त भंग कहलाता है। जिसप्रकार तीर्थंकरप्रकृतिबिना संहननसहित भी २९ प्रकृतिक स्थानका बन्ध है तथा तीर्थंकरसहित संहननबिना भी २९ प्रकृतिक स्थान है इसप्रकार इनमें २९ प्रकृतिकी समानता होते हुए भी तीर्थंकर और संहननके भेदसे अपुनरुक्तता कही गई है।

अथानन्तर अवक्तव्यभंगोंका कथन करते हैं–

[१]पडिय मरियेक्कमेक्कूणतीस तीसं च बंधगुवसंते।
बंधो दु अवत्तव्वो अवट्ठिदो बिदियसमयादी ॥५८१॥

अर्थ – उपशान्तकषायगुणस्थानमें नामकर्मकी किसी भी प्रकृतिको नहीं बाँधता था पश्चात्

१. यद्यपि अभी तक मुद्रित गोम्मटसार कर्मकाण्डकी प्रतियोंमें यह गाथा ५८२ नं. पर ही छपी है, किन्तु प्रकरणकी क्रमबद्धताको देखते हुए गाथाओंके क्रममें इस गाथाका पाठ यहीं ५८१ नं. पर उचित प्रतीत होता है इसलिए क्रममें परिवर्तन किया गया है।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें आकर एकप्रकृतिक स्थानको बाँधता है अतः १ भंग तो यह तथा मरणकर देवअसंयत होनेपर आठ-आठ भंगोंसहित मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिरूप स्थानको तथा तीर्थंकर व मनुष्यगतिसंयुक्त ३० प्रकृतिक स्थानको बाँधे अतः इन दोनों स्थानसम्बन्धी १६ भंग हुए। इसप्रकार अवक्तव्य बन्धके १+१६=१७ भंग जानना तथा द्वितीयादिक समयमें भी उन्हींके समान बन्ध होता है अतः अवस्थितबन्ध उतने ही जानने।

अवक्तव्यभंगोंकी सन्दृष्टि--

सूक्ष्म सा. गुण.	देवअसंयत गुण.	देवअसंयत गुण.
प्रकृति १ भङ्ग १	२९ ८	३० ८
उपशांतकषाय गुणस्थान	उपशांतकषाय गुणस्थान	उपशांतकषाय गुणस्थान
प्रकृति भङ्ग } ०	०	०

भुजगारे अप्पदरेऽवत्तव्वे ठाइदूण समबंधो।
होदि अवट्ठिदबंधो तब्भंगा तस्स भंगा हु॥५८२॥

अर्थ – भुजकार, अल्पतर और अवक्तव्यभंगोंको स्थापन करके जिन-जिन भंगोंसे सहित प्रकृतियोंका एकसमयमें बन्ध होता है उन्हीं भंगोंके साथ उन प्रकृतियोंका द्वितीयादिक समयमें भी जहाँ समान बन्ध हो उसे अवस्थित बन्ध कहते हैं अतः भुजकारादि तीन प्रकारके बन्धोंके जितने भंग हैं उतने ही अवस्थितबन्धके भंग हैं।

नामकर्मके सर्वप्रकार बन्धस्थानोंके भंगोंकी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	भुजकारबन्ध	अल्पतरबन्ध	अवस्थितबन्ध	अवक्तव्यबन्ध
मिथ्यात्व	४,४६,०९,४३५	४,४६,०९,४३५	८,९२,१८,८७०	०
असंयत	३६,९९२	७२	३७,०६४	०
अप्रमत्त	४५	३६	८१	०
उपशांतमोह	०	०	१७	१७
योग	४,४६,४६,४७२	४,४६,०९,५४३	८,९२,५६,०३२	१७

''इति नामकर्मबन्धस्थान प्रकरण''

अथानन्तर नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन २२ गाथाओंसे करते हैं–

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते।
आणावचिपजत्ते कमेण पंचोदये काला ॥५८३॥

अर्थ – नामकर्मके उदयस्थान विग्रहगति अथवा कार्मणशरीर, मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषापर्याप्तिमें नियतकाल है अर्थात् जिस कालमें उदययोग्य हैं उसी कालमें उदय होते हैं। इसप्रकार इनके पाँच काल नियत हैं।

विशेषार्थ – जहाँ कार्मणशरीर पाया जावे वह कार्मणकाल और जबतक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक शरीरमिश्रकाल है। तथा शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर जबतक श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक शरीरपर्याप्तिका काल है। श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर जबतक भाषापर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकाल है और भाषापर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर सम्पूर्ण आयु प्रमाणतक भाषापर्याप्तिकाल है। इसप्रकार नामकर्मके ये पाँच उदयस्थान नियतकाल हैं। यहाँ गाथामें विग्रहगति और कार्मण इसप्रकार इन दोका जो उल्लेख किया है वह ''समुद्घातकेवलीके कार्मणशरीरको भी ग्रहण करना चाहिए'' इस विशेष अर्थको सूचित करनेके लिए है।

अब इन कालोंका प्रमाण कहते हैं–

एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसुवि।
हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥५८४॥

अर्थ – इन पाँच उदयस्थानरूप कालोंका प्रमाण क्रमसे विग्रहगतिके कार्मणशरीरमें एक-दो अथवा तीनसमय है। अपर्याप्तरूप मिश्रशरीर में, शरीरपर्याप्तिमें श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिमें अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल है। भाषापर्याप्तिमें पूर्वोक्त चारकालों का प्रमाण घटानेपर अवशेष सर्व भुज्यमानआयु प्रमाणकाल जानना।

आगे उन पाँच उदयकालोंको जीवसमासोंमें घटित करते हैं–

सव्वापज्जत्ताणं दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे।
पंचवि होंति तसाणं आहारस्सुवरिमचउक्कं ॥५८५॥

अर्थ – आदिके दोकाल सर्व लब्ध्यपर्याप्तकोंमें, एकेन्द्रियोंमें आदिके चारकाल, त्रसोंमें पाँचों ही काल तथा आहारकशरीरमें प्रथमकालबिना शेष चारकाल हैं।

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सासभास इदि कमसो।
काला हु समुग्घादे उवसंहरमाणगे पंच ॥५८६॥

अर्थ – समुद्घातकेवलीके कार्मण-औदारिकमिश्र-औदारिकशरीरपर्याप्ति-श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषापर्याप्तिकाल इसप्रकार पाँचकाल क्रमसे अपने आत्मप्रदेशोंके संकोचके समय ही होते हैं, किन्तु विस्तारके समय तीनकाल ही होते हैं।

अब उन्हीं तीनकालोंका स्पष्टीकरण करते हैं–

ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु।
पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥५८७॥

अर्थ – दण्डसमुद्घात करने और समेटनेरूप युगलसम्बन्धी दो समयोंमें औदारिकशरीरपर्याप्तिकाल है, कपाटसमुद्घात करने और समेटनेरूप दो समयोंमें औदारिकमिश्रशरीरकाल है, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातमें कार्मणकाल है। इसप्रकार प्रदेशोंके विस्तार करनेमें तीन ही काल हैं, किन्तु श्वासोच्छ्वास और भाषापर्याप्तिकाल प्रदेशोंका संकोच करते समय ही होते हैं, क्योंकि मूलशरीरमें प्रवेश करते समयसे ही सञ्ज्ञी-पञ्चेन्द्रियके समान क्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करता है अतएव वहाँ पाँचोंकाल सम्भव हैं।

अथानन्तर नामकर्मके उदयस्थानोंकी उत्पत्तिक्रमका कथन चारगाथाओंमें करते हैं–

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माणं।
सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥५८८॥

अर्थ – "तेजदुगं वण्णचऊ" इत्यादि ४०३ गाथामें कथित नामकर्मकी तैजसकार्मण, वर्णादिचार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्रुवोदयीप्रकृतियाँ हैं अर्थात् इनका उदय सबके निरन्तर पाया जाता है। तथा चारगति, पाँचजाति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति और चारआनुपूर्वी इन सर्वप्रकृतियोंमेंसे किसी एकप्रकृतिका उदय होनेसे ये ९ तथा उपर्युक्त ध्रुवोदयी १२ इसप्रकार (९+१२) सर्व २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय विग्रहगतिमें ही होता है, क्योंकि इनमें आनुपूर्वी भी कही है। ऋजुगतिवालोंके २१ प्रकृतिकस्थानका उदय नहीं है, उनके तो २४ आदि प्रकृतिक स्थानोंका ही उदय है।

मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु।
पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥५८९॥

अर्थ – उपर्युक्त २१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमेंसे आनुपूर्वीके घटानेसे तथा औदारिकादि तीनशरीरोंमेंसे एक, छहसंस्थानोंमेंसे एक, प्रत्येक-साधारणशरीरमेंसे एक और उपघात ये चारप्रकृति मिलानेसे २४ प्रकृतिकस्थान होता है। इस स्थानका मिश्रशरीरके कालमें सभी स्थावरजीवोंके उदय होता है, किन्तु तीनों शरीरोंमेंसे एक औदारिकशरीरका तथा छह संस्थानोंमेंसे एक हुण्डक संस्थानका ही उदय होता है।

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु।
छण्हं संहडणाणं एगदरोउदयगो होदि ॥५९०॥

परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे।
सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥५९१॥जुम्मं॥

अर्थ – उपर्युक्त चारप्रकृतियाँ और तीन अङ्गोपाङ्गमें एक, छहसंहननोंमें एक इसप्रकार सर्व ६ प्रकृतियाँ मिश्रशरीरवाले त्रसजीवके उदययोग्य हैं किन्तु संहनन मनुष्य व तिर्यञ्चोंके ही उदय योग्य हैं। परघातप्रकृति त्रस-स्थावरोंके शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य हैं। स्थावरजीवके पर्याप्तकालमें आतप-उद्योत तथा त्रसके पर्याप्तकालमें उद्योत और विहायोगतियुगल ही उदययोग्य होती हैं किन्तु उद्योत तिर्यञ्चोंके ही उदययोग्य है। उच्छ्वासप्रकृति और स्वरयुगल अपनी-अपनी पर्याप्तिकालमें ही उदययोग्य हैं तथा तीर्थङ्करप्रकृति केवलीके ही उदयमें आती है।

आगे नानाजीवोंकी अपेक्षा सम्भव एक-एक जीवके एक-एक समयमें नामकर्म के उदय स्थानोंको कहते हैं–

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं।
उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥५९२॥[1]

अर्थ – नामकर्मके २०-२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० और ३१ तथा ८ व ९ प्रकृतिरूप १२ उदयस्थान हैं।

अब उपर्युक्त उदयस्थानोंके स्वामियोंका कथन करते हैं–

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी।
इगिबितिचपसामण्णा विसेससुरणारगेइंदी ॥५९३॥

सामण्णसयलवियलविसेस मणुस्ससुरणारया दोण्हं।
सयलवियलसामण्णा सजोगपंचक्खवियलया सामी ॥५९४॥ जुम्मं॥

अर्थ – २१ प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी चारोंगतिके जीव हैं, २४ प्रकृतिक स्थानके स्वामी एकेन्द्रियजीव, २५ प्रकृतिक स्थानके स्वामी विशेषमनुष्य अर्थात् आहारकद्विकवाले मनुष्य तथा देव, नारकी व एकेन्द्रियजीव हैं, २६ प्रकृतिक स्थानके स्वामी एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियसामान्य (उद्योत-तीर्थङ्कर व आहारकद्विकरहित) जीव हैं, २७ प्रकृतिक स्थानके स्वामी (आहारकद्विकसहित) मनुष्य तथा देव, नारकी व एकेन्द्रियजीव हैं, २८ और २९ प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी सामान्यमनुष्य तथा पञ्चेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, विशेषमनुष्य, देव और नारकीजीव हैं तथा ३० प्रकृतिक स्थानके स्वामी मनुष्य व त्रस तिर्यञ्च हैं। ३१ प्रकृतिक स्थानके स्वामी सयोगकेवली तथा पञ्चेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रि तिर्यञ्च जीव हैं, ८ व ९ प्रकृतिरूप स्थानोंके स्वामी अयोगकेवली हैं।

विशेषार्थ – गाथा ५८८ में कथित २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय कार्मणशरीरसहित चारोंगतिसंबंधी विग्रहगतिमें होता है अन्यत्र नहीं तथा गाथा ५८९ में कथित २४ प्रकृतिरूप स्थान एकेंद्रियके अपर्याप्तावस्थामें मिश्रयोग होते ही उदय होता है अन्यत्र नहीं, क्योंकि इनमें अङ्गोपाङ्ग व संहनन नहीं है। इन २४ प्रकृतियोंमें परघातप्रकृति मिलानेपर एकेंद्रियकी शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २५ प्रकृतिका स्थान होता है अथवा आहारक अंगोपांग मिलानेपर विशेषमनुष्यके आहारकशरीरके मिश्रकालमें

१. प्रा.पं.सं.पृ. ३४९ गाथा ९७ भी देखो।

उदययोग्य २५ प्रकृतिक स्थान है अथवा वैक्रियक अंगोपांग मिलानेसे देव और नारकीके मिश्रकालमें उदययोग्य २५ प्रकृतिकस्थान है, इसप्रकार २५ प्रकृतिके तीनस्थान हैं। एकेंद्रियके उदययोग्य २५ प्रकृतिक स्थानमें आतप व उद्योतमेंसेएकप्रकृतिको मिलानेपर एकेंद्रियके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २६ प्रकृतिक स्थान होता है। उस एकेंद्रियके २५ प्रकृतिकस्थानमें उच्छ्वास मिलानेपर एकेंद्रिय के श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २६ प्रकृतिकस्थान होता है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें औदारिकअङ्गोपाङ्ग और एक संहनन मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सामान्यमनुष्य व निरतिशयकेवलीके कपाटयुगलके औदारिकमिश्रकालमें उदययोग्य २६ प्रकृतिका स्थान है। इसप्रकार २६ प्रकृतिके तीनस्थान जानना। २४ प्रकृतिक स्थानमें आहारकअंगोपांग, परघात और प्रशस्तविहायोगति इन तीनप्रकृतिको मिलानेपर प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकशरीरपर्याप्ति होनेपर उदययोग्य २७ प्रकृतिक स्थान है अथवा समुद्घातकेवलीके पूर्वोक्त २६ प्रकृतिक स्थानमें तीर्थङ्करप्रकृतिके मिलानेपर तीर्थङ्कर समुद्घातकेवलीके उदययोग्य २७ प्रकृतिरूप स्थान होता है अथवा पूर्वोक्त २४ प्रकृतिके स्थानमें वैक्रियकअंगोपांग, परघात और नारकीके अप्रशस्तविहायोगति तथा देवके प्रशस्तविहायोगति इसप्रकार तीनप्रकृतिके मिलनेसे देव और नारकीके शरीरपर्याप्ति होनेपर उदययोग्य २७ प्रकृतिका स्थान है अथवा पूर्वोक्त २४ प्रकृतिकस्थानमें परघात तथा आतप व उद्योतमें से एक और उच्छ्वास ये तीन प्रकृति मिलनेसे एकेंद्रिय के उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २७ प्रकृतिक स्थान है, इसप्रकार २७ प्रकृतिक चारस्थान हैं। २४ प्रकृतियोंमें औदारिकअंगोपांग, एकसंहनन, परघात और यथायोग्य विहायोगति इन चारप्रकृतिके मिलानेपर सामान्यमनुष्य या मूलशरीरमें प्रवेश करते हुए समुद्घातरूप सामान्यकेवली अथवा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके शरीरपर्याप्तिकालमें उदययोग्य २८ प्रकृतिक स्थान है तथा उपर्युक्त २४ प्रकृतिमें ही आहारकअंगोपांग, परघात, प्रशस्तविहायोगति और उच्छ्वास इन चारको मिलानेपर उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २८ प्रकृतिकस्थान है अथवा २४ प्रकृतियोंमें वैक्रियकअंगोपांग, परघात, यथासम्भव विहायोगति एवं उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर देव और नारकीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २८ प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार २८ प्रकृतिरूप तीनस्थान जानना।

सामान्यमनुष्य या समुद्घातकेवलीके २८ प्रकृतिरूप स्थानमें उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर सामान्यमनुष्य या मूलशरीरमें प्रवेश करते हुए समुद्घातकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें २९ प्रकृतिकस्थान है अथवा २४ प्रकृतिरूप स्थानमें औदारिकअंगोपांग, एक संहनन, परघात, एकविहायोगति एवं उद्योतप्रकृति मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें एकअंगोपांग, एकसंहनन, एकविहायोगति, परघात और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें औदारिकअंगोपांग, संहनन, परघात, प्रशस्तविहायोगति और तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेपर समुद्घाततीर्थङ्करकेवलीके शरीरपर्याप्तिमें उदययोग्य २९

प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें आहारकअङ्गोपाङ्ग, परघात, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास और सुस्वर मिलानेसे अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीके आहारकशरीरसम्बन्धी भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिकस्थान है तथा देव व नारकीके २८ प्रकृतिक स्थानमें देवके सुस्वर और नारकीके दुःस्वरप्रकृति मिलानेपर देव-नारकीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य २९ प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार २९ प्रकृतिके छहस्थान हुए। तथैव २४ प्रकृतिकस्थानमें अंगोपांग, संहनन, परघात, विहायोगति और उच्छ्वासप्रकृति मिलाने पर २९ प्रकृति होती हैं तथा इनमें उद्योतप्रकृति मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा इन्हीं २९ प्रकृतिमें दो स्वरमें से एकके मिलानेपर सामान्यमनुष्य, पञ्चेन्द्रिय या विकलत्रयके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिमें औदारिकअंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, प्रशस्तविहायोगति और उच्छ्वासप्रकृति मिलानेपर २९ प्रकृति होती हैं, इनमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलाने से समुद्घाततीर्थङ्करकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है। इन्हीं उपर्युक्त २९ प्रकृतियोंमें सुस्वर व दुःस्वररूप दोस्वरोंमें से कोई एकस्वर मिलानेपर सामान्यसमुद्घातकेवलीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३० प्रकृतिक स्थान है। इसप्रकार ३० प्रकृतिके चारस्थान जानना।

सामान्यसयोगकेवलीकी भाषापर्याप्तिसम्बन्धी ३० प्रकृतियोंमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेपर तीर्थङ्करकेवलीके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३१ प्रकृतिक स्थान है अथवा २४ प्रकृतिक स्थानमें कोई एक अंगोपांग, कोई एक संहनन, परघात, उद्योत, कोई एकविहायोगति, उच्छ्वास और सुस्वर-दुःस्वरमें से कोई एक इसप्रकार सातप्रकृति मिलानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य ३१ प्रकृतियाँ हैं ऐसे ३१ प्रकृतिरूप दोस्थान जानना। इसप्रकार एक जीवके एककालमें होनेवाले उदयस्थानोंका कथन किया।

एगे इगिवीसपणं इगिछव्वीसट्ठवीसतिण्णि णरे।
सयले वियलेवि तहा इगितीसं चावि वचिठाणे ॥५९५॥

सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिण्णि समुग्घादे।
मणुसं वा इगिवीसे वीसं रूवाहियं तित्थं ॥५९६॥

वीसदु चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपंचयं दोसु।
उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ठं ॥५९७॥ विसेसयं॥

अर्थ – पूर्वोक्त पाँचकालोंमें यथासम्भव क्रमसे एकेन्द्रियके उदययोग्य स्थान २१-२४-२५-२६-२७ प्रकृतिके पाँचस्थान हैं, मनुष्यके उदययोग्य २१-२६ और २८-२९-३० प्रकृतिके पाँचस्थान

हैं, तथैव पञ्चेन्द्रिय और विकलेन्द्रियतिर्यञ्चोंके उदययोग्य २१-२६-२८-२९-३० और ३१ प्रकृतिरूप ऐसे ६ स्थान हैं। देव-नारकी-आहारक और केवलीसहित विशेष मनुष्योंके २१, २५ तथा २७ प्रकृतिके तीनस्थान उदययोग्य हैं। कार्मणकालमें समुद्घातकेवलीके २० प्रकृतिरूप उदयस्थान है, क्योंकि यहाँ तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय नहीं है तथा तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके २० प्रकृतिक स्थानमें तीर्थङ्करप्रकृतिके मिलनेसे २१ प्रकृतिक स्थान तथा भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेपर ३१ प्रकृतिक स्थान भी उदययोग्य है। विग्रहगतिके कार्मणकालमें २१ प्रकृतिक स्थान होता है, मिश्रशरीर कालमें २४-२५-२६ व २७ प्रकृतिरूप चारस्थान, शरीर पर्याप्तिकालमें २५-२६-२७-२८ व २९ प्रकृतिक पाँचस्थान, श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें २६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक पाँचस्थान, भाषापर्याप्तिकालमें २९-३० व ३१ प्रकृतिरूप तीनस्थान उदययोग्य हैं। अयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करकेवलीके ९ प्रकृतिक और सामान्यकेवलीके ८ प्रकृतिक ऐसे दो उदयस्थान हैं।

नामकर्मके उदयस्थान व उनके स्वामीका कथन एक दृष्टि में–

२० प्रकृतिरूप एकस्थान – समुद्घातकेवलीके कार्मणकालमें उदययोग्य है।

२१ प्रकृतिक दोस्थान – चारोंगतिसम्बन्धी विग्रहगतिमें और तीर्थङ्करकेवलीके कार्मणकालमें उदययोग्य है।

२४ प्रकृतिक एकस्थान – एकेन्द्रियके मिश्रशरीरकालमें उदययोग्य है।

२५ प्रकृतिक तीनस्थान – एकेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, आहारकके शरीरमिश्रकालमें और देवनारकीके भी शरीरमिश्रकालमें उदययोग्य है।

२६ प्रकृतिक तीनस्थान – एकेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, एकेन्द्रियके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सामान्यमनुष्य और निरतिशयकेवलीके औदारिकमिश्रकालमें उदययोग्य।

२७ प्रकृतिक चारस्थान – आहारकके शरीरपर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके औदारिकशरीर मिश्रकालमें, देव-नारकीके शरीरपर्याप्तिकालमें और एकेन्द्रियके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

२८ प्रकृतिक तीनस्थान – सामान्यमनुष्य-सामान्यकेवली-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के शरीरपर्याप्तिकालमें तथा देव-नारकी व आहारकशरीरवालेके उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

२९ प्रकृतिक छहस्थान – समुद्घातकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके

ही उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके शरीरपर्याप्तिकालमें, आहारकशरीरके भाषापर्याप्तिकालमें और देव-नारकीके भी भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य हैं।

३० प्रकृतिक चारस्थान – द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रियके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें, सामान्यमनुष्य, पञ्चेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियके भाषापर्याप्तिकालमें, तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें और सामान्यसमुद्घातकेवलीके भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

३१ प्रकृतिक दोस्थान – तीर्थङ्करकेवलीके भाषापर्याप्तिकालमें, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियके भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य है।

९ प्रकृतिक एकस्थान – अयोगीतीर्थङ्करकेवलीके उदययोग्य है।

८ प्रकृतिक एकस्थान – अयोगीसामान्यकेवलीके उदययोग्य है।

नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थानोंका काल एवं उनके स्वामी सम्बन्धी सन्दृष्टि–

स्वामी	एकेन्द्रिय	देव	नारकी	तिर्यंच	मनुष्य सामान्य	सामान्य केवली	तीर्थंकर केवली	विशेष मनुष्य
भाषापर्याप्तिकाल	०	२९	२९	३० ३१	३०	३०	३१	२९
श्वासोच्छ्वास	२७ २६	२८	२८	३०	२९ २९	२९	३०	२८
शरीरपर्याप्तिकाल	२६ २५	२७	२७	२९	२८ २८	२८	२९	२७
शरीरमिश्रकाल	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
कार्मणकाल	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	०

"नामकर्मके उदयस्थान"

२०-२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक।

देव-नारकी – २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक।

तिर्यञ्च – २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक।

मनुष्य – २४ प्रकृतिकस्थान बिना शेष सर्वस्थान।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान	२४ प्रकृतिक	२५ प्रकृतिक	२६ प्रकृतिक	२७ प्रकृतिक	२८ प्रकृतिक	२९ प्रकृतिक	३० प्रकृतिक	३१ प्रकृतिक
गति १ आनुपूर्वी १ तैजस-कार्मण २ वर्णचतुष्क ४ अगुरुलघु १ जाति १ त्रस-स्थावर १ बादर-सूक्ष्म १ पर्याप्त-अपर्याप्त १ स्थिर-अस्थिर २ शुभ-अशुभ २ सुभग-दुर्भग १ आदेय-अनादेय १ यश.-अयश. १ निर्माण १ २१	२४ प्रकृतिक उदयस्थान २१ प्रकृतिकमेंसे आनुपूर्वी कम करके औदारिक-शरीर, षट्संस्थान, उपघात तथा प्रत्येक व साधारणमेंसे कोई एक, इसप्रकार ४ प्रकृति मिलाने से बनता है।	देव-नारकी के २१-१ आनुपूर्वी=२०+वैक्रि.द्विक+संस्थान+उपघात+प्रत्येक शरीर=२५ आहा.शरीरी प्रमत्तसंयतके २०+आहारकद्विक+संस्थान+उपघात+प्रत्येक शरीर= २५ एकेन्द्रियके – शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर २४ + परघात = २५	एकेन्द्रियके २५+उच्छ्वास=२६। २४+परघात+आतप या उद्योत=२६। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्च के २१-आनुपूर्वी=२०+औदारिकद्विक+संस्थान+उपघात+ संहनन+प्रत्येकशरीर = २६	आतप या उद्योतसहित एकेन्द्रियके २६+उच्छ्वास = २७। शरीरपर्याप्ति पर्याप्त देव-नारकी व आहारकशरीरीके २५+विहायोगति+परघात = २७।	देव-नारकी व आहारकशरीरीके २७+उच्छ्वास = २८। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्चके २६+परघात+विहायोगति= २८।	शरीरपर्याप्ति उद्योतसहित तिर्यञ्च के २६ +परघात + विहायोगति + उद्योत=२९। मनुष्य व अतिर्यञ्च के २८+उच्छ्वास = २९। देव-नारकी व आहारकशरीरीके २८+स्वर = २९।	उद्योतसहित तिर्यञ्च के २९ +उच्छ्वास = ३०। मनुष्य व त्रसतिर्यञ्चके २९+स्वर = ३०।	उद्योतसहित असतिर्यञ्च के ३० +स्वर = ३१। तीर्थङ्करसहित मनुष्य के ३० +तीर्थङ्कर = ३१।

नोट : यह सन्दृष्टि प्राकृत पंचसंग्रहके आधारसे बनाई गई है।

"केवलीके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थानोंकी सन्दृष्टि"

प्रतर व लोकपूरण में २० प्रकृतिक	२१ प्रकृ.	२६ प्रकृतिक	२७ प्रकृतिक	२८ प्रकृ.	२९ प्रकृतिक	३० प्रकृतिक	३१ प्रकृतिक	८ प्रकृतिक	९ प्रकृतिक
मनुष्यगति १ कार्मणशरीर १ पर्याप्त १ तैजसशरीर १ वर्णादि ४ पंचेन्द्रियजाति १ अगुरुलघु १ शुभाशुभ २ स्थिरास्थिर २ यशस्कीर्ति १ सुभग १ आदेय १ बादर १ निर्माण १ त्रस १ २०	पूर्वोक्त २० प्रकृतियोंमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेसे २१ प्रकृतिक स्थान होता है।	२० प्रकृतियों में वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रत्येक औदारिकद्विक, उपघात, ६ संस्थानोंमें से कोई एकसंस्थान, इन ६ प्रकृतियोंके मिलानेसे कपाटसमुद्घातकेवलीके २६ प्रकृतिकस्थान होता है।	२६ प्रकृतिक स्थानमें तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेसे २७ प्रकृतिकस्थान होता है, किन्तु यहाँ पर मात्र समचतुरस्रसंस्थानका उदय है।	२६ प्रकृतियोंमें पराघात तथा एक विहायोगति मिलानेसे २८ प्रकृतिक स्थान होता है।	२७ प्रकृतिक स्थानमें पराघात तथा प्रशस्त विहायोगति मिलानेसे तीर्थङ्करके २९ प्रकृतिकस्थान होता है। २८ प्रकृतिकस्थानमें उच्छ्वास मिलानेसे भी सामान्यकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थान होता है।	सामान्यकेवलीके २९ प्रकृतिक स्थानमें एक स्वर मिलानेसे ३० प्रकृतिक स्थान होता है। तीर्थङ्करकेवली के २९ प्रकृतिक स्थानमें उच्छ्वास मिलानेसे भी ३० प्रकृतिक स्थान होता है।	तीर्थङ्करकेवली के ३० प्रकृतिक स्थानमें सुस्वर मिलाने से ३१ प्रकृतिक स्थान होता है।	सामान्य अयोगकेवलीके मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय और यशस्कीर्ति ८	तीर्थङ्क. अयोगीके पूर्वोक्त आठप्रकृतिकस्थान में तीर्थङ्करप्रकृति मिलानेसे ९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

आगे अयोगीगुणस्थानसम्बन्धी नामकर्मके दो उदयस्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं--

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु।
णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु॥५९८॥

अर्थ – अयोगकेवलीके उदययोग्य १२ प्रकृतिमेंसे वेदनीय, आयु और गोत्र ये तीनप्रकृतियाँ कम करनेपर नामकर्मकी शेष ९ प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं तथा जिसके तीर्थङ्करप्रकृति भी नहीं हो तो उसके ८ प्रकृति ही उदययोग्य हैं।

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंमें भङ्ग कहते हैं–

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे।
अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसुभंगा हु॥५९९॥

अर्थ – ६ संस्थान व ६ संहननमें से कोई एक-एक संस्थान व संहनन, विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पाँच युगलोंमेंसे एक-एक प्रकृतिका ग्रहण करनेपर नामकर्मके भङ्ग बनते हैं। इन सभीको परस्परमें गुणा करनेपर (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भङ्ग होते हैं।

अथानन्तर उपर्युक्त भङ्गोंमेंसे नारकादि ४१ जीवपदोंमें पाए जाने वाले भङ्गोंको तीन गाथाओंसे कहते हैं–

तत्थासत्था णारयसाहरणसुहुमगे अपुण्णे य।
सेसेगविगलऽसण्णीजुदठाणे जसजुगे भंगा॥६००॥

अर्थ – उन उदयप्रकृतियोंमें से नारकी, साधारणवनस्पतिकाय, सर्वसूक्ष्मजीव और लब्ध्यपर्याप्तकमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदय है इसकारण उनके पाँचोंकाल (जिनका कथन गाथा ५८३ में किया गया है) सम्बन्धी सभी उदयस्थानोंमें एक-एक भंग है। शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियमें अयशस्कीर्तिबिना पूर्वकथित अप्रशस्तप्रकृतियोंका उदय तो है ही, किन्तु यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्तिमेंसे किसी एकका उदय होनेसे उदयस्थानोंमें दो-दो भङ्ग हो जाते हैं अर्थात् एक यशस्कीर्तिसहित और दूसरा अयशस्कीर्तिसहित इसप्रकार दो भङ्ग जानना।

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं।
सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि॥६०१॥

अर्थ – सञ्ज्ञीजीवोंमें तथा मनुष्यके छहसंस्थान, छहसंहनन और पूर्वोक्त विहायोगतिआदि पाँचयुगलोंमें से एक-एक प्रकृतिका उदय पाया जाता है इसलिए सामान्यवत् ११५२ ही भंग होते हैं। केवलज्ञानमें वज्रर्षभनाराचसंहनन, सुभग, आदेय और यशस्कीर्ति इन चारका ही उदय होता है अतः केवलज्ञानसम्बन्धी स्थानोंमें छहसंस्थान तथा स्वर और विहायोगतिरूप दोयुगलोंमें से एक-एक प्रकृतिके उदयापेक्षा २४-२४ ही भंग जानने एवं तीर्थंकरप्रकृतिसहित केवलीके अन्तिम पाँचसंस्थान,

अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वरका उदय नहीं है, मात्र सर्वप्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदयहोनेसे उससम्बन्धी उदयस्थानोंमें एक-एक ही भंग है।

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो।
वोच्छिण्णं जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥६०२॥

अर्थ – चारप्रकारके देवोंमें व आहारकसहित प्रमत्तगुणस्थानमें प्रशस्तप्रकृतियों का ही उदय है इसकारण उनके सर्वकालमें पाए जानेवाले उदयस्थानोंमें एक-एक भंग है। सासादनसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त जिनप्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति हुई है उन प्रकृतियोंको कमकरके अवशेष प्रकृतियोंके भङ्ग यथासम्भव समझ लेने चाहिए।

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो।
एक्कं सट्ठी चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं ॥६०३॥

वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहिं संजुत्ता।
एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥६०४॥

ऊणतीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भंगा ॥६०५॥

अर्थ – बीस प्रकृतिके स्थानको आदि लेकर स्थानोंके भंग गाथा ५१९-२० में कथित ४१ जीवपदोंकी अपेक्षा यथासम्भव क्रम से १-६०-२७-१९-६२०-१२-११७५-१७६०-२९२१ और ११६१ होते हैं। तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीका एकभङ्ग है, किन्तु वह पुनरुक्तभंग है अतएव अयोगकेवलीके तीर्थंकरप्रकृतिसहित ९ प्रकृतिका एक और तीर्थंकररहित ८ प्रकृतिका एकभंग, इसप्रकार कुल ७७५८ भंग होते हैं।

विशेषार्थ – २० प्रकृतिका उदय सामान्यसमुद्घातकेवलीके प्रतर-लोकपूरणसम्बन्धी कार्मणकालमें होता है, उसमें एकभंग है। २१ प्रकृतिका उदय देवके विग्रहगतिमें है, उसका एक ही भंग है, तीर्थंकरके समुद्घातसम्बन्धी कार्मणकालमें एक ही भंग है, मनुष्यके कार्मणकालमें सुभग, आदेय-यशस्कीर्ति इन तीनयुगलोंमें एक-एक प्रकृतिके उदयसे आठभंग हैं, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके कार्मणकालमें भी इसीप्रकार आठभंग हैं, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके कार्मणकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (२×४)=८ भंग होते हैं, बादर पृथ्वी-जल-तेज-वायु और प्रत्येकवनस्पतिकायके कार्मणकालमें भी यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (२×५) १० भंग हैं। सूक्ष्मपृथ्वीजल-

अग्नि (तेज) व वायुकाय और सूक्ष्म-बादर-साधारणवनस्पतिकायसम्बन्धी कार्मणकालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग हैं। नारकीके कार्मणकालमें एक ही भंग है, लब्ध्यपर्याप्तक-सूक्ष्म-बादरकी अपेक्षा पृथ्वी-जल-तेज-वायुकाय और साधारणवनस्पतिके १०, प्रत्येकवनस्पति, विकलत्रय, सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्य (१०+७) इन १७ प्रकारके जीवोंके कार्मणकालसम्बन्धी एक-एक ही भंग होनेसे १७ भंग हैं। इसप्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थानके सर्व (१+१+८+८+८+१०+६+१+१७) ६० भंग हैं।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान शरीरमिश्रकालमें होता है। यहाँ बादरपृथ्वी-अप्तेज-वायु और प्रत्येकवनस्पतिकायमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (५×२) १० भंग होते हैं। सूक्ष्मपृथ्वी-जल-तेज-वायुकाय तथा बादर-सूक्ष्मसाधारणकायमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग होते हैं एवं ग्यारहप्रकारके एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तजीवोंके शरीरमिश्रकालमें भी इस स्थानका उदय है अतः यहाँ एक-एक भंगकी अपेक्षा ११ भंग हुए। इसप्रकार २४ प्रकृतिकस्थानमें सर्व (१०+६+११) २७ भंग हुए।

२५ प्रकृतिकस्थानमें देव-आहारक और नारकीके तो एक-एक भंगकी अपेक्षा तीनभंग तथा बादरपृथ्वी-अप्-तेज-वायु एवं प्रत्येकवनस्पतिकायके शरीरपर्याप्तिकालमें यशस्कीर्ति युगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे (५×२) १० भंग हैं, सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज-वायुकाय और सूक्ष्म-बादरसाधारणवनस्पतिकायके एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग हैं। इसप्रकार २५ प्रकृतिक स्थानमें (३+१०+६) १९ भङ्ग हुए।

२६ प्रकृतिक स्थानमें द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके शरीरमिश्रकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे (४×२) ८ भंग होते हैं। सञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यमें ६ संहनन ६ संस्थान तथा सुभग-आदेय और यशस्कीर्तियुगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२) २८८+२८८=५७६ भंग हैं। तीर्थंकरप्रकृतिरहित सामान्यसमुद्घातकेवलीके ६ संस्थानोंके परिवर्तनसे छहभंग हैं। लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक-एक भंगकी अपेक्षा ६ भंग हैं। बादरउद्योतसहित बादरपृथ्वीकायके शरीरपर्याप्तिकालमें आतप-उद्योतसहित दोस्थानोंमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे २×२=४ भंग हैं तथा उद्योतसहित बादरअप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकायमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे ४ भङ्ग, बादरपृथ्वी-अप्-तेज-वायु व प्रत्येक वनस्पतिकायके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ५×२=१० भंग तथा सूक्ष्मपृथ्वी-अप्-तेज और वायुकाय एवं सूक्ष्म-बादरसाधारणवनस्पतिकायमें एक-एक भंग होनेसे ६ भंग हैं। इसप्रकार २६ प्रकृतिक स्थानमें सर्व (८+५७६+६+६+४+४+१०+६) ६२० भंग होते हैं।

२७ प्रकृतिक उदयस्थानमें तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके शरीरमिश्रकालमें एक भङ्ग है। देव-नारकी और आहारकके शरीरपर्याप्तिकालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा तीन, उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें बादर

पृथ्वीकायके आतप-उद्योतसम्बन्धी दो स्थानोंमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे चार, बादरअप्कायं और प्रत्येकवनस्पतिकायमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भङ्ग होनेसे चार भङ्ग हैं। इसप्रकार २७ प्रकृतिकस्थानमें सर्व (१+३+४+४) १२ भंग जानना।

२८ प्रकृतिक उदयस्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें निरतिशयसमुद्घातकेवलीके विहायोगतियुगल एवं छहसंस्थानकी अपेक्षा ६×२=१२ भंग, मनुष्य और संज्ञीतिर्यञ्चमें विहायोगति, सुभग, आदेय तथा यशस्कीर्ति ये चारयुगल एवं ६ संस्थान, ६ संहननकी अपेक्षा से (६×६×२×२×२×२) ५७६+५७६=११५२ भंग हैं, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीमें यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षासे दो-दो भंग हैं अतः ४×२=८ भंग हैं। देवनारकी और आहारकके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें एक-एक भंगकी अपेक्षा ३ भंग हैं। इसप्रकार २८ प्रकृतिकस्थानमें (१२+११५२+८+३) ११७५ भंग जानना।

२९ प्रकृतिक उदयस्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके एक भंग है। उद्योतसहित सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति-सुभग-आदेय और यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२) ५७६ भंग हैं, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे आठभंग हैं तथा उच्छ्वासपर्याप्तिमें निरतिशयसमुद्घातकेवलीके ६ संस्थान एवं विहायोगतियुगलकी अपेक्षासे ६×२=१२ भंग होते हैं। मनुष्यमें और सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगति, सुभग, आदेय और यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२) ५७६+५७६ भंग हैं अतः सर्व ११५२ भंग। उद्योतरहित उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे आठभंग हुए तथा भाषापर्याप्तिकालमें देवनारकी और आहारकके एक-एक भंगकी अपेक्षासे ३ भंग हैं। इसप्रकार २९ प्रकृतिक स्थानमें (१+५७६+८+१२+११५२+८+३) १७६० भंग हैं।

३० प्रकृतिक स्थानके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीके एक भंग है, उद्योतसहित सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके पूर्वोक्तप्रकार (६×६×२×२×२×२) ५७६ भंग हैं, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो-भंग होनेसे ८ भंग तथा भाषापर्याप्तिकालमें तीर्थंकररहित सामान्यकेवलीके ६ संस्थान, विहायोगति और स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×२×२) २४ भंग हैं। मनुष्यमें ६ संस्थान-६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर-आदेय और यशस्कीर्तिरूप पाँचयुगलकी विवक्षा होनेसे (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग, उद्योतरहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें भी इसीप्रकार ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तियुगल की अपेक्षा ११५२ भंग, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ८ भंग हैं। इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें

(१+५७६+८+२४+११५२+११५२+८)=२९२१ भंग हैं तथा तीर्थंकररहित समुद्घातकेवलीके भाषापर्याप्तिकालसम्बन्धी २४ भंग हैं, किन्तु वे पुनरुक्त हैं अत: इनमें कुछ भी विशेषता नहीं है।

३१ प्रकृतिक स्थानके भाषापर्याप्तिकालमें तीर्थंकरकेवलीके एक भंग है एवं उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चमें पूर्वोक्तप्रकार ६ संस्थान-६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पाँचयुगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग, उद्योतसहित द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीपंचेन्द्रिय के यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा दो-दो भंग होनेसे ८ भंग हैं। इसप्रकार ३१ प्रकृतिक स्थानमें (१+११५२+८) ११६१ भंग हैं। तीर्थंकरप्रकृतिसहित समुद्घातकेवलीके एक भंग है, किन्तु वह पुनरुक्त है तथा अयोगकेवलीके तीर्थंकरप्रकृतिसहित ९ प्रकृतिक स्थानका एक भंग है एवं तीर्थंकरप्रकृतिरहित ८ प्रकृतिक स्थानका एकभंग, इसप्रकार सर्व (१+६०+२७+१९+६२०+१२+११७५+१७६०+२९२१+११६१+१+१) ७७५८ भंग होते हैं।

पूर्वगाथामें जो पुनरुक्तभङ्ग कहे हैं उनको कहते हैं–

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा।
तित्थस्सवि सगभंगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥६०६॥

अर्थ – भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके तथा सामान्यसमुद्घातकेवलीके ३० प्रकृतिक स्थानमें २४-२४ भंग समान हैं तथा तीर्थंकरकेवली और तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीके ३१ प्रकृतिकस्थानमें एक-एक भंग है सो वह भी समान है इसकारण ये २५ भंग पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं किये जाने चाहिए।

अथानन्तर गुणस्थानोंमें उन भङ्गोंको कहते हैं–

णारयसण्णिमणुस्ससुराणं उवरिमगुणाण भंगा जे।
पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भंगेसु ॥६०७॥

अर्थ – नारकी सञ्ज्ञीतिर्यञ्च-मनुष्य और देवोंके ऊपरवर्ती सासादनादिगुणस्थानोंमें जो भंग हैं वे मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी भंगोंके समान हैं अत: पुनरुक्त हैं सो उन पुनरुक्तभंगोंको घटाकर केवल मिथ्यात्वगुणस्थानके भंगोंमें ही उनको भी कहा गया है।

विशेषार्थ – २१ प्रकृतिक स्थानके ६० भंगोंमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिसम्बन्धी एक भंगको घटानेपर शेष ५९ भंग, २४ प्रकृतिक स्थानके २७ भंग, २५ प्रकृतिक स्थानके १९ भंगोंमेंसे आहारकमिश्रसम्बन्धी एकभंगके बिना शेष १८ भंग हैं, २६ प्रकृतिक स्थानके ६२० भंगोंमेंसे सामान्य समुद्घातकेवलीके संस्थानजन्य ६ भंगबिना शेष ६१४ भंग हैं, २७ प्रकृतिक स्थानके १२ भंगोंमेंसे आहारक और

तीर्थङ्करसम्बन्धी भंगबिना शेष १० भंग हैं। २८ प्रकृतिरूप स्थानके ११७५ भंगोंमेंसे सामान्यसमुद्घातकेवलीके १२ और आहारकका एक, इन १३ बिना ११६२ भंग हैं, २९ प्रकृतिक स्थानके १७६० भंगोंमेंसे सामान्यसमुद्घातकेवलीके १२, तीर्थंकरसमुद्घातकेवलीका एक, आहारकका एक, इन १४ बिना शेष १७४६ भंग हैं। ३० प्रकृतिक स्थानके २९२१ भंगोंमें से सामान्यकेवलीके २४, तीर्थङ्करकेवलीका एक इन २५ बिना शेष २८९६ भंग हैं। ३१ प्रकृतिकस्थानके ११६१ भंगोंमें से एक तीर्थंकरकेवलीके एक भङ्गबिना शेष ११६० भंग हैं। इसप्रकार **मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी** सर्व (५९+२७+१८+६१४+१०+११६२+१७४६+२८९६+११६०) ७६९२ भंग जानना।

सासादनगुणस्थान में २१ प्रकृतिक स्थानके बादरपृथ्वी-जल तथा प्रत्येकवनस्पतिकायके यशस्कीर्तियुगलकी ६, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा ८ भंग, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके दुर्भग-अनादेय-अयशस्कीर्तिरूप ३ युगलोंकी अपेक्षा आठभङ्ग, मनुष्यके भी इसीप्रकार ८ भङ्ग और देवका एक भङ्ग ऐसे सर्व (८+८+८+६+१) ३१ भंग हैं। २४ प्रकृतिके स्थानमें बादरपृथ्वीअप् एवं प्रत्येकवनस्पतिकायके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा ६ भंग है। २५ प्रकृतिकस्थान में देवगतिका एक भंग है। २६ प्रकृतिक स्थानमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञीके यशस्कीर्तियुगलकी अपेक्षा आठभंग, सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं सुभग-आदेय और यशस्कीर्तिरूप तीन युगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२) २८८ भंग उसीप्रकार मनुष्यके भी २८८ ऐसे सर्व (८+२८८+२८८) ५८४ भंग हैं। इस गुणस्थानमें २७-२८ प्रकृतिका उदय नहीं है, क्योंकि शरीरपर्याप्ति आदिकालोंमें एकेन्द्रियादिकके मिथ्यात्व ही है। २९ प्रकृतिक स्थानमें देव-नारकीके दो भंग हैं। ३० प्रकृतिक स्थानके भाषापर्याप्तिकालमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्चके ६ संहनन, ६ संस्थान एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पाँच युगलोंकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२ भंग तथा मनुष्यके भी ११५२ भंग हैं इसप्रकार मनुष्यतिर्यञ्चसम्बन्धी २३०४ भंग हैं। ३१ प्रकृतिके उद्योतसहित सञ्ज्ञीके भाषा पर्याप्तिकालमें ११५२ भंग हैं। इसप्रकार सासादनगुणस्थानमें सर्व (३१+६+१+५८४+२+२३०४+११५२) ४०८० भंग जानना।

मिश्रगुणस्थान में २९ प्रकृतिक स्थानमें देव-नारकीके भाषापर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे दो भंग, ३० प्रकृतिक स्थानमें सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्यके मिलकर २३०४ भंग हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके ११५२ भंग हैं। इसप्रकार मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी सर्व (२+२३०४+११५२) ३४५८ भंग हैं।

असंयतगुणस्थान में २१ प्रकृतिक उदयस्थानके चारोंगतिसम्बन्धी एक-एक भंगकी अपेक्षा चारभंग हैं। २५ प्रकृतिकस्थानके घर्मानरक और वैमानिकदेवसम्बन्धी एक-एक भंगकी अपेक्षा दो भंग, २६ प्रकृतिक उदयस्थानमें भोगभूमिजतिर्यञ्चके शुभ प्रकृतियोंका ही उदय होनेसे एकभंग और

कर्मभूमिजसञ्ज्ञीतिर्यञ्चके ६ संस्थान और ६ संहननकी अपेक्षा (६×६) ३६ भंग, इसप्रकार २६ प्रकृतिकस्थानके ३७ भंग हैं। २७ प्रकृतिकस्थानमें घर्मानरक और वैमानिकदेवोंके एक-एक भंगकी अपेक्षा दो भंग हैं। २८ प्रकृतिकउदयस्थानमें भोगभूमिजतिर्यञ्च, घर्मानारकी और वैमानिकदेवोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालसम्बन्धी एक-एकभंग होनेसे तीनभंग तथा कर्मभूमिजमनुष्यके ६ संस्थान-६ संहनन और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×६×२) ७२ भंग इसप्रकार २८ प्रकृतिक स्थानसम्बन्धी (७२+३) ७५ भंग हैं। २९ प्रकृतिकस्थानके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें भोगभूमिजतिर्यञ्च और मनुष्यके प्रशस्तप्रकृतियोंका ही उदय है अतः एक-एक भंग होनेसे दो भंग हैं तथा देव-नारकीके भाषापर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे दो भंग, कर्मभूमिजमनुष्यके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें ६ संस्थान, ६ संहनन और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×६×२) ७२ भंग, इसप्रकार २९ प्रकृतिक स्थानमें सर्व (२+२+७२) ७६ भंग हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित भोगभूमिजतिर्यञ्चके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें एक भंग तथा कर्मभूमिज सञ्ज्ञीतिर्यञ्च-मनुष्यके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति पाँचयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२×२×२×२) ११५२+११५२=२३०४ भंग इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें (१+२३०४) २३०५ भंग जानना। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्तिरूप पाँचयुगलोंकी अपेक्षा ११५२ भंग हैं। इसप्रकार असंयतगुणस्थानमें सर्व (४+२+३७+२+७५+७६+२३०५+११५२) ३६५३ भंग जानना।

देशसंयतगुणस्थान में ३० प्रकृतिक उदयस्थानमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्च और मनुष्यके ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति और सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४+१४४=२८८ भंग हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें उद्योतसहित सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियके ६ संस्थान, ६ संहनन एवं विहायोगति-सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानमें सर्व (२८८+१४४) ४३२ भंग हैं।

प्रमत्तगुणस्थान के आहारकमिश्रकालमें २५ प्रकृतिक उदयस्थानका एकभंग, शरीरपर्याप्तिकालमें २७ प्रकृतिक उदयस्थानका एकभंग, श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें २८ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें एकभंग, भाषापर्याप्तिकालमें २९ प्रकृतिकस्थानका एक भंग, औदारिकशरीरके भाषापर्याप्तिकालमें ३० प्रकृतिकस्थानके ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। इसप्रकार प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी सर्व (१+१+१+१+१४४) १४८ भंग जानना।

अप्रमत्तगुणस्थान में ३० प्रकृतिरूप उदयस्थानमें ६ संस्थान, ६ संहनन तथा विहायोगति-सुस्वरयुगलकी अपेक्षा (६×६×२×२) १४४ भंग हैं। **उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों उपशमकगुणस्थानोंमें** प्रत्येकगुणस्थानके ६ संस्थान, ३ संहनन तथा विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×३×२×२) ७२-७२ भंग हैं एवं **क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारगुणस्थानोंमें** ६ संस्थान, १ संहनन तथा विहायोगति-

स्वरयुगलकी अपेक्षा (६×१×२×२) २४-२४ भंग हैं। इसप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी १४४ भंग तथा उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंके सर्व (७२+७२+७२+७२) २८८ भंग, क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा चारोंगुणस्थानोंमें सर्व (२४+२४+२४+२४) ९६ भंग हैं।

सयोगीगुणस्थान के समुद्घातरूपकार्मणकालमें २० प्रकृतिक उदयस्थानमें एकभंग है। तीर्थङ्करसहित २१ प्रकृतिका एक भंग है। औदारिकके मिश्रशरीरकालमें २६ प्रकृतिकस्थानके ६ संस्थानोंकी अपेक्षा ६ भंग हैं तीर्थङ्करसहित २७ प्रकृतिक स्थानमें एक भंग है। मूलशरीरमें प्रवेश करते समय २८ प्रकृतिक स्थानके शरीरपर्याप्तिकालमें ६ संस्थान और विहायोगतियुगलकी अपेक्षा (६×२) १२ भंग हैं, तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिकस्थानका एकभंग और सामान्यकेवलीके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें १२ भंग इसप्रकार २९ प्रकृतिकस्थानके १३ भंग हैं। तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिकस्थानमें एक भंग, भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके ६ संस्थान एवं विहायोगति-स्वरयुगलकी अपेक्षा २४, इसप्रकार ३० प्रकृतिक स्थानमें (१+२४) २५ भंग हैं। तीर्थङ्करसहित ३१ प्रकृतिक स्थानमें एक भंग है। सयोगीगुणस्थानमें ऐसे सर्व (१+१+६+१+१२+१३+२५+१) ६० भंग हैं। **अयोगीगुणस्थान** में तीर्थङ्करसहित ९ प्रकृतिकस्थानका एक भंग एवं तीर्थङ्करप्रकृतिरहित ८ प्रकृतिक स्थानका एकभंग ऐसे दो भंग जानना।

गुणस्थानोंमें नामकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी भंगोंकी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	उदयस्थान	प्रकृतिरूप स्थानगतभङ्ग	गुणस्थानगत कुल भङ्ग	विशेष विवरण
मिथ्यात्व	२१ प्रकृतिरूप	५९		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२४ प्रकृतिरूप	२७		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२५ प्रकृतिरूप	१८		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२६ प्रकृतिरूप	६१४		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२७ प्रकृतिरूप	१०	७६९२	गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२८ प्रकृतिरूप	११६२		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	२९ प्रकृतिरूप	१७४६		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	३० प्रकृतिरूप	२८९६		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
	३१ प्रकृतिरूप	११६०		गाथा ६०७ का विशेषार्थ देखो
सासादन	२१ प्रकृतिरूप	३१		इस गुणस्थानमें २७ व २८
	२४ प्रकृतिरूप	६		प्रकृतिकस्थान नहीं हैं। शेष
	२५ प्रकृतिरूप	१		सर्वकथन गाथा ६०७ के
				विशेषार्थसे जानना चाहिए।

	२६ प्रकृतिरूप	५८४	४०८०	
	२९ प्रकृतिरूप	२		
	३० प्रकृतिरूप	२३०४		
	३१ प्रकृतिरूप	११५२		
मिश्र	२९ प्रकृतिक	२		इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
	३० प्रकृतिक	२३०४	३४५८	गाथा ६०७ के विशेषार्थके
	३१ प्रकृतिक	११५२		अनुसार जानना।
असंयत	२१ प्रकृतिक	४		इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
	२५ प्रकृतिक	२		गाथा ६०७ के विशेषार्थके
	२६ प्रकृतिक	३७		अनुसार जानना।
	२७ प्रकृतिक	२		
	२८ प्रकृतिक	७६	३६९३	
	२९ प्रकृतिक	७६		
	३० प्रकृतिक	२३०५		
	३१ प्रकृतिक	११५२		
देशसंयत	३० प्रकृतिक	२८८		इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
	३१ प्रकृतिक	१४४	४३२	गाथा ६०७ के विशेषार्थके
प्रमत्तसंयत	२५ प्रकृतिरूप	१		अनुसार जानना।
	२७ प्रकृतिरूप	१		
	२८ प्रकृतिरूप	१	१४८	इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
	२९ प्रकृतिरूप	१		गाथा ६०७ के विशेषार्थके
	३० प्रकृतिरूप	१४४		अनुसार जानना।
अप्रमत्तसंयत	३० प्रकृतिक	१४४	१४४	इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
उपशमक अपूर्व.	३० प्रकृतिक	७२		गाथा ६०७ के विशेषार्थके
उप. अनिवृत्ति.	३० प्रकृतिक	७२		अनुसार जानना।
उप. सूक्ष्मसांप.	३० प्रकृतिक	७२	२८८	इस गुणस्थानसंबंधी विशेषकथन
उपशान्तकषाय	३० प्रकृतिक	७२		गाथा ६०७ के विशेषार्थके
				अनुसार जानना।
क्षपक अपूर्वकरण	३० प्रकृतिरूप	२४	९६	क्षपकश्रेणीके चारों गुणस्थानोंके
				कुल भंगोंकी संख्या ९६ है।

क्षपक अनिवृत्ति.	३० प्रकृतिरूप	२४		
क्षपक सूक्ष्मसांप.	३० प्रकृतिरूप	२४		
क्षीणकषाय	३० प्रकृतिरूप	२४		
सयोगकेवली	२० प्रकृतिक	१		विशेष कथनके लिये गाथा ६०७
	२१ प्रकृतिक	१		का विशेषार्थ देखना चाहिये।
	२६ प्रकृतिक	६		
	२७ प्रकृतिक	१		
	२८ प्रकृतिक	१२	६०	
	२९ प्रकृतिक	१३		
	३० प्रकृतिक	२५		
	३१ प्रकृतिक	१		
अयोग केवली	९ प्रकृतिक	१	२	गाथा ६०७ के विशेषार्थसे
	८ प्रकृतिक	१		विशेष कथन जानना।
			२०,०५३	इस प्रकार नामकर्म
				उदयस्थान सम्बन्धी भङ्ग
				गुणस्थानोंमें २०,०५३ जानना।

अब उपर्युक्त गाथा ६०७ में कथित भंगोंमें से अपुनरुक्त भंग कहते हैं–

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण।
उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥६०८॥

अर्थ – सहायतारहित पराक्रमवाले श्री महावीरस्वामी (तीर्थङ्करदेव) ने नामकर्मसम्बन्धी २० आदि प्रकृतिरूप पूर्वोक्त १२ उदयस्थानोंमें अपुनरुक्त भङ्ग ७७५८ कहे हैं।

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानके ७६९२, प्रमत्तगुणस्थानवर्ती आहारकशरीरयुत मुनिके ४, सयोगकेवलीके ६० और अयोगकेवलीके २ भंग इसप्रकार (७६९२+४+६०+२) सर्व ७७५८ भंग अपुनरुक्त हैं, इनके अतिरिक्त शेष गुणस्थानसम्बन्धी जो भंग कहे गए हैं वे सभी मिथ्यात्वगुणस्थानके भंगोंमें गर्भित हैं ऐसा समझना चाहिए।

इति नामकर्मउदयस्थान प्रकरण।

अथ नामकर्मसत्त्वस्थान प्रकरण

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका कथन १९ गाथाओंमें करते हैं–

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥[1]

अर्थ – ९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० और ९ प्रकृतिरूप नामकर्मके १३ सत्त्वस्थान हैं।

उपर्युक्त सत्त्वस्थान किसप्रकार बनते हैं सो कहते हैं–

सव्वं तित्थाहारुभऊणं सुरणिरयणरदुचारिदुगे।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दसणवयं ॥६१०॥

अर्थ – नामकर्मकी सर्व ९३ प्रकृतिरूप प्रथमसत्त्वस्थान है उनमेंसे तीर्थङ्करप्रकृति कम करनेपर ९२ प्रकृतिक स्थान होता है, आहारकद्विकप्रकृति घटानेसे ९१ प्रकृतिक, आहारकद्विक-तीर्थङ्कर ये तीन प्रकृतियाँ कम करनेसे ९० प्रकृतिकस्थान होता है।[2] इन्हीं ९० प्रकृतियोंमेंसे उद्वेलनारूप देवगति-

---

१. प्रा.पं.सं.पृ.३८५ गा.२०८।

२. **शंका** – नामकर्म के सत्त्व स्थानों में एक स्थान आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग के सत्त्व से रहित ही है। वहाँ आहारक बंधन और आहारक संघात के सत्त्व का अभाव क्यों नहीं बतलाया ? जिस जीव ने आहारक शरीर का बंध नहीं किया उसके आहारक बंधन और आहारकसंघात पाया जा सकता है क्या ? यदि पाये जाते हैं तो कैसे ?

समाधान – नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ हैं। उनमें से पाँचबन्धन और पाँचसंघात और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण की १६ प्रकृतियाँ कुल २६ प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं। ६७ प्रकृति बन्धयोग्य हैं। कहा भी है–

वण्ण-रस-गंध-फासा चउ चउ इगि सत्त सम्ममिच्छत्तं।
होंति अबंधा बंधण पण पण संघाय सम्मत्तं ॥६॥ (पंचसंग्रह ज्ञानपीठ पृ. ४८)

अर्थ – चार वर्ण, चार रस, एक गन्ध, सात स्पर्श, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, पाँच बन्धन, पाँच संघात, ये इस प्रकार २६ नामकर्म की और २ मोहनीयकर्म की कुल २८ प्रकृतियाँ बंध के अयोग्य हैं।

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्ण चउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥ (गो.क.)

अर्थ – शरीर नामकर्म के साथ बंधन और संघात अविनाभावी हैं। इस कारण पाँच बंधन और पाँच संघात ये दश प्रकृतियाँ बंध और उदय अवस्था में अभेद विवक्षा में जुदी नहीं गिनी जातीं, शरीर नामप्रकृति में ही गर्भित हो जाती हैं। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चारों में इनके २० भेद शामिल हो जाते हैं। इस कारण अभेद की अपेक्षा से बंध व उदय अवस्था में इनके २० भेद की बजाय ४ भेद गिने जाते हैं।

देवगत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृतियाँ कम करने पर ८८ प्रकृतिकस्थान, नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर-वैक्रियकअंगोपांग इन चार उद्वेलनारूप प्रकृतियोंको ८८ प्रकृतिमेंसे घटानेपर ८४ प्रकृतिक स्थान होता है। इन्हीं ८४ प्रकृतियोंमेंसे उद्वेलनारूप मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंको कम करनेसे ८२ प्रकृतिक स्थान होता है तथा 'णिरयतिरिक्खदु वियलं' इत्यादि ३३८वीं गाथामें कथित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियों को ९३ प्रकृतिमेंसे घटानेपर ८० प्रकृतिक तथा ९२ प्रकृतियोंमेंसे इन्हीं १३ प्रकृतियोंको घटानेपर ७९ प्रकृतिक और ९१ प्रकृतियों में से इन्हीं १३

इन दो गाथाओं से इतना स्पष्ट हो जाता है कि पाँचसंघात और पाँचबन्धन ये दस प्रकृतियाँ, बंध व उदय की विवक्षा में, शरीर नामकर्म में गर्भित करके इनको बंध व उदय प्रकृतियों में नहीं गिनी गई। सत्त्व की विवक्षा में पाँचसंघात और पाँचबंधन को शरीर नामकर्म में शामिल नहीं किया गया है, इसीलिये नामकर्म के ९३ प्रकृति आदि सत्त्वस्थान बतलाये हैं। वे स्थान इसप्रकार हैं–

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदि य।
उण्णासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥
सव्वं तित्थाहारुभअंगं सुरणिरयणर दुचारिदुगे।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दसणवयं ॥६१०॥ (गो.क.)

अर्थ– ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ प्रकृतिरूप में नामकर्म के सत्त्वस्थान १३ हैं। नामकर्म की सर्व प्रकृतिरूप ९३ का स्थान है। उनमें से तीर्थंकर घटाने से ९२ का स्थान, आहारकयुगल घटाने से ९१ का, तीनों आहारकद्विक और तीर्थंकर घटाने से ९० का स्थान होता है। उस ९० के स्थान में देवगतिद्विक की उद्वेलना होने से ८८ का स्थान होता है। नरकगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक की उद्वेलना होने पर ८४ का स्थान होता है। मनुष्यद्विक की उद्वेलना हो जाने पर ८२ का सत्त्वस्थान होता है। शेष सत्त्वस्थान क्षपक श्रेणी में सम्भव हैं।

इसीप्रकार ज्ञानपीठ से प्रकाशित पंचसंग्रह पृ. ३८५-३८९ पर गाथा २०८-२१९ में कथन है। तथा श्री अमितगति पंचसंग्रह पृ. ४६४-४६७ पर श्लोक २२१-२३० में कथन है।

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग णरयचउक्कमणुकमसो।
उच्चागोदं मणुदुगनुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥३५०॥

अर्थ– आहारकद्विक, सम्यक्त्वप्रकृति, मिश्रमोहनी, देवगति का युगल, नरकगति आदि ४ (नरकद्विक वैक्रियिकद्विक), उच्च गोत्र, मनुष्यगतिद्विक ये १३ उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि आहारकशरीर और आहारकशरीरअंगोपांग तथा वैक्रियिकशरीर व वैक्रियिकशरीरांगोपांग का तो उद्वेलन कहा, किंतु आहारकसंघात व आहारकशरीरबंधन, तथा वैक्रियिकसंघात व वैक्रियिकशरीरबंधन इन प्रकृतियों का उद्वेलन क्यों नहीं कहा है? जिसने आहारकशरीर का बंध नहीं किया उसके (१) आहारकशरीर (२) आहारकशरीराङ्गोपाङ्ग (३) आहारकशरीरसंघात (४) आहारकशरीरबंधन इन चार प्रकृतियों का सत्त्व नहीं पाया जाता है। अतः ९३ में से इन चार को घटाने पर ८९ का सत्त्वस्थान होता है और ९२ में से इन चार को घटाने पर ८८ का सत्त्वस्थान होता है। इन ४ को न घटाकर मात्र आहारकशरीर व आहारकशरीरांगोपांग इन दो को घटाकर ९१ व ९० का सत्त्वस्थान बतलाया है, यह भी विचारणीय है।

नरकगति की उद्वेलना होने पर नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरअङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकसंघात,

प्रकृतियों को कमकरनेसे ७८ प्रकृतिक एवं ९० प्रकृतिमेंसे ये ही १३ प्रकृतियाँ घटानेसे ७७ प्रकृतिक स्थान होता है। अयोगकेवलीके १० और ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, इसप्रकार नामकर्मके सत्त्वस्थान जानना।[१]

विशेष – यहाँ जो ९१ और ९० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान कहे गये हैं वे आहारकद्विककी उद्वेलनाके पश्चात् बनते हैं, क्योंकि असंयत भी आहारकद्विककी उद्वेलना करता है।

आगे अयोगकेवली गुणस्थानमें १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंको कहते हैं–

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु।
दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥६११॥

अर्थ – अयोगकेवलीके "**उदयगवारणराणू**" इत्यादि गाथामें कही हुई १३ सत्त्वप्रकृतियोंमेंसे वेदनीय, मनुष्यायु और उच्चगोत्र ये तीन प्रकृतियाँ घटानेपर नामकर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है तथा इनमेंसे भी तीर्थंकरप्रकृतिको घटानेपर ९ प्रकृतिका सत्त्व है।[२]

वैक्रियिकशरीर बंधन इन छह प्रकृतियों को ८८ प्रकृति स्थान में घटाने से ८२ का सत्त्वस्थान होता है किंतु छह को न कम करके ४ को कम करके ८४ का सत्त्वस्थान बतलाया है। यह भी विचारणीय है।

इन सब पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि आहारकशरीरद्विक की उद्वेलना हो जाने पर भी आहारकशरीरसंघात व बन्धन इन दो प्रकृतियों की उद्वेलना नहीं होती है। इसीप्रकार वैक्रियिकशरीरद्विक की उद्वेलना हो जाने पर भी वैक्रियिकशरीरसंघात व वैक्रियिकशरीरबंधन की उद्वेलना नहीं होती है। ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ इन सत्त्वस्थानों का उद्वेलना की अपेक्षा से कथन है। ९३ व ९२ के सत्त्व वाले जीव जब आहारकद्विक की उद्वेलना कर देते हैं तब उनके क्रमशः ९१ व ९० का सत्त्वस्थान होता है। यदि यह कहा जाय कि सम्यग्दृष्टि के आहारकशरीर की उद्वेलना नहीं होती इसलिये ९३ के सत्त्वस्थान वाले जीव के आहारकशरीर की उद्वेलना नहीं हो सकती, क्योंकि तीर्थंकरप्रकृति का सत्त्व होने से वह एक अंतर्मुहूर्त से अधिक मिथ्यात्व में नहीं रह सकता है ? ऐसा कहना सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि संयम से च्युत होकर जब वह असंयम को प्राप्त हो जाता है, उसके आहारकशरीरद्विक की उद्वेलना प्रारम्भ हो जाती है। कहा भी है–

"**असंजमं गदो आहारकसरीरसंतकम्मियो-संजदो अंतोमुहुत्तेण उव्वेल्लणमाढवेदि जाव असंजदो जाव असंतकम्मं च अत्थि ताव उव्वेल्लेदि।**" (धवल पु. १६ पृ. ४१८)

अर्थ – आहारकशरीर-सत्कर्मिक-संयत असंयम को प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त में उद्वेलना प्रारम्भ करता है, जब तक वह असंयत है और जब तक वह सत्कर्म से रहित होता है, तब तक वह उद्वेलन करता रहता है।

इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर की उद्वेलना हो जाने पर भी वैक्रियिकसंघात व बंधन इन दो प्रकृतियों की उद्वेलना नहीं होती है।

नामकर्म के इन सत्त्वस्थानों में नित्यनिगोदिया जीव के सत्त्वस्थानों की विवक्षा नहीं है, क्योंकि जिसने वैक्रियिकशरीरचतुष्क व आहारकशरीरचतुष्क का कभी बंध ही नहीं किया उसके सत्त्वस्थान भिन्न प्रकार के होंगे।

१. प्रा.पं.सं.पृ. ३८५-३८७ गाथा २०९-२१४। २. प्रा.पं.सं.पृ. ३८७-३८८ गाथा २१५-२१६।

विशेषार्थ – अयोगकेवलीके चरमसमयमें नामकर्मके १० प्रकृतिक सत्त्वस्थान कहे हैं, वे १० प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं– मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, सुभग, पर्याप्त, आदेय, यश:कीर्ति, तीर्थंकर इन दस प्रकृतियोंमेंसे मनुष्यगत्यानुपूर्वीके अतिरिक्त शेष ९ प्रकृतियाँ उदयरूप हैं जैसे गाथा ५९८ में कहा गया है, उसके अनुसार मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय अयोगकेवलीके नहीं है, क्योंकि यह क्षेत्रविपाकी प्रकृति है और इसका उदय विग्रहगतिमें ही सम्भव है। जो अनुदय प्रकृति होती है वह एक समय पूर्व स्तुविकसंक्रमणसे अन्यप्रकृतिरूप संक्रमण कर जाती है अत: अनुदयरूप ७२ प्रकृतियोंके साथ मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी भी सत्त्वव्युच्छित्ति अयोगकेवलीके द्विचरमसमयमें हो जाना चाहिये जैसा कि ध.पु. ६ पृ. ४१७ और ध. पु. १० पृ. ३२६ एवं भगवती आराधना गा. २११७, २११८, २१२० व २१२१ में कहा है–

सो तेण पंचमत्ताकालेण खवेदि चरिम झाणेण।
अणुदिण्णाओ दुचरिमसमए सव्वाउ पयडीओ ॥२१२०॥ भगवती आराधना॥

अथवा इस सम्बन्धमें आचार्योंके दो मत हैं, श्रुतकेवलीके अभावके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा कथन ठीक है अत: दोनों कथनोंका संग्रह कर देना उचित है।

नामकर्मसम्बन्धी १३ सत्त्वस्थानोंकी सन्दृष्टि–

क्रमांक	सत्त्वस्थान	विवरण
१	९३	नामकर्मकी सभी प्रकृतियाँ हैं।
२	९२	९३-१ तीर्थङ्कर प्रकृति।
३	९१	९३-२ आहारकद्विक।
४	९०	९३-३ आहारकद्विक और तीर्थङ्कर।
५	८८	९३-५ तीर्थङ्कर, आहारकद्विक और देवद्विक (उद्वेलना होनेपर)
६	८४	८८-४ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकअंगोपांग
७	८२	८४-२ मनुष्यद्विककी (उद्वेलना होनेपर)
८	८०	९३-१३ नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, विकलत्रय उद्योत, आतप, एकेंद्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावरका क्षय अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें होता है।[१]

१. प्रा.पं. सं. पृ. ३८७ गाथा २१४।

९	७९	९२-१३ उपर्युक्त।
१०	७८	९१-१३ उपर्युक्त।
११	७७	९०-१३ उपर्युक्त।
१२	१०	१० (मनुष्यद्विक, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति और तीर्थङ्कर)
१३	९	९ (१०-१ तीर्थङ्कर)

अथानन्तर उद्वेलनारूप स्थानोंमें जो विशेषता है उसको कहते हैं–

गुणसंजदप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि।
सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लदे जीवो ॥६१२॥

अर्थ – मिथ्यात्व गुणस्थानमें जिन प्रकृतियों के बंध की अथवा उदय की वासना (गंध) भी नहीं है, ऐसी सम्यक्त्व आदि गुण से उत्पन्न हुई– सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना (आहारकद्विक की भी उद्वेलना) मिथ्यात्वगुणस्थानमें होती है और शेष प्रकृतियोंकी उद्वेलना वह जीव करता है जिसके उन प्रकृतियोंका बंध अथवा उदयकी वासना भी नहीं है।

विशेषार्थ – असंयतजीवके आहारकद्विकका बन्ध व उदय नहीं है, वह आहारकद्विककी उद्वेलना करता है। एकेन्द्रिय व विकलत्रयके देवद्विक, नरकद्विक व वैक्रियिकद्विकका बन्ध व उदय नहीं है अत: वे जीव वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करते हैं। इसीप्रकार तेजकायिक वायुकायिकजीवके विषयमें भी जानना।

अब उन प्रकृतियोंका उद्वेलनक्रम कहते हैं–

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं।
सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलोय सगलोय ॥६१३॥

अर्थ – आहारकद्विक प्रशस्तप्रकृति है अत: चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनों की उद्वेलना करते हैं, तत्पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिकी उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करते हैं। उसके पश्चात् एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीव शेष देवद्विकादिकों की उद्वेलना करते हैं।

नोट – धवलाकार वीरसेनस्वामीके मतानुसार आहारकद्विककी उद्वेलना असंयममें आते ही होती है।[१]

१. सत्कर्मिक संयत असंयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें उद्वेलना प्रारम्भ करता है जबतक वह असंयत है और जबतक सत्कर्मसे रहित है तबतक उद्वेलना करता है। (ध.पु. १६ पृ. ४१८)

आगे उद्वेलनाके योग्य कालको कहते हैं–

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं।
सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥६१४॥

अर्थ – वेदकसम्यक्त्वके योग्यकालमें आहारकद्विककी, उपशमकालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है तथा वैक्रियकषट्ककी उद्वेलना एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियपर्यायमें करता है।

अब उपर्युक्त गाथामें कथित दोनों कालोंका स्वरूप कहते हैं–

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे।
जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥६१५॥

अर्थ – सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थिति घटकर त्रस जीवके तो जब पृथक्त्वसागरप्रमाण शेष रहे तथा एकेन्द्रियके पल्यके असंख्यातवें भागकम एकसागर प्रमाण शेष रहने तक "वेदक योग्यकाल" है और यदि सत्तारूप स्थिति उससे भी कम हो जावे तो वह उपशम काल होता है।[१]

---

१. I. **शंका** – सम्यक्त्वप्रकृति और मिश्रप्रकृति की पृथक्त्वसागर स्थिति अच्छे परिणामोंसे होती है या बुरे परिणामों से ? इससे पूर्व कितनी स्थिति होती है ? पृथक्त्वसागर की स्थिति क्या प्रथमगुणस्थान में होती है और अगर ऐसा है तो क्या मिथ्यात्व का बन्ध भी इतना ही होता है। **समाधान** – प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टिजीव के पाँच लब्धियाँ होती हैं। १. क्षयोपशमलब्धि, २. विशुद्धिलब्धि, ३. देशनालब्धि, ४. प्रायोग्यलब्धि, ५. करणलब्धि। इनमें से चौथी प्रायोग्यलब्धि वाला जीव आयु के बिना शेष सात कर्मों की स्थिति को घटाकर अंत:कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण कर देता है। श्री लब्धिसार ग्रंथ में कहा भी है–

अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे, ठिदिरसाण जं करणं।
पाउग्गलद्धिणामा, भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥७॥

अर्थात्-स्थिति को अंत:कोड़ाकोड़ीसागर और अनुभाग को द्विस्थानिक करना इसका नाम प्रायोग्यलब्धि है। यह भव्य और अभव्य दोनों के हो सकती है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय मिथ्यात्व की स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है। वह ही द्रव्य सम्यक्त्व व मिश्रप्रकृतिरूप संक्रमण करता है, अत: उनकी स्थिति भी अंत:कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण होती है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व से च्युत होकर जब मिथ्यात्वगुणस्थान में आता है तब वहाँ पर इन सम्यक्त्व व मिश्र प्रकृतियों की उद्वेलना करता है। (गो.क. गाथा ३५१)। उद्वेलना के द्वारा स्थिति का कम होना विशुद्ध या संक्लेश परिणामों पर निर्भर नहीं है, किन्तु मिथ्यात्वपरिणाम के कारण उद्वेलना होती है और पृथक्त्वसागर स्थिति रह जाती है। किंतु मिथ्यात्व का स्थितिबन्ध तीव्र व मंद परिणामों के द्वारा अपनी अपनी गति के योग्य होता है, उद्वेलना के अनुसार मिथ्यात्व का स्थितिबन्ध नहीं होता है।

II. वेदककाल में उपशमसम्यक्त्व नहीं होता तथा उपशमकाल में वेदक सम्यक्त्व नहीं होता। (विशेषके लिए देखो– जैनगजट दि. २९.८.६६, जयधवला ४/१४८, धवल प्रस्ता. पृष्ठ ५ आदि.)

आगे तेजकाय-वायुकायकी उद्वेलनप्रकृतियोंको कहते हैं–

तेउदुगे मणुवदुगं उच्चं उव्वेल्लदे जहण्णिदरं।
पल्लासंखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥६१६॥

अर्थ – तेजकाय और वायुकायके मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र इन तीन प्रकृतियों की उद्वेलना होती है तथा इस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्टरूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतने कालमें सर्वस्थितिको उद्वेलनारूप करता है।

उपर्युक्तकथनको स्पष्ट करते हैं–

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण।
संखेज्जसायरठिदिं पल्लासंखेज्जकालेण ॥६१७॥

अर्थ – पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण स्थितिकी अन्तर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो संख्यातसागरप्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तारूप स्थितिकी कितने कालमें उद्वेलना करेगा? इसप्रकार त्रैराशिकविधि करनेपर पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाणकालमें ही कर सकता है, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ – पल्यके असंख्यातवेंभागप्रमाण कालके अग्रतनभागमें पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवेंभागप्रमाण काण्डक अधस्तनरूप अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सो यह तो प्रमाणराशि है तथा उस काण्डकका पड़ने अर्थात् उद्वेलनारूप होनेका काल अन्तर्मुहूर्त है इसको फलराशि मानना तथा सर्वस्थिति संख्यातसागरप्रमाण है सो इच्छाराशि मानना। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर पल्यका असंख्यातवाँभाग ही लब्ध आवेगा। अन्तर्मुहूर्तमें स्थितिके जितने निषेक उद्वेलनारूप किये उसका ही नाम काण्डक है।

आगे सम्यक्त्वादिकी विराधना कितनीबार होती है सो कहते हैं–

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं।
पल्लासंखेज्जदिमं बारं पडिवज्जिदे जीवो ॥६१८॥

अर्थ – प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, देशसंयम और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी विधिको यह जीव उत्कृष्टरूपसे अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवेंभागके जितने समय हैं उतनी बार छोड़-छोड़कर पुनः ग्रहण कर सकता है, पश्चात् नियमसे सिद्धपदको प्राप्त होता है।

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो।
बत्तीसं बाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥६१९॥

अर्थ – उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चारबार ही चढ़ सकता है। पश्चात् क्षपकश्रेणी चढ़कर मोक्षको ही प्राप्त होता है। सकलसंयमको उत्कृष्टरूपसे ३२ बार ही धारण करता है। पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है॥६१९॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा तीर्थङ्कर और आहारकद्विकका युगपत् सत्त्व नहीं पाया जाता है, एक समयमें तीर्थंकर अथवा आहारकद्विकका सत्त्व रहेगा तथा नानाजीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानमें इनका युगपत् सत्त्व रहता है। सासादनगुणस्थानमें नानाजीवोंकी अपेक्षाभी आहारकद्विक-तीर्थंकरका सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृतिसहित सत्त्वस्थान नहीं है, किन्तु आहारकद्विकयुत स्थान तो है, क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तासहित जीवोंके मिश्रगुणस्थान, तीर्थंकर-आहारकद्विककी युगपत् सत्तासहित मिथ्यात्वगुणस्थान और तीर्थंकर अथवा आहारकद्विकमेंसे किसी एकका भी सत्त्व होनेपर मिथ्यात्वरहित अनंतानुबंधीका उदय नहीं होनेसे सासादनगुणस्थान नहीं होता, किन्तु आहारकद्विककीसत्ता रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होनेसे मिश्रगुणस्थान होता है।[१]

अथानन्तर चारोंगतियोंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थान कहते हैं–

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी।
सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥६२०॥

अर्थ – सम्यग्दृष्टि देव-मनुष्यके ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, चारोंगतिके जीवोंमें सासादनगुणस्थानको छोड़कर अन्यत्र ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, सम्यग्दृष्टिदेवके तथा सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्य-नारकीके ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

विशेषार्थ – ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान मनुष्यके चतुर्थगुणस्थानसे ११वें गुणस्थान तक सम्भव है।

णउदी चदुग्गदिम्मि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे।
अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्मि बासीदी ॥६२१॥

---

१. तित्थाहारणुभयं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवई ॥३३३॥ कर्मकाण्ड॥

अर्थ – चारोंगतिके जीवोंमें ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है, किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिमें क्षपकअनिवृत्तिकरणके १३ प्रकृतिके क्षयसे पूर्वतक होता है। मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च व मनुष्यके ८८-८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं, क्योंकि **'सपदे उप्पण्णठाणेवि'** इस गाथाके अनुसार एकेन्द्रियादिकमें जहाँ देवद्विककी उद्वेलना होती है वहाँ भी ऐसी सत्ता पाई जाती है तथा जो जीव मरणकर तिर्यञ्च या मनुष्यमें जहाँ भी उत्पन्न हो वहाँ भी इनकी सत्ता पाई जाती है। मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चके ही ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है क्योंकि मनुष्यद्विककी उद्वेलना तेजकाय-वायुकाय जीवोंके होती है वहाँ भी इसकी सत्ता है तथा यह मरण करके तिर्यञ्चोंमें ही उत्पन्न होता वहाँ भी इसप्रकारकी सत्ता है, क्योंकि यह मरण करके तिर्यञ्चके अतिरिक्त अन्यत्र उत्पन्न नहीं होता है।

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु।
गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥६२२॥

अर्थ – ८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप चारसत्त्वस्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १३ प्रकृतियोंका जहाँ क्षय होता है वहाँसे अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त पाए जाते हैं और १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके चरमसमय में होता है।

चारों गतियोंमें नामकर्मसम्बन्धी सत्त्वस्थानोंकी सन्दृष्टि–

सत्त्वस्थानका क्रमांक	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या	विशेष विवरण
१	९३	असंयतसम्यग्दृष्टि देव एवं चौथे से ११वें गुणस्थानवर्ती मनुष्यके
२	९२	सासादनगुणस्थानको छोड़कर चारोंगतिके जीवोंमें।
३	९१	सम्यग्दृष्टिदेव, सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्य या नारकीके।
४	९०	मनुष्यके अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जहाँ १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है वहाँ और उससे पूर्व-पूर्व गुणस्थानोंमें अथवा चारोंगतिमें यह सत्त्वस्थान होता है।
५	८८	मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च अथवा मनुष्यके ये दोसत्त्वस्थान पाये जाते हैं।
६	८४	
७	८२	मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चके।

८	८०	अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जहाँ १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है वहाँ से अयोगकेवली गुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त ये चारों सत्त्वस्थान पाये जाते हैं।
९	७९	
१०	७८	
११	७७	
१२	९	ये दोनों सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अन्तसमयमें पाए जाते हैं।
१३	१०	

आगे गाथा ५१९ में कहे हुए ४१ जीवपदोंमें सत्त्वस्थानोंको कहते हैं–

णिरये बाइगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु।
बाणउदी णउदी अडचउबासीदी य होंति सत्ताणि॥६२३॥

अर्थ – एकजीवापेक्षा नारकीजीवोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थान ९२-९१ और ९० प्रकृतिरूप हैं, तथा पृथ्वीकायादि सर्व तिर्यञ्चोंमें ९२-९०-८८-८४ और ८२ प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान हैं।

बासीदिं वज्जित्ता बारसठाणाणि होंति मणुवेसु।
सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु॥६२४॥

अर्थ – मनुष्योंमें पूर्वोक्त १३ सत्त्वस्थानोंमेंसे ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानको छोड़कर शेष १२ स्थान होते हैं, किन्तु सयोगकेवलीके ८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप चारस्थान हैं तथा अयोगकेवलीके ८०-७९-७८-७७-१० और ९ प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं।

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे।
तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु॥६२५॥

अर्थ – पूर्वगाथामें सयोगकेवलीके ४ तथा अयोगकेवलीके ६ सत्त्वस्थान कहे हैं उनमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिसहित सयोग-अयोगकेवलीके समसंख्यारूप सत्त्वस्थान एवं तीर्थङ्करप्रकृतिरहित सामान्यसयोग-अयोगकेवलीके विषमसंख्यारूप सत्त्वस्थान हैं। अर्थात् तीर्थङ्करप्रकृतिसहित सयोगकेवलीके ८०-७८ प्रकृतिक तथा अयोगीके ८०-७८ और १० प्रकृतिक इसप्रकार तीन सत्त्वस्थान हैं और तीर्थङ्करप्रकृतिरहित सामान्यसयोगकेवलीके ७९-७७ प्रकृतिरूप तथा अयोगीके ७९-७७ और ९ प्रकृतिक ऐसे तीन सत्त्वस्थान हैं। आहारकमें ९३-९२ प्रकृतिक दो एवं वैमानिकदेवोंमें ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप चारसत्त्वस्थान हैं।

बाणउदि णउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं।
हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी॥६२६॥

अर्थ – भवनत्रिकदेव, भोगभूमिजमनुष्य और सर्वतिर्यञ्चोंके तथा चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ और सप्तमपृथ्वीके नारकियोंमें ९२ व ९० प्रकृतिके दो सत्त्वस्थान एवं सासादनगुणस्थानवर्ती सभी जीवोंके एक ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

चारों गतियोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

नरक गति		तिर्यञ्चगति		मनुष्यगति			देवगति	
गुण स्थान	सत्त्व स्थान	गुण स्थान	सत्त्व स्थान	गुणस्थान	सत्त्वस्थान		गुण स्थान	सत्त्व स्थान
मिथ्यात्व	९२,९१,९०	मिथ्यात्व	९२,९०,८८ ८४ व ८२	मिथ्यात्व	९२,९१,९०, ८८ व ८४		मिथ्यात्व	९२,९०
सासादन	९०	सासादन	९०	सासादन	९०		सासादन	९०
मिश्र	९२,९०	मिश्र	९२,९०	मिश्र	९२,९०		मिश्र	९२,९०
असंयत	९२,९१,९०	असंयत	९२,९०	असंयत	९३,९२,९१ व ९०		असंयत	९३,९२ ९१,९०
		देशसंयत	९२,९०	देशसंयत	,, ,, ,, ,,			
				प्रमत्तसंयत	,, ,, ,, ,,			
				अप्रमत्तसंयत	,, ,, ,, ,,			
				अपूर्वकरण	,, ,, ,, ,,			
				अनिवृत्तिकरण	उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी		
					९३,९२,९१,९०	८०,७९,७८,७७		
				सूक्ष्मसाम्पराय	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,		
				उपशान्तमोह	,, ,, ,, ,,	X X X		
				क्षीणमोह	X X X	८०,७९,७८,७७		
				सयोगकेवली	X X X	८०,७९,७८,७७		
				अयोगकेवली	द्विचरमसमय	चरमसमय		
					८०,७९,७८,७५	१० व ९		

अब प्रकृतियोंके बन्धोदयसत्त्वके त्रिसंयोगी भङ्ग कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं–

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तठाणभंगा हु।
भणिदा हु तिसंजोगे एत्तो भंगे परूवेमो॥६२७॥

अर्थ – इसप्रकार मूल-उत्तरप्रकृतियोंके बन्धोदयसत्त्वरूप स्थान तथा भङ्ग कहे अब बन्ध-उदय और सत्त्वके त्रिसंयोगी भङ्गोंको कहेंगे, आचार्यने ऐसी प्रतिज्ञा की है।

अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि ॥६२८॥[१]

अर्थ – मूलप्रकृतियोंमें ज्ञानावरणादि ८ प्रकारके बन्धवाले अथवा सातप्रकारके बन्धवाले या छहप्रकारके बन्धवाले जीवोंके उदय और सत्त्व आठ-आठ प्रकार ही जानना। जिसके मूलप्रकृतिका बन्ध एकप्रकारका है उसके उदय ७ प्रकार और सत्त्व ८ प्रकार अथवा उदय-सत्त्व दोनों ही सात-सातप्रकार अथवा चार-चारप्रकारके होते हैं तथा जिसके एक भी मूलप्रकृतिका बन्ध नहीं है उसके उदय और सत्त्व चार-चारप्रकारके होनेसे एक ही विकल्प है।

मूलप्रकृतिके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

सत्त्व	उदय	बन्ध
आठ मूलप्रकृतियोंका	आठ मूलप्रकृतियोंका	ज्ञानावरणादि आठ मूलप्रकृतियोंका
आठ मूलप्रकृतियोंका	आठ मूलप्रकृतियोंका	आयु बिना सात मूलप्रकृतियोंका
आठ मूलप्रकृतियोंका	आठ मूलप्रकृतियोंका	मोहनीय व आयु बिना छह मूलप्रकृतियोंका १०वाँ गुणस्थान
आठ मूलप्रकृतियोंका	मोहनीयबिना सात मूलप्रकृतियोंका	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय ११वाँ गुणस्थान
मोहनीयबिना सात मूलप्रकृतियोंका	मोहनीयबिना सात मूलप्रकृतियोंका	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय १२वाँ गुणस्थान
मूल प्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियाँ	मूलप्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियाँ	मूलप्रकृतिकी एक सातावेदनीय १३वाँ गुणस्थान
मूलप्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियां	मूलप्रकृतिकी चार अघातिया प्रकृतियाँ	मूलप्रकृति बन्ध का अभाव १४वाँ गुणस्थान

आगे इन त्रिसंयोगी भङ्गोंको गुणस्थानोंमें घटित करते हैं–

१. यही गाथा प्रा.पं.सं.पृ. २९६ पर गाथा संख्या ४ है।

मिस्से अपुव्वजुगले विदियं अपमत्तओत्ति पढमदुगं।
सुहुमादिसु तदियादी बंधोदयसत्तभंगेसु ॥६२९॥

अर्थ – उन बन्ध-उदय और सत्त्वसम्बन्धी भङ्गोंमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानोंमें दूसरा भङ्ग, मिश्रगुणस्थानबिना अप्रमत्तपर्यन्त शेष पाँचगुणस्थानोंमें आठ-आठके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप पहला और सातके बन्ध तथा आठ-आठके उदय और सत्त्वरूप दूसरा भङ्ग है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें तीसरा, उपशान्तकषायमें ४ था, क्षीणकषायगुणस्थानमें पाँचवाँ, सयोगीगुणस्थानमें छठा और अयोगीगुणस्थानमें सातवाँ भङ्ग है।

विशेषार्थ – बन्ध-उदय-सत्त्वके भङ्गोंमें गुणस्थानोंकी अपेक्षा मिश्रगुणस्थानमें, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें सातमूल प्रकृतियोंका बन्ध और आठ प्रकृतियोंका उदय व सत्त्व ऐसा दूसरा भङ्ग तथा मिश्रगुणस्थानबिना शेष मिथ्यादृष्टिआदिसे अप्रमत्तपर्यन्त छह गुणस्थानोंमें आठ-आठका ही बन्ध-उदय-सत्त्वरूप प्रथम भङ्ग और सातका बन्ध तथा ८ का उदय व सत्त्व ऐसे दूसरा भंग पाया जाता है। सूक्ष्मसाम्परायमें ६ का बन्ध तथा ८ का उदय व सत्त्व, उपशान्तकषायगुणस्थानमें एकका बन्ध और ७ का उदय व ८ का सत्त्व, क्षीणकषायगुणस्थानमें एकका बन्ध व ७ का उदय तथा ७ का सत्त्व, सयोगीगुणस्थानमें एकका बन्ध, ४ का उदय और चारका सत्त्व, अयोगीगुणस्थानमें बन्धशून्य तथा उदय-सत्त्व ४-४ का है।

गुणस्थानकी अपेक्षा त्रिसंयोगीभङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली	अयोगकेवली
बन्ध	८।७	८।७	७	८।७	८।७	८।७	८।७	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	७	७	४	४
सत्त्व	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	८	७	४	४

नोट– उपर्युक्तसन्दृष्टिमें ८ का अङ्क आयुसहित, ७ का अङ्क आयुरहित, ६ का अङ्क मोहनीय व आयुरहित, ४ का अङ्क घातिया कर्मोंसे रहित तथा १ का अङ्क सातावेदनीयरूप स्थानको सूचित करता है।

अब उत्तरप्रकृतियोंमें बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगी भङ्ग कहते हैं–

बन्धोदयकम्मंसा णाणावरणंतरायिए पंच।
बन्धोवरमे वि तहा उदयंसा होंति पंचेव ॥६३०॥[1]

अर्थ – ज्ञानावरण और अन्तरायकर्म की पाँच-पाँच प्रकृतिरूप बन्ध-उदय-सत्त्व सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है तथा बन्धका अभाव होनेपर भी उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें उदय व सत्त्वरूप पाँच-पाँच प्रकृतियाँ हैं। यहाँ अंश सत्त्वका पर्यायवाची जानना। अर्थात् अंश शब्दसे सत्त्व ग्रहण करना चाहिए।

ज्ञानावरण-अन्तरायकर्मकी उत्तरप्रकृतिके बन्ध-उदय-सत्त्वकी गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय
बन्ध	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०
उदय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सत्त्व	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

बिदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंचउदय णवसत्ता।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य ॥६३१॥
उवरदबंधे चदुपंचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगलं।[2]
तदियं गोदं आउं विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥६३२॥जुम्मं॥

अर्थ – दर्शनावरणकर्मकी ९ प्रकृतियोंको बाँधनेवाले मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें उदय पाँचका अथवा ४ का और सत्त्व ९ प्रकृतिका होता है। इसीप्रकार ६ प्रकृतिका जिनके बन्ध पाया जाता है ऐसे मिश्रसे दोनोंश्रेणिवाले अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथमभागपर्यन्त उदय ४ का व पाँचका और सत्त्व

१. यह गाथा प्रा.पं.सं. पृ. २९९ गाथा ८ है। २. प्रा.पं.सं.पृ. ३००-३०२ गाथा १०-१४ भी देखो।

९ प्रकृतिका तथा जिनके चारप्रकृतिका बन्ध है ऐसे अपूर्वकरणके द्वितीयभागसे उपशमकसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त एवं १६ प्रकृतिका क्षय करनेवाले क्षपक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्त बन्ध ४ प्रकृतिका उदय ४ प्रकृतिका व पाँचप्रकृतिका तथा सत्त्व ९ का है। १६ प्रकृतिका क्षय करनेके पश्चात् सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध-उदय उसीप्रकार है, किन्तु सत्त्व ६ प्रकृतिका है तथा जिनके बन्धका अभाव हुआ उनके उदय उसीप्रकार चार व पाँच प्रकृतिका है, सत्त्व उपशान्तकषायमें ९ का, क्षीणकषायके द्विचरमपर्यन्त ६ प्रकृतिका तथा क्षीणकषायगुणस्थानके चरमसमयमें उदय व सत्त्व चार-चार प्रकृतियोंका है। वेदनीय-गोत्र और आयुकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंका विभागकरके गुणस्थानोंमें उनका कथनकर आगे मोहनीयकर्मका भी कथन करूंगा, आचार्यने ऐसी प्रतिज्ञा की है।

दर्शनावरणकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंके बन्ध-उदय और सत्त्वरूप त्रिसंयोगीभंगसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण		अनिवृत्ति.		सूक्ष्मसाम्प.		उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	
								उप-शमक	क्षपक	उप-शमक	क्षपक	उप-शमक	क्षपक		द्वि-चरम	चरम समय
बन्ध	९	९	६	६	६	६	६	६।४	६।४	६।४	०।४	०।४	०।४	०	०	०
उदय	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४
सत्त्व	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९	६	९	६	४

अथानन्तर वेदनीयकर्मके उत्तरभेदोंमें त्रिसंयोगी भंगोंको कहते हैं–

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे।
दोसत्तं जोगित्तिय चरिमे उदयागदं सत्तं॥६३३॥

छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे।
चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स॥६३४॥[१] जुम्मं॥

अर्थ – साता और असातावेदनीयमेंसे किसी एकका ही बन्ध अथवा उदय यथायोग्यस्थानमें

१. प्रा.पं.सं.पृ. ३०८ गा. १९-२० भी देखो।

होता है और सयोगीगुणस्थानपर्यन्त सत्त्व साता-असाता दोनोंका है। अयोगीगुणस्थानके अन्तसमयमें जिसका उदय है उसीका सत्त्व है अत: गुणस्थानोंकी अपेक्षा वेदनीयकर्मके भंग प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त तो सातका बन्ध व उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा सातका बन्ध, असाताका उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा असाताका बन्ध सातका उदय, सत्त्व दोनोंका अथवा असाता ही का बन्ध-उदय और सत्त्व दोनोंका इसप्रकार चारभंग हैं तथा आगे सयोगीपर्यन्त केवल सातका ही बन्ध है इसलिये साता ही का बन्ध या उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा सातका बन्ध असाताका उदय, सत्त्व दोनोंका, अयोगकेवलीके बन्धका अभाव है। द्विचरमसमयपर्यन्त उदय सातका सत्त्व दोनोंका अथवा उदय असाताका सत्त्व दोनोंका, किन्तु चरमसमयमें साता ही का उदय, साता ही का सत्त्व अथवा, असाता ही का उदय असाता ही का सत्त्व इसप्रकार चारभंग हैं।

गुणस्थानोंकी अपेक्षासे वेदनीयकर्मके भंगोंकी संख्यासम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली	अयोगकेवली	भंगों का कुल जोड़ ४२
भंग संख्या	४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४	

आगे गोत्रकर्मसम्बन्धीभंग चारगाथाओंसे कहते हैं–

णीचुच्चाणेगदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे।
दोसत्ताजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं।।६३५।।

अर्थ – नीचगोत्र और उच्चगोत्र इन दोनोंमेंसे एक ही का बन्ध तथा उदय यथायोग्य स्थानोंमें होता है एवं सत्त्व अयोगीके द्विचरमसमयमें दोनोंका ही पाया जाता है, किन्तु अयोगीके चरमसमयमें जाकर उच्चगोत्रका ही सत्त्व पाया जाता है।

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्तं तु।
सेसिगिवियले सयले णीचं च दुगं च सत्तं तु।।६३६।।

अर्थ – जिनके उच्चगोत्रकी उद्वेलना हुई ऐसे तेजकाय और वायुकायजीवोंके नीचगोत्रका ही सत्त्व है और शेष एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय तथा सकलेन्द्रिय के नीचगोत्रका अथवा दोनोंका ही सत्त्व है।

इसी बातको अगली गाथामें स्पष्ट करते हैं–

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु।
उप्पण्णपढमकाले णीचं एयं हवे सत्तं ॥६३७॥

अर्थ – उच्चगोत्रकी उद्वेलनासे युक्त तेजकाय-वातकायजीवोंके मात्र नीचगोत्रका ही सत्त्व है और ये दोनों मरणकर एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय अथवा सकलेन्द्रियतिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं तब अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त एक नीचगोत्रका ही सत्त्व है पश्चात् उच्चगोत्रका बन्ध कर लेनेपर दोनोंका सत्त्व पाया जाता है।

अथानन्तर गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंग कहते हैं–

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥६३८॥[1]

अर्थ – गुणस्थानोंकी अपेक्षा गोत्रकर्मके भंग मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें क्रमसे पाँच और चार, मिश्र-असंयत-देशसंयत इन तीन गुणस्थानोंमें दो-दो, प्रमत्तसे सयोगीपर्यन्त आठगुणस्थानोंमें एक-एक और अयोगकेवलीके दो भंग होते हैं ऐसा नियमसे जानना।

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें नीचगोत्रका बन्ध और उदय व सत्त्व दोनोंका अथवा नीचगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध-उदय तथा सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा नीचगोत्रका बन्ध-उदय एवं सत्त्व इसप्रकार पाँच भंग हैं। सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी नीचगोत्रके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप अन्तिमभंगबिना शेष चारभंग हैं, क्योंकि तेजकाय-वायुकाय जीवोंके सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है। (सासादन मरकर तेजकाय-वायुकाय में उत्पन्न नहीं होता और न वहाँ उच्चगोत्र की उद्वेलना ही होती है।) मिश्र, असंयत और देशसंयतगुणस्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और उदय एवं सत्त्व दोनोंका अथवा उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसे दो-दो भंग हैं। प्रमत्तसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत पांचगुणस्थानोंमें उच्चगोत्रका बन्ध-उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसा १-१ भङ्ग है। आगे उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय और सयोगकेवलीगुणस्थानमें बन्धका अभाव, उच्चगोत्रका उदय एवं सत्त्व दोनोंका ऐसा एक-एक ही भंग है। अयोगकेवलीगुणस्थानमें उच्चगोत्रका उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा अन्तसमयमें उच्चगोत्रका उदय और सत्त्वरूप एक ऐसे दो भंग पाये जाते हैं।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ३०५-३०६ गाथा १७-१८ भी देखो।

गुणस्थानकी अपेक्षा गोत्रकर्मके भंगसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली	अयोगकेवली	भंगों का कुल जोड़ २५
भंग संख्या	५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२	

अब आयुकर्मके भंग १३ गाथाओंसे कहते हैं–

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स।
णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥६३९॥

भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥६४०॥जुम्मं॥

अर्थ – भुज्यमानआयुके अधिकसे अधिक छहमास अवशेष रहनेपर देव और नारकी मनुष्य अथवा तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करते हैं तथा मनुष्य-तिर्यञ्च भुज्यमानआयुका त्रिभाग शेष रहनेपर चारों आयुओंमेंसे योग्यतानुसार किसी भी एक आयुका बंध करते हैं। भोगभूमिज जीव अपनी आयुका छहमास अवशेष रहनेपर देवायुका ही बन्ध करते हैं, एकेन्द्रिय और विकलत्रयजीव मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुमेंसे किसी एकका बन्ध करते हैं, किन्तु तेजकाय-वायुकायिक जीव और सप्तमपृथ्वीके नारकीजीव तिर्यञ्चायुका ही बन्ध करते हैं।

इसप्रकार आयुकर्मके बन्धका कथन करके उदय और सत्त्वका निरूपण करते हैं–

सगसगगदीणमाउं उदेदि बन्धे उदिण्णगेण समं।
दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥६४१॥

अर्थ – नारकी आदि जीवोंके अपनी-अपनी गतिसम्बन्धी एक आयुका उदय एवं परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध होते समय अथवा बन्ध हो जानेपर उदयागतआयुसहित (बध्यमान और भुज्यमानरूप) दोका सत्त्व, किन्तु जबतक परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध न हो तबतक एक भुज्यमान आयुकी ही सत्ता रहती है, ऐसा जानना।

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे।
अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥६४२॥

अर्थ – एकजीव एकभवमें एक ही आयुका बन्ध करता है[१] और वह भी योग्यकालमें आठबार ही बाँधता है तथा वहांपर भी वह सभी स्थानोंपर आयुकी त्रिभागी शेष रहनेपर ही बँधती है।

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदि।
ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ।।६४३।।

अर्थ – पूर्वकथित आठ अपकर्षोंमें (त्रिभागीमें) प्रथमबारके बिना द्वितीयादि बारमें जो पहले आयु बाँधी थी उसकी स्थितिकी वृद्धि हानि और अवस्थिति होती है। कर्मभूमिज मनुष्यतिर्यञ्चोंकी भुज्यमान आयुका परिणामोंके निमित्तसे अथवा बाह्यनिमित्तसे अपवर्तनघात (कदलीघात) भी होता है।

---

१. **शंका** – एकपर्याय में एक ही गति का बंध होगा या विशेष का अर्थात् दो, तीनगति का बंध हो जाता है। यदि एक पर्याय में दो, तीनगति का बंध होगा तो आयु के त्रिभाग में बंध होना कैसे संभव होता है ? श्रेणिक महाराज का एक गति से दो दो बंध माने गये। एक नरकगति का दूसरे तीर्थंकरप्रकृति का बंध हुआ तो उन्हें मनुष्यगति का बन्ध हुआ कि नहीं या नरक ही में उनको मनुष्यगति का बन्ध होगा ?

समाधान – शंका से ऐसा प्रतीत होता है कि आयु और गति को एक समझा है। कर्म आठ प्रकार के हैं। उन आठ में से एक नामकर्म है और एक आयुकर्म है। नामकर्म की ९३ उत्तरप्रकृति हैं और एकप्रकृति का दूसरी प्रकृतिरूप संक्रमण भी हो जाता है, किन्तु आयुकर्म की ४ उत्तरप्रकृति हैं और आयुकर्म की एक उत्तरप्रकृति का दूसरी उत्तरप्रकृतिरूप संक्रमण नहीं होता है।

नामकर्म की ९३ उत्तरप्रकृतियों में 'गति' नाम की भी पिंडरूप उत्तरप्रकृति है जिसके नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप चार भेद हैं। इनमें से जिस समय किसी एक गति का उदय होता है तो अन्य तीन गतियाँ स्तिबुकसंक्रमण द्वारा उदयगत गतिरूप संक्रमण होकर उदय में आती हैं। अतः एकजीव के एक ही पर्याय में यथासंभव चारों गतियों का यथाक्रम बंध हो सकता है। एक जीव के एकपर्याय में एकसे अधिक गति का भी बंध हो सकता है, किन्तु एक जीव के एकपर्याय में एक ही आयु का बंध होगा अन्य आयु का बंध नहीं हो सकता। जिस समय आयु का बंध होता है उससमय गति का बंध भी आयु के अनुसार होगा, अर्थात् जिस आयु का बंध होगा उस समय उस ही गति का बंध होगा। एक पर्याय में एक ही आयु के बँधने में कारण यह है कि 'एक आयु का दूसरी आयुरूप संक्रमण नहीं होता है।'

मरण के अनन्तर समय में जिस आयु का उदय होगा उस ही गति का भी उदय होगा और उस ही गति में जीव जन्म लेगा। उस समय विवक्षितगति के अतिरिक्त अन्य तीन गतियाँ स्तिबुकसंक्रमण के द्वारा विवक्षितगतिरूप संक्रान्त होकर उदय में आती हैं।

राजा श्रेणिक के मिथ्यात्व अवस्था में परिणाम अनुसार चारों गतियों का बंध संभव है, किन्तु जिस समय नरकायु का बंध किया उस समय तो नरकगति का ही बंध हुआ। सम्यक्त्व काल अथवा तीर्थंकरप्रकृति के बंधकाल में मात्र एक देवगति का ही निरन्तर बंध हुआ, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यंच के अन्य तीनगति की बंधव्युच्छित्ति हो जाने से अन्य तीनगति का बंध नहीं होता। सम्यग्दृष्टिदेव व नारकी निरन्तर एक मनुष्यगति का ही बन्ध करते हैं अन्य गति का नहीं। अतः श्रेणिक महाराज नरक में निरन्तर मनुष्यगतिका बंध कर रहे हैं और ६ मास आयुशेष रह जाने पर मनुष्यायुका ही बंध करेंगे।

(पं. रतनचंद मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. ४२३-२४))

विशेषार्थ – पूर्वमें आयुकी स्थिति बाँधी थी पश्चात् दूसरी अथवा तीसरीबारमें उससे अधिक या हीन अथवा उतनी ही स्थितिको बाँधता है। इनमें जो अधिक स्थिति बाँधी उसी की प्रधानता जाननी तथा यदि हानि हो तो पूर्वमें जो अधिकस्थिति थी उसकी प्रधानता जानना। भुज्यमान आयुकी त्रिभागी अवशेष रहनेपर आयुका बन्ध होता ही है ऐसा एकान्तिक नियम नहीं है। प्रत्येक त्रिभागीकालमें यद्यपि आयुबन्धकी योग्यता है तथापि आयुबन्धका नियम नहीं है। अर्थात् बँधे या नहीं भी बँधे तथा अन्यकालमें आयुका बन्ध होता ही नहीं, यह नियम है।

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु।
एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥६४४॥

अर्थ – इसप्रकार बन्ध होने अथवा नहीं होनेपर अथवा उपरतबन्धावस्थामें एक जीवके एक पर्यायमें एक-एक आयु के प्रति तीन-तीनभङ्ग नियमसे होते हैं।

विशेषार्थ – जहाँ वर्तमानकालमें परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध हो रहा है वहाँ बन्ध आगामी आयुका, उदय भुज्यमान आयुका, सत्त्व भुज्यमान व बध्यमान दोनों आयुका पाया जाता है। जहाँ आगामी आयुका भूतकालमें बन्ध नहीं हुआ हो और वर्तमानकालमें भी नहीं हो रहा हो तो वहाँ बन्धका अभाव और उदय एवं सत्त्व भुज्यमानआयुका ही पाया जावेगा और जहाँ आगामी आयुका पहले बन्ध हुआ हो और वर्तमानकालमें बन्ध नहीं हो रहा हो वहाँ बन्धका अभाव और उदय भुज्यमान आयुका तथा सत्त्व पूर्वबद्ध व भुज्यमान आयु दोनोंका होता है, यही उपरतबन्ध कहलाता है, इसप्रकार एक-एक आयुके प्रति तीन-तीन भङ्ग जानना।

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा।
जीवे इगिभवभङ्गा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥६४५॥

अर्थ – उक्त एक-एक आयुके तीन-तीन भंगोंको विवक्षित गतिमें आगामी जितनी आयुका बन्ध सम्भव है उस संख्यासे गुणाकर जो-जो प्रमाण होवे उतने नानाजीवों की अपेक्षा एक-एक भवसम्बन्धी भंग होते हैं सो नरक व देवगतिमें तो तिर्यञ्च और मनुष्यायुका ही बन्ध सम्भव है अतः दो से उन तीन भंगोंको गुणा करनेपर छह-छह भंग होते हैं तथा मनुष्य व तिर्यञ्चके चारों आयुका बन्ध सम्भव है इसलिये चार से उन तीन भंगोंको गुणा करनेसे १२-१२ भंग होते हैं और अपुनरुक्त भंगोंकी अपेक्षा बध्यमान आयुकी संख्यारूप जो गुणाकार कहा उसमेंसे एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसे पूर्वोक्त भंगोंमेंसे घटानेसे अपुनरुक्तभंग होते हैं सो देव व नारकीके तो पाँच-पाँच और मनुष्य व तिर्यञ्चोंके नौ-नौ अपुनरुक्त भंग हैं।

नरकगतिमें आयुकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वसम्बन्धी सन्दृष्टि–

	तिर्यञ्चायु			मनुष्यायु		
	बन्ध	अबन्ध	उपरतबन्ध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबन्ध
बन्ध	१ ति. आयु	०	१ उप.	१ म.	०	१ उप.
उदय	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.	१ न.
सत्त्व	२ ति.न.	१ न.	२ ति.न.	२ म.न.	१ न.	२ म.न.

मनुष्यगतिमें आयुकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वसम्बन्धी सन्दृष्टि–

	नरकायु			तिर्यञ्चायु			मनुष्यायु			देवायु		
	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध	बन्ध	अबन्ध	उपरतबंध
बन्ध	१ न.	०	१ उप.	१ ति.	०	१ उप.	१ म.	०	१ उप.	१ देव	०	१ उप.
उदय	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.
सत्त्व	२ न.म.	१ म.	२ न.म.	२ ति.म.	१ म.	२ ति.म.	२ म.म.	१ म.	२ म.म.	२ दे.म.	१ म.	२ दे.म.

नोट – मूलगाथाका सारांश यह है कि एक-एक आयुकी अपेक्षासे तीन-तीन भंग होते हैं, जिसगतिमें जितनी आयुका बन्ध हो उस बध्यमान आयुकी संख्याको ३ भंगोंसे गुणा करनेपर सर्वभंगोंकी संख्या निकल जाती है।

जिसगतिमें जितनी आयुका बन्ध हो उसमेंसे १ कम करनेसे शेष पुनरुक्त भंग रह जाते हैं अथवा सर्वभंगोंमेंसे पुनरुक्तभङ्गोंको घटानेपर शेष अपुनरुक्तभंग रहते हैं। जैसे– भुज्यमानदेवायुमें मनुष्य-तिर्यञ्चायुका बन्ध होता है अर्थात् २×३=६ भंग हुए। देवगतिमें २ आयुका बन्ध है उसमेंसे १ कम करनेपर १ पुनरुक्तभंग होता है उसको घटानेसे ६-१=५ अपुनरुक्तभंग जानना।

आगे गुणस्थानोंमें आयुकर्मके अपुनरुक्तभंगोंको कहते हैं–

पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि।
णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव बिदियगुणे ॥६४६॥

सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये।
णरतिरिये तिरियाऊ तिण्णाउगबंधभंगूणा ॥६४७॥

देस णरे तिरिये तियतियभङ्गा होंति छट्ठसत्तमगे।
तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केक्को ॥६४८॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकगतिके ५, मनुष्यके ९, तिर्यञ्चगतिके ९ और देवगतिके ५ भंग हैं; सासादनगुणस्थानमें आयुबन्धकी अपेक्षा मनुष्य-तिर्यञ्चके जो ४ भंग कहे थे उनमेंसे नरकायुके बन्धबिना बन्धरूप भंग होते हैं अतएव वहाँ नरकगतिके ५, मनुष्यगतिके ८, तिर्यञ्चगतिके ८ और देवगतिके ५ भंग जानना ॥६४६॥

पूर्वमें आयुबन्धकी अपेक्षा जो भंग कहे थे वे सभी कम करनेपर मिश्रगुणस्थान में नरकगतिके ३, मनुष्यगतिके ५, तिर्यञ्चगतिके ५ और देवगतिके ३ भंग हैं तथा असंयतगुणस्थानमें देव-नरकगतिमें तिर्यञ्चायुके बन्धरूप भंग न होनेसे चार-चार भंग हैं एवं मनुष्य-तिर्यञ्चगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरक-तिर्यञ्च और मनुष्यायुरूप तीन भंग नहीं हैं, क्योंकि इनके बन्धका व्युच्छेद सासादनगुणस्थानमें ही हो गया है इसलिए यहाँ मनुष्यगतिके ६ और तिर्यञ्चगतिके भी ६ भंग जानना ॥६४७॥

देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च-मनुष्यके बन्ध-अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा एक देवायुसे तीन-तीन भंग तथा प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानीय मनुष्यके देवायुके बन्धकी अपेक्षा बन्ध-अबन्ध और उपरतबन्ध होनेसे तीन-तीन भंग हैं। उपशमश्रेणीमें देवायुका बन्ध नहीं होनेसे अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा दो-दो भंग हैं एवं क्षपकश्रेणीमें उपरतबन्धका भी अभाव होनेसे अबन्धकी अपेक्षा एक-एक ही भंग है, ऐसा जानना चाहिए ॥६४८॥

आगे गुणस्थानोंमें सर्वगतिसम्बन्धी आयुकर्मके भंगसम्बन्धी कुल जोड़ कहते हैं–

अडछव्वीसं सोलस वीसं छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं।
असरिसभंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥६४९॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८, सासादनगुणस्थानमें २६, मिश्रगुणस्थानमें १६, असंयतगुणस्थानमें २०, देशसंयतगुणस्थानमें ६, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३-३ भंग, उपशमश्रेणिवाले

चारगुणस्थानोंमें दो-दो तथा क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त एक-एक अपुनरुक्त भंग कहा है।

गुणस्थानकी अपेक्षा अपुनरुक्तभंगों की सन्दृष्टि-

गुणस्थान	चतुर्गतिसम्बन्धीभङ्ग				चारोंगतिके सर्वभंगोंकी संख्या	विशेष विवरण
	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव		
मिथ्यात्व	५	९	९	५	२८	
सासादन	५	८	८	५	२६	मनुष्य-तिर्यञ्चगतिमें नरकायुका बंध नहीं है अत: इन दोनोंगतियों में एक-एक भङ्ग कम हुआ।
मिश्र	३	५	५	३	१६	इस गुणस्थानमें आयुबंधका अभाव है अत: बन्ध सम्बन्धी भङ्ग नहीं कहे।
असंयत	४	६	६	४	२०	यहाँ देव-नरकगतिमें तिर्यञ्चायु का बन्ध नहीं होता अत: एक-एक भङ्ग कम हुआ तथा मनुष्य-तिर्यंचगतिमें मनुष्य, तिर्यञ्च व नरकायु का बन्ध नहीं होता अत: ३-३ भंग कम किए।
देशसंयत	०	३	३	०	६	तिर्यञ्च-मनुष्यगति में एक देवायु का बन्ध होता है अत: बन्ध-अबंध एवं उपरतबन्धकी अपेक्षा ३-३ भङ्ग हैं।
प्रमत्त	०	०	३	०	३	,, ,,
अप्रमत्त	०	०	३	०	३	,, ,,
उपशमक अपूर्वकरण	०	०	२	०	२	२ भङ्ग (देवायुका अबन्ध एवं उपरतबन्धकी अपेक्षा)

क्षपकअपूर्वकरण	०	०	१	०	१	१ (अबन्धकी अपेक्षा)
उपशमक अनिवृत्तिक.	०	०	२	०	२	उपशमक अपूर्वकरणवत्।
क्षपक अनिवृत्तिक.	०	०	१	०	१	क्षपक अपूर्वकरणवत्।
उपशमक सूक्ष्मसाम्पराय	०	०	२	०	२	उपशमक अपूर्वकरणवत्।
क्षपक सूक्ष्म साम्पराय	०	०	१	०	१	क्षपक अपूर्वकरणवत्।
उपशांतकषाय	०	०	२	०	२	उपशमक अपूर्वकरणवत्।
क्षीणकषाय	०	०	१	०	१	यह भङ्ग अबन्धकी अपेक्षासे है।
सयोगकेवली	०	०	१	०	१	अबन्धकी अपेक्षासे।
अयोगकेवली	०	०	१	०	१	अबन्धकी अपेक्षासे।
					११६	

अब वेदनीय-गोत्र-आयु इन तीनोंके मिथ्यात्वादि सर्वगुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या कहते हैं–

बादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये।
गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥६५०॥

अर्थ – पूर्वमें जो मिथ्यात्वसे अयोगीपर्यन्त गुणस्थानोंमें भंग कहे हैं वे सभी मिलकर वेदनीयकर्मके ४२, गोत्रकर्मके २५ और आयुकर्मके ११६ भंग होते हैं।

आगे वेदनीय-गोत्र और आयुकर्मके सामान्यरूपसे पूर्वोक्त मूलभंगोंकी संख्या कहते हैं–

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भङ्गा हु।
पण णव णव पण भङ्गा आउचउक्केसु विसरित्था ॥६५१॥

अर्थ – उन पूर्वोक्त भंगोंमें अपुनरुक्त मूलभंग वेदनीयकर्मके ८ और गोत्रके ७ होते हैं तथा चारों आयुओंके क्रमसे ५, ९, ९ एवं ५ भंग होते हैं।

अथानन्तर मोहनीयकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंको कहते हैं–

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६५२॥

अर्थ – मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानोंमें सर्वभंग जैसे पूर्वमें पृथक्-पृथक् कहे थे उसीप्रकार बंधादिके संयोगज भङ्गोंमें भी जानना।

अब गुणस्थानकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान ७ गाथाओंमें कहते हैं–

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदु ति दुसु चउसु चत्तारि।
तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणम तियं।।६५३।।

अणियट्टीबंधतियं पणदुगएक्कारसुहुमउदयंसा।
इगि चत्तारि य संते सत्तं तिण्णेव मोहस्स।।६५४।।

बावीसं दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी।
इगिवीसं णवयतियं अट्ठावीसे च बिदियगुणे।।६५५।।

सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं।
णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमंसयं चउसु।।६५६।।

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि।
तो णवगं छादितियं अडचउरिगिवीससयं च बंधातियं।।६५७।।

पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु।
अट्ठचदुरेक्कवीसं तेरादीअट्ठयं सत्तं।।६५८।।

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कयं सत्तं।
अडचउरिगिवीसंसा संते मोहस्स गुणठाणे।।६५९।।विसेसयं।।

अर्थ – मोहनीयकर्मके पूर्वोक्त बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानोंमें यथासम्भव बन्धस्थान मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणपर्यन्त आठगुणस्थानोंमें एक-एक, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें बन्धस्थान ५ हैं तथा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषायगुणस्थानमें मोहनीयकर्मके बन्धका अभाव है। उदयस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४, सासादन व मिश्रमें ३-३, असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त चारगुणस्थानोंमें चार-चार, अपूर्वकरणमें ३, अनिवृत्तिकरणमें २, सूक्ष्मसाम्परायमें एक और उपशान्तकषायमें उदयस्थाननहीं है। सत्त्वस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें ३, सासादनमें १, मिश्रमें दो, असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त पाँच-पाँच, अपूर्वकरणमें ३, अनिवृत्तिकरणमें ११, सूक्ष्मसाम्परायमें चार और उपशान्तकषायमें तीन हैं।।६५३-५४।।

उपर्युक्त कथनका स्पष्टीकरण करते हैं–

मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धस्थान २२ प्रकृतिक, उदयस्थान १०-८-९ व ७ प्रकृतिक, सत्त्वस्थान २८-२७-२६ प्रकृतिक हैं। सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८ व ७ प्रकृतिक उदयस्थान एवं २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है, मिश्रगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८ व ७ प्रकृतिक उदयस्थान और २८ व २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है। असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक बन्धस्थान, ९-८-७ व ६ प्रकृतिक उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान, देशसंयतगुणस्थानमें १३ प्रकृतिक बन्धस्थान, ८-७-६ व ५ प्रकृतिके चार उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान। प्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिक बन्धस्थान, ७-६-५-४ प्रकृतिक चार उदयस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिरूप पाँच सत्त्वस्थान हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें ९ प्रकृतिरूप एक बन्धस्थान, ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान और २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान हैं। अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ प्रकृतिरूप बन्धस्थान, ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान, एवं २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ५-४-३-२ व १ प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान, २ व १ प्रकृतिक उदयस्थान एवं २८-२४-२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिरूप ११ सत्त्वस्थान हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धस्थान शून्य, सूक्ष्मलोभरूप एकप्रकृतिक उदयस्थान, सत्त्वस्थान २८-२४ व २१ प्रकृतिक हैं, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्ध व उदयस्थान नहीं है तथा २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं॥६५५-६५९॥

गुणस्थानकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वके त्रिसंयोगी भंग सम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	बंधस्थान की संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या	उदयस्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या	सत्त्वस्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतियोंकी संख्या
मिथ्यात्व	१	२२ प्रकृतिक	४	१०-९-८ व ७	३	२८-२७ व २६
सासादन	१	२१ प्रकृतिक	३	९-८ व ७	१	२८ प्रकृतिक
मिश्र	१	१७ प्रकृतिक	३	९-८ व ७	२	२८-२४ प्रकृ.
असंयत	१	१७ प्रकृतिक	४	९-८-७व६	५	२८-२४-२३-२२ व २१
देशसंयत	१	१३ प्रकृतिक	४	८-७-६-५	५	,, ,, ,,
प्रमत्त	१	९ प्रकृतिक	४	७-६-५-४	५	,, ,, ,,
अप्रमत्त	१	९ प्रकृतिक	४	७-६-५-४	५	,, ,, ,,

अपूर्वकरण (उपशमक)	१	९ प्रकृतिक	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१
अपूर्वकरण (क्षपक)	१	९ प्रकृतिक	०	६-५ व ४	१	२१ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	५	५-४-३-२ व १	२	२ व १ प्रकृतिक	३	२८-२४ व २१
अनिवृत्तिकरण (क्षपक)	५	५-४-३-२ व १	२	२ व १ प्रकृतिक	९	२१-१३-१२-११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिक
सूक्ष्मसाम्पराय (उपशमक)	०	०	१	१ सूक्ष्म-लोभरूप	३	२८-२४ व २१
सूक्ष्मसाम्पराय (क्षपक)	०	०	१	१ सूक्ष्म-लोभरूप	१	१ प्रकृतिक
उपशान्तकषाय	०	०	०	०	३	२८-२४ व २१

नोट – उपर्युक्त सन्दृष्टिमें कथित बन्धस्थानोंके लिए गाथा ४६४, उदयस्थान के लिए ४७९ गाथा एवं सत्त्वस्थानके लिए गाथा ५०८ से ५११ भी देखना चाहिए।

अब मोहनीयकर्मके बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगीभंगोंमें जो विशेषता है उसको कहते हैं–

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंध सत्तं च।
सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेजं ॥६६०॥

अर्थ – बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थान हैं, उदयस्थानमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थान तथा सत्त्वस्थानमें बन्ध और उदयस्थान होते हैं। इसप्रकार एक अधिकरण में दो आधेय हैं ऐसा जानना।

अब सर्वप्रथम बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानको कहते हैं–

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगिचऊपंच।
तिसुइगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे ॥६६१॥

दसयचऊ पढमतियं णवतियमडवीसयं णवादिचऊ।
अडचदुतिदुइगिवीसं अडचदु पुव्वं व सत्तं तु ॥६६२॥

सगचउ पुव्वं वंसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतियं।
दुगमेक्कं च य सत्तं पुव्वं वा अत्थि पणगदुगं ॥६६३॥

तिसु एक्केक्कं उदओ अडचउरिगिवीससत्तसंजुत्तं।
चदुतिदयं तिदयदुगं दो एक्कं मोहणीयस्स ॥६६४॥

अर्थ– मिथ्यात्वगुणस्थानके २२ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान पूर्वोक्त ४ (१०, ९, ८,७) एवं सत्त्वस्थान ३ (२८-२७-२६) हैं, सासादनगुणस्थानके २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थान ३ (९, ८, ७) एवं सत्त्वस्थान एक (२८) है, मिश्र गुणस्थानके १७ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ३ (९, ८, ७) एवं सत्त्वस्थान दो (२८-२४) हैं, व असंयतगुणस्थानसम्बन्धी १७ प्रकृतिक, देशसंयतगुणस्थानके १३ प्रकृतिक, प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी ९ प्रकृतिक इसप्रकार (१७-१३ व ९) तीन बन्धस्थानोंमें उदयस्थान तो चार-चार (९, ८, ७, ६ और ८, ७, ६, ५ एवं ७, ६, ५, ४) हैं, किन्तु अपूर्वकरणके ९ प्रकृतिकस्थानमें तीन (६, ५, ४) ही उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पाँच-पाँच (२८-२४-२३-२२-२१) हैं, परन्तु अपूर्वकरणमें तीन ही सत्त्वस्थान (२८-२४-२१) हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ५ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान एक (२) एवं सत्त्वस्थान (२८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिरूप) हैं, इसीगुणस्थानके ४ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान २ (२, १) तथा सत्त्वस्थान उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २८-२४ व २१ प्रकृतिक तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा २१-१३-१२-११-५ व ४ प्रकृतिक इसप्रकार आठ हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके ही ३-२ व १ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थान तो सर्वत्र एक प्रकृतिरूप ही है, किन्तु सत्त्वस्थान उपशमश्रेणीकी अपेक्षा तो २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन हैं तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा ३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ४ व ३ प्रकृतिक, २ प्रकृतिक बंधस्थानमें ३ व २ प्रकृतिक एवं १ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २ व १ प्रकृतिक जानना।

मोहनीयके बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	बन्ध-स्थानगत प्रकृति	उदय-स्थान की संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या	सत्त्व-स्थान की संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्या
मिथ्यात्व	२२	४	१०-९-८ व ७	३	२८-२७ व २६ प्रकृतिक
सासादन	२१	३	९-८ व ७		२८ प्रकृतिक
मिश्र	१७	३	९-८ व ७	२	२८ व २४ प्रकृतिक
असंयत	१७	४	९-८-७ व ६	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक

देशसंयत	१३	४	८-७-६ व ५	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
प्रमत्त	९	४	७-६-५ व ४	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
अप्रमत्त	९	४	७-६-५ व ४	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
अपूर्वकरण उपशमक-क्षपक	९	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरण	५	१	२ प्रकृतिक	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरण	४	२	२ व १ प्रकृतिक	८	२८-२४-२१-१३-१२-११-५ व ४ प्रकृतिक
,,	३	१	१ प्रकृतिक	५	२८-२४-२१ ४ व ३ प्रकृतिक
,,	२	१	१ प्रकृतिक	५	२८-२४-२१ ३ व २ प्रकृतिक
,,	१	१	१ प्रकृतिक	५	२८-२४-२१ २ व १ प्रकृतिक

अथानन्तर उदयस्थान को अधिकरण मानकर बन्धस्थान और सत्त्वस्थान के आधेयरूप भङ्गों को कहते हैं–

दसयादिसु बंधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्तं च।
पण पण तियपण दुगपण इगितिग दुगछच्चऊणवयं ॥६६५॥

अर्थ – दस आदि १०-९-८-७-६-५-४-२ व १ प्रकृतिरूप उदयस्थानों में बन्धस्थान क्रम से १-३-४-५-३-२-१-२ व ४ तथा सत्त्वस्थान ३-६-७-५-५-५-३-६ व ९ हैं।

आगे उपर्युक्त कथन का विशेष स्पष्टीकरण तीन गाथाओं से करते हैं–

पढमं पढमतिचउपणसत्तरतिग चदुसु बंधयं कमसो।
पढमतिछस्सगमडचउतिदुइगिवीसंसयं दोसु ॥६६६॥

तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो।
पणदुगमडचउरेक्कावीसं तेरसतियं सत्तं ॥६६७॥

चरिमे चदुतिदुगेक्कं अट्ठयचदुरेक्कसंजुदं वीसं।
एक्कारादीसव्वं कमेण ते मोहणीयस्स ॥६६८॥

अर्थ – १० प्रकृतिरूप प्रथम उदयस्थान में २२ प्रकृतिक एक बन्धस्थान एवं २८-२७ व २६

प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं, ९ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें २२-२१ व १७ प्रकृतिरूप तीन बन्धस्थान और २८-२७-२६-२४-२३-२२ प्रकृतिक ६ सत्त्वस्थान[1] हैं, ८ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक चार बन्धस्थान तथा सत्त्वस्थान २८-२७-२६-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिक हैं, ७ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिरूप पाँच बन्धस्थान एवं २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान हैं, ६ प्रकृतिक उदयस्थानमें १७-१३ और ९ प्रकृतिक तीन बन्धस्थान, २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान हैं। ५ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें १३ व ९ प्रकृतिक दो बन्धस्थान एवं सत्त्वस्थान २८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक पाँच हैं, ४ प्रकृतिक उदयस्थानमें ९ प्रकृतिक एक ही बन्धस्थान और २८-२४ व २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं, २ प्रकृतिक उदयस्थानमें ५ व ४ प्रकृतिक दो बन्धस्थान एवं २८-२४-२१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान तो उपशमश्रेणीकी अपेक्षा एवं २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थान क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा इसप्रकार ६ सत्त्वस्थान हैं। १ प्रकृतिक उदयस्थानमें ४-३-२ व १ प्रकृतिक चार बन्धस्थान एवं उपशमश्रेणीकी अपेक्षा २८-२४ व २१ प्रकृतिक तीन और ११-५-४-३-२ व १ प्रकृतिक ५ इसप्रकार ८ सत्त्वस्थान जानना।

[illegible]

१. सम्यग्दृष्टिके ९ प्रकृतिका उदयस्थान सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसहित ही होता है और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति का सत्त्व नहीं है अतः ९ प्रकृतिक उदयस्थान में २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है।

मोहनीयकर्म के उदयस्थान में बन्ध व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि –

उदय-स्थान	उदयस्थानगत प्रकृति विवरण	बंध-स्थान	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण	गुण-स्थान	सत्त्वस्थान	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण
	मि.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.		मि.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.			मि.-स.-मि.-अन.-अप्र.-प्र.-सं.-वे.-नो.
१०	१-४-१-२-१-१	२२	१-१६-१-२-१-१	प्रथम	२८	१-१-१-४-४-४-४-३-६=२८
					२७	१-×-१-४-४-४-४-३-६=२७
					२६	१-×-×-४-४-४-४-३-६=२६
९	१-४-१-२-१-०	२२	१-१६-१-२-१-१	प्रथम	२८,२७,२६	उपर्युक्त
९	१-३-१-२-१-१	२२	१-१६-१-२-१-१	प्रथम	२८	उपर्युक्त
९	×-४-१-२-१-१	२१	×-१६-१-२-१-१	द्वितीय	२८	उपर्युक्त
९	मिश्र-१-३-१-२-१-१	१७	×-१२-१-२-१-१	तृतीय	२८-२४	१-१-१-×-४-४-४-३-६=२४
९	सम्य.-१-३-१-२-१-१	१७	×-१२-१-२-१-१	चतुर्थ	२८-२४	×-१-१-×-४-४-४-३-६=२३
					२३-२२	×-१-×-×-४-४-४-३-६=२२
८	१-४-१-२-×-×	२२	१-१६-१-२-१-१	प्रथम	२८,२७,२६	उपर्युक्त
८	१-३-१-२-१-०	२२	१-१६-१-२-१-१	प्रथम	२८	उपर्युक्त
८	×-४-१-२-१-०	२१	×-१६-१-२-१-१	द्वितीय	२८	उपर्युक्त
८	मिश्र-३-१-२-१-०	१७	×-१२-१-२-१-१	तृतीय	२८,२४	उपर्युक्त
८	सम्य.-३-१-२-१-०	१७	×-१२-१-२-१-१	चतुर्थ	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
८	×-३-१-२-१-१	१७	×-१२-१-२-१-१	चतुर्थ	२८,२४,२१	×-×-×-×-४-४-४-३-६=२१
८	सम्य.-२-१-२-१-१	१३	×-८-१-२-१-१	पञ्चम	२८,२४,२१	उपर्युक्त

७	मि.	३-१-२-१-×	२२					
७		×-४-१-२-×-×	२१					
७	मिश्र.	-३-१-२-×-×	१७					
७	सम्य.	३-१-२-×-×	१७					
७		×-३-१-२-१-०	१७					
७	सम्य.	२-१-२-१-०	१३					
७		×-२-१-२-१-१	१३					
७	सम्य.	१-१-२-१-१	९					
६		×-३-१-२-×-×	१७					
५	सम्य.	२-१-२-×-×	१३					
४		×-२-१-२-१-०	१३					
३	सम्य.	१-१-२-१-०	९					
६		×-१-१-२-१-१	९					
५		×-२-१-२-०-०	१३					
५	सम्य.	१-१-२-१-०	९					
४		×-१-१-२-०-०	९					
२		×-१-१-०-०-०	५					

उपर्युक्त		२८	२८	उपर्युक्त
उपर्युक्त		२८	२८	उपर्युक्त
उपर्युक्त		२८,२४	२८,२४	उपर्युक्त
उपर्युक्त	प्रथम	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
उपर्युक्त	द्वितीय	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
उपर्युक्त	तृतीय	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
उपर्युक्त	चतुर्थ	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
उपर्युक्त	पंचम	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
×-×-१-२-१-×	छठवाँ	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
उपर्युक्त	चतुर्थ	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
उपर्युक्त	पंचम	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
उपर्युक्त	पंचम	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
उपर्युक्त	६-७	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
उपर्युक्त	६,७-८	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
×-८-१-२-१-१	पंचम	२८,२४,२१	२८,२४,२१	उपर्युक्त
×-४-१-२-१-१	६-७	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	अपर्युक्त
×-४-१-२·१-१	६-७	२८,२४,२३,२२	२८,२४,२३,२२	उपर्युक्त
×-४-१-×-×-×	९वाँ	२८,२४,२१,१३	×-×-×-×-×-×-×-४-३-६=१३	
		२८,२४,२१,१२	×-×-×-×-×-×-×-४-२-६=१२	
		२८,२४,२१,११	×-×-×-×-×-×-×-४-१-६=११	

		४	×-४-०-०-०-०	९वाँ	२८,२४,२१, ११,५	उपर्युक्त
१	×-१-०-०-०-०	४	०-४-×-×-×-×	९वाँ	५	×-१-०-×-०-×-४-१-० नवकसमयप्रबद्ध
१	×-१-×-×-×-×	४	×-४-०-०-०-०	९वाँ	४	०-×-०-×-०-×-४-०-०
		३	०-३-×-×-×-×	९वाँ	२८,२४,२१,४,३	×-०-×-०-×-०-३-×-×
		२	×-२-०-०-०-०	९वाँ	२८,२४,२१,३,२	×-०-०-×-×-०-२-०-०
		१	×-१-×-×-×-×	९वाँ	२८,२४,२१,२,१	×-×-×-×-×-×-१-×-×
		०	×-×-×-०-०-०	१०वाँ	१	×-×-×-×-×-×-१-०-०

अब सत्त्वस्थानों को अधिकरण मानकर बन्ध-उदय को आधेय मानते हुए भंगों का कथन करते हैं–

सत्तपदे बंधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु।
अडसग दुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्कं च ॥६६९॥

सव्वं सयलं पढमं दसतिय दुसु सत्तरादियं सव्वं।
णवयप्पहुदीसयलं सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥६७०॥

सत्तरसादि अडादीसव्वं पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो।
पंचचउक्क दुगेक्कं चदुरिगि चदुतिण्णि एक्कं च ॥६७१॥

तत्तो तियदुगमेक्कं दुप्पयडीएक्कमेक्कठाणं च।
इगिणभबंधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स।।६७२।।

अर्थ – २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १० तथा उदयस्थान ९ हैं, २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ (प्रथम २२ का) व उदयस्थान १०-९-८ प्रकृतिरूप ३ हैं। २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान (२२ प्रकृतिक) १ और उदयस्थान १०-९-८ प्रकृतिरूप ३ हैं, २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १७ आदि सब हैं और उदयस्थान ९ आदि सब हैं अर्थात् दोनों ८-८ हैं, २३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १७-१३-९ प्रकृतिरूप ३ एवं उदयस्थान ९-८-७-६-५ प्रकृतिरूप ५ हैं, २२ प्रकृतिकरूप सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १७-१३-९ प्रकृतिक ३ तथा उदयस्थान ९-८-७-६-५ प्रकृतिक ५ हैं, २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १७ आदि सब व उदयस्थान ८ आदि दोनों अर्थात् ८ व ७ हैं, १३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान में बन्धस्थान ५-४ प्रकृतिक २ एवं उदयस्थान २ प्रकृतिक १ ही है, १२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ५-४ प्रकृतिक २ तथा उदयस्थान २ प्रकृतिक १ ही है। ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ५-४ प्रकृतिक दो एवं उदयस्थान २-१ प्रकृतिक २ हैं, ५ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ४ प्रकृतिक एक और उदयस्थान एक प्रकृतिक अर्थात् दोनों १-१ हैं, ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ४-३ प्रकृतिक २ एवं उदयस्थान १ प्रकृतिक है, ३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ३, २ प्रकृतिक २ एवं उदयस्थान १ प्रकृतिक है, २ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २-१ प्रकृतिक और उदयस्थान १ प्रकृतिक है तथा १ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ प्रकृतिक अथवा शून्य (बंध का अभाव) तथा उदयस्थान भी एक प्रकृतिक ही है।

मोहनीयकर्म के सत्त्वस्थानों में बन्ध व उदयस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि –

सत्त्व-स्थान	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण	गुण-स्थान	बन्ध-स्थान	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण	उदय-स्थान	उदयस्थानगत प्रकृति विवरण	गुण-स्थान
	मि.-स.-मिश्र.-क.-वे.-नो.			मि.-क.-वे.-नोक.		मि.-स.-मिश्र.-क.-वे.-यु.-भ.-जु.	
२८	१-१-१-१६-३-६	१ से ११	२२,२१,१७	१-१६-१-४=२२	१०-९-८	१-×-०-४-१-२-१-१ =१०	प्रथम
			१३,९,५,४	×-१६-१-४=२१	७-६-५-४	०-०-०-४-१-२-१-१=९	द्वितीय
			३,२,१	×-१२-१-४=१७	२ व १	×-×-१-३-१-२-१-१=९	तृतीय
				×-८-१-४=१३		×-१-×-३-१-२-१-१=९	चतुर्थ
				×-४-१-४=९		×-१-×-२-१-२-१-१=८	पंचम
				×-४-१-×=५		०-१-०-१-१-२-१-१=७	६-७
				×-४-×-×=४		०-०-०-१-१-२-१-१=६	८वाँ
				×-३-×-×=३		×-×-×-१-१-२-१-०=५	८वाँ
				×-२-×-×=२		×-×-×-१-१-२-०-०=४	८वाँ
				×-१-×-×=१		०-०-०-१-१-०-०-०=२	९वाँ
						×-×-×-१-×-×-×-×=१	९वाँ
		१०वाँ	०	०-०-०-०=०	१	०-०-०-१-०-०-०-०=१	१०वाँ
२७	१-०-१-१६-३-६	प्रथम	२२	१-१६-१-४=२२	१०-९-८	१-×-०-४-१-२-१-१=१०	
२६	१-०-०-१६-३-६	प्रथम	२२	उपर्युक्त	१०-९-८	१-×-०-४-१-२-१-०=९	
२४	१-१-१-१२-३-६	३-४से	१७,१३,९	उपर्युक्त	९-८-७-६-	१-×-०-४-१-२-०-०=८	२ से १०
		११ तक	५,४,३,२,१		५-४-२-१		
२३	×-१-१-१२-३-६	४ से ७	१७,१३ व ९	उपर्युक्त	९-८-७-६ व ५	×-१-×-३-१-२-१-१=९	चतुर्थ
						×-१-×-२-१-२-१-१=८	पंचम
						×-१-×-१-१-२-१-१=७	६-७वाँ

						×-१-×-१-१-२-१-०=६	६-७वाँ
						×-१-×-१-१-२-०-०=५	६-७वाँ
२२	×-१-×-१२-३-६	४ से ७	१७,९,१३	२८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान के समान	९-८-७-६ व ५	उपर्युक्त	
२१	×-×-×-१२-३-६	४ से ११		२४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान के समान	८-७-६-५	×-×-×-३-१-२-१-१=८	चतुर्थ
					४-२ व १	०-०-०-२-१-२-१-१=७	पंचम
						०-०-०-१-१-२-१-१=६	६ से ८
						०-०-०-१-१-२-१-०=५	६ से ८
						×-×-×-१-१-२-०-०=४	६ से ८
						×-×-×-१-१-×-×-×=२	९वाँ
						×-×-×-१-×-×-×-×=१	९वाँ
१३	०-०-०-४-३-६	९वाँ	५ व ४	×-४-१-×=५	२ प्रकृतिक	०-०-०-१-१-०-०-०=२	
				×-४-×-×=४			
१२	×-×-×-४-२-६	९वाँ	५ व ४	,, ,, ,,	२ प्रकृतिक	०-०-०-१-१-०-०-०=२	
११	×-×-×-४-१-६	९वाँ	५ व ४	,, ,, ,,	२	क. १ - वे. १	
					१	क. १-०	
५	क. ४. वे. १	९वाँ	४	क. ४	१	क. १	
४	क. ४-०	९वाँ	४	क. ४	१	क. १	
३	क. ३-०	९वाँ	३	क. ३	१	क. १	
			२	क. २			
२	क. २-०	९वाँ	२	क. २	१	क. १	
			१	क. १			
१	क. १	९वाँ	१	क. १	१	क. १	
		१० वाँ	०	०			

बन्ध-उदय व सत्त्व में से दो को आधार तथा एक को आधेय बनाकर कथन करते हैं–

बंधुदये सत्तपदं बंधंसे णेयमुदयठाणं च।
उदयंसे बंधपदं दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥६७३॥

अर्थ – बन्ध-उदयस्थानोंमें सत्त्वस्थान, बन्ध-सत्त्वस्थानोंमें उदयस्थान और उदय-सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान इसप्रकार दो स्थानोंको आधार तथा एक स्थानको आधेय बनाकर तीन प्रकारसे भङ्ग जानने चाहिए।

अब सर्वप्रथम ६ गाथाओं से बन्ध-उदयस्थानों में सत्त्वस्थानों का कथन करते हैं–

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये।
अट्ठावीसति सत्तं सत्तुदये अट्ठवीसेव ॥६७४॥

अर्थ – २२ प्रकृतिक बन्धसहित जीवके १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चारउदयस्थान हैं। उनमें १०-९ व ८ प्रकृतिक तीनस्थानोंमें सत्त्वस्थान २८-२७ व २६ प्रकृतिक तीन हैं और ७ प्रकृतिक उदयस्थानमें २८ प्रकृतिक स्थानका ही सत्त्व है।

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव।
सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीसंसा ॥६७५॥

अर्थ – २१ प्रकृतिक बन्धसहित जीवके ९-८-७ प्रकृतिक तीनस्थानोंके उदयहोनेपर २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान है और १७ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित जीवके ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चारस्थानोंका उदय होनेपर २८-२४-२३-२२ और २१ प्रकृतिरूप ५ सत्त्वस्थान हैं।

यहाँपर कुछ विशेषता है उसे २ गाथाओं में कहते हैं–

इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे।
अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ॥६७६॥

अर्थ – प्रथम ९ प्रकृतिका उदय होनेपर २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं होता है और अन्तमें ६ प्रकृतिका उदय होनेपर २३ व २२ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान नहीं होता तथा १३ प्रकृति के बन्धसहित ८-७-६ व ५ प्रकृतिरूप चार उदयस्थानोंके होनेपर तथा ९ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थानोंके होनेपर जैसे १७ प्रकृतिके स्थानमें सत्त्वस्थान कहे थे उसीप्रकार यहाँ भी सत्त्वस्थान जानना अर्थात् १३ प्रकृति का बन्ध होते हुए ५ प्रकृतिक उदयस्थानमें और ९ प्रकृतिका बन्ध

होते हुए ४ प्रकृतिक उदयस्थानमें २२ व २३ प्रकृति का सत्त्व नहीं है तथा १३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ८ प्रकृतिक उदयस्थान एवं ९ प्रकृतिक बन्धस्थानमें ७ प्रकृतिक उदयस्थान होनेपर २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं होता है।

णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा।
पणबंधे दो उदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ॥६७७॥

अर्थ – यहाँ इतनी और भी विशेषता है कि अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ प्रकृतिके बन्धसहित ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान होनेपर भी २३ और २२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता है और पाँच प्रकृतिके बन्धसहित दो प्रकृतिके उदय होते हुए २८-२४-२१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक छह सत्त्वस्थान हैं अर्थात् उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ का तथा १३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्वस्थान क्षपकश्रेणीमें होता है।

चदुबन्धे दो उदये सत्तं पुव्वं व तेण एक्कुदये।
अडचउरेक्कावीसा एयारतिगं च सत्ताणि ॥६७८॥

अर्थ – ४ प्रकृतिक बन्धसहित दो प्रकृतिके उदय होनेपर सत्त्वस्थान पूर्वोक्त प्रकार जानना अर्थात् उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ प्रकृतिक तथा क्षपकश्रेणीमें १३-१२ व ११ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है तथा उसी ४ प्रकृतिके बन्धसहित एक प्रकृतिका उदय होनेपर उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ और क्षपकश्रेणीमें ११-५ व ४ प्रकृतिरूप ३-३ सत्त्वस्थान जानने योग्य हैं।

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतियठाणेण तिदुगठाणेण।
दुगिठाणेण य सहिता अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥६७९॥

अर्थ – तीन-दो और एकप्रकृतिके बन्धसहित एकप्रकृतिका उदय होनेपर उपशमश्रेणीमें २८-२४ व २१ प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं तथा क्षपकश्रेणीमें तीनप्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एकप्रकृतिरूप उदय होनेपर ४ व ३ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। २ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १ प्रकृति का उदय होनेपर एवं १ प्रकृतिक बन्धस्थानमें १ प्रकृति का उदय होनेपर ३ व २ प्रकृतिक सत्त्वस्थान और २ व १ प्रकृतिरूप दो-दो सत्त्वस्थान हैं।

विशेषार्थ – मोहनीयकर्म की सर्वबन्धप्रकृतियोंमें चारोंगतिके मिथ्यादृष्टिजीव २२ प्रकृति का बन्ध करते हैं उनके मिथ्यात्वसहित और अनन्तानुबन्धीके उदयसहित या रहित आठ कूट कहे हैं। उनमें अपुनरुक्त १०-९-८ व ७ प्रकृतिक चार उदयस्थान एक जीवकी अपेक्षा तो अनुक्रमसे और नानाजीवकी

अपेक्षा युगपत् २८-२७ व २६ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं तथा ७ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान है २७ व २६ प्रकृतिरूप स्थान नहीं है क्योंकि असंयतादि चारगुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करके मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि होकर वहाँ प्रथम समयमें २२ प्रकृतिका बन्ध किया तब अनन्तानुबन्धीका एकसमयप्रबद्ध बाँधा उसकी उदीरणा अचलावली कालपर्यन्त नहीं हो सकती है और अनन्तानुबन्धीके उदयरहित उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका वेदकसम्यक्त्वयोग्य (जिसका लक्षण गाथा ६१५ में दिया है) काल है, उपशमकाल नहीं है, क्योंकि उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना नहीं हुई है। पहले गाथा नं. ६१४-६१५ में वेदकसम्यक्त्वयोग्यकाल और उपशमसम्यक्त्वयोग्य काल का लक्षण तथा वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी सर्वउद्वेलनाका अभाव कह दिया है।

चारोंगतिसम्बन्धी सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। इनमें २८ प्रकृतिरूप एक ही सत्त्वस्थान है २७ व २६ प्रकृतिक नहीं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे गिरकर सासादनगुणस्थानमें आता है। इसका काल एकसमयसे छह आवलीपर्यन्त है और सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलनाका अवसररूप जो उपशमकाल है वह यहाँ नहीं है तथा यहाँ २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी नहीं है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन वेदकसम्यग्दृष्टि के ही होता है और वेदक सम्यग्दृष्टि सासादन में आता नहीं है एवं अनन्तानुबन्धीके उदयबिना सासादनगुणस्थान सम्भव नहीं है। चारोंगतिसम्बन्धी मिश्रगुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है वहाँ एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नानाजीवोंकी अपेक्षा युगपत् ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। यहाँ २८ व २४ प्रकृतिरूप दो ही सत्त्वस्थान हैं २३ व २२ प्रकृतिक नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं होता है। चारोंगतिके असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंमें मोहनीयकर्मकी १७ प्रकृतियोंका बन्ध है। यहाँ एकजीवकी अपेक्षा क्रमसे तथा नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं इनमें ९ प्रकृतिका उदय होते हुए वेदकसम्यग्दृष्टिपना ही है। दर्शनमोहनीयकी क्षपणा प्रारम्भ होनेसे पूर्व २८ प्रकृतिक एवं अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो जानेपर २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है, किन्तु क्षपणा करनेवालेके पहले २४ प्रकृतिका तथा मिथ्यात्वका क्षय हो जानेपर २३ प्रकृतिका और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय हो जानेपर २२ प्रकृति का सत्त्व होता है उस समयतक सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होनेसे ९ प्रकृतिका उदयस्थान होता है एवं क्षायिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिके सत्त्वस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयाभाव हो जानेसे ९ प्रकृतिकस्थान सम्भव नहीं हैं। ८ व ७ प्रकृतिका उदय होनेपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें २८ प्रकृतिक एवं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। वेदकसम्यग्दृष्टिके ८ व ७ प्रकृतिका उदय होते हुए २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे तथा नानाजीवकी अपेक्षा युगपत् होता है। क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक ही सत्त्वस्थान

है तथा उदय ८ व ७ प्रकृति का होता है। ६ प्रकृतिके उदयमें सम्यक्त्वप्रकृति का उदय नहीं होनेसे क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। उपशमसम्यक्त्वमें ६ प्रकृति का उदय होनेपर २८ और २४ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं।

१३ प्रकृतिके बन्धसहित देशसंयतगुणस्थानमें तिर्यञ्च व मनुष्यके उपशम या वेदकसम्यक्त्व होता है, देशसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्व मनुष्यके ही होता है। क्षायिकसम्यक्त्व तो भोगभूमिज तिर्यंचके भी होता है, किन्तु भोगभूमिज जीवोंके देशसंयम नहीं होता है। ८ प्रकृतिका उदय होनेसे वेदकसम्यक्त्वी तिर्यञ्चके २८-२४ प्रकृतिरूप दो सत्त्वस्थान और मनुष्यके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। ७ व ६ प्रकृतिका उदय होते हुए तिर्यञ्च व मनुष्यके उपशमसम्यक्त्वमें तो २८ व २४ प्रकृतिरूप दो, वेदकसम्यग्दृष्टि तिर्यंचके २८ व २४ प्रकृतिके दो और वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं। देशसंयतगुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होते हैं इसलिए २१ प्रकृतिका ही सत्त्व है। ५ प्रकृतिका उदय रहते हुए उपशमसम्यक्त्वी मनुष्य व तिर्यंचके २८ व २४ प्रकृतिरूप दो सत्त्वस्थान हैं, किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वी मनुष्यके २१ प्रकृतिका ही सत्त्वस्थान है। ९ प्रकृतिके बन्धसहित प्रमत्त-अप्रमत्तके ७-६-५ व ४ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं। इनमेंसे सातप्रकृतिका उदय होते हुए वेदकसम्यग्दृष्टि ही है अत: २८-२४-२३ और २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। ६ व ५ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टिके तो २८ व २४ प्रकृतिका सत्त्व है तथा वेदकसम्यक्त्वीके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं, क्षायिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक एकही सत्त्वस्थान है। चार प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान है।

९ प्रकृतिके बन्धसहित अपूर्वकरणगुणस्थानमें ६-५ व ४ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टिके २८ व २४ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। ५ एवं ४ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २ प्रकृतिक उदयस्थानसहित उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं तथा ४ प्रकृतिका बन्ध एवं १ प्रकृति का उदय होनेपर उपशमसम्यग्दृष्टिके २८ व २४ प्रकृतिक और क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-११-५ व ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। ३ प्रकृतिका बन्ध एवं १ प्रकृतिका उदय होते हुए उपशमसम्यक्त्वीके २८ व २४ प्रकृतिक दो तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें २१-४ व ३ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं। २ प्रकृतिका बन्ध और १ प्रकृतिके उदयसहित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक दो तथा क्षायिकसम्यक्त्व में २१-३ व २ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान हैं। १ प्रकृति का बन्ध और १ प्रकृति के उदयसहित उपशमसम्यक्त्वमें २८ व २४ प्रकृतिक दो तथा क्षायिक सम्यक्त्वमें २१-२ व १ प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। यहाँ क्षपकअनिवृत्तिकरणके ४-३-२ व १

प्रकृतिका बन्ध होते हुए क्रमसे ५-४-४-३-३-२-२ व १ प्रकृतिका सत्त्व है। यह सत्त्व वेद व कषायों के नवकसमयप्रबद्ध एवं उच्छिष्टावलीप्रमाण निषेकोंके अवशिष्ट रहनेपर होता है।

बन्ध-उदयस्थान को अधिकरण मानकर आधेयरूप सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि-

बन्धस्थान	उदयस्थान की संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति विवरण	सत्त्वस्थान की संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण
२२	३	१०-९ व ८	३	२८-२७ व २६ प्रकृतिक
२२	१	७ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक
२१	३	९-८ व ७	१	२८ प्रकृतिक
१७	२	८ व ७	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक
१७	१	९	४	२८-२४-२३ व २२
१७	१	६	३	२८-२४ व २१
१३	१	८	४	२८-२४-२३ व २२
१३	२	७ व ६	५	२८-२४-२३-२२ व २१
१३	१	५	३	२८-२४ व २१
९ अप्रमत्त-प्रमत्त	१	७	४	२८-२४-२३ व २२
९ अप्रमत्त-प्रमत्त	२	६ व ५	५	२८-२४-२३-२२ व २१
९ अप्रमत्त-प्रमत्त	१	४	३	२८-२४ व २१
९ अपूर्व.	३	६-५ व ४	३	२८-२४ व २१
५ अनिवृत्ति.	१	२	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११
४ अनिवृत्ति.	१	२	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११
४	१	१	६	२८-२४-२१-११-५ व ४
३	१	१	५	२८-२४-२१-४ व ३
२	१	१	५	२८-२४-२१-३ व २
१	१	१	५	२८-२४-२१-२ व १

अथानन्तर बंध व सत्त्व को आधार मानकर उदय को आधेय मानते हुए ५ गाथाओं से भङ्ग कहते हैं–

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे।
छब्बीसे दसयतियं इगिअडवीसे दु णवयतियं ॥६८०॥

अर्थ – २२ प्रकृतिके बन्धसहित चारोंगतिवाले मिथ्यादृष्टिजीवके २८ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए १०-९-८ व ७ प्रकृतिरूप ४ उदयस्थान हैं, क्योंकि यहाँ अनन्तानुबन्धीरहित भी उदयस्थान है तथा २२ प्रकृतिके बन्धसहित २७ व २६ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए १०-९ व ८ प्रकृतिरूप तीन ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि यहाँ अनन्तानुबन्धी का अभाव नहीं होता है। २१ प्रकृतिके बन्धसहित चारों गति के सासादनगुणस्थानमें २८ प्रकृतिका सत्त्व होता है, मिथ्यात्वके उदयका अभाव होनेसे ९-८ व ७ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं।

सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे।
णो पढमुदओ एवं तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥६८१॥

अर्थ – १७ प्रकृतिके बन्धसहित चारोंगतिके जीवोंमें २८ व २४ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ९-८-७ व ६ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं, क्योंकि मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिसहित तीन ही उदयस्थान हैं, असंयतगुणस्थानमें चार उदयस्थान हैं। १७ प्रकृतिके बन्धसहित २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर चारोंगतिके असंयतजीवोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिके ९ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव होनेसे ८-७ व ६ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं तथा १७ प्रकृतिके बन्धसहित २२ व २३ प्रकृतिक सत्त्ववालेके ६ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होनेसे ९-८ व ७ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान हैं।

तेरणवे पुव्वंसे अडादिचउ सगचउण्हमुदयाणं।
सत्तरसं व वियारो पणगुवसंते सगेसु दो उदया ॥६८२॥

तेणेवं तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा।
तेणुवसंतंसेयारतिए एक्को हवे उदओ ॥६८३॥

अर्थ – १३ प्रकृतिके बन्धसहित देशसंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च व मनुष्यके और ९ प्रकृतिके बंधसहित प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानके २८-२४-२३ व २२ प्रकृतिक चारसत्त्वस्थान होते हुए देशसंयतगुणस्थानमें ८-७ व ६ प्रकृतिक तीन एवं प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें ७-६ व ५ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। १३ प्रकृतिके ही बन्धमें २१ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ८ प्रकृतिक उदयस्थानबिना ७-६

व ५ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं तथा ९ प्रकृतिका बन्ध होते हुए २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें ७ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव होनेसे ६-५ व ४ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं। उपशमकअपूर्वकरणमें ९ प्रकृतिके बन्धमें २८-२४ व २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें ६-५ व ४ प्रकृतिक तीन उदयस्थान हैं एवं क्षपकअपूर्वकरणके २१ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ६-५ व ४ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान हैं। उपशमकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिका और क्षपकअनिवृत्तिकरणके १३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए ५ प्रकृतिके बन्धसहित २ प्रकृतिका एवं ४ प्रकृतिका बन्ध होते हुए २ प्रकृतिका उदय है, किन्तु ११-५ व ४ प्रकृतिका सत्त्व होते हुए १ प्रकृतिका उदय है।

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण।
दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदओ॥६८४॥

अर्थ – ३-२ व १ प्रकृतिके बन्धसहित उपशमकअनिवृत्तिकरणके २८-२४ व २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर और क्षपकअनिवृत्तिकरणके ४ व ३ प्रकृतिका, ३ व २ प्रकृतिका अथवा २ व १ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर एक-एक प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है। यहाँ नवकसमयप्रबद्धकी विवक्षासे दो-दो प्रकारके सत्त्व कहे हैं।

अधिकरणरूप बन्ध-सत्त्वस्थान में आधेयरूप उदयस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

	अधिकरण		आधेय	
बन्धस्थान विवरण	सत्त्व स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्या	उदय स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या विवरण
मिथ्यादृष्टिके २२	१	२८ प्रकृतिक	४	१०-९ व ८ प्रकृतिक अनन्तानुबन्धी सहित एवं ९-८ व ७ प्रकृतिक अनंतानुबन्धी रहित।
२२	२	२७ व २६ प्र.	३	१०-९-८ प्रकृतिक। यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना है अतः अनन्तानुबन्धीरहित उपर्युक्त उदयस्थान नहीं हैं।

सासादन में २१	१	२८ प्रकृतिक	३	९-८ व ७ प्रकृतिक।
मिश्र में १७	२	२८ व २४ प्र.	३	९-८ व ७ प्रकृतिकस्थान (सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति सहित)
असंयत में १७	२	२८ व २४ प्र.	४	९-८-७ व ६ (सम्यक्त्वप्रकृतिसहित तो ९-८-७ तथा सम्यक्त्वप्रकृतिरहित ८-७ व ६)
क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतके १७	१	२१ प्रकृतिक	३	८-७ व ६ प्रकृतिक। (सम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयरहित)
दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यके असंयतगुण-स्थानमें १७	२	२३ व २२ प्र.	३	९-८ व ७ (सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसहित)
देशसंयती तिर्यञ्च व मनुष्यमें १३	२	२८-२४ प्र.	४	८-७-६ व ५ (सम्यक्त्वसहित तो ८-७ व ६ एवं सम्यक्त्वरहित ७-६ व ५)
क्षायिकसम्यक्त्वसहित देशसंयतीके १३	१	२१ प्रकृतिक	३	७-६ व ५ (सम्यक्त्वरहित)
दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले देशसंयती वेदकसम्यग्दृष्टिमनुष्यके१३	२	२३ व २२ प्र.	३	८-७-६ (सम्यक्त्वसहित)
प्रमत्त-अप्रमत्त व उपशमक अपूर्वकरणमें ९	२	२८ व २४ प्र.	४	७-६-५ व ४ (अपूर्वकरणमें ७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है)

क्षपक-उपशमक अपूर्व-करणके ९	१	२१ प्रकृतिक	३	६-५ व ४ प्रकृतिक (क्षायिक सम्यग्दृष्टिके)
प्रमत्त-अप्रमत्त ९	२	२३ व २२ प्र.	३	७-६ व ५ (प्रमत्त-अप्रमत्त वेदकसम्यग्दृष्टिके जो कि दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला है।)
अनिवृत्तिकरणके ५	६	२८-२४ व २१ (उपशमकके) १३-१२-११ (क्षपकके)	१	२ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें ४	६	२८-२४ व २१ (उपशमकके) १३-१२ व ११ (क्षपकके)	१	२ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें ४	६	२८-२४ व २१ (उपशमकके) ११-५ व ४ (क्षपकके)	१	१ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें ३ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) ४ व ३ (क्षपकके)	१	१ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें २ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) ३ व २ (क्षपकके)	१	१ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरणमें १ (उपशमक व क्षपक)	५	२८-२४ व २१ (उपशमकके) २ व १ (क्षपकके)	१	१ प्रकृतिक

आगे उदय-सत्त्व को आधार एवं बन्ध को आधेय मानकर सात गाथाओं में भङ्गों का कथन करते हैं-

दसगुदये अडतीसतिसत्ते बावीसबंध णवअट्ठे।
अडवीसे बावीसतिचउबंधो सत्तवीसदुगे ॥६८५॥
बावीसबंध चदुतिदुवीसंसे सत्तरसयददुगबंधो।
अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंधं विसेसं तु ॥जुम्मं ॥६८६॥

अर्थ – १० प्रकृतिके उदयसहित २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२ प्रकृतिक बन्ध है, ९ व ८ प्रकृतिके उदयसहित २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक चार बन्धस्थान हैं। १०-९ व ८ प्रकृतिके उदयसहित २७ व २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २२ प्रकृतिक बन्ध है। मिश्रगुणस्थानमें २४ प्रकृतिक सत्त्वमें और असंयतगुणस्थानमें २४-२३ व २२ प्रकृतिके सत्त्वमें ९-८ व ७ प्रकृतिका उदय रहते हुए १७ प्रकृति का बन्ध है। २४ प्रकृतिक सत्त्वमें ८-७ व ६ प्रकृतिका उदय होते हुए देशसंयतगुणस्थानमें १३ प्रकृतिका बन्ध है, क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतके २१ प्रकृतिके सत्त्वसहित ८-७-६ प्रकृतिके उदयमें १७ प्रकृतिका बन्ध है।

सत्तुदये अडवीसे बंधो बावीसपंचयंतेण।
चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयददुगबंधो ॥६८७॥

अर्थ – ७ प्रकृतिके उदय रहते हुए २८ प्रकृतिके सत्त्वमें २२-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिरूप ५ बन्धस्थान हैं जो क्रमसे मिथ्यात्व-सासादन-असंयत-देशसंयत-प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतके पाए जाते हैं। ७ प्रकृतिके उदयमें २४ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए असंयतमें १७, देशसंयतमें १३ और प्रमत्त-अप्रमत्तमें ९ प्रकृतिका बन्ध होता है, ७ प्रकृतिके ही उदयमें २१ प्रकृतिका सत्त्व रहनेपर असंयतके १७ एवं देशसंयतमें १३ प्रकृतिका बन्ध है।

छप्पणउदये उवसंतंसे अयदतिगदेसदुगबंधो।
तेण तिदोवीसंसे देसदुणवबंधयं होदि ॥६८८॥

अर्थ – ६ प्रकृति का उदय रहते हुए २८-२४ व २१ प्रकृतिके सत्त्वमें असंयतगुणस्थानमें १७, देशसंयतमें १३ तथा प्रमत्त-अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध है, ५ प्रकृतिके उदयसहित २८-२४ व २१ प्रकृतिके सत्त्वमें देशसंयतके १३ एवं प्रमत्त-अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है। ६ प्रकृतिके उदयमें २३ व २२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए देशसंयत के १३ प्रकृतिका बन्ध है तथा ५ प्रकृतिके उदयमें २३ व २२ के सत्त्वमें प्रमत्त व अप्रमत्तके ९ प्रकृतिका बन्ध है।

चउरुदयुवसंतंसे णवबंधो दोण्णिउदयपुव्वंसे।
तेरसतियसत्तेवि य पण चउ ठाणाणि बंधस्स ॥६८९॥

अर्थ – ४ प्रकृतिके उदयसहित दोनोंश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८-२४ व २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ९ प्रकृतिका बन्ध है। २ प्रकृतिके उदयसहित सवेदअनिवृत्तिकरणमें १३, १२, ११ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर पुरुषवेदके उदयके चरमसमयपर्यन्त पाँचप्रकृतिका बन्ध है। नपुंसक-स्त्रीवेदके उदयसहित श्रेणी चढ़नेवालेके ४ प्रकृतिका भी बन्ध है तथा क्षपकश्रेणीमें ८ कषाय और नपुंसक व स्त्रीवेदका क्षय होनेपर पुरुषवेदके क्षपणाकालमें २१-१३-१२ व ११ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ५ प्रकृतिका बन्ध है। स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके उदयसहित श्रेणीचढ़नेवालेके १३ व १२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४ प्रकृतिका बन्ध है (देखो गाथा. ५१५)।

एक्कुदयुवसंतंसे बंधो चदुरादिचारि तेणेव।
एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधे ॥६९०॥

अर्थ – एक प्रकृतिके उदयसहित उपशमकअनिवृत्तिकरणमें २८-२४ व २१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४-३-२ और १ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं तथा १ प्रकृतिके उदयसहित ११ व ५ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ४ प्रकृतिका बन्ध है। १ ही प्रकृतिके उदयसहित ४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके रहते हुए ४ व ३ प्रकृतिका बन्ध है।

तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कयं बंधो।
एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स ॥६९१॥

अर्थ – एक प्रकृतिके उदयसहित क्षपकअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ३ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए ३ व २ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं, एक ही प्रकृतिके उदयसहित २ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २ व १ प्रकृतिक बन्धस्थान हैं तथा एक ही प्रकृतिके उदयसहित १ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें १ ही प्रकृतिका बन्ध है अथवा बन्धका अभाव है। इसप्रकार मोहनीयकर्मके त्रिसंयोगी भङ्ग जानना।

अधिकरणरूप उदय व सत्त्वस्थान में आधेयरूप बन्धस्थान की सन्दृष्टि–

अधिकरण			आधेय	
उदयस्थान	सत्त्व स्थान की संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति विवरण	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति विवरण
१० प्रकृतिक	३	२८-२७ व २६ (सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना हो जानेपर २७ प्रकृति का तथा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना होने पर २६ प्रकृतिका सत्त्व होता है।	१	२२ प्रकृतिक
९ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक	३	२२-२१ व १७ प्रकृतिक
९ प्रकृतिक	२	२७ व २६ प्रकृतिक	१	२२ प्रकृतिक
मिश्र व असंयत में ९ प्रकृतिक	३	२४-२३-२२ प्रकृतिक, मिश्रमें २४ प्रकृतिकरूप एवं असंयतमें २४-२३ व २२ प्रकृतिरूप।	१	१७ प्रकृतिक
८ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक	४	२२-२१-१७ व १३ प्रकृतिक
८ प्रकृतिक	२	२७ व २६ प्रकृतिक	१	२२ प्रकृतिक
८ प्रकृतिक	३	२४-२३ व २२ प्रकृतिक	२	१७ व १३ प्रकृतिक (असंयत के १७ व देशसंयत के १३)
क्षायिक सम्यक्त्व में असंयती के ८ प्रकृतिक	१	२१ प्रकृतिक	१	१७ प्रकृतिक

७ प्रकृतिक	१	२८ प्रकृतिक		२३-२१-१७-१३ व ९ प्रकृतिक। ७ प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वमें, भय-जुगुप्सारहित सासादनमें, भय-जुगुप्सामेंसे किसी एक सहित मिश्रमें, वेदक व उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत में और वेदक व उपशमसम्यग्दृष्टि देशसंयतमें तथा वेदकसम्यक्त्वी प्रमत्तअप्रमत्तगुणस्थान में होता है।
७ प्रकृतिक	३	२४-२३ व २२ प्रकृतिक	३	१७-१३ व ९ प्रकृतिकस्थान क्रमसे असंयत, देशसंयत और प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान में।
७ प्रकृतिक	१	२१ प्रकृतिक	२	१७ व १३ प्रकृतिक। क्षायिकसम्यक्त्वी जीवके असंयतगुणस्थानमें १७ प्रकृतिक तथा देशसंयतवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी मनुष्यके १३ प्रकृति का बन्ध होता है।
६ प्रकृतिक	५	२८-२४-२३-२२ व २१ प्रकृतिक	३	१७-१३ व ९ प्रकृतिक। असंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त ६ प्रकृति का उदय है। असंयतगुणस्थानमें उपशम व क्षायिकसम्यग्दृष्टिके-६ प्रकृतिका उदय है। तथा देशसंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त व अपूर्वकरण-गुणस्थानमें उपशम व क्षायिक-सम्यक्त्वीके ५ प्रकृतिका उदय एवं वेदकसम्यक्त्वमें मिथ्यात्व का क्षय करके २३ प्रकृतिकी सत्ता होनेपर और सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय करके २२ की सत्ता होनेपर ६ प्रकृति का उदय है।

५ प्रकृतिक	५	२८-२४-२३-२२-२१ प्रकृतिक	२	१३-९ प्रकृतिक
अपूर्वकरणमें ४ प्रकृतिक	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक	१	९ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरण के सवेदभागमें २ प्रकृतिक	६	२८-२४-२१-१३-१२ व ११	२	५ व ४ प्रकृतिक। पुरुषवेद के चरमसमयपर्यन्त ५ प्रकृतिका तथा नपुंसक व स्त्रीवेदसहित श्रेणी चढ़नेवालेके ४ प्रकृति का बन्ध है।
अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	३	२८-२४ व २१ प्रकृतिक	४	४-३-२ व १ प्रकृतिक
अनिवृत्तिकरण (क्षपक)	२	११ व ५ प्रकृतिक	१	४ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	४ प्रकृतिक	२	४ व ३ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	३ प्रकृतिक	२	३ व २ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	२ प्रकृतिक	२	२ व १ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	१ प्रकृतिक	१	१ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	१ प्रकृतिक	०	० (सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें)

अथानन्तर नामकर्म के बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानों के त्रिसंयोगी भङ्ग कहते हैं–

णामस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ॥६९२॥

अर्थ – नामकर्म के बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानों के सर्वभङ्ग जिसप्रकार पृथक्-पृथक् कहे थे उसीप्रकार त्रिसंयोग में भी सभी जगह भङ्ग होते हैं, ऐसा स्पष्ट जानना।

अब उन्हीं त्रिसंयोगी भङ्गों को गुणस्थानों में कहते हैं–

छण्णवछत्तियसगइगि दुगतिगदुग तिण्णिअट्ठचत्तारि।
दुगदुगचदु दुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू॥६९३॥

एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ चदुमट्ठ केवलिजिणाणं।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्क बंधउदयंसा ॥६९४॥जुम्मं॥

अर्थ – नामकर्मके बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान मिथ्यात्वसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यंत क्रमसे बंधस्थान ६-३-२-३-२-२-४-५-१ व १ हैं, उदयस्थान ९-७-३-८-२-५-१-१-१ और १ हैं, सत्त्वस्थान ६-१-२-४-८-५-६-४-८ व ८ हैं। इसके आगे बन्धके अभाव होनेसे उदय-सत्त्वस्थान ही हैं अतः उपशान्तकषायसे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त उदयस्थान क्रमसे १-१-२ और २ हैं तथा सत्त्वस्थान ४-४-४ व ६ हैं।

अब उपर्युक्त कथन का ९ गाथाओं में स्पष्टीकरण करते हैं–

णामस्स य बंधोदयसत्ताणि गुणं पडुच्च उत्ताणि।
पत्तेयादो सव्वं भणिदव्वं अत्थजुत्तीए॥६९५॥

तेवीसादी बंधा इगिवीसादीणि उदयठाणाणि।
बाणउदादी सत्तं बंधा पुण अट्ठवीसतियं॥६९६॥

इगिवीसादीएक्कत्तीसंता सत्तअट्ठवीसूणा।
उदया सत्तं णउदी बंधा अट्ठवीसदुगं॥६९७॥

एगुणतीसत्तिदयं उदयं बाणउदिउदियं सत्तं।
अयदे बंधट्ठाणं अट्ठावीसत्तियं होदि॥६९८॥

उदया चउवीसूणा इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
सत्तं पढमचउक्कं अपुव्वकरणोत्ति णायव्वं॥६९९॥

अडवीसदुगं बंधो देसे पमदे य तीसदुगमुदओ।
पणवीससत्तवीसप्पहुदीचत्तारि ठाणाणि॥७००॥

अपमत्ते य अपुव्वे अडवीसादीण बंधमुदओ दु।
तीसमणियट्टिसुहुमे जसकित्ती एक्कयं बंधो॥७०१॥

उदओ तीसं सत्तं पढमचउक्कं च सीदिचउ संते।
खीणे उदओ तीसं पढमचउ सीदिचउ सत्तं ॥७०२॥

जोगिम्मि अजोगिम्मि य तीसिगितीसं णवदुयं उदओ।
सीदादिचऊछक्कं कमसो सत्तं समुद्दिट्ठं ॥७०३॥ कुलयं ॥

अर्थ – नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान जो गाथा ३९४-९५ में गुणस्थानोंकी अपेक्षा कहे गए हैं उन सभीको अर्थकी युक्तिसे यहाँ पृथक्-पृथक् कहते हैं। मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके ६ बन्धस्थान, २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान तथा ९२ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं। सासादनगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप ३ बन्धस्थान, २१ प्रकृतिकस्थानसे ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त २८ व २७ प्रकृतिक स्थानके बिना शेष ७ उदयस्थान, सत्त्वस्थान ९० प्रकृतिक एक ही है। मिश्रगुणस्थानमें बन्धस्थान २८ प्रकृतिकस्थानको आदि करके दो हैं, उदयस्थान २९ प्रकृतिक स्थानको आदि करके ३ हैं तथा सत्त्वस्थान ९२ व ९० प्रकृतिक दो हैं। असंयतगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप तीन बन्धस्थान, २१ से ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यन्त २४ प्रकृतिकस्थानबिना (२४ का उदयस्थान एकेन्द्रिय के होता है) शेष ८ उदयस्थान एवं ९३ आदि प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं। देशसंयतगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप २ बन्धस्थान, ३० आदि प्रकृतिरूप २ उदयस्थान हैं, एवं सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् चार ही हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें बन्धस्थान देशसंयतगुणस्थानवत् २ ही हैं, २५ प्रकृतिक एवं २७ आदि प्रकृतिरूप चार इस प्रकार पाँच उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् ४ ही हैं। अप्रमत्त एवं अपूर्वकरणगुणस्थानमें २८ आदि प्रकृतिरूप क्रमसे ४ व ५ बन्धस्थान हैं, दोनों गुणस्थानोंमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक ही है, सत्त्वस्थान असंयतगुणस्थानवत् ४ ही हैं। अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक यशस्कीर्ति नामकर्मका ही बन्धस्थान, उदयस्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है, सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ तथा ८० आदि प्रकृतिरूप ४ इसप्रकार ८ हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषायगुणस्थानमें उदयस्थान तो ३० प्रकृतिरूप एक ही है, सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ तो उपशान्तकषायमें एवं ८० आदि प्रकृतिरूप ४ क्षीणकषायमें जानना। सयोगकेवलीके उदयस्थान ३० व ३१ प्रकृतिके दो तथा अयोगकेवलीके ९ व ८ प्रकृतिके दो हैं, सत्त्वस्थान सयोगीगुणस्थानमें ८० प्रकृतिक स्थानको आदि करके ४ हैं तथा अयोगीगुणस्थानमें ८० आदि प्रकृतिरूप ४ और १० व ९, ये दो, इसप्रकार सर्व ६ सत्त्वस्थान हैं।

गुणस्थान की अपेक्षा नामकर्म के बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगी भङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि-

गुणस्थान	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्याका विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२
सासादन	३	२८-२९ व ३०	७	२१-२४-२५-२६-२९-३० व ३१	५	९० प्रकृतिक
मिश्र	२	२८ अ २९	३	२९-३० व ३१	२	९२ व ९० प्रकृतिक
असंयत	३	२८-२९ व ३०	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ (यहाँ २४ प्रकृतिकस्थान नहीं कहा, क्योंकि उसका उदय एकेन्द्रिय के पाया जाता है)	४	९३-९२-९१ व ९०
देशसंयत	२	२८ व २९ प्रकृति.	२	३० व ३१ प्रकृति.	४	९३-९२-९१ व ९०
प्रमत्त	२	२८ व २९ प्रकृति.	५	२५-२७-२८-२९व ३०	४	९३-९२-९१ व ९०
अप्रमत्त	४	२८-२९-३० व ३१	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
अपूर्वकरण	५	२८-२९-३०-३१ व १	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
उपशमक-अनिवृत्तिकरण	१	५	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
क्षपकअनिवृत्ति.	१	१ यशस्कीर्तिरूप	१	३० प्रकृतिक	८	८०-७९-७८ व ७७
उपशमकसूक्ष्म-साम्पराय	१	१ यशस्कीर्तिरूप	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
क्षपकसूक्ष्म-साम्पराय	१	१ यशस्कीर्तिरूप	१	३० प्रकृतिक	४	८०-७९-७८ व ७७
उपशान्तकषाय	०	०	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०

क्षीणकषाय	०	०	१	३० प्रकृतिक	४	८०-७९-७८ व ७७
सयोगकेवली	०	०	२	३० व ३१ प्रकृति.	४	८०-७९-७८ व ७७
अयोगकेवली	०	०	२	९ व ८ प्रकृति.	६	८०-७९-७८-७७-१० व ९

अब १४ जीवसमासों में बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान ६ गाथाओं में कहते हैं-

पणदोपणगं पणचदुपणगं बंधुदयसत्त पणगं च।
पणछक्कपणगछछक्कपणगमट्ठट्ठमेयारं ॥७०४॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव।
वियलिंदिया य तिविहा होंति असण्णी कमा सण्णी ॥७०५॥जुम्मं॥

अर्थ – अपर्याप्तसम्बन्धी सात जीवसमासोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान २ एवं सत्त्वस्थान ५ हैं, सर्व सूक्ष्मजीवोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान ४ तथा सत्त्वस्थान ५ हैं, एकेन्द्रिय सर्व बादरजीवोंमें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान पाँच-पाँच हैं, विकलत्रय जीवोंमें बन्धस्थान ५, उदयस्थान ६ और सत्त्वस्थान ५ हैं, असञ्ज्ञी जीवोंमें बन्धस्थान ६, उदयस्थान भी ६ तथा सत्त्वस्थान ५ हैं, सञ्ज्ञीजीवोंमें बन्धस्थान ८, उदयस्थान ८ एवं सत्त्वस्थान ११ जानना।

उपर्युक्त कथन का विशेष स्पष्टीकरण करते हैं-

बंधा तियपणछण्णववीसत्तीसं अपुण्णगे उदओ।
इगिचउवीसं इगिछव्वीसं थावरतसे कमसो ॥७०६॥

बाणउदीणउदिचऊसत्तं एमेव बंधयं अंसा।
सुहुमिदरे वियलतिये उदया इगिवीसयादिचउपणयं ॥७०७॥

इगिछक्कडणववीसत्तीसिगितीसं च वियलठाणं वा।
बन्धतियं सण्णिदरे भेदो बन्धादि हु अडवीसं ॥७०८॥

सण्णिम्मि सव्वबंधो इगिवीसप्पहुदिएक्कतीसंता।
चउवीसूणा उदओ दसणवपरिहीणसव्वयं सत्तं ॥७०९॥कुलयं॥

अर्थ – अपर्याप्तसम्बन्धी सात जीवसमासोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पाँच हैं, उदयस्थान स्थावरलब्ध्यपर्याप्तकमें २१ व २४ प्रकृतिक तथा त्रसलब्ध्यपर्याप्तमें २१ व २६ प्रकृतिक दो-दो हैं, सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ और ८२ प्रकृतिरूप पाँच हैं। सूक्ष्म-बादर एकेन्द्रिय व विकलत्रयमें बन्ध-सत्त्वस्थान तो अपर्याप्तवत् ही जानना, किन्तु उदयस्थान सूक्ष्मजीवोंमें २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक चार तथा बादरजीवोंमें २१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिक पाँच हैं। विकलत्रयजीवोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पाँच, उदयस्थान २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप ६ हैं तथा सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पाँच हैं। असञ्ज्ञीजीव के बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान विकलत्रयवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि असञ्ज्ञीजीव २८ प्रकृतिकस्थानको भी बाँधते हैं अतः बन्धस्थान तो ६ हैं। सञ्ज्ञीजीवोंमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिरूप आठ हैं, उदयस्थान २१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ८ हैं तथा सत्त्वस्थान १० व ९ प्रकृतिक दो स्थानोंके बिना शेष ९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ और ७७ प्रकृतिरूप ११ हैं।

१४ जीवसमासों में नामकर्म के बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

जीवसमास	बंधस्थान की संख्या	बंधस्थानगत प्रकृतिसंख्या	उदय-स्थानकी संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या	सत्त्व-स्थानकी संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या
सात अपर्याप्त	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	२	२१-२४ स्थावरके २१-२६ त्रसके	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृ.
सूक्ष्मपर्याप्त एकेन्द्रिय	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	४	२१-२४-२५ व २६	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
पर्याप्तबादर	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	५	२१-२४-२५-२६ व २७	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
पर्याप्तविकलत्रय	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	६	२१-२६-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
असञ्ज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्त	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	६	२१-२६-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
पर्याप्तसञ्ज्ञी-पंचेन्द्रिय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ नोट-२५ व २७ प्रकृति का उदय-स्थान देव-नारकी अपेक्षा है।	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७

नोट– केवली न सञ्ज्ञी हैं न असञ्ज्ञी हैं अत: उनके उदय व सत्त्वस्थान यहाँ नहीं कहे हैं।

अथानन्तर १४ मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वरूप स्थानोंका वर्णन करनेकी इच्छा रखनेवाले आचार्य सर्वप्रथम क्रमप्राप्त गतिमार्गणामें उनस्थानोंको कहते हैं–

दो छक्कट्ठचउक्कं णिरयादिसु णामबंधठाणाणि।
पणणवएगारपणयं तिपंचबारसचउक्कं च ॥७१०॥

अर्थ – नामकर्मके बन्धस्थान नरकगतिमें २, तिर्यञ्चगतिमें ६, मनुष्यगतिमें ८ और देवगतिमें चार हैं; उदयस्थान क्रमसे ५-९-११ व ५ हैं तथा सत्त्वस्थान ३-५-१२ व ४ यथाक्रम से जानना।

अब उपर्युक्त कथन को तीन गाथाओं में स्पष्ट करते हैं–

णिरयादिणामबंधा उगुतीसं तीसमादिमं छक्कं।
सव्वं पणछक्कुत्तरवीसुगुतीसंदुगं होदि ॥७११॥

उदया इगिपणसगअडणववीसं एक्कवीसपहुदिणवं।
चउवीसहीणसव्वं इगिपणसग अट्ठणववीसं ॥७१२॥

सत्ता बाणउदितियं बाणउदीणउदिअट्ठसीदितियं।
बासीदिहीणसव्वं तेणउदिचउक्कयं होदि ॥७१३॥विसेसयं॥

अर्थ – नरकगतिमें नामकर्मके बन्धस्थान २९ व ३० प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप पाँच, सत्त्वस्थान ९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप तीन हैं। तिर्यञ्चगतिमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक छह, उदयस्थान २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक ९, सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पाँच हैं। मनुष्यगतिमें बन्धस्थान सभी, उदयस्थान २४ प्रकृतिकस्थानबिना शेष सर्व हैं, ८२ प्रकृतिक स्थानबिना ९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिरूप १२ सत्त्वस्थान हैं। देवगतिमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक चार बन्धस्थान, २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक पाँच उदयस्थान, ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान हैं।

गतिमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि-

गति	बंधस्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्याका विवरण
नरक	२	२९ व ३० प्रकृति.	५	२१-२५-२७-२८ व २९	३	९२-९१ व ९० प्रकृतिक
तिर्यञ्च	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
मनुष्य	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९व ८ प्रकृतिक	१२	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८-७७-१० व ९
देव	४	२५-२६-२९-३०	५	२१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक

आगे इन्द्रियमार्गणा में नामकर्म के बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान कहते हैं–

एगे वियले सयले पण पण अड पंच छक्केगार पणं।
पणतेरं बंधादी सेसादेसेवि इदि णेयं ॥७१४॥

अर्थ – एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियमें क्रमसे ५-५ व ८ बन्धस्थान, ५-६ व ११ उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान ५-५ व १३ हैं। इसीप्रकार अवशेष मार्गणाओंमें भी जानना चाहिए।

इन्द्रियमार्गणासम्बन्धी उपर्युक्त कथन का दो गाथाओं में स्पष्टीकरण करते हैं–

इगिविगल बंधठाणं अडवीसूणं तिवीसछक्कं तु।
सयलं सयले उदया एगे इगिवीसपंचयं वियले ॥७१५॥

इगिछक्कडणववीसं तीसदु चउवीसहीणसव्वुदया।
णऊदिचऊबाणउदी एगे वियले य सव्वयं सयले ॥७१६॥जुम्मं॥

अर्थ – एकेन्द्रियमें २८ के बिना २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पाँच बन्धस्थान, २१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिरूप पाँच उदयस्थान एवं ९२-९०-८८-८४-८२ प्रकृतिरूप पाँच सत्त्वस्थान

हैं। विकलेन्द्रिय जीवोंमें बन्धस्थान एकेन्द्रियवत् पाँच, उदयस्थान २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिरूप छह और सत्त्वस्थान एकेन्द्रियवत् पाँच हैं। सकलेन्द्रिय जीवोंमें बन्धस्थान सभी हैं, उदयस्थान २०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिरूप ११ एवं सत्त्वस्थान सभी हैं।

इन्द्रियमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

इन्द्रिय-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण
एकेन्द्रिय	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	५	२१-२४-२५-२६ व २७	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
विकलेन्द्रिय	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	६	२१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
सकलेन्द्रिय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक

अब कायमार्गणा में नामकर्मके बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी कथन करते हैं–

पुढवीयादीपंचसु तसे कमा बंधउदयसत्ताणि।
एयं वा सयलं वा तेउदुगे णत्थि सगवीसं॥७१७॥

अर्थ – कायमार्गणामें पृथ्वीआदि पाँच स्थावरकायोंमें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान एकेन्द्रियवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि तेजकाय-वायुकायके जीवोंमें २७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है, क्योंकि यह उदयस्थान आतप व उद्योतसहित है और इन दोनों प्रकृतिका उदय तेजकायिक-वायुकायिक जीवोंमें नहीं पाया जाता है। त्रसकायमें बन्धउदय व सत्त्वस्थानका कथन पञ्चेन्द्रियजीवोंके समान है।

कायमार्गणा में बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी संदृष्टि–

कायमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्याका विवरण
पृथ्वीआदि पाँचस्थावर-काय	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक	५	२१-२४-२५-२६ व २७ प्रकृतिक तेजकाय-वायुकायमें २७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है।	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
त्रसकाय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७, १०-९ प्रकृतिक

अब योगमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान कहते हैं–

मणिवचि बंधुदयंसा सव्वं णववीसतीसइगितीसं।
दसणवदुसीदिवज्जिदसव्वं ओरालतम्मिस्से ॥७१८॥

अर्थ – योगमार्गणामें मन-वचन और कायरूप प्रत्येक योगमें बन्धस्थान सर्व, उदयस्थान २९-३० व ३१ प्रकृतिक तीन एवं सत्त्वस्थान १०-९ व ८२ प्रकृतिकबिना शेष सभी हैं।

आगे उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण तीन गाथाओं से करते हैं–

सव्वं तिवीसछक्कं पणुवीसादेक्कतीसपेरंतं।
चउछक्कसत्तवीसं दुसु सव्वं दसयणवहीणं ॥७१९॥

वेगुव्वे तम्मिस्से बंधंसा सुरगदीव उदयो दु।
सगवीसतियं पणजुदवीसं आहारतम्मिस्से ॥७२०॥

बंधतियं अडवीसदु वेगुव्वं वा तिणउदिबाणउदी।
कम्मे वीसदुगुदओ ओरालियमिस्सयं व बंधंसा ॥७२१॥

अर्थ -- काययोगके औदारिककाययोगमें बन्धस्थान सर्व, उदयस्थान २५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक सात हैं तथा सत्त्वस्थान १० व ९ प्रकृतिकविना शेष सभी हैं। औदारिकमिश्रकाययोगमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ६ बन्धस्थान, २४-२६ व २७ प्रकृतिरूप तीन उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान औदारिककाययोगवत् ही हैं। (२७ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातकी अपेक्षा है।) वैक्रियककाय व वैक्रियकमिश्रकाययोगमें बन्ध व सत्त्वस्थान तो देवगतिके समान ही हैं, किन्तु वैक्रियककाययोगमें उदयस्थान २७-२८ व २९ प्रकृतिक तीन और वैक्रियकमिश्रकाययोगमें एक २५ प्रकृतिक ही है। आहारककाय-आहारकमिश्रकाययोगमें बन्धस्थान २८ व २९ प्रकृतिक दो, उदयस्थान आहारककायमें २७-२८ व २९ प्रकृतिक तीन एवं आहारकमिश्रकायमें २५ प्रकृतिरूप एक है, सत्त्वस्थान दोनोंमें ९३ व ९२ प्रकृतिरूप दो-दो हैं। कार्मणकाययोगमें बन्ध व सत्त्वस्थान औदारिकमिश्रकाययोगवत् है, किन्तु उदयस्थान २० व २१ प्रकृतिक दो हैं।

योगमार्गणासम्बन्धी बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान की सन्दृष्टि-

योगमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत - प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
मन-वचनयोग	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	३	२९-३० व ३१	१०	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८ व ७७
औदारिक काय	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	७	२५-२६-२७-२८-२९-३०व३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८व७७ प्रकृतिक
औदारिकमिश्र	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	३	२४-२६ व २७ प्रकृतिक	११	,, ,, ,,
वैक्रियककाय	४	२५-२६-२९ व ३०	३	२७-२८ व २९ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
वैक्रियकमिश्र	४	२५-२६-२९ व ३०	१	२५ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
आहारककाय	२	२८ व २९ प्रकृतिक	३	२७-२८ व २९ प्रकृतिक	२	९३ व ९२ प्रकृतिक
आहारकमिश्र	२	२८ व २९ प्रकृतिक	१	२५ प्रकृतिक	२	९३ व ९२ प्रकृतिक
कार्मणकाय	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	२	२० व २१ प्रकृतिक	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृ.

अथानन्तर वेद और कषायमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान कहते हैं–

वेदकसाये सव्वं इगिवीसणवं तिणउदिएक्कारं।
थीपुरिसे चउवीसं सीदडसदरी ण थीसंढे ॥७२२॥

अर्थ – वेद और कषायमार्गणामें बन्धस्थान सर्व, २१ प्रकृतिकस्थानको आदि करके उदयस्थान ९, किन्तु स्त्री व पुरुषवेदमें २४ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है, क्योंकि इस स्थानका उदय एकेन्द्रियके ही पाया जाता है। सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ११ हैं, किन्तु स्त्री व नपुंसकवेदमें ८० व ७८ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान नहीं हैं, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला पुरुषवेदसहित ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है।

वेदमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

वेदमार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत - प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
स्त्रीवेद	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-७९ व ७७
पुरुषवेद	८	,, ,,	८	,, ,,	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७
नपुंसकवेद	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-७९ व ७७

कषायमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण संख्या	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
कषाय-मार्गणा	८	२३-२५-२६ -२८-२९-३० -३१ व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०--७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अब ज्ञानमार्गणा में बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान का कथन करते हैं–

अण्णाणदुगे बंधो आदीछ णउंसयं व उदयो दु।
सत्तं दुणउदिछक्कं विभंगबंधा हु कुमदिं व ॥७२३॥

उदया उणतीसतियं सत्ता णिरयं व मदिसुदोहीए।
अडवीसपंच बंधा उदयो पुरिसं व अट्ठेव ॥७२४॥

पढमचऊ सीदिचऊ सत्तं मणपज्जवम्हि बंधंसा।
ओहिं व तीसमुदयं ण हि बंधो केवले णाणे ॥७२५॥

उदओ सव्वं चउपणवीसूणं सीदिछक्कयं सत्तं।

अर्थ – ज्ञानमार्गणाके कुमति-कुश्रुतज्ञानमें २३ आदि प्रकृतिरूप छह बन्धस्थान, उदयस्थान नपुंसकवेदवत् ९, सत्त्वस्थान ९२ आदि प्रकृतिरूप छह हैं। विभङ्गज्ञानमें बन्धस्थान तो कुमतिज्ञानवत् ६, उदयस्थान २९ आदि प्रकृतिरूप तीन एवं सत्त्वस्थान नरकगतिके समान हैं। मति-श्रुत-अवधिज्ञानमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप पाँच, उदयस्थान पुरुषवेदके समान आठ और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार एवं ८० आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार आठ हैं। मन:पर्ययज्ञानमें बन्ध और सत्त्वस्थान तो अवधिज्ञानके समान हैं, किन्तु उदयस्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है। केवलज्ञानमें बन्धस्थानका तो अभाव है, उदयस्थान २४ व २५ प्रकृतिक स्थानबिना शेष सभी और सत्त्वस्थान ८० आदि प्रकृतिरूप छह हैं।

ज्ञानमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

ज्ञान-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत - प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
कुमति व कुश्रुत	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
विभङ्ग	६	,, ,,	३	२९-३० व ३१ प्रकृतिक	३	९२-९१ व ९० प्र.
मति-श्रुतअवधि	५	२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
मन:पर्यय	५	,, ,,	१	३० प्रकृतिक	८	,, ,,
केवलज्ञान	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८	६	८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक

आगे संयममार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानसम्बन्धी कथन करते हैं–

सुदमिव सामायियदुगे उदओ पणुवीससत्तवीसचऊ ॥७२६॥

अर्थ – संयममार्गणाके सामायिक-छेदोपस्थापनासंयममें बन्ध और सत्त्वस्थान तो श्रुतज्ञानवत् हैं एवं उदयस्थान २५ प्रकृतिक एक व २७ आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार पाँच हैं।

परिहारे बंधतियं अडवीसचऊ य तीसमादिचऊ।
सुहुमे एक्को बंधो मणं व उदयंसठाणाणि ॥७२७॥

अर्थ – परिहारविशुद्धिसंयममें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप चार हैं, उदयस्थान ३० प्रकृतिरूप एक ही है तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयममें बन्धस्थान एक प्रकृतिरूप और उदय और सत्त्वस्थान मन:पर्ययज्ञानवत् जानना।

जहखादे बंधतियं केवलयं वा तिणउदिचउ अत्थि।
देसे अडवीसदुगं तीसदु तेणउदिचारि बंधतियं ॥७२८॥

अर्थ – यथाख्यातसंयममें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान केवलज्ञानवत् हैं, किन्तु विशेषता यह है कि सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार भी पाया जाता है। देशसंयममें २८ आदि प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान ३० आदि प्रकृतिरूप दो तथा ९३ को आदि लेकर चारसत्त्वस्थान हैं।

अविरमणे बंधुदया कुमदिं व तिणउदिसत्तयं सत्तं।

अर्थ – असंयममें बन्ध और उदयस्थान कुमतिज्ञानवत् हैं तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप ७ हैं।

संयममार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

संयम-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
सामायिक व छेदोपस्थापना	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	५	२५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
परिहार-विशुद्धि	४	२८-२९-३० व ३१	१	३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
सूक्ष्म-साम्पराय	१	१ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
यथाख्यात	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक
देशसंयम	२	२८ व २९ प्रकृतिक	२	३० व ३१ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
असंयम	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृ.

अब दर्शनमार्गणा में बन्ध-उदय और सत्त्वस्थानों का कथन करते हैं–

पुरिसं वा चक्खिदरे अत्थि अचक्खुम्मि चउवीसं ॥७२९॥
ओहिदुगे बंधतियं तण्णाणं वा किलिट्ठलेस्सतिए।

अर्थ – दर्शनमार्गणाके चक्षु-अचक्षुदर्शनमें बन्धस्थान-उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् ही हैं, किन्तु विशेषता यह है कि अचक्षुदर्शनमें २४ प्रकृति का उदयस्थान भी पाया जाता है। अवधिदर्शन और केवलदर्शनमें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान अवधि व केवलज्ञानवत् जानना चाहिए। (**"किलिट्ठलेस्सतिए"** इन वचनोंमें कृष्णादि तीन लेश्यासम्बन्धी जो कथन किया है उसे लेश्यामार्गणामें कहा गया है।)

दर्शनमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

दर्शन-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत - प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
चक्षुदर्शन	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
अचक्षुदर्शन	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	,, ,, ,,
अवधिदर्शन	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
केवलदर्शन	०	०	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८प्रकृतिक	६	८०-७९-७८ व ७७ तथा १० व ९

अथानन्तर लेश्यामार्गणा में बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थान का कथन करते हैं–

.....किलिट्ठलेस्सतिये।
अविरमणं वा सुहजुगलुदओ पुंवेदयं व हवे ॥७३०॥

अडवीसचऊ बंधा पणछव्वीसं च अत्थि तेउम्मि।
पढमचउक्कं सत्तं सुक्के ओहिं व वीसयं चुदओ ॥७३१॥

अर्थ – लेश्यामार्गणागत कृष्ण-नील व कापोतरूप अशुभलेश्याओंमें बन्ध-उदयसत्त्वस्थान असंयमवत् हैं। पीत (तेजो) लेश्यामें बन्धस्थान २५-२६ व २८ आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार ६ हैं, उदयस्थान पुरुषवेदके समान तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। पद्मलेश्यामें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप चार हैं, उदयस्थान पुरुषवेदवत् हैं तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। शुक्ललेश्यामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान अवधिज्ञानके समान है, किन्तु विशेष यह है कि यहाँ २० प्रकृतिक उदयस्थान भी पाया जाता है।

लेश्यामार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

लेश्या मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
कृष्ण-नील व कापोत	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
पीतलेश्या	६	२५-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
पद्मलेश्या	४	२८-२९-३० व ३१	८	,, ,, ,,	४	,, ,, ,,
शुक्ल	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	९	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

आगे भव्यमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान कहते हैं–

भव्वे सव्वमभव्वे बंधुदया अविरदव्व सत्तं तु।
णउदिचउ हारबंधणदुगहीणं सुदमिवुवसमे बंधो ॥७३२॥

अर्थ – भव्यमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान सभी हैं। अभव्यमार्गणामें बन्धउदयस्थान तो असंयमवत् जानना तथा सत्त्वस्थान ९० आदि ४ हैं, किन्तु अभव्यके उद्योतसहित ३० प्रकृतिक स्थान तो है; आहारकद्विक सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं है। "सुदमिवुवसमे" इन वचनों में उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी जो कथन किया गया है वह सम्यक्त्वमार्गणासे जानना चाहिये।

भव्यमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
भव्य	८	२३-२५-२६--२८-२९-३०-३१ व १	१२	२०-२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८ प्रकृतिक	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक तथा १०,९
अभव्य	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक यहाँ ३० प्रकृतिक स्थान उद्योतसहित ही है।	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

अब सम्यक्त्वमार्गणा में बन्ध-उदय व सत्त्वस्थान कहते हैं–

.....सुदमिवुवसमे बंधो ॥७३२॥

उदया इगिपणवीसं णववीसतियं च पढमचउ सत्तं।
उवसम इव बंधंसा वेदगसम्मे ण इगिबंधो ॥७३३॥

उदयामदिं व खइये बंधादी सुदमिवत्थि चरिमदुगं।
उदयंसे वीसं च य साणे अडवीसतियबंधो ॥७३४॥

उदया इगिवीसचऊ णववीसतियं च णउदियं सत्तं।
मिस्से अडवीसदुगं णववीसतियं च बंधुदया ॥७३५॥

बाणउदिणउदिसत्तं मिच्छे कुमदिं व होदि बंधतियं।

अर्थ – सम्यक्त्वमार्गणाके उपशमसम्यक्त्वमें बन्धस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं, उदयस्थान २१ व २५ प्रकृतिक तथा २९ आदि प्रकृतिक तीन इसप्रकार पाँच तथा सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। वेदक सम्यक्त्वमें बन्धस्थान उपशमसम्यक्त्ववत् हैं, किन्तु विशेषता यह है कि यहाँ एक प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं है, उदयस्थान मतिज्ञानवत् आठ हैं एवं सत्त्वस्थान उपशमसम्यक्त्ववत् ही जानना। क्षायिकसम्यक्त्वमें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानवत् क्रमसे ५-८ और ८ हैं, किन्तु विशेष यह है कि उदय व सत्त्वमें अन्तिम दो-दो स्थान एवं उदयमें २० प्रकृतिक स्थान भी पाया जाता है। सासादनसम्यक्त्वमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप तीन, उदयस्थान २१ आदि प्रकृतिक चार एवं २९ आदि प्रकृतिक तीन इसप्रकार सात हैं। यहाँ २७ व २८ प्रकृतिक उदय आने तक एकेन्द्रियादि के सासादनपना नहीं होता अतः नहीं कहे, सत्त्वस्थान ९० प्रकृतिरूप एक ही है। सम्यग्मिथ्यात्वमें बन्धस्थान २८ आदि प्रकृतिरूप दो, उदयस्थान २९ आदि प्रकृति रूप तीन एवं सत्त्वस्थान ९२ व ९० प्रकृतिरूप दो हैं। मिथ्यात्वमें बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान कुमतिज्ञानवत् जानना।

सम्यक्त्वमार्गणामें बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

सम्यक्त्व-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
उपशम-सम्यक्त्व	५	२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	५	२१-२५-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९०
वेदक-सम्यक्त्व	४	२८-२९-३० व ३१	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	४	९३-९२-९१ व ९०

क्षायिक	५	२८-२९-३०-३१ व १	११	२०-२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ तथा ९ व ८ प्रकृतिक	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक
सासादन	३	२८-२९ व ३०	७	२१-२४-२५-२६-२९-३०-३१ नोट-२७ व २८ के उदय-काल आनेपर सासादन नहीं होता।	१	१० प्रकृतिक
मिश्र	२	२८ व २९	३	२९-३० व ३१	२	९२ व ९० प्रकृतिक
मिथ्यात्व	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	६	९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

अब सञ्ज्ञीमार्गणा में बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थान कहते हैं–

पुरिसं वा सण्णीये इदरे कुमदिं व णत्थि इगिणउदी ॥७३६॥

अर्थ – सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्ध-उदय व सत्त्वस्थानका कथन पुरुषवेदके समान है। असञ्ज्ञीके बन्धादि तीनोंस्थान कुमतिज्ञानवत् जानना, किन्तु विशेषता यह है कि ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है।

सञ्ज्ञीमार्गणा में बन्ध-उदय एवं सत्त्वस्थानों की सन्दृष्टि–

मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
सञ्ज्ञी	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
असञ्ज्ञी	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक

आगे आहारमार्गणा में बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानों का कथन करते हैं–

आहारे बंधुदया संढं वा णवरि णत्थि इगिवीसं।
पुरिसं वा कम्मंसा इदरे कम्मं व बंधतियं ॥७३७॥

अत्थि णवट्ठ य दुदओ दसणवसत्तं च विज्जदे एत्थ।
इदि बंधुदयप्पहुदीसुदणामे सारमादेसे ॥७३८॥जुम्मं॥

अर्थ – आहारमार्गणामें बन्ध और उदय तो नपुंसकवेदके समान हैं, किन्तु विशेष यह है कि २१ प्रकृतिक उदयस्थान यहाँ नहीं है, सत्त्वस्थान पुरुषवेदवत् हैं। अनाहारमार्गणामें बन्ध-उदय और सत्त्वस्थान कार्मणकाययोगवत् है, किन्तु विशेषता यह है कि अयोगकेवलीके ९ व ८ प्रकृतिरूप दो उदयस्थान तथा १० व ९ प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान हैं। इसप्रकार १४ मार्गणाओंमें बन्ध-उदय एवं सत्त्वके त्रिसंयोगका सार स्पष्टरूपसे कहा।

आहारमार्गणा में बन्ध-उदय-सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

आहार-मार्गणा	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
आहारक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	८	२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	११	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८व ७७ प्रकृतिक
अनाहारक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	४	२०-२१-९ व ८ प्रकृतिक यहाँ ९ व ८ प्रकृतिक स्थान अयोगकेवली की अपेक्षा से हैं।	१३	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८०-७९-७८-७७-१० व ९ यहाँ १० व ९ प्रकृतिक-स्थान अयोगकेवली की अपेक्षा से है।

चारु सुदंसणधरणे कुवलयसंतोसणे समत्थेण।
माधवचंदेण महावीरेणत्थेण वित्थरिदो ॥७३९॥

अर्थ – उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करनेमें समर्थ तथा पृथ्वीमण्डलको आनन्द करनेवाले श्री माधवचन्द्र अर्थात् नेमिनाथ तीर्थङ्कर और महावीर तीर्थङ्करने परमार्थसे पूर्वोक्त कथनका विस्तार किया है अथवा माधवचन्द्र और वीरनन्दी आचार्योंने किया ऐसा भी अर्थ निकलता है।

आगे उपर्युक्त त्रिसंयोगमें एकको आधार और दो को आधेय मानकर कथन करेंगे सो उसमें यहाँ सर्वप्रथम बन्ध को आधार और उदय-सत्त्व को आधेय मानकर दो गाथाओं में कहते हैं–

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णुवीस छव्वीसे।
अट्ठचदुरट्ठवीसे णवसत्तुगुतीसतीसम्मि ॥७४०॥

एगेगं इगितीसे एगे एगुदयमट्ठसत्ताणि।
उवरदबंधे दस दस उदयंसा होंति णियमेण ॥७४१॥जुम्मं॥[1]

अर्थ – २३-२५ व २६ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ तथा सत्त्वस्थान पाँच हैं, २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ८ और सत्त्वस्थान चार हैं। २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ एवं सत्त्वस्थान सात हैं, ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय-सत्त्वस्थान एक-एक ही हैं तथा एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान एक एवं सत्त्वस्थान ८ हैं। उपरतबन्ध अर्थात् बन्धरहित स्थानमें उदय व सत्त्वस्थान १०-१० हैं, ऐसा नियमसे जानना।

अब नामकर्मके उपर्युक्त स्थानोंमें प्रकृतिसंख्या कहते हैं–

तियपणछबीसबंधे इगिवीसादेक्कतीसचरिमुदया।
बाणउदी णउदिचऊ सत्तं अडवीसगे उदया ॥७४२॥

पुव्वंव ण चउवीसं बाणउदि चउक्कसत्तमुगुतीसे।
तीसे पुव्वं उदया पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४३॥

---

१. एगेगं इगितीसे एगेगुदयट्ठ संतम्मि। उवरयबंधे चउदस वेदयदि संतठाणाणि ॥२४९॥ (प्रा.पं.सं.पृ. ४०४))

इगितीसे तीसुदओ तेणउदी सत्तयं हवे एगे।
तीसुदओ पढमचऊ सीदादि चउक्क मवि सत्तं ॥७४४॥

उवरदबंधेसुदया चउपणवीसूण सव्वयं होदि।
सत्तं पढमचउक्कं सीदादीछक्कमवि होदि॥७४५॥

अर्थ – २३-२५ व २६ प्रकृतिके बन्धस्थानोंमें २१ से ३१ प्रकृतिक स्थानपर्यंत ९ उदयस्थान और ९२ प्रकृतिक तथा ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पाँच सत्त्वस्थान हैं। २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान तो उपर्युक्त ९ में २४ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ८, सत्त्वस्थान ९२ आदि प्रकृतिरूप चार हैं। २९ व ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान उपर्युक्त ९ हैं और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप सात हैं। ३१ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एवं सत्त्वस्थान ९३ प्रकृतिक है। १ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक और सत्त्वस्थान ९३ आदि प्रकृतिरूप चार व ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे आठ हैं। बन्धरहित (उपरतबन्धमें) उदयस्थान २४-२५ प्रकृतिकबिना शेष १० हैं और सत्त्वस्थानभी ९३ आदि प्रकृतिरूप ४ व ८० आदि प्रकृतिरूप ६ ऐसे १० हैं।

विशेषार्थ – बन्ध-उदय-सत्त्वरूप त्रिसंयोगमें २३ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ९ और सत्त्वस्थान ५ हैं, क्योंकि २३ प्रकृतिका बन्ध एकेन्द्रियअपर्याप्तसहित है अतः इस स्थानको देव-नारकीके बिना अन्य मिथ्यादृष्टि त्रस-स्थावरतिर्यञ्च व मनुष्य ही बाँधते हैं। एकेन्द्रियादि सर्व तिर्यञ्चोंके बन्ध एकेन्द्रिय अपर्याप्तसहित २३ प्रकृतिका है तब उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है और कर्मभूमिज मनुष्यके एकेन्द्रिय अपर्याप्तयुत २३ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका पाया जाता है। २५ प्रकृतिक बन्धस्थानको एकेन्द्रियपर्याप्त और त्रसअपर्याप्तसहित मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च-मनुष्य और देव ही बाँधते हैं। सभी तिर्यञ्चोंके एकेन्द्रिय पर्याप्त व त्रस अपर्याप्तयुत २५ प्रकृतिका बन्ध है तब उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है और सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, मनुष्योंके भी इसीप्रकार २५ प्रकृतिक बन्धमें उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। भवनत्रिक-सौधर्मद्विक देवोंमें एकेन्द्रियपर्याप्तियुत २५ प्रकृतिका बन्ध रहते हुए उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है।

२६ प्रकृतिक बन्धस्थान एकेन्द्रियपर्याप्तजीव उद्योत या आतपसहित मिथ्यादृष्टि देव, मनुष्य और तिर्यञ्च ही बाँधते हैं, इनमें भी तेजकाय-वायुकाय, साधारण, सूक्ष्म व अपर्याप्तके २६ प्रकृतिक स्थानका उदय नहीं है तथा तिर्यञ्चोंके एकेन्द्रियपर्याप्त उद्योत व आतपसहित २६ प्रकृतिका बन्ध होता

है तब उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है। मनुष्योंमें भी इसीप्रकार २६ प्रकृतिका बन्ध होनेपर उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८ और ८४ प्रकृतिका जानना। भवनत्रिक व सौधर्मद्विक स्वर्गके देवोंमें इसीप्रकार २६ प्रकृतिका बन्ध होनेपर उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक स्थानों का एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिक दोस्थानोंका है। तथैव २८ प्रकृतिका बन्ध नरक या देवगतियुत है, इसका बन्ध असञ्ज्ञी व सञ्ज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकाल में करते हैं। तिर्यञ्चोंके मिथ्यात्वावस्थामें नरक या देवगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है और सत्त्व ९२-९०-८८ प्रकृतिका है। सासादनमें देवयुत २८ प्रकृतिका बन्ध होनेपर ३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है। सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिका बन्ध देवगतियुत ही है उस समय उदय ३० व ३१ प्रकृतिका सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका। असंयतगुणस्थानमें देवयुत बन्ध २८ प्रकृतिका होता है तो उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है। देशसंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ प्रकृति के बन्धमें ३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। ८२ प्रकृतिके सत्त्वसहित तेजकाय-वायुकायवाले मरणकरके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं उनके विग्रहगतिमें या अपर्याप्तकालमें तिर्यञ्चयुत २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिका बन्ध होता है। ८२ प्रकृतिका सत्त्व होता है मनुष्यद्विकसहित २५ व २९ प्रकृतिका बन्ध होते हुए ८२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता है। एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजीव नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेपर मरणकर पञ्चेन्द्रियपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें भी उत्पन्न होते हैं उनके भी पूर्वोक्त अपर्याप्तकालमें ८४ प्रकृतिका सत्त्व सम्भव है इसलिए २८ प्रकृतिके बन्ध होनेके काल में ८२ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व नहीं कहा। मिथ्यादृष्टिमनुष्यके पर्याप्तकालमें नरक या देवसहित २८ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिका है। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेपर नारकचतुष्क व देवचतुष्कका बन्ध होता है तो ८८ प्रकृतिका भी सत्त्व पाया जाता है। जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया हो ऐसा असंयत द्वितीय-तृतीय पृथ्वीमें गमनके सम्मुख है वह मिथ्यादृष्टि होकर नरकगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध करता है तो उदय ३० प्रकृतिका व सत्त्व ९१ प्रकृतिका है। मनुष्यके सासादनगुणस्थानमें देवगतिसहित २८ प्रकृतिका बन्ध है तो उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ९० प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें देवयुत बन्ध २८ प्रकृति होते हुए उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है। असंयतगुणस्थानके देवयुत २८ प्रकृतिके बन्धमें उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है एवं सत्त्व ९० व ९२ प्रकृतिका है, यहाँ ९१ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, क्योंकि पहले यदि नरकायुका बन्ध नहीं हुआ है तो तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होनेके बाद सम्यक्त्वसे भ्रष्ट नहीं हो सकते, तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध निरन्तर है इसलिए देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृति का बन्ध होता है २८ प्रकृतिका नहीं। देशसंयतके २८ प्रकृतिकबन्धमें उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है, प्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिरूप बन्धमें २५-२७-२८-२९ व ३०

प्रकृतिका उदय और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व होता है। अप्रमत्तगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिक बन्ध होनेपर उदय ३० एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, किन्तु २५-२७ व २९ प्रकृतिक उदयमें सत्त्व ९२ प्रकृतिका ही है। अपूर्वकरणगुणस्थानमें देवयुत २८ प्रकृतिका बन्ध होते हुए उदय एवं सत्त्व क्रमशः ३० और ९२ व ९० प्रकृतिका जानना।

२८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय व सत्त्वस्थानोंके कथनमें यद्यपि विशेषकथन गर्भित हो जाता है, किन्तु प्राकृतपंचसंग्रहकार ने पृ. ३९३ गा. २२६ से पृ. ३७७ गा. २३३ तक २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय तथा सत्त्वकी विशिष्टदशामें स्थानविशेषोंका कथन किया है जो इसप्रकार है-

(१) २८ प्रकृतिका बन्ध करनेवाला क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर भोगभूमिजोंमें उत्पन्न होनेवालेके २१ व २६ प्रकृतिके उदयमें भी २८ प्रकृतिका बन्ध और सत्त्व ९२ या ९० प्रकृतिका होता है।

(२) छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारकशरीरमिश्रकालमें २५ प्रकृतिका उदय होनेपर तथा आहारकशरीरपर्याप्तिकालमें २७ प्रकृतिका उदय होनेपर २८ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है, किन्तु सत्त्व ९२ प्रकृतिका ही है।

(३) आहारकप्रकृतिके सत्त्ववाले असंयतसम्यग्दृष्टिके २९ प्रकृतिका उदय और प्रमत्तसंयतके २८ प्रकृतिके उदयस्थानमें बन्ध २८ प्रकृति का और सत्त्व ९२ प्रकृति का है।

(४) मिथ्यात्वगुणस्थानसे विरताविरत नामक पंचमगुणस्थानतकके जीवोंके ३० प्रकृति के उदयस्थानमें और २८ प्रकृतिके बन्धस्थानमें सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका होता है।

(५) जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया हो ऐसा कर्मभूमिज मनुष्य उपशम या वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर केवलिके पादमूलमें तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्धकर दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके अभिमुख मिथ्यात्वको प्राप्त हो नरकगतियुत २८ प्रकृति का बन्ध करता है उससमय ३० प्रकृति का उदय और ९१ प्रकृति का सत्त्व।

(६) देवद्विककी उद्वेलना करके मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्यमें उत्पन्न होकर नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध करनेवालेके उदय ३० प्रकृति का और सत्त्व ८८ प्रकृति का।

(७) ३१ प्रकृतिके उदयवाला मिथ्यादृष्टिसे विरताविरत पंचमगुणस्थान तक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध होनेपर सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका।

(८) मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके नरकगतियुत २८ प्रकृतिका बन्ध, उदय ३१ प्रकृतिका और सत्त्व ८८ प्रकृतिका, क्योंकि देवद्विक की उद्वेलना वाला है।

२९ प्रकृतिका बन्ध द्वीन्द्रियादिसहित या त्रसपर्याप्तसहित अथवा तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित अथवा देवगति तीर्थङ्करसहित होता है और इस स्थानको चारोंगतिके जीव बाँधते हैं। यहाँ नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिका बन्ध होता है तब उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका, सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है; ९१ प्रकृतिका सत्त्व घर्मादि तीन नरकोंमें प्रथमतीन अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ही सम्भव है। सासादनगुणस्थानमें पूर्वोक्तप्रकार २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय २९ एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यसहित ही २९ प्रकृतिक बन्ध है तब उदय भी २९ प्रकृतिक एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें भी मनुष्ययुत ही २९ प्रकृतिरूप बन्ध होता है तब घर्मानरकसम्बन्धी २९ प्रकृतिक बन्धके साथ २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप उदय और ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है; वंशा-मेघादि पृथ्वियोंमें २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय २९ एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानके पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यसहित २९ प्रकृतिके बन्धमें उदय २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिका तथा सत्त्व ९० प्रकृतिका है; यहाँ २५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता है। मिश्र-असंयत और देशसंयत इन तीन गुणस्थानोंमें २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है, क्योंकि तिर्यञ्च व मनुष्यगतिकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनगुणस्थानमें ही हो जाती है। मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय और ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है। यहाँ तेजकाय, वायुकाय की उत्पत्ति मनुष्यों में नहीं होती, इससे ८२ का सत्त्व नहीं कहा। जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसे जीवके तीर्थङ्करप्रकृतिके बन्धसहित नरकगतिको जाते समय मिथ्यात्वावस्थामें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिके बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक उदयसहित ९१ प्रकृतिका सत्त्व जानना, सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा मनुष्यसहित २९ प्रकृतिकबन्धमें २१-२६ व ३० प्रकृतिक उदयसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है। असंयतगुणस्थानमें देव और तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिके उदयसहित सत्त्व ९३ और ९१ प्रकृतिका है, देशसंयतगुणस्थानमें इसीप्रकार २९ प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिका उदय एवं ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व है, प्रमत्तगुणस्थानके इसी २९ प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ २५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक उदय और ९३ व ९१ प्रकृतिक सत्त्व है, अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानमें पूर्वोक्त २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृति का जानना। देवगति भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गके कल्पवासीदेवोंतक मिथ्यात्वगुणस्थानमें सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च या मनुष्यसहित २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय तथा ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। देव सासादनगुणस्थानमें पूर्ववत् २९ प्रकृतिक बन्धमें २१-२५

और २९ प्रकृतिरूप उदयसहित सत्त्व ९० प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धमें २९ प्रकृतिका उदय और सत्त्व ९२-९० प्रकृति का जानना। असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धमें उदय भवनत्रिकदेवोंमें २९ प्रकृतिका तथा अन्य देवोंमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृति का है तथा सत्त्व सभीके ९२ व ९० प्रकृतिका पाया जाता है। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त देवोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्धके साथ २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। सासादनगुणस्थानमें २९ प्रकृतिके बन्धमें २१-२५ व २९ प्रकृतिका उदय तथा ९० प्रकृतिका सत्त्व है। मिश्रगुणस्थानमें २९ प्रकृतिक पूर्वोक्त बन्धमें २९ ही प्रकृतिके उदयसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व होता है, असंयतगुणस्थानमें इसी २९ प्रकृतिरूप बन्धके साथ उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। अनुदिश व अनुत्तरविमानोंके असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिकबन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है।

३० प्रकृतिका बन्धस्थान त्रसपर्याप्तउद्योत-तिर्यञ्चगतियुत या मनुष्यगतितीर्थङ्करसहित अथवा देवगति-आहारकद्विकसहित होता है और इसका बन्ध चारोंगतिके जीवोंको होता है। नरकगतिके मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चउद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका तथा सासादनगुणस्थानमें उदय २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९० प्रकृतिका है; मिश्रगुणस्थानमें ३० प्रकृतिका बन्ध नहीं है, असंयतगुणस्थानमें मनुष्य-तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें घर्मानरकमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९१ प्रकृतिका है। वंशा-मेघानरकमें उदय २९ व सत्त्व ९१ प्रकृतिका है, अञ्जनादिमें इसप्रकारका बन्ध नहीं है। मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चोंके उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धमें उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृति का एवं सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिक उदय और ९० प्रकृतिका सत्त्व है। यहाँ मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें इसप्रकारका बन्ध नहीं है। मिथ्यादृष्टिमनुष्यके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय एवं ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिकबन्धमें २१-२६ व ३० प्रकृतिक उदयसहित सत्त्व ९० प्रकृतिका जानना। मिश्रसे प्रमत्तपर्यन्त चारगुणस्थानोंमें ३० प्रकृतिक बन्ध नहीं है, अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानमें देवगति व आहारकद्विकसहित ३० प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिक उदयसहित ९२ प्रकृतिका सत्त्व है। भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त देवोंमें तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिरूप बन्धमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय और ९० व ९२ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें २१-२५ व २९ प्रकृतिरूप उदय तथा ९० प्रकृतिरूप सत्त्व है। मिश्र व असंयतगुणस्थानवर्ती भवनत्रिकदेवोंमें ३० प्रकृतिरूप बन्ध नहीं

है वहाँ तो मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिक बन्ध ही पाया जाता है तथा सौधर्मसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त देवोंके असंयतगुणस्थानमें मनुष्य व तीर्थङ्करसहित ३० प्रकृतिका बन्ध है तब उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृतिका है, आगे आनतस्वर्गसे उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यात्व-सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानोंमें ३० प्रकृतिका बन्ध नहीं है। आनतस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त असंयतगुणस्थानवर्ती देवोंके ३० प्रकृतिकबन्धमें उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९३ व ९१ प्रकृतिका पाया जाता है।

देवगति-आहारकद्विक व तीर्थङ्करसहित ३१ प्रकृतिक बन्ध अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती ही करते हैं सो इनके इस बन्धस्थानमें उदय और सत्त्व क्रमशः ३० व ९३ प्रकृतिका पाया जाता है। अपूर्वकरणके सप्तमभागमें तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें यशस्कीर्तिरूप १ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है, किन्तु अपूर्वकरणके सप्तमभागमें ८० आदि प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान नहीं हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें यशस्कीर्तिरूप १ प्रकृतिक बन्धमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३-९२-९१-९०-८०-७९ -७८ व ७७ प्रकृतिका है, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव रहते हुए भी उदय ३० प्रकृतिक एवं सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है, क्षीणकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है। सयोगकेवलीके स्वस्थानमें ३० व ३१ प्रकृतिका उदय और सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है तथा समुद्घातकेवलीके २०-२१-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका उदय एवं सत्त्व ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका है। अयोगीगुणस्थानमें उदय ९ व ८ प्रकृतिका[१] और सत्त्व ८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृति का है।

१. गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा २७१ व २७६ देखो।

अधिकरणरूप बन्धस्थान और आधेयरूप उदय-सत्त्वस्थानके त्रिसंयोगी भङ्गसम्बन्धी सन्दृष्टि –

अधिकरण	आधेय			
बंधस्थान	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति-का विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-संख्या का विवरण
२३ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२५ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२६ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	४	९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
३१	१	३० प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक
१	१	३० प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७
उपरतबन्ध	१०	२०-२१-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९ व ८	१०	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक

आगे उदयस्थानको आधार और बन्ध-सत्त्वस्थानोंको आधेय मानकर कथन करते हैं–

बीसादिसु बंधंसा णभदु छण्णव पणपणं च छसत्तं।
छण्णव छड दुसु छहस अट्ठदसं छक्कछक्क णभति दुसु ॥७४६॥

अर्थ – २० आदि प्रकृतिरूप उदयस्थानोंमें बन्ध व सत्त्वस्थान क्रमसे २० प्रकृतिके उदयस्थानमें बन्धस्थान शून्य व सत्त्वस्थान २, २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ व सत्त्वस्थान ९, २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ५ और सत्त्वस्थान ५, २५ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ सत्त्वस्थान ७, २६ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ और सत्त्वस्थान ९, २७ व २८ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ एवं सत्त्वस्थान ८, २९ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ६ तथा सत्त्वस्थान १०, तीस प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्ध व सत्त्वस्थान क्रमसे ८ व १० हैं, ३१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमें बन्ध और सत्त्वस्थान ६ व ६ हैं तथा ९ व ८ प्रकृतिक उदयस्थानोंमें बन्धस्थानका अभाव है और सत्त्वस्थान ३ जानना।

अब उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण ६ गाथाओं में करते हैं–

बीसुदये बंधो ण हि उणसीदीसत्तसत्तरी सत्तं।
इगिवीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतया बंधा ॥७४७॥

सत्तं तिणउदिपहुदिसीदंता अट्ठसत्तरी य हवे।
चउवीसे पढमतियं णववीसं तीसयं बंधो ॥७४८॥

बाणउदी णउदिचऊ सत्तं पणछस्सगट्ठणववीसे।
बंधा आदिमछक्कं पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४९॥

ते णवसगसदरिजुदा आदिमछस्सीदिअट्ठसदरीहिं।
णवसत्तसत्तरीहिं सीदिचउक्केहिं सहिदाणि ॥७५०॥

तीसे अट्ठवि बंधो ऊणतीसं व होदि सत्तं तु।
इगितीसे तेवीसप्पहुदीतीसंतयं बंधो ॥७५१॥

सत्तं दुणउदिणउदीतिय सीदडहत्तरी य णवगट्ठे।
बंधो ण सीदिपहुदीसुसमविसमं सत्तमुद्दिट्ठं ॥७५२॥

अर्थ – २० प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धका अभाव है, सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिरूप दो हैं, २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें २३ प्रकृतिक स्थानसे ३० प्रकृतिकस्थानपर्यन्त ६ बन्धस्थान हैं तथा सत्त्वस्थान ९३ से ८० प्रकृतिक स्थानपर्यन्त एवं ७८ प्रकृतिका ऐसे ९ हैं। यहाँ २१ प्रकृतिक उदयस्थानके अन्तर्गत तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलीके बन्धस्थानका अभाव भी है। २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके तीन और २९ व ३० प्रकृतिक इस प्रकार पाँच बन्धस्थान हैं एवं सत्त्वस्थान ९२ प्रकृतिक व ९० आदि प्रकृतिरूप चार इसप्रकार पाँच जानना। २५-२६-२७-२८ व २९ प्रकृतिक उदयस्थानोंमें २३ आदि प्रकृतिरूप ६ उदयस्थान एवं सत्त्वस्थान क्रमसे २५ प्रकृतिक स्थानमें आदिके सात, २६ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ७ और ७९ व ७७ प्रकृतिरूप दो ऐसे ९, २७ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ६ और ८० व ७८ प्रकृतिक ऐसे ८, २८ प्रकृतिकस्थानमें आदिके ६ तथा ७९ व ७७ प्रकृतिक दो इसप्रकार आठ हैं, २९ प्रकृतिक स्थानमें आदिके छह और ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे १०, तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान ८ एवं सत्त्व २९ प्रकृतिकस्थानके समान १० हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्ध २३ से ३० प्रकृतिक स्थानपर्यन्त ६ व सत्त्वस्थान ९२ प्रकृतिरूप व ९० आदिप्रकृतिरूप ३ और ८०-७८ प्रकृतिक ऐसे ६ हैं। ९ व ८ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थानका अभाव है तथा ८० आदि प्रकृतिरूप ६ स्थानोंमेंसे समसंख्यारूप तीनस्थान ९ प्रकृतिक स्थानमें और विषमसंख्यारूप तीनस्थान आठप्रकृतिक स्थानमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ – २० प्रकृतिका उदय तीर्थङ्करहित सामान्यकेवलीके समुद्घातमें होता है, यहाँ बन्धका अभाव है और सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिके पाए जाते हैं। २१ प्रकृतिरूप उदयस्थान तीर्थङ्करके प्रतर समुद्घात करने व समेटनेमें और लोकपूरण समुद्घातमें होता है। यहाँ भी बन्ध नहीं पाया जाता, सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिरूप है तथा आनुपूर्वीसहित २१ प्रकृतिका उदय चारोंगतिके विग्रहगतिकालमें होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती घर्मादि तीन पृथ्वियोंके नारकीजीवोंमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानमें पंचेन्द्रियतिर्यंच या मनुष्ययुत २९ अथवा तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है। सासादन व मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिरूप उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें घर्मानरकमें ही २१ प्रकृतिका उदय है यहाँ मनुष्ययुत २९ व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिका बंध और ९२-९१ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। अञ्जनादि तीन नरकोंमें मिथ्यादृष्टिनारकियोंके २१ प्रकृतिक उदयमें बन्ध पंचेन्द्रियतिर्यंच या मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। अञ्जनादिपृथ्वियोंके सासादनआदि तीनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। तिर्यंचोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें पंचेन्द्रियतिर्यंच व मनुष्ययुत २९ एवं तिर्यंच-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बंधके साथ सत्त्व ९० प्रकृतिका है। यहाँ मिश्र व देशसंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें देवयुत २८ प्रकृतिक बंधसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृति का है। मनुष्योंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें

२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप बंधसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृति बन्धसहित सत्त्व ९० प्रकृति का है, मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृति का उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें देवयुत २८ प्रकृतिक और देव-तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका, देशसंयतादिमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं है। देवगतिमें भवनत्रिकदेवोंमें और कल्पवासिनी देवियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृति का है, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय में मनुष्ययुत २९ व तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृति का है। मिश्र-असंयतगुणस्थानमें इसप्रकारका उदयस्थान नहीं है। सौधर्मयुगलके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयमें २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृति का है, सासादनगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय में तिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९० प्रकृति का है। मिश्रगुणस्थानमें यहाँ २१ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है। असंयतगुणस्थानके २१ प्रकृतिक उदयमें मनुष्ययुत २९ और मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिके बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका जानना। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानके २१ प्रकृतिरूप स्थानका उदय है तब तिर्यञ्च व मनुष्ययुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धके साथ ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है तथा सासादन व असंयतगुणस्थानसम्बन्धी कथन पूर्वोक्त सौधर्मयुगलके कथनवत् जानना। मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता है। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१ प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध मनुष्ययुत २९ और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिके बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानका अभाव है, असंयतगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ एवं मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धके साथ ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्व पाया जाता है। नवानुदिश और पाँच अनुत्तर विमानसम्बन्धी असंयतगुणस्थानमें भी मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक तथा मनुष्य-तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९३ आदि प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं।

२४ प्रकृतिरूप उदयस्थान अपर्याप्तएकेन्द्रियमिथ्यादृष्टिजीव के ही है। यहाँ २४ प्रकृतिक उदयमें लब्ध्यपर्याप्तकके २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बंधसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है तथा निर्वृत्यपर्याप्तकमें भी सर्वकथन इसीप्रकार है, किन्तु विशेषता यह है कि अग्निकाय वायुकायके जीवोंमें मनुष्यगतिसहित होनेवाले सभी बन्धस्थानोंका अभाव है। एवं आतप-उद्योतसहित सर्व सूक्ष्म, अपर्याप्त, तेजकाय-वायुकाय और साधारणका बन्ध नहीं है। २५ प्रकृति का उदय चारोंगतिके अपर्याप्तकालमें और पर्याप्तएकेन्द्रियके सम्भव है यहाँ २५ प्रकृतिका उदय रहते हुए सभी नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें तथा घर्मानरकके असंयतगुणस्थानमें २१ प्रकृतिक उदयस्थानवत् बन्ध व सत्त्व

जानना। वंशा, मेघा आदि नरकों में अपर्याप्त अवस्थामें असंयत गुणस्थान नहीं होता; क्योंकि शरीरपर्याप्ति होनेपर ही वहाँ पर सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। नारकियोंके अपर्याप्तकालमें अन्य गुणस्थान (सासादन, मिश्र) नहीं हैं। एकेन्द्रियजीवोंके परघातयुत २५ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका है। त्रसतिर्यञ्चजीवोंके २५ प्रकृतिक उदय नहीं है क्योंकि इनके अङ्गोपाङ्ग व संहननसहित २६ प्रकृतिका ही उदय पाया जाता है तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्यके आहारकशरीरमें संहनन नहीं अतः अङ्गोपाङ्गसहित २५ प्रकृतिका उदय है सो इनके देवयुत २८ और देवगति व तीर्थङ्करसहित २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३-९२ प्रकृतिका सत्त्व है। देवोंके २५ प्रकृतिक उदय है जिसप्रकार २१ प्रकृतिक उदयमें बन्ध-सत्त्वका कथन किया गया है उसीप्रकार यहाँ भी बन्ध और सत्त्व जानना चाहिए। २६ प्रकृतिक उदय लब्ध्यपर्याप्त व निर्वृत्त्यपर्याप्त त्रसतिर्यञ्चोंके संहननसहित है यहां मिथ्यात्वगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिके बन्धसहित सत्त्वस्थान ९२ और ९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक चार हैं। एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिके शरीरपर्याप्तिमें उद्योत या आतप सहित २६, अथवा उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्तजीवके उच्छ्वास सहित (तथा आतप उद्योत रहित) २६ प्रकृतिक उदयमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें २६ प्रकृतिरूप उदय नहीं है, क्योंकि इसस्थानके उदयसे पूर्व ही २४ प्रकृतिक स्थानमें सासादनकाल समाप्त हो जाता है तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके सासादनगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदय है तब २९-३० प्रकृतिके बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है। "मिच्छदुगे देवचऊण" इस वचनसे २८ प्रकृतिका बन्ध नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २६ प्रकृतिक उदयमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है, देशसंयतगुणस्थानमें २६ प्रकृतिका उदय नहीं है। मनुष्यके २६ प्रकृतिका उदय होता है यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादनगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्रगुणस्थानमें इसप्रकारका उदय नहीं है, असंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ व देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका बन्ध होता है एवं ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं, देशसंयतादि गुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है, तीर्थङ्करबिना सामान्यकेवलीके कपाटसमुद्घातमें २६ प्रकृतिके उदयमें बन्ध नहीं है, किन्तु सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है।

२७ प्रकृतिका उदय तीनगतिसम्बन्धी शरीरपर्याप्तिमें तथा तिर्यञ्चगतिमें एकेन्द्रियके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें होता है। जहाँ २७ प्रकृति का उदय होता है वहाँ घर्मादि तीन नरकों के मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ का एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका तथा सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है, यहाँ तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है, क्योंकि शरीर पर्याप्ति के ऊपर तीर्थङ्कर सत्त्वसहित नारकी मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है। सासादनादिगुणस्थानोंमें

यह उदयस्थान नहीं है, किन्तु घर्मानरकमें असंयतगुणस्थान २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ एवं मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्ध सहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है। वंशा मेघा में बन्ध मनुष्यगति तीर्थंकर सहित ३० प्रकृतिक बन्ध सहित सत्त्व वाला है तथा अञ्जनादि तीन नरकोंकी मिथ्यात्वावस्था में २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका है और सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, माघवीपृथ्वीमें तिर्यञ्चगतियुत २९ तथा तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका जानना। यहाँ सासादनादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। एकेन्द्रियके श्वासोच्छ्वाससहित आतप या उद्योत संयुक्तमेंसे किसी एकमें २७ प्रकृतिका उदय होता है तब २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। तेजकाय-वायुकायबिना अन्य एकेन्द्रियोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें मनुष्यद्विकका बन्ध होता है तब ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान यथासम्भव नहीं है। आहारकशरीरवालोंके २७ प्रकृतिक उदयमें देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३ व ९२ प्रकृतिका है, तीर्थङ्करके कपाटसमुद्घातमें २७ प्रकृतिक उदयमें बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। भवनत्रिकदेव तथा कल्पवासिनी देवियोंके तो मिथ्यात्वगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें २५-२६ एवं तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। यहाँ सासादनादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। सासादनगुणस्थानका अभाव इसलिए कहा, क्योंकि शरीरपर्याप्तिकालमें सासादनगुणस्थानको छोड़कर मिथ्यात्वावस्थाको प्राप्त हो जाता है। मिथ्यात्वसहित सौधर्मयुगलमें २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध व सत्त्वका कथन भवनत्रिकवत् जानना। यहाँ सासादन व मिश्रगुणस्थान में यह उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ व मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप है। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यादृष्टिके २७ प्रकृतिरूप उदयमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। असंयतगुणस्थानके २७ प्रकृतिक उदयमें बन्ध व सत्त्वका सर्वकथन सौधर्मयुगलके समान है। आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थानमें २७ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिरूप बन्धसहित ९२-९० प्रकृतिका सत्त्व होता है, इनके असंयतगुणस्थानमें तथा नवानुदिश व अनुत्तरविमानोंके असंयतोंमें २७ प्रकृतिक उदय रहते हुए मनुष्यगतियुत २९ और मनुष्यगति व तीर्थङ्करसंयुक्त ३० प्रकृतिक बन्धके साथ सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप है।

२८ प्रकृतिका उदय तिर्यञ्च-मनुष्यके शरीरपर्याप्तिकालमें तथा देव और नारकियोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें होता है। जहाँ २८ प्रकृतिका उदय होता है वहाँ नारकियोंके घर्मानरकमें मिथ्यात्वसहित तो बन्ध तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक और तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है। यहाँ ९१ प्रकृतिका सत्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि

तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला घर्मानरकमें जाकर सम्यक्त्वसे भ्रष्ट नहीं होता है, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है,असंयतगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ व मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिरूप बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका जानना। वंशा-मेघापृथ्वीके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें बन्ध-सत्त्वसम्बन्धी कथन घर्मानरकवत् है किन्तु इनके ९१ प्रकृतिका भी सत्त्व है। सासादन और मिश्र गुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। असंयत में बन्ध मनुष्यगति तीर्थंकर युत ३० का और सत्त्व ९१ का है। आगे अञ्जनादि तीन नरकोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदयमें बन्ध और सत्त्वसम्बन्धी कथन घर्मानरकवत् जानना, किन्तु यहाँ सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें २८ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है। माघवी नामक नरकके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए तिर्यञ्चगतियुत २९ और तिर्यञ्चगति व उद्योतसहित ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है, किन्तु सासादनादि गुणस्थानोंमें २८ प्रकृतिरूप उदय नहीं पाया जाता है। तिर्यञ्चोंके २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्व पाया जाता है, सासादन और मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। भोगभूमिज असंयततिर्यञ्चमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं होता है। मनुष्यके २८ प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध-सत्त्व सम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चवत् है। यहाँ सासादन व मिश्र गुणस्थान में यह उदयस्थान नहीं है, असंयतगुणस्थानमें इस उदयस्थानके रहते हुए देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिरूप पाए जाते हैं, देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। आहारककाययोगकी उच्छ्वासपर्याप्तिमें २८ प्रकृतिका उदय रहते हुए देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३ व ९२ प्रकृतिक सत्त्व है। तीर्थङ्कररहित दण्डसमुद्घातके औदारिककाययोगमें २८ प्रकृतिक उदय रहते हुए बन्धका तो अभाव है, किन्तु सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है। २७ प्रकृतिक उदय रहते हुए देवोंके जो बन्ध व सत्त्वस्थान कहे थे वे ही यहाँ २८ प्रकृतिक उदयमें भी जानना।

२९ प्रकृतिका उदय नारकियोंके भाषापर्याप्तिकालमें दुःस्वरसहित होता है। २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए सभी नारकियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। यहाँ विशेषबात यह है कि माघवीनरकमें मनुष्यगतियुत बन्धस्थान नहीं है तथा द्वितीय-तृतीय नरकके प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें ९१ प्रकृतिका भी सत्त्व है। सासादनगुणस्थानमें २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए बन्ध तो मिथ्यात्वगुणस्थानवत् और सत्त्व ९० प्रकृतिका, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९० प्रकृतिका सत्त्व है, असंयतगुणस्थानमें घर्मा-वंशा-मेघानरकमें मनुष्यगतियुत २९ और मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९१ व ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है अञ्जनादि शेष चार नरकोंमें २९ प्रकृतिक उदय

रहते हुए मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध और ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है। त्रसतिर्यञ्चोंके शरीरपर्याप्तिकालमें उद्योतसहित २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ और ८४ प्रकृतिका सत्त्व है, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है, भोगभूमिज असंयतमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता है। मनुष्योंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उच्छ्वासयुत २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए मिथ्यादृष्टिके बन्ध एवं सत्त्वसम्बन्धी सर्वकथन तिर्यञ्चवत् जानना, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है, देशसंयतादिगुणस्थानोंमें यह उदयस्थान नहीं है। आहारकशरीरकी भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वरसहित २९ प्रकृतिका उदय रहते हुए देवगतियुत २८ व देवगति व तीर्थंकरयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३ व ९२ प्रकृतिका सत्त्व होता है। तीर्थंकर के दण्डसमुद्घातमें २९ प्रकृतिक उदयमें बन्धका तो अभाव एवं सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। तीर्थंकररहित सामान्यकेवलीके मूलशरीरमें प्रवेश करते समय उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उच्छ्वाससहित २९ प्रकृतिक उदयमें बन्धका अभाव एवं सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका है। देवोंकी भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वरसहित २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें भवनत्रिक एवं कल्पवासिनीदेवियोंके २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक तथा सौधर्मयुगल एवं सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ और तिर्यञ्चगति व उद्योतयुत ३० प्रकृतिक एवं आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध है तथा सत्त्व सर्वत्र ९२-९० प्रकृतिका ही है। सासादनगुणस्थानमें भवनत्रिकसे १२वें स्वर्गपर्यन्त तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका व तिर्यञ्च-उद्योत सहित ३० प्रकृतिका तथा नवग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका ही है तथा सत्त्व सर्वत्र ९० प्रकृतिका है। मिश्रगुणस्थानमें उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त सर्वत्र मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें भवनत्रिक व कल्पवासिनीदेवियोंके २९ प्रकृतिक उदय रहते हुए मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है। सौधर्मस्वर्गसे अनुत्तरविमानपर्यन्त २९ प्रकृतिक उदयमें मनुष्यगतियुत २९ एवं मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिका है।

३० प्रकृतिका उदय तिर्यञ्च व मनुष्योंके ही है, क्योंकि यह स्थान संहननसहित है। तिर्यञ्चोंके उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें उद्योतसहित ३० प्रकृतिक उदयमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है, सासादन-मिश्रगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं पाया जाता, भोगभूमिज असंयततिर्यञ्चोंमें ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२ व ९० प्रकृतिका है, कर्मभूमिज असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें यह उदयस्थान नहीं है। भाषापर्याप्तिकालमें उद्योतरहित और सुस्वर-दुःस्वरमेंसे किसी एक सहित ३० प्रकृति उदय तिर्यञ्चोंके होता है इनके मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित

सत्त्व ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिका है। यहाँ ८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्व विकलत्रयकी अपेक्षासे कहा गया है, क्योंकि विकलत्रय जीवोंके सुरद्विक और नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेके पश्चात् बन्धका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदयमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित ९० प्रकृतिका सत्त्व है, मिश्र-असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें देवगतियुत २८ प्रकृतिक बन्ध और ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व है। मनुष्योंके तीर्थङ्कर समुद्घातावस्था में मूलशरीरमें प्रवेश करते समय उच्छ्वासपर्याप्तिकालमें ३० प्रकृतिका उदय है सो यहाँ बन्ध का तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। तीर्थङ्करप्रकृतिबिना भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वर सहित ३० प्रकृतिका उदय होता है तब बन्धका अभाव और सत्त्व ७९ व ७७ प्रकृतिका जानना। सामान्यमनुष्यके भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वरसहित ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित सत्त्व ९२-९१ व ९० प्रकृतिका है। यहाँ ९१ प्रकृतिक सत्त्व दूसरे व तीसरे नरक जानेके सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले जीवकी अपेक्षासे कहा है। सासादनगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदयमें तिर्यञ्च व मनुष्यगतियुत २९ तथा तिर्यञ्च-उद्योतसहित ३० प्रकृतिका बन्ध एवं ९० प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, मिश्र में बंध देवसहित २८ और सत्त्व ९२-९० प्रकृतिका है, असंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त देवगतियुत २८ एवं देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिक बन्धसहित ९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक सत्त्व है, अप्रमत्त और अपूर्वकरण के छठेभाग पर्यन्त देव और आहारक सहित ३० का तथा देव, आहारक, तीर्थंकर सहित ३१ का भी बन्ध होता है, अपूर्वकरणगुणस्थानके सप्तमभागमें बंध १ प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३-९२-९१-९० प्रकृतिरूप है, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें बन्ध एक प्रकृतिका और सत्त्व ९३-९२-९१ व ९० तथा ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका जानना। आगे उपशान्तकषायादि चार गुणस्थानोंमें बन्धका अभाव है अतः ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए चारोंगुणस्थानोंमें क्रमसे उपशान्तकषायगुणस्थानमें ९३-९२-९१ व ९०, क्षीणकषाय व सयोगकेवली गुणस्थानमें ८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिका सत्त्व जानना, अयोगकेवलीगुणस्थानमें ३० प्रकृतिक उदय नहीं पाया जाता।

३१ प्रकृतिक उदय त्रस-उद्योतसहित भाषापर्याप्तिकालमें सुस्वर या दुःस्वरयुत तिर्यञ्चोंके होता है। जिसप्रकार ऊपर उद्योतरहित तिर्यञ्चोंके ३० प्रकृतिरूप उदयमें भाषापर्याप्तिकालमें बन्ध-सत्त्वका कथन किया है उसीप्रकार यहाँ भी जानना। मनुष्योंमें मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ३१ प्रकृतिका उदय ही नहीं पाया जाता है, किन्तु सयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करके इसका उदय है सो यहाँ बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८० व ७८ प्रकृतिका है। ९ प्रकृतिक उदय अयोगीगुणस्थानमें तीर्थङ्करके पाया जाता है यहाँ बन्धका तो अभाव और सत्त्व ८०-७८ व १० प्रकृतिका है तथा सामान्यकेवली की अपेक्षा अयोगीगुणस्थानमें ही ८ प्रकृतिका उदय भी होता है तब बन्धका अभाव एवं सत्त्व ७९-७७ व ९ प्रकृतिका है।

अधिकरणरूप उदयमें आधेयरूप बन्ध-सत्त्वके त्रिसंयोगसम्बन्धी सन्दृष्टि-

अधिकरण	आधेय			
उदयस्थान	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति-विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति-विवरण
२० प्रकृतिक	०	०	२	७९ व ७७ प्रकृतिक
२१ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० तथा शून्य[1]	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-८० व ७८
२४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३०	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२५ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२
२६ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बंधशून्य	९	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८२-७९ व ७७ प्रकृतिक
२७ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बंधशून्य	८	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८० व ७८ प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बन्ध शून्य	८	९३-९२-९१-९० ८८-८४-७९ व व ७७ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक,बन्ध शून्य	१०	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

१. तीर्थङ्करप्रकृतिके उदयसहित समुद्घातकेवलीके २१ प्रकृतिका उदय होने पर बन्ध नहीं होता।

३० प्रकृतिक	८	२३-२५-२६-२८-२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक, बन्ध शून्य	१०	९३-९२-९१-९०-८८-८४-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक
३१ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक, बन्ध शून्य	६	९२-९०-८८-८४-८० व ७८
९ प्रकृतिक	०	०	३	८०-७८ व १० प्रकृतिक
८ प्रकृतिक	०	०	३	७९-७७ व ९ प्रकृतिक

आगे सत्त्वस्थान को आधार और बन्ध-उदयस्थान को आधेय मानकर निरूपण करते हैं–

सत्ते बंधुदया चदुसग सगणव चदुसगं च सगणवयं।
छण्णव पणणव पणचदु चदुसिगिछक्कं णभेक्क सुण्णेगं ॥७५३॥

अर्थ – ९३ आदि प्रकृतिरूप सत्त्वस्थानोंमें बन्ध-उदयस्थान क्रमसे ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान व उदयस्थान क्रमशः ४ और ७ हैं। ९२ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ७ व उदयस्थान ९,९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ४ व उदयस्थान ७, ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ७ व उदयस्थान ९, ८८ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ६ व उदयस्थान ९, ८४ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ५ एवं उदयस्थान ९, ८२ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान ५ और उदयस्थान ४, ८० प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान १ तथा उदयस्थान ६, ७९ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान १ व उदयस्थान ६, ७८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ और उदयस्थान ६, ७७ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्ध व उदयस्थान क्रमसे १ व ६ हैं, १० प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान शून्य एवं उदयस्थान १ तथा ९ प्रकृतिक सत्त्वमें बन्धस्थान शून्य और उदयस्थान १ जानना।

आगे उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण ६ गाथाओं से करते हैं–

तेणउदीए बंधो उगुतीसादीचउक्कमुदओ दु।
इगिपणछस्सगअट्ठयणववीसं तीसयं णेयं ॥७५४॥

बाणउदीए बंधा इगितीसूणाणि अट्ठठाणाणि।
इगिवीसादीएक्कत्तीसंता उदयठाणाणि ॥७५५॥

इगिणवदीए बंधा अडवीसत्तिदयमेक्कयं चुदओ।
तेणउदिं वा णउदीबंधा बाणउदियं व हवे ॥७५६॥

चरिमदुवीसूणुदओ तिसु दुसु बंधा छ तुरियहीणं च।
बासीदी बंधुदया पुव्वं विगिवीस चत्तारि ॥७५७॥

सीदादिचउसु बंधा जसकित्ती समपदे हवे उदओ।
इगिसगणवधियवीसं तीसेक्कत्तीसणवगं च ॥७५८॥

बीसं छडणववीसं तीसं चट्ठं च विसमठाणुदया।
दसणवगे ण हि बंधो कमेण णवअट्ठयं उदओ ॥७५९॥कूलयं॥

अर्थ – ९३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २९-३०-३१ व १ प्रकृतिरूप चार और उदयस्थान २१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक ७ हैं। ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान ३१ के बिना २३-२५-२६-२८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप सात एवं उदयस्थान २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिके ९ हैं। ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप चार तथा उदयस्थान २१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिरूप सात हैं। ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२८-२९-३० व १ प्रकृतिरूप और उदयस्थान अन्तिम दो एवं २० प्रकृतिकबिना शेष ९ हैं। ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिरूप पाँच एवं उदयस्थान ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानके समान ही हैं। ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान एवं ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थानके समान ९ उदयस्थान हैं। ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक पाँच, उदयस्थान २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक चार हैं। ८० प्रकृतिक सत्त्वस्थानको आदि करके चार सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान तो एक यशस्कीर्ति प्रकृतिरूप है और उदयस्थान ८० व ७८ प्रकृतिक सत्त्वमें तो २१-२७-२९-३०-३१ व ९ प्रकृतिका तथा ७९ व ७७ प्रकृतिक सत्त्वमें २०-२६-२८-२९-३० व ८ प्रकृतिरूप उदयस्थान हैं। १० व ९ प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थानका अभाव है तथा उदयस्थान क्रमसे ९ व ८ प्रकृतिका पाया जाता है।

विशेषार्थ – ९३ प्रकृतिका सत्त्व कर्मभूमिजपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्तमनुष्य और वैमानिकदेवोंके पाया जाता है। "**तित्थाहारा जुगवं सव्वं**" इत्यादि गाथा ३३३ में मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें ९३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं पाया जाता है, किन्तु असंयत मनुष्यके ९३ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है तब असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है, देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका तथा उदय ३० प्रकृतिक है।

प्रमत्तगुणस्थान में बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका और उदय २५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिका, अप्रमत्तगुणस्थानमें बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ का एवं देवगति आहारक व तीर्थङ्करयुत ३१ का, उदय ३० प्रकृतिक का है, उपशमक अपूर्वकरणमें अप्रमत्तवत् बन्ध-उदय जानना। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्ध एकप्रकृतिका, उदय ३० प्रकृतिका है, उपशान्तमें बन्धका अभाव और उदय ३० प्रकृतिका है, क्षीणकषायादि गुणस्थानोंमें ९३ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है क्योंकि इनमें १३ प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे ८० प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है। वैमानिकदेवोंके असंयतगुणस्थानमें ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें मनुष्यतीर्थङ्करयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका होता है। यहाँ २८ प्रकृतिक बन्ध नहीं होता, क्योंकि नरक जानेके सम्मुखजीवको छोड़कर तीर्थंकरकी सत्ता वाले अन्य जीव सदा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करते हैं और तीर्थङ्करप्रकृतिके साथ २९ प्रकृतिक बन्ध ही सम्भव है।

९२ प्रकृतिक सत्त्व चारोंगतिमें पाया जाता है। नरकगतिमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वमें घर्मानरकके मिथ्यादृष्टिको तिर्यञ्च या मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्ध तथा २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय होता है। सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका बन्ध और २९ प्रकृतिका ही उदय भी पाया जाता है। असंयतगुणस्थानमें मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका बन्ध एवं २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय है। वंशासे मघवीपृथ्वीपर्यन्त मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए बन्ध-उदयका कथन घर्मानरकवत् ही जानना। यहाँ सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व ही नहीं होता, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध व उदय २९-२९ प्रकृतिरूप ही है। असंयतगुणस्थानमें मनुष्यगतियुत २९ का बन्ध और २९ प्रकृतिका ही उदय पाया जाता है। माघवीपृथ्वीसम्बन्धी मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए तिर्यञ्चयुत २९ प्रकृतिक एवं तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय घर्मानरकवत् ही जानना। यहाँ सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं हैं, मिश्र व असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक तथा उदय भी २९ प्रकृति का ही है। तिर्यञ्चोंमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका उदय है, सासादनमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३०-३१ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है किन्तु २१-२६-२८ व २९ प्रकृतिका उदय भोगभूमिजकी अपेक्षा है। देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३० व ३१ प्रकृतिका पाया जाता है। मनुष्यके ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय होता है, सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिक बन्ध और उदय ३० प्रकृति का

है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिरूप है, देशसंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका है, प्रमत्तगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ तथा उदय २५-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है, अप्रमत्तअपूर्वकरणगुणस्थानमें देवगतियुत बन्ध २८ का एवं देव-आहारकयुत ३० प्रकृतिका व उदय ३० प्रकृतिरूप है, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्ध एक प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृतिका है, उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव तथा उदय ३० प्रकृतिका जानना, क्षीणकषायादि गुणस्थानोंमें १३ प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे ९२ प्रकृतिका सत्त्वस्थान नहीं है ७९ प्रकृतिका सत्त्व है। देवोंमें ९२ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए भवनत्रिक और सौधर्मयुगलवाले मिथ्यादृष्टि देवोंके २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है, सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका और उदय भी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक एवं उदय भवनत्रिकके तो २९ का, सौधर्मयुगलमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है। आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९ का और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० का; आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिक बन्ध है, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है। यहाँ सासादनगुणस्थानमें ९२ प्रकृतिक सत्त्व नहीं है, मिश्रगुणस्थानमें भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका बन्ध और उदय भी २९ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें सनत्कुमारस्वर्गसे अनुत्तरविमानपर्यंत बन्ध मनुष्यगतियुत २९ एवं उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका पाया जाता है।

"तिरिये ण तित्थसत्तं" इत्यादि गाथाके वचनानुसार तिर्यञ्चबिना देव-नारकी व मनुष्यके ही ९१ प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। यहाँ घर्मानरकके नारकियोंमें ९१ प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्यसहित २९ प्रकृतिका, उदय २१-२५ प्रकृतिका है। यहाँ २७ आदि प्रकृतिका उदय नहीं है क्योंकि शरीर पर्याप्ति होनेपर तीर्थंकर की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि होजाता है। सासादन मिश्र में ९१ का सत्त्व नहीं है। असंयतगुणस्थानमें तीर्थङ्कर व मनुष्यगतियुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका पाया जाता है। वंशा-मेघानरकमें भी सर्वकथन घर्मावत् ही जानना, किन्तु विशेष यह है कि असंयतगुणस्थानमें २७-२८-२९ प्रकृतिक उदय पाया जाता है। अञ्जनादि पृथ्वियोंमें ९१ प्रकृतिकका सत्त्व नहीं है। मनुष्योंके ९१ प्रकृतिरूप सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध नरकगति सहित २८ या मनुष्यगतिसहित २९ व उदय ३० प्रकृतिका है। सासादनमिश्र में ९१ का सत्त्व नहीं है। असंयतगुणस्थानमें बंध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है। आगे देशसंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यंत बन्ध देवगति व तीर्थङ्करयुत २९ प्रकृतिका, अपूर्वकरणके सप्तमभागसे उपशम सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध एक प्रकृतिका तथा उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव है और उदय देशसंयतगुणस्थानसे उपशान्तकषायपर्यन्त

३० प्रकृतिका ही है। देवगतिमें ९१ प्रकृतिका सत्त्व वैमानिकदेवोंके असंयतगुणस्थानमें ही होता है। वहाँ मनुष्यगति व तीर्थङ्करयुत बन्ध ३० प्रकृतिका और उदय २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृति का जानना। ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान चारोंगतिके जीवोंमें पाया जाता है। नरकगतिमें सर्वनारकियोंके ९० प्रकृतिक सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ एवं तिर्यञ्चउद्योतयुत ३० प्रकृतिक बन्धसहित २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका उदय पाया जाता है, किन्तु यहाँ विशेष इतना है कि माघवीपृथ्वीके मिथ्यादृष्टिजीवोंमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्ध नहीं है। ९० प्रकृतिक ही सत्त्व रहते हुए सासादनगुणस्थानमें बन्ध तो मिथ्यात्वगुणस्थानवत् और उदय २९ प्रकृतिरूप है, मिश्रगुणस्थानमें मनुष्ययुत २९ प्रकृतिक बन्ध और उदय भी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध मनुष्ययुत २९ प्रकृतिका है एवं उदय घर्मानरकमें तो २१-२५-२७-२८ व २९ तथा वंशादिपृथ्वियोंमें उदय २९ प्रकृतिका ही है। तिर्यञ्चोंके ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका एवं उदय २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है; सासादनगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका, तिर्यञ्च या मनुष्ययुत २९ और तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका है, उदय २१-२४-२६-३० व ३१ प्रकृतिका; मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका एवं उदय ३० व ३१ प्रकृतिका है, असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिका है, देशसंयतमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ एवं उदय ३० व ३१ प्रकृतिका है। मनुष्योंमें ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्ध २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका, उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका; सासादनगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसंयुक्त २८, तिर्यञ्च या मनुष्यगतियुत २९, तिर्यञ्च व उद्योतसहित ३० प्रकृतिका एवं उदय २१-२६ व ३० प्रकृतिका है; मिश्रगुणस्थानमें बन्ध देवगतियुत २८ प्रकृतिका और उदय ३० प्रकृति का; असंयतगुणस्थानमें बन्ध देवगतिसहित २८ प्रकृतिका तथा उदय २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका है; देशसंयतसे अपूर्वकरणगुणस्थानके छठेभागपर्यन्त बन्ध देवगतिसंयुक्त २८ प्रकृतिका, अपूर्वकरणके सप्तमभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त बन्ध १ प्रकृतिका एवं उपशान्तकषायगुणस्थानमें बन्धका अभाव है, उदय देशसंयतसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त ३० प्रकृतिका ही है। देवोंके ९० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें भवनत्रिक और सौधर्मयुगलके देवोंमें बन्ध २५-२६-२९ व ३० प्रकृतिका, आगे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त १० स्वर्गोंमें तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिक और तिर्यंचगति व उद्योतयुत ३० प्रकृतिक, आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका है, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका है; सासादनगुणस्थानमें बन्ध भवनत्रिकसे सहस्रारस्वर्गपर्यन्त तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसंयुक्त २९ अथवा तिर्यञ्च-उद्योतयुत ३० प्रकृतिका, आनतस्वर्गसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त मनुष्यगतिसहित २९ प्रकृतिका, उदय भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त २१-२५ व २९ प्रकृतिका है, मिश्रगुणस्थानमें भवनत्रिकसे उपरिमग्रैवेयकपर्यन्त बन्ध मनुष्यगतिसंयुक्त २९ प्रकृतिका

और उदयभी २९ प्रकृतिका ही है, असंयतगुणस्थानमें भवनत्रिकसे अनुत्तरविमानपर्यन्त बन्ध मनुष्यगतियुत २९ प्रकृतिका है, एवं उदय भवनत्रिकमें २९ प्रकृतिका और सौधर्मद्विकसे अनुत्तरविमानपर्यन्त २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिका रहता है।

८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान देवद्विककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय व विकलत्रयके होता है। ये जीव मरणकर मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च व मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। उनके २३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक बन्धसहित तिर्यञ्चके २१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृति तथा मनुष्यके २१-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय पाया जाता है। आगे सासादनादि गुणस्थानोंमें ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है। मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च व मनुष्यके शरीर पर्याप्तिकालमें जबतक देवगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है अथवा एकेन्द्रिय व विकलत्रय नारकचतुष्ककी उद्वेलना करके मरणकर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा मनुष्य में उत्पन्न होता है। वहाँ शरीरपर्याप्तिकालमें देवगतिको बाँधनेवाला जबतक नरकगतिको नहीं बाँधता तबतक उसके ८८ प्रकृतिका सत्त्व हो सकता है। ८४ प्रकृतिका सत्त्व नारकचतुष्ककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियके होता है ये मरणकरके मिथ्यादृष्टितिर्यञ्च अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं सो इनके भी जबतक देव या नरकगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८४ प्रकृतिका सत्त्व होता है। यहाँ पर बन्ध व उदयसम्बन्धी कथन ८८ प्रकृतिक स्थानके समान जानना, विशेष इतना है कि २८ प्रकृतिक बन्धका यहाँ अभाव है। ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर तेजकाय-वायुकायके जीवों में होता है, ये मरणकरके मिथ्यादृष्टितिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं सो इनके बन्ध २३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक तथा उदय २१-२४-२५ व २६ प्रकृतिका है। यहाँ तेजकायवायुकायके जीवोंमें आतप या उद्योतका उदय नहीं है। जबतक मनुष्यगतिका बन्ध नहीं होता तबतक ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। ८० प्रकृतिक सत्त्व क्षपकश्रेणिमें अनिवृत्तिकरणसे तीर्थङ्करकेवलीसम्बन्धी अयोगीगुणस्थानके द्विचरमसमयपर्यन्त होता है। ८० प्रकृतिका सत्त्व रहते हुए अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक प्रकृतिके बन्धसहित उदय ३० प्रकृतिका है। आगे गुणस्थानोंमें बन्धका अभाव है अतः उदय क्षीणकषायगुणस्थानमें ३० प्रकृतिका, सयोगकेवली गुणस्थानमें स्वस्थानकेवलीके ३१ प्रकृतिका, समुद्घातकेवलीके २१-२७-२९-३० व ३१ प्रकृतिका एवं अयोगकेवलीके ९ प्रकृतिका पाया जाता है। ७९ प्रकृतिका सत्त्व तीर्थङ्करप्रकृतिरहित है, ७८ प्रकृतिका सत्त्व तीर्थङ्करप्रकृतिसहित एवं आहारकद्विकप्रकृतिरहित है। ७७ प्रकृतिका सत्त्व तीर्थंकर और आहारकद्विक रहित है सो इनतीनों स्थानोंमें बन्धउदय का कथन क्षपकअनिवृत्तिकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ८० प्रकृतिक सत्त्वस्थानवत् है। सयोगकेवलीगुणस्थानमें ७९ व ७७ प्रकृतिके सत्त्वमें स्वस्थानकेवलीके ३० प्रकृतिका, समुद्घातकेवलीके २०-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका उदय है, ७८ प्रकृतिक सत्त्वमें उदय ८० प्रकृतिक स्थानवत् जानना, अयोगीके ७९-७७ के सत्त्वमें बन्धका अभाव तथा उदय ८ प्रकृतिक है और ७८ के सत्त्व में ९ का उदय है, १० व ९ प्रकृतिक सत्त्व अयोगकेवलीगुणस्थानके चरमसमयमें

क्रमशः तीर्थङ्करप्रकृतिसहित व रहित हैं, बन्धका अभाव है, उदय क्रमसे तीर्थङ्करसहितके ९ प्रकृतिका एवं तीर्थङ्कररहितके ८ प्रकृतिका जानना। इसप्रकार सत्त्वस्थानरूप आधारमें बन्ध-उदयको आधार मानकर कथन किया।

अधिकरणरूप सत्त्व में आधेयरूप बन्ध-उदयस्थानसम्बन्धी त्रिसंयोग की सन्दृष्टि-

अधिकरण	आधेय			
सत्त्वस्थान	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण
९३	४	२९-३०-३१ व १ प्रकृतिक	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
९२	७	२३-२५-२६-२८-२९-३० व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१
९१	४	२८-२९-३० व १ प्रकृतिक	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३०
९०	७	२३-२५-२६-२८-२९-३० व १	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
८८	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३०	९	,, ,,
८४	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्र.
८२	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक	४	२१-२४-२५-२६ प्रकृतिक

८०	१	१ यशस्कीर्ति	६	२१-२७-२९-३० व ३१-९ प्रकृतिक
७९	१	१ यशस्कीर्ति	६	२०-२६-२८-२९-३० व ८
७८	१	१ यशस्कीर्ति	६	२१-२७-२९-३०-३१ व ९
७७	१	१ यशस्कीर्ति	६	२०-२६-२८-२९-३० व ८
१०	०	०	१	९ प्रकृतिक
९	०	०	१	८ प्रकृतिक

आगे बन्ध व उदयस्थान को आधार एवं सत्त्वस्थानों को आधेय मानकर ९ गाथाओं में कथन करते हैं–

तेवीसबंधगे इगिवीसणवुदयेसु आदिमचउक्के।
बाणउदिणउदिअडचउबासीदी सत्तठाणाणि ॥७६०॥

तेणुवरिमपंचुदये ते चेवंसा विवज्ज बासीदिं।
एवं पणछव्वीसे अडवीसे एक्कवीसुदये ॥७६१॥

बाणउदिणउदिसत्तं एवं पणुवीसयादिपंचुदये।
पणसगवीसे णउदी विगुव्वणे अत्थि णाहारे ॥७६२॥

तेण णभिगितीसुदये बाणउदिचउक्कमेक्कतीसुदये।
णवरि ण इगिणउदिपदं णववीसिगिवीसबंधुदये ॥७६३॥

तेणवदिसत्तसत्तं एवं पणछक्कवीसठाणुदये।
चउवीसे बाणउदी णउदिचउक्कं च सत्तपदं ॥७६४॥

सगवीसचउक्कुदये तेणउदीछक्कमेवमिगितीसे।
तिगिणउदी ण हि तीसे इगिपणसगअट्ठणवयवीसुदये ॥७६५॥

तेणउदिछक्कसत्तं इगिपणवीसेसु अत्थि बासीदी।
तेण छचउवीसुदये बाणउदी णउदिचउसत्तं ॥७६६॥

एवं खिगितीसे ण हि बासीदी एक्कतीसबंधेण।
तीसुदये तेणउदी सत्तपदं एक्कमेव हवे ॥७६७॥

इगिबंधट्ठाणेण दु तीसट्ठाणोदये णिरुंधम्मि।
पढमचऊसीदिचऊ सत्तट्ठाणाणि णामस्स ॥७६८॥ कुलयं॥

अर्थ – २३ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिरूप स्थानको आदि करके ९ उदयस्थान हैं और इन ९ उदयस्थानोंमेंसे आदिके चारस्थानोंमें सत्त्वस्थान ९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक पाँच हैं तथा शेष २७ आदि प्रकृतिरूप पाँच उदयस्थानोंमें ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानबिना उपर्युक्त शेष चार सत्त्वस्थान हैं। २५ व २६ प्रकृतिक बन्धमें उदय-सत्त्वस्थान २३ प्रकृतिक बन्धके समान जानना। २८ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिक उदयसहित ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं तथा इसी बन्धमें २५ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके पाँच उदयस्थानोंमें भी ९२-९० प्रकृतिक दो ही जानना, किन्तु विशेषता यह है कि २५ व २७ प्रकृतिक उदयस्थानमें जो ९० प्रकृतिक सत्त्व कहा है वह आहारककी अपेक्षा न होकर वैक्रियिककी अपेक्षा है। इसी २८ प्रकृतिक बन्धमें ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थानसहित ९२ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके चार सत्त्वस्थान हैं, किन्तु विशेषता इतनी है कि ३१ प्रकृतिका उदय होने पर ९१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है। २९ प्रकृतिक बन्धमें २१ प्रकृतिका उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान, २४ प्रकृतिक उदयमें ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप चार, इसप्रकार पाँच सत्त्वस्थान, २५ व २६ प्रकृतिरूप उदय होनेपर भी ९३ आदि प्रकृतिरूप सात सत्त्वस्थान, २७ आदि प्रकृतिरूप चार उदयस्थानोंमें ९३ प्रकृतिक स्थानको आदि करके ६ सत्त्वस्थान तथैव ३१ प्रकृतिक उदयमें ९३ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थानोंमेंसे ९३ व ९१ प्रकृतिक स्थानबिना शेष चार सत्त्वस्थान हैं।

३० प्रकृतिक बन्धमें २१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिरूप उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिरूप ६ सत्त्वस्थान हैं, किन्तु विशेषता यह है कि ८२ प्रकृतिकस्थानका सत्त्व २१ व २५ प्रकृतिक उदयमें ही

पाया जाता है अन्य उदयस्थानोंमें नहीं तथा २४ व २६ प्रकृतिक उदय होनेपर ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पाँच सत्त्वस्थान एवं ३० व ३१ प्रकृतिक उदय होनेपर सत्त्वस्थान २४ प्रकृतिक उदयस्थानमें कहे अनुसार ही जानना, किन्तु इतना विशेष है कि यहाँ ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं है और ३० प्रकृतिक उदयमें ९३ प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान है। १ प्रकृतिक बन्धमें ३० प्रकृतिक उदय होनेपर ९३ आदि प्रकृतिक चार तथा ८० आदि प्रकृतिक चार ऐसे नामकर्मके ८ सत्त्वस्थान कहे गये हैं।

विशेषार्थ – गाथा ७६२ में २८ प्रकृतिक बन्धमें ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व और २५ व २७ प्रकृतिका उदय बतलाते हुए यह कहा गया है कि २५ व २७ प्रकृतिका उदय और ९० प्रकृतिका सत्त्व वैक्रियिकशरीरकी अपेक्षा जानना चाहिए, आहारकशरीरकी अपेक्षासे नहीं, क्योंकि जिसके आहारकशरीर होगा उसके ९२ प्रकृतिका सत्त्व होगा, ९० प्रकृतिका सत्त्व सम्भव नहीं है। ९० प्रकृतिका सत्त्व तो आहारकशरीरके सत्त्व बिना होता है।

शङ्का – २५ व २७ प्रकृतिका उदय देव-नारकीके होता है अथवा आहारकशरीरवाले के हो सकता है, क्योंकि इनके संहननका उदय नहीं होता अथवा तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातमें होता है। देव-नारकीके २८ प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, क्योंकि २८ प्रकृतिका बन्धस्थान देव-नरकगतिसहित है। आहारकशरीरवालेके २८ प्रकृतिका बन्ध तो सम्भव है, किन्तु ९० प्रकृतिका सत्त्व सम्भव नहीं है। तीर्थङ्करकेवलीके कपाटसमुद्घातमें न तो ९० प्रकृतिका सत्त्व होता है और न नामकर्मका बन्ध होता है, अतः ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान सहित २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २५ व २७ प्रकृतिरूप उदयस्थान सम्भव नहीं है ?

समाधान – उमास्वामी आचार्य विरचित तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में "**औपपादिकं वैक्रियिकं**" इस सूत्र द्वारा यह अवश्य कहा गया है कि वैक्रियिकशरीर उपपादजन्मवालोंके अर्थात् देव-नारकियोंके होता है, किन्तु "**लब्धिप्रत्ययं च**" सूत्र द्वारा यह भी कहा गया है कि तप आदि लब्धिके कारण औदारिकशरीरियोंके भी वैक्रियिकशरीर हो जाता है। इसीलिए "**तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः**" इस सूत्र द्वारा यह कहा गया है कि एक जीवमें एक साथ चार शरीर हो सकते हैं। श्री वीरसेनस्वामिने वर्गणाखण्ड सूत्र १३१ की टीकामें चार शरीरवाले जीवोंका कथन करते हुए कहा है– "**चत्तारि सरीराणि जेसिं ते चदु सरीरा। के ते ? ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय सरीरेहिं ओरालिय-आहार-तेजा-कम्मइय सरीरेहिं वा वट्टमाणा।**" (ध. पु. १४ पृ. २३८) अर्थात् चार शरीर जिनके होते हैं वे चार शरीरवाले जीव हैं। वे कौन हैं ? औदारिक-वैक्रियिक-तैजस और कार्माणशरीरके साथ विद्यमानजीव चार शरीरवाले होते हैं (आगे ध. पु. १४ पृ. ४०२ पर कहा है) "**ण चेदं विउव्वणसरीरं ओरालियं, विप्पडिसेहदो**" "यह विक्रियारूप शरीर भी औदारिक है, ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विक्रियारूप शरीरके औदारिक होनेका निषेध है।" इसी वैक्रियिकशरीर

की उदीरणा व उदयकाल एकसमय कहा गया है– **''वेउव्विय सरीरणामाए जहण्णेण एग समओ। कुदो ? तिरिक्ख-मणुस्सेसु एगसमयमुत्तरसरीरं विउव्विदूण विदियसमए मुदस्स तदुवलभादो''** (ध. पु. १५ पृ. ६४) अर्थात् वैक्रियिकशरीर नामकर्मका उदीरणाकाल जघन्यसे एक समय है, क्योंकि तिर्यञ्च या मनुष्योंके एकसमय उत्तरशरीरकी विक्रियाकरके द्वितीयसमयमें मृत्युको प्राप्त हुए जीवके एकसमय काल पाया जाता है। इसप्रकार वैक्रियिकशरीरवाले तिर्यञ्च या मनुष्यके वैक्रियिकशरीरकी अपेक्षा २५ व २७ प्रकृतिके उदयकालमें ९० प्रकृतिका सत्त्व और २८ प्रकृतिका बन्ध सम्भव है। प्राकृत पंचसंग्रहकार का भी यही मत है–

पणुवीसाई पंच य बंधे वेउव्विए गणिदा।
संता पढमा चउरो उदया सत्तट्ठवीस उणतीसा ॥४३७॥ (प्रा.पं.सं.पृ. ५००)

वैक्रियिककाययोगियोंके २५ प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान अर्थात् २५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिका बन्ध, २७-२८ व २९ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान तथा आदिके चार सत्त्व (९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक) स्थान होता है। वैक्रियिक काययोगमें २८ प्रकृतिक बन्धस्थान, वैक्रियिककाययोगवाले मनुष्य या तिर्यंचोंके ही सम्भव है। जिन मनुष्य व तिर्यञ्चोंके वैक्रियिकशरीर होता है उन्हींके वैक्रियिककाययोग हो सकता है।

अधिकरणरूप बन्ध-उदय और आधेयरूप सत्त्वस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

अधिकरण			आधेय	
बन्धस्थान	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृति संख्या विवरण	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृतिसंख्या विवरण
२३ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२३ प्रकृतिक	५	२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक
२५-२६ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
२५-२६ प्रकृतिक	५	२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक

२८ प्रकृतिक	१	२१ प्रकृतिक	२	९२ व ९० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	५	२५-२६-२७-२८व२९ प्रकृतिक (२५ व २७ प्रकृतिके उदय में ९० प्रकृतिक सत्त्व वैक्रियक शरीर की अपेक्षा है आहारकशरीर की अपेक्षा नहीं।)	२	९२ व ९० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक	४	९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	१	३१ प्रकृतिक	३	९२-९० व ८८ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	१	२१ प्रकृतिक	७	९३-९२-९१-९० व ८८ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	२	२५-२६ प्रकृतिक	७	९३-९२-९१-९०-८८-८४ व ८२
२९ प्रकृतिक	१	२४ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२
२९ प्रकृतिक	४	२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक	६	९३-९२-९१-९० व ८८-८४
२९ प्रकृतिक	१	३१ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४
३० प्रकृतिक	२	२१ व २५ प्रकृतिक	७	९३-९२-९१-९० ८८-८४ व ८२ प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	२	२४ व २६		९२-९०-८८-८४-८२
३० प्रकृतिक	३	२७-२८ व २९ प्रकृतिक	६	९३-९२-९१-९०-८८ व ८४
३० प्रकृतिक	२	३० व ३१ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४
३१ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक

अथानन्तर नामकर्म के बन्ध-सत्त्वस्थान को आधार एवं उदयस्थान को आधेय मानकर ६ गाथाओं में कथन करते हैं–

तेवीसबंधठाणे दुखणउदडचदुरसीदिसत्तपदे।
इगिवीसादिणउदओ बासीदे एक्कवीसचऊ॥७६९॥

एवं पणछव्वीसे अडवीसे बंधगे दुणउदंसे।
इगिवीसादि णवुदया चउवीसट्ठाणपरिहीणा॥७७०॥

इगिणउदीए तीसं उदओ णउदीए तिरियसण्णिं वा।
अडसीदीए तीसदु णववीसे बंधगे तिणउदीए॥७७१॥

इगिवीसादट्ठुदओ चउवीसूणो दुणउदिणउदितिये।
इगिवीसणविगिणउदे णिरयं व छवीसतीसधिया॥७७२॥

बासीदे इगिचउपणछव्वीसा तीसबंधतिगिणउदी।
सुरमिव दुणउदिणउदी चउसुदओ ऊणतीसं वा॥७७३॥

इगितीसबंधठाणे तेणउदे तीसमेव उदयपदं।
इगिबंध तिणउदिचऊ सीदिचउक्केवि तीसुदओ॥७७४॥

अर्थ – २३ प्रकृतिक बन्धस्थानसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २१ प्रकृतिक स्थानको आदिकरके ९ उदयस्थान हैं, २३ प्रकृतिक ही बन्धसहित ८२ प्रकृतिक सत्त्वमें २१ आदि प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं॥७६९॥

२५-२६ प्रकृतिक बन्धसहित ९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें उदयस्थान पूर्वोक्त ही जानना। २८ प्रकृतिरूप बन्धसहित ९२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थानोंमें से २४ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ८ स्थान हैं। २८ प्रकृतिक ही बन्धस्थान सहित ९१ प्रकृतिके सत्त्वमें ३० प्रकृतिक उदयस्थान, ९० प्रकृतिक सत्त्वमें सञ्ज्ञीतिर्यञ्चमें कहे हुए २१-२६-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, ८८ प्रकृति का सत्त्व होनेपर ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान हैं॥७७०-७१॥

२९ प्रकृतिरूप बन्धके रहते हुए ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें २१ आदि आठ उदयस्थानोंमें २४ प्रकृतिकस्थान बिना शेष २१ आदि प्रकृतिरूप ७ उदयस्थान हैं, (किन्तु ३१ का भी उदयस्थान नहीं है

अत: ७ उदयस्थान है (जैसा सन्दृष्टिमें लिखा है) ३१ प्रकृतिका उदय तिर्यञ्चोंमें है, किन्तु तिर्यञ्चोंमें ९३ का सत्त्व नहीं है। मनुष्यों में सयोगी गुणस्थान में ३१ प्रकृति का उदय व ९३ प्रकृतिका सत्त्व है, किन्तु वहाँ बन्धका अभाव है) ९२ एवं ९० आदि प्रकृतिरूप तीन ऐसे चार सत्त्वस्थानोंमें २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान हैं, ९१ प्रकृतिक सत्त्वमें नरकगतिवत् २१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक उदयस्थान, ८२ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर २१, २४, २५ व २६ प्रकृतिके उदयस्थान हैं। ३० प्रकृतिका बन्ध तथा ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर देवगतिमें कहे हुए ५ उदयस्थान होते हैं तथा ३० प्रकृतिक बन्धके रहते हुए ९२ और ९० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे पाँच सत्त्वस्थान होनेपर २९ प्रकृतिक बन्धस्थानवत् २१ आदि प्रकृतिरूप ९ उदयस्थान हैं, तथा ३० प्रकृतिक बन्धस्थानमें ही ८२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ प्रकृतिक बन्धस्थानवत् चार उदयस्थान हैं॥७७२-७३॥

३१ प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए ९३ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर ३० प्रकृतिरूप एक ही उदयस्थान है तथा १ प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए ९३ आदि प्रकृतिरूप चार एवं ८० आदि प्रकृतिरूप चार ऐसे आठ सत्त्वस्थानोंमें ३० प्रकृतिक उदयस्थान है। आगे बन्ध का अभाव है अत: दो स्थानोंको आधार व १ स्थानको आधेय मानकर कथन सम्भव नहीं है॥७७४॥

अधिकरणरूप बन्ध-सत्त्वस्थान और आधेयरूप उदयस्थान के त्रिसंयोग की संदृष्टि–

अधिकरण			आधेय	
बन्धस्थान	सत्त्व-स्थान संख्या	सत्त्वस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	उदय-स्थान संख्या	उदयस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण
२३ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१
२३ प्रकृतिक	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृति.
२५-२६ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
२५-२६ प्रकृतिक	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	१	९२ प्रकृतिक	८	२१-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक

२८ प्रकृतिक	१	९१ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	१	९० प्रकृतिक	६	२१-२६-२८-२९ व ३०-३१
२८ प्रकृतिक	१	८८ प्रकृतिक	२	३०-३१ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१ प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	१	९१ प्रकृतिक	७	२१-२५-२६-२७-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	५	२१-२५-२७-२८ व २९ प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	४	९२-९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	९	२१-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३० व ३१
३० प्रकृतिक	१	८२ प्रकृतिक	४	२१-२४-२५ व २६ प्रकृतिक
३१ प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक	१	३० प्रकृतिक
१ प्रकृतिक	८	९३-९२-९१-९०-८०-७९-७८ व ७७	१	३० प्रकृतिक

आगे उदय और सत्त्वस्थान को आधार तथा बन्धस्थान को आधेय मानकर ९ गाथाओं में कथन करते हैं–

इगिवीसट्ठाणुदये तिगिणउदे णवयवीसदुगबंधे।
तेण दुखणउदिसत्ते आदिमछक्कं हवे बंधो ॥७७५॥
एवमडसीदितिदए ण हि अडवीसं पुणोवि चउवीसे।
दुखणउददसीदितिए सत्ते पुव्वं व बंधपदं ॥७७६॥
पणवीसे तिगिणउदे एगुणतीसं दुगं दुणउदीए।
आदिमछक्कं बंधो णउदिचउक्केवि अडवीसं ॥७७७॥

छव्वीसे तिगिणउदे उणतीसं बंध दुगखणउदीए।
आदिमछक्कं एवं अडसीदितिए ण अडवीसं॥७७८॥
सगवीसे तिगिणउदे णववीसदुबंधयं दुणउदीए।
आदिमछण्णउदितिए एयं अडवीसयं णत्थि॥७७९॥
अडवीसे तिगिणउदे उणतीसदु दुजुदणउदिणउदितिए।
बंधो सगवीसं वा णउदीए अत्थि अडवीसं॥७८०॥
अडवीसमिवुणतीसे तीसे तेणउदिसत्तगे बंधो।
णववीसेक्कत्तीसं इगिणउदी अट्ठवीसदुगं॥७८१॥
तेण दुणउदे णउदे अडसीदे बंधमादिमं छक्कं।
चुलसीदेवि य एवं णवरि ण अडवीसबंधपदं॥७८२॥
तीसुदयं विगितीसे सजोग्गबाणउदिणउदितियसत्ते।
उवसंतचउक्कुदये सत्ते बंधस्स ण वियारो॥७८३॥

अर्थ – २१ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए ९३-९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ व ३० प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान, ९२ व ९० प्रकृतिक सत्त्व होनेपर आदि के ६ बन्धस्थान हैं, ८८ आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका सत्त्व होनेपर आदिके ६ बन्धस्थानोंमें से २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ५ स्थान हैं तथा २४ प्रकृतिके उदयके रहते हुए ९२ व ९० एवं ८८, ८४ व ८२ प्रकृतिरूप तीन ऐसे ५ सत्त्वस्थानोंमें भी उपर्युक्त ५ बन्धस्थान हैं॥७७५-७६॥

२५ प्रकृतिक उदयसहित ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ व ३० प्रकृतिक दो बन्धस्थान, ९२ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर आदिके ६ बन्धस्थान, ९० आदि (९०-८८-८४-८२) प्रकृतिरूप चारस्थानों का सत्त्व होनेपर पूर्वोक्त आदिके ६ बन्धस्थानों में से २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष ५ बन्धस्थान हैं॥७७७॥

(मनुष्यगतियुत) २६ प्रकृतिक स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर (देवगति व तीर्थङ्करयुत) २९ प्रकृतिरूप बन्धस्थान, ९२ व ९० प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २३ आदि प्रकृतिक छह बन्धस्थान, ८८ आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानों का सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक स्थानबिना शेष पाँच बन्धस्थान हैं॥७७८॥

२७ प्रकृतिक स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९ आदि (२९ व ३०) प्रकृतिरूप दो बन्धस्थान, (मनुष्योंके आहारकसमुद्घातमें २७ प्रकृतिके उदयमें २९ प्रकृतिका

बन्ध, देव तथा प्रथमनरकमें ३० का बन्ध है) ९२ प्रकृति का सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थान, (आहारकसमुद्घातमें २७ प्रकृतिके उदयमें २८ प्रकृतिका बन्ध) ९० आदि प्रकृतिरूप तीन स्थानोंका सत्त्व होनेपर आदिके छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक स्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं॥७७९॥

२८ प्रकृतिरूप स्थानका उदय रहते हुए ९३ व ९१ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर २९-३० प्रकृतिके दो बन्धस्थान, ९२ प्रकृतिक और ९० आदि प्रकृतिरूप तीन ऐसे चार स्थानोंका सत्त्व होनेपर २७ प्रकृतिक उदयस्थानवत् ही यहाँ भी उदयस्थान जानना, किन्तु इतनी विशेषता है कि ९० प्रकृतिक सत्त्व में २८ प्रकृतिक बन्धस्थान है॥७८०॥

२९ प्रकृतिक उदय रहते हुए ९३-९१ व ९२-९० या ८८-८४ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर बन्धस्थान २८ प्रकृतिक उदयस्थानवत् ही जानना तथा ३० प्रकृतिका उदय रहते हुए ९३ प्रकृतिक सत्त्वमें २९ व ३१ प्रकृतिक दो बन्धस्थान हैं, ९१ प्रकृतिके सत्त्वमें नरक जानेके सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले मनुष्यके २८ व २९ प्रकृतिका बन्ध होता है॥७८१॥

३० प्रकृतिक उदय रहते हुए ९२-९० व ८८ प्रकृतिक सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान, ८४ प्रकृतिका सत्त्व होनेपर पूर्वोक्त छह बन्धस्थानोंमेंसे २८ प्रकृतिक बन्धस्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं॥७८२॥

३१ प्रकृतिक उदयके रहते हुए अपने योग्य ९२-९०-८८ या ८४ प्रकृतिक सत्त्व होनेपर ३० प्रकृतिक उदयस्थानके समान आदिके छह बन्धस्थान तथा इन छहमें से २८ प्रकृतिक स्थानबिना ५ बन्धस्थान हैं। उपशान्तकषायादि चारगुणस्थानोंमें उदय व सत्त्वस्थान तो हैं, किन्तु बन्धस्थान नहीं है सो यहाँ उपशान्तकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृतिका एवं सत्त्व ९३ आदि प्रकृतिरूप चारस्थानोंका है, क्षीणकषायगुणस्थानमें उदय ३० प्रकृति का और सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानों का है, सयोगीगुणस्थान में उदय ३० प्रकृतिक एवं सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानका, अयोगीगुणस्थानमें उदय ९ या ८ प्रकृतिका और सत्त्व ८० आदि प्रकृतिरूप चारस्थानोंका अथवा १० व ९ प्रकृतिका है।

उदय-सत्त्व को अधिकरणरूप मानकर आधेयरूप बन्धस्थान के त्रिसंयोगसम्बन्धी सन्दृष्टि–

अधिकरण			आधेय	
उदयस्थान	उदय-स्थान संख्या	संउदयस्थानगत प्रकृति संख्या का विवरण	बन्ध-स्थान संख्या	बन्धस्थानगत प्रकृतिसंख्या का विवरण
२१ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२१ प्रकृतिक	२	९२ व ९० प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२१ प्रकृतिक	३	८८-८४ व ८२ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२४ प्रकृतिक	५	९२-९०-८८-८४ व ८२	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२५ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२५ प्रकृतिक	१	९२ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२५ प्रकृतिक	४	९०-८८-८४ व ८२ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२६ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	१	२९ प्रकृतिक
२६ प्रकृतिक	२	९२ व ९० प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२६ प्रकृतिक	३	८८-८४ व ८२ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२७ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२७ प्रकृतिक	१	९२ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक

२७ प्रकृतिक	३	९०-८८ व ८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	१	९२ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९
२८ प्रकृतिक	१	९० प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२८ प्रकृतिक	३	८८ व ८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	२	९३ व ९१ प्रकृतिक	२	२९ व ३० प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	२	९२ व ९० प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
२९ प्रकृतिक	२	८८ व ८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	१	९३ प्रकृतिक	२	२९ व ३१ प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	१	९१ प्रकृतिक	२	२८ व २९ प्रकृतिक। इनमेंसे २८ का स्थान नरकगमनके सम्मुख तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाले मनुष्यके पाया जाता है।
३० प्रकृतिक	३	९२-९० व ८८ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
३० प्रकृतिक	१	८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक
३१ प्रकृतिक	३	९२-९० व ८८ प्रकृतिक	६	२३-२५-२६-२८-२९ व ३० प्रकृतिक
३१ प्रकृतिक	१	८४ प्रकृतिक	५	२३-२५-२६-२९ व ३० प्रकृतिक

३० प्रकृतिक	४	९३-९२-९१ व ९० प्रकृतिक	०	० उपशान्तकषायगुणस्थान में
३० प्रकृतिक	४	८०-७९-७८ व ७७प्र.	०	० क्षीणशान्तकषायगुणस्थान में
३०-३१ प्रकृतिक	४	८०-७९-७८ व ७७ प्रकृतिक	०	० सयोगीगुणस्थान में
९-८ प्रकृतिक	६	८०-७९-७८-७७-१० व ९ प्रकृतिक	०	० अयोगीगुणस्थान में

णामस्स य बंधादिसु दुतिसंजोगा परूविदा एवं।
सुदवणवसंतगुणगणसायरचंदेण सम्मदिणा ॥७८४॥

अर्थ – जो जैनसिद्धान्तरूपी वनको प्रफुल्लित करनेमें वसन्तऋतुके समान तथा गुणोंके समूहरूप सागरको वृद्धिंगत करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं ऐसे सम्यग्ज्ञानधारी श्री वर्धमानस्वामीने नामकर्मके बन्ध-उदय एवं सत्त्वमें द्विसंयोगी तथा त्रिसंयोगी भङ्ग (भेद) कहे हैं।

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की ''सिद्धान्तज्ञानदीपिका'' नामा हिन्दीटीका में 'स्थानसमुत्कीर्तन' नामक चतुर्थ अधिकार पूर्ण हुआ।

卐 卐 卐

अथ बन्धप्रत्यय अधिकार

आगे प्रत्यय अर्थात् कर्मबन्धके कारणभूत अधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हुए निर्विघ्नपरिसमाप्तिके लिए आचार्य अपने इष्टगुरुको नमस्कार करते हैं–

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥

अर्थ – मैं (नेमिचन्द्राचार्य) अभयनन्दि मुनीश्वर को; शास्त्रसमुद्रके पारगामी इन्द्रनन्दि गुरु को तथा उत्कृष्ट वीरनन्दिस्वामि को जो कि मेरे गुरु हैं, उनको नमस्कार करके कर्मप्रकृतियों के प्रत्यय अर्थात् बन्धकारणों को कहूंगा।

अब प्रत्यय के भेदों का कथन करते हैं–

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥[1]

अर्थ – मिथ्यात्व-अविरति-कषाय और योग, ये चार मूल (प्रत्यय) आस्रव हैं (क्योंकि इनके द्वारा कार्माण स्कंध कर्मरूपता को प्राप्त होते हैं) तथा इनके उत्तरभेद क्रमसे ५-१२-२५ और १५ जानने। इसप्रकार आस्रवों के उत्तरभेद ५७ हैं।

विशेषार्थ – "प्रत्ययशब्दोऽनेकार्थः। क्वचिज्ज्ञाने वर्तते, यथा अर्थाभिधान प्रत्यया इति। क्वचिच्छपथे वर्तते, यथा परद्रव्यहरणादिषु सत्युपालम्भे प्रत्ययोऽनेन कृत इति। क्वचिद्धेतो वर्तते यथा अविद्याप्रत्ययाः संस्कारा इतिः।" प्रत्ययशब्दके अनेक अर्थ हैं। कहीं पर ज्ञानके अर्थमें वर्तता है जैसे अर्थ, शब्द, प्रत्यय (ज्ञान)। कहीं पर शपथके अर्थमें वर्तता है। जैसे– परद्रव्यके चुराये जाने के प्रसंगमें दूसरोंके द्वारा उलाहना मिलने पर उसके द्वारा शपथ खाई गई। कहींपर हेतुके अर्थमें वर्तता है, जैसे– अविद्या के हेतु संस्कार हैं। यहाँ पर प्रत्यय शब्दका हेतुके अर्थमें प्रयोग हुआ है। (रा.वा.१/२१) **"पच्चओ कारणं णिमित्तमिच्चणत्थंतरं"** (ध. पु. १२ पृ. २७६) प्रत्ययका अर्थ आस्रव नहीं हो सकता, क्योंकि आस्रव का लक्षण भिन्न है जो इसप्रकार है– **"पुण्यपापलक्षणस्य कर्मण आगमनद्वारमास्रव इत्युच्यते। आस्रव इवास्रवः। क उपमार्थः? यथा महोदधेः**

१. प्रा.पं.सं.पृ. १०५ गाथा ७७।

सलिलमापगामुखैरहरहरापूर्यते तथा मिथ्यादर्शनादिद्वारानुप्रविष्टैः कर्मभिरनिशमात्मा समापूर्यत इति मिथ्यादर्शनादिद्वारमास्रवः।" (त. रा. वा. १/१४/१६) अर्थात् पुण्य-पापरूप कर्मोंके आगमनके द्वार को आस्रव कहते हैं। जैसे नदियोंके द्वारा समुद्र प्रतिदिन जलसे भरा जाता है वैसे ही मिथ्यादर्शनादि स्रोतोंसे आत्मामें कर्म आते हैं। जैसे आस्रवके द्रव्यास्रव-भावास्रव तथा साम्परायिक व ईर्यापथ आस्रव, ऐसे भेद हैं वैसे प्रत्ययके भेद नहीं हैं। वह प्रत्यय मिथ्यात्वादिके भेदसे चारप्रकारका है। इसके उत्तरभेद क्रमसे मिथ्यात्वके एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञानरूप पाँच भेद हैं; अविरतिके ५ इन्द्रिय व मनको वश नहीं करना तथा पंचस्थावर व त्रसकायिक जीवोंकी रक्षा नहीं करना (दया नहीं पालना) ऐसे ६+६=१२ भेद; कषायके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलनरूप क्रोध-मान-माया व लोभ ये १६ कषाय तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय व जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और पुरुषवेद ये ९ नोकषाय इसप्रकार २५ भेद; योगके ४ मनोयोग (सत्य-असत्य-उभय-अनुभयरूप), ४ वचनयोग (सत्य-असत्य-उभय-अनुभयरूप), ७ काययोग (औदारिक-औदारिकमिश्र, वैक्रियक-वैक्रियकमिश्र, आहारक-आहारकमिश्र और कार्मणरूप) ऐसे ५+१२+२५+१५=५७ भेद प्रत्ययके जानना।

अथानन्तर मूलप्रत्ययों को गुणस्थानों में कहते हैं–

चदुपच्चइगो बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो।
मिस्सगबिदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥७८७॥

उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं ॥७८८॥[1]

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें चारों प्रत्ययोंसे बन्ध होता है अनन्तर सासादनमिश्र व असंयत इन तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना तीनप्रत्ययोंसे बन्ध होता है, (देश अर्थात् किंचित् असंयम जहाँ है उसको दिशति-त्यागे ऐसे) देशसंयतगुणस्थानमें अढाई प्रत्यय हैं। (यहाँ विशेषता यह है कि अविरतिप्रत्यय विरतिसे मिश्रित हुआ है शेष दो प्रत्यय पूर्ण), आगे प्रमत्तसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त पाँचगुणस्थानोंमें योग व कषायरूप दो ही प्रत्यय हैं तथा उपशान्तकषायसे सयोगीगुणस्थानपर्यन्त एक योगप्रत्यय ही है। इसप्रकार सामान्यसे आठकर्मोंके प्रत्यय गुणस्थानोंमें जानने चाहिए।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. १०५ गाथा ७८-७९।

गुणस्थान की अपेक्षा चार मूलप्रत्ययसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	प्रत्यय संख्या	प्रत्ययोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।
सासादन	३	अविरति, कषाय और योग।
मिश्र	३	अविरति, कषाय और योग।
असंयत	३	अविरति, कषाय और योग।
देशसंयत	२ $\frac{१}{२}$	$\frac{\text{अविरति}}{२}$ कषाय और योग। (क्योंकि यहाँ अविरति-विरति का मिश्रितरूप है)
प्रमत्त	२	कषाय और योग
अप्रमत्त	२	कषाय और योग
अपूर्वकरण	२	कषाय और योग
अनिवृत्तिकरण	२	कषाय और योग
सूक्ष्मसाम्पराय	२	कषाय और योग
उपशांतकषाय	१	योग
क्षीणकषाय	१	योग
सयोगकेवली	१	योग
अयोगकेवली	०	०

अब उत्तरप्रत्ययों को गुणस्थान में कहते हैं–

पणवण्णा पण्णासा तिदाल छादाल सत्ततीसा य।
चदुवीसा बावीसा बावीसमपुव्वकरणोत्ति ॥७८९॥

थूले सोलसपहुदी एगूणं जाव होदि दसठाणं।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव ॥७९०॥[१]

१. प्रा.पं.सं.पृ. १०६ गाथा ८०।

अर्थ – मिथ्यात्वादिगुणस्थानों में क्रमसे ५५-५०-४३-४६-३७-२४-२२ व २२ आगे अनिवृत्तिकरणमें १६-१५-१४-१३-१२-११ व १०, सूक्ष्मसाम्परायमें १०, उपशांतकषायमें ९, क्षीणकषायगुणस्थानमें ९ और सयोगकेवलीके ७ प्रत्यय हैं।

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोग नहीं होनेसे ५५, सासादनगुणस्थानमें ५ मिथ्यात्व भी कम हो जानेसे (५५-५) ५०; मिश्रगुणस्थानमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग और अनन्तानुबन्धीचतुष्क का अभाव होनेसे (५०-७) ४३; असंयतगुणस्थानमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग ये तीन योग मिलानेसे (४३+३) ४६ एवं औदारिकमिश्र, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र, कार्मण, अप्रत्याख्यानकषायचार तथा त्रसहिंसारूप अविरति इन ९ बिना (४६-९) ३७ प्रत्यय देशसंयत गुणस्थानमें हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें ११ अविरति और प्रत्याख्यानकषाय ४ इन १५ बिना (३७-१५) २२ तथा इनमें आहारकद्विक मिलनेसे २४ प्रत्यय; अप्रमत्तगुणस्थानमें और अपूर्वकरणगुणस्थानमें आहारकद्विकका अभाव है अतः (२४-२) २२ प्रत्यय; अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें हास्यादि ६ नोकषाय कम होनेसे (२२-६) १६, नपुंसकवेदको कम करनेपर (१६-१) १५, स्त्रीवेद भी नहीं होनेपर (१५-१) १४, पुरुषवेदका अभाव हो जानेपर (१४-१) १३, सञ्ज्वलनक्रोध कम हो जानेसे (१३-१) १२, सञ्ज्वलनमान कम होनेसे (१२-१) ११ तथा सञ्ज्वलनमाया कम करनेपर (११-१) १० प्रत्यय हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें भी १० ही प्रत्यय हैं, क्योंकि यहाँ अभी सूक्ष्मलोभ विद्यमान है, उपशान्त व क्षीणकषायगुणस्थानोंमें सूक्ष्मलोभका भी अभाव हो गया अतः (१०-१) ९ प्रत्यय एवं सयोगकेवलीके सत्य व अनुभयमन, सत्य व अनुभयवचन, औदारिक-औदारिकमिश्र तथा कार्मणकाययोग ये ७ प्रत्यय हैं, अयोगकेवलीके प्रत्ययोंका अभाव है।

अब उपर्युक्त प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति तथा अनुदयका कथन करनेके लिए अन्य ग्रन्थकी ७ गाथाएँ यहाँ उद्धृत करते हुए सर्वप्रथम व्युच्छित्ति का कथन किया जाता है–

पण चदु सुण्णं णवयं पण्णारस दोण्णि सुण्ण छक्कं च।
एक्केक्कं दस जाव य एक्कं सुण्णं च चारि सग सुण्णं॥१॥

दोण्णि य सत्त य चोद्दसणुदयेवि एयार वीस तेतीसं।
पणतीस दुसिगिदालं सत्तेत्तालट्ठदाल दुसु पण्णं॥२॥

अर्थ – मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे ५-चार-शून्य-९-१५-२-शून्य और ६ तथा आगे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १६ से १० प्रत्यय स्थानतक क्रमसे १-१ प्रत्ययकी व्युच्छित्ति एवं सूक्ष्मसाम्परायसे सयोगीगुणस्थानतक १-शून्य-४ व शून्यरूप प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है। मिथ्यादृष्टि

आदि १३ गुणस्थानों में अनुदयरूप उत्तर प्रत्यय क्रम से २-७-१४-११-२०-३३-३५-३५-४१-४७-४८-४८-५० जानने चाहिए।

मिच्छे पणमिच्छत्तं पढमकसायं तु सासणे मिस्से।
सुण्णं अविरदसम्मे बिदियकसायं विगुव्वदुग कम्मं ॥३॥

ओरालमिस्स तसवह णवयं देसम्मि अविरदेक्कारा।
तदियकसायं पण्णर पमत्तविरदम्मि हारदुगछेदो ॥४॥

सुण्णं पमादरहिदेऽपुव्वे छण्णोकसायवोच्छेदो।
अणियट्टिम्मि य कमसो एक्केक्कं वेदतियकसायतियं ॥५॥

सुहुमे सुहुमो लोहो सुण्णं उवसंतगेसु खीणेसु।
अलीयुभयवयणमण चउ जोगिम्मि य सुणह वोच्छामि ॥६॥

सच्चाणुभयं वयणं मणं च ओरालकायजोगं च।
ओरालमिस्स कम्मं उवयारेणेव सब्भावो ॥७॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें ५ मिथ्यात्वरूप प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है, सासादनगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्करूप चार प्रत्ययोंकी, मिश्रगुणस्थानमें प्रत्ययव्युच्छित्तिका अभाव है, असंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषायचतुष्ककी तथा वैक्रियिककाय-वैक्रियिकमिश्रकाय, औदारिकमिश्रकाय व कार्मणकाययोग, त्रसहिंसा इन ९ प्रत्ययोंकी, देशसंयतगुणस्थानमें ११ अविरति व प्रत्याख्यानावरणकषाय चार इसप्रकार १५ प्रत्ययोंकी, प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें आहारकद्विकरूप प्रत्ययकी, अप्रमत्तगुणस्थानमें शून्य, अपूर्वकरणमें हास्यादि ६ नोकषाय, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्रमसे एक-एक करके तीनवेद और तीन सञ्ज्वलनकषायोंकी (बादर लोभ), सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सूक्ष्मलोभकी, उपशान्तकषायमें शून्य, क्षीणकषायगुणस्थानमें असत्य व उभयवचनयोग और दो मनोयोग ऐसे चार प्रत्ययोंकी तथा सयोगकेवलीके सत्य व अनुभय वचनयोग, सत्य व अनुभय मनोयोग, औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग इन सात प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति होती है।

गुणस्थानकी अपेक्षा ५७ उत्तरप्रत्ययोंके उदय-अनुदय-व्युच्छित्तिसम्बन्धी संदृष्टि-

गुणस्थान	उदयागत प्रत्यय-संख्या	अनुदयरूप प्रत्यय-संख्या	अनुदयरूप प्रत्ययसंख्या का विशेष विवरण	व्युच्छित्तिरूप प्रत्यय	व्युच्छित्तिरूप प्रत्यय-संख्या का विवरण संख्या
मिथ्यात्व	५५	२	आहारक-आहा.मिश्रकाययोग	५	५ (मिथ्यात्व)
सासादन	५०	७	उपर्युक्त २ योग एवं ५ मिथ्यात्व	४	४ (अनन्तानुबन्धीकी चारकषाय)
मिश्र	४३	१४	उपर्युक्त ७+४ अनंतानुबन्धी कषाय+औदा.मिश्र+वैक्रि मि.+कार्मणकाययोग	०	-
असंयत	४६	११	पूर्वोक्त ७+४ अनन्तानुबंधी-कषाय	९	४ अप्रत्याख्यानकषाय+ वैक्रियिक+वैक्रि.मिश्र+ औदा.+औदा.मिश्र+ कार्मण+त्रसहिंसा-अविरति
देशसंयत	३७	२०	उपर्युक्त ११+४ अप्रत्याख्यान कषाय+औदा.मिश्र+वैक्रि. काय+वैक्रि.मिश्र+कार्मण+ त्रसहिंसा अविरति	१५	११ अविरति+४ प्रत्याख्यान-कषाय
प्रमत्त	२४	३३	उपर्युक्त २०+११ अविरति+ ४ प्रत्याख्यान-आहारक एवं आहारक मिश्रकाय	२	आहारककाय+आहारक-मिश्रकाययोग
अप्रमत्त	२२	३५	उपर्युक्त ३३+आहारक+ आहारकमिश्र	०	
अपूर्वकरण	२२	३५	उपर्युक्त ३३+आहारक+ आहारकमिश्र	६	हास्यादि नोकषाय।
अनिवृत्तिकरण भाग १	१६	४१	उपर्युक्त ३५+६ हास्यादि	१	१ (नपुंसकवेद)

अनिवृत्तिकरण २रा भाग	१५	४२	उपर्युक्त ४१+१ नपुंसकवेद	१	१ स्त्रीवेद
अनिवृत्तिकरण ३रा भाग	१४	४३	उपर्युक्त ४२+१ स्त्रीवेद	१	१ पुरुषवेद
अनिवृत्तिकरण ४था भाग	१३	४४	उपर्युक्त ४३+१ पुरुषवेद	१	संज्वलनक्रोध
अनिवृत्तिकरण ५वाँ भाग	१२	४५	उपर्युक्त ४४+१ संज्व.क्रोध	१	संज्वलनमान
अनिवृत्तिकरण ६ठा भाग	११	४६	उपर्युक्त ४५+१ संज्व.मान	१	संज्वलनमाया
अनिवृत्तिकरण ७वाँ भाग	१०	४७	उपर्युक्त ४६+१ संज्व.माया	१	स्थूललोभ (किन्तु सूक्ष्म-लोभ अभी शेष है)
सूक्ष्मसाम्पराय	१०	४७	उपर्युक्त	१	सूक्ष्मलोभ की
उपशांतकषाय	९	४८	उपर्युक्त ४७+सूक्ष्मलोभ	०	
क्षीणकषाय	९	४८	उपर्युक्त ४७+सूक्ष्मलोभ	४	२(असत्य व उभय मनोयोग) + २(असत्य व उभय वचनयोग)
सयोगकेवली	७	५०	उपर्युक्त ४८+४ असत्य व उभय मनोयोग व वचनयोग= ५२, ५२-२ औदारिकमिश्र व कार्मण	७	७ (सत्य व अनुभयरूप २ मनोयोग+सत्य व अनुभयरूप २ वचनयोग+औदारिक+औदारिकमिश्र+कार्मण-काययोग)

यहाँ प्रकरणप्राप्त चतुर्दशमार्गणाओं में बन्धप्रत्ययों के उत्तरभेदों का प्राकृतपंचसंग्रह के 'शतक' अधिकार से १७ गाथाएँ उद्धृत करके निरूपण करते हैं–

सर्वप्रथम गतिमार्गणा में बन्धप्रत्यय का कथन करते हैं–

ओरालिय आहारदुगूणा हेऊ हवंति सुर-णिरए।
आहारय-वेउव्वदुगूणा सव्वे वि तिरिएसु ॥१॥

वेउव्वजुयलहीणा मणुए पणवण्ण पच्चया होंति।
गइचउरएसु एवं सेसासु वि ते मुणेदव्वा ॥२॥

अर्थ – नरकगतिमें औदारिकद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहबिना शेष (५७-६) ५१ बन्ध प्रत्यय; देवगतिमें उपर्युक्त छहमें से स्त्री व पुरुषवेद को कम करके और नपुंसकवेद मिलानेपर इन पाँचबिना (५७-५) ५२ बन्धप्रत्यय; तिर्यञ्चगतिमें वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विकबिना शेष सभी (अर्थात् ५७-४) ५३ बन्धप्रत्यय तथा मनुष्यगतिमें वैक्रियिकद्विकबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय होते हैं।

इन्द्रियमार्गणा व कायमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं–

मिच्छत्ताइचउट्ठय बारह-जोगूणिगिंदिए मोत्तुं।
कम्मोरालमसुअं खरु ब्भणंतजुआ दु ते वियले ॥३॥

तस पंचक्खे सव्वे थावरकाए इगिंदिए जेम।

अर्थ – इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्वादि चार मूलप्रत्ययोंके ५७ भेदोंमेंसे औदारिकद्विक (औदारिक-औदारिकमिश्र) एवं कार्मणकाययोगबिना शेष १२ योगोंको और (उपलक्षणसे ग्रहण किये गए) रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र व मनसम्बन्धी अविरति तथा स्त्री-पुरुषवेद कमकरके (५७-१९(१२+५+२)=३८) बन्धप्रत्यय एकेन्द्रियोंमें होते हैं। द्वीन्द्रियोंमें रसनेन्द्रिय अविरति व अनुभयवचनयोगको इन ३८ प्रत्ययोंमें मिलानेपर ४० प्रत्यय होते हैं, त्रीन्द्रियजीवोंमें घ्राणेन्द्रियसम्बन्धी अविरतिको मिलानेसे ४१ प्रत्यय तथा चतुरिन्द्रियजीवोंमें चक्षुरिन्द्रियकी अविरति मिलानेपर ४२ प्रत्यय हैं, पञ्चेन्द्रिय और त्रसजीवोंमें सर्व (५७) प्रत्यय एवं स्थावरकायिकजीवोंमें एकेन्द्रियवत् ३८ बन्धप्रत्यय हैं।

विशेषार्थ – शङ्का – एकेन्द्रियजीव त्रसहिंसा कैसे कर सकते हैं?

समाधान – मनुष्योंकी हिंसा करनेवाले वृक्ष तथा मच्छर आदिकी हिंसा करने वाले पुष्प पाए जाते हैं। अतः एकेन्द्रियजीवोंके द्वारा त्रसहिंसा संभव है।

योग-वेद और कषायमार्गणा में बन्धप्रत्ययों का कथन करते हैं–

चोद्दस जोग विहीणा तेरस जोएसु ते णियं मोत्तुं ॥४॥

संजलण णोकसाया संढित्थी वज्ज सत्त णिय जोगा।
आहारदुगे हेदू पुरिसे सव्वे वि णादव्वा ॥५॥

इत्थि णउंसयवेदे आहारदुगूणया होंति।
कोहाइकसाएसुं कोहाइ इयर-दुबालस-विहीणा ॥६॥

अर्थ – आहारक व आहारकमिश्रकाययोगको छोड़कर शेष १३ योगोंमें निजनिज योगके बिना शेष १४ योगोंसे रहित (५७-१४) ४३ बन्धप्रत्यय होते हैं (मिथ्यात्व ५, अविरति १२, कषाय २५ और १ स्वकीय योग ये ४३)। आहारक-आहारकमिश्रकाययोगमें चारों सञ्ज्वलनकषाय, नपुंसक व स्त्रीवेद बिना ७ नोकषाय एवं स्वकीययोग (४+७+१) ऐसे १२ प्रत्यय होते हैं। पुरुषवेदीजीवोंमें स्त्री व नपुंसकवेद बिना ५५, स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोग तथा दो प्रतिपक्षी वेद बिना शेष (५७-४)[1] ५३ प्रत्यय होते हैं। विवक्षित क्रोधादिकषायोंमें अपनी चार कषायके अतिरिक्त अन्य १२ कषायोंको कम करनेपर शेष (५७-१२) ४५ प्रत्यय होते हैं।

अब ज्ञानमार्गणामें बन्ध प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं–

मदि सुअअण्णाणेसु आहारदुगूणया मुणेदव्वा।
मिस्सतियाहारदुअं वज्जित्ता सेसया दु वेभंगे ॥७॥

मदि-सुअ-ओहिदुगेसुं अणचदु-मिच्छत्तपंचहि विहीणा।
हस्सादि छक्क पुरिसो संजलण मण-वचि चउर उरालं ॥८॥

मणपज्जे केवलदुवे मण-वचि पढमंत कम्म उरालदुगं।

अर्थ – मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोगके बिना शेष (५७-२) ५५ प्रत्यय; विभङ्गज्ञानियोंमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र व कार्मणकाययोगबिना शेष (५५-३) ५२ प्रत्यय; मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी व अवधिदर्शनी जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषायचतुष्क और पाँच मिथ्यात्व इन ९ बिना (५७-९) ४८ प्रत्यय; मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें हास्यादि ६ नोकषाय, पुरुषवेद, संज्वलनकषाय ४, मनोयोग ४, वचनयोग ४ और औदारिककाययोग (६+१+४+४+४+१)

१. ध.पु. ८ पृ. २६१, २६३, २६४.

ये २० बन्धप्रत्यय हैं तथा केवलज्ञानी व केवलदर्शनी जीवोंमें आदि व अन्तिम मनोयोग और वचनयोग (सत्य-अनुभय मन व वचनयोग), औदारिक-औदारिकमिश्र व कार्मणकाययोग इसप्रकार (२+२+३) ७ योगरूप बन्धप्रत्यय हैं।

आगे संयममार्गणासम्बन्धी बन्धप्रत्यय कहते हैं–

संजलण णोकसाया मण-वचि-ओराल आहारदुगं ॥९॥

सामाइय छेएसुं आहारदुगूणया दु परिहारे।
मण-वचि-अट्ठोरालं सुहुमे संजलण लोहंते ॥१०॥

कम्मोरालदुगाइं मणवचि चउरा य होंति जहखाए।
असंजमम्मि सव्वे आहारदुगूणया णेया ॥११॥

अणमिच्छ बिदिय तसवह वेउव्वाहार जुयलाइं।
ओराल मिस्सकम्मा तेहिं विहीणा दु होंति देसम्मि ॥१२॥

अर्थ – सामायिक-छेदोपस्थापना संयमीजीवोंमें चार सञ्ज्वलनकषाय, ९ नोकषाय, ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारक व आहारकमिश्रकाययोग ये (४+९+४+४+३) २४ बन्धप्रत्यय हैं। आहारक-आहारकमिश्रकाययोगबिना शेष (२४-२) २२ प्रत्यय परिहारविशुद्धिसंयमीके होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयममें मनोयोग ४, वचनयोग ४, सञ्ज्वलनसूक्ष्मलोभ, औदारिककाययोग (४+४+१+१) ये १० बन्धप्रत्यय हैं; यथाख्यातसंयममें मनोयोग ४, वचनयोग ४, औदारिक-औदारिकमिश्र व कार्मणकाययोग (४+४+३) ये ११ बन्धप्रत्यय होते हैं। असंयमी जीवोंमें आहारक व आहारकमिश्रकाययोगबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय होते हैं; देशसंयमीजीवोंमें (अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, त्रस अविरति, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र, आहारक व आहारकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग, अप्रत्याख्यानकषाय ४ इन) २० के बिना शेष (५७-२०) ३७ बन्धप्रत्यय हैं।

अब लेश्या-भव्य एवं दर्शनमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं–

तेज-तिय चक्खुजुगले सव्वे हेऊ हवंति भव्वे य।
किण्हादितियाऽभव्वे आहारदुगूणया णेया ॥१३॥

अर्थ – तेज त्रिक (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्यामें सभी (५७) प्रत्यय हैं, कृष्ण आदि तीन अशुभलेश्या (कृष्ण-नील-कपोत) में आहारक-आहारकमिश्रकाययोगबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय हैं।

चक्षु व अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें भी सभी (५७) प्रत्यय हैं, अवधिदर्शन व केवलदर्शनका कथन ज्ञानमार्गणामें क्रमसे अवधिज्ञान व केवलज्ञानके साथ कर चुके हैं। भव्यजीवोंमें सभी (५७) प्रत्यय, अभव्यजीवोंके आहारक-आहारकमिश्रबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय हैं।

आगे सम्यक्त्वमार्गणा में बन्धप्रत्यय कहते हैं–

अणमिच्छाहारदुगूणा सव्वे उवसमे णेया।
आहारजुगल जुत्ता वेदय खइयम्मि ते होंति ॥१४॥

मिच्छाहारदुगूणा सासणे मिच्छम्मि आहारदुगूणा।
अण-मिच्छ-मिस्स जोगाहारदुगूणा हवंति मिस्सम्मि ॥१५॥

अर्थ – औपशमिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, आहारक-आहारकमिश्रकाययोग इन (५+४+२) ११ के बिना शेष (५७-११) ४६ प्रत्यय हैं, वेदकसम्यग्दृष्टिके और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके आहारकद्विक (आहारक-आहारकमिश्रकाय) योग होता है अतः इन दोनोंमें पूर्वोक्त ४६ में दो मिलानेसे (४६+२) ४८ प्रत्यय होते हैं। सासादनजीवोंमें मिथ्यात्व ५ और आहारक-आहारकमिश्रयोगबिना (५७-७) ५० बन्धप्रत्यय होते हैं, मिथ्यादृष्टिजीवोंमें आहारक-आहारकमिश्रयोगबिना (५७-२) ५५ प्रत्यय; सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धीकषाय ४, मिथ्यात्व ५, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण, आहारक-आहारकमिश्रकाययोग इन १४ बिना (५७-१४) ४३ प्रत्यय होते हैं।

आगे सञ्ज्ञीमार्गणामें बन्धप्रत्ययोंका निरूपण करते हैं–

मिच्छादिचउक्केयार जोगूणा असण्णिए मोत्तुं।
भासंतोरालदुअं कम्मं सण्णिम्मि सव्वे वि ॥१६॥

अर्थ – असञ्ज्ञीजीवोंमें चार मूलप्रत्ययके ५७ भेदोंमें से ११ योग (मनोयोग ४, ३ वचनयोग, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारक-आहारकमिश्रकाययोग) तथा (उपलक्षणसे ग्रहणकर) मन अविरतिको कम करनेपर (५७-१२) ४५ बन्धप्रत्यय होते हैं। सञ्ज्ञीजीवोंके सभी (५७) प्रत्यय हैं।

आगे आहारमार्गणामें बन्धप्रत्यय कहते हैं–

आहारे कम्मूणा इयरे कम्मूण जोय रहिया ते।
एवं तु मग्गणासुं उत्तरहेदू जिणोहिं णिद्दिट्ठा ॥१७॥

अर्थ – आहारकजीवोंमें कार्मणकाययोगबिना शेष (५७-१) ५६ बन्धप्रत्यय, अनाहारकजीवोंमें कार्मणकाययोगके बिना शेष १४ योगोंको कम करनेपर (५७-१४) ४३ बन्धप्रत्यय होते हैं। इसप्रकार श्रीजिनेन्द्रभगवान द्वारा मार्गणाओंमें उत्तरप्रत्ययोंका निर्देश किया गया है।[१]

अथानन्तर प्रत्ययोंको विशेषतासे कहनेके लिए स्वयं नेमिचन्द्र आचार्य इस अधिकारके गाथासूत्र कहते हैं–

अवरादीणं ठाणं ठाणपयारा पयारकूडा य।
कूडुच्चारणभंगा पंचविहा होंति इगिसमये ॥७९१॥

अर्थ – जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टस्थान, स्थानोंके प्रकार, कूटप्रकार, कूटोच्चारण और भङ्ग इसप्रकार एक समयमें प्रत्ययोंके पाँचप्रकार होते हैं।

आगे गुणस्थानोंमें प्रत्ययस्थानोंको कहते हैं–

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हं पि।
अट्ठ य चोद्दस पणयं सत्त तिये दुति दुगेगमेगमदो ॥७९२॥[२]

अर्थ – एक जीवके एककालमें होनेवाले प्रत्ययोंकी संख्याको स्थान कहते हैं। ये स्थान मिथ्यादृष्टिआदि गुणस्थानोंमें क्रमसे इसप्रकार हैं– मिथ्यादृष्टिके जघन्यस्थान १० प्रत्ययका, मध्यमस्थान एक-एक प्रत्यय अधिक करके ११ से १७ प्रत्ययरूप उत्कृष्टके बीचके स्थान तथा १८ प्रत्ययका उत्कृष्टस्थान है। अर्थात् मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक जीवके एक ही समयमें ५७ प्रत्ययोंमेंसे जघन्यस्थानतो १० प्रत्ययरूप, मध्यमस्थान ११-१२-१३-१४-१५-१६ या १७ प्रत्ययोंका तथा उत्कृष्टस्थान १८ प्रत्ययका है। सासादनगुणस्थानमें जघन्यस्थान १० प्रत्ययरूप मध्यमस्थान इसीप्रकार एक-एक प्रत्यय अधिकरूप १६ प्रत्ययपर्यन्त एवं १७ प्रत्ययका स्थान उत्कृष्ट है। मिश्रगुणस्थानमें जघन्यस्थान ९ प्रत्ययका, मध्यमस्थान ९ से एक-एक प्रत्यय अधिक १५ प्रत्ययपर्यन्त और उत्कृष्टस्थान १६ प्रत्ययका है। 'द्वयोरपि च' इस वचनसे असंयतगुणस्थानमें भी मिश्रगुणस्थानवत् ही कथन है। देशसंयतगुणस्थानमें जघन्यस्थान आठ प्रत्ययका मध्यमस्थान एक-एक प्रत्यय अधिक १३ प्रत्ययपर्यन्त तथा उत्कृष्टस्थान १४ प्रत्ययका है। प्रमत्त-अप्रमत्त और अपूर्वकरण, इन तीनगुणस्थानोंमें प्रत्येकके जघन्यस्थान ५ प्रत्ययका, मध्यमस्थान ६ प्रत्ययका और उत्कृष्टस्थान ७ प्रत्ययका है। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जघन्यस्थान २

---

१. गाथा ७९० के बाद मार्गणाओंमें बन्धप्रत्ययोंका निरूपण करनेके लिए जो १७ गाथाएँ कही गई हैं वे पञ्चसंग्रह (प्राकृत) के शतक अधिकारकी ८४-१०० पर्यन्तकी गाथाएँ हैं। प्रकरणवश उन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है।

२. यह गाथा प्रा.पं.सं.पृ. ११३ पर भी है।

प्रत्ययका, मध्यमस्थान नहीं है, उत्कृष्टस्थान ३ प्रत्ययका है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें जघन्यादि भेदबिना २ प्रत्ययका एक ही स्थान है, उपशान्तकषायादिगुणस्थानोंमें जघन्यादि भेदबिना एक-एक ही स्थान है एवं अयोगीगुणस्थानमें शून्य है।

गुणस्थानोंकी अपेक्षा जघन्य-मध्यम व उत्कृष्टस्थानसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मिथ्यात्व	सासादन	मिश्र	असंयत	देशसंयत	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति.	सूक्ष्मसाम्प.	उपशान्त-कषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली	अयोगकेवली
बन्धप्रत्ययके जघन्यस्थान	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	०	०	०	०	०
बन्धप्रत्ययोंके मध्यमस्थान	११ से १७	१५ से १६	१० से १५	१० से १५	९ से १३	६	६	६	०	०	०	०	०	०
बंधप्रत्ययोंके उत्कृष्टस्थान	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

अब उपर्युक्त प्रत्ययस्थानोंके प्रकारोंका कथन करते हैं–

एक्कं च तिण्णि पंच य हेट्ठुवरीदो दु मज्झिमे छक्कं।
मिच्छेठाणपयारा इगिदुगमिदरेसु तिण्णि देसोत्ति ॥७९३॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानके ९ स्थानोंमें से १०-११ व १२ प्रत्ययरूप कूट तीन अधस्तन और १८-१७ व १६ प्रत्ययरूप कूट तीन उपरितनस्थानोंमें तो क्रमसे १-३ व ५ कूट भेद हैं तथा १३-१४ व १५ प्रत्ययरूप कूट मध्यवर्ती तीनस्थानोंके ६-६ भेद हैं; सासादनसे देशसंयतगुणस्थानपर्यन्त प्रथम व अन्तिमस्थान कूट १-१ प्रकार, द्वितीय कूट और द्विचरमस्थान कूट २-२ प्रकार तथा द्वितीय व द्विचरमस्थानके मध्यवर्ती जो स्थान कूट हैं वे तीन-तीन प्रकारके हैं; प्रमत्तसे सयोगीगुणस्थानपर्यन्त सभीस्थान कूट एक-एक प्रकारके ही हैं।

प्रत्ययस्थानों के प्रकारसम्बन्धी सन्दृष्टि –

गुणस्थान		प्रत्ययरूप स्थान संख्या गुणस्थानमें									कुलजोड़
मिथ्यात्व	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	९
कूट	प्रकार	१	३	५	६	६	६	५	३	१	३६
सासादन	स्थान	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
मिश्र	स्थान	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
असंयत	स्थान	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०	८
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	३	२	१	×	१८
देशसंयत	स्थान	८	९	१०	११	१२	१३	१४	०	०	७
कूट	प्रकार	१	२	३	३	३	२	१	×	×	१५
प्रमत्त	स्थान	५	६	७	×	×	०	०	०	०	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	०	×	×	०	×	३
अप्रमत्त	स्थान	५	६	७	×	×	०	०	×	०	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	०	×	×	०	०	३
अपूर्वकरण	स्थान	५	६	७	×	०	०	०	×	×	३
कूट	प्रकार	१	१	१	०	×	०	०	०	०	३
अनिवृत्तिकरण	स्थान	२	३	०	०	०	×	×	×	०	२
कूट	प्रकार	१	१	०	×	०	०	०	०	०	२
सूक्ष्मसाम्पराय	स्थान	२	०	×	०	×	०	०	०	×	१
कूट	प्रकार	१	०	०	०	०	×	०	×	०	१
उपशांतकषाय	स्थान	१	×	०	×	×	०	×	०	×	१
कूट	प्रकार	१	०	×	०	०	×	०	×	०	१
क्षीणकषाय	स्थान	१	०	०	०	×	०	०	०	०	१
कूट	प्रकार	१	×	०	×	०	×	×	०	×	१
सयोगकेवली	स्थान	१	०	×	०	×	०	०	×	०	१
कूट	प्रकार	१	०	०	×	०	०	०	०	×	१

नोट – उपर्युक्त सन्दृष्टि में स्थान तो ५५ और उनके कूट प्रकार १२० बताये गये हैं।

अब उपर्युक्त स्थानप्रकार को जाननेके लिए कूटप्रकारों का कथन करते हैं–

भयदुगरहियं पढमं एक्कदरजुदं दुसहियमिदि तिण्हं।
सामण्णा तियकूडा मिच्छा अणहीणतिण्णिवि य ॥७९४॥

अर्थ – भय-जुगुप्सारहित प्रथम, भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकसहित द्वितीय अथवा भय-जुगुप्सासहित तृतीय इसप्रकार ३ कूट तो सामान्य हैं तथा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाले मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीकषायरहित ३ कूट और भी जानना।

विशेषार्थ – पाँच मिथ्यात्वमेंसे एक जीवके एक कालमें एक ही मिथ्यात्व होता है अत: नीचे पाँच मिथ्यात्व स्थापन करना इनकी सहनानीरूपसे पाँचस्थानोंपर १-१ लिखना तथा उनके ऊपर पाँचइन्द्रिय एकमन इन छहों इन्द्रियोंमेंसे एक जीवके एककालमें एक ही विषयकी प्रवृत्ति होती है अत: इनकी सहनानी छहस्थानोंपर तिर्यग्रूपसे एक-एक लिखना एवं ६ कायकी हिंसामें एक जीवके एक कालमें एक कायकी हिंसा होती है या दो कायकी हिंसा होती है अथवा तीन कायकी या चारकी अथवा पाँचकी या ६ कायकी हिंसा होती है अत: इनकी सहनानी एक-दो-तीन-चार-पाँच व छहके अङ्क क्रमसे तिर्यग्रूप ही लिखना। इनके ऊपर १६ कषायोंमें एक जीवके एक कालमें अनन्तानुबन्धी आदि चार क्रोधका, चार मानका, चार मायाका अथवा चार लोभमेंसे किन्हीं एक कषायके चार भेदोंका उदय पाया जाता है अत: इनको तिर्यग्रूप से चारजगह चार-चारके अङ्क लिखना। इनके ऊपर तीन वेदोंमेंसे एक जीवके एक कालमें एक ही वेदका उदय होता है अत: तीन जगह एक-एकका अङ्क लिखना तथा इसके ऊपर हास्य-रति या अरति-शोकमेंसे एक जीवके किसी एकयुगलका उदय होता है अत: दो स्थानोंमें २ का अङ्क लिखना, इसके ऊपर १५ योगोंमेंसे आहारकद्विक (आहारक-आहारकमिश्र मिथ्यादृष्टि के नहीं होता है) बिना १३ योगोंमें एक जीवके एक कालमें एक ही योग होता है अत: १३ जगह एकका अङ्क लिखना, इसप्रकार तीनकूट करने चाहिये। इनमें प्रथम कूट भय-जुगुप्सा इन दोनोंसे रहित होनेसे सबसे ऊपर शून्य लिखना दूसराकूट भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदयसहित है अत: सबसे ऊपर दो जगह एकका अङ्क लिखना, तृतीयकूट भय-जुगुप्सा इन दोनोंसे सहित हैं इसलिए सबसे ऊपर दोका अङ्क एक जगह लिखना। इसप्रकार ये तीनकूट बनाए सो ये तीनों कूट तो मूलकूट हैं तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाले मिथ्यादृष्टिके आवलीकालपर्यन्त अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता अत: तीनकूट अनन्तानुबन्धीरहित बनाना, अर्थात् जहाँ चार-चार कषायरूप ४ का अङ्क लिखा गया है उसके स्थानपर चार की जगह ३ का ही अङ्क लिखना, अनन्तानुबन्धीकषायकी विसंयोजना करनेवाला पर्याप्त ही है अत: अपर्याप्तसम्बन्धी औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग नहीं होनेसे १३ योगोंके स्थानपर

१० ही योग लिखना, इसप्रकार अनन्तानुबन्धीसहित और रहित ३-३ कूट मिलकर मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी ६ कूट हुए। सासादनगुणस्थानमें सामान्यरूप तीन कूटोंमें जहाँ पहले पाँच मिथ्यात्व लिखे थे उसके स्थानपर शून्य लिखनेपर तीन कूट होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीकषाय नहीं है अत: चारकषायके स्थानपर ३-३ कषाय ही लिखना तथा औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगका अभाव होनेसे १३ योगोंके स्थानपर १० ही योग लिखना ऐसे मिश्रगुणस्थानमें तीनकूट होते हैं। असंयतगुणस्थानमें पुन: औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र और कार्मण इन तीन योगोंके मिल जानेसे १३ योग लिखना, इसप्रकार यहाँ भी तीनकूट बनेंगे। देशसंयतगुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कका अभाव होनेसे कषायके स्थानमें दो-दो कषाय चार स्थानोंपर लिखना और त्रसहिंसा भी नहीं है अत: कायवधके स्थानपर ६ का अङ्क नहीं लिखना तथा औदारिकमिश्र, वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र एवं कार्मणकाययोगबिना १३ मेंसे ९ योग ही हैं अत: योगोंके स्थानपर ९ ही लिखना इसप्रकार इसगुणस्थानमें भी तीन कूट होते हैं। प्रमत्तगुणस्थान में १२ अविरति नहीं हैं अत: इन्द्रिय व कायवधके स्थानमें सर्वत्र शून्य ही लिखना। प्रत्याख्यानकषायका भी अभाव है इसलिए कषायके स्थानमें एकका अङ्क लिखना और देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी ९ योगोंमें आहारक-आहारकमिश्रकाययोग मिलने पर ११ योग हो जानेसे योगस्थानमें ११ लिखना ऐसे यहाँ भी तीनकूट बनेंगे। अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानमें आहारक-आहारकमिश्रकाय इन दो योगोंके बिना पूर्वोक्त ९ योग ही हैं अत: इन दोनों गुणस्थानोंमें योगस्थानमें ९ का अङ्क लिखकर तीन-तीन कूट बनेंगे। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके जिस-जिस भागमें वेद, कषाय और हास्यादि छह कषायका अभाव हुआ है उस-उस भागमें शून्य लिखकर एक-एक ही कूट बनेगा, क्योंकि अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सभी भागोंके कूटोंमें भय-जुगुप्साका अभाव है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सर्वकषायोंके स्थानपर तीन शून्य और एक जगह एक लिखना इसप्रकार यहाँ एक कूट बनेगा। उपशान्त व क्षीणकषायगुणस्थानमें सूक्ष्मलोभ भी नहीं अत: कषायोंके स्थानमें शून्य लिखना, इसप्रकार एक कूट बनेगा तथा सयोगीगुणस्थानमें असत्य व उभयरूप मन-वचनयोग नहीं है इसलिए योगस्थानमें सातयोग लिखकर एककूट बनना चाहिए।

उपर्युक्त कूटोंमें अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्रथमकूट पाँच मिथ्यात्वोंमेंसे एक और इन्द्रिय व षट्काय हिंसामेंसे एक इन्द्रिय व पृथ्वीकायकी हिंसा, अनन्तानुबन्धीबिना क्रोधादि चार कषायके त्रिकमेंसे एक त्रिक, वेदोंमें एक वेद, हास्य-रति व अरति-शोकमेंसे एकयुगल, पर्याप्त होनेसे १० ही योगोंमेंसे एक योग इसप्रकार सर्व मिलकर १+१+१+३+१+२+१=१० बन्धप्रत्ययरूप प्रथमकूट हैं तथा इनमेंसे पृथ्वीकायकी हिंसा घटाकर पृथ्वी आदि दोकायोंकी हिंसा मिलानेसे ११ प्रत्ययरूप कूट हैं। दो कायकी हिंसाके स्थानमें तीन कायकी हिंसा मिलानेसे १२ प्रत्ययरूप कूट हैं, तीन काय की हिंसा के स्थानमें चारकायकी हिंसा मिलानेपर १३ प्रत्ययरूपकूट हैं। चारकायकी हिंसा के स्थानमें ५ कायकी हिंसा और मिलानेसे १४ प्रत्ययरूप कूट होता है तथा ५ कायकी हिंसाके स्थानपर ६ कायकी हिंसा

मिलानेपर १५ प्रत्ययरूप कूट होता है। इसप्रकार अनन्तानुबन्धीरहित प्रथमकूटमें १० आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, दूसरेकूटमें भय-जुगुप्सामेंसे एकके मिलानेसे ११ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, तीसरेकूटमें भय व जुगुप्साके मिलानेसे १२ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान, अनन्तानुबन्धीसहित तीन कूटोंमें एक अनन्तानुबन्धीकषाय मिलनेसे प्रथमकूटमें ११ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, दूसरेकूटमें १२ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं, तृतीयकूटमें १३ आदि प्रत्ययरूप ६ स्थान हैं इसमें अन्तिमस्थान १८ प्रत्ययरूप है यहाँ १० और १८ के स्थानमें एक-एक प्रकार ही है क्योंकि १० प्रत्ययका आस्रव तो अनन्तानुबन्धीरहित प्रथमकूटमें ही है और १८ प्रत्ययका आस्रव अनन्तानुबन्धीसहित अन्तिम कूटमें ही है, अन्यत्र नहीं। इसप्रकार कूटोंमें ११ और १० प्रत्ययरूप स्थानमें कूटके तीन-तीन प्रकार हैं, १२ और १६ में पाँच-पाँच प्रकार, १३-१४-१५ के छह-छह प्रकार हैं। इसीप्रकार सासादनादिगुणस्थानोंके जो कूट कहे हैं उनका विचार करके बन्धप्रत्ययोंके स्थान व उनस्थानोंके प्रकार जानना।

प्रत्ययस्थान व उनके प्रकारोंकी गुणस्थानापेक्षा कूट रचनासम्बन्धी सन्दृष्टि–

मिथ्यात्वगुणस्थान के अनन्तानुबन्धीकषायसहित तीन कूट–

भय-जुगुप्सारहित प्रथमकूट		भय अथवा जुगुप्सासहित २ रा कूट	भय-जुगुप्सासहित ३रा कूट
२ भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
१३ योग	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई भी एक	१३ में से कोई भी एक
हास्य-रति-अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद
१६ कषाय	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ	४ क्रोध-४ मान-४ माया-४ लोभ
पृथ्वीकायादि ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
मिथ्यात्व ५	१-१-१-१-१	१-१-१-१-१	१-१-१-१-१
५५ बन्धप्रत्यय	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७	१३-१४-१५-१६-१७-१८

मिथ्यात्वगुणस्थानके अनन्तानुबन्धीरहित ३ कूट—

भय-जुगुप्सारहित प्रथमकूट		भय अथवा जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित कूट
भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
योग १०	१० में से कोई एक योग	१० में से कोई एक योग	१० में से कोई एक योग
हास्य-रति - अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद	स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद
कषाय १२	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ	३ क्रोध, ३ मान, ३ माया, ३ लोभ
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
मिथ्यात्व ५	१-१-१-१-१	१-१-१-१-१	१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४८	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७

सासादनगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट—

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग १३	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक
हास्य-रति - अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १६	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया, ४ लोभ
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ५०	१०-११-१२-१३-१४-१५	११-१२-१३-१४-१५-१६	१२-१३-१४-१५-१६-१७

मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट–

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा	०	१-१	२
योग १०	१० में से कोई एक	१० में से एक	१० में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १२	३-३-३-३	३-३-३-३	३-३-३-३
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४३	९-१०-११-१२- १३-१४	१०-११-१२-१३- १४-१५	११-१२-१३-१४- १५-१६

असंयतगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट–

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग १३	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक	१३ में से कोई एक
हास्य-रति अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय १२	३-३-३-३	३-३-३-३	३-३-३-३
काय ६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६	१-२-३-४-५-६
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ४६	९-१०-११-१२- १३-१४	१०-११-१२-१३- १४-१५	११-१२-१३-१४- १५-१६

देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट–

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग ९	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक
हास्य-रति - अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय ८	२-२-२-२	२-२-२-२	२-२-२-२
काय ५	१-२-३-४-५	१-२-३-४-५	१-२-३-४-५
इन्द्रिय व मन ६	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१	१-१-१-१-१-१
बन्धप्रत्यय ३७	८-९-१०-११-१२	९-१०-११-१२-१३	१०-११-१२-१३-१४

प्रमत्तगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट–

भय-जुगुप्सारहित		भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१-१	२
योग ११	११ में से कोई एक	११ में से कोई एक	११ में से कोई एक
हास्य-रति - अरति-शोक	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय ४	१-१-१-१	१-१-१-१	१-१-१-१
बन्धप्रत्यय २४	५	६	७

अप्रमत्त व अपूर्वकरणगुणस्थानसम्बन्धी ३ कूट–

	भय-जुगुप्सारहित	भय या जुगुप्सासहित	भय-जुगुप्सासहित
भय-जुगुप्सा २	०	१	२
योग ९	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक योग	९ में से कोई एक योग
हास्य-रति - अरति-शोक }	२-२	२-२	२-२
वेद ३	१-१-१	१-१-१	१-१-१
कषाय ४	१-१-१-१	१-१-१-१	१-१-१-१
बन्धप्रत्यय २२	५	६	७

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी ७ कूट–

कूट	१ला कूट	२रा कूट	३रा कूट	४था कूट	५वाँ कूट	६ठा कूट	७ वाँ कूट
	३ वेदसहित	२ वेदसहित	१ पुरुषवेद सहित	४ कषाय सहित	३ कषाय सहित	२ कषाय सहित	१ बादर-लोभ कषाय सहित
योग ९	९ में से १ योग	९ में से १ योग	९ में से १ योग	९ में से १ योग	९ में से १ योग	९ में से १ योग	९ में से १ योग
वेद ३	१-१-१	१-१	१	०	०	०	०
कषाय ४	१-१-१-१	१-१-१-१	१-१-१-१	१-१-१-१	१-१-१	१-१	१
बन्ध-प्रत्यय १६	३	३	३	२	२	२	२

सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय व सयोगकेवलीसम्बन्धी कूट–

गुणस्थान	सूक्ष्मसाम्पराय	उपशान्तकषाय	क्षीणकषाय	सयोगकेवली
योग ९ सयोगके ७	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	९ में से कोई एक	७ में से कोई एक
कषाय १	१	०	०	०
बन्धप्रत्यय	२	१	१	१

जो स्थान व प्रकार पूर्वमें कहे हैं उनके बोलनेका विधान बतानेके लिए कूटोच्चारण कहते हैं–

मिच्छत्ताणण्णदरं एक्केणक्खेण एक्ककायादी।
तत्तो कसायवेददुजुगलाणक्कक्कं च जोगाणं॥७९५॥

अर्थ – ५ मिथ्यात्वोंमें से एकभेद ६ इन्द्रियोंमेंसे एकभेद और इनके साथ कायोंमें से एक-दोआदि कायकी हिंसा इसके पश्चात् कषायोंमेंसे एककषाय, वेदोंमेंसे एकवेद, हास्यादि दोयुगलोंमें से एकयुगल 'च' से भय-जुगुप्सामें से एक भी नहीं या एक या दो और योगोंमेंसे १ भेद कहना चाहिए। इसप्रकार कूटोच्चारणका विधान कहा है।

विशेषार्थ – अनन्तानुबन्धीकषायरहित कूटमें एकान्तमिथ्यात्व, स्पर्शनेन्द्रिय, पृथ्वीकायका वध, तीनप्रकार क्रोध, नपुंसकवेद, हास्य-रतिका युगल और सत्यमनोयोग इनमें अक्षसंचार करनेपर एकान्तमिथ्यादृष्टि, स्पर्शनेन्द्रियके वशीभूत, पृथ्वीकायका हिंसक, तीनप्रकारके क्रोधका धारक, नपुंसकवेदी, हास्यरति संयुक्त सत्यमनोयोगीके प्रत्यय (आस्रव) का एक भेद हुआ तथा पृथ्वीकायहिंसकके स्थानपर अप्काय अथवा तेजकाय अथवा वायुकाय अथवा वनस्पतिकाय या त्रसकाय क्रमसे लिखनेसे प्रत्येकके १-१ भङ्ग होते हैं। इसप्रकार पाँच तो ये और पृथ्वीकायसम्बन्धी एक ऐसे (५+१) ६ भङ्ग होते हैं। पृथ्वी-अप्, पृथ्वी-अग्नि इत्यादिरूप दो के संयोगसे होनेवाले १५ भेदोंमें एक-एकका हिंसक कहनेपर द्विसंयोगी भङ्ग १५ होते हैं तथा पृथ्वी-अप्-तेज या पृथ्वी-जल-वायुकायरूप त्रिसंयोगी २० भेदोंमें से एक-एक का हिंसक कहनेपर त्रिसंयोगी भङ्ग २० हुए। पृथ्वी-अप्-तेज-वायु अथवा पृथ्वी-अप्-अग्नि-वनस्पति इत्यादि चतुस्संयोगी १५ भेदोंमें एक-एकका हिंसक कहनेपर चतुःसंयोगी भङ्ग १५ होते हैं तथा पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-वनस्पति या पृथ्वी-अप्-तेज-वायु-त्रस अथवा अप्-तेज-वायु-वनस्पति-त्रसरूप पंचसंयोगी भेदोंमें एक-एकका हिंसक कहनेपर पंचसंयोगी भङ्ग ६ हैं। पृथ्वी-अप्-अग्नि-वायुवनस्पति-त्रस इन छहोंके संयोगरूप एकभेदका हिंसक कहनेपर छहसंयोगी एक भङ्ग होता है। इसप्रकार सर्व मिलकर ६+१५+२०+१५+६+१=६३ भङ्ग जानना। इसके आगे जहाँ एकान्तमिथ्यात्व कहा था उसके स्थानपर विपरीतमिथ्यात्व कहनेपर पूर्वोक्तप्रकार ही ६३ भङ्ग होते हैं इसप्रकार ५ मिथ्यात्वकी अपेक्षा सर्वभङ्ग (६३×५) ३१५ जानना तथा इन सभी भङ्गोंमें स्पर्शनेन्द्रियके स्थानपर रसनेन्द्रियादि इन्द्रियसंचार से भी ३१५ ही भङ्ग होते हैं अतः ३१५×६ (पाँचइन्द्रिय व मन) से गुणा करनेपर १८९० भङ्ग होते हैं। इन १८९० भंगोंमें ४ कषायका संचार करनेपर १८९०×४=७५६० भंग होते हैं, इन ७५६० भङ्गोंमें तीन वेदों के परिवर्तनसे (७५६०×३) २२,६८० भंग, इन सर्व २२,६८० भेदोंमें हास्य-रतिके स्थानपर अरति-शोकरूप युगलका संचार होनेसे (२२,६८०×२) ४५,३६० भंग, (इन कूटोंमें भय-जुगुप्साका अभाव होगा।) ४५,३६० भेदोंमें १० योगोंका संचार होनेसे (४५,३६०×१०) ४,५३,६०० भंग होते

हैं। इसीप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानसम्बन्धी अवशेषकूट और सासादनगुणस्थानके कूटोंमें भी भंग जानना चाहिए।

अब उपर्युक्त भङ्गों का प्रमाण प्राप्त करने के लिए विधान बताते हैं–

अणरहिदसहिदकूडे बावत्तरिसय सयाण तेणउदी।
सट्ठी धुवा हु मिच्छे भयदुगसंजोगजा अधुवा ॥७९६॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यादृष्टिजीवके अनन्तानुबन्धीकषायरहित कूटों में तो भङ्गोंका प्रमाण ७२०० होता है तथा अनन्तानुबन्धीकषायसहित कूटोंमें ९३६० भङ्ग होते हैं इनको परस्परमें मिलानेसे ये ध्रुव भङ्ग होते हैं तथा भय-जुगुप्साके संबंध से अध्रुव भंग होते हैं, ऐसा जानना।

विशेषार्थ – मिथ्यात्व, इन्द्रियादिका परस्परमें गुणाकरनेपर भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है अंत: मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीरहितकूटमें तो पाँच मिथ्यात्व, पाँचइन्द्रिय व मन, तीन-तीनकषाय चारस्थानोंपर तीनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल और १० योगोंका परस्परमें गुणा करनेपर ५×६×४×३×२×१०=७२०० भंग हुए तथा अनन्तानुबन्धीसहितकूटमें ५ मिथ्यात्व, ५ इन्द्रिय व मन, ४ कषाय, तीनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, १३ योग इन सभीका परस्परमें गुणा करनेपर ५×६×४×३×२×१३=९३६० होते हैं। इनमें पूर्वोक्त ७२०० भंग जोड़ देनेपर ७२००+९३६०=१६,५६० यह राशि ध्रुवगुण्य है एवं भय-जुगुप्सा सहित, भय-जुगुप्सा रहित, भय अथवा जुगुप्सासहित ऐसे चारभंग अध्रुवगुणाकार हैं। कायहिंसाके ६३ भंग हैं अत: ४ और ६३ अध्रुवगुणकार हैं सो उस ध्रुवगुण्यको (१६५६० को) ४ तथा ६३ से गुणा करनेपर सर्व १६५६०×६३×४=४१७३१२० भंगरूप बन्धप्रत्यय होते हैं। सासादनगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दो युगल, वैक्रियिकमिश्रकाययोगबिना १२ योग इनको परस्पर गुणा करनेपर ६×४×३×२×१२=१७२८ और वैक्रियिकमिश्रयोगमें नपुंसकवेद नहीं है इसलिए ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, २ वेद हास्य-रति व अरति-शोकरूप २ युगल एवं एक योग इनको परस्परमें गुणा करनेपर ६×४×२×२×१=९६ इनको पूर्वोक्त १७२८ में मिलानेसे १७२८+९६=१८२४ ध्रुवभंग हैं सो अध्रुवगुणकार ४ व ६३ से गुणा करनेपर १८२४×४×६३=४,५९,६४८ सर्वभंग हैं। मिश्रगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्यरति व अरति-शोकरूप २ युगल और १० योगकी अपेक्षा (६×४×३×२×१०) १४४० ध्रुवभंगोंको ४ व ६३ रूप अध्रुवगुणाकारसे गुणाकरनेपर १४४०×४×६३=३६२८८० भंग होते हैं; असंयतगुणस्थानमें ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरतिशोकरूप दोयुगल और पर्याप्तसम्बन्धी १० योगकी अपेक्षा (६×४×३×२×१०) १४४० तथा वैक्रियिकमिश्र व कार्मणकाययोगमें स्त्रीवेद नहीं है अत: ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, २ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, २ योग इनकी अपेक्षा (६×४×२×२×२) १९२ भंग होते हैं। इन भंगोंको उपर्युक्त १४४० में जोड़नेपर तथा

औदारिकमिश्रकाययोगमें एक पुरुषवेद ही होनेसे ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, १ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल एवं १ योगकी अपेक्षा (६×४×१×२×१) ४८ भंग और मिलानेसे १४४०+१९२+४८=१६८० ध्रुवगुण्य हुए। इनको ४ व ६३ रूप अध्रुवगुणकारसे गुणाकरनेपर १६८०×४×६३=सर्वभंग ४२३३६० होते हैं। देशसंयतगुणस्थानमें वैक्रियिककाययोग भी नहीं है इसलिये ६ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरतिशोकरूप दोयुगल, ९ योग इनको परस्परमें गुणा करनेपर ६×४×३×२×९=१२९६ भंग होते हैं। इनको भय-जुगुप्साकी अपेक्षा ४ और इस गुणस्थानमें त्रसवध नहीं होनेसे पंचस्थावरकायवधकी अपेक्षा ३१ कायवधसम्बन्धी अध्रुवगुणकारसे गुणा करनेपर १२९६×४×३१=१,६०,७०४ भंग होते हैं। प्रमत्तगुणस्थानमें चारकषाय, तीनवेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल और ९ योगोंकी अपेक्षा (४×३×२×९) २१६ भंग, आहारककाययोग ४ कषाय, १ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल, २ योग की अपेक्षा ४×१×२×२=१६ इसमें पूर्वोक्त २१६ भंग मिलानेसे २१६+१६=२३२ होते हैं। इनको भय-जुगुप्सासंबंधी ४ अध्रुवगुणकारसे गुणाकरनेपर २३२×४=सर्वभंग ९२८ होते हैं। अप्रमत्तगुणस्थानमें ४ कषाय, ३ वेद, हास्य-रति व अरति-शोकरूप दोयुगल एवं ९ योगकी अपेक्षा ४×३×२×९=२१६ इनको भय-जुगुप्सासंबंधी अध्रुवगुण.४से गुणाकरनेपर २१६×४=८६४ भंग होते हैं तथा अपूर्वकरणगुणस्थानमें भी इसीप्रकार ८६४ भंग हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके वेदसहित भागमें ४ कषाय ३ वेद और ९ योगका परस्परमें गुणाकरनेपर ४×३×९=१०८ भंग, इनमें अध्रुवगुणकार (भय-जुगुप्साकी अपेक्षा होनेवाले ४ भंग) से गुणा नहीं किया, क्योंकि उनका यहाँ अभाव पाया जाता है। वेदसहितभागमें ही ४ कषाय, २ वेद और ९ योगकी अपेक्षा ४×२×९=७२ भंग होते हैं। वेदरहित भागमें ४ कषाय व ९ योगका परस्परमें गुणाकरनेपर ३६ भंग, क्रोधरहित भागमें ३ कषाय व ९ योगकी अपेक्षा (९×३) २७ भंग, मानरहित भागमें २ कषाय और ९ योगकी अपेक्षा (९×२) १८ भंग, मायारहित भागमें १ कषाय और ९ योगकी अपेक्षा (१×९) ९ भंग इसप्रकार अनिवृत्तिकरणगुणस्थानसम्बन्धी १०८+७२+३६+२७+१८+९=२७० भंग होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें १ कषाय व ९ योगसे गुणा करनेपर १×९=९ भंग होते हैं, उपशान्तकषायगुणस्थान ९ योग ही है अतः ९ ही भंग हैं, क्षीणकषायगुणस्थानमें भी ९ योगोंकी अपेक्षा ही ९ भंग हैं। सयोगकेवलीगुणस्थानमें ७ योग हैं इसलिये ७ ही भंग होते हैं।

नोट – यद्यपि संस्कृतटीकाकारने अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें एकवेदसहित भाग के (अनिवृत्तिकरणमें) भंग नहीं बनाए, वहाँ उनका होना आवश्यक है अतः १ वेद, ४ कषाय व ९ योगको परस्परमें गुणा करनेसे १×४×९=३६ भंग हैं इनको अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी पूर्वोक्त २७० भंगोंमें मिलानेसे २७०+३६=३०६ भंग होते हैं[1]।

१. संजलण-तिवेदाणं णव जोगाणं च होइ एयदरं। संढणदुवेदाणं एयदरं पुरिसवेदो य ॥२०१॥
चदु संजलण णवण्हं जोगाण होइ एयदरं दो ते। कोहूणमाणवज्ज मायारहियाण एगदरगं वा ॥२०२॥
(प्रा.पं.सं.पृ. १६५-१६६ शतक अधिकार))

आगे पूर्वोक्तभंगों की संख्या कहते हैं–

चउवीसट्ठारसयं तालं चोद्दस असीदि सोलसयं।
छण्णउदी बारसयं बत्तीसं बिसद सोल बिसदं च ॥७९७॥

सोलस बिसदं कमसो धुवगुणगारा अपुव्वकरणोत्ति।
अद्धुवगुणिदे भंगा धुवभंगाणं ण भेदादो ॥७९८॥जुम्मं॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानसे अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत क्रमसे ध्रुवगुण्य मिथ्यात्वगुणस्थानमें १६५६०, सासादनमें १८२४, मिश्रमें १४४०, असंयतगुणस्थानमें १६८०, देशसंयतगुणस्थानमें १२९६, प्रमत्तमें २३२, अप्रमत्तमें २१६ और अपूर्वकरणगुणस्थानमें भी २१६ भंग हैं इन ध्रुवगुण्योंका अपने-अपने अध्रुवगुणकारसे गुणा करनेपर उस-उस स्थानके भंग होते हैं इससे आगे केवल ध्रुव भंगोंका ही भेद है, क्योंकि वहाँ भय-जुगुप्सा और अविरतियोंका अभाव होनेसे अध्रुवगुणकार नहीं है।

अब कायबन्धमें पूर्वोक्त द्विसंयोगी आदि भङ्गोंको निकालनेका विधान कहते हैं–

छप्पंचादेयंतं रूवुत्तरभाजिदे कमेण हदे।
लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा ॥७९९॥

अर्थ – ६-५-४-३-२-१ और इसके नीचे प्रत्येकरूपमें क्रमसे १-२-३-४-५-६ लिखना एवं इनको गुणा करने और भाग देनेपर प्रथम चार गुणस्थानोंमें व पंचमगुणस्थानमें कायहिंसासम्बन्धी भङ्ग प्राप्त होते हैं।

विशेषार्थ – पहले अपने अंश ६ को हर १ से भाग देनेपर ६ लब्ध आया सो प्रत्येक भंग तो छह हैं तथा पूर्ववर्ती ६ से आगेके ५ को गुणा करनेपर ६×५=३० अंशरूप राशि प्राप्त हुई सो इसमें पूर्ववर्ती एकसे दो को गुणा करनेपर जो हर रूप २ राशि प्राप्त हुई उसका भाग देनेसे ३०÷२=१५ आया ये द्विसंयोगी भंग हैं। ३० प्रमाणराशि से अगले ४ को गुणा करके ३०×४=१२० अंश आये सो पूर्ववर्ती २ से अगले ३ को गुणा किया तो ६ लब्ध आया। इस हररूप ६ से अंशराशि १२० में भाग दिया तो २० लब्ध जो त्रिसंयोगी भंगोंकी संख्या है। १२० रूप अंशराशिसे आगेके ३ को गुणा करने से ३६० अंशराशि हुई सो इसको पूर्ववर्ती ६ में अगले ४ का गुणाकरनेसे २४ भागहर आया। इससे भाग देनेपर ३६०÷२४=१५ लब्ध आया, यह चतुस्संयोगी भंगका प्रमाण है। उपर्युक्त ३६० रूप अंशराशिको अगले दो से गुणा करने से ३६०×२=७२० अंश होते हैं सो इसमें उपर्युक्त २४ प्रमाण राशिको अगले ५ का गुणाकरके २४×५=१२० रूप भागहर आया, इसका भाग देनेपर ६ लब्ध आता है। सो इतने पंचसंयोगी

भंग हैं। ७२० अंशराशिको आगेके १ से गुणा करनेपर ७२०×१=७२०, सो उपर्युक्त १२० को आगेके ६ से गुणा किया तो १२०×६=७२० भागहर प्राप्त हुआ। इससे अंशराशि रूप ७२० में भाग देनेसे १ लब्ध आया। यह छह संयोगी भंगका प्रमाण है। इसप्रकार सर्वभंग ६+१५+२०+१५+६+१=६३ हैं। दशसंयतगुणस्थानमें त्रसहिंसा नहीं है, पाँच स्थावरोंकी ही हिंसा है इसलिए ५-४-३-२ व १ अंशरूपसे क्रमशः लिखने तथा इनके नीचे हररूपसे १-२-३-४ व ५ लिखना। यहाँ पूर्वोक्त प्रकार ५ को १ का भाग देनेपर ५ आये सो ये तो प्रत्येक भंग जानना। ५ को अंशरूप ४ से गुणाकरके ५×४=२० लब्ध आया। इसको १×२=२ रूप हरसे भाग दिया तो २०÷२=१० आया। इतने प्रमाण यहाँ द्विसंयोगी भंग हैं। २० को ३ रूप अंशराशिसे गुणाकरनेसे २०×३=६० अंशराशि प्राप्त हुई तथा २ को ३ भागहर राशिसे गुणा किया तो ६ लब्ध आया सो इससे अंशराशि ६० को भाग देनेसे ६०÷६=१० प्राप्त हुआ। इतने प्रमाणत्रिसंयोगी भंग जानना। अंशराशि पूर्वोक्त ६० को अंशरूप २ से गुणाकरके ६०×२=१२० प्रमाण अंशराशि प्राप्त हुई इसमें उपर्युक्त भागहर ६ में हररूप ४ का गुणा किया तो ६×४=२४ भागहर आया सो इससे अंशराशि १२० का भाग देनेपर १२०÷२४=५ लब्ध आया। यह चतुस्संयोगी भंगोंका प्रमाण है। पूर्वोक्त १२० रूप अंशराशिको अंश १ का गुणा करनेपर १२० लब्ध आया और उपर्युक्त भागहर राशि २४ में हर ५ का गुणा करनेसे २४×५=१२० ही प्रमाण आया सो इससे अंशराशि १२० में भाग देकर १२०÷१२०=१ लब्ध आया। यह पंचसंयोगी भंगका प्रमाण है। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानमें कायवधसम्बन्धी सर्व ५+१०+१०+५+१=३१ भंग हैं। इसी प्रकार ५ स्थावरों की हिंसा के पाँचस्थानके भंग ३१ होते हैं। अथवा ६ काय जीवोंकी हिंसाके ६ स्थान हैं अतः ६ बार दो-दोका अङ्क लिखकर परस्पर गुणाकरनेसे (२×२×२×२×२×२) ६४ प्राप्त होते हैं। इसमेंसे १ कम करनेसे (६४-१) ६३ भंग संख्या प्राप्त हो जाती है। इसीप्रकार पाँचस्थावरोंकी हिंसाके पाँचस्थानके भंग ३१ होते हैं।

अथानन्तर प्रत्ययोंके उदयमें कार्यभूत जीवपरिणामोंमें ज्ञानावरणादिके अनुभागबन्धका कारणपना बताते हैं–

पडिणीगमंतराए उवघादो तप्पदोसणिण्हवणे।[1]
आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाएवि ॥८००॥

अर्थ – प्रत्यनीक, अन्तराय, उपघात, तत्प्रदोष, निह्नव और अत्यन्त आसादना इन कार्योंसे जीव पुनः-पुनः ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मका बन्ध करता है।

---

१. "तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।" (तत्त्वा. सूत्र अ. ६ सूत्र १०) पं. सं. पृ. ५९३ गाथा १९ व पृ. १६७ गाथा २०४।)

विशेषार्थ – शास्त्र व शास्त्रज्ञातामें अविनयरूप प्रवृत्तिकरना-प्रतिकूलताका होना **प्रत्यनीक** कहलाता है, ज्ञानका विच्छेद (स्वाध्यायमें विघ्न) करना **अन्तराय** है, मन या वचनसे प्रशस्तज्ञानमें दोष लगाना अथवा ज्ञानीजीवोंको क्षुद्र (भूख-प्यासआदिकी) बाधाएँ उपस्थित करना **उपघात** है, तत्त्वज्ञानमें हर्षका नहीं होना अथवा मोक्षके लिए साधनभूत तत्त्वज्ञानके उपदेशमें रुचि नहीं होना या अन्तरंगमें उसके प्रति द्वेष करना **प्रदोष** है, यद्यपि स्वयं जानता है तथापि किसी कारणसे "यह ऐसा नहीं या मैं नहीं जानता" इसप्रकार कहना अथवा किन्हीं अप्रसिद्धगुरुसे ज्ञान प्राप्तकर उनका नाम छिपाते हुए अन्य तीर्थङ्करादि प्रसिद्ध पुरुषोंका नाम बताना **निह्नव** है और किसीके प्रशंसायोग्य ज्ञान-उपदेशादिकी मन-वचन-कायसे अनुमोदनादि नहीं करना अथवा उसका वर्जन करना **आसादना** है। इन ६ कार्योंसे जीव ज्ञानावरण व दर्शनावरणकर्मका अनुभागाधिक्यसहित बन्धकरता है। इसीप्रकार अन्यकर्मोंमें भी जानना। ये ही ६ कारण यदि ज्ञानके विषयमें हों तो ज्ञानावरणकी और यदि दर्शनके विषयमें हों तो दर्शनावरणके अनुभागवृद्धिमें कारण होते हैं। [१]यद्यपि तत्प्रदोषादिसे ज्ञानावरणादि सर्व कर्मप्रकृतियोंका प्रदेशबन्ध होता है ऐसा नियम नहीं है तो भी वे प्रतिनियत अनुभागबन्धके हेतु हैं। अतः तत्प्रदोष, निह्नवादिका पृथक्-पृथक् कथन किया है।

[२]पडिणीयाइ हेऊजं अणुभायं पडुच्च तं भणियं।
णियमा पदेसबंधं पडुच्च वहिचारिणो सव्वे ॥२१६॥

अर्थ – ज्ञानावरणादि कर्मोंके प्रत्यनीक आदि अर्थात् विशेषबन्ध हेतु (गाथा ८०० से ८१० तक) कहे गए हैं वे सब अनुभागबन्धकी अपेक्षासे जानना चाहिए, क्योंकि प्रदेशबन्धकी अपेक्षा वे सब नियम व्यभिचारी हैं।

अब वेदनीयकर्म के बन्ध के कारण कहते हैं–

[३]भूदाणुकंपवदजोग जुंजिदो खंतिदाणगुरुभत्तो।
बन्धदि भूयो सादं विवरीयो बंधदे इदरं[४] ॥८०१॥

अर्थ – भूतानुकम्पा (गति-गतिमें कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले प्राणियोंमें दया करना), व्रत (हिंसादिका त्यागरूप), योग (समाधिपरिणामरूप), क्षमा (क्रोधके त्यागरूप), दान (आहारादिके भेदसे चार प्रकारका) और पञ्चपरमेष्ठीकी भक्तिमें अनुरक्ति इन कारणोंसे सातावेदनीय तथा इनसे विपरीत कारणोंसे असातावेदनीयकर्म प्रचुरअनुभागसहित बँधते हैं।

---

१. स.सि.अ. ६ सू. २७। २. प्रा.पं.सं. पृ. १७४। ३. प्रा.पं.सं.पृ. १६८ गाथा २०५, किन्तु गाथामें कुछ पाठभेद है। "भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य" (त.सू.अ. ६ सू. १२)।)

४. दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य (त.सू.अ. ६/११)

विशेषार्थ – गतिनामकर्मोदयसे जो होते हैं वे भूत अर्थात् प्राणी हैं, उनपर उल्लासयुक्त चित्तसे अनुग्रह (दया) करना अथवा परपीड़ाको अपनी पीड़ा समझकर काँप जाना या किसी दूसरे पीड़ित व्यक्तिको देखकर उसके प्रति करुणायुक्त होना **अनुकम्पा** है। हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म व परिग्रहसे विरति अथवा इन्द्रियोंको वशकरना या सरागसंयमादि **व्रत** है। क्रोधादि कषायोंसे निवृत्ति **क्षमा** है। उत्तमादि पात्रों को आहार, औषधि, अभय और ज्ञान ये चार दान देना **दान** है। प्रसन्नचित्तसे अन्तरंगपरिणामोंके द्वारा पञ्चगुरु (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) की वन्दना, दर्शनादि करना **गुरुभक्ति** है। समाधि, धर्मध्यान और शुक्लध्यान **योग** है। इन प्रत्ययों से अर्थात् इन कार्योंको जो जीव करता है उसके सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है।

पीड़ारूप परिणाम **दुःख**, इष्टवियोगरूप **शोक**, अपवाद आदिके निमित्तसे चित्तमें पीड़ाका होना **परिताप**, प्रचुर आँसू गिरनेके साथ विलापकरना **आक्रन्दन**, संक्लेशरूप परिणामके अवलम्बनसे स्व और परके उपकारकी अभिलाषासे करुणाजनक रोना **परिदेवन** है। इसप्रकारके दुःख, शोक, परिताप, आक्रन्दन और परिदेवनरूप परिणामोंसे असातावेदनीयकर्मका बन्ध होता है अर्थात् ये असातावेदनीयकर्मके बंधके कारण हैं।[१]

आगे दर्शनमोहनीयकर्म के बन्ध के कारण कहते हैं–

[२]अरहंतसिद्धचेदियतवसुदगुरुधम्मसंघपडिणीगो।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥८०२॥

अर्थ – जो जीव अरहन्त, सिद्ध और उनके चैत्य (प्रतिमा), तपश्चरणयुत निर्ग्रन्थगुरु, निर्दोषशास्त्र (श्रुत), वीतरागदेव प्रणीत धर्म तथा (ऋषि-यति-मुनि-अनगार के समूहरूप) संघके प्रतिकूल हो अर्थात् उनका अवर्णवाद करनेवाला है उसके दर्शनमोह (मिथ्यात्व) का तीव्र अनुभागबन्ध होता है एवं उसीके उदयसे वह अनन्तसंसारमें परिभ्रमण करता है।

विशेषार्थ – अरहन्त अर्थात् केवलज्ञानीमें असद्भूतदोष लगाना जैसे अरहन्त भगवान कवलाहार करते हैं। सिद्धोंमें यद्यपि अनुपमसुख है किन्तु उनका इसप्रकार अवर्णवाद करना कि स्त्रीसुखादिके बिना सिद्धोंको सुख कहाँ हो सकता है। चैत्य अर्थात् जिनमें अरहन्त व सिद्धोंके गुणोंका आरोपण किया गया है ऐसे जिनबिम्बोंकी आसादना करना कि वे तो अचेतन हैं निर्गुण हैं इन प्रतिबिम्बोंसे क्या लाभ, ये तो व्यर्थ हैं। तप अर्थात् अनशनादि ६ प्रकारका बाह्य एवं प्रायश्चित्तादि ६ प्रकारका अभ्यन्तर इन १२ प्रकारके तपोंकी आसादना करना कि अनशन आदि तपसे आत्माको संक्लेश होता है और उससे

१. प्रा. पंचसं. पृ. १६८ गाथा २०५ व पृ. ५९४ गाथा २० के अनुसार।
२. "केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य" (त.सू.अ. ६/१३)

कर्मबन्ध होता है। गुरु अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे गुरु (बड़े) हैं वे गुरु हैं उनके प्रति यह कहना कि इनमें तो ज्ञानादिगुण नहीं हैं, ये तो अश्रुत हैं। श्रुत अर्थात् अरहन्तभगवानके द्वारा उपदिष्ट द्वादशांग (यद्यपि द्वादशांगकी रचना तो गणधरदेव करते हैं तथापि निमित्तकी अपेक्षा उपचारसे अरहन्तभगवानको द्वादशांगका उपदेशक कहा गया, किन्तु वास्तवमें अरहन्तभगवानकी दिव्यध्वनिके आधारसे द्वादशांगकी रचना होती है) रूप श्रुतमें यह दूषण देना कि "मांस आदिका भक्षण निरवद्य है" ऐसा श्रुतमें कहा गया है। धर्म अर्थात् जो चतुर्गतिके दुःखोंमें पड़ते हुए प्राणीको निकालकर उत्तमसुखमें धरता है वह धर्म है उसके विषयमें यह कहना कि जिनेन्द्रभगवानके द्वारा उपदेशित धर्म निर्गुण है, जो भी उसका आचरण करता है वह असुर होगा। ऋषि, यति, मुनि और अनगारके समूहरूप संघका अवर्णवाद करना कि वे अशुचिशरीरवाले हैं, विरूप और निर्गुण हैं। इसप्रकार उपर्युक्त प्रत्ययोंसे अनन्तसंसारके कारणभूत दर्शनमोहनीयकर्मका बन्ध होता है।[1]

अब चारित्रमोहनीयकर्मबन्ध के कारण बताते हैं–

[2]तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणदो रागदोससंतत्तो।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहं वि चरित्तगुणघादी ॥८०३॥

अर्थ – जो जीव तीव्रकषाय (एवं हास्यादि नोकषाय) सहित हो, अत्यधिक मोहरूप परिणमन करता हो, रागद्वेषमें अत्यन्त लीन हो और चारित्रगुणका नाशकरनेवाला हो वह कषाय और नोकषायरूप भेदसहित चारित्रमोहनीयकर्मके तीव्रअनुभागका बन्ध करता है।

विशेषार्थ – पवित्र तपस्वियोंके चारित्रमें दूषण लगाना, संक्लेशोत्पादक वेष व व्रतोंको धारण करना, धर्मका उपहास करना, बहुत प्रलाप करना तीव्रकषाय है। इन कारणोंसे तो क्रोधादि कषायोंका बन्ध होता है। दूसरों की हँसी करने से हास्यकर्मका, नानाक्रीड़ाओंसे दूसरेके चित्तको आकर्षित करनेवाले स्वभावमें रुचिसे रतिकर्मका बन्ध होता है। रति-विनाश, पापशील व्यक्तियोंकी संगति इत्यादिसे अरतिकर्मका बन्ध होता है। स्वयं भयभीत रहना और दूसरोंको भय उत्पन्नकरनेसे भयकर्मका बन्ध होता है। अकुशलक्रियारूप परिणतिसे जुगुप्साकर्मका बन्ध होता है। मिथ्याभाषण, छल-कपट, प्रपंचमें तत्परता, तीव्रराग इनसे स्त्रीवेदकर्मका बन्ध होता है। मन्दक्रोध, कुटिलता न होना, स्वदारामें संतोष इत्यादिसे पुरुषवेदका तथा प्रचुरकषाय, गुप्तेन्द्रियोंका विनाश, अनङ्गक्रीड़ाका व्यसन इनसे नपुंसकवेदका बन्ध होता है। इसप्रकार अनेकप्रकारके मिथ्यात्वसे परिणत तथा "राग दोस संतत्तो" अर्थात् अपवित्र स्नेहरूप राग और रत्नत्रयमें दूषण लगानेरूप द्वेषसे युक्त और उपर्युक्त लक्षण तीव्रकषायसहित जीवके

---

१. प्रा. पंचसंग्रह पृ. १६९ गाथा २०६ व पृ. ५९४ गाथा २१ के अनुसार।

२. "कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य" (त.सू.अ. ६/१४))

पंचाणुव्रतरूप देशचारित्र और महाव्रतरूप सकलचारित्र इन दोनों चारित्रको घातनेवाले चारित्र मोहनीयकर्मके तीव्र अनुभागको बाँधता है। अतः उपर्युक्त कारण चारित्रमोहनीयकर्मके बन्धमें विशेषप्रत्यय है।[1]

अथानन्तर नरकायु के बन्ध के कारण कहते हैं–

[2]मिच्छो हु महारम्भो णीस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो।
णिरयाउगं णिबंधदि पावमदी रुद्दपरिणामी ॥८०४॥

अर्थ – जो मिथ्यादृष्टि (देव-शास्त्र-गुरुसे विमुख) हो, बहुत आरम्भी व अपरिमित परिग्रही हो, शीलरहित हो, तीव्र लोभी हो, रौद्रपरिणामी अर्थात् हिंसादि पापकर्मोंमें आनन्द माननेवाला हो, पाप करनेमें ही जिसकी मति (बुद्धि) हो वह जीव नरकायुका तीव्र अनुभागसहित बन्ध करता है।

विशेषार्थ – प्राणियोंको दुःख पहुँचानेवाली प्रवृत्ति करना आरम्भ है, यह वस्तु मेरी है इसप्रकारका संकल्प रखना परिग्रह है। जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह हो वह बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रहवाला कहलाता है और उसका भाव बह्वारम्भपरिग्रहत्व है। हिंसादि क्रूर कार्योंमें निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरेके धनका अपहरण, इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति तथा मरनेके समय कृष्णलेश्या और रौद्रध्यानादिका होना नरकायु बन्धमें विशेष प्रत्यय है।[3]

अब तिर्यञ्चायु के बन्ध के कारण कहते हैं–

[4]उम्मग्गदेसगो मग्गणासगो गूढहियय मादिल्लो।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो ॥८०५॥

अर्थ – जो जीव विपरीतमार्गका उपदेश करनेवाला हो, सच्चेमार्गका नाश करनेवाला हो, गूढ़ अर्थात् मायाचारी हो, जिसका विपरीत स्वभाव हो, मिथ्या आदि तीनशल्योंसे संयुक्त हो वह जीव तिर्यञ्चायुका तीव्र अनुभाग बाँधता है।

विशेषार्थ – चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे जो आत्मामें कुटिलभाव उत्पन्न होता है वह माया है, इसका दूसरा नाम निकृति है। इसे तिर्यञ्चायुके बन्धका प्रत्यय जानना। इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार

---

१. प्रा.पं.सं.पृ.५९४ गाथा २२ के आधार से।
२. "बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः" (त.सू.अ. ६/१५) एवं प्रा.पं.सं.पृ. २०८ गाथा १७७ व पृ. ५९४ गाथा २३।
३. सर्वार्थसिद्धि अ. ६ सूत्र १५ की टीका।
४. "माया तैर्यग्योनस्य" (त.सू.अ. ६/१६) एवं प्रा.पं.सं.पृ. १७० गाथा २०८ और पृ. ५९४ गाथा २४।

है– धर्मोपदेशमें मिथ्या बातोंको मिलाकर उनका प्रचार करना, शीलरहित जीवन बिताना, अतिसंधानप्रियता तथा मरणके समय नील व कपोतलेश्या और आर्तध्यानका होना आदि तिर्यञ्चायुके बन्धके विशेष प्रत्यय हैं।[१]

अथानन्तर मनुष्यायु के बन्ध के कारण कहते हैं–

[२]पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो ॥८०६॥

अर्थ – जो जीव स्वभावसे ही मन्दकषायी अर्थात् मृदुस्वभावी हो, पात्रदानमें प्रीतियुक्त हो, शील व संयमसे अर्थात् इन्द्रियसंयम व प्राणिसंयमसे रहित हो, मध्यमगुणों (परिणामों) से सहित हो ऐसा जीव मनुष्यायु को तीव्र अनुभागसहित बाँधता है।

विशेषार्थ – स्वभावका विनम्र होना, भद्रप्रकृतिका होना, सरलव्यवहार करना, अल्पकषायका होना तथा मरणके समय संक्लेशपरिणामी नहीं होना इत्यादि मनुष्यायुके तीव्रअनुभागबन्धके विशेषप्रत्यय हैं।[३]

आगे देवायु के बन्ध के कारण कहते हैं–

[४]अणुवदमहव्वदेहिं य बालतवाकामणिज्जराए य।
देवाउगं णिबंधदि सम्मादिट्ठी य जो जीवो ॥८०७॥

अर्थ – जो जीव सम्यग्दृष्टि है वह केवल सम्यक्त्वसे एवं साक्षात् अणुव्रतमहाव्रतोंसे देवायुको बाँधता है तथा जो मिथ्यादृष्टि है वह अज्ञानरूप बालतपश्चरणसे एवं बिना इच्छाके बन्ध आदिसे हुई अकामनिर्जरासे देवायुका बन्ध करता है।

विशेषार्थ – अकामनिर्जरा, बालतप, मन्दकषायता, समीचीनधर्मका सुनना, दानदेना, देव-गुरु व धर्म तथा इनके सेवक इन छह आयतनोंकी सेवा करना, सरागसंयम, सम्यक्त्व और देशसंयम ये सब देवायुके बन्धप्रत्यय हैं।[५]

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. ६ सूत्र १६ की टीका।

२. "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य" "स्वभावमार्दवं च" (त.सू.अ. ६ सूत्र १७-१८). प्रा.पं.सं.पृ. १७१ गाथा २१० एवं पृ. ५९५ गाथा २५। ३. सर्वार्थसिद्धि अ. ६ सूत्र १७ की टीका।

४. "सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य" "सम्यक्त्वं च" (त.सू.अ. ६ सूत्र २०-२१) प्रा.पं.सं.पृ. १७१ गाथा २११ व पृ. ५९५ गाथा २६।

५. तत्त्वार्थसार अ. ४ श्लोक ४२-४३।

आगे नामकर्म के बन्ध के कारण कहते हैं–

[1]मणवयणकायवक्को माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं ॥८०८॥

अर्थ – जो जीव मन-वचन-कायसे कुटिल हो, कपट करनेवाला हो, तीनप्रकारके गारवसे युक्त हो (दुरभिमानी हो) वह नरकगति, तिर्यंचगति आदि अशुभ (अप्रशस्त) नामकर्मका बन्ध करता है तथा इसके विपरीत स्वभाववाला अर्थात् सरलयोगवाला, निष्कपट, प्रशंसा न चाहनेवाला शुभ (प्रशस्त) नामकर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ – 'मण-वयण-काय-वक्को' मन-वचन और कायकी कुटिलता अर्थात् अन्यथाप्रवृत्ति। 'माइल्लो' अर्थात् मायाचारी मिथ्यात्वरूप प्रवृत्ति, झूठी चुगली करना, माण अर्थात् तोलनेके बाट व मापनेके गज (मीटर) आदि हीन या अधिक रखना, तोलनेकी तराजू (काँटा) झूठा (ठीक नहीं) रखना, स्वात्मप्रशंसा, परात्मनिंदा आदिरूप मायासे। 'गारवेहिं' इष्ट द्रव्यका लाभ (ऋद्धिगारव), मिष्टभोजनादिकी प्राप्ति (रस गारव), सुखद शयनादि स्थानका मिलना (सादगारव) इन सबसे 'पडिबद्ध' अर्थात् इनमें दृढ़चित्त होनेवाला अशुभनामकर्म को बाँधता है तथा 'तप्पडिवक्खेहिं' अर्थात् इससे विपरीत यानी योगकी सरलता, रस व सात आदि गारवोंसे रहित, धार्मिक व्यक्तियोंके प्रति आदरभाव, संसारके कारणभूत भावोंसे भीरुता, अप्रमादादि प्रत्ययोंसे शुभनामकर्म का बन्ध होता है।[2]

आगे गोत्रकर्म के बन्ध के कारण कहते हैं–

[3]अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुइ [4] पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चं गोदं विवरीदो बंधदे इदरं ॥८०९॥

अर्थ – जो जीव अरहन्तादि पञ्चपरमेष्ठियोंमें भक्तियुक्त हो, अध्ययनादिके लिए विचारशील एवं विनयादि गुणोंका धारक हो वह जीव तो उच्चगोत्र का और इससे विपरीत कारणोंसे नीचगोत्र का बन्ध करता है।

विशेषार्थ – पंचगुरु (अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) में अतिभक्ति, जिनोक्त श्रुतमें

१. "योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः" "तद्विपरीतं शुभस्य" (त.सू. अ. ६ सूत्र २२ व २३)।

२. प्रा.पं.सं.पृ. ५९५ गाथा २७ के आधार से।

३. "परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य" "तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य" (त.सू. अ. ६ सूत्र २५-२६))

४. 'पढणुमाण' इत्यपि पाठो प्रा.पं. संग्रहे पृ. ५९५ गाथा २८।

अन्तरंग परिणामोंसे रुचि, आगम अभ्यासी (पढणुपाठापेक्षा) अथवा अल्पमानी (पदणुपाठापेक्षा), गुणोंका प्रेक्षक, अपनी निन्दा, परकी प्रशंसा तथा उनके गुणोंको प्रकट करना, अपने गुणोंका आच्छादन (ढकना), गुणोंमें जो उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनम्रवृत्ति, अपनेमें ज्ञान-ऐश्वर्य-तपादिकी विशेषता होनेपर भी मद या अहंकार भाव न होना, उद्धततारहित प्रवृत्ति आदि इन सबसे उच्चगोत्रका बन्ध होता है। इससे विपरीत अर्थात् अपनी प्रशंसा व अपने असद्गुणोंका उद्भावन (प्रकट करना), परकी निन्दा और उनमें विद्यमानगुणोंका आच्छादन, अरहंतादिमें भक्तिका न होना इन सब प्रत्ययोंसे नीचगोत्रका बन्ध होता है।[1]

[2]पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो।
अज्जेदि अंतरायं ण लहदि जं इच्छियं जेण ॥८१०॥

अर्थ – जो जीव अपने व दूसरोंके प्राणोंका हरण करनेमें लीन है और जिनेंद्रपूजा व रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप मोक्षमार्गमें विघ्न डालनेवाला है वह अन्तरायकर्मका उपार्जन करता है तथा उसके उदयकालमें वह अभिलषित (इच्छित) वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकता है।

विशेषार्थ – प्राणिवधादिमें रत, जिनपूजा व मोक्षमार्गमें विघ्न करनेवाला पाँचप्रकारके अन्तरायकर्मको अर्जित करता है। जीवोंको अभयदान देनेमें जो विघ्न करता है उसे दानान्तरायकर्मका बन्ध होता है जिससे सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण करनेके भाव नहीं होते, यदि भाव होते भी हैं तो स्थिर नहीं होते। अथवा सुवर्णादि वस्तुओंके दान करनेमें विघ्न करनेसे सुवर्णादि वस्तुओंकी प्राप्ति नहीं होती। लाभान्तरायकर्मसे निरन्तर भोजन करते हुए भी तृप्ति नहीं होती, शरीरको ढकनेके लिए वस्त्रादि अन्य वस्तुओंका लाभ भी नहीं होता। भोगान्तरायकर्मसे भोगोंमें अर्थात् अशन (अशन, पान, लेह्य और पेय) चारप्रकारके आहार देनेमें विघ्न करनेसे स्वयंको पेटभर भोजन भी नहीं मिलता अथवा यदि भरपेट भोजन मिल भी जावे तो वमनआदि हो जाता है। इसीप्रकार पंचेन्द्रियसम्बन्धी सम्पूर्ण विषयभोगोंके सम्बन्धमें आगमसे जानना चाहिए। उपभोगान्तरायकर्मसे वत्स (पुत्र), स्त्री, पालकी, मकान (वास्तु), खेत (क्षेत्र), आभूषणादि पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। वीर्यान्तरायकर्मसे बल-वीर्य आहार ग्रहण करनेपर भी सहज ही उत्पन्न नहीं होते और यदि उत्पन्न होते भी हैं तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। दान देनेवाले दाता और पात्रके मध्य जो स्थित हो जावे वह अन्तरायकर्म है। इसप्रकार पाँचप्रकारके अन्तरायकर्मसम्बन्धी जो सामान्य प्रत्यय कहे गये हैं उनके कारण मनोभिलषित पदार्थोंकी प्राप्तिमें विघ्न उपस्थित होता है अतः इन्हें अन्तरायकर्म बन्धके प्रत्यय कहा गया है।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५९५ गाथा २८ के आधारसे।

२. "विघ्नकरणमन्तरायस्य" (त.सू.अ. ६ सूत्र २७)

उपसंहार – द्वादशांगमें बन्धप्रत्ययोंका जो कथन है वह आचार्यपरम्परासे द्वादशांगसूत्ररूपसे (एकदेशरूपसे) श्री धरसेनाचार्यको प्राप्त हुए। श्री धरसेनाचार्यने उन सूत्रोंको श्री पुष्पदंत भूतबली आचार्यों को पढ़ाया। पुष्पदन्त-भूतबली आचार्यद्वयने उन सूत्रोंको लिपिबद्ध करके ग्रन्थरूपमें उनका नाम षट्खण्डागम रखा। उस षट्खण्डागमके 'महाबन्ध' नामक छठे खण्डमें प्रत्ययोंका कथन इसप्रकार है–

पच्चयपरूवणादाए पंचणा. छदंसणा. आसादा. अट्ठ क. पुरिस. हस्स रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं. देवाउ-देवगदि-पंचिंदि.-वेउव्वि.-तेजा.-क.-समचदु.-वेउव्विय अंगो.-पसत्थापसत्थवण्ण. ४-देवाणुपु.-अगु. ४-पसत्थवि.तस ४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे.-जस.-अजस.-णिमि.-उच्चागो.-पंचंत. ५ एत्तो एक्केक्कस्स पगदीओ मिच्छत्त-पच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं। सादावे. मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसाय-पच्चयं जोगपच्चयं। मिच्छ.-णवुस.-णिरयाउग-णिरयगदि-चदुजादि-हुंड.-असंप.-णिरयाणु.-आदाव. थावरादि. ४ मिच्छत्तपच्चयं। थीणगिद्धि. ३-अट्ठकसा.-इत्थि. तिरिक्खा. मणुसायु.-तिरिक्ख-मणुसग.-ओरालि.-चदुसंठा.-ओरालि. अंगो.-पंचसंघ.-दो आणु.-उज्जो. अप्पसत्थ. दुब्भग-दुस्सर-अणादे.-णीचा.-मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं। आहारदुगं संजम-पच्चयं। तित्थयरं सम्मत्तपच्चयं।''

अर्थ – प्रत्यय प्ररूपणाकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठकषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकअंगोपांग, प्रशस्त व अप्रशस्त वर्णादि ४, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन ६५ प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय, कषायप्रत्यय है। सातावेदनीय प्रकृतिका मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगप्रत्यय है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, चारजाति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावरादि ४का बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन, आठकषाय, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका बन्ध मिथ्यात्वप्रत्यय और असंयमप्रत्यय होता है। आहारकद्विक का बन्ध संयम प्रत्यय होता है। तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध सम्यक्त्वप्रत्यय होता है। इतनी विशेषता है कि द्वादशांगसे सम्बन्धित इन सूत्रोंमें मिथ्यात्व-असंयम-कषाय और योगके अतिरिक्त संयम और सम्यक्त्वको भी बन्धप्रत्ययोंमें सम्मिलित किया है। इसीलिये श्री कुन्दकुन्दाचार्यने पञ्चास्तिकायग्रन्थमें कहा है–

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बन्ध मोक्खो वा॥१६४॥ पंचास्तिकाय

अर्थ – साधु पुरुषों ने कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है इसलिए वे सेवने योग्य हैं, किन्तु उनसे बन्ध भी होता है और मोक्ष भी होता है अर्थात् यद्यपि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसा सभी आचार्योंने कहा है तथापि वे बन्धके हेतु (प्रत्यय) भी हैं और मोक्षके हेतु भी हैं।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि एक ही कारणसे दो विपरीतकार्य कैसे हो सकते हैं तो आचार्योंने दीपकका दृष्टान्त देते हुए कहा है कि इसमें सर्वथा कोई विरोध नहीं है। जैसे एक ही दीपक प्रकाश का भी कारण है और धूमरूप अन्धकार का भी कारण है; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके द्वारा कर्मनिर्जरा भी होती है और तीर्थङ्करप्रकृति व आहारकद्विकका बन्ध भी होता है, किन्तु यह पुण्यबन्ध मोक्षका ही कारण है, न कि संसारका। जैसे व्यापारी अपने व्यापारके विज्ञापनआदिमें व्यय करता है, किन्तु वह व्यय आय का ही कारण है, हानि का कारण नहीं है। समयसारके टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यने भी ''तत्त्वार्थसार'' ग्रन्थके चतुर्थअधिकारमें सम्यग्दर्शनको देवायुके बन्धका कारण कहा है–

सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्रवहेतवः॥४३॥ तत्त्वार्थसार अ.४॥

अर्थात् सरागसंयम, सम्यक्त्व और देशसंयम ये देवायु के आस्रवमें कारण हैं।

यद्यपि षट्खण्डागमके 'वेदना' नामक चतुर्थखण्डमें ''वेदणापच्चयविहाणाणि योगद्दारं'' नामक आठवाँ अधिकार (ध.पु. १२ पृ. २७५) है, किन्तु उसमें उत्तर प्रकृतियोंके प्रत्ययोंका कथन नहीं है तथा मूलप्रकृतियों के सामान्य प्रत्ययों का कथन नयों की अपेक्षा से है अतः वेदनाखण्डके ''वेदणापच्चयविहाणाणियोगद्दारं'' का यहाँ विचार नहीं किया गया।

卐 卐 卐

अथ भावचूलिकाधिकार

अब भावचूलिकाधिकार को प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम निर्विघ्नतया कार्यपरिसमाप्ति के लिए अपने इष्टदेव को नमस्कार करते हैं–

गोम्मटजिणिंदचंदं पणमिय गोम्मटपयत्थसंजुत्तं।
गोम्मटसंगहविसयं भावगदं चूलियं वोच्छं ॥८११॥

अर्थ – गोम्मटजिनेंद्र वे ही हुए चन्द्रमा सो उनको (गोम्मटजिनेंद्रको) नमस्कार करके समीचीन अर्थ और पदों से अथवा उत्तम पदार्थोंके वर्णनसे सहित गोम्मटसारग्रन्थमें क्रमप्राप्त भावोंका कथन करनेवाले अधिकारको कहूंगा।

विशेष – उपर्युक्त मंगलाचरणगाथा में 'गोम्मटजिणिंदचंदं' पदमें संस्कृत टीकाकारने 'वर्धमान अथवा नेमिनाथस्वामी' ऐसा अर्थ प्रगट किया है किन्तु ऊपर गाथाके अर्थमें 'गोम्मटजिनेन्द्र' ऐसा ही रखा गया है, क्योंकि गोम्मटजिणिंदसे गोम्मटेश्वर (बाहुबली) ऐसा प्रगट अभिप्राय आचार्यका रहा हो।

जेहि दु लक्खिज्जंते उवसमआदीसु जणिदभावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥८१२॥

अर्थ – अपने प्रतिपक्षीभूत कर्मोंके उपशमादि होनेपर उत्पन्न हुए जिन औपशमिकादिभावोंसे जीव पहिचाने जाते हैं वे भाव 'गुण' संज्ञाको प्राप्त होते हैं ऐसा सर्वदर्शियों (सर्वज्ञ) ने कहा है।

आगे उन भावों के नाम व उनके भेदों का कथन करते हैं–

[१]उवसम खइओ मिस्सो ओदयिगो पारिणामिगो भावो।
भेदा दुग णव तत्तो दुगणिगिवीसं तियं कमसो ॥८१३॥

अर्थ – वह भाव औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक और पारिणामिक के भेदसे ५ प्रकार का है तथा इन पाँचोंके भेद क्रमसे २-९-१८-२१ और ३।

विशेषार्थ – भगवान् कुन्दकुन्ददेवाचार्य ने भी पंचास्तिकायसंग्रह गाथा ५६ में इन पाँच भावों का कथन जीवगुणरूप से किया है–

---

१. पंचास्तिकाय गाथा ५६। 'औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च'' (त.सू.अ. २ सू. १) ''द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्'' (त.सू.अ. २/३))

उदयेण उवसमेण य खएण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा॥८१५॥

उपर्युक्त गाथाकी अमृतचन्द्राचार्यकृत संस्कृतटीका इसप्रकार है–

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः, अनुद्भूतिरुपशमः, उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः, अत्यन्तविश्लेषः क्षयः, द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः। तत्रोदयेन युक्त औदयिकः, उपशमेन युक्तः औपशमिकः, क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः, क्षयेण युक्तः क्षायिकः, परिणामेन युक्तः पारिणामिकः। त एते पञ्च जीवगुणाः। तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबन्धनाश्चत्वारः, स्वभावनिबन्धन एकः। एते चोपाधिभेदात्स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यंत इति। अर्थात्

गाथार्थ – उदयसे युक्त, उपशमसे युक्त, क्षयसे युक्त, दोनों मिश्रित अर्थात् क्षयोपशमसे युक्त और परिणामसे युक्त ऐसे ये जीवगुण हैं और बहुत प्रकारसे विस्तृत हैं।

टीकार्थ – कर्मोंका फलदानसमर्थरूपसे उद्भव सो उदय है, अनुद्भव सो **उपशम** है, उद्भव तथा अनुद्भव सो **क्षयोपशम** है, अत्यन्तविश्लेष सो **क्षय** है, द्रव्यका आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह **परिणाम** है। वहाँ उदयसे युक्त वह **औदयिक,** उपशमसे युक्त वह **औपशमिक,** क्षयोपशमसे युक्त वह **क्षायोपशमिक, क्षयसे** युक्त वह **क्षायिक** तथा परिणामसे युक्त है वह **पारिणामिक** है। ऐसे ये पाँच जोवगुण हैं, उनमें उपाधिका चतुर्विधपना (कर्मोंकी चारप्रकारकी दशा) जिनका कारण (निमित्त) है ऐसे चार हैं तथा स्वभाव जिसका कारण है ऐसा एक है। उपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेदसे भेदकरनेपर उन्हें अनेक प्रकारोंसे विस्तृत किया जाता है।

[१] जैसे कतक आदि द्रव्यके सम्बन्धसे जलमें कीचड़का उपशम हो जाता है उसीप्रकार आत्मामें कर्मकी निजशक्तिका कारणवशसे प्रगट न होना उपशम है। जैसे उसी जलको दूसरे स्वच्छ बर्तनमें बदल देनेपर कीचड़ का अत्यन्त अभाव हो जाता है वैसे ही कर्मोंका आत्मासे सर्वथा दूर हो जाना क्षय है। जिसप्रकार उसी जलमें कतकादि द्रव्यके सम्बन्धसे कुछ कीचड़का अभाव हो जाता है और कुछ बना रहता है उसीप्रकार उभयरूप भाव क्षयोपशम (मिश्र) है। द्रव्यादि निमित्तके वशसे कर्मोंके फलका प्राप्त होना उदय है और जिसके होनेमें द्रव्यका स्वरूपलाभमात्र कारण है वह परिणाम है। जिस भावका प्रयोजन अर्थात् कारण उपशम है वह औपशमिकभाव है। इसीप्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भावोंकी भी व्युत्पत्ति कहनी चाहिए।

---

१. सर्वार्थसिद्धि अ. २ सू. १ की टीका।

[1]औपशमिकादिभाव जीवके स्वतत्त्व इसलिए कहे जाते हैं कि ये जीवको छोड़कर अन्य द्रव्योंमें नहीं पाए जाते, किन्तु स्वतत्त्व होने मात्रसे ये जीवके लक्षण नहीं हो सकते, क्योंकि लक्षण वही हो सकता है जो समस्त लक्ष्योंमें पाया जावे तथा असम्भव दोषसे रहित हो। औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिकभाव सब जीवोंमें नहीं पाए जाते, मात्र पारिणामिक भावोंमें जीवत्व नामका पारिणामिकभाव सब जीवोंमें पाया जाता है।

अब उन भावोंकी उत्पत्तिका विधान दो गाथाओंसे कहते हैं–

कम्मुवसमम्मि उवसमभावो खीणम्मि खइयभावो दु।
उदयो जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भावो ॥८१४॥

अर्थ – प्रतिपक्षी कर्मके उपशमसे औपशमिकभाव, प्रतिपक्षी कर्मोंके सर्वथा क्षयसे क्षायिकभाव, प्रतिपक्षी कर्मोंके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होनेपर भी जीवका गुण प्रगट हो वह मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव है।

कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदयिगो तत्थ होदि भावो दु।
कारणणिरवेक्खभवो सभाविगो होदि परिणामो ॥८१५॥

अर्थ – कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ जीवका भाव औदयिकभाव है एवं कर्मके उपशम-क्षय-क्षयोपशम और उदयकी अपेक्षाबिना जीवका जो भाव है वह पारिणामिकभाव है।[2]

अथानन्तर इन पाँच भावों के भेदरूप उत्तरभावों को ४ गाथाओं में कहते हैं–

उवसमभावो उवसम-सम्मं चरणं च तारिसं खइगो।
खाइग णाणं दंसण सम्मचरित्तं च दाणादी ॥८१६॥

अर्थ – औपशमिकभावके उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्ररूप दो भेद हैं। उसीप्रकार क्षायिकभावके भी क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग और क्षायिकवीर्यरूप ९ भेद हैं।[3]

विशेषार्थ – उपशान्तक्रोध, उपशान्तमान, उपशान्तमाया, उपशान्तलोभ, उपशान्तराग,

---

१. तत्त्वार्थसार अ. २ श्लो. २ का अनुवाद।

२. देखो गाथा ८१३ का विशेषार्थ।

३. "सम्यक्त्वचारित्रे" (त.सू.अ. २/३) "ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च" (त.सू.अ. २-४)

उपशान्तदोष, उपशान्तमोह, उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, औपशमिकसम्यक्त्व, औपशमिकचारित्र ये सब औपशमिकभाव हैं। ये पूर्वोक्तभाव और दूसरे भी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय और उपशान्तकषायगुणस्थानोंमें प्रत्येकसमयमें उत्पन्न होनेवाले जो जीवके भाव हैं वे सब औपशमिकजीव भाव हैं।[१]

क्षीणक्रोध, क्षीणमान, क्षीणमाया, क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणदोष, क्षीणमोह, क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान-क्षायिकलाभ-क्षायिकभोग-क्षायिकपरिभोग और क्षायिकवीर्य ये पाँच क्षायिकलब्धियाँ, केवलज्ञान, केवलदर्शन, सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वृत्त, सर्वदुःख-अन्तकृत, इसीप्रकार अन्यभी क्षायिकभाव जो (अपूर्वकरणगुणस्थान, अनिवृत्तिकरणगुणस्थान, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान और क्षीणमोह गुणस्थानमें) प्रतिसमय उत्पन्न होते हैं वे सब क्षायिकभाव हैं।[२]

खाओवसमिगभावो, चउणाण तिदंसणं तिअण्णाणं।
दाणादिपंच वेदगसरागचारित्तदेसजमं ॥८१७॥

अर्थ – क्षायोपशमिकभावके मतिज्ञानादि ४ ज्ञान, चक्षुआदि ३ दर्शन, कुमतिआदि ३ अज्ञान, क्षायोपशमिकदान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य, वेदकसम्यक्त्व, सरागचारित्र और देशसंयम ये १८ भेद हैं।[३]

विशेषार्थ – क्षायोपशमिकएकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकद्वीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकत्रीन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकचतुरिन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिकपञ्चेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक मत्यज्ञानी, क्षायोपशमिकश्रुताज्ञानी, क्षायोपशमिक विभंगज्ञानी, क्षायोपशमिक अभिनिबोधिकज्ञानी, क्षायोपशमिक श्रुतज्ञानी, क्षायोपशमिक अवधिज्ञानी, क्षायोपशमिक मनःपर्ययज्ञानी, क्षायोपशमिक चक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अचक्षुदर्शनी, क्षायोपशमिक अवधिदर्शनी, क्षायोपशमिक सम्यग्मिथ्यात्वलब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, क्षायोपशमिकसंयमासंयमलब्धि, क्षायोपशमिक दानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि, क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक परिभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि, क्षायोपशमिक आचारधर, क्षायोपशमिक सूत्रकृद्धर, क्षायोपशमिक स्थानधर, क्षायोपशमिक समवायधर, क्षायोपशमिक व्याख्याप्रज्ञप्तिधर, क्षायोपशमिक नाथधर्मधर, क्षायोपशमिक उपासकाध्ययनधर, क्षायोपशमिक अन्तकृद्धर, क्षायोपशमिक अनुत्तरौपपादिकदशधर, क्षायोपशमिक प्रश्नव्याकरणधर, क्षायोपशमिक विपाकसूत्रधर, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधर, क्षायोपशमिकगणी,

---

१. ध.पु. १४ पृ. १४।
२. ध.पु. १४ पृ. १५।
३. "ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च" (त.सू.अ. २-५)

क्षायोपशमिक वाचक, क्षायोपशमिक दशपूर्वधर, क्षायोपशमिक चतुर्दशपूर्वधर; ये तथा इसीप्रकारके और भी अन्य क्षायोपशमिकभाव हैं।[१]

ओदयिगा पुण भावा, गदिलिंगकसाय तह य मिच्छत्तं।
लेस्सासिद्धासंजमअण्णाणं होंति इगिवीसं ॥८१८॥

अर्थ – औदयिकभावके ४ गति, ३ वेद, ४ कषाय, एकमिथ्यात्व, ६ लेश्या, १ असिद्धत्व, असंयम, अज्ञान इसप्रकार २१ भेद हैं।[२]

जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तादी हवंति परिणामा।
इदि मूलुत्तरभावा भंगवियप्पे बहू जाणे ॥८१९॥

अर्थ – जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये तीन पारिणामिकभाव हैं। इसप्रकार मूलभाव ५ और उत्तरभाव ५३ हैं और इनके भी द्विसंयोगादि भङ्ग किये जावें तो बहुत हो सकते हैं ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ – आयु आदि प्राणोंका धारण करना जीवन है। वह अयोगीके अन्तिमसमयसे आगे नहीं पाया जाता, क्योंकि सिद्धोंके, प्राणोंके कारणभूत आठों कर्मोंका अभाव है। इसलिए सिद्ध, जीव नहीं हैं, अधिकसे अधिक वे जीवितपूर्व कहे जा सकते हैं।

शङ्का – सिद्धों के भी जीवत्व क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है?

समाधान – नहीं, क्योंकि सिद्धों में जीवत्व उपचार से है और उपचार को सत्य मानना ठीक नहीं है।

सिद्धोंमें प्राणोंका अभाव अन्यथा बन नहीं सकता इससे ज्ञात होता है, कि जीवत्व पारिणामिक नहीं है, किन्तु वह कर्मके विपाकसे उत्पन्न होता है, क्योंकि 'जो जिसके सद्भाव और असद्भाव का अविनाभावी होता है वह उसका है ऐसा कार्य-कारणभावके ज्ञाता कहते हैं' ऐसा न्याय है। इसलिये जीवत्वभाव औदयिक है, यह सिद्ध होता है। तत्त्वार्थसूत्रमें जीवत्वको जो पारिणामिक कहा है वह प्राणोंको धारण करनेकी अपेक्षासे नहीं कहा है, किन्तु चैतन्यगुणकी अपेक्षासे वहां वैसा कथन किया है, इसलिये वह कथन भी विरोधको प्राप्त नहीं होता।

---

१. ध.पु. १४ पृ. १८-१९।
२. "गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः" (त.सू.अ. २-६)
३. "जीवभव्याभव्यत्वानि च" (त.सू.अ. २-७)

चार अघातियाकर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुआ असिद्धभाव है। वह दो प्रकार का है– अनादि-अनन्त और सादि-सान्त। इनमें से जिनके असिद्धभाव अनादि-अनन्त है वे अभव्यजीव हैं और जिनके दूसरे प्रकारका है वे भव्य जीव हैं। इसलिये भव्यत्व और अभव्यत्व ये भी विपाकप्रत्ययिक ही हैं।

शङ्का – तत्त्वार्थसूत्रमें इन्हें पारिणामिक कहा है, इसलिए इस कथनका उसके साथ विरोध कैसे नहीं होगा ?

समाधान – नहीं, क्योंकि असिद्धत्वका अनादि-अनन्तपना और अनादि-सान्तपना निष्कारण है, यह समझकर उन्हें वहाँ पारिणामिक स्वीकार किया गया है।[१]

"दशसु प्राणेसु यथोपात्तप्राणपर्यायेण त्रिषु कालेषु जीवनानुभवनात् जीवति, अजीवीत्, जीविष्यति" इति वा जीवः। तथा सति सिद्धानामपि जीवत्वं सिद्धं जीवितपूर्वत्वात्। संप्रति न जीवन्ति सिद्धाः; भूतपूर्वगत्या जीवत्वमेषाम् इत्यौपचारिकत्वं स्यात्, मुख्यं चेष्यते; नैष दोषः; भावप्राणज्ञानदर्शनानुभवनात् साम्प्रतिकमपि जीवत्वमस्ति[२]।"

अर्थात् प्राण पर्यायके द्वारा भूत, भविष्यत्-वर्तमान इन तीनों कालोंमें दशप्राणों में जीवनका अनुभव करनेसे जीता है, जीता था और जीवेगा वह जीव है। जीवका इसप्रकार लक्षण होनेपर सिद्ध भी जीव हैं, क्योंकि वे पूर्वमें अर्थात् भूतकालमें दशों प्राणके द्वारा जीते थे, किन्तु वर्तमानकालमें सिद्ध भगवान दश प्राणोंके द्वारा नहीं जीते हैं। भूतपूर्व नयकी अपेक्षा वे दशों प्राणों द्वारा जीते थे इसलिए उनके जीवत्व उपचारसे है। मुख्यनयसे भी सिद्ध भगवान जीव हैं, इसमें भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि-ज्ञान-दर्शनरूप भाव प्राणोंका अनुभव करनेसे वर्तमानमें भी जीव है।

शङ्का – औपशमिकादि भाव नहीं बन सकते, क्योंकि आत्मा अमूर्त है। ये औपशमिकादिभाव कर्मबन्धकी अपेक्षा होते हैं, किन्तु अमूर्त आत्माके कर्मोंका बन्ध संभव नहीं है ?

समाधान – आत्माके अमूर्तत्वके विषयमें अनेकान्त है। यह कोई एकान्त नहीं कि आत्मा अमूर्त ही है। कर्मबन्धरूप पर्यायकी अपेक्षा उससे युक्त होनेके कारण कथंचित् मूर्त है और शुद्धस्वरूपकी अपेक्षा कथंचित् अमूर्त है।[३]

शङ्का – यदि ऐसा है तो कर्मबन्धके आवेशसे आत्माका ऐक्य हो जानेपर आत्माका कर्मोंसे भेद नहीं रहता ?

समाधान – यह कोई दोष नहीं, यद्यपि बन्धकी अपेक्षा अभेद है तो भी लक्षण के भेदसे आत्माका भेद जाना जाता है। कहा भी है–

---

१. ध.पु. १४ पृ. १३-१४। २. राजवार्तिक १-४-७। ३. सर्वार्थसिद्धि अ. २-७।

बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स णाणत्तं।
तम्हा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होदि जीवस्स॥

अर्थात् आत्मा और कर्मबन्धकी अपेक्षा एक हैं तो भी लक्षणकी अपेक्षा भिन्न हैं। इसलिए जीवका अमूर्तत्व अनेकान्तरूप है अर्थात् एक अपेक्षासे अमूर्त और दूसरी अपेक्षासे अमूर्त नहीं है, किन्तु मूर्त है।

औपशमिकादि पाँच भावों के उत्तरभेदसम्बन्धी सन्दृष्टि–

भावोंके नाम	उत्तरभेदोंकी संख्या	उत्तरभेदोंके नाम
औपशमिक	२	उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्र।
क्षायिक	९	क्षायिकज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य एवं क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र।
क्षायोपशमिक	१८	मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययरूप ४ ज्ञान, चक्षु-अचक्षु-अवधिरूप ३ दर्शन, कुमति-कुश्रुत-कुअवधि (विभंग) रूप ३ अज्ञान, क्षायोपशमिकदान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य, वेदकसम्यक्त्व, सरागचारित्र तथा देशसंयम।
औदयिक	२१	नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य व देवरूप ४ गति, स्त्री-पुरुष व नपुंसकरूप ३ वेद, क्रोध-मान-माया व लोभरूप ४ कषाय, मिथ्यात्व, कृष्ण-नील-कपोत-पीत-पद्म व शुक्लरूप ६ लेश्या, असिद्धत्व, असंयम और अज्ञान।
पारिणामिक	३	जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।
	५३	

अब भावोंके स्व-परसंयोगी भङ्गोंको प्राप्त करनेकी विधि कहते हैं–

ओघादेसे संभवभावं मूलुत्तरं ठवेदूण।
पत्तेये अविरुद्धे परसगजोगेवि भंगा हु॥८२०॥

अर्थ – गुणस्थान और मार्गणामें होनेवाले मूल और उत्तरभावोंको स्थापन करके प्रत्येक भंग और विरोधरहित स्वसंयोगी और परसंयोगी भंगोंको प्राप्त करना चाहिये।

विशेषार्थ – एकभंगको प्रत्येक भंग और जिनमें संयोग पाया जावे उनको संयोगी भंग कहते हैं। संयोग दो प्रकारके हैं (१) स्वसंयोग (२) परसंयोग। जहाँ अपने ही किसी एक उत्तरभेदके साथ संयोग हो उसे स्वसंयोग कहते हैं जैसे– औपशमिकसम्यक्त्व का औपशमिकचारित्रके साथ अथवा गतिरूप औदयिकभावका दूसरी जातिरूप औदयिकभावके साथ संयोग होना। जहाँ अन्य भावके किसी भेदके साथ संयोग कहा जावे वह परसंयोगी है जैसे– औपशमिकभावके भेदका औदयिकभावके भेदके साथ अथवा औदयिकका क्षायिकभावके साथ संयोग होना।

अब गुणस्थानों में मूलभाव और स्व-पर संयोगरूप भङ्गों की संख्या कहते हैं–

मिच्छतिये तिण्णुक्के दो सुवि सिद्धेवि मूलभावा हु।
तिग पण पणगं चउरो तिग दोण्णि य संभवा होंति ॥८२१॥

अर्थ – मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें ३-३ मूलभाव, असंयतादि चार गुणस्थानोंमें ५-५, उपशमश्रेणीसम्बन्धी चार गुणस्थानोंमें ५-५, क्षपकश्रेणि तथा क्षीणकषायगुणस्थानमें ४, सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें ३-३ तथा सिद्धोंमें २ मूलभाव पाए जाते हैं।

विशेषार्थ– मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र गुणस्थानमें क्षायोपशमिक, औदयिक व पारिणामिकरूप तीन-तीन मूलभाव, असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त तथा अपूर्वकरण से उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त उपशमश्रेणिमें ५, क्षपकश्रेणि तथा क्षीणकषायगुणस्थानमें औपशमिकभाव बिना शेष चार, सयोग व अयोगकेवलीगुणस्थानमें औदयिक, क्षायिक व पारिणामिकरूप तीन-तीन तथा सिद्धोंके क्षायिक व पारिणामिकरूप दो मूलभाव जानने चाहिए।

गुणस्थान की अपेक्षा मूलभावसम्बन्धी सन्दृष्टि–

गुणस्थान	मूलभावों की संख्या	मूलभावोंके नाम
मिथ्यात्व	३	औदयिक-मिश्र व पारिणामिक
सासादन	३	औदयिक-मिश्र व पारिणामिक
मिश्र	३	औदयिक-मिश्र व पारिणामिक
असंयत	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
देशसंयत	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
प्रमत्त	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक

अप्रमत्त	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
उपशमक अपूर्व.	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
उपशमक अनिवृ.	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
उपशमक सूक्ष्मसा.	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
उपशान्तकषाय	५	औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
क्षपक अपूर्वकरण से क्षीणकषायपर्यंत	४	औदयिक-क्षायोपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
सयोगकेवली	३	औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक
अयोगकेवली	३	औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक
सिद्ध	२	क्षायिक-पारिणामिक

प्रकरणप्राप्त उत्तरभावों को गुणस्थानों में कहते हैं–

मिथ्यात्वगुणस्थानमें औदयिकभावके २१, क्षायोपशमिकके ३ अज्ञान, २ दर्शन, पाँचलब्धि ये १० और पारिणामिकके ३ इसप्रकार (२१+१०+३) ३४ भाव हैं। सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वकेबिना औदयिकभावके २०; क्षायोपशमिकभावके ३ अज्ञान, दो दर्शन और पाँचलब्धि ये १० और जीवत्व-भव्यत्वरूप दो पारिणामिक इसप्रकार (२०+१०+२) ३२ भाव हैं। मिश्रगुणस्थानमें मिथ्यात्वबिना औदयिकके २०; क्षायोपशमिक उपर्युक्त १०; पारिणामिकके जीवत्व और भव्यत्व ये दो ऐसे सर्व (२०+१०+२) ३२ भाव हैं। असंयतगुणस्थानमें मिथ्यात्वबिना २० औदयिकभाव; मत्यादि तीनज्ञान, तीनदर्शन, पाँचलब्धि और सम्यक्त्व ये १२ मिश्र (क्षायोपशमिक) के; औपशमिकका उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकका क्षायिकसम्यक्त्व एवं पारिणामिक भावके जीवत्व और भव्यत्व इसप्रकार (२०+१२+१+१+२) ३६ भाव पाये जाते हैं। देशसंयतगुणस्थानमें मनुष्य-तिर्यञ्चगति, चारकषाय, तीनलिङ्ग, तीनशुभलेश्या, असिद्धत्व और अज्ञान ये १४ औदयिकभाव; तीन ज्ञान, तीन दर्शन व ५ लब्धि, वेदकसम्यक्त्व एवं देशसंयम ये १३ क्षायोपशमिकभाव, औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, जीवत्व-भव्यत्व इसप्रकार सर्व (१४+१३+१+१+२) ३१ भाव हैं। इन ३१ भावोंमेंसे तिर्यंचगति व देशसंयम कमकरके मनःपर्ययज्ञान व सरागसंयम मिलानेसे प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें भी ३१-३१ भाव हैं तथा इन्हीं ३१ भावोंमेंसे पीत-पद्मलेश्या, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व तथा सरागचारित्र इन चारको कमकरके औपशमिक व क्षायिकचारित्र मिलानेसे अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २९-२९ भाव हैं। इन २९ भावोंमेंसे लोभबिना शेष ३ कषाय और ३ लिङ्ग घटाकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें

२३ भाव, इन्हीं २३ भावोंमेंसे लोभकषाय और क्षायिकचारित्र कमकरके उपशान्तकषायगुणस्थानमें २१ भाव हैं, इनमेंसे औपशमिकके दो भावोंको कमकरके तथा क्षायिकचारित्र मिलानेपर क्षीणकषायगुणस्थानमें २० भाव हैं। मनुष्यगति, शुक्ललेश्या और असिद्धत्व ये तीन औदयिकभाव, क्षायिकके ९, जीवत्व-भव्यत्व ये दो पारिणामिकभाव इसप्रकार (९+३+२) १४ भाव सयोगीगुणस्थानमें पाए जाते हैं तथा इन्हीं १४ में से शुक्ललेश्या कम करनेपर अयोगीगुणस्थानमें १३ भाव हैं। सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य एवं चारित्ररूप ५ क्षायिक तथा जीवत्वरूप एक पारिणामिक इसप्रकार ६ भाव सिद्धोंमें पाए जाते हैं। यह कथन नानाजीवोंके नानाकालकी अपेक्षा से है, अब एक जीवके एक कालमें जितने भाव सम्भव हैं उनकी अपेक्षा आगे कथन करेंगे।

गुणस्थान की अपेक्षा उत्तरभावसम्बन्धी सन्दृष्टि-

गुणस्थान	औपशमिक-भावके २ भेदोंमेंसे	क्षायिक-भावके ९ भेदोंमेंसे	मिश्र (क्षायोपशम) भावके १८ भेदोंमेंसे	औदयिकभावके २१ भेदोंमेंसे	पारिणामिक-भावके ३ भेदोंमेंसे	भावोंकी कुल संख्या
१	२	३	४	५	६	७
मिथ्यात्व	०	०	१० (३ अज्ञान, २ दर्शन व ५ लब्धि)	२१	३	३४
सासादन	०	०	१० (उपर्युक्त)	उपर्युक्त २१ में से मिथ्यात्वके बिना शेष २०	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३२
मिश्र	०	०	१० (३ मिश्रज्ञान २ दर्शन व ५ लब्धि)	उपर्युक्त २१ में से मिथ्यात्वके बिना शेष २०	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३२
असंयत	उपशम-सम्यक्त्व	क्षायिक-सम्यक्त्व	१२ (३ मति आदि ज्ञान, ३ दर्शन, ५ लब्धि व वेदकसम्यक्त्व	उपर्युक्त २१ में से मिथ्यात्वके बिना शेष २०	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३६
देशसंयत	१ उपशम-सम्यक्त्व	१ क्षायिक-सम्यक्त्व	उपर्युक्त १२ व १ देशसंयम (१३)	१४ (तिर्यञ्च व मनुष्यगति, ४ कषाय, ३ वेद, शुभलेश्या ३, असिद्धत्व और अज्ञान)	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३१
प्रमत्त	१ उपशम-सम्यक्त्व	१ क्षायिक-सम्यक्त्व	१२ चतुर्थगुणस्थान-सम्बन्धी तथा मनः-पर्ययज्ञान, सराग-चारित्र (१४)	१३ (उपर्युक्त १४में से एक तिर्यञ्चगति कम करनेसे)	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३१

१	२	३	४	५	६	७
अप्रमत्त	१ उपशम-सम्यक्त्व	१ क्षायिक-सम्यक्त्व	१२ चतुर्थगुणस्थान-सम्बन्धी तथा मनः-पर्ययज्ञान, सराग-चारित्र (१४)	१३ (उपर्युक्त १४में से एक तिर्यञ्चगति कम करनेसे)	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	३१
अपूर्वकरण	उपशम सम्यक्त्व उपशम चारित्र	क्षायिक-सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र	१२ (उपर्युक्त १४में से वेदकसम्यक्त्व और सरागचारित्र कम किया)	११ (उपर्युक्त १३मे से पीत व पद्म लेश्या कम की)	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	२९
अनिवृत्तिक.	२ उपशम सम्यक्त्व उपशम चारित्र	२ क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र	१२ (उपर्युक्त १४में से वेदकसम्यक्त्व और सरागचारित्र कम किया)	११ "	२ "	२९
सूक्ष्मसाम्प.	२ उपशम सम्यक्त्व उपशम चारित्र	"	१२	५ (मनुष्यगति,लोभ, अज्ञान, असिद्धत्व और शुभलेश्या १)	उपर्युक्त ३ में से अभव्य बिना शेष २	२३
उपशान्त-कषाय	२ उपशम सम्यक्त्व उपशम चारित्र	क्षायिक-सम्यक्त्व	१२	४ (उपर्युक्त ५में से १ लोभको कम किया)	२ "	२१
क्षीणकषाय	०	क्षायिक-सम्यक्त्व क्षायिक-चारित्र	१२	४ (उपर्युक्त ५में से १ लोभको कम किया)	२ "	२०
सयोगी	०	९ (सभी)	०	३ (मनुष्यगति, असिद्धत्व और शुक्ल लेश्या)	२ "	१४
अयोगी	०	९ (सभी)	०	२ (मनुष्यगति व असिद्धत्व	२ (अभव्यत्व बिना शेष)	१३
सिद्ध	०	५ (सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान चारित्र व वीर्य)	०	०	१ जीवत्व	६

तत्थेव मूलभंगा दस छव्वीसं कमेण पणतीसं।
उगुवीसं दस पणगं ठाणं पडि उत्तरं वोच्छं॥८२२॥

अर्थ – पूर्वोक्त गाथामें कथित (मिथ्यात्वादि ३ गुणस्थान, असंयतादि चारगुणस्थान, उपशमश्रेणीके चारगुणस्थान, क्षपकश्रेणीके चारगुणस्थान, सयोगी-अयोगीगुणस्थान और सिद्ध इन) छह स्थानोंमें क्रमसे मूलभङ्ग १०-२६-३५-१९-१० व ५ हैं। इसके अनन्तर उत्तरभावोंको कहेंगे।

विशेषार्थ – अब एक जीवके एककालमें जितने भाव सम्भव हैं उसकी अपेक्षा कथन करते हैं– मिथ्यात्वादि तीनगुणस्थानोंमें मूलभाव तीन हैं। इनमें प्रत्येक भंग तो औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पृथक्-पृथक् जानना। द्विसंयोगीभंग भी औदयिक-मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक-पारिणामिक एवं क्षायोपशमिक-पारिणामिकरूप तीन ही हैं। औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकरूप त्रिसंयोगीभंग एक ही है, क्योंकि औदयिकमें औदयिक, क्षायोपशमिकमें क्षायोपशमिक और पारिणामिकमें पारिणामिकरूप तीन स्वसंयोगीभङ्ग, इसप्रकार सर्व (३+३+१+३) १० भङ्ग जानना। प्रत्येक, द्विसंयोगी व त्रिसंयोगी आदि भङ्गोंकी संख्या प्राप्त करनेका विधान जिसप्रकार बन्धप्रत्ययअधिकार गाथा ७९९ में कहा उसीप्रकार जानना। विवक्षितसंख्याके प्रमाणरूप अङ्कसे लेकर एक-एक कम संख्यारूप अङ्क लिखनेपर अंशराशि समझना तथा उसके नीचे एकसे लेकर एक-एक अधिकरूप अङ्क लिखनेसे हरराशिका प्रमाण होता है। प्रथम अंशसे अगली अंशराशिको और प्रथम हरराशिसे अगली हरराशिको गुणाकरके जो हरराशि प्राप्त हुई उससे अंशराशिके प्रमाणमें भाग देनेपर प्रत्येक, द्विसंयोगादि भङ्गोंका प्रमाण आता है। यहाँ मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें मूलभाव तीन हैं अतः ३-२-१ इसप्रकार क्रमसे अङ्क लिखे और इनके नीचे १-२-३ अङ्क लिखनेसे अंश और हरराशि हुई। प्रथम तीनके अङ्कको एकका भाग देनेपर (३÷१) लब्ध ३ आया सो यह प्रत्येक भङ्गका प्रमाण है तथा ३ से दो को गुणाकर उसमें एक गुणा दो अर्थात् २ का भाग देनेसे (६÷२) लब्ध ३ आया जो कि द्विसंयोगी भङ्गका प्रमाण है। पुनः ६ से एकको गुणाकरके ६×१=६ आये। इसमें २ गुणा तीन अर्थात् ६ का भाग देनेपर एक लब्ध आया सो यह त्रिसंयोगी भङ्गका प्रमाण है। इसी विधिसे आगे मूल व उत्तरभावोंके कथनमें भी प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भङ्गोंका विधान जानना चाहिये। आगे असंयत, देशसंयत, प्रमत्त व अप्रमत्त इन चारगुणस्थानोंमें मूलभाव पाँच-पाँच हैं। पूर्वोक्त विधानसे परसंयोगीमें प्रत्येक भङ्ग ५ और द्विसंयोगीभङ्ग १० हैं, किन्तु यहाँ औपशमिकक्षायिकका संयोगरूप एक भङ्ग नहीं होनेसे ९ ही भङ्ग हैं, क्योंकि यहाँ औपशमिक और क्षायिकका कोई भेद परस्परमें नहीं मिलता तथा त्रिसंयोगी भङ्ग भी १० ही हैं, किन्तु उनमें औपशमिक-क्षायिक-औदयिक, औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक, औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकरूप तीन त्रिसंयोगी भङ्ग नहीं होनेसे यहाँ ७ ही त्रिसंयोगी भङ्ग हैं। चतुःसंयोगीभंग पाँच हैं, किन्तु औपशमिक-क्षायिक औदयिक-क्षायोपशमिक, औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक, औपशमिक-क्षायिक-औदयिक-पारिणामिकरूप तीन चतुःसंयोगीभंग नहीं होनेसे यहाँ २ ही हैं। उपशम व क्षायिक एक साथ नहीं होते इसलिए पाँचसंयोगी भंगोंका अभाव है तथा मिश्रमें मिश्र (क्षायोपशमिकमें क्षायोपशमिक), औदयिकमें औदयिक और पारिणामिकमें पारिणामिकरूप स्वसंयोगी भंग तीन हैं। उपशमसम्यक्त्वमें उपशमचारित्र और क्षायिकसम्यक्त्वमें क्षायिकचारित्रादि नहीं होते अतः औपशमिकमें औपशमिक और क्षायिकमें क्षायिकभावरूप दो भंग नहीं कहे हैं। इस प्रकार (५+९+७+२+०+१+१+१) सर्व २६ भंग जानना।

आगे उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें भी मूलभाव पाँच-पाँच ही हैं। इनमें परसंयोगी भंगोंमें प्रत्येक भंग ५, द्विसंयोगी भंग १०, त्रिसंयोगीभंग १०, चतु:संयोगीभंग ५ और पञ्चसंयोगी एक भंग है। यहाँ क्षायिकसम्यक्त्वके होनेपर उपशमचारित्र हो सकता है अत: उपशम और क्षायिकभावका भी संयोग जानना, किन्तु क्षायिकमें क्षायिकभावरूप स्वसंयोगी भंग नहीं है इसलिए यहाँ क्षायिकसम्यक्त्वमें अन्य कोई क्षायिकभावका चारित्रादि भेद नहीं होता, इसप्रकार शेष चारभंग जानना (५+१०+१०+५+१+१+१+१+१+०) ये सर्व ३५ भंग हुए तथा क्षपकश्रेणी के चारगुणस्थानोंमें क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक व पारिणामिकरूप चार-चार भाव हैं। यहाँ परसंयोगमें प्रत्येकभंग चार, द्विसंयोगीभंग छह, त्रिसंयोगीभंग चार और चतु:संयोगी भंग एक है तथा स्वसंयोगमें क्षायिकसम्यक्त्वमें क्षायिकचारित्र भी सम्भव है अत: चारों भावोंकी अपेक्षा चार भंग हैं। इसप्रकार (४+६+४+१+४) सर्व १९ भंग जानना। सयोग व अयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिक, पारिणामिक और औदयिक ये तीन भाव हैं। परसंयोगमें प्रत्येकभंग तीन, द्विसंयोगीभंग तीन और त्रिसंयोगीभंग एक तथा स्वसंयोगमें उपर्युक्त तीन भावोंकी अपेक्षा तीन भंग इसप्रकार (३+३+१+३) मिलकर दशभंग हुए। सिद्धोंके क्षायिक व पारिणामिक ये दो मूलभाव हैं। यहाँ प्रत्येकभंग २, द्विसंयोगीभंग एक तथा स्वसंयोगी भंग दो, इसप्रकार सर्व पाँचभंग हुए। (जीवत्व-अस्तित्व, वस्तुत्व आदि पारिणामिक स्वसंयोगी भंग सिद्धोंमें भी सम्भव है।)

गुणस्थान की अपेक्षा मूलभावसम्बन्धी प्रत्येक, परसंयोगी व स्वसंयोगी भंगों की सन्दृष्टि —

गुणस्थान	मूलभाव	भंग	परसंयोगीभङ्ग				स्वसंयोगी-भङ्ग	सर्वभङ्गों की संख्या	विशेष
			द्विसंयोगीभङ्ग	त्रिसंयोगीभङ्ग	चतु:संयोगीभङ्ग	पंचसंयोगी भङ्ग			
१. मिथ्या	मिश्र, औदयिक पारिणामि. (३)	३	मिश्र-औद. मिश्र-पारिणा. औद. पारिणा. (३)	मिश्र-औदयिक व पारिणामिक रूप (१)	०	०	मिश्र-मिश्र औद.-औद. पारि.-पारि. (३)	१०	उपशमादिक व क्षायिकादि भावों की भंग परंपरा से नहीं मिलती।
२. सासादन	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
३. मिश्र	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
४. असंयत	औप.क्षायि. मिश्र,औद. पारि. (५)	५	औप.-मिश्र औप.-पारि. क्षायि.-औद. क्षायि.-मिश्र औद.-पारि. मिश्र-पारि. औप.-औद. क्षायि.-पारि. मिश्र-औद. (९)	औप.-मिश्र-औद. क्षा.-मिश्र-औद. मिश्र-औद.-पारि. क्षा.-मिश्र-पारि. औप.-मिश्र-पारि. औप.-औद.-पारि. क्षा.-औद.-पारि. (७)	औप.-मिश्र.-औद. व पारिणामिक क्षायि.-मिश्र. औद.-पारि. (२)	०	३ ,,	२६	
५. देशसंयत	५ ,,	५	९ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	
६. प्रमत्त	५ ,,	५	९ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	
७. अप्रमत्त	५ ,,	५	९ ,,	७ ,,	२ ,,	०	३ ,,	२६	

८. अपूर्वकरण (उपशमक)	५ ,,	५	औप.-मिश्र. औप.-औद. औप.-पारि. क्षायि.-मिश्र, क्षायि.-औद. क्षायि.-पारि, क्षायि.-मिश्र-औद. मिश्र-पारि. औद-पारि. औप.-क्षायि. (१०)	औप.-क्षा.-मिश्र व पारिणामिक औप.-क्षा.-मिश्र व औदयिक औप.-मिश्र-औद. व पारिणामिक औप.-क्षा.-औद. व पारिणामिक क्षा.-मिश्र.-औद. व पारिणामिक (५४)	औप. क्षायि. मिश्र औद. व पारि. (१)	औद.-औद. मिश्र-मिश्र औप.-औप. पारि.-पारि. (४)	३५
९. अनिवृत्ति (उपशमक)	५	५ ,,	१० ,,	५ ४०	१ ,,	४ ,,	३५
१०. सूक्ष्मसाम्प. (उपशमक)	५	५ ,,	१० ,,	५ ४०	१ ,,	४ ,,	३५
११. उपशांतकषाय	५	५ ,,	१० ,,	५ ४०	१ ,,	४ ,,	३५
८. अपूर्वकरण (क्षपक)	क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक (४)	४	क्षायि.-मिश्र क्षायि.-औद. क्षायि.-पारि. मिश्र-औद. मिश्र-पारि. औद-पारि. (६)	क्षायि.-मिश्र.-औद. क्षायि.-मिश्र.-पारि. क्षायि.-औद.-पारि. मिश्र.-औद.-पारि. (४)	क्षा.-मिश्र-औद. व पारिणामिक (१)	क्षा.-क्षा. मिश्र-मिश्र औद-औद पारि-पारि (४)	१९

क्षायिक×क्षायिकादि क्षेत्रवाली भंग नहीं होता, क्योंकि उपशमश्रेणी क्षायिकसम्यक्त्व के अविरोधि अन्य क्षेत्रों में क्षायिकभाव नहीं होता है।

९. अनिवृत्ति (क्षपक)	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	
१०. सूक्ष्मसाम्प. (क्षपक)	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	
१२. क्षीणकषाय	४ ,,	४	६ ,,	४ ,,	१ ,,	०	४ ,,	१९	
१३. सयोगी	क्षायिक औदयिक पारिणा. (३)	३	क्षायि.-औद. क्षायि.-पारि. औद.-पारि. (३)	क्षा.-औद. पारि. (१)	०	०	क्षा.-क्षा. औद.-औद. पारि.-पारि. (३)	१०	
१४. अयोगी	३ ,,	३	३ ,,	१ ,,	०	०	३ ,,	१०	
सिद्ध	क्षायिक पारिणा. (२)	२	क्षा.-पारि. (१)	०	०	०	क्षा.-पारि. पारि.-पारि. (२)	५	

नोट—सिद्धोंमें एक जीवत्वरूप ही पारिणामिकभाव है, भव्यत्वभाव नहीं रहता अतः पारिणामिक-पारिणामिकरूप स्वसंयोगीभङ्ग नहीं होता, ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु अस्तित्व आदिके साथ स्वसंयोगीभङ्ग बन जाता है।

अब उत्तरभावों के भेद दूसरे प्रकार से कहते हैं–

उत्तरभंगा दुविहा, ठाणगदा पदगदात्ति पढमम्हि।
सगजोगेण य भंगाणयणं णत्थित्ति णिद्दिट्ठं॥८२३॥

अर्थ – उत्तरभावोंके भंग स्थानगत और पदगतके भेदसे दो प्रकारके हैं। एक जीवके एक कालमें जितने भाव पाये जाते हैं उनके समूहका स्थान है उसकी अपेक्षा जो भंग होते हैं वे स्थानगतभंग हैं तथा एक जीवके एक कालमें जो भाव पाए जाते हैं उनकी एक जातिके या पृथक्-पृथक् जो नामपद हैं उसकी अपेक्षा भंग होते हैं वे पदगतभंग हैं। एक जीवके एक कालमें एक स्थानमें कोई अन्यस्थान सम्भव नहीं है इसलिये स्थानगत भंगोंमें स्वसंयोगी भंग नहीं पाये जाते हैं, ऐसा कहा है।

अब गुणस्थानकी अपेक्षा भावोंके स्थान और उनमें पाए जानेवाले भावोंकी संख्या ३ गाथाओंमें बताते हैं–

मिच्छदुगे मिस्सतिये, पमत्तसत्ते य मिस्सठाणाणि।
तिग दुग चउरो एक्कं, ठाणं सव्वत्थ ओदयिगं॥८२४॥[1]

---

१. **शंका**– गोम्मटसार कर्मकांड में ५ भावों के वर्णन में एक जीव के एक समय में कितने भाव हो सकते हैं ? क्या मात्र एक औदयिकभाव भी हो सकता है ? क्या पारिणामिकभाव और क्षायोपशमिकभाव न हों और केवल औदयिकभाव हो ऐसा भी सम्भव है? गाथा ८२४ का क्या अभिप्राय है?

समाधान– एक साथ एक जीव के कम-से-कम तीन भाव हो सकते हैं १. पारिणामिक, २. क्षायोपशमिक, ३. औदयिक। अधिक-से-अधिक एक जीव के एक साथ (औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक) पाँचों भाव हो सकते हैं।)

क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव उपशांतमोह गुणस्थान में जब चारित्रमोह का उपशम कर देता है तो उसके चारित्रमोह की अपेक्षा औपशमिकभाव, दर्शनमोहनीय की अपेक्षा क्षायिकभाव, ज्ञान-दर्शन-वीर्य की अपेक्षा क्षायोपशमिकभाव, गतिजाति आदि की अपेक्षा औदयिकभाव तथा जीवत्व की अपेक्षा पारिणामिकभाव इस प्रकार एक जीव के एक साथ पाँचों भाव सम्भव हैं।

गति-जाति आदि का उदय चौदहवें-गुणस्थान के अन्त तक रहता है, अतः औदयिकभाव सब गुणस्थानों में रहता है। चेतनारूप जीवत्वपारिणामिकभाव संसारी और मुक्त दोनों प्रकार के जीवों में सदा रहता है, किन्तु आयु आदि प्राणरूप जीवत्व अशुद्धपारिणामिकभाव चौदहवें गुणस्थान तक ही रहता है। मुक्त जीवों में आयु आदि प्राण नहीं पाये जाते हैं। ज्ञान, दर्शन और वीर्य की अपेक्षा क्षायोपशमिकभाव क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। जिनके उपशम या क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं है उन जीवों के औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं। (शेष अगले पृष्ठ पर)

तत्थावरणजभावा, पणछस्सत्तेव दाणपंचेव।
अयदचउक्के वेदगसम्मं देसम्मि देसजमं ॥८२५॥

रागजमं तु पमत्ते, इदरे मिच्छादिजेट्ठठाणाणि।
बेभंगेण विहीणं, चक्खुविहीणं च मिच्छदुगे ॥८२६॥

अवहिदुगेण विहीणं, मिस्सतिये होदि अण्णठाणं तु।
मणणाणेणवहिदुगे णुभयेणूणं तदो अण्णे ॥८२७॥

अर्थ – मिथ्यात्वादि दो, मिश्रादि तीन, और प्रमत्तादि सातगुणस्थानोंमें क्रमसे क्षायोपशमिक भावोंके स्थान ३-२ व ४ जानना तथा औदयिकभावका उपर्युक्त सभी गुणस्थानोंमें एक-एक ही भेद पाया जाता है। उपर्युक्त मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंके ३-२ व ४ रूप स्थानोंमें क्षायोपशमिक ज्ञानावरण और दर्शनावरणके निमित्तसे उत्पन्न हुए क्षायोपशमिकभाव मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें ३ अज्ञान व २ दर्शनरूप ५ हैं, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें आदिके ३ ज्ञान व ३ दर्शनरूप ६ हैं। प्रमत्तादि ७ में मनःपर्यय सहित ४ ज्ञान और तीन दर्शनरूप हैं तथा क्षायोपशमिकरूप दानादि पाँचों लब्धियाँ मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त पायी जाती हैं। असंयतादि चार गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्व एवं देशसंयतगुणस्थानमें देशसंयम पाया जाता है, किन्तु सरागसंयम प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानमें होता है। इसप्रकार यथासम्भव भाव मिलानेसे क्षायोपशमिकभावके उत्कृष्टस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानसे क्षीणकषायपर्यन्त क्रमशः १०-१०-११-१२-१३-१४-१४-१२-१२-१२-१२ व १२ भावरूप जानना। (अर्थात् मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें ३ अज्ञान, दो दर्शन और पाँच दानादिलब्धिकी अपेक्षा १०-१० भावरूप; मिश्रगुणस्थानमें ३ मिश्रज्ञान, ३ दर्शन व ५ दानादिलब्धिकी अपेक्षा ११ भावरूप और इन्हीं ११में वेदकसम्यक्त्व मिलनेपर असंयतगुणस्थानमें १२ भावरूप; इन्हीं १२में देशसंयम मिलानेसे देशसंयतगुणस्थानमें १३; प्रमत्त व अप्रमत्तमें देशसंयम कमकरके सरागसंयम और मनःपर्ययज्ञान मिलानेसे १४-१४ भावरूप तथा अपूर्वकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त चार ज्ञान, ३ दर्शन व ५ दानादि लब्धियोंकी अपेक्षा १२-१२ भावरूप उत्कृष्टस्थान हैं।)

ऐसा कोई भी जीव नहीं है जिसके मात्र औदयिकभाव रह सकता हो, क्योंकि चेतनारूप जीवत्वपारिणामिकभाव तो सब जीवों के होता है और औदयिकभाव सब संसारी जीवों के पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानतक रहता है।

गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ८२४ में तो यह बतलाया है कि 'मिथ्यादृष्टि आदि दो गुणस्थानों में क्षायोपशमिकभाव के ३ स्थान, मिश्रादि तीन गुणस्थानों में क्षायोपशमिकभाव के २ स्थान और प्रमत्त आदि सात गुणस्थानों में क्षायोपशमिकभाव के ४ स्थान होते हैं; किंतु इन सब बारह गुणस्थानों में से प्रत्येक गुणस्थान में औदयिकभाव का एक-एक ही स्थान होता है। इस गाथा से यह सिद्ध नहीं होता कि किसी भी जीव के मात्र एक औदयिकभाव हो सकता है।

(पं. रतनचन्द्र मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ ५२३)

मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें विभंगज्ञानरहित ९ का, चक्षुदर्शनसे रहित ८ का और उपर्युक्त १० का इसप्रकार ३ स्थान होते हैं, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें एक तो अपना-अपना उत्कृष्टस्थान तथा अवधिज्ञान व दर्शनरहित मिश्रमें ९ का, असंयतमें १० का एवं देशसंयतमें ११ का इसप्रकार दो-दो स्थान हैं। प्रमत्तादि सात गुणस्थानोंमें एक-एक तो अपना उत्कृष्टस्थान है एवं एक-एक मन:पर्ययज्ञानरहित, एक-एक अवधिज्ञान व अवधिदर्शनरहित तथा एक-एक अवधि व मन:पर्ययज्ञान और अवधिदर्शनरहित (अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्तमें १३-१२ व ११ का और एक-एक अपना उत्कृष्ट ऐसे ४-४ स्थान, अपूर्वकरणादि पाँच गुणस्थानोंमें ११-१० व ९ के तथा एक-एक अपना उत्कृष्ट ऐसे ४-४ स्थान जानना।)

औदयिकभावके २१ भेदोंमें से एक जीव और एक कालकी अपेक्षा मिथ्यात्वगुणस्थानमें ४ गति, ३ वेद, ४ कषाय व ६ लेश्यामेंसे एक-एक तथा मिथ्यात्व, असिद्धत्व, असंयम और अज्ञानरूप ८ भाव, सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना सात-सात भाव, देशसंयतसे अनिवृत्तिकरणके सवेदभागपर्यन्त मिथ्यात्व-असंयमबिना ६-६ भाव, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके अवेदभागमें और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम व वेद बिना पाँच-पाँच भाव, उपशान्तकषाय व क्षीणकषायगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम-वेद और कषायबिना चार-चार भाव, सयोगीगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम-वेद-कषाय व अज्ञानबिना ३ भाव, अयोगीगुणस्थानमें मिथ्यात्व-असंयम-वेद-कषाय-अज्ञान व लेश्याबिना मनुष्यगति-असिद्धत्वरूप दो भाव पाये जाते हैं।

गुणस्थानकी अपेक्षा १८ मिश्र (क्षायोपशमिक) भावोंमें स्थानगत भावसम्बन्धी सन्दृष्टि—

गुणस्थान	स्थानसंख्या	भावसंख्या	भावोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	१	१०	३ अज्ञान, २ दर्शन और ५ दानादि लब्धियां।
	१	९	२ अज्ञान (कुमति-कुश्रुत) २ दर्शन, ५ लब्धि।
	१	८	२ अज्ञान (कुमति-कुश्रुत) १ अचक्षुदर्शन, ५ लब्धि।
सासादन	३	१०-९ व ८	पूर्वोक्तानुसार।
मिश्र	१	११	३ मिश्रज्ञान, ३ दर्शन, ५ लब्धि।
	१	९	२ मिश्रज्ञान, २ दर्शन (चक्षु-अचक्षु), ५ लब्धि।
असंयत	१	१२	३ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, ५ लब्धि।
	१	१०	२ ज्ञान (मति-श्रुत), २ दर्शन (चक्षु-अचक्षु), ५ लब्धि, १ वेदकसम्यक्त्व।

देशसंयत	१	१३	३ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, ५ लब्धि, १ देशसंयम
	१	११	उपर्युक्त १३ में से अवधिज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१३-२=११)
प्रमत्त	१	१४	४ ज्ञान, ३ दर्शन, १ वेदकसम्यक्त्व, १ सरागसंयम, ५ लब्धि।
	१	१३	उपर्युक्त १४ में से १ मनःपर्ययज्ञान कम करनेसे (१४-१=१३)
	१	१२	उपर्युक्त १४ में से अवधिज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१४-२=१२)
	१	११	उपर्युक्त १४ में से अवधि-मनःपर्ययज्ञान व अवधिदर्शन कम करनेसे (१४-३=११)
अप्रमत्त	४	१४-१३-१२ व ११	प्रमत्तगुणस्थानवत्।
अपूर्वकरण	१	१२	४ ज्ञान, ३ दर्शन और ५ लब्धि।
	१	११	उपर्युक्त १२-१ (मनःपर्ययज्ञान)
	१	१०	उपर्युक्त १२-२ (अवधिज्ञान-अवधिदर्शन)
	१	९	उपर्युक्त १२-३ (अवधि-मनःपर्ययज्ञान व अवधिदर्शन)
अनिवृत्तिकरण	४	१२-११-१० व ९	अपूर्वकरण गुणस्थानवत्।
सूक्ष्मसाम्पराय	४	१२-११-१० व ९	अपूर्वकरण गुणस्थानवत्।
उपशान्तकषाय	४	१२-११-१० व ९	अपूर्वकरण गुणस्थानवत्।
क्षीणकषाय	४	१२-११-१० व ९	अपूर्वकरण गुणस्थानवत्।

गुणस्थान की अपेक्षा २१ औदयिक भावों में स्थानगतभावों की सन्दृष्टि--

गुणस्थान	स्थान-संख्या	भाव-संख्या	भावोंका विशेष स्पष्टीकरण
मिथ्यात्व	१	८	चारगतिमेंसे १, तीनवेदोंमेंसे १, चारकषायोंमेंसे १, छहलेश्यामेंसे १, १ मिथ्यात्व, १ अज्ञान, १ असंयम, १ असिद्धत्व।
सासादन	१	७	पूर्वोक्त ८-१ मिथ्यात्व।
मिश्र	१	७	पूर्वोक्त ८-१ मिथ्यात्व।
असंयत	१	७	पूर्वोक्त ८-१ मिथ्यात्व।
देशसंयत	१	६	पूर्वोक्त ७-१ असंयम।
प्रमत्त	१	६	पूर्वोक्त ७-१ असंयम।
अप्रमत्त	१	६	पूर्वोक्त ७-१ असंयम।
अपूर्वकरण	१	६	पूर्वोक्त ७-१ असंयम।
अनिवृत्तिकरण (सवेदभाग)	१	६	पूर्वोक्त ८-२ मिथ्यात्व-असंयम।
अनिवृत्तिकरण (अवेदभाग)	१	५	पूर्वोक्त ६ में से वेद के बिना ५।
सूक्ष्मसाम्पराय	१	५	पूर्वोक्त ६ में से वेद के बिना ५।
उपशांतकषाय	१	४	पूर्वोक्त ५-१ कषाय।
क्षीणकषाय	१	४	पूर्वोक्त ५-१ कषाय।
सयोगकेवली	१	३	पूर्वोक्त ४-१ अज्ञान।
अयोगकेवली	१	२	पूर्वोक्त ४-२ (अज्ञान व लेश्या) अर्थात् मनुष्यगति व असिद्धत्व शेष रहा।

पूर्वोक्त गाथामें कथित औदयिकभावके स्थानोंमें भावोंके बदलनेसे जो भंग बनते हैं उनको गुणस्थानोंमें कहते हैं–

लिंगकसाया लेस्सा संगुणिदा चदुगदीसु अविरुद्धा।
बारस बावत्तरियं तत्तियमेत्तं च अडदालं ॥८२८॥

णवरि विसेसं जाणे सुर मिस्से अविरदे य सुहलेस्सा।
चदुवीस तत्थ भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८२९॥ जुम्मं॥

अर्थ – नरकादि चारगतियोंमें विरोधरहित यथासम्भव लिंग, कषाय और लेश्याका परस्पर गुणा करनेपर क्रमसे १२-७२-७२ व ४८ भंग होते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि देवगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें तीन शुभलेश्याएँ हैं, क्योंकि भवनत्रिकदेवोंकी अपर्याप्तावस्थामें तृतीय-चतुर्थगुणस्थान सम्भव नहीं हैं। अतः स्त्री-पुरुषवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याकी अपेक्षा परस्परगुणा करनेपर २४ भंग होते हैं। ऐसा असहायपराक्रमी (वर्धमानस्वामी) जिनेन्द्रने कहा है।

विशेषार्थ – नरकगतिमें नपुंसकवेद, चारकषाय और ३ अशुभलेश्याका परस्पर गुणाकरनेसे (१×४×३) १२ भंग हैं, तिर्यंच व मनुष्यगतिमें तीनवेद, चारकषाय व ६ लेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×६) ७२-७२ भंग, देवगतिमें स्त्री व पुरुषवेद, चारकषाय व ६ लेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (२×४×६) ४८ भंग हैं। यहाँ देवगतिमें ६ लेश्यासे गुणा करनेका कारण यह है कि भवनत्रिकदेवोंके अपर्याप्तावस्थामें तीन अशुभलेश्या होती हैं। इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी सर्व (१२+७२+७२+४८) २०४ भंग मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानसम्बन्धी गुण्य (जिसमें गुणा किया जावे) राशि है, किन्तु देवगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें स्त्री व पुरुषवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (२×४×३) २४ भंग होते हैं। यहाँ ३ शुभलेश्या का ही गुणा करनेका कारण यह है कि भवनत्रिककी अपर्याप्तावस्थामें तृतीय व चतुर्थ गुणस्थान नहीं है। इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी मिश्र व असंयतगुणस्थानमें क्रमसे १२+७२+७२+२४ भंग मिलकर सर्व १८० हैं। तिर्यञ्च व मनुष्यगतिके देशसंयतगुणस्थानमें तीन लिंग चारकषाय व तीन शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×३) ३६-३६ भंग तथा इन दोनोंको मिलानेसे (३६+३६) देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी सर्व ७२ भंग हैं। मनुष्यगतिमें प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३ लिंग, ४ कषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेपर (३×४×३) ३६ भंग हैं, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण के सवेदभागमें ३ लिंग, ४ कषाय व १ शुक्ललेश्याको परस्पर गुणा करनेसे १२ भंग हैं। तथा अवेदभागमें ४ कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा चारभंग हैं, अनिवृत्तिकरणके मानकषायवाले भागमें ३ कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा ३ भंग, मायावाले भागमें दो कषाय व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा २ भंग, लोभकषायवाले भागमें बादरलोभ व शुक्ललेश्याकी अपेक्षा एक ही भंग

है, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय व सयोगकेवलीगुणस्थानमें शुक्ललेश्याकी अपेक्षा एक-एक ही भंग है। इसप्रकार यहाँ अक्षसंचारसे भावोंके परिवर्तन होनेपर जितने भंग होते हैं उतने ही परस्पर गुणाकरनेसे भी भंग होते हैं सो इन भंगों का गुण्यरूपसे स्थापन करना चाहिए।

चक्खूण मिच्छसासणसम्मा तेरिच्छगा हवंति सदा।
चारिकसायतिलेस्साणब्भासे तत्थ भंगा हु ॥८३०॥

अर्थ – चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्व-सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च ही होते हैं अत: तिर्यञ्चगतिमें नपुंसकवेद, चारकषाय व ३ अशुभलेश्याको परस्पर गुणाकरनेपर (१×४×३) १२ भंग होते हैं।

खाइयअविरदसम्मे चदु सोल बहत्तरी य बारं च।
तद्देसो मणुसेव य छत्तीसा तब्भवा भंगा ॥८३१॥

अर्थ – असंयतक्षायिकसम्यग्दृष्टिके नरकगतिमें तो नपुंसकवेद, चारकषाय व कापोतलेश्याको परस्पर गुणाकरनेसे चार ही भंग हैं; तिर्यञ्चगतिमें पुरुषवेद, चारकषाय और चारलेश्याको परस्पर गुणाकरनेपर १६ भंग; मनुष्यगतिमें तीनवेद, चारकषाय व ६ लेश्याको परस्पर गुणाकरनेपर (३×४×६) ७२ भंग; देवगतिमें पुरुषवेद, चारकषाय व तीन शुभलेश्याकी अपेक्षा (१×३×४) १२ भंग हैं। इसप्रकार सर्व ४+१६+७२+१२=१०४ भंग होते हैं तथा देशसंयती क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही होते हैं अत: वहाँ तीनवेद, चारकषाय व ३ शुभलेश्याका परस्पर गुणा करनेसे ३६ भंग हैं।

परिणामो दुट्ठाणो मिच्छे सेसेसु एक्कठाणो दु।
सम्मे अण्णं सम्मं चारित्ते णत्थि चारित्तं ॥८३२॥

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें पारिणामिकभावके दो स्थान हैं। जीवत्व-भव्यत्व अथवा जीवत्व-अभव्यत्व तथा अवशेषगुणस्थानोंमें जीवत्व-भव्यत्व ऐसा एक ही स्थान है। आगेके गुणस्थानोंमें प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भेद कहनेके लिए कहते हैं कि सम्यक्त्वसहित स्थानमें अन्य सम्यक्त्व नहीं है तथा चारित्रसहित स्थानमें अन्य चारित्र नहीं है अर्थात् जहाँ उपशमसम्यक्त्व है वहाँ वेदक और क्षायिकसम्यक्त्व नहीं है, इसीप्रकार अन्यत्र भी जानना।

मिच्छदुगयदचउक्के अट्ठट्ठाणेण खयियठाणेण।
जुद परजोगजभंगा पुध आणिय मेलिदव्वा हु ॥८३३॥

अर्थ – मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें चक्षुदर्शनरहित क्षायोपशमिकसम्बन्धी ८ भावोंके स्थानोंमें

पूर्वकथित औदयिकभंगसहित तथा असंयतादि चारगुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके स्थानमें पूर्वकथित औदयिकभंगसहित परसंयोगसे उत्पन्न हुए भंगोंको पृथक् करके अपनी-अपनी राशिमें मिलाना चाहिए।

विशेषार्थ – मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें औदयिकभावके २०४ भंगोंमें अचक्षुदर्शनसम्बन्धी २४ भंग (गाथा ८३०) मिलानेसे सर्व (२०४+२४) २२८ भंग हैं। मिश्र व असंयतगुणस्थानमें औदयिकभावोंके १८० भंगोंमें (गाथा ८२९) क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी १०४ भंग (गा. ८३१) मिलानेसे सर्व (१८०+१०४) २८४ भंग हैं। देशसंयतगुणस्थानमें औदयिकभावके ७२ भंगोंमें (गा. ८२९) क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंगों (गा. ८३१) को मिलानेसे सर्व (७२+३६) १०८ भंग हैं। प्रमत्तगुणस्थान में औदयिकभावके ३६ भंगोंमें क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंग मिलानेसे सर्व (३६+३६) ७२ भंग होते हैं तथा अप्रमत्तगुणस्थानमें औदयिकभावके ३६ भंगोंमें क्षायिकसम्यग्दर्शनसम्बन्धी ३६ भंगोंको मिलानेसे सर्व (३६+३६) ७२ भंग जानने चाहिए।

अब पूर्वगाथाओंमें कथित स्थानगत भंगोंके सम्बन्धमें विशेष कथन १० गाथाओं में करते हैं–

उदयेणक्खे चडिदे, गुणगारा एव होंति सव्वत्थ।
अवसेसभावठाणेणक्खे संचारिदे खेवा ॥८३४॥

दुसु दुसु देसे दोसुवि, चउरुत्तरदुसदगसिदिसहिदसदं।
बावत्तरि छत्तीसा, बारमपुव्वे गुणिज्जपमा ॥८३५॥

बारचउतिदुगमेक्कं, थूले तो इगि हवे अजोगित्ति।
पुण बार बार सुण्णं, चउसद छत्तीस देसोत्ति ॥८३६॥

वामे दुसु दुसु दुसु तिसु, खीणे दोसुवि कमेण गुणगारा।
णव छब्बारस तीसं, वीसं वीसं चउक्कं च ॥८३७॥

पुणरवि देसोत्ति गुणो, तिदुणभछछक्कयं पुणो खेवा।
पुव्वपदे अड पंचयमेगारमुगुतीसमुगुवीसं ॥८३८॥

उगुवीस तियं तत्तो, तिदुणभछछक्कयं च देसोत्ति।
चदुसुवसमगेसु गणा, तालं रूऊणया खेवा ॥८३९॥

मिच्छादिठाणभंगा, अट्ठारसया हवंति तेसीदा।
बारसयं पणवण्णा, सहस्ससहिदा हु पणसीदा ॥८४०॥

रूवहियडवीससया, सगणउदा दससया णवेणहिया।
एक्कारसया दोण्हं, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८४१॥

पुव्वे पंचणियट्टीसुहुमे खीणे दहाण छब्बीसा।
तत्तियमेत्ता दसअडछच्चदुचदुचदुय एगूणं ॥८४२॥

उवसामगेसु दुगुणं, रूवहियं होदि सत्त जोगिम्हि।
सत्तेव अजोगिम्हि य, सिद्धे तिण्णेव भंगा हु ॥८४३॥ कुलयं॥

अर्थ – औदयिकभावके स्थानमें अक्ष (भेदों) का संचार (परिवर्तन) होनेसे सर्वत्र जो भंग हों व गुणकार और औदयिकभावके अतिरिक्त शेषभावोंके स्थानमें अक्षसंचारसे जो भंग होते हैं उन्हें क्षेप जानना।

औदयिकभावके गुण्यरूप प्रत्येकभंग मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें २०४ हैं, मिश्र व असंयतगुणस्थानमें १८०-१८०, देशसंयतगुणस्थानमें ७२, प्रमत्तादि दोगुणस्थानों में ३६-३६, अपूर्वकरणमें १२, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानोंके पाँच भागोंमें क्रमशः १२-४-३-२ व १ तथा इसके आगे अयोगीगुणस्थानपर्यन्त एक-एक हैं। चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्व से मिश्रगुणस्थानपर्यन्त १२-१२ व शून्य तथा आगे क्षायिकसम्यक्त्वसहित असंयत व देशसंयतगुणस्थानमें १०४ व ३६ गुण्यरूप भंग हैं।

उपर्युक्त गुण्यराशिमें (जिनसे गुणा जाय ऐसे) गुणकार क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ९, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें ६-६, असंयत-देशसंयतगुणस्थानमें १२-१२, प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ३०-३०, अपूर्वकरणादि तीन और क्षीणकषायगुणस्थानमें २०-२० तथा सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें चार-चार हैं, किन्तु चक्षुदर्शनरहित और क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा मिथ्यात्वसे देशसंयतगुणस्थानपर्यन्त क्रमसे गुणकार ३-२-शून्य-६ व ६ जानना तथा (गुण्यको गुणकारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें जो राशि मिलाई जावे ऐसे) क्षेप पूर्वोक्त स्थानोंमें क्रमशः मिथ्यात्वगुणस्थानमें ८, सासादनादि दो गुणस्थानोंमें ५-५, असंयतादि दो गुणस्थानोंमें ११-११, प्रमत्तादि दो गुणस्थानोंमें २९-२९, अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें १९-१९ क्षेप हैं। आगे क्षीणकषायगुणस्थानमें भी १९, सयोगी व अयोगी गुणस्थानमें ३-३ तथा चक्षुदर्शनरहित और क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा (यथायोग्य) मिथ्यात्वादि पाँचगुणस्थानोंमें क्रमसे ३-२-शून्य-६ व ६ क्षेप हैं। (मिथ्यात्वमें ३, सासादनमें २, मिश्रमें शून्य, असंयतमें ६ व

देशसंयतमें ६) उपशमश्रेणीसम्बन्धी अपूर्वकरणादि चारगुणस्थानोंमें गुणकार ४० तथा क्षेप एक कम अर्थात् ३९ है।

उपर्युक्त गुण्यराशिको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपरूपराशि मिलानेसे भंगोंकी संख्या क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें १८८३, सासादनगुणस्थानमें १२५५, मिश्रगुणस्थानमें १०८५, असंयतगुणस्थानमें [illegible], देशसंयतगुणस्थानमें [illegible], प्रमत्तादि दोगुणस्थानों में ११०९-११०९ भंग हैं। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके पाँच भाग, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषायगुणस्थान इन ८ क्षपकस्थानोंमें क्रमसे अपूर्वकरणमें १ कम दसगुने छब्बीस (२५९, २५९, ९९, ७९, ५९, ३९, ३९ व ३९) सयोगकेवलीके ७, अयोगीके ७, तथा सिद्धोंके ३ भंग जानने चाहिए। उपशमश्रेणीके चारगुणस्थानोंमें एक अधिक क्षपकश्रेणीसे दुगुणे भंग हैं। अर्थात् अपूर्वकरण और सवेदअनिवृत्तिकरणमें (२५९×२+१)=५१९ भंग हैं। इसीप्रकार १९९, १५९, ११९, ७९, ७९, ७९ भंग जानने॥८३४-८४३॥

विशेषार्थ – जिससे गुणा किया जावे उसको गुणकार और जिसको मिलाया जावे उसे क्षेप कहते हैं। भावोंके जो स्थान कहे हैं वे पृथक्-पृथक् रूपमें प्रत्येकभंग होते हैं। यहाँ औदयिकभावके स्थानरूप जो प्रत्येक भंग हैं वे तो गुणकार तथा शेषभावोंके स्थानरूप प्रत्येकभंग क्षेपरूप जानना। इसीप्रकार द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंगोंमें भी औदयिकभावके संयोगसे जो द्विसंयोगी भंग बने हैं वे गुणकार रूप हैं और जहाँ औदयिक भावका तो संयोग नहीं है अन्यभावोंके संयोगसे ही द्विसंयोगी आदि भंग होते हैं वे भंग क्षेपरूप जानना। गुणकार (औदयिकभावके प्रत्येक या द्विसंयोगादि) से गुण्यराशिको गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उसमें क्षेपरूप भंगोंकी संख्या मिलानेसे भंगोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उतने ही भंग यथासम्भव भावोंके बदलनेसे भी होते हैं।

यहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षयोपशमभावके १० व ९ भावरूप दोस्थान, औदयिकके ८ भावरूप एकस्थान, पारिणामिकके जीवत्वसहित भव्य और अभव्यरूप दो स्थान इसप्रकार सर्व (२+१+२) ५ स्थान हुए, इनके प्रत्येकभंग ५ हैं। यहाँ औदयिक का ८ भावरूप एकस्थान तो प्रत्येक भंग में गुणकार है एवं मिश्रके (क्षायोपशमिक भावके) २ व पारिणामिकभावके दोस्थान ये (२+२) ४ भंग क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीभंगोंमें औदयिकके ८ भावरूप स्थानसहित क्षायोपशमिकके १० व ९ भावके स्थानरूप दोभंग और पारिणामिकके भव्य या अभव्यरूप स्थानके दो भंग ऐसे ४ भंग तो गुणकार एवं क्षायोपशमिकके १० भावरूप स्थानसहित पारिणामिकके भव्य-अभव्यरूप दोस्थानोंके २ भंग तथैव क्षायोपशमिकके ९ भावरूप स्थानसहित उन्हीं पारिणामिक के दोस्थानोंके संयोगरूप दोभंग इसप्रकार चारभंग क्षेपरूप जानना। तथैव त्रिसंयोगीभंगोंमें भी औदयिकभावके ८ भावरूप एकस्थान और क्षायोपशमिकभावके १० भेदरूप स्थानसहित पारिणामिकभावके दो स्थानोंकी अपेक्षा दो भंग हैं और क्षायोपशमिकके ९ भावरूप

स्थानके साथ पारिणामिकभावके दो भङ्ग हैं। इसप्रकार सर्व मिलकर (प्रत्येक भङ्ग १, द्विसंयोगीके ४ भंग और त्रिसंयोगी भङ्ग ४) ९ भङ्ग गुणकाररूप तथा प्रत्येक भंग ४ और द्विसंयोगीभंग ४ ये मिलकर ८ भंग क्षेपरूप हैं। पहले औदयिकभावके भंगोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें २०४ भंगरूप गुण्य कहे थे उनको गुणकार ९ से गुणाकरनेपर (२०४×९) १८३६ हुए, इनमें क्षेपरूप ८ भंग मिलानेसे (१८३६+८) १८४४ भंग होते हैं।

चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान, औदयिकके ८ भावरूप एकस्थान तथा पारिणामिकके भव्य व अभव्यरूप दोस्थान इसप्रकार सर्व ४ स्थान हैं। यहाँ प्रत्येकभंग चार हैं उनमेंसे क्षायोपशमिकका ८ भावरूप एकस्थान ही ग्रहण करना, क्योंकि शेष ३ प्रत्येकभंग पुनरुक्त हैं। चक्षुदर्शनरहित मिथ्यात्वगुणस्थानमें पूर्वमें जो भंग कहे थे वे ही हैं अत: एक ही ग्रहण किया है सो वह क्षेपरूप है। द्विसंयोगी भंगोंमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान और औदयिकके ८ भावरूपस्थानके संयोगरूप एकभंग गुणकाररूप है। औदयिकके स्थान और पारिणामिकके भव्य-अभव्यत्वरूप स्थानके संयोगसे जो द्विसंयोगीभंग होते हैं वे पुनरुक्त हैं अत: ग्रहण नहीं किये तथा क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकके भव्य-अभव्यरूप दो स्थानोंके संयोगसे द्विसंयोगी जो दोभंग होते हैं वे क्षेपरूप जानना। त्रिसंयोगीभंगोंमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूपस्थान, औदयिकके ८ भावरूप स्थानके भव्य-अभव्यरूप दोस्थानोंके संयोगसे दोभंग हुए वे गुणकाररूप हैं। इसप्रकार चक्षुदर्शनरहित मिथ्यादृष्टिके पूर्वमें जो १२ भंग गुण्यरूप कहे थे उनके मिलकर ३ गुणकाररूप और ३ क्षेपरूप भंग हैं। गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपको मिलानेसे (१२×३+३) ३९ भंग होते हैं। इसप्रकार चक्षुदर्शनसहित व रहित मिथ्यादृष्टिके सर्व भङ्ग मिलानेपर (१८४४+३९) १८८३ भंग जानना।

इसीप्रकार सासादनगुणस्थानमें भी भावोंके जितने स्थान पाए जाते हैं उतने तो प्रत्येक भंग जानना। औदयिकभावका जो स्थान है वह तो गुणकार और जो अन्य भावोंके स्थान हैं वे क्षेपरूप जानना तथा दो व तीन आदि भावोंके संयोगसे होते हैं वे द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग जानना। यहाँ औदयिकभाव और अन्य किसी भावके संयोगसे जो द्विसंयोगी आदि भङ्ग होते हैं वे तो गुणकाररूप हैं और औदयिकभावबिना अन्य भावके संयोगसे जो द्विसंयोगी आदि भङ्ग होते हैं वे क्षेपरूप जानना। जिन भङ्गों को पहले कह आये हैं पश्चात् भी उन्हींके समान जो भङ्ग हैं वे पुनरुक्त हैं अत: उनका ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसप्रकार उपर्युक्त सर्व (सासादनगुणस्थानसम्बन्धी) गुणकार भङ्गोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे पूर्वमें जो गुण्यरूप भंग कह आये हैं उसमें गुणाकरके लब्धराशिमें क्षेपरूप भङ्गोंको जोड़नेसे जो-जो राशि प्राप्त होती जावे उन सभी का जोड़ कर देनेपर भंगोंका प्रमाण होता है भङ्ग प्राप्त करनेका यह नियम सभी गुणस्थानोंमें जानना। अत: सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके १० व ९ भेदरूप दो स्थान हैं, औदयिकका ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे चारस्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३; द्विसंयोगीभङ्गोंमें गुणकार ३ व क्षेप २; त्रिसंयोगी भंगोंमें गुणकार २

हैं। इसप्रकार गुणकार तो (१+३+२) ६ और क्षेप (३+२) ५ हैं। इसलिए सासादनगुणस्थानसम्बन्धी पूर्वोक्त गुण्यराशि २०४ को गुणकार ६ से गुणाकरके तथा क्षेपरूप राशि ५ मिलानेसे (२०४×६+५) १२२९ भंग हुए तथा चक्षुदर्शनरहित सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ८ भावरूप एकस्थान, औदयिकके ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे तीनस्थानों के प्रत्येकभङ्गमें क्षेप एक अन्य सब पुनरुक्त हैं, द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार एक और क्षेप एक, त्रिसंयोगीभङ्गोंमें गुणकार एक, इसप्रकार यहाँ सर्व मिलकर गुणकाररूप भङ्ग २ और क्षेपरूप भङ्ग भी दो हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्यराशि १२ को गुणकार २ से गुणाकरके क्षेपरूप दो भङ्ग मिलानेसे (१२×२+२) २६ भङ्ग हुए और चक्षुदर्शनसहित व रहित भङ्गोंको परस्परमें जोड़नेसे सासादनगुणस्थानसम्बन्धी सर्व भङ्ग (१२२९+२६) १२५५ होते हैं।

मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिकके ११ व ९ भावरूप दो स्थान, औदयिकके ७ भावरूप एकस्थान और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकस्थान ऐसे ४ स्थानोंके प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप ३; द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार ३ व क्षेप २; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार २ इसप्रकार यहाँ सर्व गुणकार तो (१+३+२) ६ और क्षेप (३+२) ५ जानना। पूर्वोक्त गुण्य १८० में गुणकार ६ का गुणाकरके और क्षेपरूप ५ भंग जोड़नेसे सर्व (१८०×६+५) १०८५ भंग होते हैं। असंयतगुणस्थानमें औपशमिकका उपशमसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १२ व १० भावरूप २, औदयिकके ७ भावरूप एक और पारिणामिकका भव्यत्वरूप १ ऐसे ५ स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप ४; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार व क्षेप ५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ५ और क्षेप २, चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार २ इसप्रकार सर्व गुणकार (१+४+५+२) १२ और क्षेप (४+५+२) ११ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्यराशि १८० में गुणकार १२ का गुणाकरके क्षेपरूप ११ भंग जोड़नेपर (१८०×१२+११) २१७१ भंग होते हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिकभावका क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १२ व १० भावरूप दो, औदयिकके ७ भावरूप एक, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक, ऐसे ५ स्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें क्षेप एक; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३, क्षेप दो; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार दो हैं, अवशेष गुणकार व क्षेप पुनरुक्त हैं। इसप्रकार यहाँ सर्व गुणकार (१+३+२) ६ और क्षेप भी (१+३+२) ६ ही हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्य १०४ में गुणकार ६ का गुणाकरके क्षेपरूप ६ मिलानेसे सर्व (१०४×६+६) ६३० भंग होते हैं। इन ६३० भंगोंमें उपर्युक्त २१७१ भंग मिलानेसे असंयतगुणस्थानसम्बन्धी (२१७१+६३०) २८०१ भंग होते हैं।

देशसंयतगुणस्थानमें उपशमभावका उपशमसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिकके १३ व ११ भावरूप दो, औदयिकके ६ भावरूप एक, पारिणामिकका भव्यत्वरूप, एक इसप्रकार पाँचस्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ४; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार, क्षेप ५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ५, क्षेप २; चतुःसंयोगीमें गुणकार दो ऐसे सर्व मिलकर गुणकार (१+४+५+२) १२ और क्षेप (४+५+२)

११ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्य ७२ में गुणकार १२ से गुणाकरके क्षेपरूप ११ भंग जोड़नेसे (७२×१२+११) ८७५ भंग होते हैं तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें उपशमसम्यक्त्वका स्थान नहीं है, क्षायिकका ही स्थान है अन्य कथन पूर्ववत् जानना। यहाँ प्रत्येकभंगोंमें क्षेप एक; द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ३, त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ व क्षेप २, चतुःसंयोगी में गुणकार दो हैं। अवशेष गुणकार व क्षेप पुनरुक्त होनेसे यहाँ ग्रहण नहीं किये हैं। इसप्रकार सर्व गुणकार (१+३+२) ६ और क्षेप भी (१+३+२) ६ ही हैं। यहाँ पूर्वोक्त गुण्य ३६ को गुणकार ६ से गुणाकरके क्षेपराशि ६ जोड़नेसे (३६×६+६) सर्वभंग २२२ होते हैं। इनमें उपर्युक्त ८७५ भंग जोड़नेपर (२२२+८७५) १०९७ भंग देशसंयतगुणस्थानसम्बन्धी जानना।

प्रमत्तगुणस्थानमें उपशमभावका उपशमसम्यक्त्वरूप एक, क्षायिकभावका क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक, क्षायोपशमिक भावके १४-१३-१२ व ११ भावरूप ४, औदयिकभावके ६ भावरूप एक और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ऐसे ८ स्थान हैं, उनके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगी भंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १४; त्रिसंयोगी भङ्गोंमें गुणकार १४, क्षेप ८; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ८ ये सर्व मिलकर गुणकार तो (१+७+१४+८) ३० और क्षेप (७+१४+८) २९ हैं। यहाँ पूर्वोक्त गुण्यराशि ३६ में गुणकार ३० का गुणाकरके क्षेपराशि २९ मिलानेसे (३६×३०+२९) सर्व भंग ११०९ होते हैं। इसीप्रकार अप्रमत्तगुणस्थानमें भी स्थान ८, गुणकार ३० व क्षेप २९ तथा गुण्यराशि पूर्वोक्त ३६ में गुणकार ३० का गुणाकरके क्षेपराशि जोड़नेसे (३६×३०+२९) सर्वभंग ११०९ हैं।

उपशमश्रेणीमें अपूर्वकरणसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त उपशमभावके सम्यक्त्व और चारित्ररूप एकस्थान, क्षायिकभावका सम्यक्त्वरूप एकस्थान, क्षायोपशमिकभावके १२-११-१० व ९ भावरूप चारस्थान, औदयिकभावके अपूर्वकरण व सवेद अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें ६ भावरूप और अवेदभागसे उपशान्तकषायगुणस्थानपर्यन्त ५ भावरूप एकस्थान तथा पारिणामिकभावका भव्यत्वरूप एकस्थान इसप्रकार (१+१+४+१+१) ८-८ स्थान हैं। इनस्थानोंके प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १५, क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ४ तथा पञ्चसंयोगीभंगोंमें गुणकार ४ हैं। ये सर्व मिलकर (१+७+१५+१३+४) ४० तो गुणकार एवं (७+१५+१३+४) ३९ क्षेप हैं। अपूर्वकरणमें गुण्यराशि १२ है उसमें गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ३९ जोड़नेसे (१२×४०+३९) ५१९, सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें भी गुण्य १२ ही हैं अतः (१२×४०+३९) ५१९ ही भंग। वेदरहितअनिवृत्तिकरणमें गुण्य ४ हैं, इसमें गुणकारराशि ४० से गुणाकर क्षेपराशि ३९ जोड़नेसे (४×४०+३९) १९९ भंग होते हैं। क्रोधरहित भागमें गुण्य तीन है अतः (३×४०+३९) १५९ भंग, मानरहित भाग में गुण्यराशि २ है अतः (२×४०+३९) ११९ भंग, मायारहितभागमें गुण्य एक ही है और आगे सूक्ष्मसाम्पराय व उपशान्तकषायगुणस्थानमें भी गुण्यराशि एक ही है अतः (१×४०+३९) तीनों गुणस्थानोंमें ७९-७९ भंग होंगे।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें क्षायिकभावका सम्यक्त्व-चारित्ररूप एकस्थान, क्षयोपशमभावके १२-११-१० व ९ भावरूप चारस्थान, औदयिकभावके ६ भावरूप एकस्थान, पारिणामिकभावके भव्यत्वभावरूप एकस्थान इसप्रकार ७ स्थान हैं, इनस्थानोंके प्रत्येकभंगोंमें गुणकार एक, क्षेप ६; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ६, क्षेप ९; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ९, क्षेप ४; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ४ इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+९+४) २० एवं क्षेप (६+९+४) १९ हैं। अतः पूर्वोक्त गुण्य १२ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेपराशि मिलानेसे सर्व (१२×२०+१९) २५९ होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके सवेदभागमें अपूर्वकरणगुणस्थानवत् चारभावोंके ७ स्थान हैं, गुणकार २०, क्षेप १९ और गुण्य पूर्वोक्त १२। यहाँ गुण्य १२ में गुणकार २० का गुणा करनेसे और क्षेपराशि १९ जोड़नेपर सर्वभंग (१२×२०+१९) २५९ होते हैं तथा वेदरहितभागमें भी पूर्ववत् चारभावके ७ स्थान हैं, किन्तु विशेष इतना है कि यहाँ औदयिकका ५ भावरूप स्थान है। यहाँ अपूर्वकरणगुणस्थानवत् गुणकार २०, क्षेप १९ हैं और पूर्वोक्त गुण्य ४ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेप मिलानेसे सर्वभंग (४×२०+१९) ९९ हैं। क्रोधरहितभागमें भी वेदरहित भागवत् ही सर्वकथन जानना। यहाँ भी गुणकार २०, क्षेप १९, पूर्वोक्त गुण्य ३ है। यहाँ गुण्यमें गुणकार २० से गुणाकरके क्षेपराशि १९ जोड़नेसे सर्वभङ्ग (३×२०+१९) ७९ हैं। मानरहित भागमें भी स्थान ७, गुणकार २० और क्षेपराशि १९ हैं। यहाँ गुण्यराशि पूर्वोक्त २ में गुणकार २० का गुणाकरके क्षेप १९ जोड़नेसे सर्वभंगोंकी संख्या (२×२०+१९) ५९ हैं। मायारहितभागमें स्थान पूर्ववत् ७, गुणकार २० व क्षेप १९। यहाँ गुण्यराशि पूर्वोक्त १ में गुणकार २० से गुणाकरके और १९ क्षेपराशि जोड़नेसे सर्वभंग (१×२०+१९) ३९ जानना। इसीप्रकार सूक्ष्मसाम्पराय व क्षीणकषाय गुणस्थानमें भी ३९-३९ ही भङ्ग जानना।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिकभावका एक, औदयिकके ३ भावरूप एक, पारिणामिकभावका एक ऐसे तीनस्थान हैं। इनमें प्रत्येक भङ्गोंमें गुणकार एक, क्षेप २; द्विसंयोगीमें गुणकार २, क्षेप १; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १ इसप्रकार गुणकार (१+२+१) ४, क्षेप (२+१)३ हैं, गुण्य १ है। यहाँ गुण्य १ में गुणकार ४ का गुणाकरके क्षेप ३ जोड़नेसे (१×४+३) सर्वभङ्ग ७ हैं। अयोगकेवलीगुणस्थानमें क्षायिकभावका एक, औदयिकके दो भावरूप एक, पारिणामिकका एक इसप्रकार ३ स्थान हैं। यहाँ सयोगकेवली गुणस्थानवत् गुणकार ४ व क्षेप ३ हैं और गुण्य १ में गुणकार ४ का गुणा करके क्षेपराशि ३ को जोड़नेसे (१×४+३) सर्वभंग ७ हैं। सिद्धोंमें क्षायिकभावका एक और पारिणामिकका जीवत्वरूप एक, इसप्रकार २ स्थान हैं। यहाँ प्रत्येकभंगमें क्षेप २, द्विसंयोगीमें क्षेप एक; इनको जोड़नेसे (२+१) ३ भंग होते हैं। इसप्रकार स्थानगत भंगोंका कथन किया।

अथानन्तर पदगत भङ्गोंका कथन करते हैं–

दुविहा पुण पदभंगा, जादिगपदसव्वपदभवात्ति हवे।
जातिपदखइगमिस्से, पिंडेव य होदि सगजोगो ॥८४४॥

अर्थ – जातिपद और सर्वपदभंगके भेदसे पदगतभंग २ प्रकारके हैं। जहाँ एक जातिका ग्रहण किया जावे वहाँ जातिपद समझना, जैसे– क्षायोपशमिकज्ञानके चारभेद होनेपर भी एक ज्ञानजातिका ही ग्रहण करना तथा जहाँ पृथक्-पृथक् सम्पूर्णभावोंका ग्रहण किया जावे उनको सर्वपदभंग समझना चाहिए। इनमें जातिपदरूप क्षायिक और क्षायोपशमिकभावके पिण्डपदस्वरूप भावोंमें स्वसंयोगीभंग भी पाये जाते हैं। क्षायिकभावोंमें लब्धिके पाँच भेद हैं और क्षायोपशमिकमें ज्ञान-अज्ञान-दर्शन और लब्धि ये पिण्डपदरूप हैं, क्योंकि इनके अनेक भेद हैं, जैसे– जहाँ दान होते हुए लाभ पाया जाता है वहाँ स्वसंयोगीभंग है।

अधदुवसमगचउक्के एक्कं दो उवसमस्स जादिपदो।
खइगपदं तत्थेक्कं खवगे जिणसिद्धगेसु दु पण चदु॥८४५॥

अर्थ – औपशमिकभावके जातिपद असंयतादि चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्वरूप एकही है। उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्ररूप दो जातिपद हैं। क्षायिकभावके जातिपद असंयतादि चारगुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक तथा क्षपकश्रेणिके चारगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्ररूप दो जातिपद हैं। सयोग व अयोगकेवलीगुणस्थानोंमें सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और (तीर्थरूप) लब्धि ये ५ तथा सिद्धों में इन्हीं पांचमेंसे चारित्रबिना शेष चार जातिपद जानना।

विशेष – यहाँ सिद्धोंमें चारित्रबिना जो ४ जातिपद कहे हैं उसका अभिप्राय यह है कि सामायिकादि पाँचों चारित्रोंमेंसे कोई भी चारित्र नहीं है। अथवा क्षायिक यथाख्यातचारित्र नहीं है।

मिच्छतिये मिस्सपदा, तिण्णि य अयदम्हि होंति चत्तारि।
देसतिये पंचपदा, तत्तो खिणोत्ति तिण्णिपदा॥८४६॥

अर्थ – क्षायोपशमिकभावके जातिपद मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानमें अज्ञानदर्शन और लब्धिरूप ३, मिश्रगुणस्थानमें मिश्रज्ञान, दर्शन और लब्धिरूप ३, असंयतगुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि और सम्यक्त्वरूप ४ एवं देशसंयत-प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीनों गुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व ये चार तो हैं, किन्तु देशसंयतगुणस्थान में देशसंयमरूप एक तथा प्रमत्त-अप्रमत्तमें सरागसंयम होने से एक, ऐसे पाँच-पाँच जातिपद हैं। आगे अपूर्वकरणसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त ज्ञान, दर्शन और लब्धिरूप तीन जातिपद हैं।

मिच्छे अट्ठुदयपदा, ते तिसु सत्तेव तो सवेदोत्ति।
छस्सुहमोत्ति य पणगं, खीणोत्ति जिणेसु चदुतिदुगं॥८४७॥

अर्थ – औदयिकभावके जातिपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें गति, कषाय, लिंग, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्वरूप ८ हैं, सासादन-मिश्र-असंयत इन तीनगुणस्थानोंमें मिथ्यात्वबिना सात आगे देशसंयतसे अनिवृत्तिकरणके सवेदभागपर्यन्त असंयमबिना शेष ६, अवेदभागसे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानपर्यन्त वेदबिना शेष ५, आगे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त कषायबिना शेष ४ सयोगीगुणस्थानमें अज्ञानबिना शेष तीन और अयोगीगुणस्थानमें लेश्याबिना दो हैं।

मिच्छे परिणामपदा दोण्णि य सेसेसु होदि एक्कं तु।
जातिपदं पडि वोच्छं मिच्छादिसु भंगपिंडं तु ॥८४८॥

अर्थ – पारिणामिकभावके जातिपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें जीवत्व और भव्यत्व अथवा जीवत्व और अभव्यत्वरूप दो ही हैं। शेष गुणस्थानोंमें जीवत्व-भव्यत्वरूप एकही जातिपद है तथा आगे जातिपदकी अपेक्षा भंगोंका समुदाय कहूँगा।

विशेषार्थ – औपशमिकभावके दो, क्षायिकभावके पाँच, क्षायोपशमिकभावके सात, औदयिकभावके आठ और पारिणामिकभावके तीन जातिपद हैं। यहाँ यथासंभव औदयिकभावके जितने जातिपद पाए जाते हैं वे तो गुण्यरूप जानना। गुण्यराशिके गुणकार और क्षेप जाननेके लिये प्रत्येक भंगादि करनेमें क्षायोपशमिकादि भावोंके जितने पद हों उतने भेद ग्रहण करना एवं औदयिकभावके जातिपदोंका समूहरूप एक ही भेद ग्रहण करना, इसप्रकार प्रत्येकभंगमें औदयिकभावका भेद तो गुणकाररूप जानना और अन्य भावोंके भेद क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीआदि भंगोंमें औदयिक भावका भेद और अन्य भावोंके भेदसहित जो भंग हों वे गुणकाररूप जानना। औदयिकभावबिना अन्य भावोंके ही संयोगसे जो द्विसंयोगादि भंग हों वे क्षेपरूप जानने तथा क्षायिक व क्षायोपशमिक सम्बन्धी एक जातिपदके भेदमें उसीके अन्यभेद जहाँ सम्भव हो वहाँ स्वसंयोगी भंग होते हैं वे क्षेपरूप जानने, सो गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपको मिलानेपर जितना प्रमाण हो उतने वहाँ भंग जानना।

पाँचमूलभावों के ५३ उत्तरभावों में से जातिपदरूपभावों की गुणस्थानापेक्षा सन्दृष्टि–

मूलभाव	जातिपद भावों की संख्या	जातिपद भाव	गुणस्थान
औपशमिक	१	उपशम सम्यक्त्व	असंयत से अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त
औपशमिक	२	उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्र	उपशमश्रेणीमें ८वें से ११ पर्यन्त
क्षायिक	१	क्षायिकसम्यक्त्व	असंयतसे अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त

क्षायिक	२	क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र	८-९-१० व १२वाँ गुणस्थान क्षपक श्रेणी में
क्षायिक	५	क्षा. सम्य., क्षा. ज्ञान. क्षा. दर्शन, क्षा. चा. और क्षायिकलब्धि।	१३वें और १४वें गुणस्थान में
क्षायिक	४	उपर्युक्त ५ में से क्षा.चा. कम किया	सिद्धोंमें
क्षायोपशमिक	३	अज्ञान, दर्शन और लब्धि	प्रथम व द्वितीयगुणस्थान में
क्षायोपशमिक	३	ज्ञान, दर्शन और लब्धि	तृतीयगुणस्थान में
क्षायोपशमिक	४	ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व	चतुर्थगुणस्थान में
क्षायोपशमिक	५	ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्य. देशसंयम	पंचमगुणस्थान में.
क्षायोपशमिक	५	ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्य. सरागसंयम	६-७वें गुणस्थान में
क्षायोपशमिक	३	ज्ञान, दर्शन, लब्धि	८वें से १२वें गुणस्थानपर्यन्त
औदयिक	८	गति, कषाय, लिंग, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, लेश्या और असि.	मिथ्यात्वगुणस्थान में
औदयिक	७	उपर्युक्त ८ में से १ मिथ्यात्व कम किया	२-३-४ थे गुणस्थानमें
औदयिक	६	उपर्युक्त ७ में से असंयम कम किया	५-६-७-८ व ९वें के सवेदभागतक
औदयिक	५	उपर्युक्त ६ में से वेद कम किया	९वें के अवेदभाग से सूक्ष्मसाम्प. तक
औदयिक	४	उपर्युक्त ५ में से कषाय कम किया	११वें १२वें गुणस्थानपर्यन्त
औदयिक	३	गति, लेश्या व असिद्धत्व	१३वें गुणस्थानतक
औदयिक	२	गति व असिद्धत्व	१४वें गुणस्थानतक
पारिणामिक	२	भव्यत्व-अभव्यत्व	प्रथमगुणस्थान में
पारिणामिक	१	भव्यत्व	२रे से १४वें गुणस्थानपर्यन्त
पारिणामिक	१	जीवत्व	सिद्धों में

औपशमिक	२	सम्यक्त्व-चारित्र	आतिपदरूप सर्व कितने हैं, यह जाननेके लिए यह सन्दृष्टि बनायी है, किन्तु गुणस्थानोंमें ये आतिपदरूप भाव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं इसे उपर्युक्त सन्दृष्टि में बताया गया है।
क्षायिक	५	ज्ञान-दर्शन-लब्धि-सम्य. और चा.	
क्षायोपशमिक	७	ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, देशसंयम, सरागचारित्र।	
औदयिक	८	गति, कषाय, लिङ्ग, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और लेश्या।	
पारिणामिक	३	भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व	

आगे गुण्य-गुणकार व क्षेप तथा इन तीनोंकी अपेक्षा होनेवाले भङ्गों को ७ गाथाओं में कहते हैं--

अट्ठ गुणिज्जा वामे, तिसु सग छच्चदुसु छक्क पणगं च।
थूले सुहुमे पणगं, दुसु चदुतियदुगमदो सुण्णं ॥८४९॥

बारट्ठट्ठछवीसं तिसु तिसु बत्तीसयं च चदुवीसं।
तो तालं चदुवीसं, गुणगारा बार बार णभं ॥८५०॥

वामे चदुदस दुसु दस, अडवीसं तिसु हवंति चोत्तीसं।
तिसु छब्बीस दुदालं, खेवा छब्बीस बार बार णवं ॥८५१॥

एक्कारं दसगुणिदं, दुसु छावट्ठी दसाहियं बिसदं।
तिसु छब्बीस बिसदं, वेदुवसामोत्ति दुसय बासीदि ॥८५२॥

बादालं बेण्णिसया, तत्तो सुहुमोत्ति दुसय दोसहिदं।
उवसंतम्मि य भंगा, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८५३॥

सत्तरसं दसगुणिदं, वेदित्ति सयाहियं तु छादालं।
सुहुमोत्ति खीणमोहे, बावीससयं हवे भंगा ॥८५४॥

अडदालं छत्तीसं, जिणेसु सिद्धेसु होंति णव भंगा।
एत्तो सव्वपदं पडि, मिच्छादिसु सुणह वोच्छामि ॥८५५॥

अर्थ – जिनको गुणा जावे ऐसे गुण्य मिथ्यात्वगुणस्थानमें ८, सासादनादि तीनगुणस्थानोंमें ७-७, देशसंयतादि तीन गुणस्थानोंमें ६-६, उपशमक-क्षपक अपूर्वकरणमें ६, अनिवृत्तिकरणमें ६ व ५, सूक्ष्मसांपरायमें ५, उपशांतकषाय व क्षीणकषायमें चार, सयोगकेवलीके ३, अयोगकेवलीके २ तथा सिद्धोंमें शून्य जानना तथा जिनसे गुणा किया जावे गुणकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें १२, सासादन व मिश्रमें ८-८, असंयतगुणस्थानमें २६, देशसंयतादितीनगुणस्थानोंमें ३२-३२, उपशमक अपूर्वकरणादि चारगुणस्थानोंमें ४०-४०, क्षपक अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानोंमें २४-२४, क्षीणकषायगुणस्थानमें २४, सयोगी व अयोगीगुणस्थानमें १२-१२ तथा सिद्धोंमें गुणकारका अभाव है और जिनको मिलाया जावे ऐसे क्षेप मिथ्यात्वगुणस्थानमें १४, सासादन व मिश्रगुणस्थानमें १०-१०, असंयतगुणस्थानमें २८, देशसंयतमें ३४, प्रमत्त व अप्रमत्तमें भी ३४-३४, उपशमक अपूर्वकरणादि चार गुणस्थानोंमें ४२-४२, क्षपक अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानमें २६-२६, क्षीणकषायमें १६, सयोगी-अयोगीमें १२-१२ और सिद्धोंमें ९ जानना ॥८४९-५०-५१॥

इसप्रकार उपर्युक्त गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके क्षेपराशि जोड़नेपर जो भंग हुए वे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११०, सासादन व मिश्रमें ६६-६६, असंयतमें २१०, देशसंयतादि तीनगुणस्थानोंमें २२६-२२६, उपशमक अपूर्वकरणसे अनिवृत्तिकरणके सवेदभागपर्यन्त २८२-२८२ आगे उपशमक अनिवृत्तिकरणके अवेदभागसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यंत २४२-२४२, उपशान्तकषायमें २०२ भंग हैं। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्रमसे अपूर्वकरण व सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें १७०-१७०, अवेदअनिवृत्तिकरणसे सूक्ष्मसाम्परायपर्यन्त १४६-१४६, क्षीणकषायगुणस्थानमें १२२, सयोगकेवलीके ४८, अयोगकेवलीके ३६ और सिद्धोंके ९ भंग हैं। इसप्रकार जातिपदभंगोंका कथनकरके सर्वपदभंगोंका कथन आगे करेंगे ऐसा जानना ॥८५२-५३-५४-५५॥

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके अज्ञान-दर्शन व लब्धि ये तीन, औदयिकभावके आठ और पारिणामिकभावके भव्य-अभव्यरूप दो जातिपद हैं। यहाँ औदयिकभावके ८ जातिपद तो गुण्यरूप जानना तथा प्रत्येकभंगमें औदयिकभावोंके आठका समूहरूप एक तो गुणकार और क्षायोपशमिकभावके तीन तथा पारिणामिकभाव के दो ये पाँच जातिपद क्षेपरूप जानना। द्विसंयोगीभंगमें औदयिकभावके आठका समूहरूप एक, क्षायोपशमिकभावोंके तीन तथा पारिणामिकभावोंके दो ये ६ गुणकाररूप और क्षायोपशमिकभावके तीनके संयोगसहित पारिणामिकभावके दो भेदरूप (३×२) ६ क्षेपरूप जानना। त्रिसंयोगीभंगोंमें औदयिकभावोंके आठका समूहरूप एक, अभव्यरूप पारिणामिकभावके संयोगसहित क्षायोपशमिकभावके तीन और औदयिकभावके आठका समूहरूप एक,

भव्यपारिणामिकभावके संयोगसहित क्षायोपशमिकभावके तीन इसप्रकार (३+३) ६ भंग गुणकाररूप जानने तथा सर्वसंयोगीभंगोंमें एक अज्ञान होते हुए अन्य अज्ञान पाए जाते हैं जैसे– कुमतिके होते हुए कुश्रुतादि पाए जाते हैं तथा एकदर्शनके होनेपर अन्यदर्शन पाये जाते हैं जैसे– चक्षुदर्शन होनेपर अन्यदर्शन पाये जाते हैं। एक लब्धि होनेपर अन्य लब्धियाँ पायी जाती हैं, इसप्रकार ये तीन भंग क्षेपरूप जानने, ये सर्व मिलकर गुण्य आठ अर्थात् औदयिकके आठ भेद, गुणकार (प्रत्येकभंगमें औदयिक का समूहरूप एक, द्विसंयोगीके ५, त्रिसंयोगीके ६ इसप्रकार १+५+६) १२, क्षेप (एकसंयोगीमें क्षायोपशमिकके ३ व पारिणामिकके २, द्विसंयोगीमें ६, क्षायोपशमिकके स्वसंयोगीके ३ इसप्रकार ५+६+३) १४ है। यहाँ गुण्यको गुणकारसे गुणाकरके गुणनफलमें क्षेपरूप भंग मिलानेसे (१२×८+१४) ११० भंग होते हैं।

इसीप्रकार सासादनगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके अज्ञान, दर्शन और लब्धि ये ३, औदयिकके ७ तथा पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक जातिपद है। यहाँ गुण्य तो ७ है एवं प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार (औदयिकभावोंका समूहरूप १×३ क्षायोपशमिक=३ तथा १ औदयिकका व १ पारिणामिक का अत: १×१=१ और ३ इनको जोड़नेपर ३+१=४), क्षेप ३ (क्षायोपशमिकके ३×१ पारिणामिकका=३); त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ (औदयिकका समूहरूप १×पारिणामिकका १×क्षायोपशमिकके ३); स्वसंयोगीमें क्षेप उपर्युक्त ३ इसप्रकार गुण्यराशि ७ में गुणकार ८ (प्रत्येकभंगका १+द्विसंयोगीके ४ त्रिसंयोगीके ३) क्षेप १० (प्रत्येकभंगके ४+द्विसंयोगीके ३+स्वसंयोगीके ३) अत: ७×८+१०=६६ भंग हैं। मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभावके मिश्रभावरूपज्ञान, दर्शन और लब्धि ये ३; औदयिकके ७ और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहाँ गुण्य तो ७ है, प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप चार; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार चार, क्षेप ३; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ स्वसंयोगीभंगमें क्षेप ३। ये सर्व मिलकर गुणकार ८ व क्षेप १० होते हैं अत: गुण्य ७ को गुणकार आठसे गुणाकरके क्षेपराशि १० मिलानेसे (७×८+१०) ६६ भंग होते हैं। यहाँ गुणकार व क्षेप को प्राप्त करनेका विधान सासादनगुणस्थानवत् ही जानना।

असंयतगुणस्थानमें औपशमिकका एकउपशमसम्यक्त्व, क्षायिकका एकसम्यक्त्व क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन-लब्धि और वेदकसम्यक्त्वरूप चार, औदयिकके सात और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहाँ गुण्य सात और प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप सात; द्विसंयोगीभंगोंके गुणकार सात, क्षेप १२; त्रिसंयोगीमें गुणकार १२, क्षेप ६; चतु:संयोगीभंगोंमें गुणकार ६, पंचसंयोगीभंगोंका अभाव है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वका संयोग नहीं है। स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार २६ और क्षेप २८ हैं, यहाँ गुण्य ७ में गुणकार २६ से गुणाकरके क्षेपराशि २८ जोड़नेसे (७×२६+२८) २१० भंग होते हैं। आगे देशसंयत प्रमत्त व अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानोंमें औपशमिकभावका एक सम्यक्त्व, क्षायिकभावका एक सम्यक्त्व; क्षायोपशमिकके ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व व चारित्र ये ५; औदयिकके ६ और पारिणामिकका एक भव्यत्व ये जातिपद हैं। यहाँ गुण्य

६ तथा प्रत्येकभंगमें गुणकार एक क्षेप ८; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ८ व क्षेप १५; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १५ व क्षेप ८, चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार ८; स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३। ये सर्व मिलकर गुणकार (१+८+१५+८) ३२ और क्षेप (८+१५+८+३) ३४ हैं अतः गुण्य ६ को गुणकार ३२ से गुणाकरके क्षेपराशि ३४ मिलानेसे (६×३२+३४) २२६-२२६ भंग होते हैं।

उपशमश्रेणीके अपूर्वकरण और सवेदअनिवृत्तिकरणमें औपशमिकके दो (सम्यक्त्वचारित्र), क्षायिकका एकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभावके ज्ञान-दर्शन-लब्धि ये तीन, औदयिकके छह और पारिणामिकका एकभव्यत्वरूप जातिपद है। यहाँ गुण्य छह प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १६, त्रिसंयोगी भंगोंमें गुणकार १६, क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ३, पंचसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३ यहाँ क्षायिकसम्यक्त्व होनेपर उपशमचारित्र पाया जाता है इसलिए पंचसंयोगीभंग भी है। स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० और क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं अतः गुण्य ६ को गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ४२ जोड़नेसे (६×४०+४२) २८२-२८२ भंग हैं। वेदरहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें औपशमिकभावोंके सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायिक का एक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन और लब्धि ये तीन, औदयिकभावोंके पाँच और पारिणामिकका एक भव्यत्वरूप जातिपद हैं। यहाँ गुण्य पाँच तथा प्रत्येकभंगमें गुणकार एक, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगोंमें गुणकार ७, क्षेप १६; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १६, क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३, क्षेप ३; पंचसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३, स्वसंयोगीभंगोंमें क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० और क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं अतः गुण्य ५में गुणकार ४० से गुणा करके क्षेपराशि ४२ जोड़नेपर (५×४०+४२) २४२ भंग हैं। यहाँ कषायका एकजातिपद ही ग्राह्य है अतः कषायभागोंका विशेष कथन नहीं किया। उपशान्तकषायगुणस्थानमें औपशमिकभावके सम्यक्त्व-चारित्र, क्षायिकका सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकके ज्ञान-दर्शन व लब्धि ये ३, औदयिकके चार और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एकजातिपद है। यहाँ गुण्य ४, प्रत्येकभंगमें गुणकार १, क्षेप ७; द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ७, क्षेप १६; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार १६ व क्षेप १३; चतुःसंयोगीभंगोंमें गुणकार १३ व क्षेप ३; पंचसंयोगीभंगोंमें गुणकार ३, स्वसंयोगीमें क्षेप ३ इसप्रकार सर्वमिलकर गुणकार (१+७+१६+१३+३) ४० एवं क्षेप (७+१६+१३+३+३) ४२ हैं। गुण्य ४ को गुणकार ४० से गुणाकरके क्षेपराशि ४२ मिलानेसे (४×४०+४२) २०२ भङ्ग होते हैं।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें क्षायिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायोपशमिकभावके ज्ञान-दर्शन व लब्धि ये ३, औदयिकके ६ एवं पारिणामिकका एक भव्यत्वरूप जातिपद है। यहाँ गुण्य ६, प्रत्येकभंगमें गुणकार १, क्षेप ६; द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ६, क्षेप ११; त्रिसंयोगीभंगोंमें गुणकार ११, क्षेप ६; चतुःसंयोगीमें गुणकार ६, पंचसंयोगीभंग नहीं हैं। स्वसंयोगीमें

क्षेप ३ ये सर्व मिलकर गुणकार (१+६+११+६) २४ और क्षेप (६+११+६+३) २६ हैं। यहाँ गुण्य ६ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ मिलानेसे (६×२४+२६) १७० भङ्ग हुए। अवेदअनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें भी जातिपद अपूर्वकरणगुणस्थानवत् ही जानना, किन्तु यहाँ विशेषता यह है कि औदयिकभावके ५ जातिपद हैं शेष सर्वकथन पूर्ववत् ही जानना। यहाँ गुण्य ५, प्रत्येकभङ्गमें गुणकार १, क्षेप ६; द्विसंयोगीभङ्गमें गुणकार ६, क्षेप ११; त्रिसंयोगीभङ्गमें गुणकार ११ व क्षेप ६; चतुसंयोगीभंगों में गुणकार ६, स्वसंयोगीभंगमें क्षेप ३ इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+११+६) २४ और क्षेप (६+११+६+३) २६ हैं। यहाँ गुण्य ५ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ जोड़नेसे (५×२४+२६) १४६ भंग हैं। क्षीणकषायगुणस्थानमें भी जातिपद पूर्वोक्त ही हैं। किन्तु विशेषता यह है कि औदयिकके ४ ही हैं अतः यहाँ गुण्य ४ गुणकार पूर्वोक्त २४ और क्षेप भी पूर्वोक्त २६ हैं। गुण्य ४ को गुणकार २४ से गुणाकरके क्षेपराशि २६ मिलानेसे (४×२४+२६) १२२ भङ्ग होते हैं।

सयोगकेवली गुणस्थानमें क्षायिकभावके ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र व लब्धि ये ५, औदयिकके ३ और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ये जातिपद हैं। यहाँ गुण्य ३, प्रत्येकभंगमें गुणकार १ व क्षेप ६, द्विसंयोगीभंगमें गुणकार ६ व क्षेप ५, त्रिसंयोगी भङ्गमें गुणकार ५ एवं स्वसंयोगीमें क्षायिकलब्धिरूप क्षेप १, क्योंकि किसी एक क्षायिकलब्धिमें अन्य क्षायिकलब्धि पाई जाती है। इसप्रकार सर्व मिलकर गुणकार (१+६+५) १२ और क्षेप (६+५+१) १२ हैं अतः यहाँ गुण्य ३ को गुणकार १२ से गुणाकरके क्षेपराशि १२ मिलानेसे (३×१२+१२) ४८ भङ्ग। अयोगकेवलीगुणस्थानमें जातिपद सयोगकेवलीगुणस्थानवत् ही है, किन्तु विशेषता यह है कि यहाँ औदयिकके २ ही जातिपद हैं अतः गुण्य २ को गुणकार पूर्वोक्त १२ से गुणा करके क्षेपराशि भी पूर्वोक्त १२ मिलानेसे (२×१२+१२) ३६ भंग होते हैं।

सिद्धोंके क्षायिकभावके सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, लब्धि ये चार और पारिणामिकभावका जीवत्वरूप एक इसप्रकार जातिपद ५ हैं। यहाँ प्रत्येकभङ्गके क्षेप ५ एवं द्विसंयोगीभङ्गके क्षेप ४ मिलकर (५+४) ९ भङ्ग जानना।

गुणस्थान	गुण्य	गुणकार	क्षेप	भङ्गसंख्या
मिथ्यात्व	८	१२	१४	११०
सासादन	७	८	१०	६६
सम्यग्मिथ्यात्व मिश्र	७	८	१०	६६
असंयत	७	२६	२८	२१०

देशसंयत	६	३२	३४	२२६
प्रमत्तसंयत	६	३२	३४	२२६
अप्रमत्तसंयत	६	३२	३४	२२६
अपूर्वकरण (उपशमक)	६	४०	४२	२८२
सवेदअनिवृत्तिकरण (उपशमक)	६	४०	४२	२८२
अवेदअनिवृत्तिकरण (उपशमक)	५	४०	४२	२४२
सूक्ष्मसाम्पराय (उपशमक)	५	४०	४२	२४२
उपशान्तमोह	४	४०	४२	२०२
अपूर्वकरण (क्षपक)	६	२४	२६	१७०
सवेदअनिवृत्ति. (क्षपक)	६	२४	२६	१७०
अवेदअनिवृत्ति. (क्षपक)	५	२४	२६	१४६
सूक्ष्मसाम्पराय (क्षपक)	५	२४	२६	१४६
क्षीणमोह	४	२४	२६	१२२
सयोगकेवली	३	१२	१२	४८
अयोगकेवली	२	१२	१२	३६
सिद्ध	०	०	९	९

जातिपद भङ्गों का कथन करके अब सर्वपद के भेद कहते हैं–

भव्विदराणण्णदरं, गदीण लिंगाण कोह पहुदीणं।
इगि समये लेस्साणं, सम्मत्ताणं च णियमेण ॥८५६॥

अर्थ – पिण्डपद और प्रत्येकपदके भेदसे सर्वपद दो प्रकारके हैं। यहाँ जो भावसमूह एक जीवके एक कालमें एक-एकही होता है, सभी नहीं होते। जैसे–चारों गतिमें एकजीवके एककालमें एक ही गति सम्भव है चारों नहीं पाई जाती है। इसीप्रकार लिंग, कषाय, लेश्या और सम्यक्त्वमें अपने-अपने भेदोंमें से एकसमयमें एक-एक ही सम्भव हैं अत: इन भावसमूहोंको पिण्डपद कहते हैं सो ये गुणस्थानोंमें यथायोग्य एक जीवके एक कालमें एक-एक ही नियम से पाए जाते हैं। (तथा जो भाव एक जीवके एककालमें युगपत् भी संभव हैं उन्हें प्रत्येकपद कहते हैं।)

अथानन्तर उन प्रत्येकपदोंको कहते हैं–

पत्तेयपदा मिच्छे, पण्णरसा पंच चेव उवजोगा।
दाणादी ओदइये, चत्तारि य जीवभावो य॥८५७॥

अर्थ – एकसमयमें युगपत् पाए जावें ऐसे प्रत्येकपद मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीन अज्ञान व दो दर्शन ये पाँच उपयोग, दानादि पाँच क्षायोपशमिकलब्धि, औदयिकभावके मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्व ये चार तथा जीवत्वरूप पारिणामिकभाव इसप्रकार (५+५+४+१) १५ जानना।

पिंडपदा पंचेव य, भव्विदरदुगं गदी य लिंगं च।
कोहादी लेस्सावि य, इदि बीसपदा हु उद्धेण॥८५८॥

अर्थ – उपर्युक्त १५ प्रत्येकपदोंके आगे मिथ्यात्वगुणस्थानमें पिंडपद पाँच हैं। भव्यत्व-अभव्यत्व, गति, लिंग, क्रोधादि चारकषाय, लेश्या इन पाँच पिण्डपदोंको मिलाकर (१५+५) २० पद होते हैं सो इनको ऊपर-ऊपर स्थापित करना चाहिए।

पत्तेयाणं उवरिं, भव्विदरदुगस्स होदि गदिलिंगे।
कोहादिलेस्ससम्मत्ताणं रयणा तिरिच्छेण॥८५९॥

अर्थ – प्रत्येक पदोंके ऊपर स्थापित किये गये जो भव्य-अभव्यरूप युगल, गति, लिंग, क्रोधादिचारकषाय, लेश्या और सम्यक्त्वकी रचना तिर्यग्रूपसे करना चाहिए।

एक्कादी दुगुणकमा, एक्केक्कं रूंधिदूण हेट्ठम्मि।
पदसंजोगे भंगा, गच्छं पडि होंति उवरुवरिं॥८६०॥

अर्थ – एकसे लेकर दूने-दूनेरूप क्रमसे एक-एक पदका आश्रय करके नीचे-नीचे के पदोंके संयोगसे गच्छजितनेवाँ पद होवे उतने प्रमाणरूप ऊपर-ऊपरके भंग होते हैं।

विशेषार्थ – मिथ्यात्वगुणस्थानमें सबसे नीचे कुमतिरूप प्रत्येकपदका स्थापन किया सो इसमें प्रत्येकभंग एक ही है, उसके ऊपर स्थापित कुश्रुतमें प्रत्येकभंग एक है तथा अधस्तनवर्ती कुमतिके संयोगसे द्विसंयोगीभंग एक ऐसे दोभंग हुए। इसके ऊपर स्थापित विभङ्गज्ञानमें भी प्रत्येकभंग तो एक ही है तथा अधस्तनवर्ती कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभंग दो और तीनोंके संयोगसे त्रिसंयोगीभंग एक, इसप्रकार ४ भङ्ग हुए। विभङ्गज्ञानके ऊपर स्थापित चक्षुदर्शनमें प्रत्येकभंग एक तथा अधस्तनवर्ती विभङ्ग-कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभंग ३, चक्षुदर्शन-कुमति-कुश्रुत या चक्षुदर्शन-कुमति-

विभङ्ग अथवा चक्षुदर्शन-कुश्रुत-विभङ्गके संयोगरूप त्रिसंयोगीभङ्ग भी तीन हैं एवं चारोंके संयोगरूप एक चतुःसंयोगीभंगको मिलाकर सर्व (१+३+३+१) ८ भङ्ग हुए। चक्षुदर्शनके ऊपर स्थापित अचक्षुदर्शनमें प्रत्येकभंग एक तथा अधस्तनवर्ती चक्षुदर्शन-विभंग-कुश्रुत व कुमतिज्ञानके संयोगसे द्विसंयोगीभंग ४, अचक्षुदर्शन, चक्षुदर्शन व कुमतिज्ञान या अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन व कुश्रुतज्ञान अथवा अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन व विभंगज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-कुश्रुतज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-विभंगज्ञान, अथवा अचक्षुदर्शन व कुश्रुत-विभंगज्ञानके संयोगसे त्रिसंयोगीभंग ६ हैं एवं अचक्षुदर्शनचक्षुदर्शन, कुमति-कुश्रुतज्ञान अथवा अचक्षुदर्शन-चक्षुदर्शन, कुमति-विभङ्गज्ञान या अचक्षु व चक्षुदर्शन, कुश्रुत व विभंगज्ञान या अचक्षुदर्शन व कुमति-कुश्रुत व विभंगज्ञानके संयोगसे चतुःसंयोगीभङ्ग चार तथा अचक्षु व चक्षुदर्शन, विभङ्ग-कुश्रुत व कुमतिज्ञान इन पाँचके संयोगसे पंचसंयोगीभंग एक है। इसप्रकार ये सर्वमिलकर (१+४+६+४+१) १६ भंग हैं। अचक्षुदर्शनके ऊपर दानलब्धिको स्थापित किया इसमें प्रत्येकभंग एक और अधस्तनवर्ती अचक्षुदर्शन आदिके संयोगसे द्विसंयोगीभंग ५, त्रिसंयोगीभंग १०, चतुःसंयोगीभंग १०, पंचसंयोगीभंग ५, छहसंयोगीभंग एक ये सर्वमिलकर (१+५+१०+१०+५+१) ३२ हुए। इसीप्रकार एक-एक पदके प्रति दूने-दूने भंग होते हैं सो उनमें प्रत्येकभंग तो सर्वत्र एक-एक ही है, किन्तु द्वि-त्रि-चतुःसंयोगी आदि भंग अधस्तनवर्ती भावोंके संयोगके बदलनेसे जितने-जितने हों उतने जानना। तद्यथा–

लाभलब्धिमें ६४, भोगलब्धिमें १२८, उपभोगलब्धिमें २५६, वीर्यलब्धिमें ५१२, मिथ्यात्वमें १०२४, अज्ञानमें २०४८, असंयममें ४०९६, असिद्धत्वमें ८१९२, जीवत्वमें १६,३८४ भंग होते हैं। यहाँ १५वें जीवपदमें इतने भंग किसप्रकार होते हैं सो कहते हैं– प्रत्येकभंग १, द्विसंयोगी और चौदह संयोगीभंग १४-१४, तीनसंयोगी व १३ संयोगीभंग दो कम गच्छप्रमाणका एकबार संकलनमात्र अर्थात् ९१-९१ हैं। चतुःसंयोगी व १२ संयोगीभंग तीन कम गच्छ (१५-३=१२) का दोबार संकलनमात्र अर्थात् ($\frac{१२\times१३\times१४}{१\times२\times३}$) ३६४-३६४ हैं। पंचसंयोगी और ११ संयोगीभंग चार कम गच्छ (१५-४=११) का तीनबार संकलनमात्र ($\frac{११\times१२\times१३\times१४}{१\times२\times३\times४}$) अर्थात् १००१-१००१, ६ संयोगी व १० संयोगीभंग ५ कम गच्छ (१५-५=१०) का चारबार संकलनमात्र ($\frac{१०\times११\times१२\times१३\times१४}{१\times२\times३\times४\times५}$) २००२-२००२ हैं। सातसंयोगी व नौसंयोगीभंग ६ कम गच्छका ५ बार संकलनमात्र अर्थात् ३००३-३००३ प्रमाण, आठसंयोगी भंग ७ कम गच्छ (१५-७=८) का छहबार संकलनमात्र अर्थात् ३४३२ प्रमाण हैं। इसप्रकार १५वें जीवपदमें १६३८४ भंग जानना सो यह प्रमाण "पण्णट्ठी" का चतुर्थांश जानना, क्योंकि पण्णट्ठी संज्ञा ६५,५३६ रूप संख्याकी है। यहाँ एकबार, दोबारादि संकलनका तथा भंग निकालनेका विधान जिसप्रकार गोम्मटसारजीवकाण्डके 'ज्ञानाधिकार' में श्रुतज्ञानके अक्षरोंका वर्णन करते समय "पत्तेयभंगमेगं"[१] इत्यादि गाथामें कहा है उसीप्रकार यहाँ भी जानना।

१. "पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं। तियसंजोगादिपया रूवाहियवार हीणपद संकलिद।"
(गो.जी.गा. ३५४ की बड़ी टीका पृ. ७५२ पर उद्धृत)

यहाँ जीवपद १५वाँ है अतः गच्छका प्रमाण १५ जानना। २ कम गच्छका एकबार संकलन करनेके लिए पूर्वोक्त सूत्रानुसार १३ व १४ का परस्पर गुणाकरके दो व एकको परस्पर गुणनेसे जो लब्ध आवे उससे भाग देनेपर १३×१४=१८२÷२×१=९१ लब्धराशि हुई सो यह २ कम गच्छका एकबार संकलनका प्रमाण है। इसीप्रकार तीनकम गच्छका दो बार संकलन करनेके लिए १२-१३ व १४का परस्पर गुणा करके ३-२ व १ का गुणाकरनेसे प्राप्तराशिका भाग देनेसे (१२×१३×१४=२१८४÷३×२×१) ३६४ हुए। चारकम गच्छका तीनबार संकलन करनेके लिए ११-१२-१३ व १४ का परस्परमें गुणाकरके उसमें ४×३×२×१ को परस्परमें गुणनेसे प्राप्तराशि द्वारा भागदेनेपर (११×१२×१३×१४=२४०२४÷४×३×२×१) १००१ लब्ध आया। पाँचकम गच्छका चारबार संकलन करनेके लिये १०-११-१२-१३ व १४ को परस्पर गुणा करनेपर तथा लब्धराशिमें ५-४-३-२ व १ का परस्परमें गुणाकरके प्राप्त गुणनफलका भाग देनेसे (१०×११×१२×१३×१४=२,४०,२४०-५×४×३×२×१) २००२ होते हैं। ६ कम गच्छका पाँचबार संकलन करनेके लिए ९-१०-११-१२-१३ व १४ का परस्पर गुणा करनेसे तथा लब्धराशिमें ६×५×४×३×२×१ का परस्परमें गुणाकरनेसे प्राप्त गुणनफलका भागदेनेसे (९×१०×११×१२×१३×१४=२१,६२,१६०÷७२०) ३००३ होते हैं। ७ कम गच्छका छहबार संकलन करनेके लिए ८-९-१०-११-१२-१३ व १४ को परस्पर गुणाकरके लब्धमें ७-६-५-४-३-२ व १ का परस्पर गुणाकरके प्राप्त गुणनफलसे भागदेनेपर (८×९×१०×११×१२×१३×१४=१,७२, ९७,२८०÷७×६×५×४×३×२×१(५०४०)=३४३२ होते हैं। इसप्रकार १५वें जीवपदमें पाए जानेवाले भंग निकालनेका विधान कहा।

आगे भङ्गों को मिलाने के लिए गाथासूत्र कहते हैं–

इट्ठपदे रूऊणे, दुगसंवग्गम्मि होदि इट्ठधणं।
असरित्थाणंतधणं दुगुणेगूणे सगीयसव्वधणं॥८६१॥

अर्थ – विवक्षितपदमें एक कम करनेसे जो शेष रहे उतने दो-दोके अङ्क लिखकर परस्परसंवर्ग करनेसे (आपसमें गुणाकरनेसे) विवक्षित पदमें भंगोंका प्रमाणरूप इष्टधन होता है उस इष्टधनको दूना करके उसमें से १ घटानेसे जो प्रमाण हो उतना प्रथमपदसे लेकर विवक्षित पदतक सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप सर्वधन होता है।

विशेषार्थ – जितनेवाँ विवक्षित पद हो उसमेंसे एक घटाकर जितने शेष बचें उतनी बार दो का अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करके विवक्षितपदमें भंगोंका प्रमाणरूप इष्टधन होता है। जैसे यहाँ विवक्षित १५वाँ जीवपद है उसमेंसे एक कम किया तो (१५-१) १४ हुए सो १४ स्थानोंपर २ का अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करनेपर १६,३८४ हुए सो इतना ही १५वें जीवपदमें भंगोंका प्रमाण है तथा उस इष्टधनको

दूना करके उसमेंसे एक कमकरके जो प्रमाण हो उतना प्रथमपदसे लेकर विवक्षितपद पर्यन्त सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप सर्वधन होता है।

अब प्रत्येक व पिंडपदोंकी भङ्गसंख्या तथा प्रत्येकपदभङ्ग व पिण्डपदभंगोंको मिलाकर सर्वपदसंख्या बताते हैं–

तेरिच्छा हु सरित्था, अविरददेसाण खयियसम्मत्तं।
मोत्तूण संभवं पडि, खयिगस्सवि आणए भंगे॥८६२॥

उड्ढतिरिच्छपदाणं, दव्वसमासेण होदि सव्वधणं।
सव्वपदाणं भंगे, मिच्छादिगुणेसु णियमेण॥८६३॥

मिच्छादीण दुति दुसु, अपुव्वअणियट्टिखवगसमगेसु।
सुहुमुवसमगे संते, सेसे पत्तेयपदसंखा॥८६४॥

पण्णार सोलट्ठारस, वीसुगुवीसं च वीसमुगुवीसं।
इगिवीस वीसचदुदसतेरसपणगं जहाकमसो॥८६५॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुदिं, खीणकसाओत्ति सव्वपदभंगा।
पण्णट्ठिं च सहस्सा, पंचसया होंति छत्तीसा॥८६६॥

तग्गुणगारा कमसो, पण णउदेयत्तरीसयाण दलं।
ऊणट्ठारसयाणं, दलं तु सत्तहियसोलसयं॥८६७॥

तेवत्तरिं सयाइं, सत्तावट्ठी य अविरदे सम्मे।
सोलस चेव सयाइं, चउसट्ठी खयियसम्मस्स॥८६८॥

ऊणत्तीससयाइं, एक्काणउदी य देसविरदम्मि।
छावत्तरि पंचसया, खइयणरे णत्थि तिरियम्मि॥८६९॥

इगिदालं च सयाइं, चउदालं च य पमत्त इदरे य।
पुव्वुवसमगे वेदाणियट्टि भागे सहस्समट्ठूणं॥८७०॥

अडसट्ठी एक्कसयं, कसायभागम्मि सुहुमगे संते।
अडदालं चउवीसं, खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८७१॥

अडदालं चारिसयापुव्वे अणियट्टिवेदभागे य।
सीदी कसायभागे, तत्तो बत्तीस सोलं तु ॥८७२॥

जोगिम्मि अजोगिम्मि य, बेसदछप्पण्णयाण गुणगारा।
चउसट्ठी बत्तीसा, गुणगुणिदेक्कूणया सव्वे ॥८७३॥

सिद्धेसु सुद्धभंगा, एक्कत्तीसा हवंति णियमेण।
सव्वपदं पडि भंगा, असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८७४॥

अर्थ – पिंडपदरूप भावोंकी तिर्यक् (बराबर) रचनाकर असंयत तथा देशसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्व को छोड़कर अन्यभावोंमें गुणस्थानोंका आश्रय करके यथासम्भव भंग जानना चाहिए। यहाँ क्षायिकसम्यक्त्व इसलिए छोड़ दिया गया है कि उसका कथन पृथक् करेंगे तथा सर्वपदोंके भंग जाननेके लिए मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें ऊर्ध्वरचनावाले प्रत्येकपद और तिर्यक् रचनावाले पिंडपदके भंगरूप धनको मिलानेसे उस-उस गुणस्थानके सर्वपदोंका भंगरूप सर्वधन नियमसे होता है॥८६२-६३॥

प्रत्येकपद क्रमसे मिथ्यात्वादि दो गुणस्थानोंमें १५, मिश्रादि तीनगुणस्थानोंमें १६, प्रमत्तादि दो गुणस्थानोंमें १८, दोनों (उपशमक-क्षपक) श्रेणियोंके अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें २०-१९, उपशमकसूक्ष्मसाम्परायमें २०, उपशान्तकषायगुणस्थानमें १९, क्षपकसूक्ष्मसाम्परायमें २१, क्षीणकषायमें २०, सयोगकेवलीमें १४, अयोगकेवलीमें १३ और सिद्धोंमें ५ जानना चाहिए॥८६४-६५॥

मिथ्यात्वसे क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्त सर्वपदभंगोंका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए यहाँ पण्णट्ठी (६५५३६) को गुण्य समझना चाहिए और इस गुण्यका आगे बताये गए गुणकारोंसे गुणा करना चाहिए तथा उसमेंसे एक कम करनेसे तद्-तद् स्थानोंके सर्वपदभंगोंका प्रमाण होता है॥८६६॥

उपर्युक्त गुण्यके गुणकार क्रमसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें ७१९५ का आधा प्रमाण, सासादनगुणस्थानमें एककम १८०० का आधा प्रमाण, मिश्रगुणस्थानमें १६०७ है। असंयतगुणस्थानमें ७३६७ एवं इसी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वके गुणकार १६६४, देशसंयतगुणस्थानमें २९९१ और इसी गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वमें मनुष्यके ही ५७६ गुणकार हैं, ये तिर्यञ्चके नहीं है, क्योंकि

क्षायिकसम्यक्त्वी तिर्यञ्च देशव्रती नहीं होता। प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थानमें ४१४४ गुणकार है, उपशमश्रेणीके अपूर्वकरण तथा सवेदअनिवृत्तिकरणमें ८ कम एकहजार अर्थात् ९९२ हैं। कषायसहित और अवेदअनिवृत्तिकरणके भागमें १६८ गुणकार, सूक्ष्मसाम्परायमें ४८, उपशान्तकषायमें २४ गुणकार हैं। क्षपक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें ४४८, अनिवृत्तिकरणके कषायसहित व वेदरहितभागमें ८० उससे आगे सूक्ष्मसाम्परायमें ३२ और क्षीणकषायमें १६ गुणकार हैं॥८६७ से ८७२॥

इससे आगे सयोगी व अयोगीगुणस्थानके २५६ गुण्य तथा गुणकार सयोगी गुणस्थानमें ६४ और अयोगीगुणस्थानमें ३२ इसप्रकार गुण्यमें गुणकारोंके साथ गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उस-उसमें एक कम करनेसे सर्वपदभंगोंका प्रमाण होता है। सिद्धोंमें गुण्य-गुणकारके भेदरहित शुद्ध ३१ सर्वपदरूप भंग नियमसे होते हैं। इसप्रकार सहायतारहित पराक्रमवाले श्रीवर्धमानतीर्थङ्कर ने कहा है।

विशेषार्थ – यहाँ विवक्षित १५वें जीवपदके भंगोंके प्रमाणरूप इष्टधन १६,३८४ है जो कि 'पण्णट्ठी' का चतुर्थांश है। इसको दूना करके उसमेंसे एक कम करनेपर प्रथमपदसे १५वें पदपर्यन्त सर्वपदोंके भंगोंका जोड़रूप प्रमाण ३२७६७ होता है तथा विवक्षित जीवपदमें इष्टधनका दूना ३२७६८ अर्थात् आधा 'पण्णट्ठी' प्रमाण है सो यह भव्यत्वरूप भावोंके भंग होते हैं और उतने ही अभव्यभावके भी भंग होते हैं तथा भव्यत्व और अभव्यत्वभावके मिलकर 'पण्णट्ठी' प्रमाण भंग होते हैं तथा इनको दूना करनेपर दो पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक-एकगतिके होते हैं अर्थात् नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य व देवगतिमें प्रत्येकके दो पण्णट्ठीप्रमाण ही भंग जानना। इसप्रकार चारों गतिसम्बन्धीभंग (दो पण्णट्ठी×४) आठगुणी पण्णट्ठी प्रमाण हैं। एक लिंगसम्बन्धीभंग उपर्युक्त एकगतिसम्बन्धी भंगोंसे दुगुणे अर्थात् चारपण्णट्ठी प्रमाण हैं। यहाँ चारोंगतिमें पाये जानेवाले लिंगोंकी संख्या (नरकगतिमें १, तिर्यञ्चगतिमें ३, मनुष्यगतिमें ३ और देवगतिमें २) ९ है अतः (९×४ पण्णट्ठी) ३६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण लिंगसम्बन्धी सर्वभंग हैं। उपर्युक्त एकलिंगसम्बन्धी चौगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको दूना करनेपर एककषायसम्बन्धी आठगुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं सो इसको नरकगतिमें एकलिंगसहित चारकषाय (१×४) अर्थात् ४ से गुणा करे, तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय (३×४) अर्थात् १२ से गुणा करे, मनुष्यगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय (३×४) से गुणा करे तथा देवगतिमें दो लिंगसहित चारकषाय (२×४) अर्थात् ८ से गुणाकरे तो भंगोंकी संख्या प्राप्त होती है सो चारोंगतियोंमें लिंग व कषायके संयोगसे सर्वमिलकर आठगुणी ३६ पण्णट्ठीप्रमाण भंग जानना जो कि पण्णट्ठीसे २८८ गुणे होते हैं। एककषायके आठगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको दूना करनेपर एकलेश्यासम्बन्धी भंग होते हैं जो १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण हैं। इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२ से गुणा करे, तिर्यञ्चगतिमें ३ लिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्यगतिमें भी इसीप्रकार ३ लिंग

व ४ कषायसहित ६ लेश्या अर्थात् ७२ से गुणा करे, देवगतिमें दोलिंग व ४ कषायसहित ६ लेश्या अर्थात् (२×४×६) ४८ से गुणा करे तो भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है सो ये सर्व मिलकर (१२+७२+७२+४८) २०४×१६=३२६४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण है। इसप्रकार गत्यादि सर्वपिण्डपदोंके भङ्ग (१+८+३६+२८८+३२६४) ३५९७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण हैं तथा इनमें अधस्तनवर्ती प्रत्येकपदोंके भंग (जो कि एककम पण्णट्ठीके आधेप्रमाण कहे थे) उनको मिलानेसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें सर्वपदभंग (३५९७+ $\frac{१}{२}$) ७१९५/२ अर्थात् पण्णट्ठीको ७१९५ के आधेप्रमाणसे गुणाकरके उसमें एककम करनेपर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण जानना।

इनकी ऊर्ध्व-तिर्यग्रूप रचना कहते हैं-- कुमति आदिरूप प्रत्येकपद तो नीचे और उनके ऊपर भव्यत्व-अभव्यत्व तिर्यग्रूपसे लिखना। उसके ऊपर चारगति एवं उसके ऊपर यथासम्भव लिंग बराबर-बराबर लिखना तथा उनके ऊपर चारकषाय और उनके ऊपर यथासम्भव लेश्या तिर्यग्रूपसे लिखना चाहिए। इसप्रकार मिथ्यात्वगुणस्थान में भंग व उनके लिखनेका विधान जानना।

सासादनगुणस्थानमें मिथ्यात्वरूप प्रत्येकपदका तो अभाव है और भव्यत्व-अभव्यत्वरूप जो पिंडपद कहा था उसमें से यहाँ अभव्यत्वका भी अभाव है अतः प्रतिपक्षी के अभावसे भव्यत्वको भी प्रत्येकपद जानना सो यहाँ प्रत्येकपद १५ और पिण्डपद चार हैं। यहाँ पूर्वोक्त प्रकार कुमतिके १, कुश्रुतके २, विभंगके ४, चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, दानके ३२, लाभके ६४, भोगके १२८, उपभोगके २५६, वीर्यके ५१२, अज्ञानके १०२४, असंयमके २०४८, असिद्धत्वके ४०९६, जीवत्वके ८१९२ और भव्यत्वके १६,३८४ इस प्रकार दूने-दूने क्रमसे भङ्ग जानना सो भव्यत्वभावके भंगोंका प्रमाण पण्णट्ठीके चतुर्थांश के बराबर है। भव्यत्वके भंगोंको दूना करनेपर अर्थात् पण्णट्ठीके आधेप्रमाण एकगतिसम्बन्धी, इनको चौगुना करनेपर चारोंगति सम्बन्धी भंगोंका प्रमाण प्राप्त होता है जो कि दोगुणी पण्णट्ठीके बराबर है। एकगतिसम्बन्धी भंगोंको दूना करनेपर पण्णट्ठीप्रमाण एकलिंगसम्बन्धी भंग हैं उनको (नरकगतिका १, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३, देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणाकरनेपर नौगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एकलिंगसम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् दोगुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग एककषायसम्बन्धी हैं इनको नरकगतिमें एकवेदसहित चारकषायसे, तिर्यञ्चगतिमें तीनवेदसहित चारकषायसे, मनुष्यगतिमें तीनवेदसहित चारकषायसे और देवगतिमें दो वेद सहित चारकषायसे गुणाकरनेपर अर्थात् (४+१२+१२+८) ३६ गुणी दो पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एककषायसम्बन्धी भङ्गसे दूने अर्थात् चौगुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग एकलेश्याके होते हैं इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२ से, तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्यगतिमें भी इन्हीं ७२ से और देवगति दो वेद (लिंग) व चारकषायसहित ६ लेश्या (२×४×६) अर्थात् ४८ से गुणाकरनेपर (१२+७२+७२+४८) चारोंगतिसम्बन्धी सर्वभङ्ग २०४×४=८१६ गुणी

पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। इसप्रकार प्रत्येकपद व पिण्डपदोंके मिलकर $(८१६+७२+९+२+\frac{१}{२}\frac{१७१९}{२})$ १७१९ के आधेप्रमाणसे गुणित पण्णट्ठीप्रमाण में से एक कम करनेसे सर्व पदके भंग सासादनगुणस्थानमें जानना।

मिश्रगुणस्थानमें प्रत्येकपद मिश्ररूप मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञान के ४ तथा चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२ एवं वीर्यलब्धिके १०२४, अज्ञानके २०४८, असंयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६३८४ व भव्यत्वके ३२७६८। यहाँ पिण्डपद गति, लिंग, कषाय व लेश्यारूप ४ हैं। भव्यत्वके जो पण्णट्ठीसे आधे भंग हैं उनको दूने करने पर अर्थात् पण्णट्ठीप्रमाण एकगतिसम्बन्धी भंग हैं तो चारोंगतिसम्बन्धी चारपण्णट्ठीप्रमाण सर्वभंग हैं। एकगतिके भंगोंसे दूने अर्थात् दोगुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकलिंगसम्बन्धी भंग हैं। इनमें (नरकगतिका एक, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३ और देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणाकरनेपर लिंगरूप पिण्डपदके सर्वभंग ९ से गुणित दो पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एककषायसम्बन्धी जानना, इनको नरकगतिमें १ वेद (लिंग) सहित चारकषाय अर्थात् (१×४) ४ से, तिर्यञ्चगतिमें तीनवेदसहित ४ कषाय अर्थात् (३×४) १२ से, मनुष्यगतिमें ३ वेदसहित ४ कषाय अर्थात् (३×४) १२ से, देवगतिमें २ वेदसहित चारकषाय अर्थात् (२×४) ८ से इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी सर्व (४+१२+१२+८) ३६ से गुणित चार पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एककषायसम्बन्धी उपर्युक्त (४ पण्णट्ठीप्रमाण) भंगोंसे दूने अर्थात् ८ पण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं। इनको नरकमें एकवेद व चारकषायसहित तीनलेश्या (१×४×३) अर्थात् १२, तिर्यञ्चगतिमें तीनवेद व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२, मनुष्यगतिमें तीनवेद व चारकषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ और देवोंमें दो वेद व चारकषायसहित ३ लेश्यासे (२×४×३) अर्थात् २४ इनसे गुणा करनेपर चारोंगति सम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×८=१४४० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण यहाँ भंग जानना। यहाँ प्रत्येक व पिण्डपदसम्बन्धी सर्वभङ्ग मिलकर (१+४+१८+१४४+१४४०) १६०७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें एक कम करनेपर जो लब्ध उतनेप्रमाण सर्वपदभंग मिश्रगुणस्थानमें होंगे।

(नोट – मिश्रगुणस्थान पर्याप्तअवस्था में ही होता है, देवोंमें पर्याप्तअवस्थामें तीन शुभलेश्या ही होती हैं। देवगति मिश्रगुणस्थानमें इसीलिए तीन लेश्यासे गुणा किया गया है।)

असंयतगुणस्थानमें प्रत्येक पद १६, मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, चक्षुदर्शन ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानलब्धिके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२, वीर्यके १०२४, अज्ञानके २०४८, असंयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६,३८४ और भव्यत्वके ३२,७६८ हैं तथा गति-लिंग-कषाय व लेश्यारूप पूर्वोक्त चार व एक सम्यक्त्व ऐसे ५

पिण्डपद हैं। यहाँ भव्यत्वभावसम्बन्धी भंगोंका प्रमाण पण्णट्ठीका आधा है उसे दूना करनेपर पण्णट्ठीप्रमाणभंग एकगतिसम्बन्धी हैं तो चारोंगतिसम्बन्धी सर्वभङ्ग चारगुणी पण्णट्ठीप्रमाण जानना। एकगतिसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् दो पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग एकलिंगसम्बन्धी होते हैं सो इनको चारोंगतिसम्बन्धी (नरकगतिका १, तिर्यञ्चगतिके ३, मनुष्यगतिके ३ और देवगतिके २) ९ लिंगोंसे गुणा करनेपर (२×९) १८ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। एकलिंगके भंगोंसे दुगुने एककषायसम्बन्धी भङ्ग हैं जो कि ४ पण्णट्ठीप्रमाण हैं सो इनको नरकमें एकलिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (४×१) ४ से तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (४×३) १२ से, मनुष्यगतिमें तीन लिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (४×३) १२ से एवं देवगतिमें दोलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (४×२) ८ से गुणाकरे। इसप्रकार चारोंगति सम्बन्धी (४+१२+१२+८) ३६ से गुणित पण्णट्ठीको ४ से गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतनेप्रमाण भंग हैं। एककषायसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से, तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंग व चार कषायसहित ६ लेश्या (३×४×६) अर्थात् ७२ से, मनुष्योंमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२ से, देवगतिमें दोलिंग व चारकषायसहित ३ शुभलेश्या अर्थात् (२×४×३) २४ से गुणाकरे तो चारोंगतिसम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×८=१४४० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। आगे एकलेश्यासम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एक सम्यक्त्वके भंग हैं सो इनको नरकगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से, तिर्यञ्चगतिमें ३ तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२ से, मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्या अर्थात् (३×४×६) ७२से, देवगतिमें दो लिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (२×४×३) २४ से इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी (१२+७२+७२+२४) १८०×१६=२८८० से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग जानना सो ये उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी भंग हैं। इतने ही (२८८०) प्रमाण क्षायोपशमसम्यक्त्वके भी भंग होते हैं। इसप्रकार दोनों सम्यक्त्वसम्बन्धीभंग (२८८०+२८८०) ५७६० होते हैं। क्षायिकसम्यक्त्वसम्बन्धी कथन पृथक्रूपसे करते हैं—

उपर्युक्त १ लेश्यासम्बन्धी भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण क्षायिकसम्यक्त्वके भंग हैं। इनको नरकगतिमें एकलिंग व ४ कषायसहित एक लेश्यासे अर्थात् (१×४×१) ४ से, तिर्यञ्चगतिमें एकलिंग व चारकषायसहित ४ लेश्यासे अर्थात् (१×४×४) १६ से, मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ६ लेश्यासे अर्थात् (३×४×६) ७२से, देवोंमें एकलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्यासे अर्थात् (१×४×३) १२ से इसप्रकार चारोंगतिसम्बन्धी (४+१६+७२+१२) १०४×१६=१६६४ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं। इसप्रकार दो सम्यक्त्वसम्बन्धी पूर्वोक्त प्रत्येकपद व पिण्डपदोंके भङ्ग जोड़नेपर (१+४+१८+१४४+१४४०+५७६०) ७३६७ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण में से एक कम करने पर सर्वपदके भङ्ग और क्षायिकसम्यक्त्वके १६६४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग असंयतगुणस्थानमें होते हैं।

देशसंयतगुणस्थानमें असंयमके स्थान पर देशसंयम तथा देव-नरकगतिका अभाव हुआ। यहाँ प्रत्येकपद १६, मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, चक्षुदर्शनके ८, अचक्षुदर्शनके १६, अवधिदर्शनके ३२, दानके ६४, लाभके १२८, भोगके २५६, उपभोगके ५१२, वीर्यके १०२४, अज्ञानके २०४८, देशसंयमके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, जीवत्वके १६,३८४ एवं भव्यत्वके ३२,७६८ हैं। यहाँ भव्यत्वके जो ३२७६८ भंग हैं वे पण्णट्ठीका आधा प्रमाण है। इनके दूने अर्थात् पण्णट्ठीप्रमाण एकगतिसम्बन्धी भंग हैं इनको तिर्यञ्च व मनुष्य इन दो गतिसे गुणाकरनेपर दोपण्णट्ठीप्रमाण भंग दो गतिसम्बन्धी जानना। एकगतिसम्बन्धी भंगोंसे दोगुणे अर्थात् २ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक लिंगके हैं। इनको तिर्यञ्चके ३ व मनुष्यके ३ इसप्रकार ६ लिंगसे गुणा करें तो ६×२=१२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने अर्थात् ४ पण्णट्ठीप्रमाण एककषायके भंग हैं इनको तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंगसहित चारकषाय अर्थात् (३×४) १२ से, मनुष्यगतिमें तीनलिंगसहित चारकषायसे अर्थात् (३×४) १२ से इसप्रकार (१२+१२) २४×४ गुणी पण्णट्ठी=९६ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एककषायके भंगोंसे दूने अर्थात् आठगुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको तिर्यञ्चगति में तीनलिंग व चारकषायसहित तीनलेश्या, मनुष्यगतिमें ३ वेद व चारकषायसहित तीनलेश्यासे अर्थात् दोनों गतिकी अपेक्षा (३६+३६) ७२से गुणा करनेपर ७२×८×पण्णट्ठी=५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। आगे एक लेश्याके भंगोंसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग एक सम्यक्त्वसम्बन्धी जानना, इनको तिर्यञ्चगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्या अर्थात् (३×४×३) ३६से, मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे गुणाकरे, इसप्रकार दोनोंगतिसम्बन्धी (३६+३६) ७२×१६=११५२ गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी हैं तथा इतने ही (११५२) क्षयोपशमसम्यक्त्वमें भी जानना। क्षायिकसम्यक्त्वमें एकलेश्यासम्बन्धी उपर्युक्त भंगों से दूने अर्थात् १६ गुणे पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं उनको मनुष्यगतिमें तीनलिंग व चारकषायसहित ३ लेश्यासे अर्थात् (३×४×३) ३६से गुणाकरे तो ३६×१६×पण्णट्ठी=५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार देशसंयतगुणस्थानमें दो सम्यक्त्वसम्बन्धी सर्वमिलकर (१+२+१२+९६+५७६+११५२+११५२) २९९१ से गुणित तथा क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा ५७६ गुणे इन दोनोंको जोड़नेपर (२९९१+५७६) ३५६७ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें से एककम करने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण भंग जानने चाहिए।

प्रमत्तगुणस्थानमें मनःपर्ययज्ञानरूप प्रत्येकपद है तथा देशसंयमके स्थानपर सरागसंयम, अन्यगतियोंके अभावसे एक मनुष्यगतिरूप भी प्रत्येकपद जानना शेष प्रत्येक पद पूर्वोक्त ही होनेसे यहाँ १८ प्रत्येकपद, मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानका २, अवधिज्ञानके ४, मनःपर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, सकलसंयमके १६३८४, जीवत्व के ३२७६८, भव्यत्वके पण्णट्ठीप्रमाण और मनुष्यगतिके २×पण्णट्ठीप्रमाणभङ्ग जानना।

यहाँ पिंडपद लिंग, कषाय, लेश्या व सम्यक्त्वरूप हैं। मनुष्यगतिसम्बन्धी २ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दुगुने अर्थात् चारपण्णट्ठीप्रमाण एक लिंगसम्बन्धी भंग हैं उनको मनुष्यगतिसम्बन्धी ३ वेदोंसे गुणा करनेपर ४×३=१२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण हुआ तथा एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दुगुने अर्थात् आठगुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायके भंग हैं इनको ३ वेदसहित ४ कषायसे अर्थात् (३×४) १२से गुणा करनेपर (८×पण्णट्ठी×१२) ९६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एककषायके भंगोंसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एकलेश्यासम्बन्धी भंग हैं इनको तीनलिंग व ४ कषायसहित तीनलेश्यासे गुणा करनेपर (३×४×३=३६×१६×पण्णट्ठी) ५७६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एक लेश्यासम्बन्धी भंगोंसे दुगुने अर्थात् ३२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण सम्यक्त्वके भंग जानना इनको तीनलिंग (वेद) ४ कषाय व तीन लेश्यासहित ३ सम्यक्त्वसे गुणा करे तो (३×४×३×३=१०८×३२×पण्णट्ठी) ३४५६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार प्रमत्तगुणस्थानमें सर्व मिलकर (४+१२+९६+५७६+३४५६) ४१४४से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें से एककम करनेपर जो लब्ध आया उतने प्रमाण सर्वपदके भंग जानना। अप्रमत्तगुणस्थानमें भी प्रमत्तगुणस्थानवत् एककम ४१४४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण ही भंग हैं।

उपशमश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें अन्य लेश्याओंके अभावसे एक शुक्ललेश्यारूप भी प्रत्येकपद है शेष प्रत्येकपद पूर्ववत् हैं। यहाँ मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धि के १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके पण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके दोगुणीपण्णट्ठी और शुक्ललेश्याके चारगुणी पण्णट्ठीप्रमाण प्रत्येकपद हैं तथा पिंडपद लिंग, कषाय व सम्यक्त्वरूप हैं। शुक्ललेश्याके भंग पण्णट्ठीसे चारगुणे हैं इनसे दुगुने एकलिंगके भंग पण्णट्ठीसे आठगुणे जानना। इनको तीनलिंगसे गुणाकरे तो पण्णट्ठीसे २४ गुणा अर्थात् २४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। एक लिंगके भंगसे दूने अर्थात् १६ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायसम्बन्धी भंग हैं। इनको तीनवेदसहित चारकषायसे गुणाकरनेपर (३×४=१२×१६×पण्णट्ठी) १९२ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं तथा एककषायके भंगोंसे दोगुणे अर्थात् ३२ पण्णट्ठीप्रमाण भंग एकसम्यक्त्वके हैं इनको ३ वेद व ४ कषायसहित २ सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर (३×४×२=२४)×३२×पण्णट्ठी=७६८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार सर्वमिलकर (८+२४+१९२+७६८) ९९२ गुणी पण्णट्ठीमें से एक कम करदेनेसे जो लब्ध आया उतनेप्रमाण भंग उपशमक अपूर्वकरणगुणस्थानमें सर्वपदके जानना। इसीप्रकार सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें अपूर्वकरणवत् ९९२ गुणी पण्णट्ठीमें से एक कम प्रमाण सर्वपदके भंग हैं।

वेदरहित अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद १९ हैं। मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८,

लाभके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४ जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी और शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग हैं तथा पिंडपदमें शुक्ललेश्याके ४ गुणी पण्णट्ठीसे दूने अर्थात् ८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण एककषायसम्बन्धी भङ्ग हैं इनको ४ कषायसे गुणाकरनेपर चारोंकषायसम्बन्धी (८×४) ३२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग होते हैं। एककषायके भङ्गोंसे दूने अर्थात् १६ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण एकसम्यक्त्व के हैं इनको चारकषायसहित दोसम्यक्त्व से गुणाकरे तो (४×२=८)×१६×पण्णट्ठी १२८ गुणीपण्णट्ठीप्रमाण भङ्ग होते हैं। इसप्रकार अवेदअनिवृत्तिकरणमें प्रत्येकपद व पिण्डपदसम्बन्धी भंग मिलकर (८+३२+१२८) १६८ गुणी पण्णट्ठी में से एक कम करने पर भंग सर्वपदसम्बन्धी जानना।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें प्रत्येकपदमें मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धि के १२८, लाभ के २५६, भोग के ५१२, उपभोगलब्धि के १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठीप्रमाण, शुक्ललेश्या के ४ पण्णट्ठीप्रमाण तथा सूक्ष्मलोभके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। पिंडपदमें सूक्ष्मलोभसम्बन्धी ८ गुणी पण्णट्ठीसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एकसम्यक्त्वसम्बन्धी भंग हैं। इनको उपशम व क्षायिकरूप दो सम्यक्त्वोंसे गुणाकरनेपर (२×१६=३२×पण्णट्ठी) ३२ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। इसप्रकार प्रत्येकपद व पिंडपदके भंग मिलकर (प्रत्येकपदके १६+पदपिंड के ३२) ४८ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण में से एक कम करनेपर सर्वपदके भंग सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें हैं।

उपशान्तकषायगुणस्थानमें प्रत्येकपद मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६ असिद्धत्वके ८१९२, उपशमचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके दोपण्णट्ठीप्रमाण, शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठीप्रमाण है। पिंडपदमें शुक्ललेश्यासम्बन्धी चारगुणीपण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् ८ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाण भंग एकसम्यक्त्वके हैं इनको उपशम व क्षायिकसम्यक्त्वसे गुणा करनेपर (८×२) १६ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए तथा प्रत्येकपदके ८ व पिंडपदके १६ भंग मिलकर २४ गुणी पण्णट्ठीमें एककम प्रमाण सर्वपदसंबन्धी भङ्ग यहाँ जानना।

क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद मतिज्ञानके १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके

४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठीप्रमाण, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठीप्रमाण, शुक्ललेश्याके चारपण्णट्ठीप्रमाण और क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण हैं। क्षायिकसम्यक्त्वके आठपण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् १६ पण्णट्ठीप्रमाण एकलिंगसंबंधी भंग हैं इनको तीनवेदसे गुणा करनेपर (१६×३) ४८ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। एकलिंगसम्बन्धी भंगोंसे दूने ३२ पण्णट्ठीप्रमाण एक कषायके भंग हैं। इनको ३ वेदसहित चारकषायोंसे गुणा करे तो (३×४=१२)×३२×पण्णट्ठी ३८४ गुणी पण्णट्ठीप्रमाण भंग हुए। इसप्रकार प्रत्येकपद १६ व पिंडपदके ४३२ भंगोंको मिलानेसे ४४८ से गुणित पण्णट्ठीप्रमाणमें एककम अपूर्वकरणगुणस्थानके क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा सर्वपद भंग जानना। सवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें भी अपूर्वकरणगुणस्थानवत् उपर्युक्त ४४८ पण्णट्ठीप्रमाणमें से एककम भङ्ग हैं।

अवेदअनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें प्रत्येकपद २० हैं। मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धिके १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकचारित्रके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठी, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी, शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठी और क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। पिंडपदोंमें एककषायसंबंधीभंग क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंसे दूने अर्थात् १६ गुणे पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। इनको चारकषायसे गुणा करनेपर (१६×४) ६४ पण्णट्ठीप्रमाण भंग हैं। इसप्रकार प्रत्येकपदके १६ व पिंडपदके ६४ भंग मिलकर सर्वपदसंबंधीभंग ८० गुणीपण्णट्ठीमें से एककम प्रमाण जानना।

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें प्रत्येकपद ही हैं, पिंडपद नहीं हैं। यहाँ मतिज्ञानका १, श्रुतज्ञानके २, अवधिज्ञानके ४, मन:पर्ययज्ञानके ८, चक्षुदर्शनके १६, अचक्षुदर्शनके ३२, अवधिदर्शनके ६४, दानलब्धिके १२८, लाभलब्धिके २५६, भोगलब्धिके ५१२, उपभोगलब्धि के १०२४, वीर्यलब्धिके २०४८, अज्ञानके ४०९६, असिद्धत्वके ८१९२, क्षायिकसंयमके १६३८४, जीवत्वके ३२७६८, भव्यत्वके एकपण्णट्ठी, मनुष्यगतिके २ पण्णट्ठी, शुक्ललेश्याके ४ पण्णट्ठी, क्षायिकसम्यक्त्वके ८ पण्णट्ठी एवं सूक्ष्मलोभके १६ पण्णट्ठीप्रमाण भंगोंको मिलानेपर यहाँ ३२ पण्णट्ठीमें से १ कम प्रमाण सर्वपदसंबंधी भंग जानना।

क्षीणकषायगुणस्थानमें भी प्रत्येकपद ही हैं, पिंडपद नहीं हैं। यहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, दानलब्धि, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यलब्धि, अज्ञान, असिद्धत्व, संयम, जीवत्व, भव्यत्व, मनुष्यगति, शुक्ललेश्या और क्षायिकसम्यक्त्वरूप २० प्रत्येकपदोंके परस्परमें दूने-दूने भंग हैं अर्थात् क्रमसे १-२-४-८-१६-३२-६४-१२८-२५६-५१२-

१०२४-२०४८-४०९६-८१९२-१६३८४-३२७६८, एकपण्णट्ठी, २ पण्णट्ठी, ४ पण्णट्ठी और ८ पण्णट्ठीप्रमाण हैं। ये मिलकर १६ गुणी पण्णट्ठीमें से एककम सर्वपदसंबंधी भंग होते हैं।

सयोगकेवलीगुणस्थानमें केवलज्ञानके १, केवलदर्शनके २, क्षायिकसम्यक्त्वके ४, यथाख्यातचारित्रके ८, क्षायिकदानलब्धिके १६, लाभलब्धिके ३२, भोगलब्धिके ६४, उपभोगलब्धिके १२८, वीर्यलब्धि के २५६, असिद्धत्वके ५१२, जीवत्वके १०२४ भव्यत्वके २०४८, मनुष्यगतिके ४०९६, शुक्ललेश्याके ८१९२ भंग हैं। इसप्रकार सर्वमिलकर २५६ से गुणित ६४ प्रमाणमें एककम करनेसे जो लब्ध आवे उतनेप्रमाण सर्वपदके भंग जानना।

अयोगकेवलीगुणस्थानमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्रके ८, दानलब्धिके १६, लाभलब्धिके ३२, भोगके ६४, उपभोगके १२८, वीर्यके २५६, असिद्धत्वके ५१२, जीवत्वके १०२४, भव्यत्वके २०४८, मनुष्यगतिके ४०९६ भंग हैं सो ये सर्व मिलकर २५६ से गुणित ३२में से एककम (२५६×३२-१) प्रमाण भङ्ग यहाँ सर्वपदसम्बन्धी होते हैं। सिद्धोंमें केवलज्ञानके १, केवलदर्शनके २, क्षायिकसम्यक्त्वके ४, अनन्तवीर्यके ८ और जीवत्वके १६ ये सर्व मिलकर ३१ भंग होते हैं।

इसप्रकार प्रत्येकपद व पिंडपदोंके द्वारा भंगोंका वर्णन किया। यहाँ प्रत्येकपदका नाम असदृशपद भी है, क्योंकि इनमें प्रतिपक्षीसे समानता नहीं है तथा पिंडपदका नाम सदृशपद भी है, क्योंकि इनमें प्रतिपक्षीसे समानता पाई जाती है।

गुणस्थानकी अपेक्षा ऊर्ध्व-तिर्यक्पदसम्बन्धी गुण्यमें गुणकारोंसे गुणाकर ऋणरूप धन घटानेपर होनेवाले सर्वपदके भंगोंकी [illegible]

गुणस्थान	ऊर्ध्वपद	तिर्यग् पद	गुण्य	गुणकार	ऋण्य धन	सर्वपदोंकी भङ्गसंख्या में
मिथ्यात्व	१५	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	७१९५/२	१	$(६५५३६\times\frac{७१९५}{२})-१=४७१५३१५१९$
सासादन	१५	४	६५५३६ (पण्णट्ठी)	१७९९/२	१	$(६५५३६\times\frac{१७९९}{२})-१=११७८९९२६३$
मिश्र	१६	४	६५५३६ (पण्णट्ठी)	१६०७	१	(६५५३६×१६०७)-१=१०५२१६३५१
असंयत (क्षा.व उप.सम्य.)	१६	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	७३६७	१	(६५५३६×७३६७)-१=४८२७९३७११
क्षायिकसम्यक्त्व	१६	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	१६६४	१	(६५५३६×१६६४)-१=१०८९४१९०३
देशसंयत (क्षायो.व उप.सम्य)	१६	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	२९९१	१	(६५५३६×२९९१)-१=१९६०१८१७५
क्षायिकसम्यक्त्व	१६	५	६५५३६ (पण्णट्ठी)	५७६	१	(६५५३६×५७६)-१=३७७४७७३५
प्रमत्त	१८	४	६५५३६ (पण्णट्ठी)	४१४४	१	(६५५३६×४१४४)-१=२७१५८११८३
अप्रमत्त	१८	४	६५५३६	४१४४	१	(६५५३६×४१४४)-१=२७१५८११८३
अपूर्वकरण (उपशमक)	१९	३	६५५३६	९९२	१	(६५५३६×९९२)-१=६५०११७११
क्षपक	२०	२	६५५३६	४४८	१	(६५५३६×४४८)-१=२९३६०१२७
अनिवृत्तिकरण (उपशमक)	१९	३	६५५३६	९९२	१	(६५५३६×९९२)-१=६५०११७११
वेद व कषायरहित (उपशमक)	१९	२	६५५३६	१६८	१	(६५५३६×१६८)-१=११०००४७
सवेदक्षपक	२०	२	६५५३६	४४८	१	(६५५३६×४४८)-१=२९३६०१२७
अवेदक्षपक (कषायसहित)	२०	१	६५५३६	८०	१	(६५५३६×८०)-१=५२४२८७९

सूक्ष्मसाम्पराय (उपशमक)	२०	१	६५५३६	४८	१	(६५५३६×४८)-१=३१४५७२७
क्षपक	२१	०	६५५३६	३२	१	(६५५३६×३२)-१=२०९७१५१
उपशान्तकषाय	१९	१	६५५३६	२४	१	(६५५३६×२४)-१=१५७२८६३
क्षीणकषाय	२०	०	६५५३६	१६	१	(६५५३६×१६)-१=१०४८५७५
सयोगकेवली	१४	०	२५६	६४	१	(२५६×६४)-१=१६३८३
अयोगकेवली	१३	०	२५६	३२	१	(२५६×३२)-१=८१९१
सिद्ध	५	०	०	०	०	शुद्धभंग ३१

अब गुणस्थानवत् मार्गणाओंमें भी भावोंके स्थान व पदरूप भंगोंको कहते हैं–

आदेसेवि य एवं, संभवभावेहिं ठाणभंगाणि।
पदभंगाणि य कमसो, अव्वामोहेण आणेज्जो॥८७५॥

अर्थ – आदेशमें (मार्गणाओंमें) भी गुणस्थानवत् यथासम्भव भावोंसे होनेवाले स्थान व पदभंगोंको क्रमसे मोहरहित होकर जानना चाहिए।

आगे, जिनमें सर्वथा एक ही नयका ग्रहण किया जाता है, ऐसे एकान्तमतों के भेद कहते हैं–

असिदिसदं किरियाणं, अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी।
सत्तट्ठण्णाणीणं, वेणयियाणं तु बत्तीसं॥८७६॥[1]

अर्थ – क्रियावादियोंके १८०, अक्रियावादियोंके ८४, अज्ञानवादियोंके ६७ और वैनयिकवादियोंके ३२ भेद हैं, इसप्रकार एकान्तवादियोंके भेद जानना।

सर्वप्रथम क्रियावादियोंके मूल भङ्ग कहते हैं–

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
कालीसरप्पणियदिसहावेहि य ते हि भंगा हु॥८७७॥

अर्थ – सर्वप्रथम 'अस्ति' ऐसा पद लिखना उसके ऊपर 'स्वसे, परसे, नित्यपनेसे, अनित्यपनेसे' ये चारपद लिखना उनके ऊपर जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५४५ गाथा २२।

पदार्थ तथा उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति व स्वभावरूप ५ पद लिखना। इसप्रकार १×४×९×५=१८० क्रियावादियोंके भेद होते हैं।

विशेषार्थ – स्वत: जीव कालसे अस्ति किया जाता है, परसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है, नित्यत्वसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है, अनित्यपनेसे जीव कालसे अस्ति किया जाता है, इसप्रकार चारभंग हुए तथा जीवके स्थानपर क्रमसे अजीवादिककी अपेक्षा चार-चार भंग होनेसे ९ पदार्थोंके परिवर्तनमें (९×४) ३६ भंग कालसे हुए। कालके स्थानपर क्रमसे 'ईश्वरादि' कहने पर ३६-३६ भंग होते हैं। इसप्रकार आत्मा, नियति व स्वभावके बदलनेसे सर्व (३६×५) १८० भंग होते हैं।[१]

काल	ईश्वर	आत्मा	नियति	स्वभाव
जीव-अजीव	पुण्य-पाप	आस्रव-बन्ध	संवर-निर्जरा	मोक्ष
स्व	पर	नित्य	अनित्य	

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
एसिं अत्था सुगमा, कालादीणं तु वोच्छामि ॥८७८॥

अर्थ – अस्ति, स्वत: या परत:, नित्यपनेसे या अनित्यपनेसे इन पाँच पदोंका तथा नौ पदार्थोंका अर्थ सुगम है तथा कालवादादि का अर्थ कहूँगा।

विशेषार्थ – अस्तिका अर्थ 'है' ऐसा होता है सो क्रियावादी वस्तुको अस्तिरूप ही मानकर क्रियाका स्थापन करते हैं। अपने स्वरूप चतुष्टयसे अस्ति मानते हैं और परचतुष्टयसे भी अस्तिरूप ही मानते हैं, नित्यपनेसे शाश्वत अस्तिरूप मानते हैं, अनित्यपनेसे क्षणिक अस्तिरूप मानते हैं। इसप्रकार जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नौ पदार्थोंको मानते हैं सो इन १४का अर्थ तो सुगम है, अत: इनका विशेष व्याख्यान नहीं किया।

कालवादादि का अर्थ क्रम से कहते हैं–

कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि, ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥८७९॥[२]

अर्थ – काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबका नाश करता है, सोते हुए प्राणियोंको काल ही जगाता है सो ऐसे कालको ठगनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? इसप्रकार कालसे ही सब कार्य मानना कालवाद कहलाता है।

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५४५। २. प्रा. पंचसंग्रह पृ. ५४७ श्लोक २५

अण्णाणी हु अणीसो, अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च।
सग्गं णिरयं गमणं, सव्वं ईसरकदं होदि॥८८०॥[1]

अर्थ – आत्मा अज्ञानी-ज्ञानरहित है, अनाथ है अर्थात् कुछ भी करने में समर्थ नहीं है, उस आत्माका सुख-दुःख, स्वर्ग तथा नरकमें गमनआदि सब ईश्वरकृत है। इसप्रकार ईश्वरका किया सर्वकार्य मानना ईश्वरवाद है।

एक्को चेव महप्पा, पुरिसो देवो य सव्ववावी य।
सव्वंगणिगूढोवि य, सचेदणो णिग्गुणो परमो॥८८१॥[2]

अर्थ – संसारमें एक ही महान् आत्मा है, वही पुरुष है, वही देव है और वही सभी में व्यापक है, सर्वात्मपनेसे अगम्य है, चेतनासहित है, निर्गुणी एवं उत्कृष्ट है; इसप्रकार आत्मस्वरूपसे ही सभीको मानना आत्मवादक अर्थ है।

जत्तु जदा जेण जहा, जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे, इदि वादो णियदिवादो दु॥८८२॥[3]

अर्थ – जो जिस समय जिससे जैसे जिसको नियमसे होता है वह उससमय उससे वैसे उसके ही होता है ऐसा नियमसे सभी वस्तुको मानना नियतिवाद कहलाता है।

को करदि कंटयाणं, तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं।
विविहत्तं तु सहाओ, इदि सव्वं पि सहाओत्ति॥८८३॥[4]

अर्थ – काँटा आदि जो तीक्ष्ण वस्तु हैं उनको कौन करता है ? मृग व पक्षी आदिकोंमें जो अनेक प्रकारपना पाया जाता है उनको कौन करता है ? इसप्रकार प्रश्न होनेपर यही उत्तर मिलता है कि सभीमें स्वभाव ही है ऐसे सबको स्वभावसे ही मानना स्वभाववाद है। इसप्रकार कालादिकी अपेक्षा एकान्तपक्षके ग्रहण करलेनेसे **क्रियावाद** होता है।

आगे अक्रियावाद के भङ्ग दो गाथाओं में कहते हैं–

णत्थि सदो परदोवि य, सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा।
कालादियादिभंगा, सत्तरि चदुपंतिसंजादा॥८८४॥

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७ श्लोक २६। २. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७ श्लोक २८।
३. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७; ध.पु.१ पृ. १११। ४. प्रा.पं.सं.पृ.५४७ श्लोक २४।

णत्थि य सत्तपदत्था, णियदीदो कालदो तिपंतिभवा।
चोद्दस इदि णत्थित्ते अक्किरियाणं च चुलसीदी ॥८८५॥ जुम्मं॥

अर्थ – सर्वप्रथम 'नास्ति' पद लिखना, उसके ऊपर 'स्वसे' व 'परसे' ये दो पद लिखना चाहिए। उनके ऊपर पुण्य-पापके बिना सातपदार्थ लिखना, इनके ऊपर कालादि ५ पद लिखना चाहिए। इसप्रकार चारपंक्तियोंका परस्पर गुणा करनेपर १×२×७×५=७० भंग तथा एकबार पुनः 'नास्ति' पद लिखना, उसके ऊपर सातपदार्थ लिखने, उनके ऊपर नियति व काल ये दो पद लिखना, इसप्रकार तीनपंक्तियोंका गुणा करनेसे (१×७×२) १४ भंग होते हैं सो इनको उपर्युक्त ७० भंगोंमें जोड़नेसे (७०+१४) ८४ भंग अक्रियावादियोंके होते हैं।

७० भङ्ग की रचना

स्वभाव नियति काल ईश्वर आत्मकृति
जीव - अजीव - आस्रव - संवर - निर्जरा - बन्ध - मोक्ष
स्वतः परतः
नास्ति

१४ भङ्ग की रचना

नियति काल
जीव-अजीव-आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्ष
नास्ति

विशेषार्थ – जीव स्वतः कालसे नास्ति किया जाता है, जीव परतः कालसे नास्ति किया जाता है। इसीप्रकार जीवके स्थानपर अजीवादि कहनेपर १४ भंग एक कालमें हुए तथा कालके स्थानपर ईश्वरादि कहनेपर ७० भंग होते हैं तथा जीव-नियति से नास्ति किया जाता है, जीव कालसे नास्ति किया जाता है एवं जीवके स्थानपर अजीवादि कहनेपर १४ भेद होते हैं। इसप्रकार सर्वमिलकर (७०+१४) ८४ भंग अक्रियावादियों के होते हैं। अक्रियावादी वस्तुको नास्तिरूप मानकर क्रियाका स्थापन नहीं करता है।

अथानन्तर अज्ञानवाद के भङ्ग कहते हैं–

को जाणदि णवभावे, सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि।
अवयणजुद सत्तसयं, इदि भंगा होंति तेसट्ठी ॥८८६॥

को जाणदि सत्तचदू, भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा।
चत्तारि होंति एवं, अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥८८७॥जुम्मं॥

अर्थ – जीवादि ९ पदार्थोंमें से एक-एकको सप्तभंगसे जानना जैसे कि 'जीव' अस्तिस्वरूप है ऐसा कौन जानता है तथा जीव 'नास्ति' स्वरूप है ऐसा कौन जानता है, जीव अस्ति-नास्तिरूप है ऐसा कौन जानता है अथवा अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है और शेष तीनभंग मिले हुए इसप्रकार जीव इन ७ भंगरूप है ऐसा कौन जानता है! इन ७ नयोंसे गुणा करनेपर (७×९) ६३ भंग होते हैं तथा पहले 'शुद्धपदार्थ' ऐसा लिखना उसके ऊपर अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति और अवक्तव्य ये चार लिखना सो इन दोनों पंक्तियोंसे चारभंग उत्पन्न होते हैं जैसे– शुद्धपदार्थ अस्तिरूप हैं, ऐसे कौन जानता है, शुद्धपदार्थ नास्तिरूप हैं ऐसा कौन जानता है, शुद्धपदार्थ अस्तिनास्तिरूप है ऐसा कौन जानता है, शुद्धपदार्थ अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है? इसप्रकार इनको उपर्युक्त ६३ भंगोंसे मिलानेसे (६३+४) ६७ भंग अज्ञानवादियोंके होते हैं। अज्ञानवादी वस्तु को नहीं जानना ही मानते हैं।

''६३ भंगों की रचना''

जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप

सत् असत् सदसत् अवाच्य सदवाच्य असदवाच्य सदसदवाच्य

''४ भंगों की रचना''

सत् - असत् - सदसत् - अवाच्य

शुद्धपदार्थ

अथानन्तर वैनयिकवादके मूलभंग कहते हैं–

मणवयणकायदाणगविणवो सुरणिवइणाणिजदिवुड्ढे।
बाले मादुपिदुम्मि य, कादव्वो चेदि अट्ठचऊ॥८८८॥

अर्थ – देव, राजा, ज्ञानी, यति, बूढ़ा, बालक, माता और पिता इन आठकी मन-वचन-काय तथा दान देकर विनय करना चाहिए। इसप्रकार वैनयिकवादके ८×४=३२ भेद हैं। (विनयवादी गुण-अवगुणकी परीक्षारहित विनयसे ही सिद्धि मानते हैं।)

''३२ भंगोंकी रचना''

सुर-नृपति-यति-ज्ञानी-वृद्ध-बाल-माता-पिता

मन वचन काय दान

सच्छंददिट्ठीहिं वियप्पियाणि, तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि।
पाखंडिणं वाउलकारणाणि, अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि॥८८९॥[१]

१. प्रा.पं.सं.पृ.५४६ श्लोक २३।

अर्थ – इसप्रकार स्वच्छंद अर्थात् अपना मनमाना जिनका श्रद्धान है ऐसे पुरुषों ने ये ३६३ भेद कल्पित किये हैं जो पाखण्डी जीवोंको व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली और अज्ञानीजीवोंके चित्तका हरण करनेवाली है।

आगे अन्य भी एकान्तवादोंका कथन करते हैं–

आलसड्ढो णिरुच्छाहो, फलं किंचिं ण भुंजदे।
थणक्खीरादिपाणं वा, पउरुसेण विणा ण हि ॥८९० ॥[1]

अर्थ – जो आलस्यसहित हो तथा उत्साह व उद्यमरहित हो वह कुछ भी फल नहीं भोग सकता। जैसे– स्तनोंका दूध पीना पुरुषार्थके बिना नहीं बन सकता, उसीप्रकार पुरुषार्थसे ही सबकार्य सिद्ध होते हैं, ऐसा मानना पौरुषवाद है।

दइवमेव परं मण्णे, धिप्पउरुसमणात्थयं।
एसो सालसमुत्तुंगो, कण्णो हण्णदि संगरे ॥८९१ ॥[2]

अर्थ – मैं केवल दैव (भाग्य) को उत्तम मानता हूँ, निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार हो। देखो किलेके समान ऊँचा कर्ण राजा युद्धमें मारा गया। इसप्रकार दैववादसे ही सिद्धि माननेवाला दैववादी है।

संजोगमेवेति वदंति तण्णा, णेवेक्कचक्केण रहो पयादि।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा, ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥८९२ ॥[3]

अर्थ – यथार्थज्ञानी दो के संयोगसे ही कार्यसिद्धि मानते हैं, क्योंकि जैसे- एक पहियेसे रथ नहीं चल सकता तथा एक अन्धा और दूसरा पंगु वनमें प्रविष्ट हुए, वन में आग लग जानेसे अन्धा व पंगु दोनों मिलकर अर्थात् अंधेके कन्धेपर पंगु चढ़कर अपने नगरमें प्रवेश कर गये। इसप्रकार संयोगसे ही कार्यसिद्धि माननेवाला संयोगवादी है।

सइउट्ठिया पसिद्धी, दुव्वारा मेलिदेहिं वि सुरेहिं।
मज्झिमपण्डवखित्ता, माला पञ्चसुवि खित्तेव ॥८९३ ॥

अर्थ – एक ही बार उठी हुई लोकप्रसिद्धि देवोंसे भी मिलकर दूर नहीं हो सकती, अन्य की तो बात ही क्या ? जैसे द्रौपदीने केवल मध्यवर्ती पांडव अर्थात् अर्जुन को माला डाली, किन्तु "पाँचों

---

१. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७ श्लोक ३०। २. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७ श्लोक ३०।
३. प्रा.पं.सं.पृ. ५४७ श्लोक ३१।

पांडवोंको डाली'' ऐसी प्रसिद्धि हो गई। इसप्रकार लोकवादी लोकप्रवृत्ति को ही सर्वस्व मानते हैं।

अब नेमिचन्द्राचार्य उपर्युक्त सभी मतों का विवाद मिटानेका विधान बताते हैं–

जावदिया वयणवहा, तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा, तावदिया चेव होंति परसमया॥८९४॥[1]

अर्थ – जितने वचन के मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद हैं उतने ही पर समय हैं।

विशेषार्थ – जो कुछ भी वचन बोले जाते हैं वे किसी अपेक्षा से कहे जाते हैं अत: जहाँ जो अपेक्षा है वही नय है, किन्तु जहाँ जिसको अन्य अपेक्षासे रहित ग्रहण करे वही मिथ्यामत हो जाता है इसलिए जितने वचनके प्रकार हैं उतने नय और जितने नय उतने मिथ्यामत हैं।

''एते सर्वेऽपि नया: एकान्तावधारणगर्भा मिथ्यादृष्टय:; एतैरध्यवसितवस्त्वभावात्। (ज.ध.पु.१ पृ. २४५)। मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्ख पडिबद्धा। अर्थात् ये सभी नय यदि परस्पर निरपेक्ष होकर वस्तुका निश्चय कराते हैं तो मिथ्या हैं, क्योंकि एक दूसरे नयकी अपेक्षाके बिना ये नय जिसप्रकारकी वस्तुका निश्चय कराते हैं, वस्तु वैसी नहीं है। अत: ''मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्ख पडिबद्धा'' इत्यादि ज. ध. गाथा १०२ के इस पूर्वार्ध में कहा है– केवल अपने-अपने पक्षसे प्रतिबद्ध ये सभी नय मिथ्या हैं।

आगे परसमयवाले मिथ्यामती वचन किसप्रकार मिथ्या हैं, उसका कारण बताते हैं–

परसमयाणं वयणं, मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जेणाणं पुण वयणं, सम्मं खु कहंचिवयणादो॥८९५॥[2]

अर्थ – परमतके वचन 'सर्वथा' रूप कहने से नियमसे असत्य होते हैं और जैनमतके वचन 'कथंचित्' बोलने से सत्य हैं।

विशेषार्थ – जैनमत स्याद्वादरूप है वह अनन्तधर्मस्वरूप वस्तुको 'कथंचित्' वचनसे कहता है इसलिए सत्य है, क्योंकि एकवचनसे वस्तुका एकधर्म ही कहा जाता है। यदि कोई सर्वथा कहे कि यही वस्तुका स्वरूप है तो शेष धर्मोंके अभावका प्रसंग होने से वह भी असत्य कहलावेगा। अन्यवादी वस्तुके एकधर्मको लेकर यही है ऐसे 'सर्वथा' रूप वचनसे वस्तुका स्वरूप कहते हैं सो पूर्वोक्त हेतुसे असत्य हैं। जैसे– वस्तु द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है, पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है अत: जैनमत सत्य है।

१. प्रवचनसार परिशिष्ट; जयधवल पु. १ पृ. २४५। २. प्रवचनसार परिशिष्ट, ज.ध.पु. १ पृ. २४५।

जितने वचनके मार्ग हैं उतने नय हैं। इनको प्रतिपक्षीकी अपेक्षासे रहित एकान्तरूपसे ग्रहण करनेसे मिथ्यात्वरूप हैं तथा प्रतिपक्षीकी अपेक्षा लेनेपर स्याद्वादरूपसे ग्रहण करनेपर सम्यक्रूप हैं।[१] इसप्रकार अन्यमतोंका विवाद एक स्याद्वादसे ही मिट सकता है, ऐसा समझना चाहिए।

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्य विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डकी 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दीटीकामें [illegible] सप्तम अधिकार पूर्ण हुआ।

❖ ❖ ❖

अथ त्रिकरणचूलिकाधिकार

अथानन्तर त्रिकरणचूलिकाको कहनेकी इच्छावाले आचार्य गुरुको नमस्कार करते हुए श्रोताओंको भी सावधान करनेकी इच्छासे उसप्रकार करनेका उपदेश करते हैं–

णमह गुणरयणभूसण, सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं।
वरवीरणंदिचंदं, णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥८९६॥

अर्थ – हे गुणरूपी रत्नके आभूषण चामुण्डराय! तुम सिद्धान्तशास्त्ररूपी अमृतमय महासमुद्रमें उत्पन्न हुए ऐसे उत्कृष्ट वीरनन्दी नामा आचार्यरूपी चन्द्रमाको नमस्कार करो तथा निर्मल गुणोंवाले इन्द्रनन्दी नामक गुरुको नमस्कार करो।

यद्यपि अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण इन तीनोंका विस्तारपूर्वक कथन तो इसी ग्रन्थमालासे प्रकाशित लब्धिसारग्रन्थके उपशमसम्यक्त्वप्रकरणमें किया गया है अतः वहींसे देखना चाहिए; तथापि आचार्य यहाँपर तीनकरणोंका स्वरूप कहते हैं–

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं, करणं तु करेदि अप्पमत्तो ॥८९७॥

अर्थ – चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियों का क्षय करनेके लिए अथवा उपशम करनेके लिए

---

१. मिच्छादिट्ठी सव्वे वि णया सपक्खपडिबद्धा। अण्णोण्ण णिस्सिया उण लहंति सम्मत्त सब्भावं ॥१०२॥ (ज.ध.पु. १ पृ. २४९)

अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये विशुद्धिरूप तीनकरण होते हैं। उनमेंसे प्रथम अधःप्रवृत्तकरणको सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव करता है। यहाँ करणनाम परिणामका है।[१]

आगे अधःप्रवृत्तकरण का शब्दार्थ से सिद्ध हुआ लक्षण कहते हैं–

जम्हा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।
तम्हा पढमं करणं, अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं॥८९८॥

अर्थ – जिसकारण इस प्रथमकरणमें उपरितन समयवर्तीभाव (परिणाम) अधस्तनसमय सम्बन्धी भावोंके समान होते हैं इसलिए प्रथमकरणका "अधःप्रवृत्तकरण" ऐसा अन्वर्थ (अर्थके अनुसार) नाम कहा गया है।[२]

अंतोमुहुत्तमेत्तो, तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखपमा, उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया॥८९९॥

अर्थ – उस अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। उस कालमें जीवके असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम होते हैं और वे परिणाम प्रथमसमयसे लेकर आगे-आगेके समयोंमें समानवृद्धि (चय) रूपसे अन्तसमयपर्यन्त बढ़ते हैं।

विशेषार्थ – अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पंक्तिको ऊर्ध्व आकारसे स्थापित करके उन समयोंके प्रायोग्यपरिणामोंका प्ररूपण करते हैं– अधःप्रवृत्तकरणमें प्रथमसमयवर्ती जीवोंके योग्यपरिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं। द्वितीय समयवर्ती जीवोंके योग्यपरिणाम भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं। इसप्रकार समय-समयके प्रति अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणका निरूपण अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिमसमयतक करना चाहिए। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीयसमयके योग्यपरिणाम विशेषअधिक होते हैं। वह विशेष अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, अर्थात् प्रथमसमयसम्बन्धी परिणामों के प्रमाणमें अंतर्मुहूर्तका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने प्रमाण से अधिक है। अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणामोंसे तृतीयसमयके परिणाम विशेषअधिक होते हैं। इसप्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणकाल के अन्तिमसमयतक ले जाना चाहिये।[३]

---

१. "असि-वासीण व साहयतमभावविवक्खाए परिणामाण करणत्तु वलभादो।" (धवल पु. ६ पृ. २१७) तलवार और वसूलाके समान साधकतमभावकी विवक्षामें परिणामोंके कारणपना पाया जाता है।

२. लब्धिसार गाथा २५; धवल पु. ६ पृ. २१७; जयधवल पु. १२ पृ. २३३।

३. धवल पु. ६ पृ. २१४-२१५; जयधवल पु. १२ पृ. २३५।

अथानन्तर अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंकी संख्याको समझानेके लिये अंकसंदृष्टि द्वारा कथन करते हैं–

बावत्तरितिसहस्सा, सोलस चउ चारि एक्कयं चेव।
धणअद्धाणविसेसे, तियसंखा होदि संखेज्जे॥९००॥

अर्थ – यहाँ अङ्कसन्दृष्टिमें सर्वधन ३०७२, अधः प्रवृत्तकरणकालका प्रमाण १६, तिर्यग्गच्छ (अनुकृष्टिखण्ड) ४, ऊर्ध्वरूप वृद्धिका प्रमाण विशेष ४, तिर्यग्रूप अनुकृष्टिमें वृद्धिका प्रमाण १ और वृद्धि अर्थात् चयको सिद्धकरनेके लिये संख्यातकी सहनानी ३ का अंक समझना चाहिये।

विशेषार्थ – यहाँ करणके सर्वसमयसम्बन्धी परिणामोंका समूह तो सर्वधन (३०७२) है तथा करणकालके जितने समय हों उनको ऊपर-ऊपर लिखना सो उसकालके जितने समय हों वही ऊर्ध्वगच्छ अथवा पद है एवं एकसमयमें किसी जीवके कितने परिणाम पाये जाते हैं, अन्यजीवके कितने परिणाम पाए जाते हैं? इसप्रकारसे एक समयमें जितने खण्ड हों उनकी विवक्षित समयकी रचनाके बराबर रचना करनेपर उन खण्डोंका जो प्रमाण हो वह अनुकृष्टिके तिर्यग्गच्छ या पदका परिमाण है तथा प्रतिसमय जितने परिणाम क्रमसे बढ़ते हैं वह ऊर्ध्व चय (प्रचय-उत्तर या विशेष) है। प्रत्येकखण्डमें जितनी वृद्धि होती है वह तिर्यग्रूप अनुकृष्टिका विशेष-चय-प्रचय या विशेष है तथा चय का प्रमाण जाननेके लिये जिस संख्यातका भाग दिया जाता है उसकी सहनानी अंकसंदृष्टिमें ३ है।

आदिधणादो सव्वं, पचयधणं संखभागपरिमाणं।
करणे अधापवत्ते, होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥९०१॥

अर्थ – अधःप्रवृत्तकरणमें सर्व प्रचयधन आदिधनके संख्यातवेंभागप्रमाण है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।

विशेषार्थ – सर्वसमयसम्बन्धी चयको जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो सो प्रचयधन है, प्रचयधनको उत्तरधन भी कहते हैं तथा चयरहित सर्वसमयसम्बन्धी धन आदिधन है सो **''पदकृत्या संख्यातेन सर्वधने भक्ते ऊर्ध्वचयप्रमाणं स्यात्''** अर्थात् पदकी कृति (वर्ग) और संख्यातका भाग सर्वधनमें देनेपर ऊर्ध्वचयका प्रमाण होता है अतः पद (गच्छ) १६ की कृति (वर्ग) १६×१६=२५६ और संख्यातकी सहनानी ३ सो इसका भाग सर्वधन ३०७२ में देनेपर ३०७२/२५६×३=४ लब्ध आया सो यह ऊर्ध्वप्रचयका प्रमाण है तथा **''व्येकपदार्धघ्न चयगुणो गच्छ उत्तरधनं''** इस करणसूत्रके अनुसार एककम पदके आधे को चयसे और गच्छसे गुणा करनेपर प्रचयधन होता है अतः एककम गच्छ (१५) का आधा साढ़े सात, इसको चय (४) से गुणा किया तो (१५/२×४) ३० आया। पुनः गच्छ (१६)

से गुणनेसे (३०×१६) ४८० लब्ध आया सो यह उत्तरधन है। इस उत्तरधनको सर्वधन (३०७२) में से घटानेपर (३०७२-४८०) २५९२ शेष रहे सो यह आदिधन है तथा प्रमाणराशि ४८०, इच्छाराशि एकशलाका और फलराशि २५९२। यहाँ फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेपर (२५९२×१/४८०) २७/५ शलाका हुईं। पुनश्च प्रमाणराशि २७/५ शलाका, फलराशि २५९२ (आदिधन) और इच्छाराशि एक शलाका है। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेपर (२५९२×१/१×५/२७) ४८० चयधन प्राप्त हुआ और यह आदिधनके संख्यातवेंभागप्रमाण है इसे उत्तरधन भी कहते हैं।

उभयधणे संमिलिदे, पदकदिगुणसंखरूवहदपचयं।
सव्वधणं तं तम्हा, पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं॥९०२॥

अर्थ – आदिधन और प्रचयधनको मिलानेपर (२५९२+४८०) सर्वधन होता है अथवा गच्छके वर्गको संख्यातसे गुणाकर पुनः चयसे गुणा करनेपर ($१६^{२}$×३×४) अर्थात् (२५६×३×४) सर्वधनका प्रमाण (३०७२) प्राप्त होता है तथा सर्वधनको गच्छ (१६) के वर्ग अर्थात् २५६ व संख्यातकी सहनानी ३ से भाग देनेपर (३०७२/२५६×३) ४ लब्ध आया सो यह प्रचयका प्रमाण है।

चयधणहीणं दव्वं, पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं।
आदिम्हि चये उड्ढे, पडिसमयधणं तु भावाणं॥९०३॥

अर्थ – सर्वधनमें से चयधनको घटानेपर आदिधन प्राप्त होता है। उसको पद (गच्छ) का भाग देनेपर प्रथमसमयसम्बन्धी विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण प्राप्त होता है। इसको आदिप्रमाण भी कहा है। उस प्रथमसमयके प्रमाणमें चय-चयकी वृद्धि करनेपर प्रत्येकसमयसम्बन्धी धन अर्थात् द्वितीयादि समयोंके परिणामोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ – अङ्कसन्दृष्टिमें सर्वधन ३०७२ में से चयधन ४८० घटानेपर २५९२ आदिधन होता है। इसमें पद (गच्छ) १६ का भाग देनेपर १६२ आया सो यह प्रथमसमयके विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण जानना। इसमें एक चयका प्रमाण ४ मिलानेसे (१६२+४) १६६ हुए सो ये द्वितीयसमयके विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण है। इसमें एक चय और मिलानेसे (१६६+४) १७० हुए सो तृतीयसमयके विशुद्धपरिणाम हैं। इसप्रकार आगे-आगे एक-एक चय बढ़ानेपर समय-समयप्रति अधःप्रवृत्तकरणके विशुद्धपरिणामोंका प्रमाण प्राप्त होता है। अधःप्रवृत्तकरणपरिणामोंका प्रमाण इसप्रकार है– १६२।१६६।१७०।१७४।१७८।१८२।१८६।१९०।१९४।१९८।२०२।२०६।२१०।२१४।२१८।२२२।

पचयधणस्साणणये, पचयं पभवं तु पचयमेव हवे।
रूऊणपदं तु पदं, सव्वत्थनि होदि णियमेण ॥१०४॥

अर्थ – प्रचयधन प्राप्त करनेमें जो वृद्धि हुई है वह प्रचय है और जो आदि में होता है वह प्रभव है जो प्रचय ही है। एककमपद (गच्छ) सो यहाँ पदका प्रमाण है। आदिप्रमाणमें जो वृद्धि हुई वह चय है।

विशेषार्थ – प्रथमस्थानमें चयका अभाव है अत: यहाँ गच्छका प्रमाण विवक्षित गच्छके प्रमाणसे एककम (१६-१) जानना। ऊर्ध्वरचनामें चयका प्रमाण चार है अत: आदि ४ और उत्तर ४ और गच्छके प्रमाण १६में से एककम करनेसे गच्छ १५। यहाँ–

[1]पदमेगेण विहीणं, दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं।
पभवजुदं पदगुणिदं पदगणिदं होदि सव्वत्थ ॥१६४॥

इस करणसूत्र से प्रचयधन प्राप्त करते हैं। तद्यथा–एककमपदको २ से भागदेकर चयसे गुणा करे तथा आदिको मिलाकर गच्छसे गुणा करनेपर चयधनका जोड़ होता है। अङ्कसन्दृष्टिमें-गच्छ १५में से एककम कर (१५-१) पद १४ को २ से भाग देनेपर (१४÷२) ७ आया इसको चय (४) से गुणा किया तो (७×४) २८ हुआ इसमें (आदिधन) ४ मिलानेसे (२८+४) ३२ लब्ध आया इसको गच्छके प्रमाण १५से गुणा करनेपर (३२×१५) ४८०, सो यह प्रचयधनका प्रमाण है।

अब अनुकृष्टिके प्रथमखण्डका प्रमाण कहते हैं–

पडिसमयधणेवि पदं, पचयं पभवं च होदि तेरिच्छे।
अणुकट्टिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो हु॥१०५॥

अर्थ – प्रत्येकसमयके धनमें अनुकृष्टिके गच्छ, चय आदि (प्रभव) सभीकी रचना तिर्यग्रूपसे होती है और अनुकृष्टिका गच्छ, सर्वअध्वान अर्थात् ऊर्ध्व गच्छके संख्यातवेंभागप्रमाण निश्चयसे होता है।

विशेषार्थ – परिपाटीक्रमसे विरचित इन परिणामोंसे पुनरुक्त और अपुनरुक्तभावका अनुसन्धान करना अनुकृष्टि है। अथवा '**अनुकर्षणमनुकृष्टि**' परिणामोंकी परस्पर समानताका विचार करना वह अनुकृष्टिका एकार्थ है।[2] अनुकृष्टिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थित स्वरूप है, क्योंकि यह काल

१. त्रिलोकसार। २. ज.ध.पु.१२ पृ. २३५।

अधःप्रवृत्तकरणकालके संख्यातवेंभागप्रमाण है।[1] अङ्कसन्दृष्टिसे-ऊर्ध्वगच्छ १६ में संख्यातरूप ४का भाग देनेसे अनुकृष्टिके गच्छका प्रमाण (१६÷४)=४ प्राप्त हुआ।

अणुकट्टिपदेण हदे, पचये पचयो दु होदि तेरिच्छे।
पचयधणूणं दव्वं, सगपदभाजिदं हवे आदी॥९०६॥

अर्थ – अनुकृष्टिके गच्छका भाग ऊर्ध्वचयमें देनेसे जो प्रमाण हो वह अनुकृष्टिका चय होता है और प्रत्येक समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके सर्वधनमें से प्रचयधन कम करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें अपने-अपने गच्छका भाग देनेसे अनुकृष्टिके प्रथमखण्ड का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ – यहाँ अनुकृष्टि गच्छ ४का ऊर्ध्वचय ४में भाग देनेपर (४/४) एक प्राप्त हुआ सो अनुकृष्टिका चय जानना तथा **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छं उत्तरधनं'** इस करणसूत्रसे एककम गच्छ (४-१) ३ इसका आधा डेढ़ इसको चय १से गुणाकरे तो (१ १/२×१=१ १/२) और गच्छसे गुणा करे तो (१ १/२×४) ६ हुए सो अनुकृष्टिमें प्रचयधन जानना। प्रथमसमय सम्बन्धी जो १६२ परिणाम वे ही प्रथमसमयसम्बन्धी अनुकृष्टि का सर्वधन है। उसमें प्रचयधन ६ घटाकर (१६२-६) १५६ रहे उसको अनुकृष्टिगच्छ (४) का भाग देनेपर १५६÷४=३९ आये सो यह प्रथमसमय की अनुकृष्टिके प्रथमखण्डके परिणामोंकी संख्याका प्रमाण जानना।

आदिम्हि कमे वड्ढदि, अणुकट्टिस्स य चयं तु तेरिच्छे।
इदि उट्ठतिरियरयणा, अधापवत्तम्हि करणमम्हि॥९०७॥

अर्थ – प्रथमखण्डसे आगे द्वितीयादि खण्डोंमें तिर्यग्रूप अनुकृष्टिका एक-एक चय क्रमसे बढ़ता है तब द्वितीयादि खण्डोंका प्रमाण होता है। इसप्रकार ऊर्ध्वरूप और तिर्यग्रूप दोनों ही रचना अधःप्रवृत्तकरणमें जाननी चाहिये।

विशेषार्थ – उस आदिखण्डसे द्वितीयादि खण्डमें क्रमसे तिर्यग्रूप एक-एक अनुकृष्टिका चय बढ़ना सो अनुकृष्टिका चय एक-एक बढ़नेसे ३९।४०।४१।४२, द्वितीयसमयमें ४०।४१।४२।४३। प्रमाण जानना सो द्वितीयसमयके और प्रथमसमयसम्बन्धी ४०।४१।४२। परिणाम समान हैं। इसीप्रकार तृतीयादि समयमें अनुकृष्टिरचना करके खण्डमें परिणामोंका प्रमाण व अधःस्तन समयसम्बन्धी परिणामोंसे समानता जानना चाहिए। ऐसे ऊर्ध्व व तिर्यग्प्रचयरूप दोनों रचना अधःप्रवृत्तकरणमें है। जैसे-अंकोंकी सहनानीसे दृष्टांतरूप कथन किया उसीप्रकार अर्थसन्दृष्टिके द्वारा यथार्थ कथन जानना। प्रथमसमयका प्रथमखण्ड और अन्तिमसमयके अन्तिमखण्डबिना उपरितन सर्वखण्डसम्बन्धी परिणामोंके अधस्तनखण्डसम्बन्धी परिणामोंसे यथासम्भव समानता है सो इस करण का नाम अधःप्रवृत्त है।

१. ज.ध.पु. १२ पृ. २३६।

	चतुर्थ निर्वर्गणाकाण्डक				तृतीय निर्वर्गणाकाण्डक				द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डक				प्रथम निर्वर्गणाकाण्डक			
१६ समयवर्ती परिणाम सं.	२२२	२१८	२१४	२१०	२०६	२०२	१९८	१९४	१९०	१८६	१८२	१७८	१७४	१७०	१६६	१६२
प्रथम खण्ड	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९
द्वितीय खण्ड	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
तृतीय खण्ड	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१
चतुर्थ खण्ड	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसे लेकर यथाक्रम विशेष अधिकके क्रमसे रचना करके प्रथमसमयके परिणामोंके (अधःप्रवृत्तकरणकालके संख्यातवेंभागप्रमाण) अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं, मात्र उतने खण्ड करना चाहिये सो एक निर्वर्गणाकाण्डकका उतना ही प्रमाण है। विवक्षित समयके परिणामोंकी अनुकृष्टिका विच्छेद जितने स्थान ऊपर जाकर होता है वह निर्वर्गणाकाण्डक कहा जाता है।[1] प्रथमसमयके परिणामसम्बन्धी वे खण्ड परस्पर सदृश नहीं होते; विसदृश होते हैं क्योंकि विशेष अधिक क्रमसे अवस्थित हैं। प्रथमसमयसम्बन्धी परिणामोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो वह विशेषअधिक का प्रमाण है। पुनः प्रथमखण्डको छोड़कर इन्हीं परिणामखण्डोंको परिपाटीका उल्लंघनकरके दूसरे समयमें स्थापित करना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि इस द्वितीयसमयमें असंख्यातलोकप्रमाण अन्य अपूर्वपरिणाम भी होते हैं जो विशेष होते हैं, जैसे उपर्युक्तसन्दृष्टिमें जो ४३ हैं उन्हें यहाँ अन्तिमखण्डरूपसे स्थापित करना चाहिए। इसप्रकार स्थापित करनेपर दूसरे समयमें भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण परिणामखण्ड प्राप्त होते हैं; तथैव तृतीयादि समयोंमें भी परिणामखण्डोंकी रचना अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयतक यथाक्रम करनी चाहिए। इनकी सन्दृष्टि निम्न प्रकार भी की गई है–

१. ज.ध.पु. १२ पृ. २५४; ११४।

१०००००००००००,	१००००००००००००,	१०००००००००००००,	१००००००००००००००
१००००००००००,	१०००००००००००,	१००००००००००००,	१००००००००००००००
१०००००००००,	१००००००००००,	१०००००००००००,	१०००००००००००००
१००००००००,	१०००००००००,	१०००००००००००,	१००००००००००००
१०००००००,	१००००००००,	१०००००००००००,	१०००००००००००००
१००००००,	१०००००००,	१००००००००००,	१००००००००००००
१००००००,	१०००००००,	१००००००००००,	१०००००००००००
१००००००,	१०००००००,	१००००००००००,	१०००००००००००
१००००००,	१०००००००,	१००००००००००,	१०००००००००००

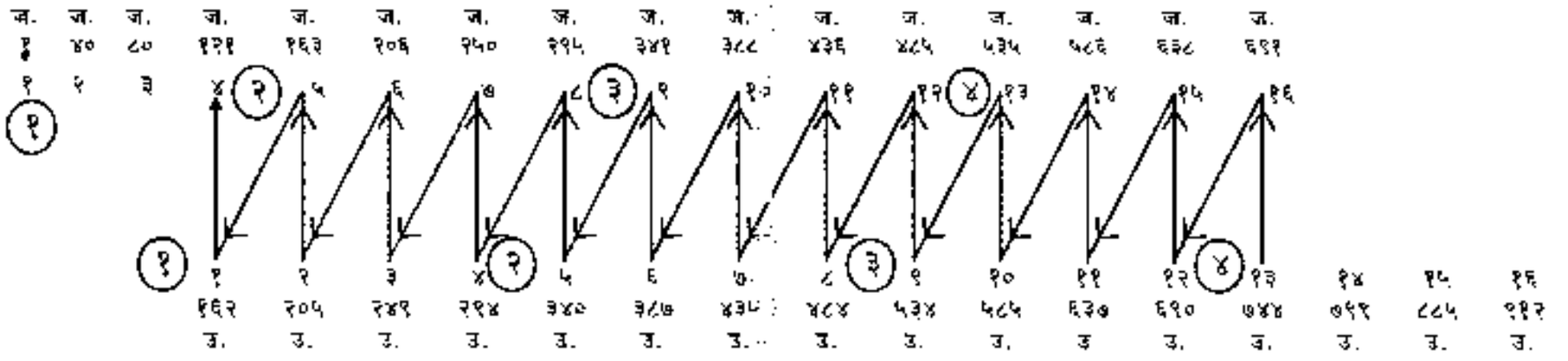
सन्दृष्टिके अनुसार अनुकृष्टिकी प्ररूपणा इसप्रकार है– अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी प्रथमखण्डके परिणाम उपरिमसमयसम्बन्धी परिणामोंमें से किन्हीं भी परिणामोंके समान नहीं होते, वहींपर दूसरे खण्डके परिणाम (४०) दूसरे समयके प्रथमखण्ड (४०) के परिणामोंके समान होते हैं। इसीप्रकार प्रथमसमयके तृतीयादि खण्डोंके परिणामोंका भी तृतीयादि समयोंके प्रथमखण्डके परिणामोंके साथ क्रमसे पुनरुक्तपना तबतक जानना चाहिए जबतक प्रथमसमयसम्बन्धी अन्तिमखण्डके परिणाम (४३) प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिमसमयके प्रथमखण्डके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं।

इसीप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयादि समयोंके परिणामखण्डोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित करके वहाँके द्वितीयादि खण्डगत परिणामोंका विवक्षित समयसे लेकर ऊपर एकसमयकम निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण समयपंक्तियोंके प्रथमखण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्तपनेका कथन करना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र प्रथमखण्डसम्बन्धी परिणाम अपुनरुक्तपनेसे अवशिष्ट रहते हैं अर्थात् प्रत्येक समयके प्रथमखण्डसम्बन्धी परिणाम अगले समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं होते। इसी प्रकार द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डक परिणामखण्डोंका तृतीयनिर्वर्गणाकाण्डकके परिणामखण्डोंके साथ पुनरुक्तपना जानना चाहिए, किन्तु वहाँपर भी प्रथमखण्डके परिणाम अपुनरुक्तरूपसे अवशिष्ट रहते हैं। इसी क्रमसे तृतीय-चतुर्थ-पंचमादि निर्वर्गणाकाण्डकों के भी अनन्तर उपरिमनिर्वर्गणाकाण्डकोंके साथ पुनरुक्तपना वहाँ पर्यन्त ले जाना चाहिए जबतक द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमादि समयोंके सर्व परिणामखण्ड, प्रथमखण्डको छोड़कर अन्तिमनिर्वर्गणाकाण्डक परिणामोंके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं। अंतिमनिर्वर्गणाकाण्डकके स्वस्थानमें पुनरुक्त-अपुनरुक्तपनेका अनुसन्धान परमागमके अविरोधपूर्वक करना चाहिये।

अथवा यहाँ पर इसप्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए–प्रथमसमयमें जो प्रथमखंड (३९) है वह

ऊपर किसीके साथ भी सदृश नहीं है। पुनः प्रथमसमयसम्बन्धी द्वितीयखण्ड (४०) तथा द्वितीयसमयका प्रथमखण्ड (४०) दोनों ही सदृश हैं। तथैव प्रथमसमयका तृतीयखण्ड (४१) और द्वितीयसमयका द्वितीयखण्ड (४१) ये दोनों भी सदृश हैं। इसीप्रकार आगे चलकर प्रथमसमयवर्ती अन्तिमखण्ड तथा द्वितीयसमयका द्विचरमखण्ड ये दोनों सदृश हैं। तथैव द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणामखण्डोंका और तृतीयसमय के परिणामखण्डोंका सन्निकर्ष करना चाहिए। इसीप्रकार ऊपर भी तदनन्तर पिछले (पूर्व) के साथ सन्निकर्षविधि जानकर कथन करना चाहिए।

परस्थान अल्पबहुत्वका कथन इसप्रकार है– अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयमें जघन्य विशुद्धि (१) सबसे स्तोक है, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणमें इससे अल्प अन्यस्थान नहीं पाया जाता है। उससे द्वितीयसमयमें जघन्यविशुद्धि (४०) अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथमसमयके जघन्यविशुद्धिस्थानसे षट्स्थानक्रम द्वारा असंख्यातलोकमात्र विशुद्धिस्थानों को उल्लंघनकर स्थित हुए द्वितीयखण्डके जघन्यविशुद्धिस्थानका द्वितीय समयमें जघन्यपना देखा जाता है इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त (प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्त) तक जघन्य विशुद्धिका ही प्रतिसमय अनन्तगुणित क्रमसे कथन करना चाहिए, उससे (प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डक) प्रथमसमयमें उत्कृष्टविशुद्धि (१६२) अनन्तगुणी है, क्योंकि इससे अनन्तरपूर्व जो जघन्यविशुद्धिक्रम प्राप्त है वह तो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयके विशुद्धस्थानोंके अन्तिमखण्डकी आदि-विशुद्धि है और उसी अन्तिमखण्डकी उत्कृष्टविशुद्धि उक्त आदि विशुद्धिसे छहस्थान क्रमसे वृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण परिणामस्थानोंको उल्लंघकर अवस्थित है। प्रथमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (१६२) से द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डक के प्रथम खण्ड की जघन्यविशुद्धि (१६३) अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि द्वितीयसमयके द्विचरमखण्डके अन्तिमपरिणामके सदृश होकर उर्वंकपनेसे अवस्थित है और द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डककी जघन्यविशुद्धि अष्टांकरूपसे अवस्थित है इसलिए अनन्तगुणी है, इससे द्वितीयसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (२०५) अनन्तगुणी है, क्योंकि पूर्व की जघन्यविशुद्धि (१६३) अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयके अन्तिमखण्डके जघन्यपरिणाम स्वरूप है और उससे असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर स्थित यह द्वितीयसमयके अन्तिमखण्डकी उत्कृष्टविशुद्धि है इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है। इस पद्धतिसे अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण एक निर्वर्गणाकाण्डकको अवस्थितकर उपरिम और अधस्तन जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंका अल्पबहुत्व करना चाहिए। यह सब अल्पबहुत्व निर्वर्गणाकाण्डकोंको क्रमसे उल्लंघनकर पुनः द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (६९०) से अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयकी जघन्यविशुद्धि (६९१) अनन्तगुणी है; उससे अन्तिमनिर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धि (७४४) अनन्तगुणी है। अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयपर्यन्त इसप्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनी चाहिए। इसकी सन्दृष्टि इसप्रकार है–



उपर्युक्त सन्दृष्टिमें-- १ से १६ तककी संख्या अधःप्रवृत्तकरणके समयोंकी सूचक है।

कोष्ठकके भीतरकी संख्या निर्वर्गणाकाण्डककी सूचक है। प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डक चार समयोंका है। १-४० आदि संख्या उस-उस समयके जघन्यपरिणामकी विशुद्धिसंख्या सूचक है। १६२-२०५ आदि संख्या उस-उस समयके उत्कृष्टपरिणामकी विशुद्धिसंख्या सूचक है। जघन्यसे जघन्य, जघन्यसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टसे जघन्य और उत्कृष्टसे उत्कृष्ट प्रत्येक अनन्तगुणीविशुद्धिसे वृद्धिंगत है।

अधःप्रवृत्तकरणमें केवल प्रतिसमय अनन्तगुणीविशुद्धिसे विशुद्ध होता है, किन्तु उन विशुद्धियोंमें स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम करनेकी समर्थता नहीं है। जो अप्रशस्त कर्मप्रकृतियाँ बँधती हैं वे समय-समयमें द्विस्थानीय अनन्तगुणीहीन शक्तिसे युक्त बँधती है और जो प्रशस्त प्रकृतियाँ बँधती है वे समय-समयमें चतुःस्थानीय अनन्तगुणी अनुभागशक्तिसे युक्त बँधती हैं। एक-एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवेंभागसे हीन अन्य-अन्य स्थितिबन्धको बाँधना आरम्भ करता है। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयमें ही उससे अनन्तरपूर्व अधस्तनसमयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागहीन अन्य स्थितिबन्धको प्रारम्भ करता है। पुनः इस स्थितिबन्धको अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थितरूपसे बाँधनेवालेके उसका बन्धकाल क्षीण हो जाता है। पुनः उससे पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाण न्यून अन्य स्थितिबन्धका आरम्भकर उसे भी अन्तर्मुहूर्तकालतक अवस्थितरूपसे बाँधता है। इसक्रमसे स्थितिबन्धके पुनः पुनः पूर्ण होनेपर पल्योपमका संख्यातवाँभागप्रमाण हीन बन्ध करता हुआ अधःप्रवृत्तकरणकालके भीतर संख्यातहजार स्थितिबन्धापसरण करता है।

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तु।
पडिसमयं सुज्झंता, अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥९०८॥

अर्थ – सातिशयअप्रमत्तसंयमी समय-समयप्रति अनन्तगुणीविशुद्धतासे बढ़ता हुआ अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्त अधःकरण करता है। पुनः उसको समाप्त करके अपूर्वकरण को प्राप्त होता है।

आगे अङ्कसन्दृष्टि द्वारा अपूर्वकरणपरिणामोंका कथन करते हैं–

छप्पणउदिचउसहस्सा, अट्ठ य सोलस धणं तदद्धाणं।
परिणामविसेसोवि य, चउ संखापुव्वकरणसंदिट्ठी ॥९०९॥

अर्थ – अपूर्वकरणमें सर्वधन ४०९६ और गच्छ ८, परिणामविशेष १६ एवं संख्यातका प्रमाण ४ है सो यह अङ्कसन्दृष्टिमें कथन किया है।

विशेषार्थ – यहाँ अपूर्वकरणके सर्वस्थानोंका प्रमाण सर्वधन, अपूर्वकरणकालसम्बन्धी समयोंका प्रमाण गच्छ, प्रतिसमय बढ़ते हुए परिणाम विशेष अर्थात् चय तथा चयको प्राप्त करनेके लिये संख्यातका प्रमाण ४ है।

अंतोमुहुत्तमेत्ते, पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
कमउड्ढापुव्वगुणे, अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥९१०॥

अर्थ – अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। इसमें समय-समयप्रति असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम पाए जाते हैं और वे प्रथमसमयसे अन्तिमसमयपर्यन्त समान चयरूप बढ़ते हैं। इसमें अनुकृष्टिरचना नहीं होती है।

विशेषार्थ – अपूर्वकरणमें उपरितन समयवर्ती परिणाम अधस्तन समयवर्ती परिणामोंके सदृश नहीं होते। किसी जीवका प्रथमसमयमें उत्कृष्ट परिणाम होता है किसी जीवका द्वितीयसमयमें जघन्य परिणाम होता है तथापि प्रथमसमयवर्ती जीवके परिणामोंसे द्वितीयसमयवर्ती जीवके परिणामोंमें अधिकता पाई जाती है। अतः जिनके अपूर्वकरणका प्रथमसमय है उन अनेक जीवोंके परिणामोंकी समानता भी होती है और असमानता भी होती है, किन्तु द्वितीयादिसमयवर्ती जीवोंके परिणामोंसे कदाचित् भी समानता नहीं होती इसप्रकार जिनके अपूर्वकरणको प्राप्त किये हुए द्वितीयादि समय हो गये हैं उनके परिणामोंकी परस्परमें समानता व असमानता और उपरितन व अधस्तन समयवर्ती परिणामोंसे असमानता ही है इसीलिए इसका नाम अपूर्वकरण है। यहाँ सर्वधन ४०९६, गच्छ ८, इसकावर्ग ६४, संख्यातकी सहनानी ४ **'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं'** गाथा ९०२ के इस सूत्रानुसार पद (गच्छ) के वर्ग ६४

को संख्यात (४) से गुणाकरके उसराशिसे सर्वधनमें भाग देनेपर (४०९६/६४×४) १६ आया सो यह चयका प्रमाण जानना तथा **''व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं''** इससूत्रसे एककम गच्छके आधे ३ १/२ को चय १६ से गुणाकरके (७/२×१६) लब्ध ५६में गच्छ ८से गुणा करनेसे ४४८ होते हैं सो यह प्रचयधन है। **''चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिधणं''** इस सूत्रसे चयधन ४४८ को सर्वधन ४०९६में से घटानेपर (४०९६-४४८) ३६४८ शेष रहे। इसमें गच्छ ८का भाग देनेसे (३६४८÷८) ४५६ आये सो प्रथमसमयसम्बन्धी भावों का प्रमाण है तथा **'आदम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं''** इस सूत्रसे आदिधनके प्रमाणमें एक-एक चयका प्रमाण (१६) क्रमसे मिलानेपर समय-समयसम्बन्धी भावोंका प्रमाण होता है। प्रथमसमयसम्बन्धी ४५६में एक चय मिलने पर (४५६+१६) ४७२ द्वितीयसमयसम्बन्धी परिणाम होते हैं। पुन: इनमें एकचय मिलानेसे (४७२+१६) ४८८ तृतीयसमयसम्बन्धी परिणाम होते हैं सो इसीप्रकार अन्तिमसमयपर्यन्त भावों (परिणामों) का प्रमाण जानना।

अंकसंदृष्टि की अपेक्षा अपूर्वकरण का यंत्र

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६
आठसमयवर्ती सब परिणामोंका कुलयोग ४०९६

इस दृष्टांतका ऐसा अर्थ जानना कि अध:प्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं। इनको असंख्यातलोकसे गुणा करे तो अपूर्वकरणसम्बन्धी सर्वधन होता है, अपूर्वकरणकालके समयोंका प्रमाण गच्छ कहलाता है तथा गच्छके वर्गको संख्यातगुणा करके इसका भाग सर्वधनमें देनेपर चयका प्रमाण होता है।

यहाँ यह अर्थ भी है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं। द्वितीयादि समयमें भी असंख्यातलोकप्रमाण ही हैं तथापि चयप्रमाणरूप ही बढ़ते-बढ़ते हुए हैं। यहाँ प्रथमसमयसम्बन्धी जघन्यविशुद्धिपरिणाम भी अध:प्रवृत्तकरण के अन्तिमसमयवर्ती अन्तिमअनुकृष्टिखण्डके विशुद्धपरिणामसे अनन्तगुणे विशुद्ध हैं उससे प्रथमसमयसम्बन्धी उत्कृष्टपरिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध हैं इसलिये यहाँ भी असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धि सम्भव है। इससे द्वितीयसमयवर्ती जघन्यपरिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध हैं। इसप्रकार अन्तिमसमयपर्यन्त जानना तथा उपरितनसमयवर्ती परिणाम अधस्तनसमयवर्ती परिणामोंके समान कभी भी नहीं होते अत: अपूर्वकरण ऐसा नाम कहा है।

अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जघन्यरूपसे तो पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाण आयामवाला जघन्यस्थितिकाण्डकघात होता है, क्योंकि सबसे जघन्य अन्त:कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ आए हुए जीवके यह स्थितिकाण्डकघात होता है, परन्तु सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण आयामवाला प्रथम

उत्कृष्टस्थितिकाण्डकघात होता है, क्योंकि जघन्यस्थितिसत्कर्म से संख्यातगुणे स्थितिसत्कर्मके साथ आकर अपूर्वकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके प्रथमसमयमें उक्त स्थितिकाण्डकघात होता है। अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागहीन अपूर्वस्थितिबन्धको अपूर्वकरणके प्रथमसमय में प्रारम्भ करता है। अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्तकर्मोंका ही होता है, क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्तकर्मोंकी अनुभागवृद्धिको छोड़कर उसका घात नहीं हो सकता। उस अनुभागकाण्डकका प्रमाण तत्कालभावी द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्तबहुभागप्रमाण है, क्योंकि करणपरिणामोंके द्वारा घाते जानेवाले अनुभागकाण्डकके अन्य विकल्पोंका होना असम्भव है। एकप्रदेशगुणहानि स्थानान्तरके भीतर अनुभागसम्बन्धी स्पर्धक अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभाग प्रमाण होकर भी आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक हैं। उपरिम अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंका अपकर्षण करते हुए जितने अनुभागस्पर्धकोंको जघन्यरूपसे अतिस्थापित करके उनसे अधस्तनवर्ती स्पर्धक निक्षेपरूप से स्थापित करता है। वे जघन्यअतिस्थापनाविषयकस्पर्धक एकप्रदेशगुणहानि स्थानन्तरके स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं, उससे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं, उससे काण्डकरूपसे ग्रहण किये गये स्पर्धक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक अनुभागकाण्डकघातमें अनुभागसत्कर्मके अनन्तवेंभागको छोड़कर शेष अनन्तबहुभागको काण्डकरूपसे ग्रहण किया जाता है। अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें ही आयुकर्मके अतिरिक्त शेषकर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप होता है। उसका काल अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणके समुदितकाल (अन्तर्मुहूर्त) से अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातवेंभाग विशेष अधिक है। गुणश्रेणिकी रचनाका क्रम इसप्रकार है—अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें डेढ़गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धों को अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजितकर वहाँ लब्धरूपसे प्राप्त एकखण्डप्रमाण द्रव्य का अपकर्षणकरके उसमें असंख्यातलोकका भाग देनेपर, एकभाग द्रव्यको उदयावलिके भीतर गोपुच्छाकाररूपसे निक्षिप्तकर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलिके बाहर अनन्तरस्थितिमें असंख्यातसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यको निक्षिप्त करता है। उससे उपरिमस्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। इसप्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिककालमें गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तरस्थितिमें असंख्यातगुणाहीन द्रव्य देकर उसके ऊपर गोपुच्छाकार से द्रव्य दिया जाता है। इसी प्रकार अपूर्वकरण के द्वितीयादि समयों में भी गुणश्रेणिनिक्षेप होता है। स्थितिकाण्डक का काल और स्थितिबन्धका काल तुल्य है, किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थिति काण्डकोत्कीर्णकाल और प्रथम स्थितिबन्धकाल से द्वितीयादि स्थितिकाण्डकोत्कीर्णकाल और द्वितीयादि स्थिति बन्धों का काल यथाक्रम विशेषहीन-विशेषहीन होता है। एक स्थितिकाण्डक में हजारों अनुभागकाण्डक होते हैं। इस प्रकार बहुत हजार-स्थितिकाण्डकों के व्यतीत होने पर अपूर्वकरण का काल समाप्त होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय के स्थिति सत्कर्म से अन्तिम समय में सत्कर्म संख्यातगुणा हीन है।

अथानन्तर अनिवृत्तिकरण का स्वरूप कहते हैं-

एकम्हि कालसमए, संठाणादीहिं जहा णिवट्टंति।
णणिवट्टंति तहंविय, परिणामेहिं मिहो जे हु॥९११॥

होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामो।
विमलयरझाणहुदवहसिहाहि णिद्दड्ढकम्मवणा॥९१२॥

अर्थ - जो जीव अनिवृत्तिकरणकाल के विवक्षित एक समय में जैसे शरीर के आकार व वर्णादि से भेदरूप हो जाते हैं उस प्रकार परिणामों से भेदरूप नहीं होते तथा जिसकरण में प्रतिसमय जीवों के एक रूप ही परिणाम हैं वे परिणाम अतिशय निर्मलध्यान रूप अग्नि की शिखासे जलाए हैं कर्मरूपी वन जिन्होंने ऐसे अनिवृत्तिरूप होते हैं।

विशेषार्थ - इसकरणमें समान समयवर्ती जीवों के परिणाम एक समान ही होते हैं अन्यरूप सर्वथा नहीं होते। इसी प्रकार द्वितीयादि समयवर्ती जीवों के परस्पर समानता जानना। अनिवृत्तिकरणकालप्रमाणरूप गच्छ सो अङ्कसन्दृष्टिमें ४ रूप है और अर्थ-सन्दृष्टिमें वही काल अन्तर्मूहूर्तप्रमाण है।

अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होनेके प्रथमसमय से ही अपूर्वकरणके अन्तिम स्थिति-काण्डकसे विशेषहीन अन्य स्थितिकाण्डकका आरम्भ होता है। पूर्वके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवेंभागप्रमाणहीन अन्य स्थितिबन्धका भी आरम्भ होता है तथा घात करनेसे शेष रहे अनुभाग के अनन्तबहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकका भी वहीं पर ग्रहण होता है, किन्तु गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व का ही रहता है। इसप्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातबहुभाग अन्तर किया जाता है। विवक्षित कर्मों की अधस्तन और उपरितन स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणाम विशेषके कारण अभाव होनेको **अन्तरकरण** कहते हैं। उससमय जितना स्थितिबन्ध काल या स्थितिकाण्डकोत्कीर्णकाल है उतने कालके द्वारा अन्तर हो जाता है अर्थात् गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्र (गुणश्रेणिशीर्ष) से लेकर नीचे गुणश्रेणिआयामके संख्यातवेंभागप्रमाण स्थितिनिषेकोंका खण्डन (अभाव) हो जाता है। अन्तरसे नीचेकी कर्मस्थिति अर्थात् प्रथमस्थितिसे और द्वितीयस्थिति (अन्तरसे ऊपरकी कर्म-स्थिति) से तबतक आगाल प्रत्यागाल होता रहता है जबतक प्रथमस्थितिमें आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती है। द्वितीयस्थिति के कर्मपरमाणुओंका प्रथमस्थितिमें अपकर्षणवश आना **आगाल** है। प्रथमस्थितिके कर्मपरमाणुओं का द्वितीयस्थितिमें उत्कर्षणवश जाना **प्रत्यागाल** है। प्रथमस्थितिमें आवलि और प्रत्यावलि शेष रहनेपर विवक्षित कर्मोंकी गुणश्रेणि, आगाल व प्रत्यागाल नहीं होता, किन्तु प्रत्यावलिमें से ही उदीरणा होती है। आवलिप्रमाण प्रथमस्थितिके शेष

रहनेपर उदीरणा भी नहीं होती, किन्तु प्रथमस्थितिके अन्तिमसमयतक स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात सम्भव है, क्योंकि वहाँ पर अन्तिमस्थितिबन्ध के साथ उनकी परिसमाप्ति देखी जाती है। इसप्रकार प्रथमस्थिति की समाप्ति के साथ-साथ अनिवृत्तिकरणकाल समाप्त हो जाता है।

नोट - अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण का विस्तारपूर्वक कथन लब्धिसार ग्रन्थ के उपशमसम्यक्त्व नामक प्रकरण में किया गया है। अत: इन तीनों करणोंका विशेषस्वरूप जाननेके लिए लब्धिसार ग्रंथ, जो आचार्य शिवसागरग्रन्थमाला से ही प्रकाशित हुआ है, देखना चाहिए।

इतिश्री आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्ड की 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामा हिन्दीटीका में 'त्रिकरणचूलिका' नामक आठवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

❖ ❖ ❖

अथ कर्मस्थितिरचनासद्भावाधिकार

अब आचार्य सिद्धोंको नमस्कार करते हुए कर्मस्थितिकी रचनाका सद्भाव कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं-

सिद्धे विसुद्धणिलये, पणट्ठकम्मे विणट्ठसंसारे।
पणमिय सिरसा वोच्छं, कम्मट्ठिदिरयणसब्भावं ॥९१३॥

अर्थ - प्रकृष्टरूपसे नष्ट हुए हैं घाति-अघातिकर्म जिनके, विशेषरूपसे नष्ट किया है चतुर्गतिभ्रमणरूप संसार जिन्होंने इसलिए जिनका आत्मप्रदेशोंमें स्थान है ऐसे सिद्ध-परमेष्ठी को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करके कर्मस्थिति रचनाका सत्तारूप कथन करता हूँ। यह कथन प्रसंगवश गोम्मटसार जीवकाण्डके योगाधिकारमें एवं पहले कर्म-काण्डके बन्ध-उदय-सत्त्वाधिकार में कहा है।

कम्मसरूवेणागददव्वं, ण य एदि उदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स य, आबाहा जाव ताव हवे ॥९१४॥

अर्थ - कर्मस्वरूपसे परिणत हुआ जो कार्मणद्रव्य जब तक उदय या उदीरणारूप नहीं होता तब तक का काल आबाधा कहलाता है।

विशेष - कर्मबन्ध होनेके पश्चात् जितने कालतक उदय व उदीरणारूप नहीं हो सके उस काल को आबाधाकाल कहते हैं। अर्थात् वह आबाधाकाल दो प्रकार का है- १. उदयआबाधाकाल २. उदीरणाआबाधाकाल।

उदयं पडि सत्तण्हं, आबाहा कोडिकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥९१५॥

अर्थ - उदयकी अपेक्षा आयुबिना शेष सात मूलप्रकृतियोंकी एक कोड़ाकोड़ी-सागरस्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है। शेष स्थितियों की आबाधा भी इसी प्रतिभागसे जानना चाहिए।

विशेषार्थ - एककोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अन्तरायसम्बन्धी ३० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिकी कितनी आबाधा होगी? इस प्रकार यहाँ प्रमाणराशि १ कोड़ाकोड़ीसागर, फलराशि १०० वर्ष और इच्छाराशि ३० कोड़ाकोड़ीसागर है सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणाकर प्रमाण-राशिका भाग देने पर ३० कोड़ाकोड़ीसागर×१००÷एक कोड़ाकोड़ी सागर =३००० वर्षकी आबाधा होती है। इसी प्रकार मोहनीयकर्मकी ७० कोड़ाकोड़ीसागरस्थितिसम्बन्धी आबाधा ७००० वर्ष होती है। नाम व गोत्रकर्मकी २० कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थितिकी आबाधा २००० वर्ष होती है।

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाधा।
संखेज्जगुणविहीणं, सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥९१६।

अर्थ - अन्त: कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी आबाधा अन्तर्मुहूर्तमात्र है तथा जघन्यस्थितिकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त के संख्यातवेंभाग है।

आगे आयुकर्मसम्बन्धी आबाधा कहते हैं-

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे।
आउस्स य आबाहा, ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥९१७॥

अर्थ - आयुकर्मकी आबाधा कोटिपूर्ववर्षके तृतीयभागसे असंक्षेपाद्धापर्यन्त जानना। आयुकर्मकी आबाधा आयुके प्रतिभागरूप नहीं होती।

विशेषार्थ - कोटिपूर्ववर्षकी आबाधा जिसका त्रिभाग है तो तीन पल्यकी स्थितिकी आबाधा कितनी होगी ? इसप्रकार स्थितिका प्रतिभागकरके आयुकर्मकी आबाधा का प्रमाण सिद्ध नहीं होता अत: जितनी भुज्यमान आयु अवशेष रहने पर पर-भवकी आयु बँधे उतनी ही बध्यमान आयुकी आबाधाका

प्रमाण है। कर्मभूमिमें आयु का त्रिभाग अवशेष रहनेपर, भोगभूमि व देव-नारकियोंमें छहमास[1] अवशेष रहनेपर आयुबन्धकी योग्यता होती है[2] अत: उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटिवर्षका तृतीयभाग जानना और जघन्य आबाधा असंक्षेपाद्धा (क्षुद्रभवका संख्यातवाँभाग)[3] अर्थात् जिससे थोड़ा-काल कोई न हो उतने प्रमाण है। (क्षुद्रभव आयुवाला अपनी आयुके अन्तिम अपकर्षमें आयुका बन्ध करता है उसकी आबाधा क्षुद्रभव के संख्यातवेंभागप्रमाण होती है।) इसप्रकार उदयकी अपेक्षा आबाधा कही।

आगे उदीरणा की अपेक्षा आबाधा का कथन करते हैं-

आवलियं आबाहा, उदिरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभविय आउगस्स य, उदीरणा जाव्हि णियमेण ॥९१८॥[4]

---

१. यद्यपि कर्मकाण्डमें, भोगभूमिमें नवमास आयु शेष रहने पर आयुबन्धकी योग्यता आती है, ऐसा लिखा है, किन्तु 'असंखेज्जवस्साऊ तिरिक्ख-मणुसा अत्थित्ति चे ण, तेसिं देवणेरइयाणं व भुंजमाणाउए छम्मासो अहिए संते परभवि आउस्स बंधाभावा'' ध.पु. ६ पृ. १७० के इन वचनों के अनुसार यहाँ भोगभूमि की भी ६ माह आयु शेष रहने पर ही आयुबन्ध की योग्यता आती है ऐसा कहा है। इसीलिए कर्मकाण्डके इस प्रकरणमें ऊपर भी ६ मास ही दिया गया है।

२. **भोगभूमियों के आयुबन्ध की योग्यता कब होती है? (दो मत)**

शंका – भोगभूमियामनुष्य और तिर्यंचों के भुज्यमानआयु के ९ माह अवशेष रहने पर आगामीभव के आयुबंध की योग्यता बतलाई है। गाथा १५८, गाथा ९१७ में बड़ी टीका में ६ माह अवशेष रहने पर आयुबंध की योग्यता बतलाई है सो कैसे?

समाधान - भोगभूमियामनुष्य व तिर्यंच के भुज्यमानआयु के ९ मास व छह मास शेष रह जानेपर परभविक आयुबंध की योग्यता होती है, ये दोनों कथन **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड की बड़ी टीका** में पाये जाते हैं। इन दोनों कथनों में संभवत: भरत-ऐरावत में सुखमादि तीनकाल की तथा हैमवत आदि क्षेत्रों की शाश्वतभोगभूमिया की विवक्षा रही है। भरत और ऐरावत क्षेत्रों में शाश्वतभोगभूमि नहीं है अत: यहाँ पर भुज्यमानआयु के ९ माह शेष रहने पर परभवआयु बंध की योग्यता हो जाती है और शाश्वतभोगभूमियों में ६ माह आयु शेष रहने पर परभव-आयुबंध की योग्यता होती है, किन्तु **श्रीधवल ग्रंथ** में ६ माह शेष रहने पर परभवआयुबंध की योग्यता बतलाई है।

''णिरुवक्कमाउआ पुण छम्मासावसेसे से आउअबंध-पाओग्गा होंति।'' (धवल पु. १० पृ. २३४)

अर्थ - जो निरुपक्रमायुष्क जीव हैं वे अपनी भुज्यमानआयु छहमाह शेष रहने पर आयुबंध के योग्य होते हैं।

''औपपादिक चरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष:।'' ५३ ॥ (मो. शास्त्र अ. २)

अर्थात् - औपपादिक (देव व नारकी), चरमोत्तमदेहा (तद्भवमोक्षगामी) और असंख्यातवर्ष की आयुवाले (भोगभूमिया) ये जीवों की अनपवर्त आयुवाले (निरुपक्रमायुष्क) होते हैं।

श्रीधवल-ग्रंथराज के अनुसार सभी भोगभूमियाजीव भुज्यमानआयु के ६ मास शेष रह जाने पर परभविकआयुबंध के योग्य होते हैं।

३. इस प्रसंग में ध.पु. ११ पृ. २७५ भी देखना चाहिए।

४. ध.पु. १० पृ. २३७ पर भी यह प्रकरण दिया गया है।

अर्थ - उदीरणा का आश्रयकर आयुके बिना सातकर्मों की आबाधा आवलीमात्र है तथा परभवसम्बन्धी आयु की उदीरणा नहीं होती है।

विशेषार्थ - बन्ध होने के पश्चात् आयुबिना शेष कर्मों की उदीरणा आवलीकाल व्यतीत होने पर ही होती है। पर भवकी जो आयु बाँध ली है उसकी उदीरणा निश्चयकर नहीं होती। अर्थात् वर्तमान आयुकी तो उदीरणा हो सकती है, परन्तु बँधीहुई आगामी आयुकी नहीं। यहाँ ऐसा अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि देव, नारकी, चरमशरीरी, भोगभूमिजके भुज्यमान आयु की उदीरणा नहीं होती। क्योंकि इन देव, नारकी, चरमशरीरी, भोगभूमिज के भी आयुकर्म की उदीरणा तो अवश्य होती है पर उतने मात्र से अकालमरण (कदलीघात) नहीं हो जाता। क्योंकि उदीरणा में किसी भी निषेक के असंख्यातवें भाग प्रमाण (असंख्यात लोक वाँ भाग या पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग) परमाणु ही अपकर्षित होते हैं तथा उदयावली में दिए जाते हैं, पूरा का पूरा निषेक नहीं (धवल १५/४३) अतः मात्र उदीरणा होने से कहीं अकालमरण थोड़े ही होता है। जबकि अकालमरण (कदलीघात) में निषेक पूरे के पूरे समाप्त हो जाते हैं, नियतकाल में। अतः उदीरणा को अकालमरण (कदलीघात) मानना ठीक नहीं। जैसे नरकायु की उदीरणा सब नारकियों में होती है। विशेष इतना कि जिस नारक के नारकभव में आवली प्रमाण ही जीवन शेष है उसके उदीरणा नहीं होती। देव आयु आदि में भी ऐसे ही कहना चाहिए (धवला १५/५६-५७ तथा जयधवला १४/३४) इसी तरह भोग-भूमिजों में भी मनुष्य तिर्यंचायु की उदीरणा आवली कम तीन पल्य तक होती रहती है। मात्र अन्तिम आवली में मनुष्यायु तिर्यंच आयु की उदीरणा नहीं होती। (धवल १५/६३, धवला १५/१२०, १२७, ५७, १७८ आदि तथा स.सि. पृ. ३४६ ज्ञानपीठ द्वितीय संस्करण) इसी तरह देव, चरम शरीरी में भी उदीरणा आयु कर्म की होती है, पर अकालमरण नहीं। गो.क. ४४१ में चारों आयु की उदीरणा बताई। उदीरणा का अर्थ अकालमरण नहीं है (जैनगजट २५.७.६६ ई. पृ. ९ ब्र. रतनचन्द मुख्तार का लेख)

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण, सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥९१९॥

अर्थ - आबाधाकालसे हीन स्थितिप्रमाण बन्धके समय सातकर्मोंकी निषेक रचना होती है, किन्तु आयुकर्मकी जितनी स्थिति बँधती है उतने प्रमाण निषेकरचना होती है।

विशेषार्थ - आयुकर्मबिना सातकर्मोंकी जितनी स्थिति बँधती है उसमेंसे आबाधाकालको घटाकर शेषकालके जितने समय होवें उतने निषेकोंकी रचना होती है। आयुकर्मकी आबाधा पूर्वभवमें ही व्यतीत हो जाती है अतः आयुकर्ममें निषेकरचना अपनी स्थितिप्रमाण होती है।

आबाहं बोलाविय, पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं, बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥९२०॥

बिदिये बिदियणिसेगे, हाणी पुव्विल्लहाणि अद्धं तु।
एवं गुणहाणिं पडि, हाणी अद्धद्धयं होदि ॥९२१॥ जुम्मं॥

अर्थ - ज्ञानावरणादिकर्मके स्थितिबन्धमें आबाधाकालके पश्चात् प्रथमसमयकी प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकमें बहुत द्रव्य देता है और उसके ऊपर द्वितीयगुणहानिके प्रथमनिषेकपर्यन्त एक-एक चयरूपसे हीन-हीनद्रव्य दिया जाता है तथा द्वितीयगुणहानिके दूसरेनिषेकमें द्वितीयगुणहानिके ही प्रथमनिषेकसे एकचयकमप्रमाण द्रव्य जानना सो प्रथमगुणहानिमें निषेक-निषेक प्रतिहानिरूपचयका प्रमाण था उससे द्वितीयगुणहानिमें हानिरूप चयका प्रमाण आधा-आधा जानना चाहिए।[1] इसी प्रकार ऊपर भी प्रत्येक गुणहानि में हानिरूप चय का प्रमाण आधा-आधा होता है।

दव्वं ठिदिगुणहाणीणद्धाणं दलसला णिसेयछिदी।
अण्णोण्णगुणसलावि य, जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे ॥९२२॥

अर्थ - सर्वकर्मोंकी स्थितिरचनामें द्रव्य, स्थितिआयाम, गुणहानिआयाम, दल-शलाका अर्थात् नानागुणहानि, निषेकच्छेद अर्थात् दोगुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि ये छहराशि जानना।

विशेषार्थ - कर्मरूपसे परिणत पुद्गलपरमाणुका प्रमाण सो द्रव्यराशि, पूर्वोक्त-प्रकार कर्मस्थिति के समयोंका प्रमाण स्थितिराशि, जबतक दूना-दूना हीन द्रव्य न दिया जावे तबतक एक गुणहानि रहती है ऐसी गुणहानियोंमें समयोंका प्रमाण सो गुणहानि-आयामराशि, सर्वस्थिति में जितनी गुणहानि पाई जावे उनका प्रमाण नानागुणहानिराशि, गुणहानिआयामके प्रमाणको दूना करनेपर जो प्रमाण हो वह दो गुणहानि राशि जानना तथा नानागुणहानि का जितना प्रमाण हो उतने प्रमाण दो के अंक लिखकर परस्पर गुणाकरके जो प्रमाण हो सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जाननी चाहिए।

निषेक	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पञ्चम गुणहानि	षष्ठ गुणहानि
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	६
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठ	३५२	१७६	८८	४४	२२	११

१. गाथा ९१४ से ९२१ तक पुनरुक्त हैं। ये आठ गाथाएँ वे ही हैं जो गाथा १५५ से १६२ तक हैं। प्रकरण मिलाने के लिए पुनः यहाँ पर लिख दी गई हैं।

पंचम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
गुणहानि द्रव्य	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

कुलद्रव्य ६३००, एकगुणहानिआयाम ८, नानागुणहानि ६, प्रथमगुणहानिमें चय ३२, दोगुणहानि ८×२=१६, अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२×२=६४।

अब उपर्युक्त कथन का अङ्कसन्दृष्टि द्वारा आचार्य स्वयं कथन करते हैं -

तेवट्ठिं च सयाइं, अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं।
चउसट्ठिं च विजाणे, दव्वादीणं च संदिट्ठा ॥९२३॥

अर्थ - अंकसन्दृष्टिमें द्रव्य ६३००, स्थिति ४८, गुणहानिआयाम ८, नाना-गुणहानि ६, दोगुणहानि १६ और अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ जानना।

दव्वं समयपबद्धं, उत्तपमाणं तु होदि तस्सेव।
जीवसहत्थणकालो, ठिदिअद्धा संखपल्लमिदा ॥९२४॥

अर्थ - अर्थसन्दृष्टिमें दृष्टांतरूप यथार्थ कथनकरके द्रव्य तो पूर्वोक्त प्रमाण समयप्रबद्ध जानना। एकसमयमें जितने परमाणु बँधते हैं उनका कथन पहले प्रदेशबन्ध अधिकारमें कह आए हैं सो उनका प्रमाणरूप तो द्रव्यराशि है तथा जो बँधा हुआ समय-प्रबद्ध वह जबतक जीवके साथ अवस्थानरूप रहे सो स्थितिका अद्धा (काल) आयाम है, स्थिति संख्यातपल्यप्रमाण है सो उसके समयोंका प्रमाण स्थितिराशि है।

मिच्छे वग्गसलायप्पहुदिं पल्लस्स पढममूलोत्ति।
वग्गहदी चरिमो तच्छिदिसंकलिदं चउत्थो य ॥९२५॥

अर्थ - मिथ्यात्वकर्ममें पल्यकी वर्गशलाकाको आदि लेकर पल्यके प्रथममूल-पर्यन्त उन वर्गोंका परस्पर गुणा करनेसे चरमराशि अर्थात् अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है और उनकी अर्धच्छेदराशियोंको संकलित करनेसे चतुर्थराशि अर्थात् नानागुणहानिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - सातकर्मोंमें द्रव्य, स्थिति, गुणहानिआयाम और दो गुणहानिकी सहनानी तो समान है। यहाँ द्रव्यस्थिति अपि हीनाधिक है तथापि प्रवाहरूपसे तथा समयप्रबद्धप्रमाण, स्थिति संख्यातपल्य कहनेसे समानता जानना तथा नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि समान नहीं है अतः इनको विशेषरूपसे कहा जाता है। ७० कोड़ा-कोड़ीसागरकी स्थितिवाले मिथ्यात्वकर्मका सर्वप्रथम कथन करते हैं-

पल्यकी वर्गशलाकासे पल्यके प्रथममूलपर्यन्त द्विरूपवर्गधारा के स्थानोंको, उन्हीं के अर्धच्छेदोंको तथा उन्हींकी वर्गशलाकाको स्थापनकर तीनपंक्ति करना। प्रथमपंक्तिमें तो पल्यकी वर्गशलाका का प्रमाण नीचे लिखना एवं इसका वर्ग उसके ऊपर लिखना, इस प्रकार क्रम से प्रथममूल पर्यन्त वर्गस्थान लिखना। दूसरी पंक्तिमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे लेकर दूने-दूने पल्यके प्रथमवर्गमूलके अर्धच्छेदपर्यन्त लिखना। तृतीयपंक्तिमें पल्यकी वर्गशलाकाकी (वर्ग) शलाकासे लेकर एक-एक अधिकप्रमाण लिये पल्यके प्रथममूलकी वर्गशलाकापर्यन्त लिखना। यहाँ प्रथमपंक्तिकी राशिको परस्पर गुणाकरनेपर पल्यकी वर्ग-शलाका का भाग पल्यमें देना जो प्रमाण आवे उतना है वही अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण है। द्वितीयपंक्ति का जोड़ देने पर पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदोंके प्रमाणको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण होता है उसको बताते हैं-

द्विरूप वर्गधारा में प्रत्येकस्थानके अर्धच्छेद दूने कहे थे सो उनको "**अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरपदभजियं**" इस सूत्र के अनुसार पल्यके अर्धच्छेदोंसे आधे पल्यके प्रथममूलके अर्धच्छेदरूप अन्तधनको गुणकार दोसे गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदका प्रमाण हुआ, उसमें से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंका प्रमाण घटानेपर जो प्रमाण आया वह पल्यकी वर्गशलाका के अर्द्धच्छेदों से हीन पल्य की अर्द्धच्छेद राशि का जो प्रमाण है उतना है, उसको एककम गुणकार दो से (गुणकार दोमें एक घटानेपर एक रहा) भाग देनेपर उतने ही रहे सो यह चतुर्थराशि नानागुणहानिका प्रमाण जानना। अब इस कथनको अङ्कसन्दृष्टि से कहते हैं -

७० कोड़ाकोड़ीसागरको एकपल्य व पल्यको पण्णट्ठी (६५५३६) मानलें तब पहले के समान ही गणित करनेपर नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण निकल आवेगा।

वर्गशलाका - किसी विशिष्ट संख्याका वर्गमूल जितनीबार निकाला जा सके उतनी संख्याको वर्गशलाका कहते हैं सो यहाँ ६५५३६ की वर्गशलाका ४ है।

अर्धच्छेद - २के अङ्कको २ से गुणा करने पर विशिष्टसंख्या (४) प्राप्त हुई। उस संख्याके जितने २के अङ्क लिखे जाते हैं वे अर्धच्छेद कहलाते हैं जैसे- ४के अर्धच्छेद २ हैं एवं १६ के अर्धच्छेद ४ हैं।

प्रथमपंक्ति -	पल्यका प्रमाण पण्णट्ठी (६५५३६) की वर्गशलाका	४
	वर्गशलाका का वर्ग	१६
	६५५३६ का प्रथमवर्गमूल	२५६
द्वितीयपंक्ति -	वर्गशलाकाके अर्धच्छेद	२
	१६ (वर्गशलाकाके वर्ग) के अर्धच्छेद	४
	२५६ के अर्धच्छेद	८
तृतीयपंक्ति -	उपरितन वर्गशलाका ४ की वर्गशलाका	१
	उपरितन वर्गशलाका १६की वर्गशलाका	२
	उपरितन वर्गशलाका २५६ की वर्गशलाका	३

प्रथमपंक्तिमें स्थित अंकोंका (४×१६×२५६) परस्पर गुणा करनेपर १६,३८४ प्राप्त होते हैं सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि समझना। पल्यकी वर्गशलाकासे पल्यकी संख्या को भाग देनेपर भी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण निकलता है। यहाँ पल्यका प्रमाण ६५५३६ माना है। इसकी वर्गशलाका ४ है अत: ६५५३६÷४=१६३८४ (अन्योन्याभ्यस्तराशि)।

द्वितीयपंक्तिके अंकोंका जोड़ करनेपर नानागुणहानिकी संख्या निकलती है (२+४+८)=१४ सो यह नानागुणहानिकी संख्या निकलेगी जैसे-

पल्यके अर्धच्छेद १६

पल्यकी वर्गशलाका ४ के अर्धच्छेद २=१४ नाना गुणहानि

इसप्रकार मिथ्यात्वकर्मकी उत्कृष्टस्थिति एकपल्य मानली एवं पल्यकी संख्या ६५५३६ मानली है तो नानागुणहानि १४ और अन्योन्याभ्यस्तराशि १६३८४ होगी। तृतीयपंक्तिके अंकोंका यहाँ प्रयोजन नहीं है।

वग्गसलायेणवहिदपल्लं अण्णोण्णगुणिदरासी हु।
णाणागुणहाणिसला, वग्गसलच्छेदणूणपल्लछिदी ॥९२६॥

अर्थ - पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यमें देनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है तथा पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें से घटानेपर जो प्रमाण हो उतनी नानागुणहानिराशि जाननी चाहिए।

अब नानागुणहानिआयाम का प्रमाण कहते हैं-

सव्वसलायाणं जदि,पयदणिसेये लहेज्ज एक्कस्स।
किं होदित्ति णिसेये, सलाहिदे, होदि गुणहाणी ॥९२७॥

अर्थ - सर्व नानागुणहानिशलाकाओंके यदि पूर्वोक्त स्थितिके सर्वनिषेक होते हैं तो एकगुणहानिशलाकाके कितने निषेक होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक विधिके अनुसार निषेकोंमें शलाकाओंका भाग देनेसे जो प्रमाण हो वह एकगुणहानिआयामका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - यहाँ प्रमाणराशि नानागुणहानिका प्रमाण अर्थात् पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद (पल्य के अर्धच्छेद-पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद) और फलराशि सर्वस्थितिके निषेक सो वे संख्यातपल्यप्रमाण हैं, इच्छाराशि १ शलाकाप्रमाण है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे वह गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। जैसे-अङ्कसन्दृष्टिसे प्रमाण-राशि (नानागुणहानि) ६, फलराशि (स्थिति) ४८, इच्छाराशि १ गुणहानि है, अतः ४८×१÷६=८ लब्ध आया सो इतने निषेक एकगुणहानि सम्बन्धी जानना अर्थात् गुणहानि आयाम का प्रमाण ८ है।

आगे दोगुणहानिका प्रमाण और उसके माननेका प्रयोजन बताते हैं-

दोगुणहाणिपमाणं, णिसेगहारो दु होदि तेण हिदे।
इट्ठे पढमणिसेगे, विसेसमागच्छदे तत्थ ॥९२८॥

अर्थ - गुणहानिआयामके प्रमाणको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है इसी का नाम निषेकहार है। इसका प्रयोजन यह है कि निषेकहारका भाग विवक्षित गुणहानिके प्रथमनिषेकमें देनेसे जो प्रमाण आवे वह उस गुणहानिमें विशेष (चय) का प्रमाण है प्रत्येकनिषेकमें अर्थात् आदिनिषेकसे अन्तनिषेकपर्यन्त जितने-जितने निषेक घटते जावें उतने प्रमाणको विशेष (चय) कहते हैं।

इसप्रकार द्रव्यादिका प्रमाण कहकर अब अन्य कार्य बताते हैं-

रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं च चरिमगुणदव्वं।
होदि तदो दुगुणकमो, आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥९२९॥

अर्थ - एक कम अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग सर्वद्रव्योंमें देनेसे जो प्रमाण आवे वह अन्तगुणहानिका द्रव्य जानना और इससे दूना- दूना द्रव्य प्रथमगुणहानिके द्रव्यपर्यन्त जानना।

विशेषार्थ - अङ्कसन्दृष्टिमें मिथ्यात्वके सर्वद्रव्य ६३०० में एककम अन्योन्याभ्यस्तराशि (६४-१) ६३ का भाग देनेपर (६३००÷६३) १०० आये, सो यह अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। इसमें

पंचमादि गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त जानना। तद्यथा- १००।२००।४००।८००।१६००।३२००।

अब नानागुणहानिके द्रव्यको जानकर क्या करना सो कहते हैं-

रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेगभागहारेण।
हदगुणहाणिविभजिदे, सगसगदव्वे विसेसा हु॥९३०॥

अर्थ - एककम गुणहानिआयामके प्रमाणको आधाकरके निषेकभागहार मेंसे घटाकर एक गुणहानिआयामको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसका भाग अपने-अपने द्रव्यमें देने से जो प्रमाण आवे वह (चय) का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - अङ्कसन्दृष्टिमें गुणहानिआयामके प्रमाण ८में से एककम किया तो (८-१) ७ रहे इसके आधे ३$\frac{१}{२}$ को निषेकभागहार १६में से घटानेपर (१६-३$\frac{१}{२}$)१२ $\frac{१}{२}$ रहे उसको गुणहानिआयामकी संख्या ८ से गुणाकरे तो (१२$\frac{१}{२}$ ×८) १०० लब्ध आया सो इससे प्रथमगुणहानिके द्रव्य ३२०० में भाग देनेसे (३२००÷१००) ३२ आया सो यह प्रथमगुणहानिका चय जानना। इसीप्रकार द्वितीयगुणहानिका द्रव्य १६०० है। इसमें १०० का भाग देनेपर (१६००÷१००) १६ आये। यह द्वितीयगुणहानिका चय जानना। इसीप्रकार तृतीयादिगुणहानिके सर्वद्रव्यमें भाग देनेपर क्रमसे ८-४-२ और १ लब्ध आता है जो कि तृतीयादिगुणहानिके चयोंका प्रमाण है।

अथानन्तर प्रथमनिषेक को प्राप्त करनेका विधान कहते हैं-

पचयस्स य संकलणं, सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्हि।
अवणिय गुणहाणिहिदे, आदिपमाणं तु सव्वत्थ॥९३१॥

अर्थ - सर्व चयधनको अपने-अपने गुणहानिके सर्वद्रव्यमेंसे कमकरके जो प्रमाण हो उसमें गुणहानिआयामका भाग देनेसे जो संख्या आवे वह आदि निषेकका प्रमाण सर्वत्र होता है। उसमें एक-एक चय बढ़ाने पर द्वितीयादि निषेकों का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - अङ्कसन्दृष्टिसे प्रथमगुणहानिमें "**व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं**" इस करणसूत्रसे एककम गच्छ (८-१) ७ का आधा ३$\frac{१}{२}$ को चयके प्रमाण ३२से गुणा करनेपर ११२ हुए। पुनः इसको गच्छ (८) से गुणा करने से ११२×८=८९६ होते हैं, यह प्रथमगुणहानिका प्रचयधन जानना। इसको सर्वद्रव्य ३२००में से घटानेपर ३२००-८९६=२३०४ रहे। इसमें गुणहानि आयाम ८का भाग देनेसे २३०४÷८=२८८ हुए। यह आदि निषेकका प्रमाण है। इसमें एक-एक चय (३२) बढ़ानेसे

द्विचरमादिनिषेकोंका प्रमाण होता है। इसीप्रकार द्वितीयादि गुणहानिके चयका प्रमाण आधा-आधा है अत: प्रचयधन भी आधा-आधा जानना और इनका सर्वधन भी आधा- आधा ही है। इसप्रकार अङ्कसन्दृष्टिका कथन किया सो ऐसा ही यथार्थ कथन भी जानना, किन्तु विशेष इतना है कि यहाँ प्रमाण जैसा कहा वैसा ही जानना। यहाँ २८८ को आदि निषेक इस दृष्टि से कहा है कि उसके ऊपर ही चय की वृद्धि होकर आगे के निषेक बनते हैं किन्तु यथार्थ में यह अन्तिम निषेक है। प्रथम निषेक तो ५१२ है। इस प्रकार आगे की गुणहानियों में भी जानना।

सव्वासिं पयडीणं, णिसेयहारो य एयगुणहाणी।
सरिसा हवंति णाणागुणहाणिसलाउ वोच्छामि ॥९३२।

अर्थ - सर्व मूल प्रकृतियोंका निषेकहार दोगुणहानि और एकगुणहानिआयाम ये दोनों तो समान हैं तथा नानागुणहानि शलाकाएँ स्थितिके अनुसार हैं अत: समान नहीं है सो उन नानागुणहानि शलाकाओंको आगे कहते हैं।

मिच्छत्तस्स य उत्ता, उवरीदो तिण्णि तिण्णि संमिलिदा।
अट्ठगुणेणूणकमा, सत्तसु रइदा तिरिच्छेण ॥९३३॥

अर्थ - मिथ्यात्वप्रकृतिसम्बन्धी पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदको आदिकरके पल्यके प्रथममूलके अर्धच्छेदपर्यन्त जो दूने-दूने अर्धच्छेद एक-एक वर्ग में कहे गये हैं उनका स्थापन करके उपरितन पल्यके प्रथममूलसे लेकर तीन-तीन वर्गस्थानोंके अर्धच्छेद मिलाने से वे ८-८ गुणे कम अनुक्रमसे होते हैं और उनकी सातस्थानोंमें पृथक्-पृथक् तिर्यग्रूप रचना होती है।

विशेषार्थ - पल्य (६५५३६) के प्रथमवर्गमूल (२५६) के अर्धच्छेद ८, पल्य के द्वितीयवर्गमूल (१६) के अर्धच्छेद ४ और पल्यके तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेद २ इन तीनोंको जोड़नेसे अर्धच्छेदोंका प्रमाण १४ होता है। **''अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं''** इस सूत्रसे अन्तधन जो पल्यके अर्धच्छेदोंसे आधे प्रथमवर्गमूलके अर्धच्छेद, उनको गुणकार दोसे गुणा किया तो पल्यके अर्द्धच्छेदका प्रमाण होता है। इसमें से आदिधन पल्यके तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेदोंको अर्थात् पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवेंभागको घटानेसे सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवाँ भाग आता है सो इसमें एककम गुणकार दो अर्थात् १का भाग देनेपर उतना ही लब्ध आया, यही उपर्युक्त तीनराशियोंका जोड़ है। १४= पल्यके अर्धच्छेद $\frac{१६\times७}{८}$ अर्थात् $\frac{७\ छे\ *}{८}$ = १४ इसीप्रकार चतुर्थ, पंचम व छठे वर्गमूलके अर्धच्छेद कहते हैं-

पल्यके चतुर्थ वर्गमूलके अर्धच्छेद = $\frac{छे}{१६}$

पल्यके पंचम वर्गमूलके अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{३२}$

पल्यके षष्ठ वर्गमूलके अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{६४}$

इन तीनों राशियोंका जोड़करनेसे सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंका ६४वाँ भाग ($\frac{\text{छे}}{१६}+\frac{\text{छे}}{३२}+\frac{\text{छे}}{६४}=\frac{७\ \text{छेद}}{६४}$) प्राप्त हुआ। यह पूर्वोक्त तीनराशियोंके जोड़से ८ गुणा कम है। इसीप्रकार पहले-पहलेसे आधे-आधे सातवें, आठवें, नवमे पल्यके वर्गमूलों के अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर $\frac{७\ \text{छे}}{५१२}$ प्रमाण होता है। तद्यथा-

पल्यके सप्तमवर्गमूलसम्बन्धी अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{१२८}$

पल्यके अष्टमवर्गमूलसम्बन्धी अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{२५६}$

पल्यके नवमवर्गमूलसम्बन्धी अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे}}{५१२}$

इन तीनों राशियों को जोड़नेपर सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंका ५१२वाँ भाग अर्थात् पूर्वोक्त $\frac{७\ \text{छे}}{५१२}$ प्रमाण होता है। यह प्रमाण चतुर्थादि तीनवर्गमूलोंके जोड़से ८ गुणा कम है। इसप्रकार नीचे-नीचे तीन-तीन वर्गस्थानोंके अर्धच्छेद जोड़नेपर आठ-आठ गुणे कम होते जाते हैं। तथैव पल्यकी वर्गशलाकाके आठवें, सातवें और छठेवर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे २५६, १२८ और ६४ गुणे हैं सो इन तीनों राशियों को जोड़नेसे (२५६+१२८+६४) ४४८ गुणे अर्धच्छेद होते हैं तथा पल्यकी वर्गशलाकाके पाँचवें, चौथे व तीसरे वर्ग के अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे ३२, १६ व ८ गुणे हैं सो इन तीन राशियोंको जोड़ने से (३२+१६+८) ५६ गुणे होते हैं। यह राशि पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदों से ५६ गुणी है तथापि पूर्वोक्तराशिसे ८ गुणीकम है तथा पल्यकी वर्गशलाकाके दूसरे, पहले वर्ग और वर्गशलाका इन तीनोंके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे चारगुणे, दोगुणे और १ गुणे हैं। इन तीनोंराशियों को जोड़ने से (४+२+१) पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे ७ गुणे हुए, किन्तु यह भी पूर्ववर्तीराशिसे ८ गुणा कम ही है। इसप्रकार ८-८ गुणी हीन राशि हुई। यहाँ पल्यका वर्गमूल सो प्रथममूल, प्रथममूलका वर्गमूल सो द्वितीयमूल, दूसरे मूलका वर्गमूल सो तृतीयमूल है। इसीप्रकार चतुर्थादिमूल भी जानना तथा पल्यकी वर्गशलाकाका वर्ग करनेसे प्रथमवर्ग, प्रथमवर्ग का वर्ग करनसे द्वितीयवर्ग, द्वितीयवर्गका वर्ग करने से तृतीयवर्ग होता है। इसीप्रकार आगे चतुर्थादि वर्ग जानना। इसप्रकार पल्यके प्रथम, द्वितीय व तृतीयमूलके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर जो राशि हो उससे लेकर तीन-तीन स्थानोंके अर्धच्छेदोंको जोड़ते-जोड़ते पल्यकी वर्गशलाकाके द्वितीय, प्रथमवर्ग और पल्यकी वर्गशलाकारूप तीनराशियों के अर्धच्छेदों को जोड़नेतक जो-जो राशि हों वहाँ तक सर्व जोड़ी हुई असंख्यातराशि पृथक्-पृथक् सातस्थानोंमें आगे-आगे रचनारूप करनी। इसप्रकार पल्यके तीन-तीन वर्ग-मूलोंके अर्धच्छेद आठ-आठ गुणे कम-कम होते जाते हैं।

नोट - 'छे' यह चिह्न पल्य के अर्धच्छेद का है।

पल्य (६५५३६) की वर्गशलाका ४ है। इसके ८वें वर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद (२) से २५६ गुणे हैं अतः २×२५६। पल्यकी वर्गशलाकाके सातवें वर्गके अर्धच्छेद २×१२८ और पल्यकी वर्गशलाकाके छठे वर्गके अर्धच्छेद २×६४ हैं। इन तीनोंको जोड़नेपर २×४४८ योगफल होता है। इसीप्रकार पल्यकी वर्ग-शलाकाके ५वें वर्गके अर्धच्छेद २×३२, ४थे वर्गके अर्धच्छेद २×१६, तीसरे वर्ग के अर्धच्छेद २×८ हैं। यहाँ भी तीनों राशियों को जोड़ने से २×५६ योगफल हुआ। तथैव पल्य की वर्गशलाकाके द्वितीय वर्गके अर्धच्छेद २×४, प्रथमवर्गके अर्धच्छेद २×२ और पल्य की वर्गशलाकाके अर्धच्छेद २×१ हैं। इन तीनोंको जोड़नेपर २×७ योगफल होता है। इसप्रकार उपर्युक्त कथनका यह अभिप्राय है कि वर्गशलाकाके वर्गोंके अर्धच्छेद की तीन-तीन राशियाँ परस्पर एक-दूसरे से आगे-आगे आठ-आठ गुणी होती जाती हैं।

तत्थंतिमच्छिदिस्स य, अट्ठमभागो सलायछेदा हु।
आदिमरासिपमाणं, दसकोडाकोडिपडिबद्धे ॥९३४॥

अर्थ - १० कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिमें नानागुणहानिशलाकासम्बन्धी अन्तधन तो पल्यके अर्धच्छेदका आठवाँ भाग है और वर्गशलाकाके अर्धच्छेद आदिधन है।

विशेषार्थ - उपर्युक्त सातपंक्तियोंमें से प्रथमपंक्तिमें तीनराशियों (पल्यके प्रथम, द्वितीय व तृतीयवर्गमूल) को जोड़नेपर जो लब्ध प. छे. $\frac{७}{८}$ आया उन सभीको पृथक्-पृथक् फलराशि और सभीमें दसकोड़ाकोड़ीसागरको इच्छाराशि एवं ७० कोड़ा-कोड़ी-सागरको प्रमाणराशि मानना। इसप्रकार त्रैराशिककरके फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकर प्रमाणराशिका भाग देनेसे जो प्रमाण पृथक्-पृथक् प्राप्त हो उनको परस्परमें जोड़नेसे $\frac{प.छे}{८}$ प्रमाण आवे वह दसकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थिति-सम्बन्धी नानागुणहानिशलाका जानना। तद्यथा-

"**अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं**" इस सूत्रसे (पल्यके प्रथम, द्वितीय और तृतीयवर्गमूलके अर्धच्छेद मिलकर सातगुणे पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवें भाग हैं। उनको १० कोड़ाकोड़ीसागरसे गुणा करनेपर और ७० कोड़ाकोड़ीसागरका भाग देनेसे पल्यके अर्धच्छेदोंके आठवेंभागप्रमाण होता है। सो यह अंतधन जानना) अंतधन को प्रत्येक जोड़के प्रति गुणकार ८से गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदप्रमाण हो जाता है। इसमेंसे आदिधन घटाया सो (पल्यकी वर्गशलाकाके द्वितीय व प्रथमवर्गके और पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद मिलनेसे सातगुणे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद होते हैं। इनको १० कोड़ाकोड़ीसागरसे गुणाकरके ७० कोड़ाकोड़ीसागरका भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदप्रमाण आदिधन प्राप्त हुआ) आदिधन घटानेपर जो अवशेष बचे उनको गुणकार

आठमेंसे एककम अर्थात् ७ का भाग देनेसे पल्यकी वर्गशलाका के अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंका ७वाँ भाग प्रमाण हुआ (पल्यके छेद-पल्यकी वर्गशलाका के छेद) सो १० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिसम्बन्धी
७
नानागुणहानि-शलाका का प्रमाण जानना। नानागुणहानिप्रमाण दो-दो के अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है। अन्योन्याभ्यस्तराशि प्राप्त करनेका विधान इसप्रकार है-

उपर्युक्त नानागुणहानिमें ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदों का ७ वाँ भाग कहा सो इसको पृथक् रखा और अवशेष पल्यके अर्धच्छेदोंका ७वाँ भाग रहा सो इसकी सहनानीके लिए आठ ही गुणकार और आठ ही भागहार करना, यहाँ गुणकारमें से एककम करके (८-१) ७ गुणकार रहा और पहले भागहार ७ कहा था सो दोनों को समान जानकर अपवर्तन करनेपर इसप्रकार पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवाँभाग शेष रहा। अतः इतने प्रमाण दोके अंक लिखकर परस्पर गुणाकरनेसे तृतीयवर्गमूल होता है। इसप्रकार भागहारके जितने अर्धच्छेद हों उतने वर्गस्थान भाज्यराशिसे नीचे जानेपर उत्पन्नराशिका प्रमाण होताहै। यहाँ भागहार तो आठ है सो उसके अर्धच्छेद तीन, सो पल्यके नीचे तृतीयवर्गस्थान पल्य का तृतीयमूल है तथा पहले गुणकार ८में से १ पृथक् रखा था वह पल्यके अर्धच्छेद का ५६ वाँ भाग गुणकार था अतः पल्यके अर्धच्छेदका ५६ वाँ भाग प्रमाण रहा, इसमेंसे ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदों का ७वाँ भाग घटानेसे जो शेष रहें उतने प्रमाण दोके अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेसे असंख्यातगुणा पल्यका ५वाँ वर्गमूल मात्रअसंख्यातप्रमाण जानना।

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणगारो लद्धरासिस्स ॥११०॥ त्रि.सा.

इस सूत्रके अनुसार अधिकराशिका परस्पर गुणाकरनेसे जो राशि हुई वह गुणकाररूप है अतः उस असंख्यातसे पल्यके तृतीयवर्गमूलको गुणा करनेसे जो प्रमाण होवे उतना दसकोड़ाकोड़ीसागरस्थितिसम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना।

त्रैराशिकद्वारा दशकोड़ाकोड़ीसागरके अन्तधन आदि सम्बन्धी सन्दृष्टि-

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यके प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ग-मूलके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे $\frac{७}{८}$	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	प.छे. $\frac{५}{८}$	अन्तधन
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यके चतुर्थ, पंचम, छठे वर्गमूलके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे. $\frac{७}{८\times८}$	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	प.छे. $\frac{१}{८\times८}$	

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यके ७-८-९वें, वर्गमूलोंके अर्धच्छेदोंका जोड़ प.छे $\frac{७}{८\times८\times८}$	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	प. अर्धच्छेद $\frac{}{८\times८\times८}$	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यकी वर्गशलाका के छठे, सातवें, आठवें वर्ग के अर्धच्छेदों का जोड़ व. छे. ८×८×७	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यकी वर्ग-शलाका के अर्ध. व.छे. १×८×८	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यकी वर्गशलाकाके ५वें, ६ठे, ५वें वर्गोंके अर्धच्छेदोंका जोड़ व.छे. ७×८	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्य की व.श.के अर्ध= व. छे. १×८	
७० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यकी वर्गशलाका तथा वर्गशलाका के प्रथम वर्ग व द्वितीय वर्ग के अर्धच्छेदों का जोड़ व.छे.×७	१० कोड़ाकोड़ी-सागर	पल्यकी वर्ग श. के अर्धच्छेद = व.छे.१	आदिधन -

अथानन्तर २० कोड़ाकोड़ीआदि स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं-

इगिपंतिगदं पुध पुध, अप्पिट्ठेण य हदे हवे णियमा।
अप्पिट्ठस्स य पंती, णाणागुणहाणिपडिबद्धा ।।९३५।।

अर्थ - शेष ६ पंक्तियोंमें एक-एक पंक्तिमें पृथक्-पृथक् अपने इष्टका भाग देने पर नियमसे अपनी-अपनी इष्टराशि जो बीसकोड़ाकोड़ीसागरादि है उसकी नानागुण-हानिशलाकाकी पंक्तियाँ होती हैं।

विशेषार्थ - पूर्वोक्तगाथा (९३४) में जिसप्रकार १० कोड़ाकोड़ीसागरकी प्रथमपंक्ति सभी तीन स्थानोंकी जोड़रूपराशि पृथक्-पृथक् फलराशि मानी थी उसी प्रकार अवशिष्ट छहों पंक्तियोंमें भी फलराशि मानना तथा जैसे प्रथमपंक्तिमें १० कोड़ाकोड़ीसागरको इच्छाराशि माना था वैसे ही यहाँ छहों पंक्तियोंमें अपने-अपने इष्टरूप २० कोड़ाकोड़ीसागरादि राशियोंको अर्थात् इन छहमें से प्रथमपंक्तिमें २०, द्वितीयपंक्ति में ३०, तृतीयपंक्तिमें ४०, चतुर्थपंक्तिमें ५०, पंचमपंक्तिमें ६० और षष्ठपंक्तिमें ७० कोड़ाकोड़ीसागर इच्छाराशि मानना। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणाकरके प्रमाणराशि से भाग देना सो प्रमाणराशि सर्वत्र (छहों पंक्तियोंमें) ७० कोड़ाकोड़ीसागर ही जानना। इसप्रकार त्रैराशिक विधिसे जो-जो प्रमाण आवे वह-वह अपने इष्टरूप २०-३०-४० आदि कोड़ाकोड़ीसागरकी स्थितिसम्बन्धी, नानागुणहानिकी पंक्ति होती है।

अप्पिट्ठपंति चरिमो, जेत्तियमेत्ताण वग्गमूलाणं।
छिदिणिवहोत्ति णिहाणिय, सेसं च य मेलिदे इट्ठा॥९३६॥

इट्ठसलायपमाणे, दुगसंवग्गे कदे दु इट्ठस्स।
पयडिस्स य अण्णोण्णाभत्थपमाणं हवे णियमा॥९३७॥

अर्थ - अपनी-अपनी इष्ट पंक्तियोंमें जितने अन्तस्थान हों उतने वर्गमूलोंके अर्धच्छेदोंका समूहरूप ऐसा निर्धारणकर और शेषको मिलानेसे अपने-अपने विवक्षित-कर्मकी स्थितिसम्बन्धी नानागुणहानि होती है तथा अपनी-अपनी नानागुणहानिशलाका-प्रमाण दो के अंक लिखकर परस्पर गुणा करनेसे अपनी इष्ट कर्मप्रकृतिसम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - "अन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं" इस सूत्रके अनुसार १० कोड़ाकोड़ीसागर सम्बन्धी पंक्तिमें जिसप्रकार कथन किया था वैसे ही यहाँ भी जानना, किन्तु विशेष इतना है कि अन्त व आदिधनका प्रमाण इन छहों पंक्तियोंमें क्रमसे दूना, तिगुना, चौगुना, पञ्चगुना, छहगुना और सातगुना है। अत: इच्छाराशि के दोगुणे, तिगुनेआदिरूप होनेसे पंक्तिमें सभी दूने तिगुने हो जाते हैं।

यहाँ २० कोड़ाकोड़ीसागर की पंक्तिमें पल्यके अर्धच्छेदोंके चतुर्थभागरूप अन्तधन को ८ से गुणा करनेपर पल्यके अर्धच्छेदोंसे दूना प्रमाण होता है सो इसमेंसे आदिधन का प्रमाण पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे १४ गुणे कमकरना सो इस प्रमाणको स्तोक जानकर इसमें कुछ कम करना तथा इसमें एककम गुणकार (८-१) ७ का भाग देना, इस प्रकारसे कुछकम दूना पल्यके अर्धच्छेदोंका सातवाँभागप्रमाण लब्ध आया, यह नाना-गुणहानिरूप राशि जानना तथा इस प्रमाणको पूर्वोक्तप्रकार सहनानीके लिये आठसे गुणा करे और आठ ही का भाग देवे। यहाँ गुणकारमेंसे एक पृथक् रखा तो अवशेष गुणकार ७ रहा और पहले भागहार भी ७ कहा था उनको समान जानकर अपवर्तन किया।

$$\frac{\text{किंचित् ऊन पल्यके दूने अर्धच्छेद}}{७} = \frac{\text{किंचित् ऊन प.अ.}}{७} \times \frac{८}{८} = \frac{\text{किंचित् ऊन प.अ.}\times ७}{७\times ८} + \frac{\text{किंचित् ऊन प.अ.}}{७\times ८}$$

अवशेष किंचित् कम पल्यके अर्धच्छेदोंमें गुणकार दो और भागहार आठ रहा। इनका अपवर्तन करनेसे कुछकम पल्यके अर्धच्छेदोंका चतुर्थभाग रहा। $\left(\frac{\text{किंचित् ऊन प.के २ अ.छेद}}{८}\right)$ सो इतनीबार दोके अंक लिखकर परस्पर गुणा करने से कुछ कम पल्य का द्वितीय वर्गमूल हुआ तथा जो एक गुणकार पृथक् रखा था वह गुणकार कुछकम पल्यके दूने अर्धच्छेदोंके ५६वाँ भाग था $\left(\frac{\text{किंचित् ऊन प.के २ अ.छेद}}{५६}\right)$ अत: इतनीबार दोके अंक लिखकर परस्परमें गुणा करनेसे यथायोग्य असंख्यात प्राप्त हुआ। इससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा कुछकम पल्यका द्वितीयवर्गमूलप्रमाण इसकी अन्योन्याभ्यस्तराशि हुई।

३० कोड़ाकोड़ीसागरकी पंक्तिमें पूर्वोक्तप्रकार जोड़नेसे कुछकम तिगुने पल्यके अर्धच्छेदोंका सातवाँभागप्रमाण हुआ सो यह नानागुणहानिराशि का प्रमाण है। इसकी सहनानीके लिये गुणकार आठसे गुणा करना और आठका ही भाग देना तथा गुणकार में से एक पृथक् रखा तो अवशेष गुणकार ७ रहा और पहले भागहार भी सात कहा था, इन दोनों का अपवर्तन करनेसे कुछकम तिगुना पल्यके अर्धच्छेदोंका आठवाँभाग हुआ। इसमें पल्यके अर्धच्छेदोंके ८वाँ भागप्रमाण अर्थात् तिगुने में से एक गुणा प्रमाण दो के अंक लिखकर परस्पर गुणाकरे सो यह पल्यका तृतीयवर्गमूल हुआ और शेष दोगुणे प्रमाण दो के अङ्क लिखकर उनका परस्पर गुणा करने पर पल्यका द्वितीयवर्गमूल होता है। इनको परस्पर गुणा करनेपर पल्यके तृतीयवर्गमूलसे गुणित पल्यका दूसरावर्गमूल प्राप्त होता है सो इसमें कुछ कम करना तथा जो एक गुणकार पृथक् रखा था वह गुणकार कुछकम तिगुना पल्यके अर्धच्छेदोंके ५६वाँ भाग प्रमाण था अत: उतनी बार दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करनेसे यथायोग्य असंख्यात प्राप्त हुआ। इससे गुणा करे तो असंख्यातगुणा कुछकम पल्यके तृतीयवर्गमूलसे गुणित पल्यका दूसरा वर्गमूल प्राप्त होता है। सो इतने प्रमाण ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिमें अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है। इसीप्रकार ४० कोड़ाकोड़ी आदि स्थितियोंमें अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना चाहिए। तथा-

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्ण हदी हारो उप्पण्णरासिस्स॥[१]

इस सूत्रके अनुसार जितने हीनरूप (ऋणरूप) थे उतनेप्रमाण परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि हो वह उत्पन्नराशिका भागहार होता है अत: पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करनेसे पल्यकी वर्गशलाका होती है सो इस पल्यकी वर्गशलाकासे हीन पल्यप्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि है। इस प्रकार स्थितिकी अपेक्षा नानागुणहानि व अन्योन्याभ्यस्तराशि कही सो जिस कर्मकी जितनी स्थिति हो उससम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि यथायोग्य जानना।

आगे स्वयं आचार्य ज्ञानावरणादि मूलकर्मप्रकृतियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशि को बताते हैं-

आवरणवेदणीये, विग्घे पल्लस्स बिदियतदियपदं।
णामागोदे बिदियं, संखातीदं हवंतित्ति॥९३८॥

आउस्स य संखेज्जा, तप्पडिभागा हवंति णियमेण।
इदि अत्थपदं जाणिय, इट्ठठिदिस्साणए मदिमं॥९३९॥

---

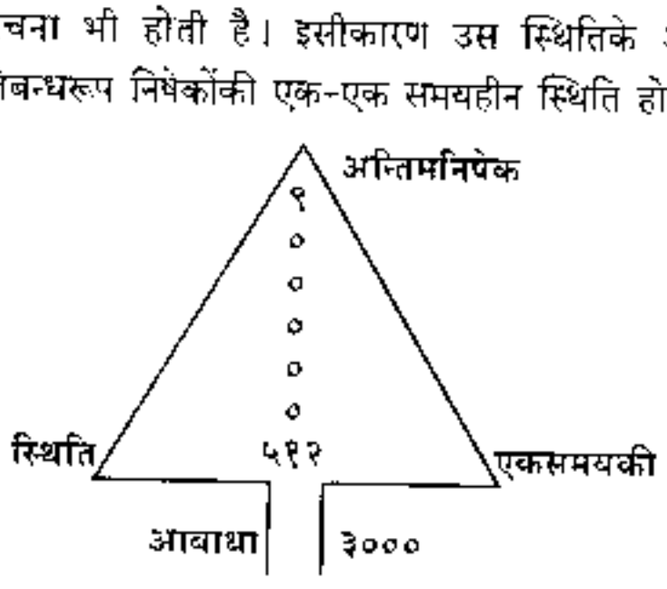
१. त्रिलोकसार गाथा. ११६।

अर्थ - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी उत्कृष्टस्थिति ३० कोड़ाकोड़ीसागरकी है अत: इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातपल्यके द्वितीयवर्गमूलसे गुणित तृतीयवर्गमूल प्रमाण है तथा नाम व गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ीसागर है अत: इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातपल्यके द्वितीयवर्गमूलप्रमाण है। आयुकर्ममें संख्यातप्रतिभाग नियमसे होते हैं अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको विवक्षित स्थानों को जानकर विवक्षित स्थितिकी नानागुणहानि शलाकाको जानना चाहिए।

विशेषार्थ - आयुकर्मके स्थितिभेद विलक्षण ही हैं अत: उसकी नानागुणहानिशलाका स्थितिके बँटवारेके अनुसार है। ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिकी नानागुणहानिशलाका पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदप्रमाणहोती है तो ३३ सागरस्थितिकी कितनी नानागुणहानिशलाका होगी? इसप्रकार त्रैराशिकविधिसे जानकर बुद्धिमान् जीव विवक्षित आयुकर्मकी स्थितिकी नानागुणहानिशलाका का प्रमाण प्राप्त करे। इसप्रकार एकगुणहानिआयाम व नानागुणहानिशलाका अथवा निषेकभागहार तथा अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। इसीको कहते हैं-

उक्कस्सट्ठिदिबंधे, सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा।
तक्काले दीसदि तोधोधो बंधट्ठिदीणं च॥९४०॥

अर्थ - विवक्षित प्रकृतिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध होनेपर उसीसमय उत्कृष्ट आबाधा और सर्वस्थितिनिषेकोंकी रचना भी होती है। इसीकारण उस स्थितिके अंतिमनिषेकसे नीचे-नीचे प्रथमनिषेकपर्यन्त स्थितिबन्धरूप निषेकोंकी एक-एक समयहीन स्थिति होती है।



अब आबाधाकाल के व्यतीत होने की विधि बताते हैं-

आबाधाणं बिदियो, तिदियो कमसो हि चरमसमयो दु।
पढमो बिदियो तिदियो, कमसो चरिमो णिसेओ दु॥९४१॥

अर्थ - बन्ध होनेके अनन्तर आबाधाकालका द्वितीयसमय होता है इसप्रकार एक-एक समय व्यतीत होनेपर आबाधाका अन्तिमसमय प्राप्त होता है तथा आबाधाकाल समाप्त होनेके पश्चात् प्रथम-द्वितीय-तृतीयादिसे चरमनिषेकपर्यन्त क्रमसे निषेक निर्जीर्ण होते हैं।

विशेषार्थ - प्रथमसमयमें पहला, द्वितीयसमयमें दूसरा, तृतीयसमयमें तीसरा निषेक तथा आगे इसी क्रमसे स्थितिके अन्तसमयमें अन्तिमनिषेक होता है सो उस उदयरूप समयके अनन्तर वे परमाणु कर्मस्वभावको छोड़ देते हैं ऐसा अर्थ जानना चाहिए। इसप्रकार प्रथमनिषेकसे द्वितीयनिषेक की एकसमयअधिक स्थिति दूसरेसे तीसरे की एकसमयअधिक स्थिति है सो यह एक-एकसमयअधिकरूप स्थिति चरमनिषेकपर्यन्त जानना।

एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य ही बँधता है और उतना ही एकसमयमें निर्जीर्ण होता है सो आगे इसीको कहते हैं-

समयपबद्धपमाणं, होदि तिरिच्छेण वट्टमाणम्मि।
पडिसमयं बंधुदओ, एक्को समयप्पबद्धो दु॥९४२॥

अर्थ - वर्तमानसमयमें विवक्षितकर्मकी आबाधारहित उत्कृष्टस्थितिमात्र गलितावशेष प्रथमनिषेकसे चरमनिषेकपर्यन्त तिर्यग्रूपसे स्थित सम्पूर्ण समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य उदयमें आता है और प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य बँधता है।

विशेषार्थ - त्रिकोणरचनामें विवक्षित वर्तमानसमयमें विवक्षितकर्मकी आबाधा-रहित उत्कृष्टस्थितिमात्र कालके प्रमाणमें प्रतिसमयमें बँधे हुए समयप्रबद्धमें जिन निषेकों की निर्जरा हो गई उनसे बचे हुए अवशेषनिषेकोंमें प्रथमसमयप्रबद्धके अन्तिमनिषेकसे अन्तिमसमयप्रबद्धके प्रथमनिषेकपर्यन्त तिर्यग्रचनारूप एक-एक निषेक मिलकर सम्पूर्ण एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य होता है। प्रत्येकसमयमें एकसमयप्रबद्धका उदय होता है और प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धका बन्ध होता है।

अब सत्तारूप कर्मों के द्रव्य का प्रमाण कहते हैं-

सत्तं समयपबद्धं, दिवड्ढगुणहाणिताडियं ऊणं।
तियकोणसरूवट्ठिददव्वे मिलिदे हवे णियमा॥९४३॥

अर्थ - सत्तारूप द्रव्य कुछकम डेढ़गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है और त्रिकोणरचनाके सर्वद्रव्यको जोड़देनेसे भी इतना ही प्रमाण नियमसे होता है।

विशेषार्थ - प्रतिसमय एकसमयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य उदय होकर भी कुछकम डेढ़गुणहानिसे

गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्वमें कैसे रहता है सो इस गाथामें बताया गया है उसे साथमें संलग्न त्रिकोणयन्त्रसे जानना चाहिए।

आगे इस सत्तारूप त्रिकोण के जोड़ने की विधि बताते हैं-

उवरिमगुणहाणीणं, धणमंतिमहीणपढमदलमेत्तं।
पढमे समयपबद्धं, ऊणकमेणट्ठिया तिरिया ॥९४४॥

अर्थ - त्रिकोणरचनामें विवक्षित वर्तमानसमयमें प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेकमें तिर्यग्रूपसे लिखे निषेकोंका समुदाय समयप्रबद्धप्रमाण होता है और उसके ऊपर द्वितीयनिषेकसे अन्तिमगुणहानिके अन्तिमनिषेकपर्यन्त क्रमसे चयप्रमाणकम होती हुई तिर्यग्रचनारूप द्वितीयादि गुणहानियोंका जोड़ अन्तिमगुणहानिके जोड़मेंसे घटाकर जो प्रमाण हो उसका आधा होता है और प्रथमगुणहानिका जोड़ गुणहानिके प्रमाणसे गुणित समयप्रबद्धप्रमाण (गुणहानि×समयप्रबद्ध) होता है।

विशेषार्थ - यहाँ त्रिकोणरचनामें नीचे प्रथमपंक्तिमें तिर्यग्रूपसे जो लिखा गया है उसको प्रथमगुणहानिका प्रथमनिषेक कहते हैं। इसके ऊपरकी पंक्तियोंमें जो प्रमाण लिखा गया उनको प्रथमगुणहानिका द्वितीयआदिनिषेक कहते हैं तथा गुणहानिआयामप्रमाण पंक्तिपूर्ण होनेके पश्चात् इसके ऊपर जो पंक्ति है वह द्वितीयगुणहानिका प्रथमनिषेक है और उससे ऊपरकी पंक्तिमें द्वितीयनिषेक है। इसप्रकार गुणहानिप्रमाण पंक्तियाँ पूर्ण होनेपर उसके ऊपरकी पंक्तिको तृतीयगुणहानिका प्रथम निषेक कहते हैं सो यह क्रम अन्तिमगुणहानिपर्यन्त जानना। इस अर्थका विशेष स्पष्टीकरण पूर्वगाथाके साथ संलग्न अङ्कसन्दृष्टिरूप त्रिकोणरचनासे स्पष्ट होता है।

अथानन्तर स्थिति के भेद कहते हैं-

अंतोकोडाकोडीट्ठिदित्ति सव्वे णिरंतरट्ठाणा।
उक्कस्सट्ठाणादो, सण्णिस्स य होंति णियमेण ॥९४५॥

अर्थ - संज्ञीपञ्चेन्द्रियजीवोंके आयुकर्मबिना शेष सातकर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एक समयकम क्रम लिये हुए जो निरन्तर स्थितिके भेद हैं वे संख्यातपल्यप्रमाण हैं।

विशेषार्थ - यहाँ २० कोड़ाकोड़ीसागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मोंकी जघन्यस्थिति अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण होती है तो ३० कोड़ाकोड़ीसागर स्थितिवाले कर्मों की जघन्यस्थिति कितनी होगी? इसप्रकार त्रैराशिक करनेसे डेढ़ अन्तःकोटाकोटी होती है।

स्थितिके भेदोंमें निरन्तरस्थितिको कहकर सान्तरस्थितिका कथन करते हैं-

संखेज्जसहस्साणिवि, सेढीरूढम्मि सांतरा होंति।
सगसगअवरोत्ति हवे, उक्कसादो दु सेसाणं॥९४६॥

अर्थ - सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम, उपशम अथवा क्षपकश्रेणीके सम्मुख हुए ऐसे मिथ्यात्व, असंयत, देशसंयत, अप्रमत्त और अपूर्वकरणादि तीनगुणस्थानवर्ती, उपशम या क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवोंके सान्तर (अर्थात् एक-एककम होनेका नियम नहीं है, क्योंकि स्थितिकाण्डक व बंधापसरणके द्वारा एकसाथ स्थितिका घात व अल्पस्थितिका बन्ध होनेसे) स्थितिके भेद संख्यातहजार हैं तथा शेष जीवों के अपनी-अपनी उत्कृष्टस्थितिसे जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एकसमयकम क्रममें निरन्तरस्थितिके भेद हैं।

विशेषार्थ - अध:प्रवृत्तकरणमें प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तपर्यंत ज्ञानावरणादि प्रकृतिकी अपने योग्य अन्त:कोटाकोटीप्रमाण स्थिति बाँधता है। इसके अन्तर्मुहूर्त पश्चात् पल्यका असंख्यातवाँभागप्रमाणकम बाँधता है। इसके अन्तर्मुहूर्त के बाद उससे भी पल्य का असंख्यातवाँभागप्रमाण कम बाँधता है। इस प्रकार संख्यातहजारबार (स्थितिबन्धापसरण) करके उस करणको पूर्णकर अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायमें भी अपने-अपने स्थितिबन्धको अल्पकरके उतनी-उतनीबार घटाकर वेदनीयकर्मकी १२ मुहूर्त, नाम व गोत्रकी आठमुहूर्त और शेषकर्मोंकी एकमुहूर्तप्रमाण स्थिति बाँधता है। इसप्रकार सान्तर-स्थितिके संख्यातहजार भेद जानना तथा संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्तबिना अवशेष १२ जीवसमासोंके "एयं पण कदि पण्णं" इत्यादि १४४वें गाथा सूत्रसे "वासूप" इत्यादि १४८वें गाथासूत्रपर्यन्त पूर्वमें स्थितिबन्धके कथनमें जघन्यस्थिति व उत्कृष्टस्थिति कही है सो उत्कृष्ट-स्थितिसे जघन्यस्थितिपर्यन्त एक-एकसमयकम क्रमसे निरन्तर स्थितिके भेद जानने।

आगे स्थितिभेदोंके कारणरूप स्थितिबंधाध्यवसायस्थान मूलप्रकृतियोंके कितने होते हैं सो कहते हैं-

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
णामागोदे सरिसं, आवरण दु तदियविग्घे य॥९४७॥

सव्वुवरि मोहणीये, असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो।
पल्लासंखेज्जदिमो, पयडिसमाहारमासेज्ज॥९४८॥जुम्मं॥

अर्थ - आयुकर्म स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान सबसे स्तोक होनेपर भी यथायोग्य

असंख्यातलोकप्रमाण हैं। उनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे नाम व गोत्रकर्मके इनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चारकर्मोंके तथा इनसे पल्यके असंख्यातवेंभागगुणे, किन्तु सबसे अधिक मोहनीयकर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थान हैं। इसप्रकार प्रकृतियोंके भेदोंकी अपेक्षा तीनों जगह क्रमसे असंख्यातगुणे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान जानने चाहिए॥९४७-४८॥

यहाँ प्रसंगप्राप्त सिद्धान्तवचन कहते हैं-

ण य सव्वमूलपयडीणं समाणाणं कसायोदयट्ठाणाणमेत्थगहणं कषायोदयट्ठाणेण विणा मूलपयडि बंधाभावेण सव्वपयडिट्ठिदि बंधज्झवसाणट्ठाणाणं समाणप्पसंगादो तम्हा सव्वमूलपयडीणं सगसगउदयादो समुप्पण्णपरिणामाणं सगसगट्ठिदिबंधकारणत्तेण ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाण सण्णिदाणमुत्तरपच्चयाणमेत्थगहणं। पयडिसमाहाररमासेज्ज णाणावरणादीणं पयडीणं सगसगट्ठिदिबंधकारणज्झवसाणट्ठाणाणि सव्वाणि एगत्त कादूण पमाणं परूविंद। णं ट्ठिदि पडि एसा परूवणा होदि उवरिम सुत्तेहि ट्ठिदिपडि अज्झवसाणपमाणस्स परूविज्जमाणत्तादो हेट्ठिमेहिंतो उवरिमाणि किमट्ठमसंखेज्जगुणाणि साहाविया दो मिच्छत्तासंजमकषायपच्चयेहिं सव्वाणि कम्माणि सरसाणि तेण एदेसिं कम्माणमज्झव-साणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणहाणित्ति ण घडदे हेट्ठिमाणं ठिदि बंधट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं ठिदिबंधट्ठाणाणि अहियाणित्ति असंखेज्जगुणत्तं ण जुज्जदे हेट्ठिमहेट्ठिमकम्माणं ठिदिबंधट्ठाणपाओग्ग कसायेहिंतो उवरिमउवरिमाणं कम्माणमहियट्ठिदि-बंधट्ठाणपाउग्गकसायउदयट्ठाणाणं असमाणाणमणुवलंभेण असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो। ण एस दोसो हेट्ठिमाणं उदयट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं उदयट्ठाणेण बहुत्तेण असंखेज्जगुणत्तविरोहादो[1]।

अर्थात् सभी मूलप्रकृतियोंके समान नहीं पाए जानेवाले कषायोदयस्थानोंका यहाँ ग्रहण है, क्योंकि कषायोदयस्थानबिना मूलप्रकृतियोंके बन्धका अभाव होनेसे सभी प्रकृतियोंके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान समान हो जावेंगे इसलिए सर्वमूलप्रकृतियोंके अपने-अपने उदयसे उत्पन्न आत्माके परिणाम अपने-अपने स्थितिबन्धके कारण होनेसे जिनका स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान नाम है ऐसे उत्तरप्रत्यय यानी आसवके भेदोंका यहाँ ग्रहण है। प्रकृतिसमुदायका आश्रय करके ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके अपनी-अपनी स्थिति के कारणभूत सभी अध्यवसायस्थानोंको इकट्ठे करके प्रमाणकी प्ररूपणाकी गई है स्थिति की अपेक्षा ऐसी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि आगेके सूत्रोंसे स्थितिकी अपेक्षा अध्यवसायके प्रमाणका निरूपण किया गया है।

---

१. यह कथन ध.पु. ११ पृ. ३१७ पर भी है।

शङ्का - 'अधस्तनेभ्यः' अर्थात् पहले कही हुई आयुको आदिकरके कर्मके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान और बादमें कहे हुए कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे क्यों हैं?

समाधान - स्वभावसे ही असंख्यातगुणे हैं। **शंका**- मिथ्यात्व, असंयम व कषायरूप प्रत्ययों से सर्वकर्म समान हैं अतः इन कर्मोंके अध्यवसायस्थान असंख्यातगुणे हैं यह घटित नहीं होता, तथा पहले कहे हुए आयुआदि कर्मोंके स्थितिबंधस्थानोंसे इनके पश्चात् कहे हुए कर्मोंके स्थितिबंधस्थान अधिक हैं अतः असंख्यातगुणेरूप हैं यह बातभी सिद्ध नहीं है, क्योंकि अधस्तन-अधस्तन कर्मोंका स्थितिबंधस्थानके योग्य कषायोंसे उपरितन २ कर्मोंके अधिक बंधस्थानके योग्य असदृशकषायोदयस्थानों की अनुपलब्धि होनेसे असंख्यातगुणत्वकी अनुपपत्ति है। **समाधान**- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अधस्तनउदयस्थानोंसे उपरितनकर्मोंका उदयस्थान बहुत होनेसे असंख्येयगुणपनेका विरोध नहीं है। सारांश यह है कि अपने-अपने उदय से होने वाले आत्मा के परिणामों का नाम स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान है। सो आयु आदि कर्मों के उदयस्थानों से नाम आदि कर्मों के उदयस्थान बहुत हैं, इससे असंख्यातगुणे कहे हैं।

आगे जघन्यादिस्थितिकी अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंका प्रमाण कहते हैं-

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा।
अहियकमा उक्कस्सट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९४९॥

अर्थ - जघन्यस्थितिके बन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं जो उत्कृष्ट-स्थितिपर्यन्त क्रमसे अधिक-अधिक होते गए हैं।

विशेषार्थ - संज्ञीपञ्चेन्द्रियके विवक्षित मोहनीयकर्मकी स्थिति जघन्य तो अन्तः कोटाकोटीसागर अर्थात् संख्यातपल्य है और उत्कृष्टस्थिति ७० कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। जघन्यस्थितिसे उत्कृष्टस्थिति संख्यातगुणी हैं। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाने पर जो शेष रहे उसमें एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने स्थितिके भेद हैं। इन भेदोंमें सबसे जघन्यस्थितिबन्धके कारण जो अध्यवसायस्थान (परिणामोंके स्थान) हैं वे असंख्यातलोकप्रमाण हैं। इससे आगे उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त एक-एक चय क्रमसे अधिक-अधिक नियमसे जानने चाहिए।

अहियागमणणिमित्तं, गुणहाणी होदि भागहारो दु।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी, गुणहाणिं पडि कमेण हवे ॥९५०॥

अर्थ - विवक्षित गुणहानिमें अधिकरूप चयका प्रमाण लानेके लिए अन्तिम निषेकमें दोगुणहानिका

भाग दिया जाता है और 'तू' शब्दसे (अथवा प्रथमनिषेकमें) एकअधिक गुणहानिका भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है तथा प्रत्येकगुणहानिमें चय का प्रमाण दुगुना-दुगुना जानना।

विशेषार्थ - अङ्कसन्दृष्टि से अन्तगुणहानिमें अन्तिम अध्यवसायस्थानोंका प्रमाण १६ इसमें दोगुणहानिके प्रमाण १६ का भाग देनेपर एक आया अथवा प्रथमअध्यवसाय-स्थानों के प्रमाण ९ में एकअधिक गुणहानिप्रमाण ९ का भाग देनेपर भी एक आया सो यह उस गुणहानिमें चयका प्रमाण जानना। उससे प्रत्येक गुणहानि में चय का प्रमाण दुगुना-दुगुना होता है क्योंकि प्रत्येक गुणहानि में आदि निषेक और अन्तिम निषेक का प्रमाण दूना-दूना होता है।

ठिदिगुणहाणिपमाणं, अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी।
णाणागुणहाणिसला, असंखभागो ठिदिस्स हवे ॥९५१॥

अर्थ - पहले बन्धका कथन करते समय कर्मस्थितिकी रचनामें गुणहानिका जैसा प्रमाण कहा है वैसा ही यहाँ अध्यवसायस्थानोंमें भी गुणहानिका प्रमाण जानना तथा नानागुणहानियोंका जो प्रमाण पूर्वमें बन्धकथनमें कहा है उसके असंख्यातवेंभाग-प्रमाण यहाँ अध्यवसायस्थानोंमें नानागुणहानिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ - जिसप्रकार पहले गाथा ९१४ से ९२१ में कहा था कि स्थितिके प्रमाणको नानागुणहानिशलाका प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह गुणहानिका प्रमाण है सो उसीप्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। यहाँ जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त जितने स्थितिभेद हैं वही स्थितिअध्यवसायस्थानों के भेदोंका प्रमाण जानना इसमें नानागुणहानिशलाकाके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह एकगुणहानिआयामका प्रमाण जानना और इसको दुगुना करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण होता है तथा नानागुणहानिका प्रमाण स्थितिरचनामें जो नानागुणहानिशलाकाका प्रमाण कहा था उसके असंख्यातवेंभाग जानना। विवक्षित मोहनीयकर्मकी स्थितिरचनामें नानागुणहानिशलाकाका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदोंमेंसे पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद कमकरके जो संख्या आवे उतने कहे हैं। (गाथा ९२५-२६ देखो) इसप्रकार इसप्रमाणमें असंख्यात का भागदेनेपर जो प्रमाण आवे वह यहाँ स्थिति बंधाध्यवसायरचनामें नानागुणहानिका प्रमाण जानना। सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थान ६३०० को **'रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिदव्वं'** एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि ६३ का भाग देनेसे १०० लब्ध आया सो प्रथमगुणहानिका द्रव्य जानना। इसे गच्छका भाग देनेसे ४थे ५वें मिले हुए निषेकोंका आधाप्रमाण $१२\frac{१}{२}$ मध्यधन जानना। इसमें एककम गच्छ ७ का आधा $३\frac{१}{२}$ सो दो गुणहानि १६में से घटाने पर $(१६-३\frac{१}{२})$ $१२\frac{१}{२}$ शेष रहे। उसका भाग देने पर एक लब्ध आया सो चयका प्रमाण जानना। इसको एकअधिक गुणहानिके प्रमाण ९से गुणा करनेपर लब्ध ९ आया सो प्रथमनिषेक जानना। द्वितीयादि

निषेकोंमें एक-एकचय अधिक होकर एककम गुणहानि का प्रमाण ७ सो इतने चय मिलनेसे (९+७) १६ हुए सो यह अन्तिमनिषेक जानना। इसप्रकार द्वितीयादि गुणहानिमें द्रव्य, चय और निषेक दूना-दूना होता है। अन्तिमगुण-हानिमें प्रथमगुणहानिके द्रव्य १०० को अन्योन्याभ्यस्तराशिके आधे ३२ से गुणा करनेपर ३२०० तो द्रव्य जानना, इसको गच्छके प्रमाण ८ का भाग देनेपर मध्यधन ४०० आया। इसे एककम गुणहानिके आधेसे हीन दोगुणहानिके प्रमाण १२$\frac{१}{२}$ से भाग देनेपर ३२ आया सो चय जानना। इसको एकअधिक गुणहानिके प्रमाण ९ से गुणा करनेपर २८८ हुआ सो प्रथमनिषेक जानना। द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एक चय मिलकर एक-कम गुणहानिप्रमाण सात चय मिलनेसे ५१२ हुआ, इसे अन्तिमनिषेक जानना। इस प्रकार अंकसहनानी द्वारा कथन किया। यहाँ भी प्रथमगुणहानिके प्रथमनिषेक अध्यवसायस्थान जघन्यस्थितिको कारण हैं और द्वितीयादिनिषेकप्रमाण जो अध्यवसायस्थान हैं वे एक-एकसमयअधिक स्थिति के लिये कारण जानना। इसीप्रकार अन्तिमगुणहानिके अन्तिमनिषेकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान उत्कृष्टस्थितिके लिये कारण जानना।

आगे जघन्य चय का कथन करते हैं-

लोगाणमसंखपमा, जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं॥९५२॥

अर्थ - आयुकर्मके बिना शेष सातकर्मोंके स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके जघन्यस्थानके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण छहस्थानपतित वृद्धि होती है।

विशेषार्थ - अनन्तवेंभागवृद्धि, असंख्यातवेंभागवृद्धि, संख्यातवेंभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, ये छह वृद्धियाँ, छहस्थानपतितवृद्धियाँ होती हैं। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके जघन्यस्थानके ऊपर असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानपतितवृद्धि हो जानेपर दूसरा स्थान होता है। यह वृद्धिका कथन अविभागोंके प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा है, क्योंकि संख्याकी अपेक्षा अनन्तवेंभाग व अनन्तगुणीवृद्धि सम्भव नहीं है।

आगे आयुकर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंमें विशेषता बताते हैं-

आउस्स जहण्णट्ठिदिबंधणजोग्गा असंखलोगमिदा।
आवलिअसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा॥९५३॥

अर्थ - आयुकर्मके सर्वजघन्यस्थितिबन्धके योग्य अध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं उससे आगे-आगे उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त क्रमसे आवलीके असंख्यातवें- असंख्यातवेंभागसे गुणित स्थान जानना चाहिए।

विशेषार्थ - अङ्कसन्दृष्टि द्वारा कथन करते हैं-

आयुकर्मकी स्थितिके संख्यातपल्यप्रमाण जितने भेद हैं उसकी सहनानी १६ है, जघन्यस्थितिके योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अध्यवसायस्थानों की सहनानी २२, द्वितीयादि स्थितिमें आवलीके असंख्यातवेंभागप्रमाण गुणकारकी सहनानी ४ है। नानाजीवोंकी अपेक्षा अधस्तनस्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसायस्थान और उपरितनस्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसायस्थानोंमें समानता भी है अतः यहाँ अनुकृष्टिविधान सम्भव है, क्योंकि उपरितन व अधस्तन स्थितिके बन्धमें कारणरूप अध्यवसायस्थानादिकी समानता ही यहाँ अनुकृष्टि कहलाती है। इसलिये यहाँ अनुकृष्टिके गच्छ का प्रमाण अंकसन्दृष्टिमें ४ है सो स्थितिकी रचना तो ऊपर-ऊपर तथा एक-एकस्थिति-रचनाके बराबर अनुकृष्टिरचना जानना। जघन्यस्थितिकी अनुकृष्टिमें चयका प्रमाण १ और सर्वचयका जोड़रूप चयधन ६ है। इस चयधन ६ को प्रथमस्थितिसम्बन्धी द्रव्य २२ में से घटानेपर (२२-६) १६ शेष रहे। इसको अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर (१६÷४) लब्ध ४ आए सो यह जघन्यस्थितिमें जघन्यअनुकृष्टिका खण्ड जानना। इससे आगे उत्कृष्टखण्डपर्यन्त एक-एकचय अधिक जानना। अर्थात् द्वितीय-तृतीय-चतुर्थखण्डका प्रमाण क्रमशः ५-६ व ७ जानना। इस प्रकार चारों खण्डोंका जोड़ (४+५+६+७) २२ होता है। द्वितीयस्थिति भेदमें द्रव्य (२२) के चौगुणे (८८) अध्यवसाय हैं। इनमेंसे एकभाग (२२) को पृथक् ग्रहणकर प्रथम, द्वितीय व तृतीय अनुकृष्टिखण्डोंमें क्रमसे ५-६ व ७ देनेसे शेष जो चार रहे वे तथा बहुभागरूप २२ के तिगुने (६६) उत्कृष्ट (चतुर्थ) खण्डमें देनेसे अन्तिमखण्डमें द्रव्य (६६+४) ७० हुआ। तृतीयस्थितिभेदमें २२ के दोबार चौगुणे अर्थात् २२×४ =८८× ४=३५२ अध्यवसाय हैं। ३५२ में से २२ के चौगुने (८८) रूप एकभाग पृथक् ग्रहण कर अवशेष २२ के चौगुने के तिगुने अर्थात् २६४ अन्तिम (चतुर्थ) खण्ड में देना तथा पृथक् ग्रहण किये हुए चारगुणे २२ (८८) में से २२ पृथक् ग्रहणकरके अवशेष २२ का तिगुना (६६) रहा सो यह द्रव्य उपान्तखण्ड (तृतीयखण्ड) में देना तथा जो २२ पृथक् रखे थे उनमेंसे प्रथम व द्वितीय खण्डमें तो ६ व ७ एवं तृतीय व चतुर्थखण्डमें पूर्वोक्त ६६ व २६४ में क्रमशः ४ व ५ मिलानेसे ७० व २६९ हुए। (चारोंखण्डोंमें क्रमसे ६।७।७०।२६९ रूप द्रव्य जानना) चतुर्थ स्थितिभेदमें २२ को तीनबार चौगुणा करनेपर (२२×४= ८८×४= ३५२×४ =१४०८) द्रव्य है। यहाँ २२ का दोबार चौगुणा (३५२) पृथक् ग्रहणकर अवशेष २२ के दोबार चौगुणेको तिगुना करनेसे (२२×४=८८×४= ३५२×३) १०५६ हुए सो यह चतुर्थखण्डमें देना तथा २२ का दोबार चौगुणा (३५२) पृथक् रखा था। उसमेंसे एकभाग २२ से चारगुना (८८) पृथक् ग्रहणकर अवशेष चार-गुणे २२ के तिगुने (२६४) उपान्त (तृतीय) खण्डमें देना तथा चारगुणा २२ (८८) पृथक् रखे थे। उसमें एकभागरूप २२ पृथक् रखकर अवशेष तिगुना २२ (६६) द्वितीय-खण्डमें देना एवं जो २२ पृथक् ग्रहण किये थे उनमेंसे सात प्रथमखण्डमें तथा ४-५ व ६ क्रमसे द्वितीय-तृतीय व चतुर्थखण्डके प्रमाणमें मिलानेपर चारोंखण्डसम्बन्धी सर्वद्रव्य क्रमसे ७।७०।२६९।१०६२। जानना। इसी क्रमसे ५वें, ६ठे,

७वें, ८वें आदि उपान्त व अन्तिमस्थितिभेदमें अनुकृष्टिरचना जानना। सर्वत्र अधस्तनस्थितिभेदका द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ अनुकृष्टिखण्डमें जो द्रव्य होवे सो उपरितनस्थितिभेदके प्रथम, द्वितीय व तृतीय अनुकृष्टिखण्डमें लिखना तथा उपरितनस्थितिभेदके सर्वद्रव्यमेंसे तीनों खण्डोंका प्रमाण जोड़कर घटानेसे जो अवशेष सो चतुर्थखण्डमें प्रमाण लिखना। इसप्रकार अधस्तनस्थितिके उपरितनस्थितिके अध्यवसायोंकी समानता पाई जाती है।

किसी जीवके जिन अध्यवसायोंसे अधस्तनस्थिति बँधती है उन ही परिणामोंसे किसी जीवके उपरितनस्थिति भी बँधती है। इसप्रकार समानता होनेसे अनुकृष्टिरचना कही। यहाँ अधस्तनस्थितिका जघन्यखण्ड उपरितनस्थितिके खण्डोंसे तथा उपरितनस्थितिका उत्कृष्टखण्ड अधस्तनखंडोंके समान नहीं है ऐसा जानना। इसप्रकार आयुकर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थान कहे।

नानाजीवोंकी अपेक्षा स्तोकस्थितिके कारणभूत जो स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं उनसे उससे अधिक स्थितिके कारणभूत जो बन्धाध्यवसायस्थान हैं इन दोनोंमें समानता भी होती है अतः यहाँ गाथा ९०७ में दिये हुए अधःकरणसम्बन्धी कोष्ठक (सन्दृष्टि) के अनुसार अनुकृष्टिविधान सम्भव है, किन्तु उस सन्दृष्टिकी अपेक्षा यहाँ कुछ अंतर है। अतः अनुकृष्टिके गच्छ या खण्ड ४ माननेपर निम्नानुसार सन्दृष्टि बनेगी। तद्यथा-

स्थिति	अध्यवसाय-स्थान	अनुकृष्टिखण्ड			
जघन्य	२२	४	५	६	७
जघन्य+१ समय	८८	५	६	७	७०
जघन्य+२ समय	३५२	६	७	७०	२६९
जघन्य+३ समय	१४०८	७	७०	२६९	१०६२

अथानन्तर यहाँ प्रत्येक स्थिति भेदसम्बन्धी अध्यवसायोंमें नानाजीवों की अपेक्षा खण्ड पाए जाते हैं। किसी जीवके जिन अध्यवसायस्थानोंसे अधस्तनस्थिति बँधती है तथा अन्य किसी के उन ही स्थानोंसे उपरितनस्थिति भी बँधती है, इसप्रकार ऊपर व नीचे समानता समझकर अनुकृष्टि विधान कहते हैं-

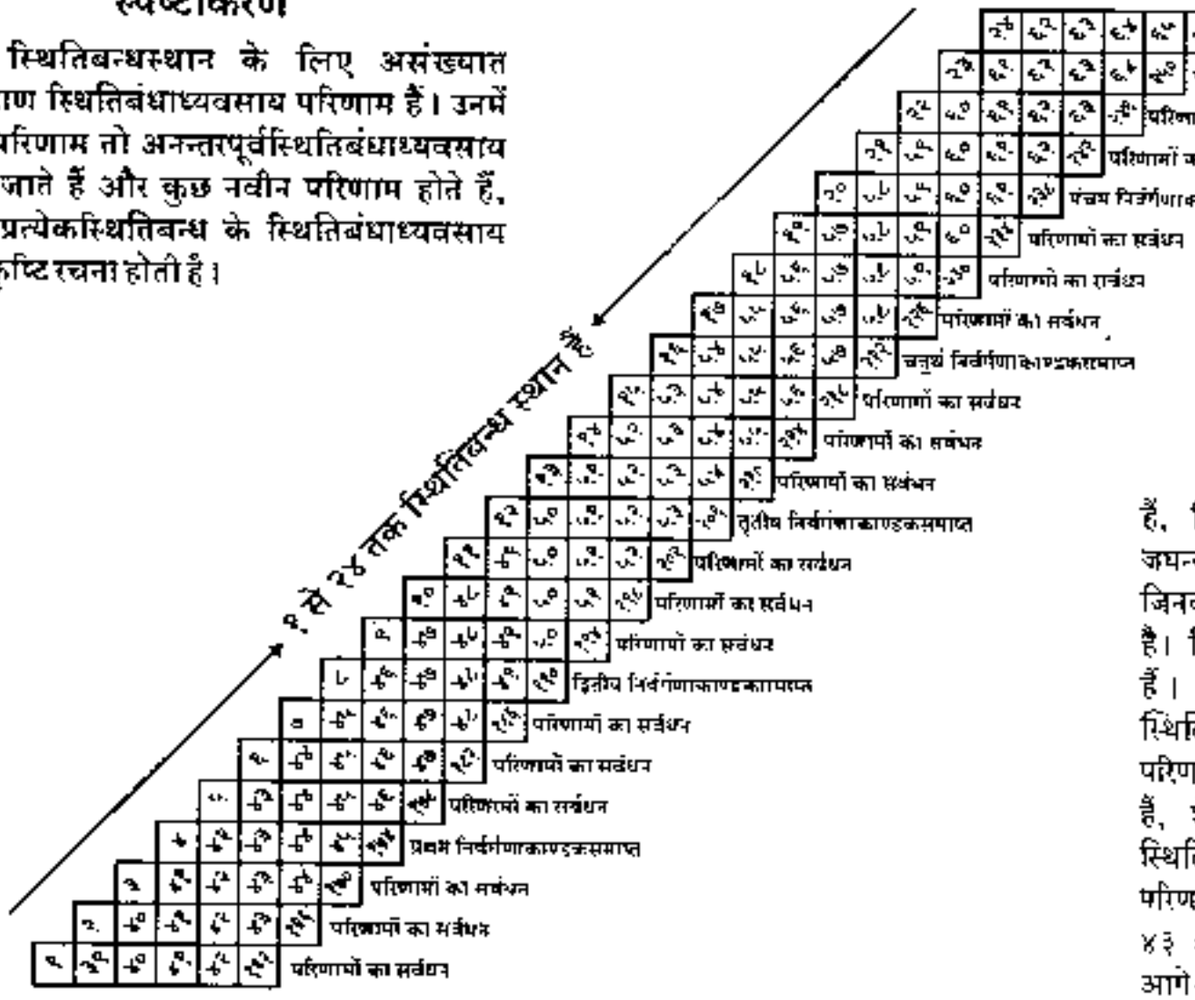
पल्लासंखेज्जदिमा, अणुकट्ठी तत्तियाणि खंडाणि।
अहियकमाणि तिरिच्छे चरिमं खंडं च अहियं तु॥९५४॥

अर्थ-स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंकी अनुकृष्टिरचनामें पल्यके असंख्यातवेंभाग अनुकृष्टिपदोंका (गच्छका) प्रमाण है और उतने ही अनुकृष्टिखण्ड होते हैं। ये खण्ड तिर्यक् (बराबर) रचना किये गए क्रमसे अनुकृष्टिके चयसे अधिक- अधिक हैं, किन्तु जघन्यखण्डसे अन्तिमखण्ड कुछ ही विशेष अधिक है दूना-तिगुना नहीं होता।

प्रथमादि स्थितिबन्धस्थानों में स्थितिबन्धाध्यवसाय परिणामों की अनुकृष्टि रचना

स्पष्टीकरण

प्रत्येक स्थितिबन्धस्थान के लिए असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबंधाध्यवसाय परिणाम हैं। उनमें से कुछ परिणाम तो अनन्तरपूर्वस्थितिबंधाध्यवसाय में लिये जाते हैं और कुछ नवीन परिणाम होते हैं, क्योंकि प्रत्येकस्थितिबन्ध के स्थितिबंधाध्यवसाय की अनुकृष्टि रचना होती है।



अंकसंदृष्टि में स्थितिबन्धस्थान २४ हैं, स्थितिबन्धाध्यवसायपरिणाम १२४८ हैं, जघन्यस्थितिबंध के कारण १६२ परिणाम हैं, जिनकी अनुकृष्टि रचना ३९-४०-४१-४२ है। द्वितीयस्थितिबंधके कारण १६६ परिणाम हैं। इनमें जघन्यस्थितिबंध के कारण स्थितिअध्यवसाय परिणामों में से प्रथम ३९ परिणाम तो द्वितीय स्थितिबंध के कारण नहीं हैं, शेष ४०-४१ व ४२ परिणाम द्वितीय स्थिति-बंध के कारण हैं और ४३ नवीन परिणाम कारण हैं। इस प्रकार ४०-४१-४२-४३ = १६६ परिणाम कारण हैं। इसी प्रकार आगे-आगे भी जानना चाहिए।

आगे विशेष का प्रमाण कहते हैं -

लोगाणमसंखमिदा, अहियपमाणा हवंति पत्तेयं।
समुदायेण वि तच्चिय, ण हि अणुकिट्टिटम्मि गुणहाणी ॥९५५॥

अर्थ-प्रत्येकगुणहानिमें पूर्व-पूर्व गुणहानिसे अनुकृष्टिके चयका प्रमाण दूना-दूना है तथापि सामान्यसे असंख्यातलोकमात्र ही है और सर्वचय समूहोंको मिलानेसे भी असंख्यातलोकप्रमाण ही होता है। अनुकृष्टिमें गुणहानिकी रचना नहीं है।

विशेषार्थ-विवक्षित गुणहानिकी रचनामें चयका जो प्रमाण है उसमें अनुकृष्टिगच्छका भाग देनेपर अनुकृष्टिचयका प्रमाण प्राप्त होता है। इसप्रकार स्थूलरूपसे वह असंख्यातलोकप्रमाण ही है। यहाँ प्रथमखण्डसे एक-एकचय अधिक द्वितीयआदि खण्ड हैं तथापि उन सभीका प्रमाण असंख्यातलोकप्रमाण ही कहा है। इसप्रकार असंख्यातलोकके भेद असंख्यातलोकप्रमाण हैं तथा अनुकृष्टिके गच्छमें गुणहानिकी रचना नहीं है। अत:सर्वउत्कृष्टखण्डोंके अपने-अपने जघन्यखण्डसे एककम गुणहानिके गच्छप्रमाण चयों की अधिकता पाई जाती है। इसप्रकार अनुकृष्टिके गच्छ और चयका प्रमाण बताकर उस अनुकृष्टिखण्डोंमें स्थितिबन्धाध्यवसायों का प्रमाण कहते हैं।

जघन्यस्थितिबन्धके योग्य अध्यवसाय परिणाम तो द्रव्य जानना तथा प्रथम गुणहानिमें जो चयका प्रमाण है उसमें अनुकृष्टिगच्छ (पल्यके असंख्यातवेंभागका) भाग देनेपर अनुकृष्टिचयका प्रमाण होता है तथा ''व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'' एककम अनुकृष्टिगच्छके आधेको अनुकृष्टिचयसे गुणे और अनुकृष्टिगच्छसे गुणे, जो प्रमाण हो वह यहाँ चयधन जानना।

प्रथमगुणहानिमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायोंके प्रमाणमें से चयधनका प्रमाण घटानेसे अवशेषमें अनुकृष्टिगच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह प्रथमगुणहानिमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथमखण्ड जानना। द्वितीयादिखण्ड एक-एक अनुकृष्टिचयसे अधिक होते हैं। एककम अनुकृष्टिके गच्छप्रमाणचय जघन्यखंडमें अधिक होनेपर उत्कृष्ट अन्तिमखण्ड होता है। यहां ''पदहतमुखमादिधनं'' अनुकृष्टिगच्छरूप पदसे प्रथमखण्डरूप मुखको गुणा करनेपर आदिधन प्राप्त होता है। इसप्रकार आदिधन और चयधन मिलानेसे जघन्यस्थितिसम्बन्धी अध्यवसायोंका प्रमाणरूप सर्वधन होता है इसीप्रकार द्वितीयादिस्थानोंमें अनुकृष्टिरचना अनुक्रमसे प्रथमगुणहानिके अन्त तक जानना।

अब इस अनुकृष्टिके कथनको अंकसन्दृष्टिके द्वारा कहते हैं--

प्रथमगुणहानिके प्रथमस्थान ९ हैं। अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग ऊर्ध्वचय-१में देने पर अनुकृष्टि चतुर्थांश वहाँ 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'' इस सूत्रसे चय धनके प्रमाण $१\frac{१}{२}$ को सर्वधन

९में से घटानेपर ७$\frac{१}{२}$ शेष रहे इसको अनुकृष्टिगच्छ चार का भाग देने पर प्रथमखण्डका प्रमाण अष्टमांश कम दो ($\frac{१५}{८}$) होता है। इसमें चतुर्थांशप्रमाण अनुकृष्टिका एक-एकचय मिलानेपर द्वितीयादिखण्ड होते हैं ($\frac{१५}{८}+\frac{१७}{८}+\frac{१९}{८}+\frac{२१}{८}$) इन चारों खण्डों का जोड़ करनेपर ($\frac{७२}{८}$)९ होता है। इसीप्रकार अन्तिमनिषेकके द्रव्य १६ में से चयधन १$\frac{१}{२}$ घटानेसे (१६-१$\frac{१}{२}$) १४$\frac{१}{२}$ को अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर अष्टमांशअधिक ३$\frac{१}{२}$ लब्ध आया सो यह तो प्रथमखण्ड और इसमें चतुर्थांशमात्र एक-एकचय अधिक होनेसे द्वितीयादिखण्ड होते हैं तथा चारों खण्डोंका जोड़ १६ हुआ।

यहाँ आधा चौथाई कहनेका अभिप्राय यह है कि अङ्कसन्दृष्टि द्वारा समझमें आ जावे, किन्तु महत्प्रमाणरूप अर्थसन्दृष्टिमें अध्यवसायोंमें आधा-चौथाई नहीं है। अथवा अपनी इच्छानुसार अंकसन्दृष्टि करना हो तो त्रिकरणचूलिका अधिकारमें अधःप्रवृत्तकरणरचनामें जो अङ्कसन्दृष्टिद्वारा कथन किया है वैसा करना। यहाँ प्रथमगुणहानिमें अध्यवसाय ३०७२, गुणहानिआयाम १६, जघन्यस्थितिसम्बन्धी प्रथमनिषेक १६२, प्रत्येकनिषेकमें चयका प्रमाण ४ है। यहाँ प्रथमनिषेकमें द्रव्य १६२ इसमें चयधन ६ घटानेपर (१६२-६) १५६ हुआ। इसमें अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर ३९ आया। यह प्रथमखण्ड तथा द्वितीयादि खण्डमें अनुकृष्टिचयका प्रमाण एक सो एकचय अधिक जानना। इसप्रकार चारोंखण्डोंका जोड़ करनेपर १६२ होते हैं। इसीप्रकार द्वितीयादि निषेकोंकी रचनाकर अन्तिमनिषेकमें द्रव्य २२२ है। इसमेंसे चयधन ६ घटाने पर (२२२-६) २१६ रहे। इसमें अनुकृष्टिगच्छ ४ का भाग देनेपर ५४ लब्ध आया सो यह प्रथमखण्ड जानना तथा द्वितीयादिखण्डोंमें एक-एकचय अधिक जानना। इसप्रकार चारोंखण्डोंका जोड़करनेसे २२२ होता है। इसीप्रकार अङ्कसन्दृष्टिद्वारा पूर्वोक्त अर्थ जानना। अत्यन्तपरोक्ष अर्थको जाननेका यह भी उपाय है तथा ऐसे ही द्वितीयादि गुणहानिमें भी अनुकृष्टिका विधान करना। प्रथमगुणहानिके अनुकृष्टिचय, द्रव्य और खण्डोंसे द्वितीयादि गुणहानिमें अनुकृष्टिचयादिका प्रमाण दूना-दूना जानना।

अङ्कसन्दृष्टि की अपेक्षा स्थितिबंधाध्यवसाय की रचना-

जघन्यादि स्थिति बंधकी ऊर्ध्वरचना	प्रथमखंड	द्वितीयखंड	तृतीयखंड	चतुर्थखण्ड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२

१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

पढमं पढमं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिदूण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५६॥

अर्थ-इसप्रकार अनुकृष्टिरचनामें प्रथमादि गुणहानियोंमें अनुकृष्टिका प्रथम-प्रथमखण्ड परस्परमें विसदृश (असमान) हैं इसलिए तिर्यक्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर रचनारूप प्रथम-प्रथमखण्ड अन्तिमनिषेकके प्रथमखण्डपर्यन्त एक-एकचयप्रमाण अधिक है अर्थात् अपने-अपने नीचे के प्रथम खण्डके उत्कृष्टस्थान से ऊपरके प्रथमखण्ड के जघन्य स्थान चयप्रमाण अधिक हैं और शक्ति की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।

विदियं विदियं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिदूण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५७॥

अर्थ-गुणहानियोंमें प्रथमादि निषेकोंका द्वितीय-द्वितीयखंड गुणहानिके अंतिम-निषेकके द्वितीयखण्डपर्यन्त निरन्तर एक-एक चयप्रमाण अधिक है इसलिए समान नहीं है, क्योंकि अधस्तनद्वितीयखण्डके उत्कृष्टस्थानसे उपरितनद्वितीयखण्डके जघन्यस्थान चयअधिक और शक्तिकी अपेक्षा अनन्तगुणा है तथा ऐसे ही तृतीय-तृतीयआदि खण्डोंमें असमानता जान लेना। इसप्रकार एककम अनुकृष्टिप्रमाण खण्डोंकी असमानता होती है।

अब अन्तिमखण्डों की परस्पर में असमानता बताते हैं -

चरिमं चरिमं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिदूण विसरित्थं।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥ ९५८॥

अर्थ – गुणहानि के प्रथमादिनिषेकों का अन्तिमखण्ड अन्तिमनिषेकों के अन्तिमखण्ड पर्यन्त निरन्तर एक-एक चय अधिक होने से परस्पर में असदृश हैं और शक्ति की अपेक्षा अपने से अधस्तन अन्तिमखण्ड के उत्कृष्टस्थानसे उपरितनअन्तिमखण्डका जघन्यस्थान अनन्तगुणा है।

आगे उसीका कारण कहते हैं -

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं, उव्वंकं होदि उवरिमजहण्णं।
अट्ठंकं होदि तदोणंतगुणं उवरिमजहण्णं॥९५९॥

अर्थ-जिसकारण तिर्यग्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर लिखे हुए खण्डोंमें अपनेसे अधस्तनखण्डका उत्कृष्टअध्यवसायस्थान पूर्वस्थानसे 'ऊर्वङ्क'- अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए है तथा अधस्तनखंडके उत्कृष्टसे उपरितनखंडका जघन्यअध्यवसायस्थान 'अष्टाङ्क'- अनन्तगुणवृद्धिको लिये है। इसकारणसे अधस्तनखंडके उत्कृष्टसे उपरितनखण्डका जघन्यस्थान अनन्तगुणा कहा है।

अवरुक्कस्सठिदीणं, जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं।
सेसा सव्व खंडा, सरिसा खलु होंति उड्ढेण॥९६०॥

अर्थ-जघन्यस्थितिके कारणरूप अध्यवसायस्थानोंके प्रथमखण्ड और उत्कृष्ट-स्थितिके कारणरूप अध्यवसायस्थानोंके अन्तिमखंड ये दोनों तो निर्वर्ग हैं अर्थात् किसी भी खण्डसे सर्वथा समान नहीं हैं और शेष सर्वखण्ड ऊर्ध्वरचनाके द्वारा अन्यखण्डोंके समान हैं।

अट्ठण्हंपि य एवं, आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं।
जावय तावय खंडा, अणुकट्टिपदे विसेसहिया॥९६१॥

तत्तो उवरिमखंडा, सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं।
सव्वे ठिदियणखंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये॥९६२॥जुम्मं॥

अर्थ-आठों कर्मोंकी अनुकृष्टिरचना समान है अर्थात् जैसी मोहनीयकर्मकी अनुकृष्टिरचना कही गई है वैसी ज्ञानावरणादिकर्मोंकी भी जानना, किन्तु आयुकर्मकी तिर्यग्रचनामें जघन्यस्थितिबन्धके कारणभूत अध्यवसायस्थानोंकी अनुकृष्टिरचनामें प्रत्येकखण्ड चयकरि विशेष अधिक है। उससे आगे उत्कृष्ट खण्ड से ऊपर की स्थिति के खण्ड अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड पर्यन्त तथा शेष स्थितियों के अपने-अपने जघन्य खण्ड से अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड पर्यन्त सब तिर्यक् रचना रूप असंख्यात गुणे-असंख्यात गुणे हैं।

आगे अनुभाग बंधाध्यवसायस्थानोंको कहते हुए उसमें जघन्यस्थितिके अध्यवसायस्थानोंमें सबसे जघन्यस्थितिसम्बन्धी अनुभागाध्यवसायस्थानोंको कहते हैं--

रसबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्हि थोवाणि ॥९६३॥

अर्थ-अनुभागबंधाध्यवसायस्थान (असंख्यातलोक असंख्यातलोक) असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसमें जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंमें जघन्यस्थितिबन्धयोग्य अध्यवसायोंके प्रमाणसे असंख्यातलोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थान तत्सम्बन्धी हैं तथापि अन्य स्थितिबंधाध्यवसायसंबंधी अनुभागाध्यवसाय परिणामोंकी अपेक्षा स्तोक हैं।

विशेषार्थ-जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंके प्रमाणसे असंख्यातलोकगुणे तत्स्थितिसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायोंका प्रमाण है सो ही यहाँ द्रव्यका प्रमाण जानना। जघन्यस्थितिसम्बन्धी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंका प्रमाण सो यहाँ स्थितिका प्रमाण जानना। आवलीको दोबार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो नानागुणहानिशलाका प्रमाण है। उपर्युक्त स्थितिके प्रमाणको नानागुणहानिका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे सो गुणहानिआयामका प्रमाण है। गुणहानिआयामके प्रमाण को दोगुणा करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण है। आवलीके असंख्यातवाँभाग सो अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण जानना। यहाँ द्रव्यके प्रमाणमें एककम अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतना प्रथमगुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण है और आगे इससे दूना-दूना द्वितीयादि गुणहानियोंमें द्रव्य जानना। प्रथमगुणहानिके द्रव्यको गुण-हानिआयामका भाग देनेपर मध्यमधनका प्रमाण प्राप्त होता है। एककम गुणहानिआयामके आधेसे हीन दो गुणहानिआयामका भाग मध्यमधनमें देनेसे चयका प्रमाण प्राप्त होता है और चयको एकअधिक गुणहानिआयामका गुणा करनेसे प्रथमनिषेकका प्रमाण होता है।

तत्तो कमेण वड्ढदि, पडिभागेण य असंखलोगेण।
अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९६४॥

अर्थ-इसके पश्चात् क्रमसे जघन्यस्थितिके जघन्यपरिणामसम्बन्धी प्रथम निषेकरूप अनुभागाध्यवसायस्थानसे उत्कृष्टस्थितिके उत्कृष्ट अनुभागाध्यवसायस्थानपर्यंत असंख्यातलोकरूप प्रतिभागहारसे (असंख्यातवेंभागसे) बढ़ते-बढ़ते अनुभागाध्यवसायस्थान नियमसे जानने चाहिए।

विशेषार्थ-उसके पश्चात् जघन्यस्थितिके जघन्यपरिणामसम्बन्धी प्रथमनिषेकरूप अनुभागाध्यवसायस्थान प्रथमगुणहानिके अन्तिमनिषेकरूप अन्तिमअनुभागाध्यवसायपरिणामपर्यन्त असंख्यातलोकमात्रका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर जो चयका प्रमाण आया उससे एक-एकचयप्रमाण निरन्तर बढ़ते-बढ़ते जानने। इससे आगे गुणहानि-गुणहानिप्रति चयका प्रमाण दूना-दूना जानना। इसप्रकार

द्वितीयादि स्थितियोग्य द्वितीयादि निषेकसे उत्कृष्टस्थितिरूप अन्तिमनिषेकपर्यन्त रचना जाननी।

यहाँ जघन्यस्थितिसम्बन्धी जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानोंसे असंख्यातगुणे प्रथमनिषेकप्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान जानना तथा उसीके दूसरे स्थानमें द्वितीय निषेकप्रमाण जानना ऐसा क्रम है एवं अनुभागबन्धाध्यवसायोंकी नानागुणहानिशलाकाओं के विषयमें आचार्योंके दो मत हैं। एकमतानुसार नानागुणहानि है, दूसरे मतानुसार नानागुणहानि नहीं है।.....

आगे ग्रन्थकर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य ग्रन्थ रचने की प्रतिज्ञा पूर्णकरके प्रशस्तिरूप आठ गाथाएँ कहते हैं-

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटदेवेण गोम्मटं रयिदं।
कम्माण णिज्जरट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च॥९६५॥

अर्थ-गोम्मटदेव-वर्धमानतीर्थंकरदेवने संग्रहरूप इस गोम्मटसारग्रन्थका विषय प्रमाण और नयके गोचर कहा है। अतः इस ग्रन्थके स्वाध्यायसे ज्ञानावरणादिकर्मोंकी निर्जरा और तत्त्वोंके स्वरूपका निश्चय होता है, ऐसा जानना चाहिए।

जम्हि गुणा विस्संता, गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं।
सो अजिदसेणणाहो, जस्स गुरू जयदु सो राओ॥९६६॥

अर्थ-बुद्धि आदि ऋद्धि प्राप्त गणधरदेवादिके समान जिनमें गुण हैं ऐसे अजितसेनमुनिनाथ जिसके व्रत (दीक्षा) देनेवाले गुरु हैं वह राजा चामुण्डराय सर्वोत्कृष्ट रूपसे जयशील हो।

सिद्धंतुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभुसणंबुहिमइबेला भरउ भुवणयलं॥९६७॥

अर्थ-सिद्धान्तरूप उदयाचलपर जिनका ज्ञान उदयको प्राप्त हुआ है ऐसे चन्द्रमाके समान नेमिचन्द्राचार्यकी वचनरूपी किरणोंसे सम्बन्धित गुणरूपी रत्नोंसे शोभित चामुण्डरायकी बुद्धिरूप बेला समस्त जगत्में अतिशयसे विस्तार प्राप्त करे।

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयदु॥९६८॥

अर्थ-गोम्मटशिखरपर चामुण्डरायराजाने जो जिनमन्दिर बनवाया उसमें एक हस्तप्रमाण इन्द्रनीलमणिमय नेमिनाथ तीर्थङ्करदेवका प्रतिबिम्ब विराजमान किया तथा भारतके दक्षिणप्रान्तमें श्रवणबेलगोलाके पर्वतपर निर्मापित बाहुबलीस्वामीकी प्रतिमा विराजमान की। वह प्रतिबिम्ब तथा गोम्मटसारसंग्रहग्रन्थ जयवंत हो।

जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं, दिट्ठं सो गोम्मटो जयदु॥९६९॥

वज्जयणं जिणभवणं, ईसिपब्भारं सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं, जेण कदं जयदु सो राओ॥९७०॥

जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया।
सिद्धाण सुद्धपाया, सो राओ गोम्मटो जयदु॥९७१॥

गोम्मटसुत्तल्लिहणे, गोम्मटरायेण जा कदा देसी।
सो राओ चिरकालं, णामेण य वीरमत्तंडी॥९७२॥

अर्थ-जिस प्रतिमाको चामुण्डरायने बनवाया उस प्रतिमाके मुखको सर्वार्थसिद्धिके देवोंने तथा सर्वावधि व परमावधिज्ञानधारी मुनियोंने देखा है वह चामुण्डराय सर्वोत्कृष्टपनेको प्राप्त होवे॥९६९॥

जिस मन्दिरका अवनितल अर्थात् पीठबन्ध वज्र सदृश है, जिसका ईषत्प्राग्भार नाम है, जिसके ऊपर स्वर्णमयी कलश है तथा जो अनुपम है ऐसे जिनमन्दिरको बनवानेवाला चामुण्डराय जयवन्त प्रवर्तो॥९७०॥

जिसने चैत्यालयके खम्भोंपर यक्षके आकारवालीमूर्तिके मुकुटाग्रभागकी किरणोंरूप जलसे सिद्धपरमेष्ठी के आत्मप्रदेशोंके आकार रूप शुद्धचरण धोए हैं ऐसा चामुण्डराय जयशील होवे। (यद्यपि सिद्धिस्थानपर्यन्त यक्षके मुकुट किरण कैसे प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु उपमालङ्कारके द्वारा कहनेमें दोष नहीं है। यहाँ इतना अर्थ जानना कि चैत्यालयमें स्तम्भ बहुत ऊँचा बना है, उसके ऊपर यक्षकी मूर्ति है, उसके मुकुटमें प्रकाशवन्त रत्न लगे हैं।)॥९७१॥

गोम्मटसार ग्रन्थके गाथासूत्र लिखते समय जिस गोम्मटरायने कर्णाटकवृत्ति बनाई है वह **'वीरमार्तण्ड'** नामसे प्रसिद्ध चामुण्डराय दीर्घकालपर्यन्त जयवंत वर्तो॥

॥ इति प्रशस्तिः॥

इस प्रकार नेमिचन्द्राचार्य विरचित गोम्मटसारकर्मकाण्डग्रन्थकी 'सिद्धान्तज्ञानदीपिका' नामक हिन्दी टीकामें 'कर्मरचनासद्भाव' नामक नवमअध्याय पूर्ण हुआ।

卐 卐 卐

गाथानुक्रम

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.	गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
"अ"			अण्णोण्ण गुणिदरासी	२४९	२०४
अक्खाणं अणुभवणं	१४	८	अण्णोण्णब्भत्थं पुण	४३३	४२२
अजहण्णट्ठिदिबंधो	१५२	१२४	अणणोकम्मं मिच्छं	७५	४३
अट्ठगुणिज्जः कामे	८४९	७२९	अणथीणतियं	१७१	१३७
अट्ठण्हंवि य एवं	२६१	८०२	अणरहिदसहिद कूडे	७९६	६८३
अट्ठत्तरीहि सहिया	५०६	४७८	अणसंजोजिद मिच्छे	५६१	५१८
अट्ठत्तीस सहस्सा	५०५	४७७	अणसंजोजिद सम्मे	४७८	४५६
अट्ठ य सत्त य छक्क य	५०८	४७९	अणियट्टिकरणपढमा	४८३	४६०
अट्ठविहसत्तछल्बं	६२८	५६५	अणियट्टिगुणट्ठाणे	३९२	३९२
अट्ठसमयस्स थोवा	२४३	१९७	अणियट्टिचरिमठाणा	३८९	३९०
अट्ठसु एक्को बंधो	६५३	५७८	अणियट्टीबंधतियं	६५४	५७८
अट्ठारस चउअट्ठं	३९३	३९३	अणुकट्टिपदेण हदे	९०६	७६२
अट्ठदओ सुहुमोत्ति य	४५४	४३८	अणुदय तदियं णीचं	३४१	३१२
अट्ठेव सहस्साइं	५०७	४७८	अणुभयवचि वियल	३११	२६४
अडचउरेक्कावीसं	५११	४८०	अणुभागाणं बंधं	२६०	२१८
अडछल्बीसं सोलस	६४९	५७५	अणुवदमहव्वदेहिं य	८०७	६९१
अडदालं चारिसया	८७२	७३९	अत्थि णवट्ठ य दुदओ	७३८	६२३
अडदालं छत्तीसं	८५५	७३०	अत्थि सदो परदोत्ति य	८७७	७५०
अडवण्णा सत्तसया	६०८	५५३	अत्थि सदो परदोत्ति य	८७८	७५१
अडवीसचऊ बंधा	७३१	६१९	अत्थं देक्खिय आणदि	१५	८
अडवीसतिय दु साणे	५५१	५१०	अप्पदरा पुण तीसं	४७३	४५०
अडवीस दु हारदुगे	५४६	४९८	अप्पपरोभयठाणे	५५५	५१६
अडवीस दुगं बंधो	७००	६०४	अप्पिद्धपंतिचरिमो	९३६	७८६
अडवीसमिवुणतीसे	७८१	६५६	अप्पोवयारवेक्खं	६१	३९
अडवीसे तिगिणउदे	७८०	६५६	अप्पं बंधंतो बहु	४६९	४४५
अडसट्ठी एक्कसयं	८७१	७३९	अपमत्ते य अपुव्वे	७०१	६०४
अण्णत्थ ठियस्सुदये	४३९	४२५	अपमत्ते सम्मत्तं	२६८	२३२
अण्णदर आउसहिया	३७८	३६६	अब्भरहिदादुपुव्वं	१६	९
अण्णाणदुगे बंधो	७२३	६१५	अभव्वसिद्धे णत्थि हु	३५५	३३३
अण्णाणी हु अणीसो	८८०	७५२	अयदापुण्णे ण हि थी	२८७	२३९

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
अयदुवसमग चउक्के	८४५	७२६
अयदे बिदियकसाया	९७	५२
अयदे बिदियकसाया	२६६	२३२
अवधिदुगेण विहीणं	८२७	७१३
अविभागपडिच्छेदो	२२३	१८२
अवणिदतिण्णयडीणं	२८०	२३७
अवरट्ठिदिबंधज्झव	९४९	७९३
अवरादीणं ठाणं	७९१	६७२
अवरुक्कस्सठिदीणं	९६०	८०२
अवरुक्कस्सेण हवे	२४२	१९७
अवरो भिण्णमुहुत्तो	१२६	१०२
अवसेसा पयडीओ	१८३	१४३
अविरदठाणं एक्कं	३०५	२५४
अविरदभंगे मिस्स य	५५३	५१४
अविरदसम्मो देसो	५५८	५१६
अविरमणे बंधुदया	७२९	६१७
अरदी सोगे संढे	१३०	१०३
अरहंतसिद्धचेदिय	८०२	६८८
अरहंतादिसु भत्तो	८०९	६९२
असहायजिणवरिंदे	३९८	३९५
असिदि सदं किरियाणं	८७६	७५०
अहिया गमणणिमित्तं	९५०	७९३
"आ"		
आउक्कस्स पदेसं	२११	१७२
आउगबंधाबंधण	३५९	३३७
आउगभागो थोवो	१९२	१४८
आउट्ठिदि बंधज्झव	९४७	७९१
आउदुगहारतित्थं	३६७	३४३
आउबलेण अवट्ठिदि	१८	९
आउस्स जहण्णट्ठिदि	९५३	७९५
आउस्स य संखेज्जा	९३९	७८७
आऊणि भवविवाई	४८	३४
आदाओ उज्जोओ	१६५	१३४
आदिधणादो सव्वं	९०१	७५९
आदिम्मि कमे वड्ढदि	९०७	७६२
आदिमपंचट्ठाणे	३७९	३६६
आदिमसत्तेव तदो	४४२	४३२
आदिल्लदससुसरिसा	३८१	३६६
आदी अंते सुद्धे	२५४	२०८
आदेसेवि य एव	८७५	७५०
आबाधाणं बिदियो	९४१	७८८
आबाहूणियकम्म	१६०	१३०
आबाहूणिय कम्मट्ठिदि	९१९	७७४
आबाहं बोलाविय	१६१	१३०
आबाहं बोलाविय	९२०	७७५
आयदणाणावदणं	७४	४३
आवरणदेसघादं	१८२	१४३
आवरणमोहविग्घं	९	५
आवरणवेदणीये	९३८	७८७
आवलियं आबाहा	१५९	१२९
आवलियं आबाहा	९१८	७७३
आलसड्ढो णिरुच्छाहो	८९०	७५५
आहारगा दु देवे	५४२	४९६
आहारदुगं सम्मं	४१५	४०८
आहारमप्पमत्ते	१७२	१३७
आहारे बंधुदया	७३७	६२३
आहारं तु पमत्ते	२६१	२२६
"इ"		
इगि अड अट्ठिगि	५७७	५२९
इगिछक्कडणवबीस	७०८	६०७
इगिछक्कडणव तीसदु.	७१६	६१०
इगिठाणफड्डयाओ	२२७	१८४
इगिठाणफड्डयाओ सम.	२५०	२०६
इगिणउदीए तीसं	७७१	६५३
इगिणवदीए बंधा	७५६	६४२
इगितीसबंधठाणे	७७४	६५३

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.	गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
इगितीसे तीसुदओ	७४४	६२५	उदओ तीसं सत्तं	७०२	६०५
इगिदालं च सयाइं	८७०	७३८	उदओ सव्वं चउपण	७२६	६१५
इगिपंचेंदिय थावर	१३१	१०३	उदधि पुधत्तं तु तसे	६१५	५५९
इगिपंतिगदं पुध पुध	९३५	७८५	उदयट्ठाणं दोण्ह	४८२	४६०
इगिबंधट्ठाणेण दु	७६८	६४९	उदयट्ठाणं पयडिं	४९०	४६४
इगिबारं वज्जित्ता	६४३	५७२	उदयस्सुदीरणस्स य	२७८	२३६
इगिविगलथावरचऊ	२८८	२३९	उदया इगिपणवीसं	७३३	६२०
इगिविगलबंधठाणं	७१५	६१०	उदया इगिपण सग अड	७१२	६०९
इगिविहि गि गि ख	५७८	५३१	उदया इगिवीसचऊ	७३५	६२१
इगिवीसट्ठाणुदये	७७५	६५५	उदया उणतीसतियं	७२४	६१५
इगिवीसमोहखवणुव	८९७	७५७	उदया चउवीसूणा	६९९	६०४
इगिवीसादट्ठुदओ	७७२	६५३	उदयामदिं व खइयं	७३४	६२१
इगिवीसादी एक्कत्ती	६९७	६०४	उदयेणक्खे चढिदे	८३४	७१९
इगिवीसेण णिरुद्धे	६७५	५९०	उदये संक्रममुदये	४५०	४३५
इगिवीसं ण हि पढमे	६७६	५९०	उदये संक्रममुदये	४४०	४२५
इट्ठपदे रूऊणे	८६१	७३७	उदयं पडि सत्तण्हं	१५६	१२७
इट्ठसलायपमाणं	९३७	७८६	उदयं पडि सत्तण्हं	९१५	७७२
इट्ठाणिट्ठवियोगं	७७	४३	उभयधणे संमिलिदे	९०२	७६०
इत्थीवेदे वि तहा	३२१	२७५	उम्मग्गदेसगो मग्ग	८०५	६९०
इदि चदुबंधक्खवगे	५१५	४८३	उवघादमसंगमणं	४४	३२
"उ"			उवघादहीणतीसे	१६७	१३५
उक्कडजोगो सण्णी	२१०	१७२	उवरदबंधे चदुपं.	६३२	५६७
उक्कस्सट्ठिदिबंधो	९४०	७८८	उवरदबंधेसुदया	७४५	६२५
उगुदालतीस सत्त य	४१८	४१०	उवरिमगुणहाणीणं	९४४	७९०
उगुवीसतियं तत्तो	८३९	७१९	उवरिल्लपंचये पुण	७८८	६६२
उगुवीसं अट्ठारस	४६५	४४२	उववादजोगठाणा	२१९	१७९
उच्चव्वेल्लिदतेऊवाऊ	६३७	५७०	उवसमखइयो मिस्सो	८१३	६९६
उच्चसुच्चं देहं	८४	४५	उवसमभावो उवसम	८१६	६९८
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ	६३६	५६९	उवसामगा दु सेढिं	५५९	५१७
उज्जोवो तमतमगे	१६९	१३५	उवसामगेसु दुगुणं	८४३	७२०
उट्ठतिरिच्छपदाणं	८६३	७३८	उवसंतखीणमोहे	१०२	५४
उत्तरपयडीसु पुणो	१९६	१५२	उवसंतोत्ति सुराऊ	४४६	४३४
उत्तरभंगा दुविहा	८२३	७१२	उव्वेलणपयडीण	४१३	४०८

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
उव्वेलण विज्झादो	४०९	४०५
उव्वेल्लिददेवदुगो	३६८	३४७
"ऊ"		
ऊणत्तीससयाइं	८६९	७३८
ऊणतीससयाहिय	६०५	५४५
"ए"		
एइंदियमादीणं	८०	४४
एक्क य छक्केयारं एया	४८१	४५९
एक्क य छक्केयारं दस	४८८	४६३
एक्काउस्स तिभंगा	६४५	५७३
एक्कादी दुगुणकमा	८६०	७३५
एक्कारं दसगुणियं	८५२	७२९
एक्कुदयुवसंतंसे	६९०	६००
एक्के एक्कं आऊ	६४२	५७१
एक्केक्के पुण वग्गे	२२६	१८३
एक्को चेव महप्पा	८८१	७५२
एक्कं च तिण्णि पंच य	७९३	६७३
एक्कं च दो व तिण्णि व	५८४	५३४
एकम्हि कालसमये	९११	७७०
एकावण्णसहस्सं	४९३	४६९
एगुणतीसत्तिदयं	६९८	६०४
एगे इगिवीसपणं	५९५	५३९
एगेगं इगितीसे	७४१	६२४
एगेगमट्ठ एगे	६९४	६०४
एगे वियले सयले	७१४	६१०
एदेण कारणेण दु	२७५	२३४
एदे सत्तट्ठाणा	३८६	३८८
एदेसिं ठाणाओ	२४१	१९७
एदेसिं ठाणाणं	२२२	१९३
एयक्ख अपज्जत्त	५३०	४९०
एयक्खेत्तोगाढं	१८५	१४४
एयसरीरोगाहिय	१८६	१४५
एयाणेयक्खेत्तट्ठिय	१८७	१४५
एयंतवड्ढिठाणा	२२२	१८१
एवं पणकदि	१४४	११३
एवं वा पणकाये	३०९	२५९
[illegible]	[illegible]	[illegible]
एवमबंधे बंधे	६४४	५७३
एवं खिगितीसे ण हि	७६७	६४९
एवं तिसु उवसमगे	३८५	३८७
एवं पण छव्वीसे	७७०	६५३
एवं पंचतिरिक्खे	३४७	३१७
एवं माणादितिए	३२३	२८०
एवं सत्तट्ठाणं	३९५	३९४
"ओ"		
ओक्कड्डणकरणं पुण	४४५	४३३
ओघादेसे संभव	८२०	७०२
ओघं कम्मे सरगदि	३१८	२७१
ओघं तसे ण थावर	३१०	२६०
ओघं देवे ण हि णिर	३४८	३२१
ओघं पंचक्खतसे	३४९	३२३
ओघं वा णेरइये	३४६	३१७
ओघं वा आदेसे	१०५	५८
ओदयिया पुण भावा	८१८	७००
ओराल दुगे वज्जे	४२५	४१६
ओराल मिस्सजोगे	३५३	३३०
ओरालमिस्स तसवह	क्षेपक ४	६६५
ओरालियवेगुव्विय	८१	४४
ओरालो वा मिस्से	११६	७६
ओरालं दंडदुगे	५८७	५३५
ओहिदुगे बंधतियं	७३०	६१८
ओहि मणपज्जवाणं	७१	४२
ओही केवलदंसण	७३	४२
"अं"		
अंगुलअसंखभागप्प	२३०	१९०
अंगुलअसंखभागं वि	४३४	४२२

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
अंतरगा तदसंखे	२५५	२०८
अंतरमुवरीवि पुणो	२३९	१९४
अंतिमठाणं सुहुमे	५४८	५०१
अंतिमतिय संहडणं	३२	१९
अंतोकोडाकोडी ठिदित्ति	९४५	७९०
अंतोकोडाकोडी ठिदिस्स	१५७	१२७
अंतोकोडाकोडी ठिदिस्स	९१६	७७२
अंतोमुहुत्तकालं	९४[illegible]	७६७
अंतोमुहुत्तपक्खं	४६	३३
अंतोमुहुत्तमेत्ते	९१०	७६७
अंतोमुहुत्तमेत्तो	८९९	७५८
"क"		
कदलीघादसमेदं	५८	३८
कप्पित्थीसु ण तित्थं	११२	६८
कम्मकय मोहवड्ढिय	११	६
कम्मत्तणेण एक्कं	६	५
कम्मदव्वादण्णं	६४	३९
कम्मसरूवेणागय	१५५	१२६
कम्मसरूवेणागद दव्वं	९१४	७७१
कम्मागमपरिजाणग	६५	४०
कम्माणं संबंधो	४३८	४२५
कम्मुदयज कम्मिगुणो	८१५	६९८
कम्मुवसमम्मि उवसम	८१४	६९८
कम्मे उरालमिस्सं	११९	८०
कम्मे वअणा. उदय	३३२	३०२
कम्मे वाणाहारे. सत्त.	३५६	३३५
कम्मोरालियमिस्सं	५८६	५३५
कम्मं वा किण्हतिए	५४९	५०५
कालो सव्वं जणयदि	८७९	७५१
किं बंधो उदयादो	३९९	३९६
केवलणाणावरणं	३९	३०
केवलणाणं दंसण	१०	६
को करइ कंटयाणं	८८३	७५२
को जाणइ णवभावे	८८६	७५३
को जाणइ सत्तचऊ	८८७	७५३
कोहस्स य माणस्स य	४८६	४६१
"ख"		
खवणं वा उवसमणे	३४३	३१५
खाइय अविरदसम्मे	८३१	७१८
खाइयसम्मो देसो	३२९	२९४
खीओवसमियभावा	८१७	६९९
खिव तस दुगदि दुस्सर	३०८	२५६
खीणकसाय दुचरिमे	२७०	२३२
खीणोत्ति चारि उदया	४६१	४४९
"ग"		
गदि आदि जीवभेदं	१२	६
गदिआणुआउ उदओ	२८५	२३८
गदिजादी उस्सासं	५१	३५
गदियादिसु जोग्गाणं	२८४	२३८
गयजोगस्स दु तेरे	६११	५५६
गयजोगस्स य बारे	५९८	५४३
गुडखंडसक्करामिय	१८४	१४३
गुणसंजदप्पयडिं	६१२	५५८
गुणहाणि अणंतगुणं	४३५	४२२
गोम्मटजिणिंदचंदं	८११	६९६
गोम्मटसुत्तल्लिहणे	९७२	८०५
गोम्मटसंगहसुत्तं कम्मा.	९६५	८०४
गोम्मटसंगह सुत्तं	९६८	८०४
"घ"		
घम्मे तित्थं बंधदि	१०६	५८
घाईतिय उज्जोवं	३६०क	३३८
घादितिमिच्छकसाया	१२४	१०१
घादितियाणं सगसग	२०१	१५९
घादिं व वेदणीयं	१९	१०
घादीणीचमसादं	४३	३२
घादीणं अजहण्णो	१७८	१४०

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
घादीणं छदुमट्ठा	४५५	४३८
घादीवि अघादिं वा	१७	९
घोडणजोगोडसण्णी	२१६	१७६
"च"		
चउछक्कदि चउअट्ठं	३६३	३४१
चउवीसट्ठारसयं	७१७	६६६
चउरुदयुवसंतंसे	६८९	६००
चक्खुम्मि ण साहारण	३२५	२८१
चक्खूण मिच्छसासण	८३०	७१८
चत्तारि तिण्णि कमसो	२४६	१९९
चत्तारि तिण्णि तिय चउ	४५३	४३७
चत्तारि वारमुवसम	६१९	५६१
चत्तारिवि खेत्ताइं	३३४	३०६
चदुगदिमिच्छे चउरो	३५१	३२५
चदुगदिया एइंदी	५९३	५३७
चदुपच्चइगो बंधो	७८७	६६२
चदु बंधे दो उदये	६७८	५९१
चदुरेक्क दु पण पंच य	५५६	५१६
चरिम अपुण्णभवत्थो	२१७	१७७
चरिमदु बीसुणुदयो	७५७	६४२
चरिमे चदु तिदुगेक्कं	६६८	५८२
चरिमं चरिमं खण्डं	९५८	८०१
चय धणहीणं दव्वं	९०३	७६०
चारुसुदंसणधरणे	७३९	६२४
"छ"		
छट्ठे अथिरं असुहं	९८	५३
छट्ठोत्ति चारि भंगा	६३४	५६८
छण्णउदि चउसहस्सा	९०९	७६७
छण्णवछत्तियसगइगि	६९३	६०३
छण्णोकसायणिद्दा	२१३	१७३
छण्हं पि अणुक्कस्सो	२०७	१७०
छप्पण उदये उवसं	६८८	५९९
छप्पंचादेयंतं	७९९	६८५
छब्बावीसे चदु इगि	४६७	४४३
छब्बीसे तिगिणउ	७७८	६५६
छसुसगविहमट्ठविहं	४५२	४३६
"ज"		
जत्थ वरणेमिचंदो	४०८	४०५
जत्तु जदा जेण जहा	८८२	७५२
जदि सत्तरिस्स एत्तिय	१४५	११३
जम्हा उवरिमभावा	८९८	७५८
जम्हि गुणा विस्संता	९६६	८०४
जस्स य पाय पसाये	४३६	४२५
जहखादे बंधतियं	७२८	६१७
जह चक्केण य चक्की	३९७	३९४
जाणुगसरीर भवियं	५५	३६
जावदिया वयणवहा	८९४	७५६
जीवत्तं भव्वत्तम	८१९	७००
जीरदि समयपबद्धं	५	४
जुगवं संजोगित्ता	३३६	३०६
जेट्ठाबाहोवट्टिय	१४७	११५
जेट्ठे समयपबद्धे	१८८	१४६
जेण विणिम्मि य पडिमा	९६९	८०५
जेणुब्भिय थंभुवरिम	९७१	८०५
जेहिं दु लक्खिज्जंते	८१२	६९६
जोगट्ठाणा तिविहा	२१८	१७९
जोगा पयडि पदेसा	२५७	२०९
जोगिम्मि अजोगिम्मि य	७०३	६०५
जोगिम्मि अजोगिम्मि य	८७३	७३९
जंतेण कोद्दवं वा	२६	१३
"ठ"		
ठाणमपुण्णेण जुदं	५२२	४८८
ठिदि अणुभागपदेसा	९१	४८
ठिदि अणुभागाणं पुण	४२९	४२१
ठिदि गुणहाणिपमाणं	९५१	७९४

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
"ण"		
णउदी चदुग्गदिम्मि य	६२१	५६१
णट्ठा य रायदोसा	२७३	२३४
णत्थि अणं उवसमगे	३९१	३९२
णत्थि णउंसयवेदो	४९७	४७४
णत्थि य सत्तपदत्था	८८५	७५३
णत्थि सदो परदोवि य	८८४	७५२
णभ चउवीसं बारस	४७२	४४७
णभ तिगि णभ इगि	३४२	३१३
णमह गुणरयणभूसण	८९६	७५७
णमिऊण अभयणंदिं	७८५	६६१
णमिऊण णेमिचंदं	८७	४७
णमिऊण णेमिणाहं	४५१	४३६
णमिऊण वड्ढमाणं	३५८	३३७
णवगेविज्जाणुदिस	३०	१९
णव छक्क चदुक्कं च य	४५९	४४०
णवणउदि सगसयाहिय	४९२	४६८
णवपंचोदय सत्ता	७४०	६२४
णवरि य अपुव्वणवगे	६७७	५९१
णवरि य सव्वुवसमे	१२०	९०
णवरि विसेसं जाणे	४४३	४३३
णवरि विसेसं जाणे	८२९	७१७
णवसय सत्तत्तरिहिं	४८९	४६४
णव सासणोत्ति बंधो	४६०	४४०
णरगइणामरगइणा	५२५	४८९
णरतिरिया सेसाउं	१३७	१०५
णलया बाहू य तहा	२८	१८
णं हि सासणो अपुण्णे	११५	७५
णाणस्स दंसणस्स य	८	५
णाणस्स पढिदमिदि	२०	१०
णाणागुणहाणिसला	२४८	२०४
णाणावरणचउक्कं	४०	३०
णाणंतरायदसयं	२०९	१७१
णामधुवोदयबारस	५८८	५३६
णामस्स णवधुवाणि य	५२६	४८९
णामस्स बंधठाणा	५४४	४९६
णामस्स य बंधादिसु	७८४	६६०
णामस्स य बंधोदय	६९२	६०३
णामस्स य बंधोदय गु.	६९५	६०४
णामं ठवणा दविय	५२	३५
णारकछक्कुव्वेल्ले	३७०	३४९
णारयसण्णिमणुस्स	६०७	५४८
णिव्वत्ति सुहुमजेट्ठं	२३४	१९३
णिरयगदिं आउणीचं	३१६	२७०
णिरयतिरयाणुणेरइ	३६४ख	३४२
णिरयतिरिक्खदुवियलं	३३८	३१२
णिरयतिरिक्खसुरा	३३५	३०६
णिरयतिरियाउ दोण्णिवि	३८४	३८२
णिरयाऊ तिरियाऊ	३७०क	३५०
णिरयदुगं तिरियदुगं	३८६क	३८८
णिरयादि जुदट्ठाणे	५५२	५१४
णिरयादि णामबंधा	७११	६०९
णिरयादिसु पयडिट्ठिदि	३४४	३१६
णिरयादिसु भुज्जेगं	३६४क	३४२
णिरयादीण गदीणं	७९	४४
णिरयापुण्णा पण्हं	५१९	४८७
णिरयायुस्स अणिट्ठा	७८	४४
णिरये वा इगि णउदी	६२३	५६३
णिरयेण विणा तिण्हं	५२३	४८८
णिरयेव होदि देवे	११९	६६
णिरयं सासणसम्मो	२६२	२२६
णीचुच्चाणेक्कदरं	६३५	५६९
णेरयियाणं गमणं	५३८	४९४
णोआगमभावो पुण	६६	४०
णोआगमभावो पुण सग	८६	४५

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.	गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
"त"			तित्थाहारा जुगवं	३३३	३०५
तणुणगारा कमसो	८६७	७३८	तित्थाहाराणंतो	१४१	१०७
तट्ठाणे एक्कारस	५१४	४८३	तित्थाहारे सहियं	३७७	३६५
तण्णोकसाय भागो	२०४	१६६	तित्थेणाहारदुगं	५२९	४९०
तत्तो उवरिमखंडा	९६२	८०२	तित्थयरं उस्सासं	५०	३४
तत्तो कमेण वड्ढदि	९६४	८०३	तिदु इगि णउदी णउदी	६०९	५५४
तत्तो तियदुगमेक्कं	६७२	५८७	तिदु इगि बंधे अड्ढचउ	६८४	५९६
तत्तो पल्लसलाय	४३२	४२२	तिदु इगि बंधेक्कुदये	६७९	५९१
तत्थतणऽविरदसम्मो	५३९	४९५	तियउणवीसं छत्तिय	१०४	५६
तत्थावरणजभावा	८२५	७१३	तिय पणछवीसबंधे	७४२	६२४
तत्थासत्था णारय	६००	५४४	तिव्वकसाओ बहुमो	८०३	६८९
तत्थासत्थो णारय	५३३	४९२	तिविहो दु ठाणबंधो	५६३	५१९
तत्थासत्थ एदि हु	५३४	४९२	तिरिय अपुण्णं बेगे	३०६	२५६
तत्थेव मूलभंगा	८२२	७०६	तिरिय दु जादि चउक्कं	४१४	४०८
तत्थंतिमच्छि दिस्सय	९३४	७८३	तिरिये ओघो तित्था	१०८	६१
तदियेक्कवज्जणिमिणं	२७१	२३२	तिरिये ओघो सुरणर	२९४	२४२
तदियेक्कं मणुवगदी	२७२	२३२	तिरियाउग देवाउग	३६६	३४३
तदियो सणामसिद्धो	५६४	५१९	तिरिये ण तित्थसत्तं	३४५	३१७
तम्मिस्से पुण्णजुदा	३१२	२६७	तिरिये थारूव्वेल्लण	४१७	४०९
तव्वदिरित्तं दुविहं	६३	३९	तिरियेयारं तीसे	४२१	४१०
तस्सेव य बंधाउग	३७५ख	३६०	तिरिये व णरे णवरि हु	११०	६३
तस बंधेण हि सहिदि	५२७	४८९	तिसु एक्केक्कं उदओ	६६४	५८१
तसमिस्से ताणि पुणो	५९०	५३६	तिसु तेरं दस मिस्से	४९४	४६९
तह य असण्णी सण्णी	२३६	१९३	तीसण्हमणुक्कस्सो	२०८	१७१
तह सुहुम सुहुम जेट्ठं	२३८	१९४	तीसुदयं विगितीसे	७८३	६५६
तिण्णि दस अट्ठठाणा	४५८	४३९	तीसे अट्ठवि बंधो	७५१	६३२
तिण्णेगेगे एगेगं	५०९	४८०	तीसं कोडाकोडी तिण्णादी	१२७	१०२
तिण्णेव दु बावीसे	५१६	४८४	तीसं बारस उदवु	२७९	२३७
तित्थयरमाणमाया	३२२	२७८	तेउतिगूणतिरिक्खे	२८९	२४०
तित्थण्णदराउदुगं	३७४	३५९	तेउतिये सुगुणोघं	३२७	२९१
तित्थयरसत्तणारय	५७४	५२८	तेउदुगे मणुबदुगं	६१६	५६०
तित्थसमे णिधिमिच्छे	३६३क	३४१	तेउदुगं तेरिच्छे	५४०	४९५
तित्थाहारचउक्कं	३७३	३५९	ते चोद्दस परिहीणा	३९०	३९१

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
तेजदुगं वण्णचऊ	४०३	३९८
तेजदुहारदुसमचऊ	१००	५३
तेजाकम्मेहिं तिये	२७	१६
तेणउदिछक्कसत्तं	७६६	६४९
तेणउदीए बंधा	७५४	६४१
तेण णभिगि तोसुदये	७६३	६४८
तेणतिये तिदुबंधे	६९१	६००
तेण दु णउदे णउदे	७८२	६५६
तेणवदि सत्तसयं	७६४	६४९
तेणवसगसदरिजुदा	७५०	६३२
तेणुबरिमपंचुदये	७६१	६४८
तेणेव तेरतिये	६८३	५९५
तेवट्ठिं च सयाइं	९२३	७७६
तेवण्णणवसयाहिय	४९८	४७४
तेवण्ण तिसदसहिय	५०२	४७६
तेवत्तरिं सयाइं	८६८	७३८
तेवीसट्ठाणादो	५६६	५२३
तेवीसबंधगेइगि	७६०	६४८
तेवीसबंधठाणे	७६९	६५३
तेवीसादिबंधा	६९६	६०४
तेवीसं पणवीसं	५२१	४८७
तेरट्ठचऊ देसे	६५७	५७८
तेरणवे पुव्वंसे	६८२	५९५
तेरदु पुव्वं वंसा	६६७	५८२
तेरस बारेयारं	५१२	४८२
तेर सयाणि सत्तरि	५०१	४७५
तेरिच्छा हु सरित्था	८६२	७३८
तेहिं असंखेज्जगुणा	२५९	२१५
तं पुण अट्ठविहं वा	७	५
"थ"		
थावरदुग साहारण	२९५	२४३
थिरजुम्मस्स थिराथिर	८३	४५
थिरसुहजससादुगं	१७७	१३९
थीणति थीपुरिसूणा	२९०	२४०
थीणुदयेणुट्ठविदे	२३	१२
थीपुरिसोदयचडिदे	३८८	३८९
थीपुंसंढसरीरं	७६	४३
थूले सोलसपहुदी	७९०	६६३
"द"		
दइवमेव परं पण्णे	८९१	७५५
दव्वतियं हेट्ठबरिम	२४५	१९९
दव्वे कम्मं दुविहं	५४	३६
दव्वं ठिदिगुणहाणी	९२२	७७५
दव्वं समयपबद्धं	९२४	७७६
दस अट्ठारस दसयं	७९२	६७२
दसगुदये अडवीसति	६८५	५९९
दसचउरिगि गुणसट्ठं	[illegible]	२२७
दस णव अट्ठ य सत्त य	४७५	४५२
दस णव णवादि चउतिय	४८०	४५८
दस णवपण्णरसाइं	५१८	४८६
दसय चऊ पढमतियं	६६२	५८०
दसयादिसु बंधंसा	६६५	५८२
दसवीसं एक्कारस	४६८	४४५
दुक्खतिघादीणोघं	१२८	१०३
दुगदि दुस्सरसंहदि	३१७	२७०
दुगमणादावदुगं	४०५	३९९
दुगछक्कतिण्ण वग्गे	२८३	३८२
दुग छक्क सत्त अट्ठं	३७६	३६५
दुतिछस्सट्ठणवेक्कार	३६५	३४३
दुविहा पुण पदभंगा	८४४	७२५
दुसु दुसु देसे दोसुवि	८३५	७१९
देवचउक्काहारदु	४००	३९७
देवचउक्कं वज्जं	२१४	१७३
देव जुदेक्कट्ठाणे	५७६	५२९
देवट्ठवीस णरदे	५७२	५२७
देवट्ठवीसबंधे	५७३	५२८

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
देवाउगं पमत्तो	१३६	१०५
देवा पुण एइंदिय	१३८	१०५
देवाहारे सत्थं	६०२	५४५
देवे वा वेगुव्वे	११८	७८
देवेसु देवमणुवे	[illegible]	[illegible]
देवोघं वेगुव्वे	३१४	२६९
देसणरे तिरिये	६४८	५७५
देसतिये सुवि एवं	३८२	३८०
देसावरणण्णोण्ण	१९८	१५३
देसे तदियकसाया णीचं	३००	२४७
देसे तदियकसाया	२६७	२३२
देसोत्ति हवे सम्मं	१८९	१४२
देहादी फस्संता	३४०	३१२
देहादी फासंता	४७	३३
देहे अविणाभावी	३४	२८
देहोदयेण सहिओ	३	३
दोगुणहाणीपनाणं	९२८	७७९
दोछक्कइचउक्कं	७१०	६०९
दोण्णि य सत्त य चोद्दस	क्षेपक२	६६४
"ध"		
धुवबन्धी बज्झंतो	२५३	२०८
"प"		
पचयधणस्साणयणे	९०४	७६१
पचयस्स य संकलणं	९३१	७८०
पज्जत्तगबितिचपमणु	५३९	४९०
पडपडिहार सिमज्जा	२१	१०
पडपडि. आहारं देह	६९	४१
पडविसय पहुदि दव्वं	७०	४२
पडिणीगमंतराए	८००	६८६
पडिय मरियेक्कमेक्कू	५८१	५३२
पडिसमयधणेवि पदं	२०५	७६१
पढमकसायाणं च वि	४४८	४३४
पढमचऊसीदिचऊ	७२५	६१५
पढमतियं च य पढमं	५१०	४८०
पढमादिया कसाया	४५	३३
पढमुवसमिये सम्मे	९३	५०
पढमं पढमं खंडे	९५६	८०१
पढमे पढमंति चउपण	६६६	५८२
पण्णारकसायभयदुग	४०१	३९७
पण्णरसोलङ्कारस	८६५	७३८
पण्णारसमुणतीसं	११७	७७
पण्णास बार छक्क.	३६४	३४२
पण्णेक्कारं छक्कदि	३९४	३९३
पणचदु सुण्णं णवयं	क्षेपक १	६६४
पण णव इगि सत्तरसं	२६४	२३०
पण णव इगि सत्त	२८१	२३७
पण णव पण भंगा	६४६	५७५
पणदाल छस्सयाहिय	५००	४७५
पणदो पणगं पणचदु	७०४	६०७
पण बंधगम्मि बारस	४८५	४६१
पणमिय सिरसा णेमिं	१	१
पणवण्णा पण्णासा	७८९	६६३
पणबिन्धे विवरीयं	२०६	१६८
पणबीसे तिगिणउदे	७७७	६५५
पत्तेयपदा मिच्छे	८५७	७३५
पत्तेयाणं उवरिं	८५९	७३५
पयडिट्ठिदि अणुभाग	८९	४८
पयडीएपणुकसाओ	८०६	६९१
पयडी सील सहावो	२	२
पयलापयत्तुदयेण य	२४	१२
पयत्तुदयेण य जीवो	२५	१२
परघाददुगं तेज दु	१७५	१३८
परघादमंगपुण्णो	५९१	५३६
परसमयाणं वयणं	८९५	७५६
परिणामजोगठाणा	२२०	१८०
परिणामो दुट्ठाणो	८३२	७१८

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
परिहारे बंधतियं	७२७	६१६
पल्लासंखेज्जदिमा	२२४	१८२
पल्लासंखेज्जदिमा	९५४	७९७
पल्लासंखेज्जदिमं	६१७	५६०
पाणवधादीसु रदो	८१०	६९३
पिंडपदा पंचेव य	८५८	७३५
पुढवी आऊ तेऊ	५३५	४९२
पुढवीयादी पंचसु	७१७	६११
पुण्णतसजोगठाणं	२४७	२०३
पुण्णिदरं विगिविगले	११३	७२
पुण्णेक्कारसजोगे	३५२	३२८
पुण्णेण समं सव्वे	५२८	४८९
पुणरवि देसोत्ति गुणो	८३८	७१९
पुव्वाणं कोडितिभागा	१५८	१२८
पुव्वाणं कोडितिभागादा	९१७	७७२
पुव्विल्लेसुवि मिलिदे	४७९	४५७
पुव्वे पंचणियट्टी	८४२	७२०
पुव्वुत्तपणपण्णाउग	३८०क	३६६
पुव्वं ण चउवीसं	७४३	६२४
पुरिसोदयेण चडिदे अंति	५१३	४८२
पुरिसोदयेण चढिदे बं.	४८४	४६१
पुरिसं चदुसंजलणं	१०१	५४
पंचक्खतसे सव्वं	५४५	४९७
पंचण्हं णिद्दाणं	७२	४२
पंचणव दोण्णि अट्ठा	२२	११
पंचणव उदयपगडीओ	३६	२९
पंचणवदोण्णि छव्वी	३५	२९
पंचणव सत्तपयडीओ	३८	३०
पंचविध चदु विधेसु य	५१७	४८४
पंचसहस्सा बेसय	५०४	४७७
पंचादि पंचबंधो	६५८	५७८
पंचिंदिएसु ओघं	११४	७४
पंचेक्कारस इगिणवदालं	२८३	२३७
पंचेक्कारसबावीस	२७७	२३६
पुंसंढूणित्थिजुदा	२९६	२४५
पुंबंधउद्धा अंतो	२०५	१६७
"फ"		
फड्डयगे एक्केक्के	२२५	१८३
फड्डयमंतरिद गुणं	२२१	१८५
"ब"		
बहुभागे समभागो	१९५	१५०
बहुभागे सम. बंधा	२००	१५९
बाणउदि णउदि सत्ता	६२६	५६४
बाणउदि णउदि सत्तं	७६२	६४८
बाणउदि णउदि सत्तं	७३६	६२१
बाणउदीए बंधा	७५५	६४१
बाणउदि णउदिचऊ	७०७	६०७
बाणउदी णउदिचऊ	७४९	६३२
बादरणिव्वत्तिवरं	२३५	१९३
बादालं तु पसत्था	१६४	१३४
बादालं पणुवीसं	६५०	५७७
बादालं बेण्णिसया	८५३	७२९
बावत्तरि अप्पदरा	५७५	५२८
बावत्तरि तिसहस्सा	९००	७५९
बावीसबंध चदुतिदु	६८६	५९९
बावीसमेक्कवीसं	४६४	४४२
बावीसमेक्कवीसं	४६३	४४१
बावीसयादिबंधे	६६१	५८०
बावीसे अडवीसे	६८०	५९५
बावीसेण णिरुद्धे	६७४	५९०
बावीसं दयचऊ	६५५	५७८
बारचउ ति दुगमेक्कं	८३६	७१९
बारऽड्डछवीसं	८५०	७२९
बारस य वेदणीये	१३९	१०६
बारस सय तेसीदी	४८७	४६२
बीसीदिं वज्जित्ता	६२४	५६३

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
बासीदे इगिचउपण	७७३	६५३
बासूप बासूअ वरट्टिदीओ	१४८	११७
बिगूण णव चारि अट्ठं	३६२	३४१
बिदियगुणे अणथीणत्ति	९६	५२
बिदियस्सवि पणठाणे	३८०	३६६
बिदियादिसु छसु पुढ	२९३	२४१
बिदियावरणे णवबंध	६३१	५६७
बिदिये तुरिये पणगे	३७१	३५०
बिदिये बिदिय णिसेगे	१६२	१३१
बिदिये बिदिय णिसेगे	९२१	७७५
बिदिये बिगिपणगयदे	४९९	४७५
बिदियं बिदियं खंडं	९५७	८०१
बीइंदियपज्जत्त	२५१	२०७
बंधतियं अडवीस दु	७२१	६१२
बंधपदे उदयंसा	६६०	५८०
बंधण पहुदि समण्णिव	८२	४४
बंधातिय पण छण्णव	७०६	६०७
बंधुक्कट्ठणकरणं	४४४	४३३
बंधुक्कड्ढणकरणं	४३७	४२५
बंधुदये सत्तपदं	६७३	५९०
बंधे अधापवत्तो	४१६	४०८
बंधे संकामिज्जदि	४१०	४०६
बंधोदयकम्मंसा	६३०	५६७
बंधेदेसाउगुवसम	३७५क	३६०
"भ"		
भत्तपइण्णाइविही	६०	३८
भत्तपइण्णाइंगिणी	५९	३८
भयदुगरहियं पढमं	७९४	६७५
भयसाहवं य जुगुच्छा	४७७	४५२
भव्विदराणणण्णटं	८५६	७३४
भव्विदरुवसमवेदग	३२८	२९४
भव्वे सव्वमभव्वे	५५०	५०८
भव्वे सव्वमभव्वे	७३२	६२०
भवणतियाणं एवं	५४३	४९६
भविषंति भवियकाले	६२	३९
भिण्ण मुहुत्तो णर	१४२	१०७
भुजगारप्पदराणं	५७१	५२७
भुजगाराअप्पदरा	५५४	५१६
भुजगाराअप्पदरा	५८०	५३२
भुजगारं अप्पदरं	५८२	५३३
भूदाणुकंपवदजो	८०१	६८७
भूआदरतेवीसं	५६५	५२०
भूआदरपज्जत्ते	५२४	४८८
भूदं तु चुदं चइदं	५६	३७
भेदे छादालसयं	३७	२९
भेदेण अवत्तव्वो	४७४	४५२
भोगभूमा देवाउ	६४०	५७१
भोगे सुरदुवीसं	५६७	५२३
भोगं व सुरेणरचउ	३०४	२५३
भंगा एक्केक्का पुण	३८७	३८९
"म"		
मज्झट्ठकसाय संढ	३८६ख	३८८
मज्झे जीवा बहुगा	२८४	२१९
मज्झे थोवसलागा	१४९	१२१
मणवयणकायदाणग	८८८	७५४
मणवयणकायवक्को	८०८	६९२
मणिवचिबंधुदयंसा	७१८	६१२
मणुओरालदुवज्जं	१६६	१३४
मणुबणिरयाउगे	३७२क	३६६
मणुवे ओघो थावर	२९८	२४६
मणुसिणिएत्थीसहिदा	७०५	२८०
मणुसोघं वा भोगे	३०७	२५१
मरणूणम्मि णियट्टी	९९	५३
मिच्छ चउक्के छक्क	५०३	४७७
मिच्छत्तस्स य ठिदी	९३३	७८१
मिच्छत्त हुंडसंढा	९५	५२

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
मिच्छत्ताणण्णदरं	७९५	६८२
मिच्छतियसोलसाणं	४४७	४३४
मिच्छतिये तिचउक्के	८२१	७०३
मिच्छतिये मिस्सपदा	८४६	७२६
मिच्छत्तं अविरमणं	७८६	६६१
मिच्छदुगायदचउक्के	८३३	७१८
मिच्छदुगे मिस्सतिये	८२४	७१२
मिच्छदुगे मिस्सतिये	४९१	४६५
मिच्छमणंतं मिस्सं	२९२	२४०
मिच्छमपुण्णं छेदो	२९९	२४६
मिच्छस्संठाणभंगा	५६८	५२३
मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य	४४९	४३५
मिच्छस्संतिमणवयं	१६८	१३५
मिच्छाइट्ठिप्पहुदिं	८६६	७३८
मिच्छादि गोदभंगा	६३८	५७०
मिच्छादि ठाणभंगा	८४०	७२०
मिच्छादीणं दुतिदुसु	८६४	७३८
मिच्छादुवसंतोत्ति य	४६२	४४१
मिच्छूणिगिवीससयं	४२७	४१७
मिच्छे अद्धुदयपदा	८४७	७२६
मिच्छे पणमिच्छत्तं	क्षेपक ३	६६५
मिच्छे परिणामपदा	८४८	७२७
मिच्छे वग्गसलाय	९२५	७७६
मिच्छे मिच्छादावं	२६५	२३२
मिच्छे सम्मिस्साणं	४१२	४०७
मिच्छे सासण अयदे	४९५	४७०
मिच्छो हु महारम्भो	८०४	६९०
मिच्छं मिस्सं सगुणे	४७६	४५२
मिस्सम्मि तिअंगाणं.	५८९	५३६
मिस्साविरदमणुसट्ठा	५३७	४९३
मिस्साविरदे उच्चं	१०७	५८
मिस्साहारस्सयया क्षेपक	५६०	५१८
मिस्सूणपमत्तंते	४५६	४३९
मिस्से अपुव्वजुगले	६२९	५६६
मूलुत्तरपयडीणं	६७	४१
मूलुत्तर णामादिचउ	६८	४१
मूलुत्तरपयडीणं बधो	६२७	५६४
मूलोघं पुंवेदे	३२०	२७३
मूलुण्हपहाअग्गी	३३	२०
मोहस्स य बंधोदय	६५२	५७७
मोहे मिच्छत्तादि	२०२	१६४
"व"		
वग्गसलायेणवहिद	९२६	७७८
वज्जयणं जिणभवणं	९७०	८०५
वज्जं पुंसंजलणंति	४२८	४१७
वण्णचउक्कमसत्थं	१७०	१३७
वरइंदणंदिगुरुणो	३९६	३९४
वामे चउदस दुसु दस	८५१	७२९
वामे दुसु दुसु दुसु तिसु	८३७	७१९
विग्गहकम्मसरीरे	५८३	५३४
विदियं तेरस बारस ठाणं	३९०क	३९१
विबरीयेणप्पदरा	५६९	५२४
विरियस्स य णोकम्मं	८५	४५
विसवेयणरत्तक्खय	५७	३७
वीसं इगिचउवीसं	५९२	५३७
वीसण्हं विज्झादं	४२३	४१०
वीसदु चउवीसचऊ	५९७	५३९
वीसादिसु बंधंसा	७४६	६३२
वीसादीणं भंगा	६०३	५४५
वीसुत्तर छच्च सया	६०४	५४५
वीसुदये बंधो ण हि	७४७	६३२
वीसं छडणववीसं	७५९	६४२
वेगुव्वअद्धरहिदे	३६९	३४७
वेगुव्वछपणसंहदि	३३१	२९९
वेगुव्वतेजथिरसुह	२९१	२४०
वेगुव्वे तम्मिस्से	७२०	६१२

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
वेगुव्वं वा मिस्से	३१५	२७०
वेदकसाये सव्वं	७२२	६१४
वेदगजोग्गे काले	६१४	५५९
वेयणिये अडभंगा	६५१	५७७
वेदणियगोदघादीणे	४९	३४
वेदतिय कोहमाणं	२६९	२३२
वेदादाहारोत्ति य	३५४	३३०
"र"		
रसबंधज्झवसाण	९६३	८०३
रागजमं तु पमत्ते	८२६	७१३
रिणमंगोवंगतसं	३०७	२५६
रूऊणद्धाणद्धे	९३०	७८०
रूऊणण्णोण्णब्भ	९२९	७७९
रूवहियडवीससया	८४१	७२०
"ल"		
लघुकरणं इच्छंतो	५७०	५२६
लद्धीणिव्वत्तीणं	२४०	१९४
लिंगकसाया लेस्सा	८२८	७१७
लोगाणमसंखपमा	९५२	७९५
लोगाणसंखसिदा	९५५	७९९
लोहस्स सुहुमसत्तरसा	१४०	१०६
लोहेक्कुदओ सुहुमे	६५९	५७८
"स"		
सइउड्ढिया पसिद्धी	८९३	७५५
सगपज्जत्ती पुण्णे	२२१	१८१
सगवीसचउक्कुदये	७६५	६४९
सगवीसे तिगिणउदे	७७९	६५६
सगसगखेत्तगयस्स य	१८९	१४७
सगसगगदीणमाउं	६४१	५७१
सगसगसादिविहीणे	११०	१४७
सगसंभवधुवबंधे	४६६	४४३
सच्चाणुभयं वयणं	क्षेपक७	६६५
सच्छदिट्ठीहिंवियप्पियाणि	८८९	७५४
सगचउपुव्वंवंसा	६६३	५८१
सण्णापंचयादी	३२४	२८१
सण्णाणे चरिमपणं	५४७	५०१
सण्णि असण्णि चउक्के	१४६	११४
सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य	६०१	५४४
सण्णिम्मि सव्वबंधो	७०९	६०७
सण्णिस्स दु हेट्ठादो	१५०	१२३
सण्णिस्स मणुस्स य	५३६	४९३
सण्णिस्सुववादवरं	२३७	१९४
सण्णी छस्संहडणो	३१	१९
सण्णीणि तदा ऐक्के	५४१	४९५
सत्तण्ह गुणसंकम	४२२	४१०
सत्ततिगं आसाणे	३७२	३५८
सत्तपदे बंधुदया	६६९	५८६
सत्तरस पंचतित्था	१५१	१२४
सत्तरसादि अडादी	६७१	५८६
सत्तरसुहुमसरागे	२१२	१७३
सत्तरसे अडचदुवी	६८१	५९५
सत्तरसेकगसयं	१०३	५६
सत्तरसेक्कारखचदु	२७६	२३६
सत्तरसेक्कारख	२८२	२३७
सत्तरसंणवयतियं	६५६	५७८
सत्तरसं दसगुणिदं	८५४	७२९
सत्ताबाणऊदितियं	७१३	६०९
सत्तावीसहियसयं	४७१	४४७
सत्ती य लदा दारू	१८०	१४१
सत्तुदये अडवीसे	६८७	५९९
सत्तेताल धुवाणि य	४०४	३९९
सत्तेव अपज्जत्ता	७०५	६०७
सत्ते बंधुदयाचदु	७५३	६४१
सत्तं तिणउदी पहुदी	७४८	६३२
सत्तं दु णउदी णउदी	७५२	६३२
सत्तं समयपबद्धं	९४३	७८९

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.	गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
सत्थगदीतसदसयं	४२०	४१०	सरिसायामेणुवरिं	२३१	१९१
सत्थत्तादाहारं	६१३	५५८	सरिसासरिसे दव्वे	५३	३६
सत्थाणं धुवियाणग	१७९	१४०	साणे तेसिं छेदो	३१३	२६७
सम्मत्तुप्पत्तेल्लण	४२६	४१७	साणे थीवेद छिदी	३१९	२७१
सम्मत्तं देसजमं	६१८	५६०	साणे पण इगिभंगा	३७५	३५९
सम्मविहीणुव्वेल्ले	४२४	४१५	साणे सुराउ सुरगदि	३२६	२८९
सम्मेव तित्थबंधो	९२	४९	सादासादेक्कदरं	६३३	५६८
सम्मो वा मिच्छो वा	१७६	१३८	सादि अणादी धुव.	१२२	९९
सम्मं मिच्छं मिस्सं	४११	४०७	सादि अणादी धुव.	९०	४८
समचउरवज्जारिसहं	४२	३१	सादी अबंधबंधे	१२३	१००
समयाहिदिगो कमो	२७४	२३४	सादं तिण्णेवाऊ	४१	३१
समविसमट्ठाणाणि य	६२५	५६३	सामण्ण अवत्तव्वो	४७०	४४५
समयपबद्धपमाणं	९४२	७८९	सामण्ण केवलिस्स	६०६	५४८
सयलरसरूवगंधे	१९१	१४८	सामण्ण तित्थकेवलि	५२०	४८७
सयलंगेक्कंगेक्कं	८८	४७	सामण्ण तिरिय पंचि	१०९	६२
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ	१३४	१०४	सामण्ण सयल बियलवि	५९४	५३७
सव्वपरट्ठाणेण य	५७९	५३२	सासण अयदपमत्ते	४९६	४७२
सव्वस्सेक्करूवं	४३०	४२२	सासण पमत्तवज्जं	५५७	५१६
सव्वसलायाणं	९२७	७७९	सासण मिस्से देसे	३६१	३३९
सव्वाउबंधभंगो	६४७	५७५	सिद्धतुदयतदुगय	९६७	८०४
सव्वाओ दु ठिदीओ	१५४	१२६	सिद्धाणंतिम भागं	४	४
सव्वापज्जत्ताणं	५४०	५३५	सिद्धे विसुद्ध णिलये	९१३	७७१
सव्वावरणं दव्वं	१९७	१५२	सिद्धेसु सुद्धभंगा	८७४	७३९
सव्वावरणं दव्वं	१९९	१५९	सीदादि चउट्ठाणा	६२२	५६२
सव्वासि पयडीणं	९३२	७८१	सीदादि चउसुबंधा	७५८	६४२
सव्वुक्कस्सठिदीणं	१३५	१०४	सुक्के सदरचउक्कं	१२१	९१
सव्वुवरिमोहणीये	९४८	७९१	सुण्णं पमादरहिदे	क्षेपक ५	६६५
सव्वे जीवपदेसे	२२८	१८५	सुरणरतिरियोरालिय	४०६	४००
सव्वं तिगेग सव्वं	३६०	३३७	सुरणरसम्मे पढमो	६२०	५६१
सव्वं तित्थाहारूभऊण	६१०	५५४	सुरणिरय विसेसणरे	५९६	५३९
सव्वं तिवीसछक्कं	७१९	६१२	सुरणिरयाऊणोघं	१३३	१०३
सव्वं सयलं पढमं	६७०	५८६	सुरणिरयाऊ तित्थं	४०२	३९८
सरगदि दु जसादेज्जं	२२७	२४५	सुरणिरयाणतिरिय	६३९	५७१

गाथा	गा.सं.	पृ.सं.	गाथा	गा.सं.	पृ.सं.
सुरणिरये उज्जोवो	१७३	१३८	संकमणाकरणूणा	४४१	४३२
सुहुमगलद्धिजहण्णं	२३३	१९३	संखाउगणरतिरिये	२८६	२३९
सुहुमणिगोद अपज्जत्त	२१५	१७६	संखेज्जसहस्साणिव	९४६	७९१
सुहुमणिगोद अप. पज्जत्त	२५६	२०९	संजलण भाग बहुभाग	२०३	१६४
सुहदुक्खणिमित्ताद्दो	१४३	१४९	संजलणे सुहुमेचोद्दस	१५३	१२५
सुहपयडीण विसोही	१६३	१३३	संजोगमेवेतिवदंति	८९२	७५५
सुहमस्स बंधधादी	४१९	४१०	संठाण संहदीणं	१२९	१०३
सुहुमे सुहमो लोहो	क्षेपक ६	६६५	संठाणे संहडणे	५३२	४९२
सेवट्टेण य गमइ	२९	१९	संठाणे संहडणे	५९९	५४४
सेढि असंखेज्जदिमा	२५८	२०९	संढित्थि छक्कसाया	३३९	३१२
सेढिय संखेज्जदिमा	२५२	२०७	संतोत्ति अट्ठसत्ता	४५७	४३९
सेसे तित्थाहारं	१२५	१०१	संताणकमेणागय	१३	७
सेसाणं पज्जत्तो	१४३	१०७	"ह"		
सेसाणं पयडीणं	१९४	१४९	हस्सरदि उच्चपुरिसे	१३२	१०३
सेसाणं सगुणोघं	३३०	२९९	हस्सरदि पुरिसगोददु	४०७	४००
सो मे तिहुवणमहियो	३५७	३३६	हारदु सम्मं मिस्सं	३५०	३२५
सोलट्ठेक्किगिछक्कं	३३७	३०७	हारदुहीणा एवं	३०३	२५१
सोलसपणवीसणभं	९४	५०	हारं अधापवत्तं	४३१	४२२
सोलस विसदं कमसो	७९८	६८५	हेट्ठिमखंडुक्कस्स	९५९	८०२
सोहम्मोत्ति य तावं	१७४	१३८	होंति अणियट्टिणो ते	९१२	७७०

卐 卐 卐

टीकायामुद्धृत गाथासूचि

पृ. सं.	गाथानुक्रम	अन्यत्र कहाँ है
६७०	अणमिच्छ विदिय	प्रा.पं.सं.शतक गा. ९५ पृ. ११०
६७१	अणमिच्छाहार दुगूणा	प्रा.पं.सं.शतक गा. ९७ पृ. ११२
६७१	आहारे कम्मूणा	प्रा.पं.सं.शतक गा. १०० पृ. ११२
५२४	इक्कं बंधइ णियमा	प्रा.पं.सं. पृ. १९८
५२०	इगितीसंता बंधइ	प्रा.पं.सं.पृ. १९६
६६९	इत्थि णउंसयवेदे	प्रा.पं.सं.शतक गा. ८९ पृ. १०९
६९७	उदयेण उवसमेण	पंचास्तिकाय गा. ५६
६६८	ओरालिय आहारदुगूण	प्रा.पं.सं. शतक गा. ८४ पृ. १०८
६७०	कम्मोराल दुगाइं	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९४ पृ. ११०
५२०	जस कित्ती बंधंतो	प्रा.पं.सं. पृ. १९६
६६८	तस पंचक्खे सव्वे	प्रा.पं.सं. शतक गा. ८७ पृ. १०९
६७०	तेजतिय चक्खुजुगले	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९६ पृ. १११
६९५	दंसणणाण चरित्ताणि	पंचास्तिकाय गा. १६४
६८७	पडिणायाइ हेऊ	प्रा.पं.सं.गा. २१६ पृ. १७४
६५१	पणुवीसाई पंच य	प्रा.पं.सं.गा ४३७ पृ. ५००
७६१	पदमेगेण विहीणं	त्रिलोकसार गा. १६४
३	बंधं पडि एयत्तं	सर्वार्थसिद्धि अ. २ सू. ७ टीका
४२७	बन्धं प्रति भवत्यैक्य	तत्त्वार्थसार अ. ५ श्लोक १८
४८५	बावीसादिसु पंचसु दसादि	प्रा. पं. सं. पृ. ३२२
६६९	मणपज्जे केवल दुवे	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९२ पृ. ११०
६६९	मदि-सुअ-अण्णाणे	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९० पृ. ११०
६६९	मदि-सुअ-ओहि	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९१ पृ. ११०

पृ. सं.	गाथानुक्रम	अन्यत्र कहाँ है
६६८	मिच्छस्साइचउट्ठय	प्रा.पं.सं. शतक गा. ८६ पृ. १०९
६७१	मिच्छादि चउक्केयार	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९९ पृ. ११२
६७१	मिच्छाहारदुगुणा	प्रा.पं.सं. शतक गा. ९८ पृ. ११२
२१५	मुखमर्द्धशरीरस्य	
२७	रसाद्रक्तं ततो मांसं	धवल पु. ६ पृ. ६३
२७	वातः पित्तं तथा श्लेष्मा	
७८४	विरलिदरासीदोपुण	त्रिलोकसार गा. ११०
७८७	विरलिदरासीदोपुण	त्रिलोकसार गा. १११
६६८	वेउव्वजुयलहीणा मणुए	प्रा.पं.सं.गा. ८५ पृ. १०८
८	शूरोऽसि कृतविद्यो	
६९५	सरागसंयमश्चैव	तत्त्वार्थसार अ ४ गा. ४३
६७०	सामाइय छेएसुं	प्रा.पं.सं. गा. ८३ पृ. ११०
५५७	सो तेण पंचमत्ताकालेण	भगवतीआराधना गा. २१२०
६६९	संजलणणोकसाया	प्रा.पं.सं. गा.८८ पृ. १०९

लक्षणावलि

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
अघातिया	जीव के देवत्वगुण को नहीं घातनेवाले कर्म अघातिया हैं। (ज.ध.पु.१ पृ. ६७) (गाथा ९ टीका)
अध्रुवबन्ध	जिस बन्ध का अभाव हो जाएगा वह अध्रुवबन्ध है। (गाथा ९०, १०३ टीका)
अध:प्रवृत्तकरण	उपरितनसमयवर्ती भाव (परिणाम) अधस्तनसमयसम्बन्धी भावोंके समान होते हैं इसलिए अध:प्रवृत्तकरण नाम अन्वर्थ है। (गाथा ८९८ टीका)
अध:प्रवृत्तसंक्रमण भागहार	बन्धप्रकृतियोंका अपने बन्धके सम्भव विषयमें जो प्रदेशसंक्रम होता है उसे अध:प्रवृत्तसंक्रम कहते हैं। उसका प्रतिभाग पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। (गाथा ४०९ टीका)
अनन्तानुबन्धी	अनन्तसंसारका कारण होनेसे मिथ्यात्व अनन्त है, उस मिथ्यात्वकी जो चिरसङ्गिनी (अनुबन्धिनी) है वह अनन्तानुबन्धीकषाय है। (गाथा ३३ टीका)
अनादिबन्ध	अनादिकालसे संततिरूप जिस बन्धका अभाव नहीं हुआ है, वह अनादिबन्ध है। (गाथा ९०, १२३ टीका)
अनुकृष्टि	'अनुकर्षणमनुकृष्टि:' परिणामोंकी परस्पर समानता का विचार करना, यह अनुकृष्टि का एक अर्थ है। (गाथा ९०५ टीका)
अनुत्पादानुच्छेद	यह पर्यायार्थिकनयका विषय है। जहाँ सत्त्व नहीं वहाँ अभाव है। भावकी उपलब्धि होनेपर अभाव का विरोध है, क्योंकि सद्भावके निषेधबिना अभाव नहीं हो सकता। (गाथा ९४ टीका)
अपरिवर्तमान-मध्यम परिणाम	जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धि से प्रतिसमय बढ़ते ही जावें या घटते ही जावें पुन: पूर्वावस्था को प्राप्त न हों उन्हें अपरिवर्तमानपरिणाम कहते हैं। (गाथा १७७ टीका)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
अवक्तव्यबन्ध	पूर्वमें विवक्षितकर्मका बन्ध नहीं होता था, किन्तु बादमें होने लगा वह अवक्तव्यबन्ध है। जैसे उपशान्तमोह गुणस्थानमें मोहनीयकर्मका बन्ध नहीं होता था वहाँ से गिरनेपर मोहनीयकर्मका बन्ध होने लगा वह अवक्तव्यबन्ध है। (गाथा ४७० टीका)
अवलम्बनकरण	परभवसम्बन्धी आयुकी उपरिमस्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षणद्वारा नीचे (आबाधाकालके बाहर) पतन करना अवलम्बनकरण है। (ध. पु. १० पृ. ३३०-३१) (गाथा १५९ टीका)
अवलम्बनाकरण	परभवसम्बन्धी आयुका अपकर्षण होनेपर भी उसका पतन आबाधाकालके भीतर न होकर आबाधासे ऊपर स्थित स्थिति-निषेकोंमें ही होता है अतः अपकर्षण से भिन्न अवलम्बनाकरण है। (गाथा ४४६ टीका)
अवस्थितबन्ध	भुजाकार या अल्पतरबन्ध होनेपर जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है पश्चात् उतनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होवे वह अवस्थितबन्ध है। (गाथा ४६९, ५६४)
अल्पतरबन्ध	अधिक प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला पश्चात् अल्प प्रकृतियोंका बन्ध करने लगे वह अल्पतरबन्ध है। (गाथा ४६९, ५६३)
आतप	केवल जिसकी प्रभा अर्थात् किरणोंमें उष्णपना हो। (गाथा ३३)
आबाधा	पुद्गलद्रव्यकर्म जबतक उदयरूप नहीं होता तब-तक उदय आबाधा और जबतक उदीरणारूप नहीं होता तबतक उदीरणाआबाधा है। (गाथा १५५)
आबाधाकाल	कर्मस्वरूपसे परिणत कार्मणद्रव्य जबतक उदय या उदीरणारूप नहीं होता तबतक का काल आबाधा है। (गाथा ९१४)
आयु	गति में जीव का अवस्थान करानेवाला आयुकर्म है। (गाथा ११)
इंगिनिमरण	संन्यासमरणके समय अपने शरीरका उपचार (सेवा) स्वयं करे, अन्य से न करावे। (गाथा ६१)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
उत्पादानुच्छेद	यह द्रव्यार्थिक नय का विषय है। जहाँ अस्तित्व है वहीं विनाश है। जहाँ अस्तित्व ही नहीं वहाँ बुद्धि में आ ही नहीं सकता, क्योंकि अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है। प्रमाण सत्‌रूप वस्तुको ही जानता है। असत्‌में प्रमाणका व्यापार ही नहीं है। यदि असत् में प्रमाण का व्यापार माना जावेगा तो गधेके सींगमें प्रमाणके विषयकी प्रवृत्ति मानी जावेगी, किन्तु ऐसा नहीं है। (गाथा ९४)
उत्पन्नस्थानसत्त्व	पूर्वपर्यायमें उद्वेलन या उद्वेलनके बिना जो सत्त्व है उसके साथ उत्तर पर्यायमें उत्पन्न होते समय उस उत्तरपर्यायमें जो सत्त्व है उसे उत्पन्न स्थान सत्त्व कहते हैं। (गाथा ३५१)
उद्योत	जिसकी प्रभा (किरणें) भी उष्णतारहित हों। (गाथा ३३)
उद्वेलनसंक्रमण-भागहार	करणपरिणामोंके बिना रस्सीको उकेलनेके समान कर्मप्रदेशोंका परप्रकृतिरूपसे संक्रान्त होना उद्वेलना संक्रम है, इसका भागहार अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है (ज.ध.पु. ९ पृ. १७०-१७१) (गाथा ४०९ टीका)
उद्वेलना	जिसप्रकार रस्सीको बल देकर बटा था पुनः बट को खोल दिया उसीप्रकार जिनप्रकृतियोंका बन्ध किया था पश्चात् उसको उद्वेलनभागहारसे अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप प्राप्त कराकर नाशकरना उद्वेलना कहलाता है। (गाथा ३४९)
उपशम	उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृतिसंक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकांडकघातके बिना ही कर्मों के सत्तामें रहनेको उपशम कहते हैं। (गाथा ३३७)
उदयआबाधा	आयुकर्म के बिना शेष सात मूलप्रकृतियोंकी बन्धके समय एककोडाकोडीसागर स्थितिकी आबाधा १०० वर्ष है, किन्तु अन्तःकोडाकोडीकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त है। (गाथा ९१५-९१६)
उदीरणाआबाधा	आयुकर्मके बिना शेष कर्मों की उदीरणा बन्धावली व्यतीत होनेपर होती है अतः उदीरणा आबाधाकाल एकआवलीप्रमाण है। (गाथा ९१८)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
औदयिकभाव	कर्म के उदयसे उत्पन्न हुआ जीवका भाव औदयिकभाव है। (गाथा ८१५)
औपशमिकभाव	प्रतिपक्षी कर्मके उपशमसे औपशमिकभाव होता है। (गाथा ८१४)
कदलीघातमरण/अकालमरण	विष खानेसे, रक्तक्षयसे, शस्त्रघातसे, संक्लेश, श्वास रुकनेसे, आहार न मिलनेसे जो मरण होता है वह कदलीघातमरण अथवा अकालमरण है। हिम, अग्नि व पानी इत्यादिसे भी अकालमरण होता है। (गाथा ५७)
कर्मपद	नामकर्मके बन्धस्थानोंकी विवक्षासे होनेवाले जीवों के भेदों को कर्मपद कहते हैं। (गाथा ५१९-२०)
काण्डक	अनेक समय समूहमें संक्रमण होनेको काण्डक कहते हैं। (गाथा ४१२)
गतिनामकर्म	जिसके उदयसे आत्मा पर्यायसे पर्यायान्तरको प्राप्त हो अथवा जिसके उदयसे उस-उस गतिरूप क्रिया व भाव हों वह गति नामकर्म है। (गाथा ३३)
गुणसंक्रम भागहार	प्रत्येकसमयमें असंख्यातगुणित श्रेणीरूपसे प्रदेशसंक्रमण होताहै वह गुणसंक्रम है। इसका भागहार भी पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाणहै, किन्तु अधः प्रवृत्तसंक्रमभागहारसे असंख्यातगुणा हीन है (जयधवल पु. ९ पृ. १७२) (गाथा ४०९)
गोत्रकर्म	संतानक्रमसे चले आए जीवके आचरणको गोत्र कहते हैं। जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है तथा साधुआचार वालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, जो 'आर्य' इसप्रकारके ज्ञान और वचनव्यवहारके निमित्त हैं उन पुरुषोंकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा जाता है उससे विपरीत कर्म नीचगोत्र है (धवल पु. १३ पृ. ३८९) (गाथा १३)
घातिया	जीवके देवत्वगुणको घातनेवाले कर्म घातिया हैं। (जयधवल पु. १ पृ. ६७) (गाथा ९)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
चारित्रमोहनीय	आचरण करना अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जावे अथवा आचरणमात्र को चारित्र कहते हैं। इस चारित्रको जो मोहे या जिसके द्वारा यह चारित्र मोहा जावे वह चारित्रमोहनीय है। (गाथा ३३)
चूलिका	जिसमें कथित या अकथित अथवा विशेषतापूर्वक नहीं कहे हुए अर्थका चिन्तन किया जाता है वह चूलिका है। सूत्रद्वारा सूचित अर्थका विशेष वर्णन करना चूलिका है। जिससे अर्थ प्ररूपणा किये जानेपर पूर्वमें वर्णित पदार्थके विषयमें शिष्योंको निश्चय उत्पन्न हो वह चूलिका है। (धवल पु. ११ पृ. १४०)। सूत्रमें सूचित अर्थको प्रकाशित करना चूलिका है। (धवल पु. १० पृ. ३९५) अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणाकरना चूलिका है (धवल पु. ७ पृ. ५७५)। किसी पदार्थके विशेष व्याख्यानको कथित विषयमें जो अनुक्त विषय है उसको अथवा उक्त-अनुक्तविषयसे मिले हुए कथनको चूलिका कहते हैं। (बृ. द्र. सं. टीका पृ. ६८) (गाथा ३९८)
जातिनामकर्म	अव्यभिचारी सादृश्यभावरूपसे जीव इकट्ठे किये जावें वह जाति नामकर्म है। (गाथा ३३)
जातिपदभङ्ग	जहाँपर एक जातिका ग्रहण किया जावे वह जाति पद है जैसे क्षायोपशमिकज्ञान के चार भेद होनेपर भी एक ज्ञानजाति का ही ग्रहण होता है। (गाथा ८४४)
जीवपद	जीवोंके ४१ भेदोंको 'जीवपद' कहते हैं। (गाथा ५१९-२०)
द्रव्यकर्म	पुद्गलपिंडको द्रव्यकर्म कहते हैं। (गाथा ६)
ध्रुवबन्ध	जिस बन्ध का अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबन्ध है। (गाथा ९०, १२३ टीका)
धर्मकथा (वस्तु)	जिसशास्त्रमें एक अङ्गके अधिकारका वर्णन विस्तार या संक्षेपरूपसे हो। (गाथा ६१)
नवकबन्ध	जो तत्काल नवीन बन्ध हुआ है उसका नाम नवकबन्ध है। (गाथा ३४३ टीका)
नामकर्म	जो नारकी आदि जीवके गति आदि भेदोंको और औदारिकशरीर आदि पुद्गल के भेदों को अनेकप्रकार करता है वह नामकर्म है। (गाथा १२ टीका)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
निद्रानिद्रा	अनेकप्रकारसे सावधान किया हुआ भी आँखें नहीं खोल सकता। (गाथा २२)
निद्रा	निद्रा कर्मोदयसे गमन करता हुआ खड़ा हो जाता है, बैठ जाता है, गिर जाता है इत्यादि क्रियाएँ होती हैं। (गाथा २४)
निवृत्तिगुणस्थान	एक ही समयमें स्थित नानाजीवोंके भिन्न-भिन्न परिणाम हों वह निवृत्ति (अनिवृत्ति) गुणस्थान है। (गाथा १००)
निरन्तरबन्धी प्रकृति	जिसका बन्धकाल जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है वह निरन्तरबन्धीप्रकृति है। (धवल पु. ८ पृ. १००) जघन्यसे भी अन्तर्मुहूर्ततक बँधती रहे अर्थात् अन्तर्मुहूर्तके मध्यमें बन्ध होकर जिसप्रकृतिमें अन्तर नहीं पड़ता, वह निरन्तरबन्धप्रकृति है। (कर्मप्रकृति पृ.१४-१५) (गाथा ३९९ टीका)
परिवर्तमान मध्यम परिणाम	जो परिणाम एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको प्राप्त होकर पुनःपूर्वावस्थाको प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमानपरिणाम हैं। (गाथा १७७)
पारिणामिकभाव	कर्मके उपशम-क्षय-क्षयोपशम और उदयकी अपेक्षा बिना जीव का जो भाव वह पारिणामिकभाव है। (गाथा ८१५)
प्रकृति	शील या स्वभाव। (गाथा २)
प्रचलाप्रचला	जिसके उदय से मुख से लार बहती है और हाथ आदि अङ्ग चलते हैं, किन्तु सावधान नहीं रहता वह प्रचला-प्रचला निद्रा है। (गाथा २४)
प्रचला	जिसके उदय में यह जीव आँखों को कुछ- कुछ उघाड़कर सोता है और सोता हुआ भी थोड़ा-थोड़ा जानता है, बार-बार मन्दशयन करता है वह प्रचलानिद्रा है। (गाथा २५)
प्रत्यय	प्रत्यय शब्द के अनेक अर्थ हैं-ज्ञान, शपथ, हेतु। यहाँ पर हेतु अर्थ विवक्षित है। (गाथा ७८६)
प्रायोपगमनमरण	संन्यासमरणके समय अपने शरीरकी सेवा दूसरोंसे न करावे और स्वयं भी न करे। (गाथा ६१)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
फालि	एकसमयमें संक्रमित होनेवाले प्रदेशपुंजको फालि कहते हैं। (गाथा ४१२ टीका)
भक्तप्रत्याख्यान	भोजनत्यागकी प्रतिज्ञा करके जो संन्यासमरण होता है उसके कालका प्रमाण जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १२ वर्ष है। (गाथा ६०)
भावकर्म	द्रव्यकर्म की फलदेने की शक्ति भावकर्म है। (गाथा ६)
भुजकारबन्ध	अल्पप्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला पश्चात् अधिक प्रकृतियोंका बंध करने लगे वह भुजकार बंध है। (गाथा ४६९-५६३)
मिथ्यात्वप्रकृति	जिसके उदयसे जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्गसे पराङ्मुख, तत्त्वार्थश्रद्धानमें निरुत्सुक, आत्मिक हिताहितके विचारसे रहित होता है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है। (गाथा ३३ टीका)
व्युच्छित्ति	आगेके गुणस्थानोंमें उदय सत्त्व अथवा बन्ध का अभाव हो जाना व्युच्छित्ति है। (गाथा ४०१ टीका)
विध्यातसंक्रमण-भागहार	वेदकसम्यक्त्वकालके भीतर दर्शनमोहनीयकी क्षपणसम्बन्धी अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिमसमयतक सर्वत्र ही मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका विध्यातसंक्रमण होता है। इसका भागहार भी अंगुलके असंख्यातवें भाग है, किन्तु उद्वेलनभागहारसे असंख्यातगुणा हीन है (ज.ध.पु.९ पृ. १७१)। (गाथा ४०९ टीका)
विसंयोजना	अनन्तानुबन्धीकी चारोंकषायोंकी युगपत् विसंयोजना करता है अर्थात् अप्रत्याख्यानादि १२ कषाय और ९ नोकषायमें से ५ कषायरूप परिणमा देना। (गाथा ३३६ टीका)
विशुद्धपरिणाम	मंदकषायरूप विशुद्धपरिणाम। (गाथा १६३ टीका)
वेदनीयकर्म	सुख दुःखका अनुभव करावे वह वेदनीयकर्म है। जो वेदन अनुभवन किया जावे वह वेदनीयकर्म है (ध.पु.६ पृ. १०) (गाथा १४)
स्त्यानगृद्धि	उठाये जानेपर भी सोता रहता है। उस नींदमें ही अनेक कार्य करता है तथा कुछ बोलता भी है किन्तु सावधानी नहीं रहती वह स्त्यानगृद्धि निद्रा है। (गाथा २२)

पारिभाषिक शब्द	लक्षण
स्तव	जिस शास्त्र में सकल अंग का वर्णन विस्तार या संक्षेप से हो। (गाथा ८८)
स्तुति	जिस शास्त्र में एकअङ्गका वर्णन विस्तार या संक्षेपसे हो। (गाथा ८८)
स्थान-स्थान	जिसमें कर्मप्रकृतियाँ रहती हैं अर्थात् प्रकृतियोंके समुदायको स्थान कहते हैं वे प्रकृति स्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थानके भेदसे तीनप्रकार के होते हैं (ज.ध.पु. २ पृ. १९९)। (गाथा ४५१ टीका)
स्वस्थानसत्त्व	विवक्षितपर्यायमें उत्पन्न होनेके बाद उद्वेलन होकर अथवा उद्वेलन हुए बिना नवीनबन्ध होकर जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व है। (गाथा ३५१ टीका)
संक्लेशपरिणाम	तीव्रकषायरूप संक्लेशपरिणाम हैं। (गाथा १६३ टीका)
सम्यक्त्वप्रकृति	जो आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकती, किन्तु सम्यग्दर्शनकी निर्मलता व स्थिरताका घात करती है (ज.ध.पु.५ पृ. १३०)। (गाथा ३३ टीका)
सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति	जिस द्रव्यकर्ममें मिथ्यात्वकी तीव्र अनुभागशक्ति कुछ क्षीण हो जावे और कुछ मंद रह जावे वह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति है। (गाथा ३३ टीका)
संक्रमण	जैसा आगममें बतलाया है तदनुसार एकप्रकृतिके स्थितिगत परमाणुओंका अन्य सजातीय प्रकृतिरूप परिणमना संक्रमण है (ज.ध.पु.७ पृ. २३८) बन्ध होनेपर संक्रमण सम्भव है, बन्धके अभावमें वह संभव नहीं। (ध.पु. १६ पृ. ३४०) (गाथा ४०९ टिप्पण, ४१० टीका)
समयप्रबद्ध कार्मणवर्गणा कार्मणशरीर	समयप्रबद्ध अथवा कार्मण वर्गणा अथवा कार्मणशरीर पाँचप्रकार रस, पाँचप्रकार वर्ण, दो प्रकार गन्ध तथा स्पर्शके आठ भेदोंमें से चार (स्निग्धरूक्ष, शीत-उष्ण, कर्कश-मृदु, गुरु-लघु इन चार युगलोंमें से एक-एक इस प्रकार चार) इन गुणोंसे परिणत होता है तथा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्योंसे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणुओंका समूहरूप है। (गाथा १९१)

पारिभाषिक शब्द	[illegible]
सर्वपदभङ्ग	जहाँ पृथक् पृथक् सम्पूर्णभावोंका ग्रहण किया जावे वे सर्वपद भंग हैं। (गाथा ८४४)
सर्वसंक्रमभागहार	सर्वप्रदेशोंका जो युगपत् संक्रम होता है वह सर्वसंक्रम है। इसका भागहार एक अङ्क है। (गाथा ४०९ टीका)
सादिबन्ध	जो बंध छूटकर पुनःबँधे वह सादिबंध है। (गाथा ९०, १२३ टीका)
सांतरबन्धप्रकृति	एकसमयमें बँधकर द्वितीय समयमें बन्धविश्रान्ति देखी जाती है वह सान्तरप्रकृति है। (ध.पु. ८ पृ. १००) (गाथा ३९९ टीका)
	जिसप्रकृतिका बन्ध जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसमयको आदिकरके अन्तर्मुहूर्तसे पूर्वतकबँधने वाली प्रकृति सान्तरबंधी है अथवा अन्तर्मुहूर्तके मध्यमें बन्धविच्छेद होकर पुनः अन्तरसहित बँधने वाली प्रकृति सान्तरबन्ध प्रकृति है। (क.प्र. पृ. १४-१५)
सिद्धान्तचक्रवर्ती	बुद्धिरूपी चक्रसे जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड व महाबन्धके भेदसे षट्खण्डागमरूप शास्त्रमें भले प्रकार अवगाहन करनेवाला। (गाथा ३९७)
शतारचतुष्क (सतारचतुष्क) क्षयदेश	तिर्यंचगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु व उद्योत ये चारप्रकृतियाँ सतारचतुष्क या शतारचतुष्क कहलाती हैं। जो प्रकृति अन्यप्रकृतिरूप उदय होकर नाशको प्राप्त होती हैं उन परमुखोदयी प्रकृतियों के तो अन्तकाण्डककी अन्तिमफालि क्षयदेश है तथा जो स्वमुख उदयरूपसे उदय होकर निकलती हैं उनका एकआवलि प्रमाणकाल शेष रहनेपर क्षयदेश है। (गाथा ४१२, ४४५ टीका)
क्षायिक	प्रतिपक्षकर्मके सर्वथा क्षयसे क्षायिकभाव होता है। (गाथा ८१४)
क्षायोपशमिकभाव	प्रतिपक्षीकर्मोंके देशघाति स्पर्धकों का उदय होने पर भी जीवका गुण प्रगट हो वह मिश्र (क्षायोपशमिक) भाव है। (गाथा ८१४)

卐 卐 卐